।। श्री हरिः ।।

जीवन चरित्र

श्री हरि बाबा जी महाराज

॥ श्रीहरिः ॥

जीवन-चरित्र
श्री हरिबाबा जी महाराज

लेखक :

श्रीललिताप्रसादजी

सम्पादक :

स्वामी श्रीसनातनदेवजी महाराज

प्रकाशक :-
महाराजश्री हरिबाबा मेमोरियल ट्रस्ट,
वृन्दावन

श्रीगुरु पूर्णिमा २०११

पंचम संस्करण
३००० प्रतियाँ

न्यौछावर : २०१, रुपये मात्र

पुस्तक प्राप्ति स्थान :-
१. **श्रीहरिधाम बाँध**, पो॰ गवां, बदायूँ,
२. **श्रीहरि बाबा आश्रम**, दावानलकुण्ड, वृन्दावन (मथुरा)
फोन : (0565) 2444507
३. **श्री हरिं बाबा मन्दिर**, हरिनगर, होशियारपुर (पंजाब)

मुद्रक :-
राधा प्रेस, 2465, मेन रोड, गांधी नगर, दिल्ली-31
फोन : 011-22083107

दो शब्द

हमें बहुत खुशी है कि प्रातः स्मरणीय महाराज श्रीहरि बाबाजी के जीवन चरित्र का यह **पंचम** संस्करण आपके हाथों में है। महापुरुषों का जीवन ही हमारे लिए सच्चा मार्ग दर्शक होता है, विशेषकर साधकों का तो जीवन अवलम्ब ही है।

सत्वगुणी प्रतिभा आदर्शमय महाराजश्री के दिव्य-चरित्र आद्योपरान्त अवश्य पढ़ें तथा मनन करें। इससे पाठक अवश्य लाभान्वित होंगे तथा उनकी दिव्य कृपा प्राप्त होगी। ऐसी मेरी निष्ठा है—महाराजजी का यह दिव्य पवित्र ग्रन्थ सभी भक्तों को संग्रह करना चाहिए तथा इसका प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए।

—हरेकृष्ण ब्रह्मचारी

दो शब्द

पूज्य श्रीहरिबाबाजीके दर्शन पहले-पहल मुझे सन् १९२२ में हुए थे। उन दिनों आप प्रिय रामेश्वरप्रसादके स्वास्थ्यलाभके लिये अनूपशहरमें संकीर्तन करा रहे थे। किन्तु उस समय तो केवल आपकी झाँकी ही हुई थी। परिचय तो उसके प्रायः चार वर्ष बाद हुआ। प्रथम परिचयमें ही चित्त आपकी ओर खिंच गया। तबसे समय-समयपर प्रायः प्रत्येक वर्ष ही आपका थोड़ा-बहुत संसर्ग प्राप्त होता रहा है। आपका अदम्य अध्यवसाय और कसा हुआ जीवन प्रत्येक साधकके लिये अपने साधनमें प्रेरणा करनेवाला है। आपके चलने, बैठने, बोलने, देखने और भोजन करने आदि प्रत्येक व्यापारमें एक अद्भुत संयम देखा जाता है। बस, दर्शनमात्रसे ही एक ऐसा प्रभाव पड़ता है, जिससे चित्तकी उच्छृङ्खल प्रवृत्ति अपने आप ही शान्त होने लगती है। आपका जीवन सचमुच प्रत्येक साधकके लिये अत्यन्त उपयोगी और उत्साहवर्द्धक सिद्ध होगा।

इस जीवनीके लेखक पण्डित ललिताप्रसादजी निःसन्देह आपके प्रधान पार्षद हैं। आपका इतना सहचार और आपके भावोंको व्यक्त करनेकी इतनी क्षमता आपके भक्तपरिकरमें सम्भवतः किसीमें नहीं है। यह सच है कि ये कोई साहित्यिक लेखक नहीं हैं और इस प्रकार की योग्यता इन पंक्तियों के लेखक में भी बहुत कम है। तथापि इन्होंने जो कुछ लिखा है वह बहुत सजीव है। उसमें श्रीमहाराजजी की बोल-चाल रहनी-सहनी और स्वभावकी छाया स्पष्ट दिखायी देती है। सचमुच यह आपके जीवनका शब्दमय चित्र ही है। इसमें कई जगह पुनरुक्ति और घटनाओं के दर्शनमें अवाञ्छनीय विस्तार भी दिखायी देगा। किन्तु श्रीमहाराजजी के भावुक भक्तों के लिये तो वह इष्ट ही होगा। साहित्यिकोंकी दृष्टि में इस प्रकारका विस्तार यद्यपि अवाञ्छनीय होता है तथापि भक्तजन तो अपने इष्ट या गुरुदेव

के चरित्र और स्वभावका बार-बार अनुशीलन करके भी अतृप्त ही रहते हैं। अत: लेखक की इस अतृप्तिने ही उन्हें बार-बार ऐसी बातों को लिखने के लिये विवश किया है। मेरा प्रयत्न भी यथा सम्भव उनके भाव और शैली को सुरक्षित रखनेका ही रहा है। मैंने तो केवल कुछ भाषाका परिष्कार, विषयों का विभाजन और घटनाओं को क्रमबद्ध करनेका ही काम किया है। उन्होंने अपने जीवनमें देखी और सुनी हुई वे बातें, जैसी आज स्मरण रही हैं वैसी ही, लिख डाली हैं।

अस्तु, जैसा भी हो सका यह पत्र-पुष्प प्रेमी पाठकोंकी सेवामें सादर समर्पित है। इससे यदि उन्हें कुछ भी आनन्द मिला तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

— *सनातनदेव*

निवेदन

पूज्य श्रीमहाराजजीके चरणोंकी शरण लिये मुझे तीस वर्ष से अधिक हुए। तब से मुझे श्रीमुख से अनेकों महापुरुषों की जीवनियाँ सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपको महापुरुषों के आदर्श चरित्र का अनुशीलन करने का व्यसन रहा है। भगवत्कृपासे मुझे आरम्भ से ही निरन्तर आपके संसर्ग में रहने का अवसर प्राप्त हुआ है। अत: आपका अत्यन्त अलौकिक दिव्य चरित देखकर बार-बार उसे लेखबद्ध करने की इच्छा हुआ करती थी। परन्तु अपने में ऐसी योग्यता न देखकर मैं मन मसोसकर रह जाता था। ऐसा महान् कर्म करने का दु:साहस तो मुझे स्वप्न में भी होना सम्भव नहीं था। अत: मैं किसी योग्य व्यक्ति को ढूँढने लगा जो इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सके। आखिर संवत् १९९७ में मेरे परमार्थ-बन्धु मदनमोहन शास्त्री ने मुझे उत्साहित करके इस कार्य में पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया। अत: श्रीमहाराजजी के सभी अन्तरंग भक्तों के अनुभव संगृहीत करने की इच्छा से मैंने प्राय: तीन सौ पत्रक छपवाये और जहाँ तहाँ सभी के पास भेज दिये। किन्तु दुर्भाग्यवश मुझे अनधिकारी समझकर अथवा किसी अन्य कारण से किसी ने कोंई भी सामग्री लिखकर नहीं दी, केवल श्रीमुनिलालजीने ही (जो अब सन्यासी हो गये हैं और श्री सनातन देव के नाम से प्रसिद्ध हैं) अवश्य कुछ पंक्तियाँ लिखकर भेजी थीं। इससे मैं एक दम निराश हो गया और मैंने समझ लिया कि मेरे जीवन में तो सम्भवत: यह कार्य हो नहीं सकेगा।

सन् १९४६ की बात है, पूज्यपाद श्रीमहाराजजी वृन्दावन में विराजमान थे। सम्भवत: कार्तिक का महीना था। आश्रम में बड़ी धूमधाम से सारा कार्यक्रम चल रहा था। मैं भी इस समय श्रीचरणों में ही आनन्द से कालयापन कर रहा था। इन्हीं दिनों कल्याणसम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद जी पोद्दार के एक अन्तरङ्ग सत्सङ्गी श्रीगम्भीरचन्द पुजारी वृन्दावन आये। उन्होंने एकान्त में मेरे पास जाकर बड़े प्रेमपूर्ण आग्रह से कहा 'मेरी हार्दिक इच्छा है कि पूज्य श्रीमहाराजजी की जीवनी लिखी जाय।

मैं समझता हूँ, आप ही को उनका सबसे अधिक सम्पर्क रहा है; अत: आप क्रमश: उनके जीवन की जो-जो घटनाएँ स्मरण हों लिखा दीजिये। फिर मैं दूसरे भक्तों से पूछकर भी सामग्री संग्रह कर लूँगा। और जब पूरी सामग्री मिल जायगी तो उसका सम्पादन कराकर पुस्तकाकार छपवा देंगे।'

उनके इस प्रस्ताव से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु दूसरे दिन जब वे लिखने को बैठे तो गत तीस वर्ष की घटनाओं को क्रमश: ठीक-ठीक लिखाना मुझे बड़ा कठिन दिखायी देने लगा। इससे मेरा हृदय बहुत व्यथित हुआ और मैं बार-बार अपने को धिक्कारने लगा। मैं रोते-रोते व्याकुल हो गया। बस, अकस्मात् मुझे कुछ आश्वासन-सा मिला और मैं सावधान होकर बोलने लगा। अब तो एक-एक करके सारी घटनाएँ मेरे मानसनेत्रों के सामने प्रकट होने लगीं और मैं धारावाहिक क्रम से बोलने लगा। बेचारे पुजारी जी तो तीन-चार पृष्ठ लिखकर ही थक गये और आगे की बातें दूसरे दिन लिखने की बात कहकर चले गये। दो-तीन दिन ऐसा ही हुआ। उनमें लगन तो खूब थी किन्तु मस्तिस्ककी दुर्बलता के कारण वे अधिक देर काम करने में समर्थ नहीं थे। किन्तु मेरे हृदय में तो अब उबाल-सा आ रहा था। मुझे उनकी यह ढील असह्य हो गयी। आखिर, मैंने उनसे छुट्टी ली और मैं स्वयं ही इस काम में जुट गया।

प्रभु की लीला कुछ समझ में नहीं आती। न जाने वे कब किससे क्या करा लें। उसकी प्रेरणा से क्या नहीं हो सकता? 'मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन।' बस, अब धारा प्रवाह से उन्हें लिखने लगा। पहले ही दिन मैं छ: घण्टे तक एक ही आसन से मानो भाव-समाधि में बैठा लिखता रहा। इस कार्य में मुझे बड़ा ही अनौखा सुख मिलता था। मानो कोई दिव्य शक्ति ही मुझसे यह कार्य करा रही थी। जब प्राय: सौ पृष्ठ लिख गये तब एक दिन मैंने पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी से इसकी चर्चा की। हमारे महाराजजी पर बाबा का प्रेम तो बड़ा ही अपूर्व था। आपसे इतना प्रेम करने वाला संसार में कोई दूसरा व्यक्ति हो सकता है—इसकी तो मुझे स्वप्न में भी कल्पना नहीं हो सकती। अत: मेरी बात सुनकर बाबा को बड़ा ही हर्ष हुआ।

उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया और बोले, 'बेटा! यह तो तू मेरे ही संकल्प की पूर्ति कर रहा है।' जब मैंने बाबा के श्रीचरणों में लोटकर अपनी अयोग्यता प्रकट की तो आप बोले, 'तू घबरा मत, तू तो केवल निमित्तमात्र है। वे स्वयं ही तेरे हृदय में बैठकर अपना चरित्र लिखेंगे।' इस प्रकार पूज्य बाबा का वात्सल्यपूर्ण आश्वासन एवं आशीर्वाद पाकर मैं बड़ी तत्परता से इस कार्य में लग गया।

मैं बाबा के आश्रम से सटे हुए श्यामबगीचे की एक कुटी में रहा करता हूँ। यहीं मैंने इस ग्रन्थ को लिखा था। उन दिनों मेरी भाव-समाधि-सी लगी रहती थी और मैं निरन्तर छः सात घण्टे लिखता रहता था। पूज्य बाबा अपने आश्रम से बाहर किसी दूसरे स्थान में बहुत कम जाया करते थे। किन्तु इन दिनों में दूसरे-तीसरे ही दिन जब मन में आती अकेले ही मेरे पास पहुँच जाते थे। मैं तो देखकर चकित रह जाता। आप मेरा लिखा हुआ बड़े प्रेस से सुनते और कुछ अन्य बातें बताकर बार-बार प्रेरणा करते कि शीघ्र लिखो, न जाने कल हमारा तुम्हारा शरीर रहे अथवा न रहे। आपके इन गूढ़ वाक्यों का रहस्य उस समय मैं कुछ भी नहीं समझ पाता, किन्तु आज उन्हें याद करके चित्त व्यथित होता है।

इसी बीच में मैं सामग्री संग्रह करने के लिये बाँध, भिरावटी शिवपुरी और होशियारपुर आदि कई स्थानों में गया। इस कार्यमें सबसे अधिक सहायता मुझे भाईसिंह से मिली। उसने तो सन् १९१६ से आज तक का घटनाक्रम ऐसे सुव्यवस्थित ढंग से बतला दिया मानो उसे लिखा ही रखा हो। वंश-परिचय और बाल्यावस्था की बातें मुझे मुख्यतया श्रीमहाराजजी के बड़े भाई मास्टर हीरासिंहजी से मालूम हुई। इनका तथा अन्य सभी महानुभावों का, जिन्होंने इस कार्य में मेरा हाथ बँटाया है, मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

भाषासौष्ठव या लेखन शैली का मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं था। अतः जब मैं लिख चुका तो मैंने बाबा से ही प्रार्थना की कि अब किसी योग्य व्यक्ति द्वारा इसका सम्पादन हो जाय तो इसे प्रकाशित कराया जा सकता है। बाबा ने इसके लिये स्वामी सनातनदेवजी का नाम लिया। पहले भी इनसे ही इस विषय में मेरी बातचीत होती

रहती थी। इन्होंने पूर्वाश्रम में यद्यपि अनेकों पुस्तकें लिखी हैं, तथापि अब इस ओर से ये बहुत उदासीन हो गये हैं। फिर भी पूज्य बाबा की आज्ञा से और श्रीमहाराजजी के प्रति भी विशेष श्रद्धा होने के कारण इन्होंने यह कार्य करना स्वीकार कर लिया। पहले तो मेरी लिखी हुई कापियों में ही काट-छाँट करके इन्होंने उसका संशोधन किया। किन्तु उससे न तो इन्हें ही पूरा संतोष हुआ और न मुझे ही उस अस्त-व्यस्त कापी की शुद्ध प्रतिलिपि करना सम्भव जान पड़ा। इन्होंने सलाह दी की इसका ठीक सम्पादन तो तब हो जब इस पुस्तक के आधार पर कोई लेखक नये सिरे से लिखे। परन्तु मेरी दृष्टि में ऐसा कोई दूसरा आदमी नहीं था। अन्त में चित्त उपराम होने पर भी कार्य-का गौरव विचारकर पूज्य बाबा की आज्ञा से और मेरे अनुरोध से इन्हें ही यह कार्य सँभालना पड़ा। बस, इन्होंने लिखना आरम्भ कर दिया और बड़े परिश्रम से छः महीने तक निरन्तर लगे रहकर इसे नये सिरे से लिख डाला। इन्होनें बड़ी बुद्धिमत्ता से इसका सम्पादन किया है तथा मेरी उल्टी-सीधी अटपटी भाषा का सुधार करते हुये मेरे भावों को सर्वथा सुरक्षित रखा है। इनके सहयोग के बिना यह कार्य पूरा होना बहुत ही कठिन था। अतः इसके लिये मैं इनका बहुत अभारी हूँ। यों तो आप भी बाल्यावस्था से ही पूज्य श्रीमहाराजजी के चरणों में अत्यन्त श्रद्धा रखते हैं और समय-समय पर उनके और हमारे संसर्ग में भी आते रहते हैं। अतः यह कार्य जैसा हमारा था वैसा ही आपका भी था, और इसी भाव से आपने इसे बड़ी लगन और उत्साह के साथ पूरा भी किया है। आप कोई अन्य तो हैं नहीं; ऐसी अवस्था में आप-को धन्यवाद देना भी कोरा दिखावा ही होगा।

इस प्रकार यह कार्य पूरा होने से पहले ही एक दिन पूज्य बाबा मुझसे बोले, 'अरे ललिताप्रसाद! यह चरित्र हमको नहीं सुनावेगा?' मैंने कहा, 'क्यों नहीं? जिस समय और जिस स्थान पर आप आज्ञा करें मैं वहीं एक घण्टा आपको सुना दिया करूँगा।' आप बोले, 'अच्छा, दोपहर के सत्सङ्ग में रामायण के पश्चात् मण्डप में ही आनन्दजी इसे सुना दिया करेंगे।' मैंने 'जो आज्ञा' कहकर स्वीकार कर लिया। किन्तु जब स्वामी सनातनदेव जी से इसकी चर्चा हुई तो उन्होंने मुझसे कहा, 'आप यह सब

काम श्रीमहाराजजी से छिपकर कर रहे हैं। यद्यपि वे आजकल यहाँ नहीं हैं; फिर भी यदि किसी ने उनसे इसकी चर्चा कर दी तो सम्भव है वे नाराज हों और आपको इसे लिखने से रोक दें। इसलिये इसे सबके सामने मण्डप में सुनाना ठीक न होगा। एकान्त में पूज्य बाबा को ही सुनाना चाहिये।' तब मैंने यह बात बाबा से कही। इस पर उन्होंने कुछ गम्भीर होकर कहा, 'अरे! उनसे तू मत डर। वे तो बड़े ही गम्भीर और उदार हैं। यदि कुछ कहें तो मेरा नाम ले देना कि उन्होंने लिखवाया है।' फिर एक गहरी श्वांस लेकर कहा, 'भैया! पता नहीं कि छपने तक हमारा जीवन रहे या न रहे, इसलिये तुम निर्भय होकर आज ही आरम्भ कर दो।'

बस, ब्रह्मचारी आनन्दजी ने कथा आरम्भ कर दी। आप बड़े चाव से ठीक समय पर आ जाते थे तथा बड़े प्रेम से सब बातें सुनते थे। इन दिनों आपने मुझसे और स्वामी सनातनदेवजी से क़ई बार कहा था कि इसमें जो कुछ लिखा गया है वह सब ठीक है; बल्कि कुछ कम ही है। बीच-बीच में आप स्वयं भी कुछ बातें बताते जाते थे। आपके साथ पण्डित सुन्दरलाल जी तथा और भी अनेकों सन्त और सत्संगियों ने यह चरित सुना।

ग्रन्थ पूरा हो जाने पर पूज्य बाबा ने ही मुझे इसे शीघ्र प्रकाशित कराने के लिये उत्साहित किया। वे बार-बार यही कहते रहे कि तू इसे शीघ्र छपवा दे; पता नहीं, कल क्या हो? किसका शरीर रहे, किसका न रहे। संसारमें तो एक क्षण भी ठिकाना नहीं है। मैंने जब कहा कि बाबा! महाराज जी का स्वभाव बड़ा सङ्कोची है, उन्होंने तो आज तक कभी प्रसन्नता से अपना फोटो भी नहीं लेने दिया। सम्भव है, इसके छपने से उन्हें दु:ख हो और न जाने मुझे क्या आज्ञा कर बैठें—तो आपने कड़क कर कहा 'नहीं रे! तू डरे मत। यदि वे कुछ कहेंगे तो मैं कह दूँगा कि यह काम मैंने कराया है, इसकी जिम्मेदारी मेरी रही।' इसके कुछ दिनों पश्चात् पूजनीया माँ श्रीआनन्दमयी वृन्दावन पधारीं। उन्होंने भी श्रीमहाराजजी की ओर से अपनी जिम्मेवारी लेकर मुझे इसे प्रकाशित कराने के लिये उत्साहित किया।

एक प्रार्थना पूज्य श्रीमहाराजजी की सेवा में भी है। वास्तव में इस चरित्र को लिखकर मैंने बड़ी ढिठाई की है। कहां तो आपके मन वाणी से अगम्य अत्यन्त गम्भीर चरित्र और कहां मैं सर्वथा अयोग्य तुच्छ व्यक्ति। तथापि मेरे मन में यह उमंग उठी और मैं यह बाल चापल्य कर बैठा। पूज्य बाबा और माताजी के उत्साहित करने से मुझे ऐसा साहस भी हो गया। अस्तु अब जैसा भी हूँ मैं तो आपका ही हूँ। अपने जीवन में न जाने मैंने कितनी बार ऐसे अपराध किये हैं। किन्तु आप तो अपना समझकर मुझे सदा ही क्षमा करते रहे हैं। अतः आशा है, इस बार भी मेरी इस ढिठाई को क्षमा करेंगे। आपकी क्षमाशीलता के भरोसे ही मैंने ऐसा दु:साहस किया है इस कार्य को अज्ञात रूप से करने का प्रयत्न रहने के कारण मैं आपसे कुछ पूछ भी नहीं सका। इसलिए इसमें कई जगह भूल और घटनाक्रम में देशकाल का विपर्यय भी हो सकता है। जैसा मुझे स्मरण था मैंने लेखबद्ध कर दिया है। इससे मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मुझे आशा है, हमारे सभी भक्त परिकर को इससे वैसा ही सुख प्राप्त होगा। मेरी यह कृति तो साहित्यिक दृष्टि से अनेकों दोषयुक्त हैं। तथापि इसके द्वारा उत्साहित होकर महानुभाव एक सर्वाङ्गपूर्ण चरित प्रकाशित कर सकेंगे तो मैं अपनी इस ढिठाई को भी सन्त सद्गुरु देव की एक तुच्छ किन्तु आवश्यक सेवा ही समझूँगा। अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि भक्तजन इस ग्रन्थ की त्रुटियों के लिये मुझे क्षमा करेंगे।

विनीत :

ललिता प्रसाद

॥ विषय-सूची ॥

उत्तर खण्ड

॥ श्रीहरिः ॥

हहरि हहरि हिय हरत सुखाकर॥
होस हवास हरी हरि हाँसी,
मन्द-मन्द मुसकानि मनोहर॥१॥ हहरि हहरि०

हेरन सरस सनेह सुधासर,
जनित-कमल, सरवस जन-मधुकर।
गुन-सागर छवि-धाम सनेही,
प्रीतम प्रान-अधार मधुरतर॥२॥ हहरि हहरि०

हरत ताप तिहुँ जड़ जङ्गमकर,
वचन अनूप अगाध ललित वर।
भाव-वारिधि बूड़त जन राखे,
बाँधि-बाँधि सुख-सेतु कृपाकर॥३॥ हहरि हहरि०

कहँ लों कहों अकथ महिमा अति,
थकित चकित मति गति, बानी पर।
नाम-दान दिन देहु दयानिधि,
श्याम अधम जड़ जीव अघाकर॥४॥ हहरि हहरि०
हहरि हहरि हिय हरत सुखाकर॥

— श्यामसुन्दरदास
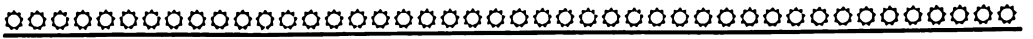
॥ श्रीहरिः ॥ ॥ श्रीहरिः ॥

ॐ

श्रीहरिबाबाजी

आदिखण्ड (वंशपरिचय)

किसी भी देश की सच्ची सम्पत्ति संतजन ही होते हैं। वे जिस समय आविर्भूत होते हैं, उस समय की जनता के लिये उनका आचरण ही सच्चा पथ-प्रदर्शन होता है। वस्तुतः विश्व के कल्याण के लिये जिस समय जिस धर्म की आवश्यकता होती है उसका आदर्श उपस्थित करने के लिये स्वयं श्रीभगवान् ही तत्कालीन सन्तों के रूप में आविर्भूत होते हैं। इसी से शास्त्रों में सन्तों को भगवान् का नित्यावतार कहा है।

आज सारा संसार जड़वाद के मद में उन्मत्त है। श्रद्धा, सरलता और सहानुभूति के स्थान में निरन्तर बुद्धिवाद, कूटनीति और स्वार्थ का साम्राज्य फैलता जा रहा है इसी से लोगों की मनोवृत्तियाँ अत्यन्त बहिर्मुख हो गयी हैं तथा सम्पूर्ण जगत् नास्तिकता एवं अशान्ति की विभीषिका में सन्तप्त हो रहा है। इस समय अधिकांश मानव-जाति किसी प्रकार पारस्परिक स्पर्धा एवं असूया की अग्नि से अपना जीवन सुरक्षित रखने के लिये व्यग्र है प्रत्येक देश अपने पड़ोसी एवं प्रतिद्वन्द्वी देश को हड़पने के लिये उत्सुक है और यही दशा अधिकांश जाति, समाज एवं व्यक्तियों की भी है। ऐसी अवस्था में श्रीभगवान् के अकुतोभय चरणारविन्दों की शरण ही इन संसारानल-संतप्त जीवों की एकमात्र आश्रय है और उनकी प्राप्ति आकुल हृदय से श्रीहरिनाम का सङ्कीर्तन करने से ही हो सकती है। शास्त्रों ने इस कलह-प्रधान कलियुग में जीवों के उद्धार का प्रधान साधन श्रीभगवन्नाम-कीर्तन ही बताया है। परमहंस शिरोमणि भगवान् शुकने विप्रशापदग्ध महाराज परीक्षित की कल्याण-कामना से उन्हें भागवती कथा श्रवण करायी। उसका उपसंहार करते हुए
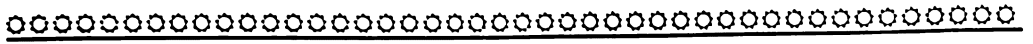
वे कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं ब्रजेत्॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(११।३।५१-५२)

'हे राजन्! इन दोषों के भण्डार कलियुग में एक बड़ा भारी गुण है, वह यह कि इसमें केवल श्रीभगवन्नाम कीर्तन करने से ही मनुष्य सब प्रकार के संगों से छूटकर परमपद प्राप्त कर लेता है। जिस पद की प्राप्ति सत्ययुग में भगवान् का ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञों द्वारा उनकी आराधना करने से और द्वापर में सेवा-पूजा करने से होती थी, उसी कलियुग में श्रीभगवान् का नाम-कीर्तन करने से ही हो जाती है।'

अतः इस समय जीवों के उद्धार का प्रधान साधन श्रीहरिनाम सङ्कीर्तन ही है। अर्वाचीन काल में जिन महानुभावों ने इस कीर्तन भक्ति का प्रचार किया है, उनमें प्रातःस्मरणीय महाप्रभु श्रीचैतन्यचन्द्र का पवित्र नाम सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। आज से प्रायः चार सौ वर्ष पूर्व वंग देश में आपका आविर्भाव हुआ था। आपने किसी प्रकार के उपदेश, आदेश या शास्त्रार्थ के द्वारा नहीं, अपने जीवन के द्वारा ही अनेकों जीवों को भगवत्प्रेम प्रदान किया था। वे भगवन्नाम की ही लूट करते थे और भगवन्नाम की ही भिक्षा माँगते थे। भगवन्नाम ही उनका जीवन था और भगवन्नाममय ही वे सारे संसार को देखना चाहते थे। उन्होंने किन्हीं के पैरों में पड़कर, किन्हीं को आलिंगन करके तथा किन्हीं से प्रार्थना करके भगवन्नाम कीर्तन कराया। इस प्रकार जो-जो भी उनके संसर्ग में आये वे ही नामामृत का पान करके भगवत्प्रेम में पागल हो गये। उस समय श्रीमन्महाप्रभु जी ने जो भवन्नाम की अनवरत वर्षा की थी उससे सारा बँगाल आप्लावित हो उठा। उस भगवत्प्रेमपूर में अवगाहन करके आज तक करोड़ों नर-नारी भगवत्सान्निध्य प्राप्त कर चुके हैं। आज सारा उत्तर भारत श्रीगौराङ्गदेव के इस महादान का ऋणी है। उत्तर भारत में जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु जी ने भगवन्नाम का प्रचार किया उसी प्रकार दक्षिण में श्रीनरसिंह मेहता, तुकाराम, नामदेव एवं समर्थ श्रीरामदास स्वामी ने नामकीर्तन की सुरसरि प्रवाहित की।

इस प्रकार गत चार सौ वर्षों से भारतवर्ष में कल्याणकामी पुरुषों का श्रीहरिनाम सङ्कीर्तन ही मुख्य सम्बल रहा है। तब से अब तक अनेकों महापुरुषों ने समय-समय पर आविर्भूत होकर सर्वसाधारण को इस असाधारण धर्म में दीक्षित किया है। किन्तु यह सब होते हुए भी आज से प्राय: पच्चीस वर्ष पूर्व उत्तर भारत में सङ्कीर्तन की ओर से अत्यन्त शिथिलता देखी जाती थी। एक बंगाल को छोड़कर कहीं भी सर्वसाधारण जनता को इसका कुछ भी पता नहीं था। केवल श्रीवृन्दावन, अयोध्या, चित्रकूट एवं कुछ अन्य तीर्थस्थानों में ही इसकी यत्किञ्चित् झांकी होती थी। अत: विश्वात्मा श्रीहरि ने पुन: अनेकों महानुभावों के रूप में अवतरित होकर इस महान् धर्म की प्रतिष्ठा की। ऐसे महापुरुषों में इस समय श्रीश्रीहरिबाबा जी का स्थान सर्वोपरि कहा जा सकता है। आप वर्तमान समय में श्रीभगवन्नाम कीर्तन के प्रधान आचार्य हैं। आपकी प्रचार पद्धति ठीक वही है जो श्रीमन्महाप्रभुजी की थी तथा आपका जीवन भी बहुत-कुछ उन्हीं से मिलता हुआ है। आपके और उनके जीवन में कितना साम्य है—यह बात आगे के पृष्ठों से स्पष्ट हो जायेगी।

महापुरुषों का आविर्भाव वंश अथवा स्थान स्वत: ही सर्वपूज्य हो जाता है। उनकी महत्ता किसी भी प्रकार की वाह्य परिस्थिति की अपेक्षा नहीं रखती, अपितु उन्हीं के कारण उनसे सम्बन्ध रखने वाली परिस्थिति महिमान्वित हो जाती है। फिर भी अधिकतर यह देखा जाता है कि किसी न किसी प्रकार की वंशपरम्परागत दैवी सम्पद् ही किन्हीं महापुरुष के रूप में घनीभूत होकर प्रकट होती है। ऐसी ही बात यहाँ पर देखी जाती है। आपका आविर्भाव यद्यपि सिखधर्मानुयायी अहलूवालियों के कुल में हुआ था, तथापि कई पीढ़ियों से इस वंश में अच्छे दिव्य-गुण-सम्पन्न महानुभाव ही उत्पन्न होते रहे हैं। वे सभी अच्छे सुशिक्षित, साधु सेवी और सदाचार-सम्पन्न सज्जन थे। आर्थिक दृष्टि से भी उनकी स्थिति अच्छी थी। इन लोगों का मूल निवास-स्थान पूर्वी पञ्जाब जिला होशियारपुर में गन्धवाल नाम का गाँव था।

हमारे चरितनायक के बृद्ध-प्रपितामह बाबा पहलू अच्छे पढ़े-लिखे और साधु सेवी सज्जन थे। इनका प्रधान व्यवसाय था खेती। घर में खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी। आस-पास के लोगों में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। घर पर आये हुए

अतिथि और साधुओं की ये बड़े प्रेम से सेवा करते थे, किन्तु इनके कोई सन्तान नहीं थी। एक सम्पन्न सद्‌गृहस्थ के लिये सन्तान का अभाव साधारण दुःख नहीं होता, अतः ये कुछ उदास रहा करते थे। इन्हीं दिनों एक अवधूत महात्मा दत्तात्रेयजी की भाँति उन्मत्त अवस्था में उधर विचरा करते थे। वे चौबीस घण्टों में केवल एक बार मध्याह्न के समय ही मधुकरी के लिये गाँव के भीतर जाते थे। उस समय हमारे पहलू बाबा इन्हें प्रायः भिक्षा कराया करते थे। एक दिन अवधूत जी माधूकरी के लिये इनके यहाँ पधारे। उन्हें आते देख कर वे जल्दी से घी-बूरा मिलाकर रोटी का मलीदा बनाने लगे। किन्तु जितनी देर में ये मलीदा बनाकर लाये अवधूत जी वहाँ से चल दिये थे। ये दौड़कर उनके पीछे हो लिये। उन्हें आवाज देकर रोकने का इन्हें साहस नहीं हुआ। अवधूत जी तो मस्ताने फकीर ठहरे, वे बिना दायें-बायें या पीछे देखे बराबर चलते रहे और प्रायः बीस मील निकल गये। उनके पीछे-पीछे बाबा पहलू भी मलीदा का कटोरा लिये चलते रहे। अन्त में अवधूत जी अकस्मात् रुके और पीछे को घूमकर बाबा पहलू को आते देखा तो हँसने लगे। फिर पात्र उनके हाथ से लेकर बड़ी प्रसन्नता से भोजन किया और बोले, 'तू क्या चाहता है ?' बाबा पहलू ने चरणों में गिर कर कहा, 'महाराज! मेरे कोई सन्तान नहीं है, कृपया एक पुत्र प्रदान करें।'

इस पर अवधूतजी कुछ देर नेत्र मूँदकर ध्यानावस्थित खड़े रहे। फिर बोले, 'भाई! तुम्हारे भाग्य में तो कई जन्म तक सन्तान का योग नहीं है। अच्छा, हम स्वयं ही तुम्हारे घर में जन्म लेंगे।' अवधूत जी अपने साथ एक धनुष, वंशी और पुस्तक रखा करते थे। ये तीनों चीजें बाबा पहलू को देकर उनसे बोले, 'तुम इन्हें ले जाओ, इनकी नित्यप्रति पूजा करना। इससे हम स्वयं तुम्हारे घर में जन्म लेंगे और तुम्हारे वंश का खूब विस्तार करेंगे। उसके पश्चात् भी तुम्हारी पाँचवीं पीढ़ी में हम पुनः जन्म लेंगे और विरक्त होकर लोकोद्धार का कार्य करेंगे।'

यह कहकर अवधूत जी तो जंगल में चले गये और बाबा पहलू अपने घर लौट आये। उस कटोरे का उच्छिष्ट प्रसाद उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को दिया और स्वयं भी खाया। एक महापुरुष का अमोघ वर पाकर इन दम्पत्ति के हर्ष का पारावार न रहा। कुछ दिनों पश्चात् अवधूत जी ने शरीर त्याग दिया, कहाँ और किस प्रकार इसका

कुछ पता नहीं। उन्हीं दिनों बाबा पहलू की पत्नी ने गर्भ धारण किया इस समय उनकी विचित्र अवस्था थी। एक उच्चकोटि के महापुरुष के गर्भ में आने पर उनके शरीर से शुद्ध सत्त्वमय तेज की किरणें निकलने लगीं। बस, यथासमय एक परम तेजस्वी पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। उनका नाम रखा गया बाबा बुद्धसिंह। बालक बड़ा ही सुन्दर, सुडौल और होनहार था। उसकी शिक्षा-दीक्षा की अच्छी व्यवस्था की गयी। अतः बाबा बुद्धसिंह अच्छे सुशिक्षित, सदाचारी और शूरवीर सद्गृहस्थ हुए। इन्हें घोड़े की सवारी और युद्ध करने का बड़ा शौक था। अपने गुणों के कारण इन्होंने बड़ा सुयश प्राप्त किया था। इन्होंने कई धर्मयुद्धों में विजय प्राप्त की थी तथा एक बार तो एक ही रात में घोड़े पर चढ़ कर सौ मील चले गये थे। ये जैसे वीर वैसे ही आध्यात्मिक दृष्टि से भी बहुत बढ़े-चढ़े थे, अतः गृहस्थोचित कार्यों को करते हुए भी निरन्तर योगारूढ़ रहते थे। उन दिनों पंजाब केसरी महाराज रणजीत सिंह का राज्य था। ये उनकी सेना में एक उच्च पदाधिकारी थे। अतः सिख गुरुओं की तरह ये अमीरी और पीरी दोनों ही में पूर्ण थे। कहते हैं एक बार ये चौबीस घन्टे में सौ मील पैदल चलकर लाहौर पहुँच गये थे। इनके जीवन में ऐसी अनेकों अलौकिक घटनाएँ हुई थीं, किन्तु अब वे काल के गर्भ में विलीन हो गयी हैं। बाबा बुद्धसिंह तो पूर्व जन्म से ही सिद्ध योगी थे, अतः आगे भी इनके वंश में जो लोग हुए वे सभी न्यूनाधिक रूप में योग-सम्पत्ति से सम्पन्न थे। इस प्रकार यह सारा वंश योगियों का कुल हुआ।

बाबा बुद्धसिंह जी के पश्चात् उनके पुत्र बाबा लहणा सिंह भी उन्हीं की तरह अमीरी और पीरी में पूर्ण हुए। ये सचमुच राजा जनक की तरह महान् गृहस्थ होकर भी पूर्णतया ज्ञाननिष्ठ थे। इनके चार पुत्र हुए—प्रतापसिंह, विशनसिंह, नन्दसिंह और भगवानसिंह। इनमें सबसे बड़े सरदार प्रतापसिंह परिवार की बहुत वृद्धि हुई। आज सम्भवतः सैकड़ों व्यक्ति इनके परिवार में हैं और वे भी अच्छे सुशिक्षित, सदाचारी एवं धन-धान्य-सम्पन्न हैं। सभी की साधु-सेवा में अत्यन्त रुचि है तथा सभी भजन-ध्यान में प्रीति रखते हैं।

हमारे सरदार प्रतापसिंह जी के पाँच पुत्र और तीन कन्याएँ हुई। इनमें सबसे छोटे सरदार दीवानसिंहजी ही हमारे चरित्रनायक हुए। आप अपने सभी भाई-बहिनों

में सबसे छोटे थे। भाइयों में सबसे बड़े सरदार इन्द्रसिंहजी का शरीर अब धराधाम में नहीं है। उनसे छोटे सरदार नगीना सिंह जी अपने पैतृक ग्राम गन्धवाल में ही रहकर कृषिका व्यवसाय करते हैं। उनसे छोटे सरदार बहादुर भगतसिंह जी इन्जीनियर थे। अब आप रिटायर्ड हैं। ये बड़े ही सच्चे, सदाचारी और निमयनिष्ठ महानुभाव हैं। तथा एक सच्चे सिख की तरह अपने सम्प्रदायानुसार भजन-ध्यान में तत्पर रहते हैं। इनके कोई पुत्र नहीं है, केवल तीन कन्याएँ हैं। इनका हमारे श्रीमहाराज जी में बड़ा गम्भीर भाव है। अभी सन् १९४५ की बात है, श्रीमहाराज जी प्राय: तीन मास होशियारपुर में रहे थे। वहाँ श्रीमहाराजजी की कथा में सरदार भगतसिंह, उनकी पुत्री और एक दोहित्री भी आती थी। जिस समय वे माँ-बेटी प्रणाम करती, इन्हें गाढ़ समाधि-सी हो जाती थी। तीन घन्टे तक कथा में बैठे रहने पर भी इन्हें चेत नहीं होता था। पीछे बहुत देर में सावधान होने पर घर आती थीं।

किन्तु जिनका आपके जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा वे हैं आपके चौथे भाई सरदार हीरासिंहजी। आप एम० ए० हैं तथा अँग्रेजी, संस्कृत, गुरुमुखी, बँगला, फारसी, उर्दू और हिन्दी आदि कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान रखते हैं। पहले एक हाईस्कूल में हैडमास्टर थे, अत: सामान्यतया "मास्टर साहब" बोलकर प्रसिद्ध हैं। आप सरदार बहादुर भगतसिंह जी तथा सरदार इन्द्रजीतसिंहजी का परिवार होशियारपुर में ही रहते हैं। वहाँ इनके बड़े-बड़े मकान हैं। मास्टर साहब अब रिटायर्ड हो चुके हैं। मैंने तो आपको उस स्थिति में भी देखा था। उस समय भी आप स्कूलटाइम के अतिरिक्त हर समय अभ्यास और स्वाध्याय में ही लगे रहते थे। अब तो निरन्तर परमार्थ-चिन्तन ही करते रहते हैं। अपने सम्प्रदायिक ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने अनेकों शास्त्र-पुराण एवं अन्यान्य आध्यात्मिक ग्रन्थों का भी अच्छा अनुशीलन किया है। आज सत्तर वर्ष की आयु होने पर भी आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है तथा सब इन्द्रियाँ ठीक-ठीक काम करती हैं। इसका कारण आपका संयतजीवन, युक्ताहार विहार और नियमित व्यायाम ही है। आपको औषधियों का भी अच्छा ज्ञान है, अत: कभी-कभी परोपकारार्थ किसी को कोई अचूक औषधि बता भी देते हैं। ये गृहस्थाश्रमी होते हुए भी बड़े मस्ताने महापुरुष हैं। श्रीमहाराजजी ने बाल्यावस्था में

इन्हीं से आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की थी। अतः आप इनमें गुरुभाव रखते हैं और अब भी जब मिलते हैं तो संकोचवश इनके सामने नहीं बोलते।

यह सब होते हुए भी मास्टरजी का आपके प्रति बड़ा ऊँचा भाव है। इसका परिचय एक घटना से मिल सकता है अतः यहाँ उसका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। सन् १९२० में श्रीमहाराजजी होशियारपुर गये थे, उस समय मैं भी आपके साथ था। एक दिन मास्टरजी ने आपसे कहा, 'कल भोजन हमारे घर पर करना, ठीक ग्यारह बजे आ जाना और इसको भी साथ ले आना।' आप बोले, 'बहुत अच्छा।' जब मास्टरजी चले गये तो कहने लगे, 'मुझे इनसे बड़ा डर लगता है, परन्तु करें क्या, जाना ही पड़ेगा।'

दूसरे दिन ठीक ग्यारह बजे हम घर पर पहुँचे। वहाँ बड़ा ही विचित्र दृश्य देखा। मास्टर साहब भावावेश से उन्मत्त-प्राय हो रहे थे। उनके हाथ में जल से भरा हुआ एक कलई का लोटा था और उनके भतीजे के हाथ में एक कलई का तसला तथा मास्टर साहब के पुत्र लखवीरसिंहजी एक स्वच्छ तौलिया लिये हुए थे। मास्टर साहब महाराजजी के चरण धोना चाहते थे, किन्तु महाराजजी संकोच से गड़े जाते थे। आप बारबार पीछे को हटते जाते थे; यहाँ तक कि हटते-हटते दरवाजे तक आ गये। किन्तु मास्टरजी अब भी चरणों को धोने की चेष्टा कर रहे थे। तब विवश होकर आपने बड़े जोर से कहा, 'आप क्या कर रहे हैं ?' अब मास्टर जी होश में आये और लज्जित से होकर जल की झारी हरवंतसिंह जी को देकर एक ओर हो गये। महाराजजी हरवन्तसिंह जी से चरण धुलवाने में भी संकोच करने लगे। तब मास्टर जी ने मीठी-सी डांट बतलाते हुए कहा, 'अब आप क्या करते हैं, यह तो आपसे छोटे ही हैं।' तब आप चुपचाप खड़े हो गये। उन दोनों नवयुवकों ने अपने सन्त पितृव्य के चरण पखारे और उन्हें तौलिये से पोंछकर खड़ाऊँ पहना दीं।

प्रिय पाठक! वह दृश्य भी अजीब था। एक ओर तो मास्टर साहब भावावेश में आंसू बहा रहे थे और वे दोनों नवयुवक भी प्रेम से पागलसे हो रहे थे तथा दूसरी ओर हमारे कौतुकी सरकार भी एकदम शान्त और गम्भीर मुद्रामें खड़े थे। बस, आप बरामदे में जहाँ भोजन के लिये आसन बिछे थे बैठ गये और पास ही मैं भी एक

ओर बैठ गया। वहाँ तो अद्भुत दृश्य था, 'सब घर पाग़ल, सब घर पागल, सब घर दीवाना।' भोजन बनानेवाली माइयां आपकी बड़ी बहिनें तथा परिवार की दूसरी देवियाँ गुरुओं की वाणियोंका पाठ कर रही थीं और खुले शब्दों में नामप्रेम एवं भक्तिकी भिक्षा माँग रही थीं। उन लोगों के भावको देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि उनके मनमें ऐहिक सम्बन्धका तो लेशभी नहीं है। उनका तो आपके प्रति पूर्णतया भगवद्भाव था। मैं तो उनका वह दिव्य भाव देखकर दंग रह गया। आपने बड़ी गम्भीरतासे भोजन किया और चुपचाप वहाँ से चले आये। एक शब्द भी मुँह से नहीं निकला। किन्तु उस समय आप एक दिव्य भाव से मस्त हो रहे थे।

मास्टरजी सन् १९०४ में ही हैडमास्टर हो गये थे और अठ्ठाईस वर्ष नौकरी करके सन् १९३२ में रिटायर्ड हुए। आपको प्रायः सौ रुपये पेंशन के मिलते हैं तथा कुछ रुपया आपके पास था। इसी पूँजी से आप सादा जीवन व्यतीत करते हुए निरन्तर ध्यान-भजनमें लगे रहते हैं। आपका साधु-सेवा का ढंग भी बड़ा विचित्र है। जहाँ जैसी आवश्यकता समझते हैं उनके अनुसार किसी साधुकी कुटीमें बादाम, किसीकी कुटीमें घी, कहीं कम्बल और कहीं चादर आदि चुपचाप रख आते हैं। महात्मा लोग समझ लेते हैं कि यह काम मास्टर साहब का है। श्री सच्चिदानन्द आश्रम में स्वामीजी के सामने से ही आप २५) प्रतिमास देते रहे हैं।

आपके एकमात्र पुत्र सरदार लखवीरसिंह जी ग्रैजुएट हैं। वे स्वतन्त्र नौकरी करके अपना निर्वाह करते हैं। इस समय उनकी आयु प्रायः तीस वर्षकी है, परन्तु अभी तक उन्होंने विवाह नहीं किया और न करने का विचार ही है। वे अच्छे संयमी और विचारशील नवयुवक हैं। मैंने इनमें बाल्यावस्थासे ही बड़े दिव्य गुण देखे हैं। एक बार सन् १९२८ में होशियारपुर में बड़ा उत्सव था। उसमें बाँध प्रान्त के सौ-सवा-सौ भक्त गये थे। आश्रम में बड़ी धूमधाम से कथा, कीर्तन एवं व्याख्यानादि होते थे। उस समय बालक लखवीर की आयु प्रायः बारह साल की थी। उसका अत्यन्त गौरवर्ण था और शिरपर सिख सम्प्रदायानुसार सुन्दर केशपाल था। जिस समय वह कीर्तन करते हुए भावावेश में उन्मत्त होकर नृत्य करने लगता था, उसके केश खुलकर मुखमण्डल पर बिखर जाते थे और नेत्र भावोन्माद से निर्निमेष रह जाते थे।

उस समय तो ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् बालगौर ही त्रिभुवनमोहन नृत्य कर रहे हैं। नृत्य करते-करते वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाता था और घण्टों तक भावसमाधि में निमग्न रहता था। उस समय उसे साक्षात् श्रीश्यामसुन्दर और श्रीकिशोरीजी के दर्शन होने लगते थे। इसी प्रकार इसे और भी अनेकों सात्त्विक विकार होते थे। पढ़ने-लिखने में भी इसकी बुद्धि सदा से ही बहुत प्रखर है। उस अल्पायु में ही इसने आश्रम के बीच वाले चौबारे में, जहाँ श्रीमहाराजजी ठहरे थे, वैज्ञानिक ढंग से सब सामान इकट्ठा करके बिजली का प्रकाश कर दिया था। यह देखकर महाराजजी भी दंग रह गये थे। तब आपने पूछा कि लखबीर! यह विषय तो बी०एस-सी० में पढ़ाया जाता है, तूने कहाँ से सीख लिया। इस पर इसने कहा कि एक बार पिताजी ने मुझे बतला दिया था।

इस प्रकार आपके सभी भाई बड़े योग्य और साधन सम्पन्न हैं। इन्हीं की तरह तीनों बहिनों की स्थिति भी बहुत ऊँची थी। ये तीनों भी आपसे बड़ी ही थीं। उनके नाम क्रमशः परमेश्वरी देवी, इन्दो देवी और द्रौपदीदेवी थे इनमें द्रौपदीदेवी का शरीर अब इस धराधाम में नहीं हैं, किन्तु उनका परिवार खूब भरा पूरा है। इन द्रौपदीदेवी जी का जीवन बड़ा अलौकिक था। ध्यान-भजन में इनकी स्थिति बहुत ऊँची थी। इनके जन्मकाल में आपके माता-पिता को ऐसा स्वप्न हुआ था कि साक्षात् श्रीजानकीजी ने ही इनके रूपमें अवतार लिया है। श्रीमहाराजजी इनकी अनेकों विचित्र घटनायें स्वयं वर्णन किया करते हैं और यह भी कहते हैं कि इनकी स्थिति मुझसे बहुत ऊँची थी, ये साक्षात् शक्ति का ही अवतार थीं। आपके सबसे बड़े भाई सरदार इन्द्रसिंहजी की धर्मपत्नी भी अच्छी पढ़ी लिखी और व्यवहार तथा परमार्थ दृष्टि से उच्च-कोटि की महिला थी। उनका आध्यात्मिक ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था, वे गृहकार्य से अवकाश पाने पर निरन्तर भजन, ध्यान एवं स्वाध्याय में ही लगी रहती थीं। हमारे श्रीमहाराज जी कहा करते हैं कि मुझे बचपन में आपने और मास्टर साहब ने ही भजन-ध्यान में लगाया था। ये रात्रि के तीन बजे ही मुझे उठाकर ध्यान में बैठा देती थीं। इनके पुत्र सरदार हरवन्तसिंह भी बड़े सदाचारी और साधुसेवी सज्जन हैं। ये एम० ए० पास हैं और एक कालेज में प्रोफेसर हैं। अभी तीन चार वर्ष हुए इनके

एक युवा पुत्र की मृत्यु हो गई थी, किन्तु फिर भी इनका धैर्य अटल रहा। उस समय भी इनकी शान्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं देखा गया।

इस प्रकार यह सारा ही परिवार बहुत ऊँचा है। इसमें सभी लोग अच्छे पढ़े-लिखे, साधन-सम्पन्न, साधुसेवी और सदाचारी हैं। इनकी आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी है तथा सभी लोग नियमित व्यायामशील, स्वस्थ और दीर्घजीवी हैं। प्राय: दो सौ वर्ष से ये सिख सम्प्रदाय में दीक्षित हैं और अपने को क्षत्रिय बतलाते हैं, तथापि इनमें किसी प्रकार का साम्प्रदायिक पक्षपात नहीं है। सनातन-धर्मानुसारी कर्म और उपासना का भी ये खूब आदर करते हैं। गुरुओं में इनकी अटूट श्रद्धा है और उस श्रद्धा के कारण ही इनमें वंश परम्परागत योग सम्पत्ति पायी जाती है। सचमुच यह तो योगियों का ही कुल है। ऐसे योगियों के कुल में श्रीमहाराजजी जैसे महापुरुष का आविर्भाव होना सर्वथा उपयुक्त ही था।

जन्म और बाल्यावस्था

आपके पिता श्रीप्रतापसिंह जी गाँव में गरवाल में पटवारी थे और यहीं अपने परिवार सहित रहा करते थे। संवत् १९४० की बात है। वैशाख का महीना था। आपकी माता जी बाहर सोई हुई थीं, कि इन्हें दिव्य गम्भीर शब्द सुनाई दिया। उन्होंने सुना— 'मैंने तुम्हारे पुरखाओं को धनुष और पुस्तक दी थीं, अब मैं स्वयं तुम्हारे गर्भ से जन्म धारण करूँगा।' सुनते ही माता जी एकदम चौंककर जग उठीं और उनके नेत्र आकाश की ओर लग गये। अकस्मात् उस सुनसान रात्रि में उन्हें एक दिव्य तेज दिखायी दिया, जो धीरे-धीरे उन्हीं की ओर आ रहा था। देखकर वे बहुत घबराईं। इसी समय आकाशवाणी हुई, घबराओ मत, मैं तुम्हारी सब प्रकार रक्षा करूँगा। इससे उन्हें धैर्य बंधा, वह दिव्य चिन्मय प्रकाश एक मूर्त्तरूप में परिणत हो गया। उन्होंने देखा वे तो साक्षात् श्री रघुनाथ जी हैं। बस, देखते-देखते वह मूर्ति उनके हृदय में प्रवेश कर गयी और वे अचेत हो गयीं। ठीक उसी समय श्रीप्रतापसिंह जी को भी स्वप्नावस्था में ऐसा ही अनुभव हुआ। भगवदिच्छा से उसी समय माताजी ने आपको गर्भ में धारण किया।

उसी समय से माता जी के शरीर में एक अद्‌भुत तेज दिखायी देने लगा और उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। गर्भावस्था में जो तरह-तरह के विकार हुआ करते हैं, इस बार वे कुछ नहीं हुए। चित्त में दिनों-दिन उत्साह और आनन्द की वृद्धि होने लगी। आखिर संवत् १९४१ के फाल्गुन मास की शुक्ला १४ आयी। उस दिन ठीक सायंकाल में चन्द्रोदय के समय प्राय: ग्यारह मास गर्भ में रहकर एक अद्‌भुत बालक का जन्म हुआ। इस कुसुम-सुकुमार शिशु का दिव्य कलेवर कनककमनीय कान्ति से सुशोभित था। इसके सिर पर सुन्दर सुनहरे घुँघराले केश थे, जो ठीक बीच में माँग छोड़कर मानो कंघी से सँवारे हुए थे। इसके बिम्बाफल के समान अरुण अधरोष्ठ के ऊपर सुन्दर नुकीली नासिका शुकचञ्चु को लजानेवाली थी। ऐसे अलौकिक शिशु को प्राप्त करके माता-पिता तो धन्य हुए ही, अड़ोसी-पड़ोसी भी एक अद्भुत उल्लास में छक गये। जन्म के समय सभी को एक दिव्य गन्ध का अनुभव हुआ। ❋

बालक माता-पिता और भाई बहिनों की गोद में बड़े स्नेह से पलने लगा। सभी के नेत्र और चित्त इस नवजात शिशु पर लगे रहते थे। नामकरण-संस्कार होने पर ये ही हमारे दीवानसिंह जी हुए। धीरे-धीरे दीवानसिंह जी ने शैशव से बाल्यावस्था में प्रवेश किया। अब तक तो इनके रूप-लावण्य और शैशवसुलभ माधुर्य ने ही लोगों को आकर्षित किया हुआ था, किन्तु अब इनका सरल और संकोची स्वभाव भी सब को मुग्ध करने लगा। आप सारे परिवार के ही अत्यन्त लाडिले थे। माताजी को तो केवल दूध पिलाने के समय ही आपको गोद में लेने का अवसर मिलता था। आपके परिवार में साधु सेवा के प्रति तो स्वाभाविक रुचि थी ही, अत: समय-समय पर कोई

❋ श्रीमहाराजजी के जन्मकाल के आधार पर हमारे मित्र श्रीछविकृष्ण जी ने एक लग्न-कुण्डली बनायी है। फलित ज्योतिष के प्रेमियों के लिये यहाँ हम उसे उद्‌धृत करते हैं।

अथ विक्रमाब्दः १९४१ शकाब्दः १८०६ तत्र मासानां मासोत्तमे शुभे फाल्गुनमासे शुक्ले पक्षे शुभतिथौ चतुर्दश्यां शनिवासरान्वितायाँ १०। २५

मघाभे ४३ ।२ सुकर्मा योगे ४९ ।५२ दिनप्रमाणं २८ ।२९ रजनीमान ३१ । ३१अहर्निशं ६०। तत्र कुम्भार्कगतांशाः १८ भोग्यांशाः ११। तत्र श्रीमन्मार्तण्डमण्डलार्द्धोदयादिष्टम् ३०। २९। ३० तत्समये सिंहलग्नोदये जन्म।

संत आते ही रहते थे। गाँव में जो भी संत आते पहले इन्हीं के यहाँ भिक्षा करते थे। माता-पिता ने इन्हें सन्तों को प्रणामादि करने की शिक्षा दी। संतजन भी इनके रूप, लावण्य और सौशील्यादि गुणों को देखकर मुग्ध हो जाते थे। घर में सभी लोग भजन-ध्यान करने वाले थे। उनकी देखा-देखी तीन चार वर्ष की अवस्था से ही आप भी आसन लगा कर नेत्र मूँदे ध्यान करने की मुद्रा में बैठने लगे। बस, 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत चरितार्थ हो गयी। ये हजरत बैठते तो खेल-मात्र में ही ध्यान करने, किन्तु इन्हें बैठते ही समाधि हो जाती। फिर तो अनेक यत्न करने पर ही इन्हें चेतन होता। अन्य बालकों की तरह इनमें बालोचित चापल्य नाम को भी नहीं था। ध्यान-समाधि में बैठना ही इनका खेल था जब इनके मन में आता अड़ोस-पड़ोस के बालकों को लेकर ध्यान करने लगते। उस समय जो बालक साथ बैठते वे भी समाधिस्थ हो जाते। ऐसा जान पड़ता मानो सनकादिकों की ही मण्डली बैठी है। उस अवस्था में यदि कोई बालक इन्हें छू लेता तो वह भी तत्काल अचेत होकर पृथ्वी पर गिर जाता। यदि किसी व्यक्ति का चित्त भजन में न लगे वह इन्हें गोद में लेकर बैठता। बस, इसीसे उसका चित्त स्थिर हो जाता। सारे गाँव में यह बात प्रसिद्ध थी। सब लोग यही कहते थे कि यह तो सरदार साहब के घर में कोई महापुरुष प्रगट हुआ है। इस प्रकार स्वभाव से ही लोगों का आकर्षण इनकी ओर बढ़ने लगा। यदि कोई व्यक्ति सकाम भाव से कहीं जाता तो पहले इनके दर्शन करता। इससे प्राय: सर्वदा ही लोगोंकी कामनापूर्ति हो जाती थी।

यह पहले लिखा जा चुका है कि इनके पिताजी गाँव में गरवाल में पटवारी थे। यह गाँव होशियारपुर से प्राय: अठारह कोस दूर है। वहाँ रहकर बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध होना सम्भव नहीं था। अत: सरदारसिंह जी ने होशियारपुर के समीप प्रेमगढ़ में एक मकान लिया और वहाँ अपने परिवार को रखकर अपने बच्चों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया। आपके पुत्रों में सबसे बड़े इन्द्रसिंह और नगीनासिंह जी को तो पढ़ने-लिखने में विशेष रुचि नहीं हुई। अत: वे तो पैतृक गाँव गन्धवाल में रहकर खेतीका काम करने लगे। शेष पुत्रोंने अच्छी उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त की। दीवानसिंह जी की आरम्भिक और माध्यमिक शिक्षा होशियारपुर में ही हुई।

पढ़ने-लिखने में आपकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी। इनमें बालोचित चापल्य का उस समय भी अत्यन्त अभाव था। आप बड़े ही संकोची, लज्जाशील, मितभाषी, विनयी और समय का सदुपयोग करने वाले थे। किसी से भी आप कभी व्यर्थ बात नहीं करते थे। अपने कर्त्तव्य और वचन का पालन भी आप पूर्ण तत्परता से करते थे। आप जिस काम को अपने हाथों में लेते थे, वह छोटा हो या बड़ा, उसे पूर्णतया दत्तचित्त होकर करते थे और जिस समय पूर्ण करने का वचन दे देते थे उसे उसी समय पूरा कर देते थे। कभी-कभी तो कई दिनों का काम कुछ घंटों में ही कर डालते थे। आप सब लोगों की सब प्रकार की सेवा करने को तैयार रहते थे, किन्तु अपनी किसी से भी कोई सेवा नहीं कराते थे। कोई छोटा हो या बड़ा पहले स्वयं ही प्रणाम कर लेते थे। अप्ने माता-पिता तथा भाइयों के आप अत्यन्त अनुगत रहते थे और कभी उनके सामने जवाब नहीं देते थे। यह तो हमने इस समय भी प्रत्यक्ष देखा है कि अपने बड़े भाइयों के सामने आप मुँह खोलकर नहीं बोलते और न कभी उनसे आँख ही मिलाते हैं। सदा ही नीची दृष्टि रखते हैं। आपके भ्राता, सहपाठी तथा छोटे-बड़े सभी का कहना है कि हमने आपको क्रोध करते कभी नहीं देखा। बालब्रह्मचारी रहने और विवाह न करके साधु बनने का निश्चय तो आपको बचपन से ही था। यह बातें कभी-कभी प्रसंगवश अपने साथियों से कह भी देते थे।

होशियारपुर के रायबहादुर कुन्दनलाल जी एडवोकेट आपके समवयस्क और सहपाठी थे। वे आपके अध्ययनकाल की बड़ी विचित्र बातें सुनाया करते थे और आपके स्वभाव की प्रशंसा करते हुए कहा करते थे कि आपके अध्यापक भी आपको कोई होनहार महापुरुष मानते थे। एक दिन श्रीमहाराजजी ने इनसे सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना बतायी थी उससे अपने साथियों के प्रति आपकी गहरी सहानुभूति का परिचय मिलता है। परीक्षा के दिन थे, रात्रि में ये दोनों मित्र साथ-साथ पढ़ा करते थे। रात के ग्यारह बजने पर पाठ समाप्त होता तो दोनों मित्र अपने-अपने घर जाने को तैयार होते। दोनों के घरों में प्राय: एक मील की दूरी थी। चलते समय विचार करते कि हम तुम्हें पहुँचा आवें, तुम्हें डर लगेगा। बस, दोनों मित्र आपस में बात करते कुन्दनलाल जी के घर पहुँचते तो वे कहते, 'अब तुम अकेले कैसे

जाओगे ? चलो, हम थोड़ी दूर छोड़ आते हैं।' किन्तु फिर बात करते इन्हीं के घर पहुँच जाते। वहाँ फिर वही समस्या खड़ी होती। इस तरह एक दूसरे को पहुँचाने में ही सारी रात निकल जाती, अथवा दोनों मित्र एक ही जगह सो जाते।

अस्तु ! प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा होशियारपुर में पूरी कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये लाहौर के किसी कालेज में भर्ती हुए। वहाँ इन्टरमीडियेट पास कर मैडिकल कालेज में भर्ती हो गये। किन्तु आपको इस भौतिक शरीर का डाक्टर नहीं बनना था, आपने तो मानवमात्र की आध्यात्मिक चिकित्सा करके उससे भव-बन्धनकी मुक्तिके लिये ही इस धरा-धाम में अवतार लिया था। महामुनि शुकदेवजी की भाँति आप जन्म से ही विरक्त थे। खेल-कूदमें कभी आपकी रुचि नहीं हुई। बचपन में ही एकान्त सेवन और ध्यान-समाधि में ही प्रेम रहा। सद्गुरुदेव की प्राप्ति भी प्राय: चार वर्ष की अवस्था में ही हो गयी थी। इस प्रकार आरम्भ से ही विरक्ति की सारी सामिग्री जुट गयी थी। अत: आपकी डाक्टरी की शिक्षा पूरी न हो सकी, बीच में ही आपको उसे नमस्कार करना पड़ा। यह सब बातें आगे के प्रकरणों में लिखी जायँगी। उससे पहले आपके पूज्य श्रीगुरुदेव का परिचय दे देना परम आवश्यक है। अत: अगले प्रकरणों में उन्हीं की चर्चा की जाती है।

श्रीश्रीगुरुदेव

दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुः
स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारम्।
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरण ायुगे सद्गुरुः स्वीयशिष्ये:
स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वाऽलौकिकोऽपि॥ *

* इस त्रिलोकमण्डल में ज्ञानदाता सद्गुरु का कोई दृष्टान्त नहीं देखा गया। यदि पारस को उनके सदृश माना जाय, क्योंकि वह लोहे को सुवर्णत्व प्रदान करता है, तो भी ठीक नहीं, कारण कि वह उसे पारस तो नहीं बना पाता। किन्तु सद्गुरु तो अपने चरणों का आश्रय लेने पर शिष्य को अपना सादृश्य प्रदान करते हैं, इसलिये वे अनुपम और अलौकिक हैं।

श्रीशंकराचार्य

महापुरुषों के चरित्र-निर्माण में वास्तव में उनके गुरुओं का बहुत बड़ा हाथ रहा है। जिज्ञासु शिष्य को ज्ञान प्रदान करके ज्ञानदाता गुरु के आसन पर बिठा देना सद्गुरुदेव का ही काम है। ऐसी उदारता भला संसार में कहाँ मिलेगी।

हमारे चरितनायक के जीवन पर गुरुदेव श्रीसच्चिदानन्द स्वामी के अलौकिक चरित्र की अमिट छाप पड़ी है। समय-समय पर जब आप उनकी चर्चा करने लगते हैं, तो उनकी प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते। उनके प्रति आपकी अटूट श्रद्धा है। और यह श्रद्धा ही वह दिव्यगुण है जो शिष्य को अपने गुरुदेव की आध्यात्मिक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाती है।

श्रीगुरुदेव के विषय में मुझे विशेष बातें तो मालूम नहीं हैं तथापि कभी-कभी श्रीमहाराजजी के मुखसे जो कुछ सुना है वही संक्षेप से यहाँ लिखता हूँ। श्रीस्वामी जी महाराज पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ और अलौकिक योगसिद्धि सम्पन्न महापुरुष थे। इनके विषय में ऐसा प्रसिद्ध था कि ये जिसकी ओर दृष्टि भरकर देख देते हैं उसकी निर्विकल्प समाधि हो जाती है। बंगालके सुप्रसिद्ध परमहंसदेव श्रीरामकृष्ण की भाँति जिसको ये एक बार स्पर्श कर देते थे वही सर्वथा निष्पाप होकर समाधिस्थ हो जाता था, तथा उत्थानकाल में भी सर्वत्र ब्रह्मदर्शन करते हुए उन्मत्त सा रहता था। यहाँ तक कि कोई-कोई तो छः महीने तक अपनी प्राकृत अवस्था में नहीं आया।

कहते हैं, एक बार श्रीस्वामी जी बिचरते हुए पंजाबप्रान्त के किसी गाँव में पहुँचे और दोपहर को भिक्षा करने के लिए किसी भक्त के यहाँ गये। वहाँ कई माइयाँ एकत्रित थीं। पंजाब की माइयों को कुछ सत्संग का संस्कार तो रहता ही है। उन्होंने आपके चमत्कारों की बहुत-सी बातें सुनी हुई थीं। अतः उनमें से एक ने कहा, 'महाराजजी! सुना है, आप जिसको चाहें उसीको समाधि करा सकते हैं। हमारे गाँव में एक बुढ़िया माई है। वह पढ़ी-लिखी, साधन-सम्पन्न और साधुसेवी भी है। उसने आजीवन साधुसेवा की है और जिसने जो-जो साधन बताये हैं उन्हें करते-करते वह थक गयी है। तो भी उसे निर्विकल्प समाधि प्राप्त नहीं हुई। अब वह बेचारी बहुत निराश हो गयी है और किसी साधु या साधन में उसकी श्रद्धा नहीं रही है। हम सबने

उसके सत्संग से बड़ा लाभ उठाया है। इस लिये उसकी इस स्थिति में हमें भी बड़ा खेद है। कृपया आप अपना कुछ चमत्कार दिखाकर उसे फिर परमार्थ में लगा दें।' यह कहकर वे सब श्रीस्वामी जी के चरणों में गिरकर रोने लगीं।

श्रीस्वामी जी बड़े मनचले थे। वे एकदम हँसते हुए उन सबको गालियाँ देने लगे। और बोले, 'अच्छा, उसे हमारे पास बुला लाओ। तब उनमेंसे एक माई ने जाकर उस वृद्धा से कहा, 'चलो, एक बड़े सिद्ध महात्मा आये हैं, उनके दर्शन तो कर लो।'' वह क्रोध में भरकर बोली, 'जाओ मैंने ऐसे कितने ही सिद्धों के दर्शन किये कोई सिद्ध-विद्ध नहीं है सब ढोंगी हैं। मेरा तो इनसे पेट भर गया है। मैं तो अब आत्महत्या करने को बैठी हूँ।' जब उसने बहुत आग्रह किया तो वृद्धा रोने लगी, और बोली, 'तू यहाँ से चली जा मैं किसी साधु के दर्शन करने नहीं जाऊँगी।' वह बेचारी निराश होकर लौट आयी और सारा हाल श्रीस्वामीजी को सुना दिया। स्वामीजी ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल मुस्कराये और सत्संग की बातें करने लगे।

पीछे, वृद्धा के मन में कुछ पश्चात्ताप हुआ और उसने सोचा, 'चलो मरना तो है ही, महात्मा के दर्शन तो कर आऊँ।' किन्तु लज्जा के कारण वहाँ न जाकर वह रास्ते में बैठ गयी और आड़ में से श्रीस्वामीजी को देखेने लगी। इतने में एक माई ने उसे देख लिया और श्रीस्वामीजी से कहा, 'महाराज! देखिए, वह माई यह है।'

श्रीस्वामीजी ने एक दृष्टि भरकर उसकी ओर देखा और कहा, 'यह माई तो बड़ी अच्छी है।' बस, वह मूर्च्छित होकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी और उसे वहीं निर्विकल्प समाधि हो गयी। उसकी यह अवस्था देखकर सब माइयाँ इकट्ठी हो गयीं और उसे सचेत करने का प्रयत्न करने लगीं। किन्तु वह होश में न आयी। श्रीस्वामी जी उसे गालियाँ देते चल दिये, 'ले और देखेगी साधुओं की ओर और माइयों से कहा, इसे सँभालकर रखना और कह देना कि खबरदार! जो तू कभी हमारे पास आयी।' बुढ़िया तीन दिन तक उसी अवस्था में पड़ी रही। जब उसे होश हुआ तो वह 'श्रीस्वामी जी कहाँ हैं? मुझे उनके दर्शन कराओ। बिना उनके दर्शन किये मेरे प्राण निकल जायेंगे' इत्यादि प्रलाप करती रोने लगी। उसे जैसे तैसे थोड़ा दूध पिलाया

गया और वह फिर समाधिस्थ हो गयी। उसे जब व्युत्थान होता तो सब माइयाँ श्रीस्वामी जी के विरह में रोती हुई उसे कुछ खिलातीं और वह फिर समाधिस्थ हो जाती। वहाँ से जाने पर छः महीने तक श्रीस्वामी जी का कोई पता न चला। फिर मालूम हुआ कि वे होशियारपुर में हैं। तब कई माइयों के साथ बहुत-सा प्रसाद सिर पर रख वह पैदल ही होशियारपुर को चल पड़ी। इस प्रकार साठ वर्ष की जराजर्जरित अवस्था में प्रायः बीस मील तक बालकों की तरह उछलती-कूदती बड़े आनन्द से वह स्वामीजी के पास पहुँच गयी।

माई को देखते ही श्रीस्वामीजी क्रोध में भरकर गालियाँ देने लगे और बोले कि हमने तो मना कर दिया था, फिर तू हमारे पास क्यों आयी। जा, अभी उल्टे पाँव अपने घर को लौट जा, इसी में तेरी भलाई है। यह कहकर उन्होंने उसके प्रसाद की हाँडी भी बाहर फेंक दी। और उसे गाली निकालते डंडा लेकर आश्रम से बाहर निकाल आये। महापुरुषों की बड़ी अलौकिक लीला होती है। कभी-कभी अपनी असंगता और निरपेक्षता को सुरक्षित रखने और भक्तकी श्रद्धाओं को पुष्ट करने के लिये वे बड़ा अटपटा आचरण दिखलाते हैं। बेचारी बुढ़िया क्या करती ? निराश होकर उल्टी लौट गयी। उसके लिये तो उनके वचन श्रुतिवाकयों से भी बढ़कर थे। उनकी गालियाँ और फटकार उसे कृपा के भण्डार जान पड़ते थे। स्वामीजी का भी ऊपर से तो ऐसा कुटिलताका-सा बर्ताव था, किन्तु भीतर से उनकी सुरमुनिदुर्लभ कृपा ही थी। इस अद्‌भुत गुरुकृपा के विषयमें संत शिरोमणि चरणदास जी कहते हैं —

चरनदास सद्‌गुरुके तन मन दीजे वारि॥
जो गुरु झिड़कें लाख तो मुख नाहिं मोड़िये।
गुरु से नेह लगाय सबन सों तोड़िये॥
माता ते हरि सौगुने, तिनते सौ गुरुदेव।
प्यार करें औगुन हरे, चरणदास सुन लेव॥
काँचे भाँड़े सों रहै, ज्यों कुम्हार को नेह।
भीतरसों रक्षा करै, बाहर चोटें देय॥

बेचारी बुढ़िया अपना-सा मुँह लेकर घर लौट आयी। किन्तु उसकी प्रसादकी हाँडी क्या फूटी मानो जन्म-जन्मान्तरकी वासनाओं से भरी उसकी हृदय की चिच्जडग्रन्थि ही टूट गयी। वह कृत-कृत्य हो गयी, उसका सारा साधन समाप्त हो गया और हृदय में आनन्द का सागर हिलोरें लेने लगा। वह सदा के लिये आनन्द सागर की मानो मीन बन गयी। घर पहुँचते ही उसके होश-हवास कूच कर गये। वह भजनमें बैठते ही समाधिमग्न हो गयी। जब व्युत्थान हुआ तो श्रीसद्‌गुरुदेव की दया का अनुभव करके फूट-फूटकर रोने लगी। अब उसे यही धुन थी कि न जाने ऐसा अवसर कब होगा जब मैं श्रीसद्‌गुरु दयालु के दर्शन कर उनकी कुछ सेवा कर सकूँगी। धीरे-धीरे उसे कुछ सावधानी रहने लगी और एक महीना बीतने पर वह फिर बहुत सा सामान सिर पर रखकर पैदल ही होशियारपुर पहुँची।

किन्तु श्रीस्वामी जी की तो 'वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी थी।' उसने ज्योंही श्रीचरणों में प्रणाम किया और प्रसाद सामने रखा कि महाराज जी आग बबूला हो गये और अनेकों गालियाँ देते बड़े डाँटकर बोले, 'तू क्यों आयी? जा, अभी उल्टे पाँव लौट जा।' और उसका सारा प्रसाद उठाकर फेंक दिया। वाह रे मस्ताने! तेरे स्वरूप को कौन समझे? और समझे क्या, ऐसी बात तो जिसपर बीते वही जान सकता है। जाके पैर न फटे बिवाई। सो का जाने पीर पराई॥ यह प्रेमपन्थ बड़ा ही कठिन है। इसमें तो पथिक को 'पग-पगपर बरछी लगैं, स्वाँस-स्वाँस में तीर।' किसी प्रेममार्गके मर्मज्ञने कहा है—

प्रेम पन्थ अति ही कठिन सब सों निबहत नाहिं।
चढ़िके मौम तुरंग पर, चलिवो पावक माहिं॥

वाह रे बाँकेविहारी! तेरी बाँकी अदां! तू किस रूप में क्या-क्या खेल खेलता है, तू ही जाने। बेचारी बुढ़िया क्या करती? उसके लिये और रास्ता ही क्या था —

'मेरी आजुर्द; हालत पर उसे कब दया आती है।
समझ रखा है जालिमने फँसा दिल कब निकलता है॥'

बस, इस प्रेम-दलदल में धँसा सो फँसा। अनन्त जन्मों के पुण्यों से अथवा उस कृपासागर की अहैतुकी कृपा से कोई बिरला भाग्यवान् ही इस मार्गमें अग्रसर

होता है। हमारे जैसे अभागों का तो इसमें प्रवेश ही नहीं हो सकता। हाँ, उनकी अहैतुकी कृपाकी आशा अवश्य है, देखें कब कृपा होती है।

बूढ़ी माँ उल्टे पाँव घर को चली। मार्गमें वह पागलकी तरह मदोन्मत्त-सी होकर प्रेम-रस में छकी जा रही थी। उसकी आँखें बन्द हैं। वह जब मार्ग भूलती है तो उसका चित्तचोर, जो उसके साथ ही है, मानो उसे मार्ग दिखा देता है। इस प्रकार जैसे-तैसे घर पहुँची और वहाँ बैठते ही निर्विकल्प समाधि। उत्थान हुआ तो सर्वत्र ब्रह्मदर्शन अथवा सगुणस्वरूप श्रीगुरुदेव के दर्शन। बस, आनन्द की तरंग पर तरंग आ रही हैं। इस प्रकार वह निरन्तर भावसागरमें निमग्न रहने लगी। वह प्रतिमास इसी प्रकार प्रसाद लेकर जाती और दस-बीस गालियाँ खाकर उल्टे पाँव लौट आती। इस तरह बहुत दिनों तक स्वामी जी उसका तिरस्कार करते रहे। परन्तु अन्त में जय उसीकी हुई। इस बार वह ऐसा निश्चय करके चली कि अब वापिस नहीं लौटना है। हुआ भी वही। श्रीस्वामीजी ने अबकी बार उससे कुछ नहीं कहा। वरन् जाते ही उसे आश्रम में रहने के लिये एक स्थान दे दिया और सारे आश्रमकी सेवा कर भार उसे सोंपकर कहा, 'खबरदार, यहाँ ध्यान समाधि में मत बैठना। यदि ऐसा किया तो तुझे यहाँ से निकाल देंगे। हमारे यहाँ तो आश्रम की सेवा ही मुख्य है।'

बूढ़ी माँ निकाल दिये जाने के भय से दिन भर काम-काज में लगी रहती। वह भंडारा चेताकर सबके लिये भोजन बनाती, अतिथियोंका सत्कार करती और श्रीस्वामीजी को भोजन कराती। फिर बर्तन साफ करती, चौका लगाती और सायंकाल में पुनः रसोई तैयार करती। इस प्रकार सारे काम से निवृत होकर रात के बारह बजे सोती और दो बजे उठकर श्रीस्वामी जी को जल देती। कैसी कठोर तपस्या थी वह। दो बजे श्रीस्वामी जी घूमने के लिये जंगल में चले जाते तो वह वहीं ध्यानस्थ होकर बैठ जाती। किन्तु गुरुसेवा का अद्भुत प्रभाव था। इतने विक्षेप में भी उसे ध्यान में बैठते ही निर्विकल्पता प्राप्त हो जाती। प्रातःकाल श्रीस्वामीजी के जंगल से लौटने से पहले ही वह उठकर जल लिये तैयार रहती। फिर दिन भर वही कार्यक्रम रहता। इस प्रकार बहुत समय तक यह सेवाकार्य चलता रहा और इससे बूढ़ी माँ की एकाग्रता भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। कभी-कभी इतनी एकाग्रता बढ़ती कि श्रीस्वामीजीके लौटने तक उसे उत्थान ही न होता। तब उसे झकझोरकर सावधान करते। कभी तो

बहुत हिलाने-डुलाने पर भी उसे चेत नहीं होता था। आखिर, जब स्वामीजी ने देखा कि इसकी अवस्था बहुत बढ़ गयी है तो उसे सब काम-काज से मुक्त कर दिया और आश्रमवासियों से कह दिया कि सब लोग उसकी सेवा का ध्यान रखें। कभी-कभी तो स्वयं स्वामीजी भी उसका कोई काम कर देते थे और कभी उसके साथ विचित्र खेल भी करते थे।

एक दिन की बात है, बूढ़ी माँ गुसलखाने में कपड़े रखकर स्नान कर रही थी। स्वामी जी चुपचाप जाकर उसके कपड़े उठा लाये और उन्हें एक ओर रख दिया। जब बूढ़ी स्नान कर चुकी तो उसे वस्त्र दिखायी न दिये। वह पुकारने लगी, 'अरे राम! मेरे कपड़े कौन ले गया?' यह सुनकर श्रीस्वामीजी खूब हँसे और उसे गाली देते हुए बोले, 'तूने वहाँ वस्त्र रखे भी थे? या यों ही रोला मचा रही है। देख, रख तो यहाँ गयी है और ढूँढती वहाँ है।'

इस तरह हम देखते हैं कि श्रीस्वामी जी महाराज का चरित्र अनेकों विचित्रताओं से पूर्ण था। किन्तु एक चीज थी जो उनकी इन सारी विचित्रताओं में समान रूप से अनुस्यूत थी। वह थी उनकी अहैतुकी कृपा। श्रीसद्‌गुरुकृपा सर्वथा स्वतन्त्र है। वह किस पर किस समय किस रूपमें अवतरित होती है—इसका कोई नियम नहीं है। वह पात्रापात्रका भी विचार नहीं करती और उसकी प्राप्तिका कोई साधन भी नहीं है। कृपा ही साधन है और कृपा ही साध्य है बूढ़ी माँ पर तो इस कृपा की अनवरत वर्षा हुई। वह तो सब प्रकार उससे निहाल हो गयी और प्रारब्धशेष होने पर इस पार्थिव शरीरको छोड़कर सदा के लिये उस सद्‌गुरुकृपा में ही विलीन हो गयी। बुढ़िया के भाग्य की कहाँ तक सराहना करें। श्रीस्वामीजी स्वयं कहा करते थे कि जो अवस्था इस बुढ़िया को प्राप्त है, वह तो हमें भी नहीं मिली। उसकी आध्यात्मिक शक्ति इतनी बढ़ गयी थी कि उसे जो स्पर्श कर लेता था उसे भी समाधि-जैसी अवस्था प्राप्त हो आती थी। यह सब था केवल श्रीसद्‌गुरु कृपा का प्रभाव।

ऊपर की पंक्तियों से पाठकों को श्रीस्वामी जी के विलक्ष सामर्थ्य और प्रभाव का तो कुछ परिचय मिल गया होगा। अब आगे संक्षेप में उनके जीवन का कुछ विवरण प्रस्तुत है।

स्वामी श्रीसच्चिदानन्द जी गिरि का जन्म विहार प्रान्त में गया के आस-पास किसी स्थान में हुआ था। वे सम्भवतः कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। कहते हैं, उनमें जन्म से ही कुछ विलक्षण सिद्धियाँ पायी जाती थीं। उनके मुखसे जो बात निकल जाती थी वह तत्काल पूरी होती थी। वे जिसे स्पर्श कर देते थे उसे ही एक अलौकिक आनन्द का अनुभव होने लगता था। योग इनमें कुल परम्परागत था। जब ये तीन वर्ष के थे तभी इनकी दादी इन्हें प्रातःकाल चार बजे ही जगा देती थी और कहती कि बेटा! तुम इस संसार में सोने के लिये नहीं आये हो, उठो और भगवान्का भजन करो। इनकी माताजी भी मदालसाकी भाँति इन्हें बाल्यकाल से ही तत्त्वज्ञान में प्रवृत्त करती रहती थीं। इस प्रकार प्रातःकाल बहुत सबेरे उठकर भगवद्- भजन में बैठने का तो इन्हें आरम्भसे ही अभ्यास था और तत्त्वानुसन्धान की प्रवृत्ति भी इन्हें मातृस्तनों से ही प्राप्त हुई थी।

इनके गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द जी एक सिद्ध महात्मा थे। एक बार वे अवधूत दत्तात्रेय की तरह विचरते हुए इनके गाँव में पहुँचे। एक सिद्ध महापुरुष का आगमन सुनकर अनेकों नर-नारी उनके दर्शनों के लिये आये। उस समय इनकी अवस्था प्रायः दस साल की थी। वे अपनी दादी के साथ गये और ज्यों ही उनके चरणोंमें प्रणाम किया कि सदा के लिये उन्हें आत्म-समर्पण कर दिया। एक नन्हें-से बालक की ऐसी नम्रता देखकर महात्माजी प्रसन्न हो गये और बोले, 'बेटा, तू क्या चाहता है?' इन्होंने कहा, 'बाबा! मुझे भी अपना-सा बना लो।' महात्मा ने एक गहरी दृष्टिसे इनकी ओर देखा और कहा, 'बच्चा! तू तो मुझसे भी बढ़-चढ़कर होगा। तुझे तो जन्म से ही सिद्धि प्राप्त है।' ऐसा कहकर उन्होंने ज्योंही इनके सिर पर हाथ रखा कि ये समाधिस्थ हो गये। जब बहुत यत्न करने पर भी इन्हें व्युत्थान न हुआ तो श्रीस्वामजी ने इनकी दादी से कहा, 'तुम कोई चिन्ता मत करो, इसका परमकल्याण होगा और यह तुम्हारे कुल को भी पवित्र कर देगा। अब तुम घर चली जाओ। हम सावधान होनेपर इसे घर भेज देंगे।' दादीजी घर चली आयीं। इन्हें जब चेत हुआ तो ये गुरुचरणों से लिपट गये। महात्माजी ने इनसे घर जाने को कहा; परन्तु ये अब उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे। तब वे बोले, 'मैंने तुम्हारी दादी को वचन दिया है। यदि तुम नहीं जाओगे
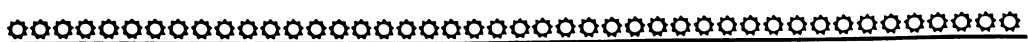
तो मेरा वाक्य झूँठा हो जायगा। इसलिये अब तो तुम जाओ। पीछे उनकी अनुमति लेकर हमारे पास आ जाना। मैं अमुक स्थानपर तुम्हें मिल जाऊँगा।' तब ये घर गये और किसी प्रकार घर वालों को प्रसन्न कर उनकी अनुमति ले सदा के लिये घर छोड़कर श्रीगुरुचरणों में उपस्थित हो गये।

गुरुदेव के साथ रहकर इन्होंने खूब अभ्यास किया। ये रात्रि को एक-दो बजे ही उठकर स्नानादि से निवृत हो गीले वस्त्रों से ही ध्यान में बैठ जाते थे। थोड़े ही दिनों में इन्हें छः घंटों की समाधि लगने लगी और धीरे-धीरे इनकी वृत्ति और भी गाढ़ हो गयी। प्रायः दो वर्ष में सद्‌गुरुकृपा से इन्हें भगवान् के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों का साक्षात्कार हो गया। जब स्वामीजी ने देखा कि इनकी अवस्था सब प्रकार परिपक्व हो गयी है तो इनसे कहा, 'अब तुम शास्त्राध्ययन करो बिना शास्त्र-ज्ञान के पूर्णता नहीं आती। महात्मा को ब्रह्मनिष्ठता के साथ श्रोत्रियत्व भी सम्पादन करना चाहिये।' वे बोले, 'भगवन्! शास्त्र का फल तो आपकी कृपा से प्राप्त हो गया। अब शास्त्र में वृथा माथापच्ची करने की क्या आवश्यकता है?' किन्तु स्वामीजी ने कहा, 'नहीं हमारी आज्ञा मानकर तुम खूब शास्त्राध्ययन करो।'

फिर इन्हें साथ लेकर वे काशी आये। यहाँ विश्वनाथजी के पास सरस्वती फाटक में श्रीगोविन्दानन्द कान्हानन्द का एक छोटा-सा मठ था। उसके महन्तजी छहों दर्शन के पूर्ण पण्डित थे। श्रीस्वामीजी ने इन्हें उनके पास छोड़ दिया। कहते हैं, इन्होंने निरन्तर बारह वर्ष वहीं रहकर खूब शास्त्राभ्यास किया। अध्ययनकाल में भी इन्हें अनेकों चमत्कार पूर्ण अनुभव हुए। उनमें से कुछ अनुभवों का उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है।

एक दिन ये रात्रि में मणिकर्णिका घाट पर स्नान करके ध्यान में बैठे थे कि एक महात्मा ने इन्हें जगाया और कुछ देर तक इनसे सत्संग की बातें कीं। जब वे चलने लगे तो ये विवश होकर उनके पीछे-पीछे हो लिये। उन्होंने हँसकर कहा, 'क्या हमारे आश्रमपर चलोगे?' ये बोले, 'हाँ' इस पर उन्होंने कहा, 'अच्छा चले आओ, डरना मत।' ऐसा कहकर वे गंगाजी में कूद पड़े और ये किनारे पर खड़े रह गये। महात्मा न जाने कहाँ चले गये—इसका इन्हें पश्चात्ताप भी हुआ, परन्तु उस समय उनका कोई पता न चला।

इसके कुछ दिनों बाद जब ये श्रीविश्वनाथजी के दर्शनों के लिये मन्दिर में गये तो कुछ दूसरे वेश में इन्हें फिर उन्हीं महात्माका दर्शन हुआ। किन्तु ये उन्हें पूर्णतया पहचान न सके। तब उन्होंने हँसकर कहा, 'वाह स्वामीजी! तुम उस दिन हमारे आश्रम में खूब गये। तुमने हमें अच्छा धोखा दिया।' तब इन्हें निश्चय हुआ कि ये वही महात्मा हैं। और उनसे प्रणाम करके कहा, 'अच्छा, महाराजजी! चलिये, आज मैं चलूँगा। कृपया यह तो बताइये आप हैं कौन?' तब उन्होंने बतलाया, मैं कपिल हूं, 'मेरा आश्रम पताल में हैं।' फिर उन्होंने कुछ सिद्धियों का वर दिया। गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक ही कहा—'जिमि सुख सम्पति बिनहि बुलाये। धर्मशील पहं-जाइं सुहाये॥'

एक समय की बात है कि ये छुट्टी के समय अपने एक सहपाठी के साथ गंगातट अस्सी की ओर गये। दोनों ही विरक्त थे। पैसा पास नहीं रखते थे और न कुछ सामान ही रखने का स्वभाव था। घूमते-घूमते रात हो गयी तो ये गंगा तट पर ही जंगल में एक सामान्य से शिवमन्दिर में पड़ गये। किन्तु इस समय दोनों ही को बड़े कड़ाके की भूख लगी हुई थी। इनके साथी ने कहा, 'तुम तो बड़े सिद्ध हो, सिद्धि के बल से कुछ खिलाओ तब जानें।' ये सुनकर हँस पड़े और बोले, भाई! यहाँ जंगल में क्या रखा है। इतने में लम्बी-लम्बी जटाओंवाले दो महात्मा इनकी ओर आते दिखायी दिये। उनके हाथ में एक दौना था। उसे इनके सामने रखकर उन्होंने प्रणाम किया और इन दोनों ने भी उन्हें प्रणाम किया। महात्माओं ने बड़े प्रेम से कहा, 'आप लोग यहाँ पधारे, इससे हमारा आश्रम पवित्र हो गया और हम भी कृतार्थ हुए।' ऐसा कहकर वे चले गये। उस दौने में केवल पाँच पेड़े थे उन्हें देखकर ये विचार में पड़ गये कि भूख तो खूब लगी है और पेड़े पाँच ही हैं। तथा एक-दूसरे से आग्रह करने लगे कि तुम ये पेड़े खा लो। इतने में मन्दिर के ऊपर से आवाज आयी कि चिन्ता मत करो। तुम दोनों पेट भर कर खालो, ये पेड़े समाप्त नहीं होगे। यह सुनकर ये चकित हो गये और जाना कि वे कोई सिद्ध पुरुष थे।

बस, दोनों मित्र एक-एक पेड़ा उठाकर खाने लगे और बराबर खाते रहे। इस प्रकार भर पेट पेड़े खाने पर भी दौने में पाँच पेड़े ज्यों के त्यों रहे। प्रात:काल

होने पर आश्रम में आये और वहाँ भी सैकड़ों-हजारों आदमियों को पेड़े बाँटे, किन्तु वे पाँच के पाँच ही रहे। अन्त में वह दौना श्रीगंगा जी में छोड़ दिया। इसी प्रकार आपको और भी कई बार सिद्ध महापुरुषों के दर्शन होते रहते थे। इसी बीच में आपको श्री विश्वनाथ जी और माँ अन्नपूर्णा के भी साक्षात् दर्शन हुए।

कभी-कभी ये स्वयं भी कुछ चमत्कार दिखा देते थे। यद्यपि स्वभावतः ये अपने को बहुत छिपाये रहते थे, तो भी कभी-कभी कोई विचित्र लीला हो ही जाती थी। इनके विद्यागुरु एक वृद्ध पण्डितजी थे। वे बड़े शान्त और सौम्य प्रकृति के सन्तोषी ब्राह्मण थे। उनकी कन्या विवाह के योग्य हो गयी थी, किन्तु धन का उनके पास सर्वथा अभाव था। एक सम्भ्रान्त कुल की कन्या का विवाह उस समय भी दो सौ से कम में होना सम्भव नहीं था। किन्तु पण्डितजी की आजीविका से तो किसी प्रकार कुटुम्बका भरण-पोषण ही हो पाता था। संग्रह के नाम पर उनके पास कुछ नहीं था। इसलिये वे बहुत चिन्तित रहते थे।

गुरुजी को विशेष चिन्ताग्रस्त देख एक दिन आपने उसका कारण पूछा। किन्तु एक विरक्त शिष्य से इस विषय में कुछ कहना उचित न समझ उन्होंने टाल दिया। अन्त में जब इन्होंने बहुत आग्रह किया तो पण्डितजी ने सब परिस्थिति बतला दी। बात सुनकर स्वामीजी हँस पड़े और बड़े विश्वास के साथ बोले, 'वाह महाराजजी! यह भी कोई चिन्ता की बात है? 'योऽसौ विश्वम्भरो देवः स भक्तान् किमुपेक्षते?' भगवान् स्वयं आपका काम करेंगे।' स्वामीजी इतना कहकर चले गये। किन्तु इससे ही पण्डितजी की चिन्ता कैसे शान्त हो सकती थी। देने के लिये तो स्वामी जी के पास फूटी कौड़ी भी नहीं थी। पढ़ते पाठशाला में, रहते मठ में और भोजन करते माधुकरी भिक्षा करके। किन्तु इनमें कुछ जन्मजात सिद्धियाँ तो थी हीं। कुछ लोग इनमें बहुत श्रद्धा भी रखते थे। ऐसी ही श्रद्धालु एक बुढ़िया माई थी। वह बहुत धनाढ्य थी, भजन-साधन में भी उसकी अच्छी अभिरुचि थी तथा महात्माओं के सत्संग से उसे वेदान्त के संस्कार पड़ चुके थे। किन्तु अभी तक उसे आत्म-साक्षात्कार नहीं हुआ था। इसके लिये वह लालायित भी बहुत रहती थी। ये महाशय मन-चले

तो थे ही, कभी-कभी यह कहकर कि 'अच्छा, आज हमें अमुक चीज खिलाओ तो तुम्हें साक्षात्कार करा देंगे', उसे चिढ़ाया करते थे। इनकी ऐसी छेड़-छाड़ बहुत दिनों से चल रही थी। वह इन पर हार्दिक श्रद्धा और प्रगाढ़ वात्सल्य-प्रेम रखती थी। उसकी याद आते ही ये मन ही मन हँसने लगे कि चलो, यह काम वहीं बनेगा।

बस, ये सीधे बूढ़ी माँ के पास जाकर बोले, 'माँ! यदि मैं तुझे आत्मसाक्षात्कार करा दूँ तो तू मुझे क्या देगी?' बुढ़िया ने समझा ये तो मुझे यों ही चिढ़ाया करते हैं, झुँझलाकर बोली, 'तुझे जो कुछ खाना हो खा ले मुझे क्यों तंग करता है?' किन्तु जब इन्होंने उसकी शपथ करके कहा तो उसे विश्वास हुआ और वह बोली, 'आत्मसाक्षात्कार के आगे तो त्रिलोकी की सम्पत्ति भी तुच्छ है, मैं तुझे यह सारी सम्पत्ति और घर-बार सौंपती हूँ।' स्वामीजी बोले, 'हमें तेरी सारी सम्पत्ति लेकर क्या करना है, तू ठीक-ठीक बता हमें कितने रुपये देगी?' बुढ़िया ने समझा यह तो नित्य की तरह ठट्टा करता है, रुपये तो इसने कभी नहीं माँगे और न यह पैसा पास रखता ही है। अतः वह चिढ़कर बोलीं, 'अच्छा, तुम्हें रुपये लेने हैं तो थोड़ी देर ठहर, मैं अभी लाती हूँ; देख, भाग मत जाना।' ऐसा कहकर वह भीतर गयी और एक हजार रुपये की थैली उठा लायी। उसे सामने रखकर बोली, 'लो बेटा! इसके साथ ही मैं तुम्हें आत्म-समर्पण भी करती हूँ।'

इन्होंने थैली में से गिनकर दो सौ रुपये निकाले और उन्हें लेकर भगे तथा बुढ़िया को अंगूठा दिखाकर बोले 'ले करले, आत्मसाक्षात्कार!' इस पर बुढ़िया लाठी लेकर इनके पीछे झपटी और देहली की ठोकर खाकर ज्यों ही गिरी कि निर्विकल्प समाधि में स्थित हो गयी। घरवालों ने देखा तो उन्हें यह एकदम अचेत मिली।

ये हजरत तो दो सौ रुपये लेकर एक-दो-तीन हुए और रात्रि को पण्डित जी के घर जाकर चुपचाप उनके बिस्तरे के नीचे रख आये। प्रातःकाल पण्डितजी ने जब बिस्तरा झाड़ा तो उसमें से रुपये निकले। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे भगवान् को धन्यवाद देने लगे। फिर विद्यार्थियों को बुलाकर पूछा तो सबने साफ इन्कार कर दिया। जब स्वामी जी पढ़ने के लिये आये तो इनसे भी चर्चा की। आप बड़ी गम्भीरता से बोले, 'इसमें आश्चर्य की क्या बात है? भगवान् की लीला अचिंत्य है। उन्होंने

आपको चिन्तित जानकर कहीं से भेज दिये हैं।' पण्डितज़ी ने बार-बार भगवान् को धन्यवाद दिया और आनन्द से कन्या का विवाह कर दिया।

दूसरे दिन जब स्वामी जी भिक्षा के समय बुढ़िया के घर गये तो उसे उसी तरह समाधिस्थ पाया। तब उन्होंने अपनी संकल्पशक्तिसे उसे सचेत किया। बुढ़िया ने अपने संत सद्‌गुरुदेव को सामने देख साष्टांग प्रणाम किया और सदा के लिये आत्मसमर्पण कर दिया। आप हँसकर बोले, 'वाह री माँ! मुझे तो भूख लगी है, तू यह क्या स्वांग रच रही है?' वृद्धा ने कहा, 'अब आप मुझसे छिप नहीं सकते, अब तो पकड़े गये।' इन्होंने उसे बहुतेरा बहकाया, परन्तु उसने न माना। तब आप बड़ी गम्भीरता से बोले, 'देखो, सावधान! यह बात किसी से कहना नहीं, नहीं तो मुझे पढ़ना छोड़कर काशी से भागना पड़ेगा।' बूढ़ी ने कहा, 'मैं किसी से नहीं कहूँगी।' इस प्रकार वृद्धा सदा के लिये कृतकृत्य हो गयी और उसने अपनी सारी सम्पत्ति भी गरीबों को बाँट दी।

आपके विद्यार्थी-जीवन की ऐसी ही एक घटना और भी है। इनके दूसरे अध्यापक बड़े विद्वान्, साधन सम्पन्न और वेदान्त में रुचि रखने वाले थे। किन्तु जन्म भर साधन करते रहने पर भी उन्हें आत्मसाक्षात्कार नहीं हुआ था। आखिर, निराश होकर वे साधन छोड़ बैठे थे। वे कभी-कभी इनके साथ जंगल में घूमने के लिये जाया करते थे। एक दिन इन्होंने जंगल में पहुँचने पर उनसे कहा, 'आइये पण्डित जी आज कुछ देर अभ्यास में बैठें।' यह सुनकर पण्डित जी रो पड़े और बोले, 'बस भाई! मेरा अभ्यास तो अब चिता में ही होगा।' स्वामी जी ने कहा, 'नहीं, पण्डितजी! निराश कभी नहीं होना चाहिये, भगवान् वाञ्छाकल्पतरु हैं, वे चाहें तो एक क्षण में निहाल कर दें। राजा खट्वांग को तो ढाई घड़ी में ही आत्मसाक्षात्कार हो गया था और महाराज जनक को तो एक क्षण में ही उस परमपद की प्राप्ति हो गयी थी।' इस प्रकार बहुत आग्रह करके आपने पण्डितजी को बिठाया और एक ओर आप भी बैठ गये। किन्तु आज तो पण्डितजी को दूसरे ही प्रकार का अनुभव हुआ। उनकी वृत्ति एकदम चढ़ गयी, मानो किसी दिव्य-शक्ति ने उनकी कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर दिया हो और वह सहसा सब चक्रों का भेदन करती दशम द्वार तक पहुँच गयी

हो। इस प्रकार पण्डितजी को अकस्मात् निर्विकल्प समाधि हो गयी। इस स्थिति में तीन घंटे बीतने पर श्रीस्वामी जी ने ही अपने संकल्प से उन्हें व्युत्थान कराया। सावधान होने पर वे स्वामीजी के चरण पकड़कर खूब रोये और उन्होंने अश्रु जल से ही अपने संतसद्गुरु के चरण पखारे। किन्तु स्वामी जी एकदम चकित से होकर पीछे हट गये और बोले, 'पण्डितजी! मैं तो आपका शिष्य हूँ, आप मुझे अपराधी क्यों बनाते हैं।' पण्डितजी ने कहा, 'स्वामी जी!' अब आप मुझसे छिप नहीं सकते। मैंने आपको अच्छी तरह पहचान लिया। आपने प्रत्यक्ष दिव्य रूप से मेरे अन्तःकरण में प्रवेश करके मेरी अधोमुखी कुण्डलिनी शक्ति को जगाया और सम्पूर्ण चक्रों का भेदन कराकर उसे दशम द्वार तक पहुँचाया है। आप तो भस्म से ढके हुए अंगारे की तरह छिपे हुए जन्म-सिद्ध हैं। विद्याध्ययनादि तो आपकी लीलामात्र है।' जब स्वामी जी ने देखा कि पकड़े गये तो आपने गम्भीरता से गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'अच्छा, कृपा करके यह बात किसी से कहें नहीं अन्यथा मेरा विद्याभ्यास और काशीवास छूट जायगा।' पण्डितजी ने प्रतिज्ञा की कि मैं किसी से नहीं कहूँगा। इससे कुछ दिनों बाद उन्होंने सन्यास ले लिया और निरन्तर अभ्यास करते हुए जीवन्मुक्ति का आनन्द लूटने लगे।

इस प्रकार प्रायः बारह वर्ष तक व्याकरण, न्याय और वेदान्त आदि शास्त्रों का खूब अध्ययन कर आप अवधूतवृत्ति से विचरने लगे। आप केवल एक चादर और कौपीन ही रखते थे। शीतकाल में भी रात्रि को एक या दो बजे किसी नदी या ताल में स्नान कर चादर तो सुखा देते थे और भीगी, कौपीन पहिने ध्यान में बैठ जाते थे। इस तरह ठीक मध्याह्न तक बैठे रहते, फिर माधूकरी वृत्ति से भिक्षा लेकर जहाँ मिलती वहीं खड़े-खड़े खा लेते और फिर जंगल में जाकर कुछ देर विश्राम करके पुनः ध्यानस्थ हो जाते। इस प्रकार प्रायः बारह वर्ष तक असंगभाव से विचरते हुए आपने खूब अभ्यास किया और अन्त में होशियारपुर आकर रहने लगे।

आप जिस काम में लगते थे, उसी में अपने को पूरा-पूरा लगा देते थे। काशी में अध्ययन करते समय आप मठ की सब प्रकार की सेवा करते थे। वहाँ लंगर चलता था। उसमें बड़े-बड़े बर्तन मांजना, जल भरना, चौका लगाना, झाड़ू देना इत्यादि सभी कामों में आप हाथ बँटाते थे। आपको सफाई बहुत पसन्द थी। होशियारपुर आश्रम

में रहने वालों से आप कहा करते थे, 'सफाई ही खुदाई है, तुम जितनी आश्रम की सफाई रखोगे उतना ही तुम्हारा अन्त:करण शुद्ध होगा। हमें तो जो कुछ मिला है; सफाई में ही मिला है।' सेवाधर्म के कारण आपका तेज बहुत बढ़ा-चढ़ा था। जिस पर आपकी दृष्टि पड़ी वही एक नजर से घायल हो गया। आपको हर किसी का साधु होना पसन्द नहीं था। आप कहा करते थे कि साधु होना तो एकदम संसार से मरना है। आप बाल ब्रह्मचारी और सच्चे व्यायामशील थे। अत: आपका शरीर सर्वांग-सुन्दर, सुगठित और स्वस्थ था। आपको जीवन में कभी कोई रोग नहीं हुआ। किन्तु दैव बड़ा प्रबल है, प्रारब्ध तो सभी को भोगना पड़ता है। इस प्रारब्ध की प्रेरणा ही वृद्धावस्था में आपकी गरदन के पीछे एक फोड़ा हुआ और परमहंस रामकृष्ण की भाँति वही आपकी इहलीला संवरण का कारण हुआ।

आपका यह फोड़ा बहुत दिनों रहा, किन्तु उससे महान् कष्ट होने पर भी आपकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। बड़े-बड़े डाक्टरों का इलाज हुआ। वे लोग आपसे बैठने और बोलने के लिये मना करते थे; किन्तु जब कोई योग्य अधिकारी आता तो आप उठकर बैठ ही जाते और उसे यथोचित उपदेश भी करते थे। कभी-कभी आप घण्टों निर्विकल्प समाधि में बैठे रहते। उसी हालत में डाक्टर लोग आपके फोड़े की सफाई और मरहम-पट्टी भी कर देते थे। आपको इसका कुछ पता भी न लगता था। जब समाधि टूटती और भक्तजन आपको अनुनय विनय करके लेटाते तो आपको फोड़े की याद आती। उस समय कभी-कभी आप बालककी तरह रो भी देते थे। एक दिन एक भक्त ने पूछा, 'महाराजजी! आपको यह फोड़ा क्यों हुआ?' तब आप बोले, 'भाई, प्रारब्ध का भोग है, कुछ मेरा प्रारब्ध है और कुछ उन शरणागत भक्तों का, जिन्हें मैंने दृष्टिमात्र से समाधि प्राप्त करा दी है। आखिर उनके समाधि के प्रतिबन्धक कर्म का भोग भी किसी को करना ही पड़ता। वह सब इकट्ठा होकर ही यह फोड़ा बना है। सो यह शरीर भोगकर शान्त कर देगा। मैं तो प्रत्येक अवस्था का साक्षी ही हूँ। सुख भी आता है और दु:ख भी, किन्तु मेरा उनसे क्या सम्बन्ध? मैं तो उन्हें प्रकाशित करने वाला ही हूँ।'
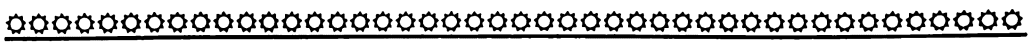
आखिर, उसी फोड़े के द्वारा आपकी शरीर यात्रा समाप्त हुई। कहते हैं, महाप्रस्थान के दो घण्टे पहले आप उठकर सीधे बैठे और समाधिस्थ हो गये थे। उससे पहले आपने कह दिया था कि 'अब हम उठेंगे नहीं। चौबीस घंटे बीतने पर इसी आश्रम में इस शरीर को समाधि दे देना।' बस ऐसा ही हुआ। जब चौबीस घण्टे बीतने पर भी व्युत्थान न हुआ तो भक्तों ने निराश होकर आपका अन्तिम संस्कार कर आपके पुण्य शरीर को आश्रम में समाधिस्थ कर दिया। पीछे वहाँ एक समाधि-मन्दिर भी बना दिया गया। यह सच्चिदानन्द-आश्रम आज भी भक्तजनों को आपकी पुण्य-स्मृति कराता है। आज भी उसमें लंगर, सत्संग, साधुसेवा और भजन-कीर्तनादि की व्यवस्था है तथा भावुक भक्तों को भावना द्वारा आज भी श्री महाराजजी के दर्शन होते हैं। यद्यपि उस शरीर से तो आप समाधिस्थ हैं, तथापि अपने ही दिव्य गुणों की प्रतिमूर्ति अपने परम प्रिय शिष्य श्रीहरिबाबाजी के रूप में आज भी जीवों का उद्धार कर रहे हैं।

श्रीगुरुचरणों में

पूर्व प्रसंग में संक्षेप में श्रीगुरुदेव का परिचय दिया गया। किन्तु शिष्य तो गुरु का ही प्रतिनिधि होता है। पुत्र के रूप में जिस प्रकार पिता का आत्मा ही प्रादूर्भूत होता है 'आत्मा वै जायते पुत्रः' उसी प्रकार गुरुदेव की अपनी सारी आध्यात्मिक सम्पत्ति एक सच्छिष्य में अवतरित हो जाती है। यह बात अन्यत्र कहीं देखने में आती हो अथवा न आती हो, हमारे श्री महाराजजी में सोलहों आने घटती है। आपके शरीर, स्वभाव, व्यवहार सभी में श्रीगुरुदेव के सद्गुणों का सांगोपांग अवतरण हुआ है।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि प्रायः बारह वर्ष असंग-रूप से स्वच्छन्द बिचरने के बाद श्रीस्वामी जी महाराज होशियारपुर में आकर रहने लगे थे। पुष्प जब खिल जाता है तो उसकी सुगन्ध स्वतः ही आस-पास फैल जाती है। अतः आपके तेज, त्याग और सिद्धियों की धूम सब ओर फैलने लगी। आपकी ख्याति सुनकर इनके माता-पिता और बड़े भाई भी इन्हें साथ लेकर होशियारपुर आये। इस समय आपकी अवस्था लगभग चार साल की थी। पिताजी के कहने पर आपने प्रणाम किया और इस प्रथम प्रणाम के साथ ही सदा के लिये आप सद्गुरु के शरणापन्न हो

गये। प्रणाम करके ज्योंही आप बैठे कि गाढ़ समाधि में डूब गये। एक बालक की ऐसी विचित्र स्थिति देखकर गुरुदेव आपकी ओर एकटक दृष्टि से देखते ही रह गये। जब बहुत देर हो गयी तो स्वामी जी ने चकित होकर इन्हें गोद में उठा लिया। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया और नेत्रों में आनन्द के आँसू छलक आये। तथा इनके सिर पर हाथ रखकर आपने गद्‌गद् कण्ठ से आशीर्वाद दिया कि बेटा! चिरंजीवी होकर हमारी चिरकालीन वासना की पूर्ति करो, श्रीहरि तुम्हारा कल्याण करें। फिर सबसे कहा कि यह बालक बड़ा होनहार है।

इस प्रकार प्रथम मिलन के पश्चात् फिर तो यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। आप जब आश्रम में जाते बड़ी तत्परता से वहाँ की सेवा में लग जाते थे। घरवाले कई बार घर चलने को कहते तब भी आपका मन आश्रम छोड़ने को नहीं होता था। देखा-देखी कभी ध्यान में बैठ जाते तो बैठते ही समाधिस्थ हो जाते थे। घर में तो सबके प्रिय थे ही गुरुजी भी आप पर अत्यन्त स्नेह रखते थे। जब तक होशियारपुर में अध्ययन चला तब तक तो प्राय: नित्य ही आश्रम में जाना होता था। पीछे जब मैडिकल कालेज लाहौर में भर्ती हो गये तब भी छुट्टियाँ होने पर आप घर न जाकर सीधे आश्रम में ही आते थे। गुरुजी महाराज आपको देखते ही प्रसन्न हो जाते थे।

श्रीशुकदेव जी की भाँति आपको जन्म से ही उत्कट वैराग्य था। घन्टों एकान्त में अकेले पड़े रहते थे तथा कभी किसी से व्यर्थ बात नहीं करते थे। आपका जो स्वभाव बाल्यावस्था में था वही वृद्ध होने पर भी है। बल्कि वैराग्य तो उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है। अन्य लोगों को वैराग्य का जोश प्राय: थोड़े ही दिन रहता है। फिर जहाँ ख्याति हुई कि वैराग्य समाप्त हुआ। जहाँ चार आदमी आदर की दृष्टि से देखने लगे कि आरामतलबी में आ गये। किन्तु आपकी तो जैसे-जैसे अवस्था बढ़ी है, वैसे-वैसे ही वैराग्य भी बढ़ता गया है। जैसे-जैसे प्रसिद्धि बढ़ी है वैसे-वैसे उपरति भी बढ़ती गयी है। यों तो निरन्तर हजारों आदमियों के प्रत्येक वर्ष एकबार तो ऐसा वैराग्य का भूत सवार होता है कि अपनी जान पर खेल जाते हैं। आपको खान-पान तथा कपड़े का शौक कभी नहीं रहा। आपका भोजन अत्यन्त सात्त्विक होता है। नमक, मिर्च,

मसाला बहुत कम तथा खटाई बिलकुल नहीं खाते। मीठा भी विशेष पसन्द नहीं था। स्नान करने का आपको बहुत शौक है। दिन में दो बार का स्नान तो निश्चित ही है, किन्तु कभी-कभी तो शीतकाल में भी तीन चार बार स्नान हो जाता है। यदि कोई नदी या जलाशय मिल जाता है तो खूब तैरते हैं। टहलने का भी आपको बड़ा शौक है। नित्यप्रति दोनों समय प्रायः चार-पाँच मील तो अवश्य टहल लेते हैं, विशेष अवकाश मिलने पर आठ-दस मील भी हो आते हैं। आसन तथा सूर्यनमस्कारादि व्यायाम आप दोनों समय निश्चित समय पर करते हैं तथा स्नान से पहले थोड़ा सरसों का तेल भी अवश्य मलते हैं। मल-मूत्र विसर्जन आप सर्वदा रास्ते से दूर एकान्त में ही करते हैं; रास्ते में तो थूकना भी बड़ा अपराध मानते हैं। रास्ते में चलते समय आप कभी दायें-बायें या पीछे नहीं देखते, निरन्तर नासिकाग्र दृष्टि ही रखते हैं। बैठने, चलने, पढ़ने तथा कीर्तन करने के समय आप कभी झुकते नहीं हैं, मेरुदण्डको सर्वदा सीधा ही रखते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवतगीता में कहा है —

'समं कायशिरोग्रीवं धारायन्नचलं स्थिरम्।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकनय्॥'

आलस्य तो आपको छू नहीं गया है। काम करते-करते यदि कभी आलस्य मालूम होता है तो आप खड़े हो जाते हैं, अथवा टहलने लगते हैं। खड़े होने पर भी आलस्य जान पड़ता है तो केवल पंजों पर खड़े हो जाते हैं। आप कहा करते हैं— 'आलस्यो हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।'* उसका कारण आप अधिक भोजन बताया करते हैं। कभी-कभी आप यहाँ तक कह देते हैं कि भाई, गोवध भी इतना बड़ा पाप नहीं है जितना कि एक ग्रास अधिक भोजन करना। इससे पाठक समझ सकते हैं कि आपको अधिक भोजन से कितनी घृणा है। सामूहिक भण्डारों के भी आप बिलकुल विरुद्ध हैं। जब कभी बाँध वृन्दावन या शिवपुरी आदि के उत्सवों में अधिक लोग एकत्रित होते हैं तब भी आप तो यही कहा करते हैं कि ऐसा भोजन हो जिससे सत्संगादि में बाधा न पड़े। आपको स्वाध्याय से भी अत्यन्त प्रेम है। जब

---

* आलस्य तो मनुष्यों का शरीर में रहने वाला बड़ा भारी शत्रु है।

किसी ग्रन्थ का स्वाध्याय करते हैं तो उससे प्रत्येक वाक्य का बड़ी बारीकी से विचार करते हैं, तथा जितनी भी टीका या व्याख्याएँ प्राप्त होती हैं सभी को देखते हैं। महापुरुषों के चरित्र भी आपको बहुत प्रिय हैं। आप सत्संग में स्वयं प्रायः महापुरुषों के जीवन-चरित्रों की कथा कहा करते हैं और कथा कहने से पहले अपने कई बार विचारे हुए ग्रन्थ को भी एकबार अवश्य विचार लेते हैं। आप कहा करते हैं कि चाहे कितनी वारका विचार हुआ ग्रन्थ हो तो भी समुदाय में कथा कहने से पहले उसे एकबार अवश्य विचार लो और कभी कोई ऐसा शब्द मुँह से मत निकालो जिसे तुमने पहले विचार न लिया हो। तुम्हारा भाषण सर्वदा आवश्यक परिमित, मधुर और सत्ययुक्त होना चाहिये।

ये सब गुण न्यूनाधिक रूप में बचपन से आप में पाये जाते थे। ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न बालक में माता-पिता का अत्यन्त स्नेह होना स्वाभाविक ही था। माता-पिता चाहे कितने ही बड़े सत्संगी और साधुसेवी हों, अपने पुत्र को सांसारिक सुखों से विमुख देखना उन्हें अभीष्ट नहीं होता। ये मर्यादा-पालन में बड़े कुशल थे। अपने से बड़े, छोटे और बराबर वाले सभी के साथ यथोचित बर्ताव करते थे। माता, पिता तथा भाई-बहिनों की खूब सेवा करते और उनका संकोच भी बहुत मानते थे। परन्तु इनके भीतर तो वैराग्य की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही थी। इसलिये मित्रों के साथ विशेष बातचीत और आमोद-प्रमोद से सर्वदा उदासीन ही रहते थे। आपकी इस शान्त, गम्भीर और उपरामतायुक्त मुद्रा से सभी स्वजन सशंक रहने लगे। किन्तु स्नेहवश कुछ कह नहीं सकते थे। अन्त में उन्होंने आपस में सलाह करके आपका विवाह करना निश्चित किया और एक सम्बन्ध भी ठीक कर लिया। किन्तु यह सुनकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ और इन्होंने साफ कह दिया कि मैं विवाह कदापि नहीं करूँगा। यदि मुझे अधिक दबाया जायगा तो मैं अभी घर से चला जाऊँगा। यह सुनकर इनके माता-पिता बहुत हताश हुए।

एकबार इनकी माता ने बहुत साहस करके इनसे एकान्त में कहा, 'क्यों बेटा! तू मेरी एक बात मानेगा?' ये बोले, 'मानूँगा, किन्तु एक बात छोड़कर।' माँ ने कहा,
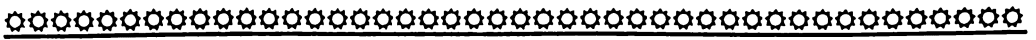
'क्या तू विवाह नहीं करेगा?' इस पर इन्होंने माताजी को बहुत समझाया और साफ-साफ कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूँगा। तब माताजी ने रोकर इनके पैर पकड़ लिये। उनके ऐसा करने से ये एकदम आवेश में आ गये और मेघ की तरह कड़ककर बोले, 'तुम मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारे घर में रहने के लिए नहीं आया हूँ। क्या तुम लोग भूल गये। लाओ, मेरा धनुष बाण और पुस्तक। मैं तो वही साधु हूँ, केवल तुम्हारे प्रेम में बँधकर तुम्हारे घर आ गया हूँ। मुझे संसार में बहुत काम करना है। तुम विवाह करके मुझे गृहस्थी बनाना चाहते हो खबरदार! फिर कभी मुझसे किसी ने यह बात कही तो मेरे प्राण निकल जायेंगे।' ऐसा कहकर आप धड़ाम से पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित हो गये। माताजी तो यह देखकर घबरा गयीं। इतने ही में घर के और लोग भी आ गये। सबने जैसे-तैसे इन्हें सावधान किया। इसके पश्चात् फिर किसी ने भी इनसे विवाह के लिए आग्रह नहीं किया।

इस समय आप मैडिकल कालेज लाहौर में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। वहाँ का कोर्स समाप्त होने में केवल एक वर्ष रह गया था। किन्तु इन्हें डाक्टर बनना तो था नहीं, इसलिये डिग्री की कोई परवाह न कर इन्होंने पढ़ाई छोड़ दी और वे होशियारपुर आश्रम में चले आये। अब आप निरन्तर वहीं रहने लगे। घर जाना बिलकुल छोड़ दिया। गुरुदेव के चरणों में आपने कई बार प्रार्थना की कि मुझे संन्यास-दीक्षा दे दी जाय, किन्तु उन्होंने साफ इनकार कर दिया और कहा कि हम किसी को साधु नहीं बनाते। साधु बनकर तुम मुफ्त की रोटियाँ खाकर आलसी बन जाओगे और परम स्वतन्त्र हो जाओगे। इससे साधन से भ्रष्ट हो जाने से तुम्हारा पतन ही होगा। इसलिये अभी तो हमारी सन्निधि में रहकर सेवा करो। जब समय आयेगा तो तुम स्वयं ही साधु बन जाओगे। वैराग्य की उत्कट अवस्था आने पर कोई साधु बने बिना रह ही नहीं सकता। साधु तो स्वयं ही बनता है, उसे बनाना नहीं पड़ता।

इस प्रकार श्रीमहाराज जी की आज्ञा पाकर आप आश्रम की सब प्रकार की सेवा करने लगे। आप रात को बारह बजे सोते और ठीक दो बजे उठकर श्रीस्वामी जी को जल देते। तब वे बाहर चले जाते और आप शौचादि से निवृत्त हो ध्यान में बैठ जाते थे। प्रातःकाल प्रायः ८ बजे श्रीस्वामीजी लौटते थे। आप इसके दो घण्टे

पहले ही उठकर सब आश्रम को झाड़-बुहार कर बरतन साफ करते और कुएँ पर ढेकुरी चला कर गुसलखानेकी टंकी में जल भरते तथा वृक्षों को सींचते। स्वामीजी के आने पर आप उन्हें स्नान कराते, उनके वस्त्र धोते और बाजार जाकर वहाँ से स्वयं ही शाक आदि बहुत सा सामान ढोकर लाते। दोपहर में श्रीस्वामीजी को भिक्षा कराते, उनकी शय्या सँवारते और जब वे विश्राम करते तो उनका पंखा झलते। जब उनकी आँखें खुलतीं और वे आज्ञा देते तब स्वयं भोजन करते दिन में आप कभी नहीं सोते थे। आप कहा करते हैं—

'वृथालापं दिवास्वापं त्यजेच्च परनारिवत्'

अर्थात् 'बृथा बातचीत और दिन में सोना' इन्हें परस्त्री की तरह त्याग देना चाहिये।

सायंकाल में जब स्वामी जी टहलने जाते तो आप ध्यान में बैठकर समाधि का आनन्द लेते। किन्तु स्वामीजी आपको सर्वदा सेवा का ही महत्त्व विशेष रूप से समझाते थे। उनका कथन था कि ध्यान के बहाने तो तुम आलसी ही बनते हो। तुम सेवा का मर्म नहीं समझते और सेवा से ध्यान को बड़ा मानते हो। परन्तु याद रखो 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'- सेवाधर्म अत्यन्त गम्भीर है, इसमें योगियों की भी गति नहीं है।

इस प्रकार इन्होंने बड़ी लगन और परिश्रम के साथ गुरु महाराज की सेवा की। उसके प्रभाव और सद्‌गुरुदेव के प्रसाद से इनका चित्त गुरुदेव के चित्त के साथ ऐसा अभिन्न हुआ कि उनका सारा ही अनुभव इनके हृदय में उतर आया। अथवा यों कहिये कि सद्‌गुरुदेव ने अपनी सारी ही आध्यात्मिक सम्पत्ति अपने सच्छिष्य को दे दी। या यों कहो कि अपना ही सनातन धन, जो चिरकाल से हृदय में छिपा हुआ था, गुरुकृपा से प्रकट हो गया। जिस प्रकार विद्यानिधि रघुवंशभूषण राम को श्रीविश्वामित्र जी ने शस्त्र विद्या दी थी उसी प्रकार आपको भी सद्‌गुरुदेव से अध्यात्म-विद्या प्राप्त हुई। परन्तु आपका हृदय सदा से ही अत्यन्त गम्भीर है। आपकी कोई भी अवस्था सहज में प्रकट नहीं होती। आपको सदा से सहजावस्था ही प्रिय है—'उत्तमा

सहजावस्था।' इसलिये सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी आप लोगों की दृष्टि में एक विनम्र सेवक बने हुए थे।

संन्यास के लिये आपने गुरुदेव से कई बार प्रार्थना की; परन्तु स्वामी जी आपको आज्ञा नहीं देते थे। बल्कि इसका परिणाम उल्टा ही हुआ। एक दिन श्रीस्वामी जी बोले, 'तुम आश्रम का अन्न खाते हो-यह ठीक नहीं। सकामी पुरुष अपनी अनेकों कामनाओं की पूर्ति के निमित्त ही साधुओं को द्रव्य तथा अन्नादि भेंट किया करते हैं। ऐसा अन्न साधकों को परमार्थपथ में भ्रष्ट कर देता है। अत: उत्तम साधक को चाहिये कि कुछ मेहनत मजदूरी करके जो कुछ मिले उसमें से यथाश्:क्ति गुरुदेव को भेंट करके शेष द्रव्य से अपना निर्वाह करे। ऐसा करने से साधन में बहुत शीघ्र सफलता होती है तथा अनुभव भी दृढ़ होता है। अत: तुम कहीं पढ़ाने का काम किया करो।'

ऐसी आज्ञा होने पर आपने एक स्कूल में पढ़ाना आरम्भ कर दिया। वहाँ आप निश्चित समय पर जाते और बड़े दत्तचित्त से पढ़ाते थे। आप बड़ी शान्त और गम्भीर मुद्रा से रहते थे तथा आपके पढ़ाने की शैली भी अत्यन्त सरल और सुबोध थी। आप जो विषय एक बार समझा देते थे वह सभी विद्यार्थियों को हृदयङ्गम हो जाता था। विद्यार्थियों से आपका बड़ा प्रेम था, किन्तु आपकी शांत और गम्भीर मुद्रा का ऐसा मूक शासन था कि कोई बालक आपके सामने किसी प्रकार की चंचलता नहीं कर सकता था। विद्यार्थियों की आपके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। आप थोड़े ही समय में उन्हें बहुत कुछ बता देते थे तथा स्कूल से छुट्टी पाने पर निरन्तर आश्रम की सेवा करते थे रात्रि में भी केवल दो तीन घंटे ही सोते थे तथा स्कूल से जो कुछ वेतन पाते थे वह सब श्रीगुरुदेव के चरणों में समर्पित कर देते थे। उसमें से जो कुछ श्रीस्वामीजी प्रसन्नतापूर्वक दे देते थे उसीसे अपना काम चलाते थे। तथा आश्रम में एक समय जैसा भी रूखा-सूखा भोजन मिलता था वही बड़े प्रेम से पा लेते थे।

बाबूजी

हमारे महाराज जी की इस अवस्था में उनके प्रधान सहयोगी थे बाबू शालग्राम जी। श्रीमहाराज जी आज तक उनका अत्यन्त प्रेम और श्रद्धा से स्मरण करते हैं। यद्यपि वे आजीवन गृहस्थ रहे, किन्तु आपकी दृष्टि में किसी महात्मा से कम नहीं थे। इनके साथ आपका अत्यन्त आत्मीयता का सम्बन्ध था, यहाँ तक कि जिन्हें विशेष परिचय नहीं था वे तो दोनों को सगे भाई ही समझते थे। आयु में बाबूजी आपसे बड़े थे; अतः आप उनके प्रति ज्येष्ठ सहोदर-सा भाव रखते थे और वे आपको अपने अनुज की तरह स्नेह करते थे। यहाँ उनका संक्षेप में कुछ परिचय दिया जाता है।

बाबूजी के एक समवयस्क मित्र थे बाबू भगवानदास। इन दोनों का साथ-साथ ही श्रीगुरुदेव के पास आना-जाना आरम्भ हुआ था। जिस समय श्रीस्वामी जी पंजाब में भ्रमण करते पहली बार होशियारपुर पहुँचे और बावलियों पर सूखी चोई के पास आसन किया तभी दोनों मित्र उनकी सेवा में उपस्थित हुए थे। श्रीस्वामीजी के तेज और प्रभाव की चर्चा होशियारपुर में सब ओर फैल रही थी। लोग कहते थे कि भाई! एक ऐसे महात्मा आये हैं कि उनके चेहरे से सूर्य के समान प्रकाश की किरणें निकलती हैं। वे बड़े ही विद्वान् और विरक्त हैं। यह चर्चा इन दोनों मित्रों ने भी सुनी और ये घूमते-फिरते श्रीस्वामी जी के पास पहुँचे। श्रीस्वामी जी सिद्धासन से विराजमान थे। उन्हें देखते ही ये दंग रह गये। बहुत देर तक एकटक दृष्टि से देखने के बाद इन्होंने समीप जाकर प्रणाम किया और बैठ गये। श्रीस्वामीजी बहुत देर तक चुप रहे और इनके एक-दो प्रश्न करने पर भी नहीं बोले, केवल एक दृष्टि उठाकर इनकी ओर देख लिया। ये उस एक दृष्टि से ही घायल हो गये। अब इनकी उत्सुकता बढ़ी और इन्होंने चंचलता छोड़कर बड़े नम्र भाव से कुछ प्रश्न करने की आज्ञा चाही। तब स्वामी जी मुसकराकर बोले, 'भाई! पूछो, क्या पूछना चाहते हो?' फिर महाराजजी के साथ इनके इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए —

'सच्चा सुख क्या है?'

'आत्म-सुख।'

'उसकी प्राप्ति कैसे हो?'

'महापुरुषों की कृपा से।'

'वह कैसे मिले?'

'सच्ची श्रद्धा से।'

'श्रद्धा कैसे हो?'

'महापुरुषों की सेवा करने से।'

'महापुरुषों का लक्षण क्या है?'

'जिनके दर्शन, भाषण और सहवास से स्वाभाविक ही चित्त एकाग्र हो तथा संसार की विस्मृति होने लगे वही महापुरुष है।'

ये मनचले तो थे ही, बेधड़क होकर बोले—'ये सब लक्षण तो हमें आप में ही दीखते हैं।' इस पर श्रीस्वामीजी ने हँसकर कहा, 'भाई! यह तो तुम्हीं जानो। हाँ, तुम लोग अच्छे तो हमें भी लगते हो। यदि अवकाश मिले तो कभी-कभी आया करो।'

बस, अब क्या था। बेचारे दोनों नवयुवक सदा के लिये पकड़े गये। बहुत देर तक सत्संग होता रहा। इसके बाद श्रीस्वामी जी उठकर झाड़ी की तरफ चले गये और ये दोनों विवश होकर घर लौट आये। किन्तु इनका मन तो सदा के लिये श्रीस्वामीजी ने छीन लिया। अपने भावी पति को पहली बार देखने पर जो दशा नवप्रणयिनी की होती है अथवा सद्गुरु के मिलने पर जैसी स्थिति सच्छिष्य की होती है वही दशा इन दोनों की हुई। बस, उनकी एक नजर से ही उनके हाथ बिक गये —

'कृपा होय गुरुदेव की, देखत करें निहाल।
और मति पलटै तबहिं कागा होय मराल॥'

परन्तु एक बात अच्छी थी। ये दो थे, इसलिये एक-दूसरे से अपने मन का भाव कहकर चित्त को सँभाल लेते थे। ये आपस में श्रीस्वामीजी की ही चर्चा करते घर आये और सारी रात उन्हीं की चर्चा होती रही। न खाना सुहाता था, न सोना और न कोई अन्य बात ही अच्छी लगती थी।

दूसरे दिन कुछ प्रसाद लेकर दोनों मित्र स्वामी जी के दर्शनों के लिये गये और बड़े आदर से प्रणाम करके बैठ गये। स्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले, 'अच्छा, तुम लोग आ गये, मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा में था।' इस बात से इनके चित्त का उत्साह और भी बढ़ गया। फिर श्री स्वामीजी ने कहा, 'ठीक है, आज तुम प्रसाद लेकर आये हो। देखो, साधु के पास खाली हाथ कभी नहीं जाना चाहिये। पत्र, पुष्प, फल, जल जो भी बने कुछ भेंट लेकर जाना चाहिये ऐसा करने से तुम भी वहाँ से खाली हाथ नहीं आओगे। देखो, तुम्हारे पाप तो ऐसा है ही क्या जो महात्माओं को भेंट करोगे। जो कुछ भी ले जाओगे मायिक पदार्थ ही होगा। परन्तु वहाँ से तुम्हें जो प्रसाद मिलेगा वह तो अलौकिक, त्रिगुणातीत, दिव्य, चिन्मय और अविनाशी होगा। अच्छा, यह तो बताओ तुम्हारी स्वाभाविक रुचि ज्ञान में है या भक्ति में?' बाबूजी बोले, 'भगवन्! हमें स्वाभाविक संस्कार तो वेदान्त के ही हैं। हमने बचपन से ही अपने माता-पिता तथा महापुरुषों से यही सुना है कि आत्मसाक्षात्कार ही जीव का सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। सो आप कृपा करके हमें कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे जल्दी से जल्दी आत्मसाक्षात्कार हो सके। महाराज! अंग्रेजी पढ़कर हमारे संस्कार बिगड़ गये हैं, अतः किसी प्रकार का साधन करने में तो हम नितान्त असमर्थ हैं। आप अपनी कृपा से ही हमें आत्मसाक्षात्कार करा दीजिये।' यह सुनकर श्रीस्वामीजी बोले, 'चिन्ता न करो, जो कुछ होगा स्वयं ही होगा। तुम केवल हमारे पास आते रहो।' फिर आपने अभ्यास में बैठने की कुछ युक्तियाँ बतलायीं और कहा, 'तुम थोड़ी-थोड़ी देर बैठना आरम्भ कर दो।'

इसी तरह कुछ देर और भी सत्संग होता रहा। फिर श्रीस्वामीजी उठकर झाड़ी की ओर चले गये और ये दोनों मित्र घर लौट आये। घर आकर श्रीस्वामीजी की आज्ञानुसार अभ्यास में बैठे, किन्तु चित्त विशेष नहीं लगा। फिर दोनों ने विचार किया कि कुछ प्रसाद लेकर नित्यप्रति जाया करेंगे और अपने साधन की कमजोरी के विषय में महाराजजी से कुछ नहीं कहेंगे। अतः दूसरे दिन दोनों मित्र प्रसाद लेकर फिर श्रीगुरुचरणों में उपस्थित हुए, जाकर प्रणाम किया और प्रसाद सामने रखकर बैठ गये। श्रीस्वामीजी बहुत देर तक चुपचाप इनकी ओर देखते रहे। अथवा यों कहिये

कि इस प्रकार इनमें शक्ति संचार करते रहे। इन्हें भी ऐसा प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ कि मानो एक प्रकार की बिजली-सी इनके शरीर में दौड़ रही है और प्राणों को उथल-पुथल कर रही है। थोड़ी देर पीछे श्रीस्वामी जी ने पूछा, 'कहो भाई, साधन में मन कैसा लगा?' यह सुनकर दोनों ने बड़ी प्रसन्नता से कहा, 'महाराजजी! जब आपकी इतनी कृपा है तो मन क्यों नहीं लगेगा? ऐसा लगा कि हम तो दंग रह गये।' यह सुनकर स्वामीजी ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

छुट्टीयों के समाप्त होने तक ये इसी प्रकार नित्य जाते रहे। प्रसाद कभी बाबू शालग्रामजी ले जाते थे और कभी भगवान्‌दासजी। हमारे महाराजजी से बाबूजी ने स्वयं कहा था कि यथापि हमारा चित्त साधन में बिलकुल नहीं लगता था, तथापि हम झूँठ ही कह दिया करते थे कि 'खूब लगा।' इससे श्रीस्वामीजी समझते थे कि इन्हें साधन का बड़ा शौक है। बस उनके इस संकल्पसे कुछ दिनों में हमारा मन ऐसा समाहित होने लगा कि हम दंग रह गये। इसी प्रकार नित्यप्रति प्रसाद ले जाने का भी श्रीस्वामी जी के चित्त पर बड़ा अच्छा असर हुआ। वे समझने लगे, ये बड़े उदार हैं। महापुरुषों का जिसकी ओर से जैसा विचार हो जाता है, वह वैसा न होने पर भी उनके संकल्प के प्रभाव से वैसा ही बन जाता है।

यह गर्मियों की छुट्टी की बात है, इन्होंने ऐसा संकल्प किया था कि इन छुट्टीयों में ही हमें आत्मसाक्षात्कार हो जाय। किन्तु बड़े शौक से दिन-रात लगे रहने पर भी इन्हें सफलता न मिली। अब केवल एक दिन शेष रह गया और साक्षात्कार हुआ नहीं। तब तो इन्हें बड़ी निराशा हुई और ये रात को अत्यन्त दुःखी होकर सोये। बस, स्वप्न में दोनों ही मित्रों ने देखा कि स्वामीजी आये हैं और कह रहे हैं—'लो, इसे आत्मसाक्षात्कार कहते हैं।' इतना सुनना था कि दोनों ही उठकर आसन पर बैठ गये और इनकी वृत्ति एकदम ऐसी चढ़ी कि संसार दृष्टि से उठ गया और सब प्रकार का भेद निवृत्त होकर चित्त परमतत्व में विलीन हो परमपद की अपरोक्ष अनुभूति हुई जिसके लिये बड़े-बड़े योगी अनेकों जन्मों तक प्रयास करते हैं तथा जिसे प्राप्त कर लेने पर फिर और कुछ पाना शेष नहीं रहता। बस फिर क्या था, जीवन का प्रवाह

ही बदल गया। भेदभ्रम सदा के लिये विदा हो गया। आप में आप मिल गया। आप न रहकर सद्गुरु ही रह गये। अथवा गुरुशिष्य दोनों ही गुम हो गये, बस एक अनिर्वचनीय आत्मानन्द ही रह गया। बस आनन्द की एक अपूर्व बाढ़-सी आयी, जिसमें संसार रूप कूड़ा-कचड़ा बहकर न जाने कहाँ चला गया, भेद-अभेद का भेद भी नहीं रहा, बस अब जो कुछ भी था वह स्वयं ही था—ब्रह्म ही था। उसके विषय में कौन क्या कहे ?

'भीखा बात अगम्य है, कहन-सुनन की नाहिं।
कहे सो जाने नहीं, जाने सो कहे नाहिं॥'

दूसरे दिन मदिरामदान्ध की भाँति अथवा ग्रहग्रस्त की तरह उन्मत्त से हुए गुरुदेव के दर्शनों को गये। वहाँ जाकर अपने ही अभिन्न रूप श्रीगुरुदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और चुपचाप बैठ गये। आज और दिनों की तरह चित्त में चंचलता नहीं थी। घड़ा पूर्ण हो जाने पर नहीं छलकता। बस, बैठते ही समाधि। वास्तव में तो आज ही आत्म समर्पण हुआ था। यही गुरु-शिष्य का सच्चा मिलन था। यही सच्ची गुरु-दीक्षा थी। अपने प्रिय शिष्यों को आप्तकाम देख सन्त सद्गुरुदेव के आनन्द का भी पारावार नहीं था। न जाने, आज उन्हें क्या मिल गया था। कृपा के अतिरेक से उनका हृदय भर गया, वे भी एकदम समाधिस्थ हो गये। इस प्रकार गुरु-शिष्य दोनों ही आनन्द का उपभोग करने लगे। अन्त में जब व्युत्थान हुआ तो श्रीगुरुदेव ने उठकर अपने प्रिय शिष्यों को हृदय से लगा लिया।

छुट्टियाँ तो समाप्त हो ही चुकी थीं। इसलिये श्रीमहाराज जी ने उसे कहा, 'अब तुम अपने स्कूल को जाओ। जब तक प्रारब्ध शेष है तब तक ज्ञान को भी सुचारु रूप से व्यवहार में बर्तना चाहिये। भेद केवल इतना रहता है जैसे कैदी और जेलर रहते तो दोनों ही जेल के भीतर हैं, किन्तु उनमें कैदी बन्धन में है और जेलर बन्धनमुक्त है। इसी तरह तत्त्वज्ञ महापुरुष संसार के सारे काम बद्ध पुरुषों की तरह करते हुए भी उनमें आसक्त नहीं होते। बल्कि जल में कमलदल की तरह निर्लिप्त रहकर सब व्यवहार क़रते हैं। ज़िस प्रकार माखन स्वभाव से तो दूध में मिला रहता है, परन्तु

जब एक बार दृढ़ पुरुषार्थ करके उसे अलग कर लिया जाता है तो फिर समुद्र में डालने पर भी वह उसमें नहीं मिलता। साथ ही तुम यह मत समझ लेना हम कृतकृत्य हो गये। अभी तो तुम्हें केवल आत्मसाक्षात्कार हुआ है। इस स्थितिकी दृढ़ता और जीवनन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द की प्राप्ति के लिये तो तुम्हें चिरकाल तक निरंतर अभ्यास करना होगा। इस भूमिका में आत्मज्ञान तो हो जाता, परन्तु इसके पश्चात् जो आत्मरति, आत्मतृप्ति और आत्मसन्तुष्टि की भूमिकाएँ हैं उनकी प्राप्ति के लिए तुम्हें अभ्यास करना ही होगा। इन्हें प्राप्त कर लेने पर फिर प्रारब्धवश तुम गृहस्थ रहना; चाहे विरक्त। परन्तु अब आगे तुम्हें साधन में विशेष कठिनाई नहीं होगी। अब, तुम जाओ, पढ़ाई आरम्भ करो। जब अवकाश मिले तब हमारे पास हो जाया करना। कभी-कभी हम ही तुम्हें स्कूल में देख आया करेंगे।'

किन्तु दोनों मित्रों ने घर लौटने की अनिच्छा प्रकट की। तब स्वामीजी ने इन्हें समझाया और कहा, 'भाई, तुम ऐसा करोगे तो संसारी पुरुष साधुओं से घृणा करने लगेंगे और समझेंगे कि इनके पास जो आता है उसी को मूंड लेते हैं। इससे उनके परमार्थपथ की हानि होगी और वे साधु निन्दारूप पाप के भागी बनेंगे। हमारा उद्देश्य तो किसी को साधु बनाना नहीं है। तुम जाओ और निर्भयता से संसार में रहकर शुद्ध जीविका से निर्वाह करते हुए आदर्श गृहस्थ बनो। हम तुम्हारी सदा रक्षा करेंगे।' इस तरह समझा बुझाकर स्वामी जी ने उन्हें घर भेजा और वे पूर्ववत् स्कूल में पढ़ने लगे।

सद्गुरु की कृपा से दोनों की बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ हो गयी थी। वे पहले से अधिक तत्परता से अध्ययन करने लगे। जब अवकाश मिलता तब प्रसाद लेकर श्रीस्वामी जी के पास जाते और उनका सत्संग करते थे। वहाँ शहर से अलग पास ही तहसील प्रेमगढ़ के पीछे किसी साधु का एक सामान्य-सा आश्रम था। उस समय यहाँ दूर तक जंगल ही था। श्रीस्वामी जी से प्रार्थना करके उन्हें वे इस आश्रम में ले आये। फिर कुछ भक्तों ने मिलकर एक सुन्दर-सी कुटिया भी बनवा दी। श्रीस्वामी जी वृद्ध थे और पहले काफी घूम चुके थे। अतः वे अब स्थायी रूप से यहीं रहने लगे। इस तरह और भी कई भक्त उनके पास आने लगे और भजन-साधन में लग गये।

अब, धीरे-धीरे आश्रम भी बनने लगा। उसकी चहार दीवारी बनी तीन-चार नये कमरे बने तथा कुएँ का जीर्णोद्धार हुआ। श्रीस्वामी जी को सफाई बहुत पसन्द थी। वे कहा करते थे, 'सफाई ही खुदाई है।' अतः सारा आश्रम बहुत साफ-सुथरा रहता था। उसमें वृक्ष तथा फुलवाड़ी भी काफी हो गयी थी। स्वामीजी महाराज स्वयं वृक्ष लगाते और उन्हें सींचते थे। तथा आश्रम में जो नये या पुराने भक्त आते थे उन्हें भी प्रधानतया आश्रम की सेवा में ही लगाते थे।

इस बार श्रीस्वामीजी एक साल या छः महीने ठहरे। इसके पश्चात् उनका विचार कुछ बिचरने का हुआ। जब वे चलने लगे तो सभी भक्त अत्यन्त दुःखी हुए। और रोने लगे। किन्तु भगवानदास जी पर अद्वैत का ऐसा रंग चढ़ा हुआ था कि वे इस समय भी हँसते ही रहे और जाते समय प्रणाम करके बोले, 'महाराज जी! हमें तो ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि हम आपको भी भूल जायँ।' श्रीस्वामी जी कुछ नहीं बोले, केवल मुस्करा दिये। किन्तु और भक्तों को उनकी यह बात अच्छी न लगी। श्रीस्वामीजी के चले जाने पर भगवानदासजी की अवस्था इतनी चढ़ी कि वे उसे सहन न कर सके और प्रायः पागल हो गये। उन्हें एक प्रकार का भय-सा लगने लगा। जब उन्होंने बाबूजी से चर्चा की तो वे हँसने लगे और बोले, 'क्या तुम्हें याद नहीं है, श्रीमहाराजजी कहा करते थे कि जो आनन्द हमारे हृदय में है यदि हम उनकी एक बूँद भी तुम्हें दे दें तो तुम सहन नहीं कर सकोगे। तुम्हारा हृदय फट जायगा। यह उसीका परिणाम है। तुमसे गुरु-अवज्ञा रूप अपराध बन गया है।' यह सुनकर उन्हें अपनी भूल के लिये पश्चाताप होने लगा और वे फूट-फूटकर रोने लगे। तब बाबूजी ने उन्हें ढाँढस बँधाया। फिर उन्होंने भयभीत हो अभ्यास में बैठना बन्द कर दिया और श्रीस्वामीजी की खोज करने लगे। बहुत ढूँढने पर पंजाब के किसी स्थान पर उनका पता चला। तब दोनों मित्र वहाँ गये और चरणों में पड़कर क्षमा प्रार्थना की। श्रीस्वामी जी ने उन्हें फटकारा और कहा, 'हमने तो पहले ही कहा था कि हमारे आनन्द का एक कण भी तुम सहन नहीं कर सकोगे। खबरदार, अब ऐसी बात मुँह से मत निकालना।' यह सुनकर जरा हँस दिये और बोले, 'घबराओ मत, सब ठीक हो जायगा। इसके बाद उनकी अवस्था परम शान्त हो गयी।'

इन दोनों मित्रों में शालग्राम जी की अवस्था बहुत चढ़ी हुई थी। वे मैट्रिक पास करके दफ्तर में केवल १५) मासिक पर क्लर्क हो गये। बाबूजी बड़े ही प्रसन्नवदन, शान्त, उदार और गम्भीर प्रकृति के पुरुष थे। वे प्राय: हर समय हँसते रहते थे तथा जब दफ्तर के काम से अवकाश पाते थे तब बाहर जंगल में जाकर ध्यान में बैठे रहते थे अथवा आश्रम में आकर सेवाकार्य में लग जाते थे। उनके घर के स्त्री-बच्चे भी आश्रम की सब प्रकार की सेवा किया करते थे। बाबूजी की गुरुदेव के चरणों में बड़ी श्रद्धा थी। वे कहा करते थे, 'भय क्या है, जब कि सृष्टि के उत्पत्ति स्थिति और संहार करने वाले सगुण ब्रह्म ही साक्षात् श्रीगुरुदेव के रूप में नेत्रों के सामने विद्यमान हैं। रही निर्गुण ब्रह्म की बात, सो वह तो हमारा अपना-आप ही है। इसलिये अब हमें और करना ही क्या है?' हमारे श्रीमहाराज जी सुनाते थे कि एक दिन बाबूजी ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा, 'कहो, स्वामी जी! तुम्हारी दृष्टि से संसार में सबसे बड़ा महापुरुष कौन है?' इस पर मैं तो चुप रह गया। फिर वे स्वयं ही बोले, 'सावधान, कभी भूल कर भी ऐसा ख्याल मत करना कि अपने गुरुदेव से बढ़कर कोई और महापुरुष या ईश्वर भी हो सकता है। यह सुनकर मेरा चित्त प्रफुल्लित हो गया।' मैंने मन ही मन कहा, 'बाबूजी आप धन्य हैं और आपकी श्रद्धा भी धन्य है।' उसी के फलस्वरूप उनके स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही खूब सधे। स्वार्थ की बात यह कि केवल मैट्रिक पास करके आरम्भ में १५) मासिक के नौकर हुए थे, सो उन्नति करते-करते डिप्टी कमिश्नर के दफ्तर के हैड क्लर्क हो गये और लगभग ५००) मासिक पाने लगे। वे इस विषय में स्वयं हँसते हुए कहते थे; 'जानते हो, इस तरक्की का क्या कारण है? यह केवल गुरुचरणों की कृपा है। में तो दफ्तर में बैठ कर भी योगवाशिष्ठ पढ़ा करता हूँ। मेरी तो निरन्तर यही दृष्टि रहती है कि मैं केवल साक्षीमात्र हूँ। यह काम तो कोई और ही कर रहा है।'

एकबार हमारे श्रीमहाराजजी के पास बाबूजी का एक पत्र आया था, उसमें लिखा था—'निरन्तर आनन्द-समुद्र उछाल मार रहा है। तरंगों की बाढ़ आकर डुबा रही है। यदि कचहरी रूप मल्लाह न हो बेड़ा गर्क हो जाय।'
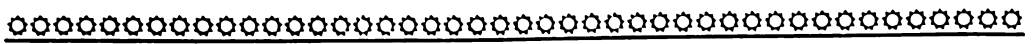
वाह रे, मस्ताने दिल! जिस परमानन्द की एक क्षण अनुभूति पाने के लिये बड़े-बड़े राजे-महाराजे भी राज-पाट छोड़ कर घोर तपस्या करते हैं, तू उसी आनन्द-समुद्र से चित्त को निकाल कर कचहरी का काम कर रहा है! बस, कचहरी का काम समाप्त हुआ कि चित्त का बेड़ा फिर एकदम गर्क। शरीर केवल अभ्यासवश मार्ग में चल रहा है। मस्ती में झूमते-झामते घर चले आ रहे हैं। घर का सब काम भी इसी प्रकार चलता था। महीने के महीने वेतन लाकर धर्मपत्नी को सौंप देते थे, फिर कोई मतलब नहीं। आश्रम में आने वाले अनेकों सत्संगी इनमें बहुत श्रद्धा रखते थे; अतः वे ही घर की सब व्यवस्था करते थे। आपका तो संसार में श्रीहरि या गुरुदेव की सेवा ही एकमात्र कार्य रह गया था। उनमें भी गुरु सेवा पर ही आपकी विशेष रुचि थी।

हरिसेवा सोलह बरस, गुरुसेवा पल चार।
तो भी नाहिं बराबरी, वेदों किया विचार॥
गुरुको तजि हरिसेव कभी नहि कीजिये।
बेमुख को नहिं ठौर नरक में दीजिये॥
हरि रूँठे कुछ डर नहीं तू भी दे छिटकाय।
गुरु को राखो शीश पर सब विध करें सहाय॥
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके जाव।
जीव ब्रह्म दिन में कियो, पाई भूली ठाँव॥

— चरणदासजी

बाबूजी में श्रीगुरुदेव महाराज को प्रसन्न रखने की कला तो स्वभाव से ही ऐसी थी कि आजीवन गुरुदेव उनसे कभी अप्रसन्न नहीं हुए। यहाँ तक कि कभी-कभी तो वे इन्हें साधन में बिठा देते और स्वयं पंखा झलने लगते। वाह! सद्गुरु दयालु! आपकी सदा ही जय हो! जय हो! श्रीबाबूजी कहा करते थे कि हमें तो बड़ा आश्चर्य उस समय होता है जब कोई कहता है कि स्त्री प्रसंग में सुख है। हमें तो वीर्य त्याग भी मल-मूत्र त्याग के समान ही जान पड़ता है। ऐसी बात भोजन के विषय में भी थी। घर में चाहे खुशी हो या गमी बाबूजी तो सदा प्रसन्न ही रहते थे—'कोई मरे और कोई जीवे। सुथरा घोल बताशा पीवे।'

मैंने उनके दर्शन किये थे। उस समय वे सम्भवत: रिटायर्ड हो चुके थे। मेरे हाथ पकड़ कर बोले—'क्यों भाई! केवल चिदानन्द ही चिदानन्द है न?' और बड़े जोरों से हँसने लगे। श्रीमहाराजजी इस दृश्य को देख रहे थे। वे हँसकर बोले, 'इससे पूछो, यह जानता भी है कि चिदानन्द क्या वस्तु है?' तो आप बड़ी मस्ती से बोले, 'वाह! चिदानन्द ही तो अपना आप है। भला, अपने स्वरूप को कौन नहीं जानता।' और 'केवल आनन्द ही आनन्द है' ऐसा कहते हुए वहाँ से चले गये। उनकी यह मस्ती अन्त तक ऐसी ही बनी रही। वे सम्भवत: कभी बीमार नहीं हुए। श्रीमहाराजजी कहते थे कि एकबार धर्मशाला (जिला-काँगड़ा) में इनके एक बच्चे ने मेरे सामने ही इनकी सौ रुपये की घड़ी उठा ली और इनके देखते-देखते पटक कर तोड़ डाली। किन्तु वे हँसते ही रहे, बच्चे से कुछ नहीं कहा और अपने अर्दली को बुलाकर कहा, 'इस घड़ी की मरम्मत करा लाओ।' मैंने कहा, 'यदि आप बच्चे के हाथ से छीन लेते तो क्यों टूटती?' तो बोले—'हमें यह कभी ध्यान ही नहीं आता, हम तो केवल दृष्टा बनकर देखते रहते हैं।' वाह रे मस्ताने! तेरी मस्ती की बलिहारी जाऊँ।

संन्यास

पहले यह लिखा जा चुका है कि श्रीदीवानसिंह जी कालेज और घर दोनों ही से उपराम होकर श्रीगुरुदेव के पास आश्रम में रहने लगे, तथा अपने निर्वाह के लिये उन्होंने एक स्कूल में पढ़ाना आरम्भ कर दिया। परन्तु यह सब करके भी उन्हें सन्तोष न हुआ। उनका वैराग्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और उन्हें आश्रम की प्रवृत्ति भी असह्य हो उठी। वह तो सिद्धों का खेल था। वहाँ प्राय: सदा ही बहुत से बड़े-बड़े आदमी और उनके स्त्री- बच्चे आते रहते थे। श्रीस्वामी जी महाराज की सिद्धियों की धूम आस-पास सब ओर मच गई थी; इसलिये बाहर से भी अनेकों दर्शनार्थी आने लगे थे। प्रसाद का ढेर लगा रहता था तथा उत्तम-उत्तम मिठाइयाँ, फल, मेवे और ऊनी एवं सूती वस्त्र हर समय आते तथा बँटते रहते थे। इन सब बातों से आपका

चित्त ऊब गया। अत: आप एक दिन बिना किसी से कुछ कहे वहाँ से चल दिये। श्रीस्वामी जी महाराज से इस विषय में कोई चर्चा न की।

वहाँ से चलकर आप रेलवे द्वारा सीधे काशी पहुँचे। वहाँ हिन्दू कालेज में बी० ए० में पढ़ना आरम्भ कर दिया और निर्वाह के लिये कुछ ट्यूशन कर लिये। इस प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ, किन्तु वैराग्य ने यह क्रम भी अधिक दिन न चलने दिया। अब तो चित्त पूर्णतया भगवच्चरणों में आत्मसमर्पण करने के लिये ही उत्सुक हो उठा। वैराग्य की तीव्र ज्वाला ने विधि-विधान के अडंगे को असह्य कर दिया। अत: एक दिन अपना सारा सामान दीन-दरिद्रों को बाँट दिया और बाजार से गेरू लाकर स्वयं ही अपने वस्त्र रँग लिये। इस प्रकार जो वैराग्य अब तक अन्त:करण को रँग रहा था वह भीतर न समा सका और आखिर बाहर भी फूट निकला।

अब तक आपका बहुत-सा समय अध्ययन और अध्यापन में निकला जाता था। भोजनादि की व्यवस्था भी स्वयं ही करनी पड़ती थी। तो भी जितना समय मिलता था उसे आप ध्यानाभ्यास ही में लगाते थे। छुट्टी के दिन तो आप विश्वनाथ जी से दस मील दूर शूलटंकेश्वर महादेव पर चले जाते थे और सारा दिन वहीं बिताते थे। किन्तु अब संन्यासी हो जाने पर तो कोई अड़चन रही ही नहीं। अब तो निरन्तर ब्रह्मचिन्तन ही करना था। अत: अब अधिकतर शूलटंकेश्वर पर ही रहने लगे यह स्थान गंगा किनारे एक ऊँचे टीले पर है। अत्यन्त निर्जन होने के कारण यह आपको बहुत प्रिय था। यहाँ रहकर आप निरन्तर अभ्यास करने लगे। चित्त सब प्रकार के व्यवहार से उपराम होकर अपने ही स्वरूपभूत प्राणाराध्य से अभिन्न होने के लिये उत्सुक हो उठा। वास्तव में सच्चा वैराग्य भी तभी होता है जब चित्त को अपने प्राणाराध्य की प्राप्ति हो जाय और उस परमानन्द-सिन्धु में निरन्तर मग्न रहने के कारण स्वभाव से ही किसी अनात्मपदार्थ की ओर इसका जाना असम्भव हो जाय। शास्त्रों में इसे परवैराग्य कहा है इष्टदेव की प्राप्ति से पूर्व जो दोष दर्शन-जनित वैराग्य है वह तो वैराग्य का साधन मात्र है। उसे अपर वैराग्य कहते हैं।

किन्तु इस स्थिति में भी आपका चित्त कितना परदु:खकातर था इस विषय में यहाँ एक घटना का उल्लेख किया जाता है। उसे आप ही के शब्दों में सुनिये—

एक दिन मैं शूलटंकेश्वर मन्दिर में बैठा हुआ था। अकस्मात् एक बहुत ही दुर्बल मनुष्य वहाँ आया और कहने लगा—'बाबा! मैं बड़ा दुखिया हूँ, मेरी कुछ सहायता करो।' मैंने पूछा, 'बोलो, तुम क्या चाहते हो? मुझसे जो कुछ बनेगा सेवा करूँगा।' वह बोला, 'बाबा! मुझे हरिद्वार जाना है और मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। वहाँ जाने से मेरे प्राण बच जायँगे; यहाँ तो मैं मर जाऊँगा।' यह कहकर रो पड़ा। उसकी बात सुनकर मैं बड़े असमंजस में पड़ा कि क्या करूँ। मैंने तो यह नियम किया है कि मैं पैसा हाथ से नहीं छुऊँगा। अब यह घटना सामने उपस्थित है, क्या जाने भगवान् मेरी परीक्षा करते हों। मैंने कहा, 'अच्छा, तुम मेरे साथ गाँव में चलो। मैं माँगूगा तुम लेते जाना।' वह बोला, 'बाबा! मुझमें चलने का बिलकुल सामर्थ्य नहीं है। कर सकें तो आप ही मेरी सहायता करें।' मैंने कहा, 'अच्छा भाई, मैं प्रयत्न करूँगा। होना न होना भगवान् के अधीन है।' दोपहर को मैं भिक्षा के लिये गाँव में गया तो मैंने सब लोगों से कहा, 'भाई, एक रोगी को हरिद्वार जाना है। उसको किराया चाहिये। तुम लोग सहायता करो। जिसकी जैसी श्रद्धा हो उसके लिये भिक्षा दो।' ऐसा कहकर मैंने कपड़े की झोली बना ली। सब लोग ला लाकर उसमें पैसे डालने लगे। वे सब गरीब लोग थे। जब मैंने देखा कि काफी पैसे हो गये हैं तो मैं रोटी लेकर चल दिया। मन्दिर में आकर मैंने पैसे एक ओर रखकर ईंट से दबा दिये और जब वह रोगी आया तो उसे बता दिये। उसने गिने तो ठीक उतने ही निकले जितने वह चाहता था। उससे एक भी पैसा न्यूनाधिक नहीं था। बस, वह लेकर चला गया।

इस प्रकार कुछ दिन वहाँ रहकर आप गंगाजी के किनारे-किनारे पैदल ही प्रयाग की ओर चल दिये। जहाँ कहीं एकान्त स्थान देखते वहाँ कुछ दिनों के लिये ठहर जाते थे। आप चौबीस घंटों में केवल एक बार ही भिक्षा के लिये जाते थे और जैसा भी रूखा-सुखा टुकड़ा मिल जाता उसी को गंगा तट पर लाकर खा लेते थे। कुछ दिन तो आप इस प्रकार करते रहे। फिर एक दिन छोड़कर भिक्षा करने लगे।

प्रयाग में पहुँचने पर आप दो-चार दिन वहाँ ठहरे और फिर चल पड़े। वहाँ से कुछ दूर एक द्रौपदी घाट है। वहाँ एक वृद्ध बंगाली महात्मा का आश्रम था। गंगातटपर ही बड़ी रमणीक और सुन्दर एकान्त कुटी थी। उसीमें वे निवास करते

थे। बड़े अनुभवी, विद्वान् तत्त्वज्ञ और भगवद्भक्त महात्मा थे। उन्हें योग का भी अच्छा अनुभव था। आपने जाकर उन्हें प्रणाम किया और बैठ गये। बहुत देर तक बैठे रहे, फिर उठकर चलने लगे। तब वे बोले, 'कैसे चले स्वामीजी! कुछ दिनों यहीं निवास करो। पास में ही गंगातट पर एक सुन्दर और एकान्त कच्ची गुफा है।' महात्माजी की यह बात सुनकर और भगवदिच्छा जानकर आपने रहना स्वीकार कर लिया, महात्माजी ने गुफा बतला दी और बड़े आग्रह से कहा, 'भोजन हमारी कुटिया पर ही कर लिया करें।' अतः कुछ दिनों तो आपने वहीं भोजन किया, फिर उनसे प्रसन्नतापूर्वक माधूकरी भिक्षा करने की अनुमति ले ली। आप कहते थे कि उन दिनों हम सात दिन में एकबार भिक्षा के लिये जाया करते थे। सो उस दिन तो पूरी भिक्षा कर लेते और बाकी छः दिन के लिये छः रोटियाँ कपड़े में लपेट कर जमीन में गाढ़ देते थे। उनमें से नित्य सवेरे ही स्नान करके एक रोटी निकालकर कमण्डल में भिगो देते थे और दोपहर को बारह बजे के लगभग खा लेते थे। फिर चौबीस घंटे और कुछ नहीं खाते थे।

इस तरह उस गुफा में आप प्रायः तीन साल रहे। न तो वहाँ कभी दीपक जला और न झाड़ू ही लगी। उन दिनों आप हर समय उन्मनी-सी अवस्था में रहते थे। आपकी एकदम उन्मत्तकी-सी स्थिति थी, जैसा कि कहा—'जडोन्मत्त-पिशाचवत्।' वहाँ पास ही एक बड़ा काला साँप पड़ा रहता था। कभी-कभी तो वह आपके आसन के नीचे भी आ जाता था। और कभी जब आप समाधिस्थ रहते तो शरीर पर भी चढ़ जाता था। वहाँ के कई लोगों ने उसे आपके सिर पर बैठा देखा था। कभी-कभी जब आप स्वाभाविक स्थिति में रहते तो महात्माजी के सत्संग में भी जाते थे। तब महात्माजी आपसे ऐसी तितिक्षा करने को मना करते थे। उस समय आप कहते थे, 'महाराजजी! मेरा दिमाग खराब हो गया है। मैं अपने काबू में नहीं हूँ। आप मेरी ढिठाई क्षमा करें।' इस प्रकार अनुनय-विनय करके छूट जाते। किन्तु वे वृद्ध बंगाली बाबा इनकी इस विलक्षण स्थिति को देखकर दंग रह गये और बार-बार प्रयत्न करने पर भी इनके स्वरूप को न समझ सके। किन्तु उनका इनमें वात्सल्य भाव अवश्य बहुत दृढ़ हो गया था। वे जब अवसर देखते तो इनके कपड़े बदल देते

थे, कभी-कभी विशेष आग्रह करके भिक्षा भी करा देते थे और जब ये ध्यान से उठते तो स्वयं ही इनके मस्तक पर कोई शीतल तेल मल देते थे।

इस प्रकार प्राय: तीन साल तक आप वहाँ रहे। इनकी अलौकिक स्थिति तथा इनके प्रति श्रीबंगाली बाबा की ऐसी श्रद्धा देखकर इनके पास दर्शनार्थियों की बहुत भीड़ होने लगी। अतः आप एक दिन प्रात:काल किसी से कुछ कहे बिना चुपचाप वहाँ से चल दिये और अवधूत दत्तात्रेय की तरह उन्मत्तप्राय अवस्था में विचरने लगे। जब भिक्षा का समय होता तो अभ्यास-वश ही भिक्षा कर लेते थे और यदि उस समय वृत्ति विशेष एकाग्र हो जाती तो वह समय यों ही निकल जाता था। इस तरह कभी-कभी तीन-चार दिन और कभी तो सात-आठ दिन भी साफ निकल जाते थे और आपको याद भी नहीं आती थी कि भिक्षा करना भी शरीर का कोई धर्म है। आपको नौ-नौ दिन के उपवास करते हुए तो स्वयं मैंने कई बार देखा है। उस समय आप जल भी ग्रहण नहीं करते थे और शरीर की सब क्रियाएँ यथावत् चलती रहती थीं तथा चेहरे पर भी किसी प्रकार का मालिन्य नहीं आता था। इस प्रकार आनन्दपूर्वक विचरते आप पैदल ही होशियारपुर पहुँच गये।

पुनः होशियारपुर में

होशियारपुर में पहुँचने पर आप बड़े संकोच में पड़ गये। सोचने लगे कि श्रीगुरुमहाराज की आज्ञा के बिना ही मैंने कपड़े रंग लिये हैं। न जाने सामने जाने पर वे क्या कहेंगे। फिर याद आया कि नहीं, वे तो बड़े दयालु हैं और एक प्रकार से उनकी आज्ञा भी थी ही। वे कहा करते थे कि जो कुछ होना है वह स्वयं ही होगा। और यदि यह भी मानें कि मुझसे अपराध हुआ है तो भी और ऐसी कौनसी जगह है जहाँ मुझे विश्राम मिलेगा। अब तो हम जैसे भी हैं और जिस हालत में भी हैं हमको तो उन्हीं चरणों का सहारा है। अन्तर्यामी रूप से वे ही तो सबके प्रेरक हैं। संसार में जो कुछ हो रहा है उसे वे ही तो सत्ता प्रदान कर रहे हैं। अथवा सब रूपों में एकमात्र वे ही तो सब कुछ कर रहे हैं। इस प्रकार के विचारों से जब साहस हुआ तो आपने, दिन में नहीं, रात को छिपकर आश्रम में प्रवेश किया। इस समय संकोच के भार से
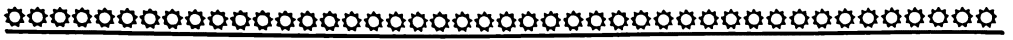
आप गड़े जाते थे। जैसे-तैसे बड़ी हिम्मत करके श्रीचरणों में प्रणाम किया और रो पड़े। श्रीस्वामीजी पहचान गये और आपको पूर्वाश्रम का नाम लेकर बोले, 'क्या दीवानसिंह है ?'

आप कुछ बोले नहीं। तब पास ही खड़े हुए एक व्यक्ति ने कहा, 'महाराजजी अब ये साधु हो गये हैं।' तब स्वामीजी ने आँख उठाकर इनकी ओर देखा। देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें पृथ्वी से उठा कर हृदय से लगा लिया। उनके नेत्रों से उस समय आनन्दाश्रु झरने लगे। वे एकदम प्रेम में भरकर गद्‌गद् वाणी से बोले, 'बेटा! तुम कृतार्थ हो गये और मुझे भी कृतार्थ कर दिया। तुमने दोनों ही को पवित्र कर दिया। शास्त्र में लिखा है, जिस कुल में एक भी साधु हो जाता है उसकी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है और तुम तो जन्म से ही साधु थे।' फिर बोले, 'अच्छा तुम स्वयं ही साधु हुए हो, इसलिये तुम्हारा नाम स्वतः प्रकाश होगा।' इस प्रकार जब आपने स्वामीजी को प्रसन्न देखा तो आपके आनन्द का पारावार न रहा। आप बड़े ही प्रसन्न हुए।

दूसरे दिन जब स्वामीजी ने इनकी ओर विशेष ध्यान देकर देखा तो बोले, 'क्यों भाई! तुम्हारा शरीर इतना दुर्बल क्यों हो गया है ? मालूम होता है, तुमने बहुत तितिक्षा की है। यह ठीक नहीं; देखो, गीता में भगवान् स्वयं कहते हैं'—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ *

(६।१६,१७)

*** अर्जुन, न अति भोजन करने वाले, न सर्वथा भोजन न करने वाले न बहुत अधिक सोने वाले और न अधिक जागने वाले से ही योग हो सकता है। जो नियमित आहार-विहार करता है, कर्मों में नियमित चेष्टा करता है तथा नियमित सोने और जागने वाला, उसीसे दुःखनाशक योग हो सकता है।**

जिस पर भी इस समय तो घोर कलिकाल है। इस समय के मनुष्य बहुत ही अल्पशक्ति हैं। इसलिये सामर्थ्य के अनुसार ही सब काम करने चाहिये। अधिक हठधर्मी करने से शरीर बीमार होकर मन और इन्द्रियाँ भी काबू से बाहर हो जाती हैं। इसके सिवा अभी तो तुम्हारे इस शरीर से संसार का बहुत काम होना है। इसलिये इसे सँभाल कर रखो। इसे न तो इतना ढ़ीला छोड़ो कि यह आलसी बनकर निकम्मा हो जाय और न ऐसा कसो कि परिश्रम के कारण एकदम शिथिल पड़ जाय। आजकल तो सब बातों में मध्यममार्ग ही श्रेयस्कर है। शरीर स्वस्थ न रहने पर तो किसी भी पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्।

गुरु महाराज का इस प्रकार आदेश होने पर हमारे महाराजजी ने तितिक्षा ढीली कर दी और युक्ताहार-विहार का नियम रखकर ठीक समय पर शौच, स्नान, आसन, व्यायाम तथा भोजनादि करना आरम्भ कर दिया। आप आश्रम की सेवा बड़े चाब से करते थे तथा श्रीस्वामीजी की सेवा में भी बड़ा उत्साह और प्रेम रखते थे। आश्रम में आने वाले सभी सत्संगियों को आप बड़ी श्रद्धा और प्रेम से देखते थे तथा सबके साथ यथोचित व्यवहार करते थे। आपके स्नेही तथा संकोची स्वभाव, मधुर आलाप एवं सेवा-परायणता आदि गुण सभी के चित्तों को बलात् आकर्षित कर लेते थे। इस प्रकार आप बहुत दिनों तक आश्रम में रहकर सबको आनन्दित करते रहे।

जब आपके साधु होने की बात घर वालों ने सुनी तो वे बड़े ही मर्माहत हुए। उनमें भी सबसे अधिक दुःख आपके पिताजी को हुआ। आपकी माताजी तो बहुत विचारशीला थीं; किन्तु पिताजी महाराज दशरथ की तरह प्रगाढ़ वात्सल्यरस की मूर्ति होने के कारण बड़े मोही स्वभाव के थे। वे तो यह सुनते ही कि दीवानसिंह साधु हो गये हैं, मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये। फिर जब होश हुआ तो विलाप करने लगे। तब इनकी माताजी ने समझाया कि 'आप क्यों दुःखी होते हैं, वह तो कई जन्मों का साधु है। मुझे तो उसने अपना विचित्र रूप दिखाकर साफ ही कह दिया था कि मैं तुम्हारे घर में संसार में फँसने के लिये नहीं आया हूँ। लाओ, मेरा धनुष

और पुस्तक, मैं तो वही साधु हूँ। यह सुनकर मैं तो डर गयी थी और मैंने उसे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी थी। हाय! मैंने तो स्वयं ही अपने बच्चे को घर से निकाल दिया!' ऐसा कहकर वे फूट-फूट कर रोने लगीं और मूर्च्छित हो गयीं। यह सुनकर पड़ोस के स्त्री-पुरुष भी इकट्ठे हो गये और इनके सुन्दर रूप, शील एवं गुणों का स्मरण कर फूट-फूट कर रोने लगे। संसार का यह स्वभाव ही है कि यदि किसी का सुहृद किसी निमित्त से विदेश चला जाय अथवा मरकर सदा के लिये आँखों से ओझल हो जाय तो काल-क्रम से स्वयं ही सन्तोष आ जाता है, किन्तु यदि कोई परमार्थसाधन के लिये जीवित अवस्था में ही साधु होकर रहे तो सहसा धैर्य नहीं होता।

यों तो आपका सारा कुटुम्ब अत्यन्त पवित्र, सुशिक्षित और साधन सम्पन्न था। उसमें सदा से ही योग सम्पन्न पुरुष होते रहते थे। किन्तु इस समय उनके चित्त को उलझन में डालने वाला भी तो कोई सामान्य पुरुष नहीं था। श्रीराम जी के वनगमन के समय अयोध्यावासियों की क्या दशा हुई थी। श्रीअयोध्या नरेश ने तो अपने प्राण ही त्याग दिये थे। माता कौशल्या भी मूर्च्छित होकर पुनः दर्शनों की आकांक्षा से ही जीवित रही थीं। तथा भरतजी को तो बिना दर्शन शान्ति ही नहीं हुई 'देखे बिनु रघुवीर पद, जियकी जरनि न जाय।' और सचमुच वे श्रीचरणों के दर्शन करके ही सुखी हुए। औरों की तो बात ही क्या ज्ञानिशिरोमणि गुरु वशिष्ठजी का भी चित्त व्याकुल होकर कह उठा था—'शोक सिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह।' भाई, इस नटखट से तो सम्बन्ध अपेक्षित है। फिर चाहे वह किसी भी प्रकार हो। चाहे मोह से अथवा ज्ञान से, प्रेम से, वैर से आदर से या अनादर से। उसके हृदय में हमारी और हमारे हृदय में उसकी याद बनी रहे। बस, फिर क्या है, बेड़ा पार है—

'कतः कीजिये न ताल्लुक हमसे।
अगर मुहब्बत न सही अदावत ही सही।'
बस, किसी भी सम्बन्ध से उससे छेड़छाड़ बनी रहे।
'मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन सरन पावै॥'

बस, जैसे-तैसे सब्र आया और सभी की एकबार देखने की उत्सुकता बढ़ी। एक-एक करके सभी आये। जिस समय माता, पिता, भ्राता अथवा कोई अन्य गुरुजन आते तो आप डर से झिझकते हुए बड़े अदब से उन्हें प्रणाम करते और संकोच के साथ एक ओर खड़े हो जाते, मानो कोई बड़ा अपराध किया हो। यदि कोई कुछ कहता तो आप रो देते, उत्तर कुछ न देते। वाह रे! नटखट, तेरी यह अनोखी लीला!

'लीजै नटवर की लीला निहार अनोखी जादू भरी।'

वाह रे! चतुर-चूड़ामणि, तेरी भोली-भाली सूरत चातुर्य का भण्डार है।

इस प्रकार एक-एक करके सभी घर वाले मिले। फिर सबने यह विचार किया कि इनका स्वभाव बहुत कोमल है। हमारा दुःख इन्हें सहन नहीं होता। इससे यह मर्माहत होते हैं, इसलिये जहाँ तक हो इनसे कम मिलो तथा छोटे-बड़े सभी उनके लिये भगवान् से प्रार्थना करो कि श्रीहरि इनका मनोरथ पूर्ण करें। इनके द्वारा सारे जगत् का मंगल हो और इनका कभी कोई अनिष्ट न हो। इनका वैराग्य तथा भगवत्प्रेम दिन-दूना रात-चौगुना बढ़े। अब तक तो ये हमारे निजधन थे, किन्तु अब तो जगत् के सभी जीवों का इन पर समान अधिकार है। अब ये केवल हमारी ही सम्पत्ति नहीं, वरन् सारे संसार के निजधन हैं। भगवान् इन्हें जहाँ भी रखें सुख से रखें, निरोग रखें। इनका लौकिक और पारलौकिक कल्याण हो। इन्हें कभी किसी भी अवस्था में दुःख न हो।

इस प्रकार भी इन्हें हृदय से आशीर्वाद देने लगे और उसी समय से मिलना-जुलना कम कर दिया। यदि वे आश्रम में जाते तो भी गुरु महाराज के पास ही हो आते, इन्हें देख दूर ही से नेत्रों को सफल कर लेते। हाँ इनके बड़े भाई सरदार हीरासिंह जी बड़े मनचले थे। वे घर में रहते हुए भी परम विरक्त थे। इनका अधिकाँश समय ध्यान, भजन एवं स्वाध्याय में व्यतीत होता था। ये अब भी इनकी बहुत देख-भाल रखते थे। इनकी तितिक्षा की कड़ी आलोचना करते, इन्हें युक्ताहार-विहार का महत्त्व समझाते और इनसे नियमानुसार आसन-व्यायाम आदि कराते थे। उन्हीं का प्रभाव है कि नियमित व्यायाम आप से अभी तक नहीं छूटा है तथा आपके भोजन, शयन, स्वाध्याय और कीर्त्तनादि भी एक नियमित क्रम से ही चलते हैं। आप कभी किसी

हालत में किसी के साथ सांसारिक बातें नहीं करते। आप प्राय: कहते हैं कि मनुष्य जीवन क्षणभंगुर है। प्रथम तो आयु ही बहुत अल्प है, उसमें भी प्राय: आधा समय खाने, पीने, सोने आदि में निकल जाता है। इस थोड़े से समय में मनुष्य को चाहिये कि दांत से दांत पीसकर निरन्तर श्रीभगवान् का भजन करे। सबसे उत्तम भजन तो यही है कि श्रीसन्त सद्गुरु की शरण होकर उनकी आज्ञा में रहते हुए निरन्तर उन्हीं की सेवा करे। यही वास्तविक भजन है। भला, हमको क्या मालुम है कि भगवान् क्या हैं और हमारा कर्त्तव्य क्या है? हमने अपने मन के कल्पित भगवान् माने हुए हैं। यदि मनीराम की मौज हुई तो खूब डटकर सेवा-पूजा कर ली और यदि किसी कारण से ये बिगड़ गये तो सब सेवा-पूजा ताक में धरी रह गयी। सद्गुरुदेव तो साक्षात् हमारे सामने विद्यमान हैं। वे हमारे प्रत्येक कर्म के साक्षी हैं— हमारे मन की चालों को खूब समझते हैं। इसलिये उनके सामने मनीराम की चालाकी नहीं चलती। अत: मन पर काबू पाने के लिये भी गुरुचरणों की सन्निधि और सेवा ही सबसे बड़ा साधन है।

आप आश्रम में रहते समय श्रीगुरुमहाराज की मनोवृत्ति को समझ कर ही उनकी समयानुकूल सेवा किया करते थे। आप कहा करते हैं, 'उत्तम सेवक तो वही है जो बिना बताये ही स्वामी के हृदय को समझ कर ठीक-ठीक सेवा करता है। मध्यम वह है जो कहने पर करे। और जो कहने पर भी ठीक-ठीक नहीं कर पाता, वह तो शिष्य या सेवक कहलाने का अधिकारी ही नहीं है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध तो यही है कि शिष्य का मन गुरु के मन से एक हो जाय। तभी शिष्य के मन में गुरु के मन का अनुभव ज्यों का त्यों उतर सकेगा। इसके अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं है। इसका साधन एकमात्र सच्चा प्रेम और हृदय की सच्ची लगन ही है। बहुधा शिष्य या भक्त लोग यह शिकायत किया करते हैं कि हम तो बहुत साधन और सेवा करते हैं, किन्तु भगवान् या गुरुदेव हम पर कृपा ही नहीं करते। जो ऐसा कहते हैं उन्होंने तो साधन या सेवा का रहस्य ही नहीं जाना। सच्चा साधक या सेवक तो बड़े से बड़ा त्याग या सेवा करने पर भी यही समझता है कि मुझसे तो कुछ बना ही नहीं और सर्वदा तत्परता से लगे रहने पर भी उनकी कृपा की बाट जोहता रहता है। वास्तव में इस तुच्छ अल्पज्ञ

जीव का पुरुषार्थ ही क्या हो सकता है किन्तु केवल कृपा के भरोसे साधन से विमुख होकर हाथ पर हाथ रखे बैठे रहने से तो कृपा की आशा करना भी नितान्त धोखे की बात है। अपनी ओर से पूर्ण पुरुषार्थ करते हुए भी भगवत्कृपा की ही आशा रखना सच्चे साधक का लक्षण है। ऐसा साधक ही एक दिन गुरुकृपा से कृतकृत्य हो सकेगा।'

कभी-कभी अपनी उस समय की गुरु सेवा का वर्णन करते हुए आपने कहा है, 'भाई, तुम क्या सेवा कर सकते हो? हमको वर्षों निरन्तर सेवा करते हुए खाना, सोना और आराम करना स्वप्न हो जाता था। महाराज का इतना बड़ा शासन था कि हम रात को पंखा कर रहे हैं और महाराजजी सो गये, तो उठने पर कहते कि अरे! तुम सोये नहीं, तुम बड़े मूर्ख हो। और यदि कोई किसी दिन उनके सोने पर पंखा छोड़कर सो जाता तो आप आँखें खुलने पर उसे बुलाते और उससे कहते कि तुम बिना आज्ञा कैसे चले गये। अब या तो तुम आश्रम से चले जाओ या कोई दण्ड स्वीकार करो।' बस फिर उसे कोई दण्ड बोल दिया जाता। बाबू सलामतराय रात को रजाई ऊपर से उठाकर पलंग पर रख दिया करते थे। एक दिन वे रखना भूल गये। तो महाराजजी ने रात ही को किसी से बुलाकर कहा, 'जाओ, अभी सलामत राय को बुलाकर लाओ।' माघ का महीना और पंजाब का शीत! तथापि वह बेचारा उसी समय गया और सलामतराय को जगाकर कहा, 'जल्दी चलो, महाराजजी बुला रहे हैं।' बाबूजी घबराये कि न जाने आज क्या अपराध हो गया। तुरन्त भागे आये। तब महाराजजी ने कहा, 'सलामत, आज तूने रजाई नहीं रखी। ला, उठाकर।' बेचारे की जान में जान आयी और ऊपर से उठाकर रजाई रख दी। तब आप बोले, 'बस, आज तुमको यही दण्ड है कि सारी रात न सोकर खड़े-खड़े भजन करो।' इस तरह महाराजजी अपने सेवकों को अपने कर्त्तव्य में कभी ढीला नहीं होने देते थे।

हमारे महाराजजी का कहना है कि जो भी काम करो वह छोटा हो या बड़ा ठीक समय पर और सुचारु रूप से करो। जिस समय जो कुछ करो पूरा चित्त लगाकर करो। बस, यही परम योग है। देखो, हमारा व्यवहार ही तो बिगड़ा है। परमार्थ तो बिगड़ा नहीं है। वह तो ज्यों का त्यों है। जिस समय तुम्हारा व्यवहार शुद्ध हो जायगा, परमार्थ बना ही समझो। इसी तरह यदि किसी विशेष समय पर किसी आदमी को

कोई काम करने के लिये नियुक्त किया गया हो तो उस समय उसे ही वह काम करना चाहिये। यदि किसी कारणवश वह उपस्थित न हो सकता हो तो उसे समय से पहले सूचना दे देनी चाहिये कि मैं अमुक कारण से नहीं आ सकूँगा। यदि तुमने किसी को वचन दिया है कि मैं अमुक समय पर अमुक स्थान पर मिलूंगा तो फिर चाहे दुनियां उलट-पुलट हो जाय, चाहे साक्षात् काल भी सामने आ जाय, तो भी तुम अवश्य पहुँच जाओ, या उस समय से पहले ही उसे सूचना दे दो कि अमुक विवशता से नहीं आ सकूंगा। प्रथम तो जहाँ तक हो सके किसी को वचन ही मत दो और यदि दो तो उसे प्राणपण से पूरा करो। ऐसा करने से जनता में तुम्हारा विश्वास होगा और तुम्हारा चित्त भी शुद्ध हो जायगा। जो परमार्थ-साधन के भरोसे व्यवहार में लापरवाही करता है वह परमार्थ से भी कोरा ही रह जाता है। इसलिए अपने सम्बन्धों का परस्पर धर्म और सच्चाई के साथ निर्वाह करो। यही जनता और जनार्दन दोनों की सबसे बड़ी सेवा है।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि श्रीगुरुदेव की सिद्धियों की धूम सारे शहर में और आस-पास भी फैल गयी थी। आश्रम में हर समय धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष सब प्रकार के लोग आते रहते थे। अनेकों भक्त और सेवक तरह-तरह के कामों में लगे रहते थे। सफाई पर तो महाराजजी का विशेष जोर था ही। इसलिये आश्रम में किसी प्रकार की गन्दगी नहीं थी। कहीं कोई सूखा पत्ता भी पड़ा न मिलता था। आश्रम क्या था साक्षात् नन्दनवन ही था। हर समय कुएँ से पानी लाया जाता था। दोनों समय लंगर भी चलता था। उसमें भोजन प्राय: भक्तजनों की स्त्रियाँ ही बनाती थीं। महाराजजी अतिथियों का बड़ा सत्कार करते थे और आगन्तुक साधुओं को देखकर बड़े प्रसन्न होते थे। आप कहा करते थे कि साधुओं को अपने खास जामाता से भी अधिक समझकर सेवा करनी चाहिये। वास्तव में आश्रम क्या था, कल्पवृक्षों का बगीचा ही था। उसकी छाया में जो जिस उद्देश्य से जाता वही कृत-कृत्य हो जाता। वहाँ निरन्तर पुरुषार्थचतुष्टय की लूट-सी लगी रहती थी। महाराजजी तो सदा अपनी मस्ती में—सहजावस्था में झूमते रहते थे। यहाँ तक कि कभी-कभी तो बालभाव में कौपीन बाँधने का भी ध्यान नहीं रहता था। आपका सच्चिदानन्द-आश्रम यथानाम

तथागुण था। उसकी नीचातिनीच सेवा से भी उच्चाति-उच्च ब्रह्मानन्द की ही प्राप्ति होती थी। एक पुरुष झाड़ दे रहा है और एकदम उसका चित्त समाहित हो जाता है। तो भी जैसे-तैसे वह अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। इतने में महाराजजी आ निकले। उन्हें एक दिल्लगी का मौका मिल गया। उसे गालियाँ देते हुए कहने लगे, 'अरे! तू झाड़ू देता है या सो रहा है?' और झाड़ू उसके हाथ से छीन ली तथा उसका आसन ठीक कर दिया। बस, अब क्या था? आपके करकमल का स्पर्श पाते ही जो कुछ कसर थी वह भी पूरी हो गयी। वह एकदम समाधिस्थ हो गया और उसकी चिज्जडग्रन्थि सदा के लिये टूट गयी। वह जीव से ब्रह्म हो गया—

'सद्गुरु के मारे मुए, धन्य जिन्हों के भाग।
त्रैगुण से ऊपर गये, जहाँ दोष नहिं राग॥'

जब समाधि से व्युत्थान हुआ तो सन्त सद्गुरु की अहैतुकी कृपा को स्मरण करके विह्वल हो गया और प्रेमाश्रुओं से गुरुदेव के चरणों को धोने लगा। इस प्रकार कोई कैसी भी सेवा करे, उसे मजदूरी में मिलता ब्रह्मानन्द ही था।

आश्रम में दयालजी नाम के एक वृद्ध महात्मा रहते थे। वे बड़े ही प्रसन्नवदन थे। किन्तु उन्हें बढ़िया-बढ़िया माल खाने का शौक था। वे प्रायः शहर में आते और महाराज के भक्तों से कहते कि आज महाराज अमुक चीज खायेंगे। इससे भक्त लोग बड़ी प्रसन्नता से वह चीज बनाकर उन्हें दे देते। और वे मन ही मन महाराजजी को भोग लगाकर उसे चुपचाप खा लेते। इसी तरह दयालजी खूब माल उड़ाते रहे। उनके मुँह में दांत एक भी नहीं था, इसलिये वे प्रायः हलवा या खीर ही खाते थे। महाराजजी दयालजी का बड़ा ध्यान रखते थे। वे जब भोजन के विषय में पूछते तो दयालजी बड़ी नम्रता से कह देते, 'आपकी बड़ी कृपा है, मैं तो आपके नाम पर ही भिक्षा मांगकर पेट भर लेता हूँ।' यह सुनकर महाराजजी बड़े प्रसन्न होते और दयालजी की प्रशंसा करते हुए कहते कि बड़ा ही निस्पृह साधु है। एक बुढ़िया महाराजजी की भक्त थी। उससे महाराजजी का नाम लेकर ये बहुत चीजें ले आया करते थे। एक दिन प्रसंगवश वह महाराजजी से पूछ बैठी कि कल अमुक चीज कैसी बनी थी। महाराजजी बोले,

'क्या ? हमने कब खायी ?' बुढ़िया—'कल दयालजी अमुक चीज नहीं लाये क्या ?' महाराजजी—'नहीं, यहाँ क्यों लाते ?' तब तो बुढ़िया बड़ी चकित हुई। महाराजजी ने पूछा, 'क्या बात है, ठीक बताओ।' तब बुढ़िया ने सारा हाल सुनाया। महाराजजी ने दयालजी को बुलाया और गाली देते हुए हँसकर कहा, 'क्यों रे! तू हमारे नाम से लाकर रोज माल उड़ाता है। क्या बात है ?' दयालजी हँसे और हाथ जोड़कर बोले, 'गरीब-परवर! आपका नाम लेकर तो सारा संसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त करता है। यदि मैंने आपके नाम पर पेट ही भर लिया तो क्या पाप किया। और आपके पूछने पर मैं तो स्पष्ट ही कह देता था कि मैं तो आपके नाम पर भिक्षा माँग कर खा लेता हूँ। इसके सिवा मैं मन ही मन वह भोजन आपको अर्पण भी कर लेता था।' इस पर महाराजजी प्रसन्न होकर हँस पड़े और सब लोगों से कह दिया कि आज से दयालजी की छुट्टी है। ये जो चाहें खायें शहर में भी इन्हें हमारा स्वरूप समझ कर ये जो माँगें वही खिलाया करो।

श्रीस्वामीजी न तो किसी को बुलाते थे और न किसी से मना करते थे जो जिस भावना से आता उसकी उसी भावना की पूर्ति हो जाती थी। आपके दिव्यमंगल-विग्रह में कतिपय भक्तों ने दिव्य चमत्कार भी देखे थे। एक दिन एक भक्त ने पंखा झलते हुए देखा कि स्वामीजी पलंग पर पड़े हैं और उनका शरीर बढ़ने लगा। वह इतना बढ़ा कि सारा कमरा भर गया। अत: वह भयभीत होकर कमरे से बाहर निकल आया। उसी समय एक दूसरे भक्त ने उन्हें बगीचे में टहलते देखा तथा इसी समय किसी भक्त ने उन्हें अपने घर में भोजन करते पाया। इसी तरह कभी वे होते तो आश्रम में और कोई लोग उन्हें दूसरे शहर या तीर्थों में भ्रमण करते देखते। पूछने पर कह देते कि कभी-कभी हम बाहर घूमने जाया करते हैं। कभी आप कमरे में अकेले ही होते, किन्तु ऐसा प्रतीत होता मानो कई लोग आपस में बात-चीत कर रहे हैं। परन्तु देखने पर वहाँ कोई दिखायी न देता। पूछने पर आप बतलाते कि कभी-कभी हमारे पास देवता सिद्ध लोग आया करते हैं।

बड़े महाराज की इस प्रकार की चमत्कारिक घटनाएँ बहुत हैं। कोई जिज्ञासु कहीं बाहर है और उसके साधन में रुकावट पड़ गयी। बस, वह मन ही मन आपका

स्मरण करता तो उसे तत्काल ऐसा प्रतीत होता कि हृदय में श्रीमहाराज की वाणी सुनायी दे रही है अथवा आप स्वयं उसके सामने प्रकट होकर उसके संशय को निवृत्त कर रहे हैं। आपकी सर्वज्ञता और अन्तर्यामिता की ख्याति तो सर्वत्र थी। यदि किसी साधक को कोई बात पूछनी होती तो वह स्पष्ट न कहकर उस संकल्प को मन में लिये सामने जाता। बस; स्वामीजी उसकी समस्या को ताड़कर उससे मन का सारा हाल कह देते। एकबार आश्रम में भण्डारा था। उसमें भोजन की कमी पड़ गयी। तब आपने अपना अँगोछा उस पात्र के ऊपर डाल दिया और कहा कि इसे उघाड़ना मत, ढके-ढके ही लेना। इससे तुम जितना चाहोगे उतना पदार्थ इस पात्र से निकल आयेगा। बस ऐसा ही हुआ उसमें से निकाल-निकाल कर हजारों मनुष्यों को भोजन करा दिया और जब अन्त में अंगोछा उठाया तो उसमें केवल पाँच आदमियों का भोजन शेष था। आपकी एक बात बड़ी विचित्र थी। कभी-कभी आप स्वयं ही पंगत में भोजन परोसने लगते थे। उस समय एक-एक आदमी के आगे पाँच-पाँच व्यक्तियों के योग्य भोजन परोस देते थे। वे बेचारे गिड़गिड़ा कर मना करते तो आप कहते, 'देखो, आज जो जितना अधिक खायगा उसको ध्यान में उतना ही अधिक आनन्द मिलेगा।' फिर आप ऊपर खड़े होकर कहते, 'खबरदार! जो किसी ने एक कण भी छोड़ा।' बेचारे भोजन करने वाले चुपचाप सब खा जाते। किन्तु सचमुच उन्हें उससे किसी प्रकार का विकार न होता और भोजन में भी उनका मन अधिक समाहित होता। ऐसी छेड़-छाड़ प्रायः उन्हीं लोगों के साथ होती थी जो आपके विशेष कृपापात्र थे।

उपरति की ओर

किन्तु आश्रम की इस धूम-धाम से हमारे चरितनायक का चित्त ऊब गया। आपको तो अब किसी का शब्द भी नहीं सुहाता था। फिर आपका आविर्भाव भी तो एक आश्रम की संकुचित सीमा में रहने के लिये नहीं हुआ था। अतः आपका विशाल हृदय अब विश्वकल्याण की भावना से व्याकुल हो उठा। यह बात आपने हम लोगों से कई बार कही है कि उस समय मुझे यह अभिमान था कि मैं वह काम करूँगा जिसे श्रीमहाराज जी भी नहीं कर सके। किन्तु कुछ भी नहीं हो सका। इस प्रकार का दैन्य और असन्तोष तो आपका स्वभाव ही है। और श्रीमन्महाप्रभु जी के शब्दों में यही एक सच्चे भक्त का स्वभाव होना भी चाहिये—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥ ❋

अतः अब आपका विचार यह वह स्थान छोड़ने का हो गया। अथवा यों कहिये कि उस कूपमण्डूक वृत्ति को छोड़कर एक अनन्त महासागर में तैरने के लिये आप आतुर हो गये, क्योंकि अब तो आपको और भी अधिक भीड़ में रहना था। आप जैसे उदारचेता गुरु-कृपा से उपार्जन की हुई आध्यात्मिक संपत्ति को अपने ही पास कैसे रख सकते थे। अतः जिस प्रकार परमहंस रामकृष्णदेव से प्राप्त हुई संपत्ति को लेकर स्वामी विवेकानन्द ने संसार में भारतीय संस्कृति की विजय वैजयन्ती फहरा दी थी, अथवा गुरुदेव के मना कर देने पर भी जैसे श्रीमद्रामानुजाचार्य ने उनका बताया हुआ कल्याणकारी मन्त्र एक ऊँचे टीले पर चढ़ कर सभी को सुना दिया था, उसी प्रकार मानो अधिकारी-अनधिकारी किसी का विचार न कर मुक्तहस्त से सभी को भगवन्नाम-रत्न लुटाने के लिये आप एक दिन बिना किसी से कुछ कहे वहाँ से चल दिये।

'मनहु भागु मृग भागवश बागरु विषम तुराय।'

❋ तिनके से भी अत्यन्त तुच्छ और वृक्ष से भी अधिक सहनशील होकर तथा स्वयं मान की इच्छा न रखकर और दूसरों का मान करते हुए सर्वदा श्रीहरि का कीर्त्तन करना चाहिये।

कुछ दिन आप मस्ती में इधर-उधर घूमते रहे। केवल एक बार भिक्षा माँग कर निर्वाह करते और हर समय मौन रहकर सहजावस्था में विचरते रहते। उस समय सम्भवतः आपका भ्रमण पंजाब के पर्वतीय प्रान्तों में हुआ। इस प्रकार घूमते-घूमते आप आनन्दपुर पहुँचे और सिक्खों के बड़े गुरुद्वारे में रहने लगे। वहाँ के महन्तजी से प्रार्थना करके आपने आश्रम की कुछ सेवा स्वीकार की। आप वहाँ के लंगर का सबसे बड़ा बर्तन, जिसमें प्रायः एक हजार व्यक्तियों के लिये दाल बन सकती थी, माँजा करते थे। आपने सुनाया था कि वह इतना बड़ा था कि उसके भीतर खड़े होकर उसे मांजना होता था। इसके सिवा आप वहाँ के वृक्षों को भी सींचा करते थे। वहाँ आप केवल एक समय लंगर का सामान्य भोजन करते थे, महन्तजी के कहने पर भी आपने दूसरे समय दूध या कोई चीज लेना स्वीकार नहीं किया। फिर आप एक गुरुमुखी के ग्रन्थ से दस गुरुओं के जीवन चरित्र सुनाने लगे। आश्रम में प्रत्येक कार्यक्रम में आप सम्मिलित होते थे। उस समय शीतकाल था और पंजाब प्रान्त का पहाड़ी प्रदेश, तो भी आप रात को तीन बजे उठकर तालाब में स्नान करते और एक सामान्य-सी चादर ओढ़कर सवेरा होने तक ध्यान में बैठे रहते।

इस प्रकार आप बहुत दिनों तक आनन्दपुर में रहे। फिर वहाँ से जनौड़ी चले आये। यहाँ आपके गुरुभाई स्वामी श्रीपरमानन्द गिरिजी रहते थे। बड़े महाराजजी में गुरुभाव रखने वाले गृहस्थ भक्त तो बहुत थे, परन्तु उनके विरक्त शिष्य ये दो ही थे। स्वामी परमानन्दजी व्याकरण और वेदान्त के अच्छे पण्डित थे। आपके पास ग्रन्थों का भी अच्छा संग्रह था। जनौड़ी में साधु-सेवी और सत्संगी लोग बहुत थे। स्वामी परमानन्द जी की कुटी पर योगवशिष्ठ और आत्मपुराण की कथा नियम से हुआ करती थी। आपका आसन तो इसी कुटी पर था। किन्तु प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होने के लिये आप वहाँ से दो मील दूर संत विश्वामित्र जी की कुटी पर चले जाते थे। संतजी बड़े शौकीन साधु थे। इन्हें खाने-पहनने का बड़ा शौक था। इसलिये उनकी कुटी में सामान भी बहुत था। बहुत से बहुमूल्य ऊनी, रेशमी और सूती वस्त्र; दो-चार घड़ियाँ और बहुत से बरतन भांड़े भी थे।

एक दिन सन्तजी कार्यवश कहीं बाहर जाने लगे। तब उन्होंने आपसे कहा, 'स्वामीजी, आप कुटिया की थोड़ी देख-भाल रखें। यों तो मैं एक आदमी भी रखे जाता हूँ, फिर भी आप थोड़ा ध्यान रखें।' संतजी वहाँ एक आधा-पागल पहाड़ी आदमी छोड़ गये। आप वहाँ नित्यप्रति प्रातःकाल और सायंकाल में जाते थे तथा तीन-चार घंटे रहते थे। एक दिन प्रातःकाल जब आप पहुँचे तो कुटी में कुछ खटपट मालूम हुई। दरवाजे के पास जाकर देखा तो उसमें रोशनी भी हो रही थी। फिर कुटी के पीछे से देखा तो मालूम हुआ कोई आदमी जंगला तोड़कर कुटी में घुसा है। भीतर जाकर देखने पर वह कुटिया का रखवाला ही निकला। उसने कुटी के सारे कपड़े, बरतन खाने के सामान और घड़ियों की एक गठरी बांध ली है। आपको देखते ही वह घबरा गया और भागने की चेष्टा करने लगा। तब आपने समझाया कि तू घबरा मत, 'मैं तुझसे कुछ नहीं कहूँगा। किन्तु तू एक बात मान ले कि इनमें से वह सामान तो निकाल दे जो स्वामीजी के ही मतलब का है और उसके बदले दूसरा सामान जो तेरे काम का हो, भले ही और बाँध ले। तू ऐसी कोई चीज मत ले जो तुझे बेचनी पड़े।'

तब आपने उसमें से स्वामीजी के बढ़िया-बढ़िया कपड़े, घड़ियाँ और कुछ आवश्यक बरतन तो निकाल लिये, तथा खाने का बहुत-सा सामान, नगद-रुपया और मेवे-मिठाई आदि की प्रायः एक मन की गठरी उठवा कर उसके सिर पर रखवा दी। वह घबराया कि ये स्वामीजी से कह देंगे। तब आपने उसे विश्वास दिलाया कि मैं किसी से नहीं कहूँगा। परन्तु भाई! एक बात सोच ले। यह मनुष्य-शरीर बड़ी कठिनता से मिला है। यह चोरी करने के लिये नहीं है। अतः यदि तू उचित समझे तो आज से चोरी करना छोड़ दे और भगवान् का भजन किया कर।

आपके उपदेश से प्रभावित होकर उसने वह सामान न लेना चाहा। परन्तु उसके बहुत मना करने पर भी आपने वह गठरी उठा कर उसके सिर पर रख दी। वह लेकर चला तो गया, किन्तु फिर वह सामान अपने बच्चों को देकर सदा के लिये साधु हो गया। इसका पश्चाताप करके वह बहुत रोया करता था और हर समय भजन में लगा रहता था। कभी-कभी महाराजजी के पास आकर भी वह बहुत रोता था, तब आप उसे समझा देते थे। पीछे किसी प्रकार इस घटना का पता सन्त विश्वामित्र

जी को भी लग गया। उनके हृदय पर भी इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपना सब सामान दीन-दुखियों को बाँट दिया और स्वयं माधूकरी भिक्षा करके भजन करने लगे।

सचमुच सन्तों की लीला बड़ी अद्भुत होती है। गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी कहते हैं—

'संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। परम दुःख द्रवै सुसंत पुनीता॥'
वन्दों संत समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोउ॥

गंगातट पर

विरक्तों का प्रधान क्षेत्र सदा से गंगातट ही रहा है। भारत वर्ष के सभी प्रान्त के विरक्त सनातन काल से श्री भागीरथी के अञ्चल में आकर ही अपने हृदय की तपन शान्त करते रहे हैं। महापुरुषों ने गंगाजल को साक्षात् ब्रह्मद्रव कहा है। इसमें हृदय को शान्त करने की स्वभाव से ही एक अपूर्व शक्ति है। माँ गंगा की कलकल ध्वनि में जिज्ञासुओं को अपने प्राणाराध्य का ही सन्देश सुनाई देता है। अतः हमारे महाराजजी ने भी दो-चार वर्ष पंजाब में बिचर कर अब श्रीगंगातट पर ही चलने का विचार किया।

जिला बुलन्दशहर में अनूपशहर से प्रायः तीन मील दक्षिण की ओर भेरिया नाम का एक छोटा-सा गाँव है। इससे प्रायः आधे मील की दूरी पर गंगाजी के किनारे एक ऊँचे टीले पर बंगाली बाबा नाम से प्रसिद्ध एक वृद्ध महात्मा रहते थे। इनका योगपट्ट था स्वामी श्रीरामानन्द जी पुरी। उस समय इस ओर वे सर्वमान्य सन्त थे। बड़े ही निष्ठावान्, तपस्वी, विद्वान् और विरक्त महात्मा थे। उनके कारण और भी कुछ

सन्त वहाँ फूस की कुटिया में निवास करते थे। पक्की कुटी केवल श्रीबंगाली बाबा की ही थी। समय-समय पर आस-पास के गाँवों से बाबा के कुछ गृहस्थ भक्त भी आते रहते थे। इन भक्तों में गवां के लाला कुन्दनलालजी अच्छे साधु-सेवी थे। इस समय वे भी कुटी पर आये हुए थे। बाबा के पास इस समय जो सन्त उपस्थित थे उनमें अच्युत मुनिजी प्रधान थे। पीछे इन्हीं की कृपा से यह स्थान भृगुक्षेत्र नाम से एक अच्छा आश्रम बन गया है।

सम्वत्१९६५ या ६६ की बात है, सम्भवत: कार्तिक का महीना था, बंगाली बाबा की कुटी के सामने ही गंगाजी के किनारे नीम के नीचे चबूतरे पर सिद्धासन लगाये एक महापुरुष विराजमान हैं। लाला कुन्दनलाल जी को दूर ही से आपके दर्शन हुए। आपके अद्भुत तेज और प्रशान्त भाव को देखकर वे मुग्ध हो गये और समीप जाकर आपको प्रणाम किया। देखा कि आपके पास एक कमण्डलु मात्र है, शरीर में एक लम्बा कुर्ता है तथा एक-दो अंगोछे भी रखे हुए हैं। शरीर लम्बा और सुडौल है, वर्ण अत्यन्त गौर है, उसमें अत्यन्त दिव्य तेज है, मुखमण्डल लालिमा से सुशोभित है, ऊँची नासिका है, भुजाएँ जानुपर्यन्त लम्बी हैं तथा नासिकाग्र दृष्टि है। आप अत्यन्त शान्त, संकोची और मितभाषी जान पड़ते हैं। सम्भवत: रात्रि को ही आप आ गये हैं और सोकर उठने पर अभी तक ध्यान में बैठे हैं।

लालाजी ने जाकर प्रणाम किया और चंचल स्वभाव वाले पुरुषों की तरह कई प्रश्न भी किये। उत्तर बहुत संक्षेप में मिला; किन्तु उन शब्दों की मधुरिमा से लालाजी का चित्त बहुत आकर्षित हुआ। और आपसे प्रार्थना की कि आज यहीं भिक्षा करें तथा कुछ दिन रहने की कृपा करें। आपने धीरे से कह दिया, 'अच्छा।' बस, फिर शौच, स्नानादि से निवृत्त हो ९ बजे के लगभग आप वृद्ध बंगाली बाबा के पास गये और उन्हें प्रणाम कर एक ओर सिद्धासन लगा कर बैठ गये। इतने में ही लालाजी ने कहा, 'महाराज! भिक्षा तैयार है।' सुनकर आप उठे और उसी चबूतरे पर जा बैठे। लालाजी एक थाली में कुछ मीठा और शाक, दाल, रोटी आदि जो कुछ बना था, लगाकर बड़ी श्रद्धा से वहीं ले आये। आपने जितना आवश्यक था रख लिया, बाकी

लौटा दिया। और सब कुछ मिलाकर बड़ी शान्ति से धीरे-धीरे भोजन किया। तदनन्तर आचमन करके उठे और थाली लाला कुन्दनलाल ने उठा ली। आपको भोजन करते देखकर भी लालाजी बड़े मुग्ध हुए। आपका चलना, फिरना, उठना बैठना, सोना, बोलना, स्नान करना, कुल्ला करना आदि सभी क्रियाओं में एक विचित्र मोहकता, मर्यादा और शान्ति का अनुभव होता था। आपके प्रत्येक व्यवहार में गीता में कहे हुए स्थितप्रज्ञ, भक्त अथवा गुणातीत के लक्षण तथा भागवत में कहे हुए भागवतोत्तम के लक्षण प्रकट होते थे।

आप जब पहली बार ही बंगाली बाबा के पास जाकर बैठे तो उसी समय उनका चित्त आपकी ओर आकृष्ट हुआ। वे अपने शिष्य स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी से बोले, 'भाई, ये तो कोई अलौकिक महापुरुष हैं। कोई दिव्य महाशक्ति ही साधु के वेष में छिपकर आयी है। इनकी नासिका से दिव्य गन्ध निकलती है तथा इन्हें देखकर चित्त बलात्कार से आकर्षित हो जाता है। इनकी सेवा का पूरा ध्यान रखना। बड़े विरक्त जान पड़ते हैं। इनके पास कोई वस्त्र भी नहीं है। तुम जाकर युक्ति से पूछ लेना। कुन्दनलाल का स्वभाव चंचल है। उसके कहने से वे स्वीकार नहीं करेंगे।'

स्वामी शास्त्रानन्द जी तो आपसे स्वयं ही मिलना चाहते थे। उन्होंने जबसे आपको देखा है तभी से उनका चित्त बैचेन है। आप उड़ीसा देश के रत्न हैं। जैसा आपका नाम है वैसे ही गुण भी हैं। इस समय आपकी विरक्ति, संयम और गुरुनिष्ठा आदर्श थीं तथा स्वभाव बड़ा ही कोमल, उदार और सरल था। इन दिनों श्रीबंगाली बाबा का यश: सौरभ सब ओर फैला हुआ था। आपके पास अनेकों बड़े आदमी तरह-तरह की भेंट लेकर आते रहते थे। किन्तु अत्यन्त वृद्ध होने के कारण बाबा तो केवल आधासेर दूध (ताजा) एक छटांक धान की खीलें ही खाते थे। शास्त्रानन्दजी भी ऐसे विरक्त थे कि भेंट की सामग्री में से कुछ नहीं छूते थे। आप बाबा की सेवा से निवृत्त होकर माधूकरी भिक्षा के लिये आस-पास के गाँवों में जाते और वहाँ से जो रूखी-सूखी भिक्षा मिलती लाकर गुरुदेव के आगे रख देते। वे उसे छू देते, तब उनकी आज्ञा से उसे ही आप पा लेते। चौबीसों घण्टों में आपका बस यही भोजन था। बंगाली बाबा का माधूकरी भिक्षा पर बहुत जोर था। वे कहा करते थे—

'भिक्षाहारो फलाहारो भिक्षा नैव परिग्रहः।
सदन्नं वा कदन्नं वा सोमपानं दिने दिने॥'*

इसलिये भेंट में जो कुछ भी माल हाथ आता था वह तो आने-जाने वाले गृहस्थों, बालकों और साधुओं को बँटता रहता था। बाबा कहा करते थे कि यह तो भेंट का माल है। यह सब सकामी पुरुष लाते हैं। साधकों के लिये तो यह विष के समान है। साधुओं के पास आनेवाले जिज्ञासु और भक्त जो अपने घर की भी पूँजी गँवा बैठते हैं, उसका प्रधान कारण यही है कि वे फिर खाने-पीने में ही लगे रहते हैं। अत: जो साधुओं के द्वारा कल्याण चाहे वह उसके यहाँ की कोई वस्तु ग्रहण न करे। भले ही भंगी- चमारों के घरों से भिक्षा माँग ले। इसी से हमारे महाराजजी भी कहा करते हैं—'साधु होने की अपेक्षा तो यही अच्छा है कि अपनी मेहनत-मजदूरी करके पेट भरे, जितना बन सके साधुओं की सेवा करे और जितना समय मिले उसमें भजन करे। घर-बार छोड़कर साधु-बाबा बनकर मुफ्त के माल उड़ाने से तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। भाई, इस समय घोर कलिकाल है, इसमें न शरीरों में सामर्थ्य है, न ब्रह्मचर्य का बल है और न बुद्धि ही शुद्ध है अत: भिक्षा का रूखा-सूखा अन्न खाकर भजन करना तो साक्षात् सूली पर चढ़ना ही है। मैंने गंगा-तट के और भी कई विरक्त महात्माओं के मुख से सुना है, 'भाई, इस समय हठधर्मी से कुछ वश नहीं चलता। हम लोगों ने जवानी के जोश में कहो अथवा वैराग्य के नशे में कुछ परवाह नहीं की। उसी का परिणाम है कि आज वृद्धावस्था में हम लोगों को विवश होकर कुटिया तथा दुनिया का सहारा लेना पड़ता है। अत: इस समय तो यही अच्छा है कि शुद्ध जीविका द्वारा जो कुछ प्राप्त हो उसी अन्न से यथाशक्ति अतिथियों का सत्कार करते हुए युक्ताहार-विहार-पूर्वक जीवन व्यतीत करे, तथा जैसा बने भगवान् का भजन करे। सर्वसाधारण के लिये तो ऐसा करना अच्छा है। भगवान् की विशेष विभूतियों के विषय में हम कुछ नहीं कहते, उनकी वे जानें या उनके भगवान् जानें।''

---

* भिक्षा माँग कर खाना तो फलाहार ही है, भिक्षा परिग्रह नहीं है। भिक्षा में अच्छा अन्न मिले अथवा बुरा, वह तो रोज-रोज सोमपान करने के समान ही है।

अस्तु। स्वामी श्रीशास्त्रानन्द जी कुछ फल लेकर हमारे महाराजजी के पास आये। उन्हें आते देख महाराजजी खड़े हो गये और दोनों ही एक- दूसरे को बड़ी नम्रता से प्रणाम करके बैठ गये। कुछ देर तक तो दोनों चुप रहे। फिर एक दूसरे का कुछ परिचय प्राप्तकर आप से वस्त्रादिकी सेवा के विषय में बातचीत कर स्वामीजी चले गये। उसी दिन से ये दोनों महापुरुष एक-दूसरे पर मुग्ध हो गये और सदा के लिये पारमार्थिक मित्र बन गये। स्वामीजी ने आपसे अपनी कुटी में चलने के लिये भी प्रार्थना की, किन्तु आपने 'यहीं ठीक रहेंगे' ऐसा कहकर टाल दिया। कुछ दिनों तक तो आप आश्रम पर ही एक समय भिक्षा करते रहे, किन्तु फिर स्वामीजी के साथ गांवों में माधूकरी के लिये जाने लगे। इससे लाला कुन्दनलालजी को बहुत दुःख हुआ अतः उनके विशेष आग्रह से आप उनसे भी ले लिया करते थे। अथवा रात्रि को वे दूध भेज दिया करते थे।

कुछ दिनों बाद लालाजी ने खबर भेजकर गवां से अपने भतीजे बाबू हीरालाल को बुलाया। उन्होंने आकर पहली ही बार महाराजजी का दर्शन किया। वे आपको देखते के देखते ही रह गये। उनका चित्त आपकी ओर इतना आकर्षित हुआ कि वे आपे में न रहे। फिर कई दिन रहकर उन्होंने आपका सत्संग किया और आपसे गवां पधारने के लिये प्रार्थना की। किन्तु आपने कोई उत्तर न दिया। तब उन्होंने बंगाली बाबा से प्रार्थना की कि आप इन्हें गवां भिजवा दें। बाबा वृद्ध थे, महाराजजी भी इनमें श्रद्धा रखते थे। अतः जब उन्होंने कहा कि 'हीरा आपको गवाँ ले जाने को कहता है, क्या जाओगे?' तो आप बोले, 'जैसी आज्ञा हो।' बाबा ने कहा, 'अच्छा, गवां भी देख लो, अच्छी जगह है, वहाँ के लोग भी साधु-सेवी हैं। यदि चित्त लगे तो कुछ दिनों रह जाना, नहीं तो फिर चले आना।' बाबा के इस प्रकार कहने पर आपने गवां जाना स्वीकार कर लिया। बाबूजी ने गवां से सवारी मँगा ली। लाला कुन्दनलाल ने अपने हाथ से सींकर और रंगकर एक खद्दर की चादर भेंट की, जो बहुत आग्रह करने पर आपने स्वीकार कर ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल उसी घाट से नौका द्वारा गंगाजी पार की। उस पास सवारी खड़ी थी। परन्तु बहुत आग्रह करने पर भी आप सवारी में न बैठे, पैदल ही

चल दिये। तब संकोचवश बाबू जी को भी पैदल ही चलना पड़ा। आप नासिकाग्र दृष्टि रखे बड़ी मस्ती से चल रहे थे। न दांये देखते थे न बायें। आपकी स्वाभाविक गति को देखते हुए तो मालूम होता था आप धीरे-धीरे चल रहे हैं, परन्तु साथ चलने वालों को भागना पड़ता था। बस, दो-ढाई घंटे में ही गवां पहुँच गये और लाला कुन्दनलाल के बगीचे में ठहरे।

यहाँ प्रातःकाल से लेकर रात्रि पर्यन्त आपका सारा समय ठीक बँधा हुआ था। जो काम जिस समय करने का नियम था उसे ठीक उसी समय करते थे। उसमें एक मिनट भी आगे-पीछे नहीं होता था। प्रातःकाल उठकर वहाँ से तीन मील दूर गंगा स्नान के लिये जाते थे। वहाँ मोहलनपुर के पण्डित हरिप्रसादजी, जो अच्छे विद्वान् और भजनानन्दी थे, मिलते थे। उनके साथ प्रायः नियमपूर्वक भागवत का विचार होता था। उसके बाद प्रायः नौ बजे कुटिया पर लौटकर दो घंटे कथा करते थे। फिर भिक्षा के लिये जाते थे, उन दिनों आप प्रायः माधूकरी ही करते थे। किन्तु विशेष आग्रह करने पर सप्ताह में एक दिन किसी का निमन्त्रण भी स्वीकार कर लेते थे। दोपहर में केवल पन्द्रह बीस मिनट आराम करके फिर स्वाध्याय में लग जाते थे। फिर दो बजे से पाँच बजे तक बगीचे में ही कथा होती। उस समय के मुख्य श्रोता बाबू हीरालाल जी, पण्डित श्रीरामजी और महाशय सुखराम गिरिजी थे। उस समय वेदान्त और योग के ग्रन्थों पर बड़ा गम्भीर विचार किया जाता था।

बाबू हीरालालजी ने अभी तक श्रीमहाराज जी के स्वरूप को पूरी तरह नहीं समझा था। केवल इतना जानते थे कि ये अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू, फारसी के अच्छे विद्वान् हैं और किसी हद तक आध्यात्मिक स्थिति में भी बढ़े-चढ़े हैं, अर्थात् एक उच्च कोटि के साधक हैं। इतने ही से श्रीमहाराजजी के चरणों में उनका प्रगाढ़ प्रेम हो गया था। यद्यपि महाराजजी कई बार उपराम हो जाते थे, तो भी बाबूजी ने उत्तम सेवा सत्संग प्रेम और समय की पाबन्दी आदि गुणों से इन्हें अपने प्रेम-पाश में बांध लिया था। अतः कोई विचार न होने पर भी आप इस बार छः महीने गवां में रहे।

पूज्य बाबा

भेरिया की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है पूज्य श्री उड़िया बाबा जी के* साथ आपकी भेंट। यो तो कई दृष्टियों से आपके जीवन में भृगुक्षेत्र पधारने की घटना एक ऐतिहासिक महत्त्व रखती है किन्तु उसी दिन पूज्य बाबा के साथ जो आपकी भेंट हुई उसका स्थान तो निराला ही है। जीवन में आपका सबसे घनिष्ठ और चिरस्थाई सम्बन्ध श्रीबाबा से ही रहा है और यह जिस दिन से हुआ है, निरन्तर बढ़ता ही गया है। वह दिन भी दैवयोग से वही था जिसमें आपने भृगुक्षेत्र में पदार्पण किया। उस रोज बाबा पूर्व की ओर से गंगा किनारे विचरते भेरिया में पधारे और आप उसके कुछ ही क्षण पश्चात् पश्चिम से यात्रा करते राजघाट स्टेशन पर उतरकर यहाँ आये। बस, श्री बंगाली बाबा की कुटी के सामने नीम के नीचे चबूतरे पर यह आध्यात्मिक गंगा-यमुना का अद्भुत संगम हुआ। उस दिन भेरिया सचमुच आध्यात्मिक प्रयागराज ही बन गया था। वहाँ जैसे प्रच्छन्नवाहिनी सरस्वती का सम्मिलन माना जाता है, उसी प्रकार यहाँ निगूढ़भावापन्न स्वामी श्री शास्त्रानन्द जी थे। इस प्रकार उस दिन यहाँ सन्त-स्वप्न में पुण्य-तोया त्रिवेणी का ही आविर्भाव हो गया।

बस, दोनों की एक-दूसरे पर गहरी दृष्टि पड़ी और न जाने मूक भाषा में क्या सम्भाषण हुआ। यह सब तो वे ही जानें; किन्तु दोनों ही के पारस्परिक व्यवहार से यह तो स्पष्ट है कि उस दिन यह अनोखा ही हृदय-मिलन हुआ। दोनों ही ने एक-दूसरे की स्थिति पर मुग्ध होकर एक-दूसरे को हृदय समर्पित कर दिये। इसके पश्चात मुँह खोलकर तो सम्भवतः जीवन भर कोई बात नहीं हुई। यह सम्मेलन तो सचमुच वैसा ही हुआ जैसा नवद्वीप धाम में श्रीपाद नित्यानन्द और श्रीगौरसुन्दर का हुआ था। वहाँ जैसे श्रीपाद के मिलने पर श्रीगौरसुन्दर का उत्साह और विश्व प्रेम सौ गुना बढ़

---

* इस ग्रन्थ को लिखते समय पूज्य श्रीबाबा विद्यमान थे। इसलिये इस प्रकरण में आपका वर्तमानकी तरह वर्णन किया गया है। किन्तु शोक है कि गत चैत्र कृ० १४ सं० २००५ वि० को एक आततायीने आप पर गड़ासे से प्रहार किया, जिससे कुछ ही क्षणों में आप हमें अनाश्रित छोड़कर ब्रह्मलीन हो गये हैं।
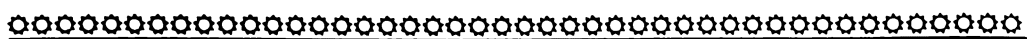
गया था, उसी प्रकार बाबा के मिलने पर आपका भी एक बड़ा भारी अभाव-सा मिट गया और इनका सहयोग पाकर आपने निर्भय होकर श्रीहरिनाम वितरण किया।

पूज्य बाबा और हमारे चरितनायक की जोड़ी साक्षात्-नर-नारायण के समान ही है। आगे चलकर तो दोनों का जीवन परस्पर बहुत घुल-मिल गया है। अत: यहाँ बाबा के जीवन का संक्षिप्त परिचय देना किसी प्रकार अप्रासंगिक न होगा। आपने पुण्यपुरी श्रीजगन्नाथ धाम के एक राजसम्मानित ब्राह्मणकुल को अपने जन्म से कृतार्थ किया था। आपके पूर्वज वंशपरम्परा से पुरी के राजपरिवार का आचार्यत्व करते रहे हैं। राजगुरु होने के कारण यह वंश उस प्रान्त में बहुत सम्मानित समझा जाता था। आपके पिता-पितामह तक उस कुल का कोई पुरुष बिना डोली के बाहर नहीं निकलता था। इन्हें पचास-साठ गांवों के लिये धार्मिक व्यवस्था देने का अधिकार था। इस प्रकार उस प्रान्त में इस परिवार की बहुत अच्छी प्रतिष्ठा थी।

आपसे सात-आठ पीढ़ी पूर्व आपके एक पूर्वज काली के उपासक थे। माँ काली की उन पर असीम कृपा थी। माँ ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर सर्वदा उनके कुल में रहने का वर दिया था। तब से वे इस कुल की इष्ट देवी रही और सर्वदा इस कुटुम्ब की देख-भाल करती रही हैं। कहते हैं, एक बार आपके प्रपितामह काली-मन्त्र (क्रीं) जप रहे थे। जपते-जपते वे भूल से कृष्ण-मन्त्र (क्लीं) जपने लगे। उसी समय माँ ने उनके मुँह पर ऐसा तमाचा लगाया कि वह टेढ़ा हो गया और फिर आजन्म वैसा ही रहा। उन्हीं के पुत्र पण्डित वासुदेव मिश्र आपके पितामह हुए। उनके तीन पुत्र थे—चक्रधर मिश्र, प्रभाकर मिश्र और वैद्यनाथ मिश्र। इनमें कनिष्ठ पं० वैद्यनाथ मिश्र ही आपके पूज्य पिताजी थे। आपका जन्म भाद्रपद कृष्णा ७ सं० १९३२ वि० को ठीक मध्याह्न के समय हुआ। उस दिन आपके यहाँ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव था। घर में प्रथम पुत्र का जन्म होने के कारण सभी को बड़ा आनन्द हुआ। किन्तु विधाता का विधान दूसरा ही था। आपकी माता श्रीलक्ष्मीदेवी पर प्रसूति-रोग का आक्रमण हुआ। और वे तीसरे दिन ही आपको मातृहीन करके परलोक सिधार गयीं।

अब आपके पालन-पोषण का भार आपकी छोटी ताई जी पं० प्रभाकर मिश्र की पत्नी ने सँभाला। उनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से

इसे स्वीकार कर लिया। कुछ दिन पीछे नाम-संस्कार होने पर आपका नाम आर्त्तत्राण मिश्र रखा गया। बचपन में आपके स्वभाव में बड़ी विचित्रता थी। मातृ-स्तनों का पोषण न मिलने के कारण आपका शरीर बहुत कृश और प्रायः रोगी रहता था। आपके स्वभाव में चपलता का नाम-निशान भी नहीं था। जहाँ डाल दिये वहीं पड़े रहे और जहाँ बैठे हैं बहुत देर तक वहीं बैठे रहे। खेल-कूद से आपको कोई मतलब नहीं था। नेत्र प्रायः मुँदे से रहते थे। यदि कोई पीटता तो चुपचाप पिट लेते थे, उसके प्रतिकार का कोई प्रयत्न नहीं करते थे। आपकी इस मुनिवृत्ति से सभी को बड़ा आश्चर्य होता था।

कुल-प्रथा के अनुसार चार वर्ष चार महीना और चार दिन की आयु में आपका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ तथा घर पर ही एक गणक (जोशी) के द्वारा आपको आरम्भिक शिक्षा दी जाने लगी। इस प्रकार बारह वर्ष की आयु तक आप घर पर ही उड़िया भाषा, गणित और साधारण संस्कृत की शिक्षा पाते रहे। शरीर दुर्बल होने के कारण गुरुजनों की इच्छा आप पर पढ़ाई-लिखाई का विशेष भार डालने की नहीं थी। तथापि आपका विचार तो दूसरा ही था। आपको घर में खाली पड़े-पड़े जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं था। अतः एक दिन घरवालों से बिना कहे ही एक भडुरी के लड़के के साथ आप घर से चल दिये और बालेश्वर होते हुए मयूरभञ्ज पहुँचे। इस अल्पायु में यह साहस आपकी स्वाभाविकी स्वाधीनता और असंगता को ही सूचित करता है।

मयूरभञ्ज की पाठशाला में आपके पिताजी के परिचित पद्मनाभाचार्य नाम के एक पण्डित थे। अतः उन्होंने प्रसन्नता से इन्हें पाठशाला में भर्ती कर लिया। किन्तु आपको भय था कि कहीं पण्डितजी घर वालों को सूचना न दे दें। इसलिये कुछ ही दिनों में आप वहाँ से चलकर वालयावेड़ा आये और यहाँ राजा कृष्णचन्द्र की पाठशाला में भर्ती हो गये। इसी पाठशाला में पाँच वर्ष रहकर आपने काव्यतीर्थ परीक्षा पास की।

जिस समय आप काव्यतीर्थ के पञ्चम खण्ड में पढ़ते थे, एक ऐसी घटना हुई जिससे आपके हृदय में निहित निगूढ़ भगवत्प्रेम का परिचय मिलता है। राजा

कृष्णचन्द्र एक निष्ठावान् वैष्णव थे, उनके यहाँ श्रीगोपी-नाथजी का एक मन्दिर था। उसमें कार्तिक शुक्ला नवमी से पूर्णिमा तक विशेष रूप से उत्सव मनाया जाता था। इस समय वहाँ नाटक-मण्डलियाँ भी बुलाई जाती थीं। इस साल कलकत्ते की बालसंगीत नाम की एक सुप्रसिद्ध मण्डली आयी थी। उसने 'ब्रह्मा का वत्सहरण' नामक नाटक का अभिनय किया। अभिनय में एक विचित्र दृश्य आया। ब्रज की वनस्थली में बाल सखाओं से घिरे हुए श्रीनन्दनन्दन छाक खा रहे हैं। गोवत्स इधर-उधर चर रहे हैं। बालगोपालों ने भगवान् को चारों ओर से घेरा हुआ है। श्यामसुन्दर उन्हें पत्तों पर भोजन परोस रहे हैं और वे एक-दूसरे से छीन-झपटकर खा रहे हैं। इस अद्‌भुत लीला को लोक-पितामह ब्रह्माजी एक वृक्ष की ओट में छिपकर निहार रहे हैं। इस विचित्र दृश्य का बालक आर्त्त-त्राण पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। ये वहाँ से उठकर अपने कमरे में चले आये और उसी का चिन्तन करने लगे। चिन्तन करते-करते इनकी वृत्ति तल्लीन हो गयी और उसमें इनका इतना अनुराग बढ़ा कि तीन दिन और तीन रात तक इन्हें बाह्य जगत् का अनुसन्धान न रहा। ये समाधिस्थ से हुए तीन दिन तक अपने कमरे में ही बैठे रहे। इनके चित्त पर केवल वही चित्र अङ्कित रहा। यह इनके जीवन में पहला भावावेश हुआ। साथी विद्यार्थी तो इस रहस्य को कुछ भी नहीं समझ सके। वे तरह-तरह की कल्पनाएँ करते रहे।

इसी वर्ष एक और भी घटना हुई। पाठशाला में कटक के रहने वाले गंगाधर मिश्र नाम के एक विद्यार्थी थे। वे आपको अपने छोटे भाई के समान समझते थे और सब प्रकार आपकी देख-भाल करते थे। कार्यवश वे मेदिनीपुर गये और वहाँ चार-पाँच घण्टों में ही हैजे से उनका देहान्त हो गया। इस दुर्घटना का भी आपके चित्त पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इससे आपको सारा संसार नाशवान् और नीरस प्रतीत होने लगा। अब आपको सभी का संसर्ग बुरा लगता था और आप सर्वथा ही सबसे अलग होकर उदासीन रहने लगे। यहीं से आपके वैराग्य का आरम्भ हुआ।

आर्त्तत्राण जी यथा नाम तथा गुण थे। आरम्भ से ही आपका चित्त बहुत कोमल था। अपनी आयु में आपने शायद ही कभी किसी पर क्रोध किया होगा। कभी-कभी तो दूसरों को क्रोध करते देखकर आपके चित्त पर इतना आघात लगा है कि

आप घण्टों मूर्च्छित रहे हैं। आप अध्ययन समाप्त करके घर लौटे तो सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। आप भी अपनी पैतृक वृत्ति करने लगे। इस प्रकार कुछ समय बीतने पर उस देश में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। इस अवस्था में लोगों को भूख से मरते और इधर-उधर भटकते देखकर आपको बहुत दुःख हुआ और आप उनका दुःख दूर करने का उपाय सोचने लगे। पास में इतना द्रव्य तो था नहीं जो सभी की बुभुक्षाग्नि को शान्त कर सकें। अतः आपने कोई ऐसा अनुष्ठान करने का निश्चय किया, जिससे द्रोपदी की बटलोही के* समान कोई पात्र या रसायन प्राप्त किया जा सके।

अन्त में चैत्र शुक्ला ५ संवत् १९५१ की रात्रि आयी। उस समय आप किसीसे बिना कुछ कहे धोती, लोटा और ग्यारह रुपये लेकर आर्त्तरक्षण के साधन की शोध में घर से निकल पड़े। आपको मन्त्रसिद्धि के लिये कामाक्षा सबसे अच्छा स्थान जान पड़ा। अतः कुछ दिन कलकत्ता और गोआलन्दों में रहकर आप गोहाटी पहुँचे। अब आपके पास केवल ढाई रुपया बचा था। उस समय अनुष्ठान करने के लिये ही वहाँ एक बंगाली तान्त्रिक भी आये हुए थे। उनसे आपका प्रेम हो गया और उन्हीं की सलाह से आपने वनदुर्गा के मन्त्र का अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। अनुष्ठान सुचारु रूप से चलने लगा। उसमें कुछ सफलता के चिह्न भी प्रतीत होने लगे। कई बार स्वप्न में भगवती का दर्शन होता था। जप के समय वसिष्ठादि सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते थे। इसी समय आपके चित्त में ऐसे विचार आने लगे—'इस अनुष्ठान से क्या होगा ? एक पात्र मिल भी गया तो क्या हम उससे विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों का दुःख दूर कर सकते हैं। यह केवल हमारी विडम्बना ही है। संसार तो ऐसा ही चलता रहता है। हमारे पास से लेने के लिये कितने लोग आयेंगे और हम भी क्या सर्वदा जीवित रहेंगे। इसलिये इस संकल्प को छोड़ना ही अच्छा है।' इन्हीं दिनों पूर्णगिरि नाम के एक महात्मा से आपने भगवान् शंकराचार्य कृत विवेक-चूड़ामणि सुना। उसने आपके विचारों को बदलने में और भी सहायता दी। अतः आपने वह अनुष्ठान बीच ही में छोड़ दिया।

*** वनवास के समय इन्द्र ने द्रौपदी को एक ऐसी बटलोही दी थी जिसके द्वारा अन्नसिद्ध करके बांटने पर वह तब तक समाप्त नहीं होता था जब तक द्रौपदी स्वयं भोजन न करे। उस बटलोही के प्रभाव से द्रौपदी नित्य प्रति सहस्त्रों अतिथियों का सत्कार करती थी।**

परन्तु सिद्धि की ओर से आपका चित्त अब भी पूर्णतया उदासीन नहीं हुआ। आपने गोहाटी से काशी जाने का विचार किया और कुछ दिन मयुरभञ्ज में ठहरकर आप काशी पहुँचे। इस प्रान्त में आपकी यह प्रथम यात्रा थी। यहाँ न तो आपका कोई परिचित था और न गाँठ में कोई पैसा ही था। इधर की भाषा भी आप समझते नहीं थे और न अपनी बात ही किसी को समझा सकते थे। किन्तु आपको विश्वास था कि यह माता अन्नपूर्णा की पुरी है, वह मुझे भूखा नहीं रखेगी। अतः आप विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के दर्शन कर मणिकर्णिका घाट पर किसी से कुछ न मांगने का निश्चय कर एक खाली गुफा में बैठ गये तीन दिन और तीन रात बीत गयीं। शौच और लघुशंका के लिये भी आप वहाँ से नहीं उठे। किन्तु भोजनादि के विषय में आपसे किसी ने कुछ भी नहीं पूछा। आखिर, चौथे दिन आप गुफा से निकल कर स्नान करने के लिये चले। उसी समय वहाँ एक स्त्री आयी। उसने आपको पञ्चामृत पिलाया। फिर श्रीविश्वनाथजी के दर्शन के लिये गये तो वहाँ एक ब्राह्मण ने आपको अनार दिया। इस प्रकार चार दिन के उपवास का पारण करके आप पुनः उसी गुफा में आ गये। यहाँ रात्रि में आपको स्वप्न हुआ कि कोई महात्मा आपसे वैद्यनाथधाम जाने के लिये कह रहा है। अतः एक काशीवासी बंगाली सज्जन से टिकिट कटाकर आप वैद्यनाथ धाम चले गये।

वैद्यनाथ धाम में अनेकों लोग अपनी किसी कामना की सिद्धि के लिये केवल पंचामृतपान करते हुए धरना दिया करते हैं। आपने भी सरस्वती-सिद्धि के लिये धरना देना आरम्भ कर दिया। परन्तु पाँचवें दिन ही आपकी विवेकवती बुद्धि ने आपको धरने से भी विचलित कर दिया। आप सोचने लगे, 'यदि सरस्वती-सिद्ध हो भी गयी तो उससे क्या होगा। आखिर, कालीदास आदि बड़े-बड़े विद्वान् भी तो काल के गाल ही में चले गये। इसलिये इसके लिये तप करना व्यर्थ है।' यह सोचकर आपने धरना छोड़ दिया और आप जगन्नाथपुरी में अपने घर पर लौट आये।

आपके घर लौट आने से सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु आप तो अधिक दिन घर में रहने वाले नहीं थे। इस समय आपकी आयु बीस वर्ष से अधिक हो चुकी थी और एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी ने बताया था कि आपका जीवन तीस-बत्तीस वर्ष
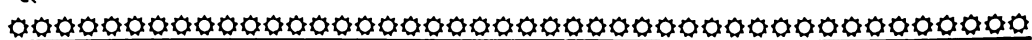
से अधिक नहीं होगा। अतः घर वालों ने पहले ही आपका विवाह न करने का निश्चय कर लिया था। आप जन्म से ही भोगों से विरक्त रहते थे। घर में भी आपका चित्त किसी के मोह- बन्धन में बँधा हुआ नहीं था। अब तक भी आपका अधिकाँश जीवन निरालम्ब रहकर ही व्यतीत हुआ था। अतः अब आपने विधिवत् नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेने का निश्चय किया और पुरीधाम में श्रीगोवर्धन मठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीमधुसूदनतीर्थ से दीक्षा लेकर आप आर्त्तत्राण मिश्र से ब्रह्मचारी चेतनानन्द हो गये।

इन दिनों आपकी विशेष इच्छा यही थी कि किसी प्रकार ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बना जाय। आप सोचा करते थे कि मेरी ऐसी स्थिति हो कि मैं युवती स्त्रियों की गोद में भी निर्दोष बालक के समान खेलूँ। स्त्रियों का अधिक से अधिक सम्पर्क होने पर भी मेरे चित्त में किसी प्रकार का विकार न हो। इसके सिवा आपकी दूसरी इच्छा यह थी कि मेरी सर्वत्र अव्याहत गति हो। लोकान्तर और राजमहलों में भी मैं बिना रोक-टोक जा सकूँ। मनुष्य के चित्त में कोई विकार होने से ही रोक-टोक होती है। बालक को कोई नहीं रोकता। अतः यदि मेरा चित्त निर्विकार होगा तो मुझे कोई क्यों रोकेगा। इन आकाँक्षाओं से प्रेरित होकर ही आपने वीर्य पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया और इसी उद्देश्य से आप मठ में आने-जाने वाले साधुओं से मिलते रहे।

इन्हीं दिनों आपको किसी सिद्ध गुरु को खोजने की धुन सवार हुई। इसके लिये आप मठ छोड़कर बंगाल के मेमनसिंह, ढाका, बारीसाल, ग्वालपाड़ा आदि कई जिलों में घूमते रहे। परन्तु कहीं भी आपको ऐसे महात्मा न मिले, जिन्हें आत्मसमर्पण कर सकें। अन्त में आप बड़पेटा पहुँचे। यहाँ शहर के पास ही एक ब्रह्मचारी का स्थान था। इस समय ब्रह्मचारीजी बीमार थे। आपने उनकी खूब सेवा-शुश्रूषा की। किन्तु आठ-दस दिन में ही उनका देहान्त हो गया। आपकी सेवा से सन्तुष्ट होकर उन्होंने प्राण परित्याग से पहले आपको ही अपना उत्तराधिकारी निश्चित किया। अतः उनके बाद आप वहाँ के महन्त बन गये। वहाँ रहकर आपने शतचण्डी का अनुष्ठान किया। उसके उपलक्ष में नवरात्र में हवन और ब्रह्मभोजन हुआ। इस उत्सव की समाप्ति पर आपको ऐसा अनुभव होने लगा मानो दुर्गा साक्षात् आपके सामने खड़ी है। इस समय

आपको वाक्सिद्धि प्राप्त हो गई। आप जिससे जो बात कहते वही सत्य हो जाती थी। आपको लोगों के बहुत से छिपे हुए पाप-पुण्य भी मालूम हो जाते थे। ऐसा चमत्कार देखकर आपके पास बहुत जनता आने लगी। भेट की सामग्रियों और रुपयों का ढेर लग गया। एक-एक दिन में पाँच-पाँच सौ रुपये आ जाते थे। आपकी ओर से हर समय कढ़ाई चढ़ी रहती थी। नित्यप्रति सहस्रों पुरुषों का भोजन होने लगा। आप प्रश्न करने वालों की सूरत देखकर ही सब बातें बता देते थे। अठारह दिन यही क्रम रहा। अन्त में विक्षेप अधिक बढ़ जाने से आपके चित्त में कुछ पश्चाताप हुआ। तब स्वयं ही यह सिद्धि निवृत हो गयी। फिर न तो वैसा अनुभव रहा और न कुछ कहने-सुनने की इच्छा ही रही। इसके कुछ दिनों बाद पूर्व-महन्तजी का शिष्य रामेश्वर की यात्रा से लौट आया। उसने गद्दी के लिये आश्रम के ट्रस्टियों से अपना दावा किया। परन्तु आपसे विशेष प्रभावित होने के कारण आपके कहने पर भी उन्होंने उसे गद्दी देना स्वीकार न किया। अतः एक दिन आपने स्वयं ही उस प्रपंच से निकलने का निश्चय कर लिया और खर्चे के लिये केवल पन्द्रह रुपये लेकर आप वहाँ से चुपचाप रेल द्वारा गोहाटी चले गये।

अब आप आसाम और पूर्वी बंगाल में घूम-घूम कर फिर किसी सिद्ध योगी की खोज करने लगे। किन्तु आपको ऐसे कोई योगिराज न मिल सके जिन्हें पाकर आपकी प्यास शान्त होती। अन्त में इसी उद्देश्य से आपने सारे भारतवर्ष में घूमने का निश्चय किया। आप कलकत्ते से रामेश्वर की ओर जा रहे थे। मार्ग में जिला बालेश्वर के किसी गाँव में एक बगीचे में ठहरे हुए थे। अकस्मात् रात्रि में बगीचे के सामने वाले मकान में आग लग गयी। मकान में से और सब लोग तो निकल आये, किन्तु एक नवविवाहिता बहू संकोचवश बाहर न आयी और उसी में घिर गयी। मकान में चारों ओर आग लगी हुई थी। अतः उसके बचने की कोई आशा न रही। आपसे उसका यह संकट न देखा गया। अतः आग की परवाह न करके आप घर में घुस गये और उस बालिका को उठाकर बाहर ले आये। परन्तु इस प्रकार एक अबला की प्राण-रक्षा करने पर भी आपको स्त्री-स्पर्श के कारण बहुत ग्लानि हुई और उसके प्रायश्चित्त के लिये आपने दो-तीन दिन तक अन्न ग्रहण नहीं किया।

इस यात्रा में आप कई महात्माओं से मिले तथा रामेश्वर, द्वारिका एवं उज्जैन होते हुए हरिद्वार तक गये, तथापि कहीं भी आपको ऐसे महात्मा न मिले जिनमें आपकी पूर्ण श्रद्धा होती। आखिर, हरिद्वार से आप फिर कलकत्ते लौट आये। यहाँ आज कल वंग-भंग के कारण स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था। आपको दीन-दुखियों के साथ तो सदा से ही सहानुभूति थी। अतः आप भी आन्दोलनकारियों में मिल गये। दो-एक बार आपकी गिरफ्तारी भी हुई, किन्तु अपराध सिद्ध न होने के कारण छोड़ दिये गये। उस समय अनेकों युवकों को फांसी लगते देखकर आपको बड़ा खेद होता था। परन्तु आपके पास ऐसी कोई शक्ति तो थी नहीं जिससे उनके दुःख को दूर कर सकते। आखिर, एक महात्मा के समझाने से आपने वह प्रवृत्ति छोड़ दी और संन्यास लेने का निश्चय कर लिया। आप जगन्नाथपुरी आये और अपने गुरुदेव श्रीगोवर्द्धन मठाधीश्वर से संवत् १९६४ की कार्तिकी पूर्णिमा को संन्यास दीक्षा ले ली। अब आप ब्रह्मचारी चेतनानन्द से स्वामी पूर्णानन्द तीर्थ हो गये।

संन्यास के कुछ ही दिन पश्चात् आप गुरुजी से आज्ञा ले काशी की ओर चले। चलते समय दण्ड-कमण्डलु समुद्र में फेंक दिये। आप रेलगाड़ी द्वारा काशी जा रहे थे। मार्ग में एक जगह गाड़ी बदलनी चाहिये थी। किन्तु आपको ऐसा करने का ध्यान न रहा। अतः काशी का टिकट लिये छपरा पहुँच गये। यह देखकर टिकट-चेकर बहुत बिगड़ा और कुछ मार-पीट करके आपको गाड़ी से उतार दिया।

इस घटना ने आपके जीवन में एक स्थायी परिवर्तन कर दिया। कभी-कभी कोई छोटी-सी बात भी बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। महापुरुषों के जीवन में ऐसी बातें बहुत देखी जाती हैं। भगवान् बुद्ध को एक शव के देखने से ही वैराग्य हो गया था और इसी घटना ने उन्हें एक सुकुमार राजकुमार से कठोर तपस्वी बना दिया तथा गोस्वामी तुलसीदास को स्त्री की थोड़ी सी व्यंगोक्ति ने ही संसार से छुड़ाकर सदा के लिये श्रीराम चरणों में समर्पित कर दिया। ऐसी घटनाएँ हृदय की सजीवता को सूचित करती हैं। जिनके हृदय मुर्दे हैं वे न जाने कितने तिरस्कार सहते हैं, तब भी उन्हें चेत नहीं होता। ऐसी ही बात यहाँ हुई। आप गाड़ी से उतरकर घाघरा नदी के तट पर आये। वहाँ स्नान किया और आजीवन किसी भी सवारी में न चढ़ने की प्रतिज्ञा

कर ली। तबसे अनेकों प्रकार की प्रवृत्तियां होने पर भी आपने बड़ी दक्षता और कुशलता से इस नियम का पालन किया है तथा अनेकों सामूहिक कार्यों को सँभालते हुए भी अपनी स्वतन्त्रता में रञ्चकमात्र अन्तर नहीं आने दिया। इस प्रतिज्ञा का त्याग तो आपने गत फाल्गुनमास के बाँध के उत्सव पर ही किया है। किन्तु उस त्याग में तो इसके ग्रहण की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व है। इसका विवरण पाठकवृन्द आगे यथा स्थान देखेंगे।

छपरा से कई स्थानों में होते आप काशी पहुँचे। बीच में गोमती तट के एक स्थान के, जो राजभार स्टेशन के समीप है, आप महन्त हो गये थे। किन्तु इस महन्ती को भी आप पहले ही की तरह छोड़कर चले आये थे। काशी पहुँचने पर आपके चित्त की एक विचित्र-सी अवस्था हो गई। आप अपने पास कोई पात्र भी नहीं रखते थे। केवल एक कम्बल लपेटे जहाँ-तहाँ पड़े रहते थे। अभी तक कोई सिद्ध योगी न मिलने के कारण आपका कोई नियमित साधन भी आरम्भ नहीं हुआ था। इसलिये चित्त में बड़ा असन्तोष रहता था। चातुर्मास्य समीप था। अतः एक महात्मा के कहने से आप काशी से चार कोस पश्चिम की ओर एक गाँव में चले गये। वहाँ कुछ महात्मा रहते थे। उनके साथ ही आपने चातुर्मास्य किया। वहाँ कुछ वेदान्त-चर्चा चलती रहती थी। उन महात्माओं के संसर्ग से आपको उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता तथा योगवसिष्ट आदि वेदान्त-ग्रन्थ सुनने का भी अवसर मिला। इससे आपकी जिज्ञासाग्नि जाग्रत हो गयी। अब तो आपको कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। अहर्निश यही चिन्ता रहती थी कि किस प्रकार चित्त शान्त हो ? किस प्रकार परमार्थ-सत्य का अनुभव हो और किस प्रकार यह विश्व-प्रपंच की पहेली सुलझे ? ग्रन्थों के देखने से तो कोई बात समझ में नहीं आती थी और दूसरा कोई उपाय दीखता ही नहीं था।

इस प्रकार इस सन्त-समागम ने आपके चित्त को सिद्धि और चमत्कारों की चकाचौंध से हटाकर परमार्थ की खोज में लगा दिया। बस, चातुर्मास्य समाप्त होने पर आप वहाँ से गंगाजी के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चल दिये। परमार्थ-प्राप्ति की उत्कण्ठा ने आपको बहुत ही बेचैन कर दिया। कभी-कभी तो मील-दो-मील चलकर ही दिन भर जंगल में ही पड़े रहते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे पाँच-छः

मास में प्रयाग पहुँचे। वहाँ दारागंज के पास एकान्त स्थान में एक मन्दिर के पीछे छोटी-सी कुटी थी। वह स्थान बहुत गन्दा था, वहाँ कोई आता-जाता नहीं था। अतः एकान्त देखकर आपने उस कुटी में ही आसन लगा दिया और भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये। तीन दिन उसी में बन्द रहने का निश्चय करके बैठ गये। न खाया और न शौच या लघुशंका को ही गये। जप-ध्यानादि में तो इस समय आप की श्रद्धा नहीं थी। आप तो कोई दैवी आदेश पाने की प्रतीक्षा में थे। ज्येष्ठ मास की भीषण गर्मी थी। फिर भी जिज्ञासाग्नि के सामने आप को वह कुछ भी न जान पड़ी। किन्तु इस प्रकार तीन रात तीन दिन तक बन्द पड़े रहने पर भी आपको कोई अनुभव न हुआ। आखिर निराश होकर आप बाहर निकले। भीतर पड़े-पड़े शरीर जकड़ गया था। कुछ स्वस्थ होने पर आप वहाँ से आगे बढ़े।

रास्ते में जहाँ-तहाँ महात्मा भी मिलते थे। परन्तु आपकी श्रद्धा को कहीं आश्रय नहीं मिलता था। वर्षा भी आरम्भ हो गयी थी। इसलिये इसके कारण भी कई बार बहुत कष्ट सहना पड़ा। परन्तु आपके हृदय में जो आग जल रही थी उसके आगे किसी भी विघ्न-बाधा की ओर देखने का अवकाश ही कहाँ था। आखिर आप चलते-चलते फतहपुर जिले के एक स्थान पर पहुँचे। यहाँ श्रीभागीरथी के तट पर एक प्राचीन शिवालय था। आस-पास कुछ और भी कुटियाँ थी। स्थान अत्यन्त निर्जन और शांत था। भगवान् भास्कर दिन भर की लम्बी यात्रा से श्रान्त होकर प्रतीची की गोद में विश्राम लेने के लिये जा रहे थे। आप चुपचाप बैठकर श्रीगंगाजी की अभंग अंगभंगी को निहारने लगे। परन्तु उसने भी आपको कुछ शान्ति नहीं दी। उससे तो वह और भी सुलग उठी। अब आपको अपना जीवन भार प्रतीत होने लगा और आपने उसे गंगाजी की गोद में लीन करने का विचार किया।

बस, आपने चादर उतार कर अलग रख दी और तूंबा गंगाजी में फेंक दिया। अब स्वयं कूदने की बारी आयी। उस समय चित्त में कुछ हिचक हुई। इस प्रकार प्राण निछावर करने में आपको कोई सार दिखाई न दिया। सोचने लगे—'मरने से ही क्या होगा? विचार करना चाहिये। सम्भव है, विचार करते-करते कुछ अनुभव हो जाय।' यह सोचकर आप शिवालय के भीतर गये। चित्त में नास्तिकता के से भाव

तो बढ़े ही हुए थे। अतः शिवलिंग से पैर लगा कर लेट गये। लेटे-लेटे तरह-तरह के संकल्प होने लगे। आँखें झपने लगीं और तन्द्रासी आ गयी। भगवान् शंकर भी बड़े भोले बाबा हैं। कभी-कभी वे तिरस्कार के बदले भी अक्षय पुरस्कार देते हैं। उनके विषय में ऐसी बहुत-सी घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। यहाँ भी ऐसा ही हुआ।

आपने देखा दो विरक्त परमहंस पधारे हैं। उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट और गौरकान्ति से देदीप्यमान हैं। शरीर में दिव्य तेजोमय काषाय वस्त्र हैं। उन्नत और विशाल भाल पर स्वच्छ भस्म सुशोभित है। कण्ठ में रुद्राक्ष की माला और हाथ में कमण्डलु हैं। मानो साक्षात् श्री नर-नारायण ही आपको भव-बन्धन से मुक्त करने को पधारे हों। उन्हें देखकर आप खड़े हो गये और सृष्टि-तत्त्व के विषय में प्रश्न करने लगे। आप जो प्रश्न करते थे उसी का वे बड़ा समाधानकारक उत्तर दे देते थे। यह क्रम बड़ी देर तक चलता रहा। धीरे-धीरे एक-एक करके आपकी सारी ही उलझनें सुलझ गयीं। अन्त में उन्होंने दो श्लोक याद करने को कहा—

नेति नेतीति नेतीति शेषितं यत्पं पदम्।
निराकर्त्तुमशक्यत्वात्तदस्मीति सुखी भव॥१॥

जडतां वर्जयित्वैतां शिलाया हृदयं च यत्।
अमनस्कं महाबाहो तन्मयो भव सर्वदा॥२॥ *

इस अवस्था से उत्थान होने पर आप सब प्रकार स्वस्थ हो गये। आपकी सभी शंकाएँ निवृत्त हो गयीं। हृदय की सारी ग्रन्थियाँ खुल गयीं। अब आपको सारा दृश्य अपनी ही दृष्टि का विलास दिखाई देने लगा। ऐसा अनुभव होता था मानो सारा दृश्य शून्य रूप है। इसका कोई आधार नहीं है। इस शून्याशून्य से विलक्षण इसका आधारभूत एकमात्र मैं ही अखण्ड परिपूर्ण तत्त्व हूँ। मुझसे भिन्न और कुछ है ही नहीं।

---

* यह नहीं है, यह नहीं है, यह नहीं है इस प्रकार [स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रपंच का निषेध करने पर] जो निषेध करने अयोग्य परमपद शेष रह जाता है वही मैं हूं ऐसा जानकर सुखी हो जा॥१॥ शिला की यह हृदय-रूपा जो जड़ता है इसे त्यागकर, हे महाबाहो! तू सर्वदा सब प्रकार का मनन छोड़कर तन्मय [तत्पद लक्ष्य शुद्ध चिन्मय] रूप से स्थित रह॥२॥

ये अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मुझमें ही अध्यस्त हैं और इनका अधिष्ठानभूत मैं इनसे सर्वथा असंग हूँ। यह अनुभव इतना स्पष्ट था मानों नेत्रों से दीख रहा हो। इससे आपके चित्त को पूर्ण शान्ति और कृतकृत्यता का अनुभव हुआ। ऐसा जान पड़ा मानो मैं ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सार्वभौम सम्राट् हूँ। इस प्रकार आपकी सारी दीनता और बेचैनी दूर हो गई। आप वास्तव में पूर्णानन्द स्वरूप ही हो गये।

अब आपका चित्त बहुत उपराम रहने लगा। यद्यपि तत्त्व-साक्षात्- कारके पश्चात् विद्वान् का कोई कर्त्तव्य नहीं रहता। उसकी सारी कामनाओं और वासनाओं का मूलोच्छेद हो जाता है, तथापि बोध का यह स्वभाव ही है कि वह विद्वान् में उत्तरोत्तर आत्म प्रेमा का उन्मेष करे 'बोधस्योपरतिः फलम्।' इस नियम के अनुसार आप अधिकतर ध्यानावस्था में ही स्थित रहने लगे। आपने यह निश्चय किया कि मुझे ध्यान द्वारा ऐसी गम्भीर स्थिति प्राप्त करनी चाहिये जिससे प्राण निःशेष हो जाय। आपका विचार था कि इस प्रकार जो निस्पन्दता प्राप्त होती है वह प्राणायामादि के द्वारा प्राप्त होने वाले प्राण निरोध से बहुत ऊँची कोटि की चीज है। उसी की सिद्धि के लिये आप सिद्धासन से बैठकर अभ्यास करने लगे। आप कुछ महीने एक स्थान पर रहते थे और फिर गंगाजी के किनारे-किनारे चलकर आगे बढ़ जाते थे। इस प्रकार स्थान-परिवर्तन करते हुए भी आपका ध्यानाभ्यास निरन्तर चलता रहता था। धीरे-धीरे आपका अभ्यास खूब बढ़ा और अनेकों चमत्कार भी हुए। परन्तु आप उनकी उपेक्षा करते हुए साक्षी रूप से ही स्थित रहे। इससे आपकी स्थिरता और शान्ति में उत्तरोत्तर विकास होता गया। कुछ ही दिनों में आपको स्वप्न और ध्यानावस्था में शुकदेव, वामदेव आदि ऋषि-मुनियों के दर्शन होने लगे।

धीरे-धीरे आप कानपुर और बिठुर होकर बरुआ घाट पहुँचे। यहाँ श्रीज्ञानाश्रमजी नाम के एक प्राचीन महात्मा रहते थे। उन्हें तीस वर्ष इसी स्थान पर हो गये थे। ये बड़े ही सरल, संयमी और सत्यनिष्ठ संत थे। उस प्रान्त में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी हमारे बाबा के प्रति इनका व्यवहार बड़ा स्नेह पूर्ण था और बाबा भी इनमें गुरुवत् श्रद्धा रखते थे। वहाँ रहकर आपने इनकी खूब सेवा की। ये आपसे कोई काम

नहीं कराना चाहते थे, परन्तु आप उनसे बिना कहे और छिपकर भी उनकी सेवा करते थे। रात्रि में उनका सोने का समय दो से चार बजे तक था। किन्तु आप सर्वदा उनसे पीछे सोते और पहले उठते थे। वहाँ के बगीचे में आम के प्राय: पचास पेड़ थे। उनमें से एक पेड़ के आम बहुत मीठे होते थे। सब लोग उन्हीं की ताक में रहते थे। अत: आप रात्रि में जब सब सो जाते तो स्वामी जी के लिये उसके सब आम अपने कटिवस्त्र में ले आते थे। एक दिन स्वामीजी अपने आश्रम वासियों से कह रहे थे कि इस फुलवाड़ी की जमीन ठीक नहीं है, तथा इसके गमलों की भी सफाई हो जानी चाहिये। तब आपने, किसी को भी मालूम न हो इस प्रकार रात्रि में ही वह सब काम कर डाला। आपकी ऐसी निष्कपट और सच्ची सेवा से श्री ज्ञानाश्रमजी बहुत प्रसन्न थे और अन्य आश्रम वासियों से आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे।

इस प्रकार बरुआ घाट में नौ-दस महीने रहकर आप फिर उत्तर की ओर चल पड़े। गंगा का तट ही आपका निर्दिष्ट मार्ग था। मार्ग में जगह-जगह महात्माओं से सत्संग होता रहा। आपकी ध्याननिष्ठा, वैराग्य और सरलता सभी के चित्तों को मोह लेती थी। फर्रुखाबाद पहुँचने पर आपने गंगा तट छोड़कर नहर का किनारा पकड़ा। यहाँ एक दिन आपको दिन भर भिक्षा नहीं मिली। रात्रि में बड़े जोर की भूख लगी। पास में कोई गाँव भी नहीं था। इस समय श्रीभगवान् ने अपने अनन्यचेता भक्त के योग-क्षेम-वहन की प्रतिज्ञा पूरी करके दिखा दी। सब ओर चन्द्रमा की स्निग्ध कान्ति फैली हुई थी। इसी समय एक बालक और बालिका ने आकर आपसे पूछा—'बाबा ? तुम रोटी खाओगे ?'

बाबा—'हाँ खाऊँगा। तुम्हारा घर कहाँ है ? तुम किसके बालक हो।'

बालक—'यहाँ से पास ही है। हम माहेश्वरी वैश्य हैं। इधर खेलने के लिये चले आये हैं।'

बालक बड़े ही सुन्दर थे। उन्हें देखने के लिये बार-बार आपका मन होता था। वे थोड़ी ही देर में दो मोटी-मोटी रोटी और केले का शाक ले आये। अभी तक आप केवल ब्राह्मणों की ही भिक्षा करते थे। परन्तु उन बालकों की कुछ ऐसी मोहिनी

शक्ति पड़ी कि आपने बिना कोई आपत्ति किये वे रोटियाँ खा लीं। बालक तो कुछ देर इधर-उधर घूमकर चले गये, परन्तु आपका मन उन्हीं में उलझा रहा। सबेरे चार बजे आपकी आँखें खुलीं तो फिर वे वहीं घूमते दिखायी दिये। उस समय उन्होंने मठा लाकर आपको दिया और आपने शौचादि से निवृत्त हुए बिना ही उसे पी लिया। वहाँ से उठने पर आपने पता लगाना चाहा कि देखें कि ये बालक कहाँ रहते हैं। परन्तु पूछने पर यही मालूम हुआ कि वहाँ से दो-दो मील तक कोई गाँव नहीं है। इस घटना का आपके चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि यद्यपि साकार रूप में इस समय आपका विशेष प्रेम नहीं था तो भी कई दिनों तक इस प्रसंग का स्मरण होने पर हृदय भर आता था।

यहाँ से घूमते-फिरते आप मोहनपुर पहुँचे। इस गाँव से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। यहाँ से आपके जीवन में कुछ नवीनता भी पायी जाती है। अब तक आपके स्वभाव में बड़ी गम्भीरता और उदासीनता ही पायी जाती थी। किन्तु यहाँ आप एक अबोध बालक की तरह रहते थे। यहाँ के भक्त आपको अपने घर का आदमी समझते थे और आपके साथ खूब खुलकर खेलते थे। खान-पान के समय भी काफी विनोद होता था किसी के घर भिक्षा करने जाते और भोजन में देरी होती तो आप उसका घर का काम करने लग जाते थे। कभी शाक काटते, कभी मसाला पीसते तथा कभी कोई और काम कर देते।

किन्तु यहाँ आपका सारा समय क्रीड़ा-कौतुक में ही बीता हो—ऐसी बात नहीं है। अभ्यास भी यहाँ आपका खूब बढ़ा। यह खेल तो अपने को वहाँ के लोगों से छिपाने के लिये अथवा प्रच्छन्न भाव से आत्मानन्द का रसास्वादन करने के लिये ही था। यह तो एक आत्माराम मुनि की बालवत् चर्या ही थी। यहाँ आपके ध्यान की बहुत ऊँची स्थिति हो गयी थी। आप घण्टों निश्चल भाव से बैठे रहते थे। शरीर का रञ्चकमात्र भी भान नहीं रहता था। कहते हैं, उस समय आपकी खुली हुई आँखों में मक्खियाँ घुस जाती थीं, तब भी आपके शरीर की कोई चेष्टा नहीं होती थी। कभी-कभी बहुत देर तक चित्त निर्विकल्प स्थिति में रहता था। बहुत दिनों से आपका जो प्राणों की निस्पन्दता का संकल्प था वह भी यहाँ पूरा हो गया था। यद्यपि आपकी निष्ठा निर्विशेष ब्रह्म में ही थी तो भी कभी-कभी स्वयं ही आपको भगवान् श्रीराम

एवं कृष्ण आदि साकार रूप और उनकी दिव्य चिन्मयी लीलाओं के भी दर्शन होने लगते थे। यह अनुभव इतना स्पष्ट होता था कि ध्यान टूट जाने पर भी उसका आभास नेत्रों के सामने बना रहता था। इस प्रकार मोहनपुर के ये आठ-नौ मास बड़े ही आनन्द से बीते।

वहाँ से चलकर आप कासगंज होते हुए राम घाट पहुँचे। तब से आपका सबसे अधिक रहना-सहना राम घाट और अनूप शहर के मध्य-वर्ती गंगा तट पर ही हुआ है। इस क्षेत्र में भी आप अधिकतर राम घाट और कर्णवास में ही रहे हैं। केवल गत आठ-दस वर्ष से श्रीवृन्दावन में आश्रम बन जाने के कारण वहीं आप अधिकतर रहने लगे हैं। तथापि आपकी अधिकांश तपस्या तो राम घाट एवं कर्णवास में ही हुई है। राम घाट में आप संवत् १९७२ में पहुँचे थे। उसके बाद दस वर्ष तक आपका जीवन अत्यन्त वैराग्य और उपरति में ही व्यतीत हुआ था। आपकी इस दीर्घकालीन तपस्या से धीरे-धीरे आपका यश: सौरभ इस प्रान्त में फैलने लगा। यद्यपि आप जनसम्पर्क से बहुत दूर जंगल की झाड़ियों में छिपे रहते थे, तो भी प्रेमी भक्त आपको ढूंढ ही लेते थे। स्त्रियों के संसर्ग से तो इस समय आपको इतनी घृणा थी कि जहाँ आप रहते वहाँ नियम कर देते थे कि यदि कोई स्त्री मेरी दृष्टि के अन्तर्गत आ गयी तो मैं यह स्थान त्याग दूँगा। इसलिये भक्त लोग इस बात की बड़ी सावधानी रखते थे कि कोई माई आपकी कुटी के पास न जाय। ध्यान की भी ऐसी गाढ़ स्थिति थी कि आप आठ-आठ घण्टे निश्चय आसन से बैठे रहते थे।

राम घाट में आप शरद् पूर्णिमा तक रहे। यहाँ से नरवर, विहार घाट और कर्णवास होते हुए भृगुक्षेत्र पधारे। इसी समय हमारे चरितनायक से आपकी भेंट हुई। उसके पश्चात् भी बहुत दिनों तक आप जनसंसर्ग से अत्यन्त दूर एकान्त सेवी विरक्त सन्त के रूप में ही रहे। आपने दस-बारह वर्ष तक बड़ी कठोर साधना की। बहुत दिनों तक केवल आठ ग्रास खाकर रहे। रात्रि में कभी लम्बे होकर नहीं सोते थे। बैठे-बैठे ही कुहनियों के बल झुक कर कुछ झपकी ले लेते थे। अधिकांश समय तो ध्यान-समाधि आदि में ही व्यतीत होता था।

इस प्रकार जैसे-जैसे तपस्या बढ़ी वैसे-वैसे ही आपका यशः सौरभ भी फैलने लगा। उससे आकृष्ट होकर अनेकों भक्तजन भी आने लगे। कमल जब खिल जाता है तो भ्रमर वृन्द स्वयं ही आकर एकत्रित हो जाते हैं। इसी प्रकार जिन महानुभावों का हृदय-कमल परमात्म तत्त्व रूप प्रभाकर की किरणों का दर्शन पाकर विकसित हो जाता है उनके पुण्यपराग की दिव्य गन्ध से आकृष्ट होकर स्वयं ही उनके आस-पास भक्त-भ्रमरों की भीड़ एकत्रित हो जाती है। वे भले ही अपने को छिपाना चाहें, किन्तु जिस विशुद्ध सत्व की किरणें निरन्तर उनके दिव्य विग्रह से निकलती रहती हैं उसके लालची अधिकारी पुरुष किस प्रकार उन्हें छोड़ सकते हैं। इसी से लोकेषणा से कोसों दूर रहने वाले स्वात्माराम मुनियों के पास भी अनेकों जिज्ञासु उन्हें वनपर्वतादि में ढूंढ-ढूंढकर पहुँच जाते हैं तथा उनके दर्शन स्पर्श और वचनों से अपने नेत्र, कर और श्रोत्रों को कृतार्थ करते हैं। अतः आपके पास भी अब उत्तरोत्तर भक्त एवं जिज्ञासुजनों का आना-जाना बढ़ने लगा। धीरे-धीरे आप भी अपना संकोच शिथिल करके यथा प्राप्त परिस्थिति का अनुसरण करने लगे। अब तो पुरुष, स्त्री, बालक सभी अपने-अपने अधिकार के अनुसार लाभ उठाने लगे तथा आप भी उनकी योग्यता के अनुसार उन्हें ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म का उपदेश करने लगे।

तब से लेकर अब तक आप कहाँ-कहाँ किस-किस परिस्थिति में रहे और आपके द्वारा परमार्थ प्रचार का कितना कार्य हुआ, इसका निरूपण करना हमारी शक्ति के बाहर है। आपके तत्त्वाबधान में अब तक सैकडों उत्सव यज्ञ और अनुष्ठानादि हुए हैं। आपकी कृपा से हजारों आदमी भगवद् भजन में प्रवृत्त हुए हैं, सैकड़ों जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा शान्त हुई और हजारों भण्डारे हुए हैं। आप जहाँ भी रहते हैं वहाँ नित्य उत्सव-सा ही रहता है। साल में गुरुपूर्णिमा, जन्माष्टमी, शरद् पूर्णिमा, अन्नकूट, गीता जयन्ती, होली, रामनवमी, अक्षय तृतीया, नवरात्र आदि के दस-बारह उत्सव तो आपके यहाँ निश्चित रूप से होते हैं। इनके सिवा समय-समय पर और भी अनेकों कथा, कीर्तन और भण्डारे आदि होते रहते हैं। आज आपका क्या स्वरूप है उसे हम क्या समझ सकते हैं। आपके दरबार में स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, दरिद्र और धनवान सबका समान रूप से प्रवेश है। आपके मुख से ज्ञान और प्रेम का जो स्रोत प्रवाहित
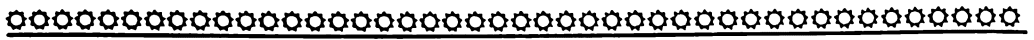
होता है उससे आप्लावित होकर अनेकों अधिकारी कृतकृत्य हो चुके हैं अनेकों विषयी संसार से उपरत होकर भगवद् दृश्य के रसिक बन चुके हैं तथा शाश्वत शान्ति की खोज में भटकते हुए अनेकों जिज्ञासु उस परमपद की झांकी कर चुके हैं, जिसे पाने पर कुछ और पाना शेष नहीं रहता। अपनी स्थिति तो वे स्वयं ही जानें, हमारी तो केवल यही अभिलाषा है कि श्रीमहाराज जी के साथ आपकी भी शान्तिमयी छत्र छाया का हम निरन्तर आनन्द लेते रहें।

श्रीमहाराजजी के साथ पूज्य बाबा का समागम पहले-पहल तो भेरिया में हुआ। उसके पश्चात् बाबा अधिकतर श्रीगंगा जी के दाहिने तट पर अनूपशहर से राम घाट तक के प्रान्त में रहे और महाराज जी दूसरी ओर खादर में। हमारे श्रीमहाराज जी की पहले तो वेदान्त की ओर ही प्रवृत्ति थी, किन्तु फिर आपका झुकाव पूर्णतया भक्ति की ओर हो गया और आपके द्वारा आस-पास के गाँवों में भगवन्नाम कीर्तन का प्रचार होने लगा। आरम्भ में आप बाबू हीरालाल जी, पण्डित श्रीराम जी, महाशय सुखराम गिरि जी और भक्तप्रवर हुलासी आदि कुछ इने गिने भक्तों को लेकर श्रीहरिनाम का कीर्तन और भगवत् लीलाओं का अभिनय किया करते थे। बाबा से कभी-कभी मिलना तो हो जाता था, किन्तु इन कीर्तन और लीला आदि में कभी उनके सम्मिलित होने का अवसर न हुआ। भक्तों से इनके विषय में सुनकर बाबा के मन में यह कौतुक देखने का संकल्प होने लगा। सन् १९२२ में बाँध बंधा। उसके पश्चात् १९२३ के उत्सव के समय आपने बाबा को बुलाने के लिये बौहारे किशनलाल को भेजा। तब आप बांध पर पधारे और आपकी कीर्तन तथा कुछ लीलाएँ देखीं। पहली बार देखने पर ही बाबा का हृदय आप पर मुग्ध हो गया। फिर प्राय: सभी उत्सव और सत्संग दोनों की उपस्थिति में ही होने लगे।

किन्तु फिर भी श्रीमहाराज जी और बाबा की रहनी-सहनी एवं निष्ठा में बहुत अन्तर है। कीर्तन का प्रचार पीछे बाबा के परिकर में भी खूब हुआ, परन्तु आपने स्वयं कभी कीर्तन नहीं कराया। आप तो केवल साक्षी रूप से निश्चल होकर विराजे रहते हैं और कीर्तनकारों को अव्यक्त रूप से शक्ति एवं भाव प्रदान करते हुए उनका नियन्त्रण करते रहते हैं। हमारे महाराज जी को समय की पाबन्दी का पूरा ध्यान रहता है, उसमें

एक मिनट भी आगा-पीछा करना आपको सहन नहीं होता; किन्तु बाबा स्वभाव से ऐसे किसी बन्धन में बँधे रहना पसन्द नहीं करते। वे तो अवधूतों की तरह लापरवाह हैं। यदि ध्यान में बैठे हैं तो बैठे ही हुए हैं, पता नहीं कब उठेंगे। यदि चल रहे हैं तो एक-एक दिन में पच्चीस-तीस मील तक पार कर जाते हैं। कहीं घर-घर जाकर भिक्षा करने लगे तो पता नहीं कितने घरों में जायेंगे। कभी-कभी आपको एक ही दिन में पचास-पचास घर भिक्षा करनी पड़ी है। हमारे महाराज जी प्राय: अकेले रहना ही पसन्द करते हैं। प्रोग्राम के समय ही वे जन-साधारण के सम्पर्क में आते हैं। इसके सिवा अन्य समय उनके किवाड़ बन्द रहते हैं, फिर कोई आदमी नहीं मिल सकता। किन्तु बाबा का तो खुला दरबार है। सबेरे चार-पाँच बजे से रात्रि के दस-ग्यारह बजे तक कोई भी व्यक्ति उनके पास जा सकता है। पूज्य बाबा के भक्त अपने-अपने भाव और रुचि के अनुसार पत्र-पुष्पादि से उनका पूजन करते हैं। गुरु पूर्णिमा आदि विशिष्ट अवसरों पर तो एक दिन में हजार-हजार आदमी आपका पूजन करते हैं। किन्तु हमारे महाराज जी का तो सामान्यतया चरण स्पर्श करना भी कठिन है। चन्दन और पुष्प माला से भी कोई बिरले हठीले भक्त ही उनका सत्कार कर सकते हैं। बाबा एक ज्ञान निष्ठ जीवन्मुक्त महापुरुष हैं, किन्तु हमारे महाराज जी की प्रधान निष्ठा साकार भक्ति है। यह सब होते हुए भी दोनों ने दोनों को खूब निभाया है। श्री महाराज जी की समय-निष्ठा का जितना आदर बाबा ने किया है उतना शायद ही किसी ने किया होगा। उत्सवों में आप सर्वदा ठीक समय पर पहुँच जाते हैं और यदि किसी कारणवश पहुँचने की सम्भावना नहीं होती तो पहले से ही सूचित कर देते हैं।

जिस समय खादर प्रान्त में कीर्तन की बाढ़ आयी और बाबा के भक्त परिकर ने भी इसे अपनाया उस समय कुछ विरक्त संत और पण्डित लोग इसका विरोध करने लगे। किन्हीं ने कहा 'यह शास्त्र-विरुद्ध है' और कोई बोले, 'सर्व साधारण के लिये प्रणव का उच्चारण निषिद्ध है, अत: श्रीहरिबाबा को कीर्तन के आरम्भ में प्रणव की ध्वनि नहीं करनी चाहिये।' इस सब विरोधों के समय हमारे महाराज जी तो उदासीन रहे किन्तु बाबा ने इनके समाधानकारक उत्तर दिये और आपकी कीर्तन पद्धति को अक्षुण्ण रखा आप उन दिनों कहा करते थे—'मैं तो जो शब्द श्रीहरिबाबा जी के मुखसे

निकलता है उसे वेदवाक्य से भी बढ़कर मानता हूँ। 'संत की महिमा वेद न जाने।' एक सच्चा संत जो कुछ करे वही ठीक है। उसका आचरण ही शास्त्र है। मुझे तो हरिबाबा जैसा चरित्रवान् और दैवी-सम्पद्का भण्डार कोई भी संत नहीं देख पड़ा। मुझे तो उनसे प्रेम है। अतः वे जो कुछ करते हैं वही मुझे अच्छा लगता है।'

हमारे उत्सवों के समय भोजन और समागत अतिथियों के सत्कार की सारी व्यवस्था पूज्य बाबा के हाथ में ही रही है। आपको भोजन कराने में बड़ा आनन्द आता है। बिशिष्ट प्रेमियों को तो आप भण्डारों के समय भी अपने हाथ से परोसकर भोजन कराते हैं। इसके सिवा उस समय जो नवीन सभ्यता के अभिमानी मस्तिष्क-प्रधान नवयुवक आ जाते हैं उनके कुकर्मों का समाधान भी प्रोग्राम से अतिरिक्त समय में आप ही करते हैं। आपका कथन ऐसा युक्ति युक्त और प्रभावशाली होता है कि उसके कारण अनेकों कर्मठ, नास्तिक और आर्यसमाजी भी सदा के लिये आपके चरणों में नत-मस्तक हो गये हैं।

हमारे महाराज जी और बाबा के सिद्धान्तों में भी एक मौलिक अन्तर है। महाराज जी का विचार है कि ज्ञान, भक्ति और निष्काम कर्म इनमें कोई अन्तर नहीं है। एक ही व्यक्ति साथ-साथ इनका अनुष्ठान कर सकता है और पहले तो अधिकतर साथ-साथ ही इनका अनुष्ठान किया भी जाता था। किन्तु बाबा कहते हैं कि सिद्धों की बात तो निराली है; किन्तु साधनकाल में अधिक भेद से इनमें से किसी एक ही साधन का आश्रय लेना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो किसी भी साधन में साधन की निष्ठा परिपक्व नहीं होगी और वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकेगा।

परन्तु यह सब होते हुए भी दोनों का पारस्परिक प्रेम विलक्षण है। यह तो सचमुच राम और शिवकी-सी जोड़ी है। यह कोरी भावना ही नहीं है, इस विषय में कई भक्तों को बड़े अद्भुत अनुभव भी हुए हैं। बाबा की बात महाराज जी कहाँ तक मानते हैं और बाबा भी आपका कितना ध्यान रखते हैं इस विषय में एक-दो घटनाओं का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। एक बार हमारे सरकार अतिरिक्त परिश्रम तथा अन्य कारणों से बाँध पर बीमार पड़ गये। पूर्ण का प्रत्येक कार्य पूर्ण

ही होता है, अतः आपकी बीमारी भी पूर्ण ही हुई। आप प्रायः मरणासन्न हो गये। आपने कुटी के किवाड़ बन्द करा दिये और एक-दो सेवकों को छोड़ कर और सभी के आने-जाने की मना ही करा दी। हम लोग तो घबरा गये। तब हमने बाबा से प्रार्थना की। आखिर, कुछ लोगों के साथ बाबा आपकी कुटी पर पधारे और किवाड़ खुलवा कर भीतर गये। आपने सबको बाहर निकलवा दिया और फिर उस मरणासन्न अवस्था में मूर्च्छित पड़े हुए महाराज जी को उठा कर गाढ़ आलिंगन किया तथा धीरे से कुछ शब्द भी कहे। आपके आलिंगन करते ही महाराज जी सचेत और पूर्ण निरोग हो गये। फिर घण्टे भर तक बाबा से अपना दुःख रोते रहे। उसका सार यही था कि मैं जैसा चाहता था वैसे जीव भगवत् सम्मुख नहीं हुए। अतः अब इस शरीर का कोई प्रयोजन न समझ कर मैंने इसे त्यागने का संकल्प कर लिया था। किन्तु आपकी आज्ञा होने से अब मैंने यह संकल्प छोड़ दिया है। बस, आप उसी समय स्वस्थ हो गये। वाह रे! लीलाधारी नटवर!

कभी-कभी आपका प्रणयकोप भी चलता है। एक बार गवाँ में उत्सव हो रहा था। पूज्य बाबा भी उपस्थित थे। एक दिन आप गंगा-स्नान के लिये गवाँ से बाँध चले आये और रास में नहीं पहुँचे। बस, इसी पर महाराज जी रूठ गये और दोपहर के सत्संग में कथा भी नहीं कही तथा रात को बिना कुछ कहे-सुने अपना कमण्डलु लेकर किसी अज्ञात स्थान को चले गये। इससे बाबा को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। और उस उत्सव को पूरा करके भी आप कुछ दिन वहीं रहे। पीछे जब आपसे मिलना हुआ तो महाराज जी ने बताया कि उस समय मुझे आप पर गुस्सा आ गया था। मैं तो यह सब आप ही के लिये करता हूँ और आप लापरवाही कर देते हैं। इसीसे मैं चला गया था। तब से बाबा और भी सतर्क रहने लगे।

इसी प्रकार की एक और घटना भी है। बांध के होली के उत्सव पर बाबा प्रायः शिव रात्रि को पहुँचा करते हैं। उस समय आप प्रतिक्षण बाबा की प्रतीक्षा करते रहते हैं। एकबार किसी विवशता से बाबा उस तिथि को नहीं पहुँच सके। अतः आप दूसरे ही दिन उत्सव की सारी तैयारी छोड़ कर चले गये। यह बात जब बाबा ने सुनी तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

पिछले दिनों में बाबा का स्वास्थ्य बहुत खराब रहा है। अत: उनके स्वास्थ्य लाभ के लिये आपने कई बार स्वयं औषधुपचार किया है तथा अनेकों अनुष्ठान किये और कराये हैं। बाबा का स्वभाव बड़ा कोमल है। अपने खान-पान का भी उनका कोई नियम नहीं है। अनेकों खिलाने वाले ठहरे। सब आपकी प्रकृति को भी नहीं समझते। अत: अक्सर आपके खान-पान में बहुत व्यतिक्रम होता रहा। अभी एक आदमी चाय पिला कर गया है और थोड़ी देर में दूसरा भक्त ठण्डाई ले आया। बाबा तो सभी का मन रखते हैं। यदि ऐसे समय कोई स्वतन्त्र विचार का पुरुष निषेध करने लगे तो आप भी खिलानेवाले का ही पक्ष लेंगे। इससे उस बेचारे को तो हार ही खानी पड़ेगी। इस प्रकार आहार-विहार का व्यतिक्रम आपके सारे जीवन में रहा है। उसका विपरीत प्रभाव कब तक रुका रह सकता था। अत: अब आपका दिव्य मंगल विग्रह भी रोगों का घर बन गया है। इसी से गत होली के उत्सव पर जब पैदल चलने में असमर्थ होने के कारण बाबा ने उपस्थित न हो सकने की सूचना भेजी तो महाराज जी श्री श्री माँ आनन्दमयी के साथ वृन्दावन गये और अत्यन्त आग्रह करके आपको सवारी में न बैठने का नियम तोड़ने के लिये विवश कर दिया। फिर बांध पर आपने बाबा के खान-पान और औषध्युपचार की कड़ी व्यवस्था की। उससे उनका स्वास्थ्य कुछ सुधर गया है। उसके पश्चात् झूसी में रहते हुए भी आप बाबा के स्वास्थ्य लाभ के लिये श्रीदुर्गा सप्तशती के पाठ कराते रहे।

इस प्रकार दोनों ही का दोनों के प्रति बड़ा घनिष्ठ और निर्मल प्रेम है। दोनों ही दोनों के संकेत मात्र पर अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार रहते हैं। सचमुच ऐसे ऊँचे दर्जे का प्रेम तो मैंने कहीं भी नहीं देखा-सुना। इस पैंतीस साल के संसर्ग की कहानी लिखने लगूं तो 'बाढ़े कथा पार नहिं लहऊँ।' इसीलिये मैंने यथा सम्भव संक्षेप में ही इसका उल्लेख किया है। ऐसे अलौकिक महापुरुषों के सम्बन्ध में मेरे जैसे अयोग्य पुरुष का कुछ लिखना तो केवल साहस मात्र ही है।

बाबू हीरालालजी

हमारे चरितनायक से बाबू हीरालाल जी तथा इनके परिवार का बहुत सम्पर्क रहा है। अतः यहाँ संक्षेप में इनका परिचय दे देना अप्रासङ्गिक न होगा। जिला बदायूं में गंगा जी से दो-तीन मील दूर गवां नाम का एक सम्पन्न गाँव है। इसमें राजपूत और वैश्यों के कई सम्पत्तिशाली घराने हैं। उन्हीं में एक घराना अग्रवाल वंशीय लाला कुन्दनलाल का है। ये तीन भाई थे। बड़े लाला चेतराम तथा छोटे लाला गुलाबराय। इनमें सबसे प्रसिद्ध साधु सेवी मँझले लाला कुन्दनलाल ही थे। ऋषिकेश-हरिद्वार से लेकर कानपुर तक के प्रायः सभी विरक्त महात्मा आपका नाम जानते थे। उस समय इस ओर राम घाट से गढ़मुक्तेश्वर तक के गंगा तट पर कई बड़े विरक्त, विद्वान् निष्ठावान् महात्मा रहते थे। उनमें बंगाली बाबा और शास्त्रानन्दजी का उल्लेख तो पहले किया ही जा चुका है। वे भेरिया में रहते थे। अनूपशहर में स्वामी उग्रानन्द जी और मौजानन्द जी बड़े ही मस्ताने और ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे। भगवानपुर में दक्षिणी स्वामी तथा बाबा हीरादास जी थे। हीरादास जी की उस समय के विरक्त और विद्वानों में बड़ी धाक थी। मांडू में स्वामी अखण्डानन्द जी तथा पण्डित दौलतराम जी थे। ये दौलतराम जी ही पीछे श्रीअच्युत मुनि जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। राम घाट और कर्णवास की झाड़ियों में हमारे श्रीउड़िया बाबा जी थे। अपनी कठोर तपस्या, विरक्ति और सिद्धियों के लिये उस समय भी ये बहुत प्रसिद्ध थे। गंगा जी की दूसरी ओर खादर में दीपपुर के पास बाबा सेवादास नाम के एक सिद्ध महापुरुष रहते थे तथा गवां में मौनीबाबा अवधूत जी तथा प्रज्ञाचक्षु बाबा लक्ष्मणदास जी थे। ये सभी बड़े अलौकिक महापुरुष थे। इनमें से एक-एक का परिचय लिखा जाय तो बहुत अधिक विस्तार हो जायगा और हमारा मुख्य प्रसंग बीच में ही लुप्त हो जायगा।

लाला कुन्दनलाल जी और उनके बड़े भाई चेतराम जी के पुत्र बाबू हीरालालजी का इन महात्माओं से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे तन-मन-धन के द्वारा बड़ी तत्परता से इन सभी महानुभावों की सेवा करते थे। लाला कुन्दनलालजी तो प्रायः भेरिया में रहकर स्वयं भोजन बना कर महात्माओं को खिलाते थे तथा वस्त्रादि

से भी उनका यथेष्ठ सत्कार करते थे। उनके तीन पुत्र किशोरीलाल, मुरारीलाल और बाबूलाल गवां में रहकर अपना करोबार चलाते थे, तथा वहाँ आने वाले महात्मा और भक्तों की सेवा करते थे। छोटे लाला गुलाबराय जी के एकमात्र पुत्र जानकीप्रसाद जी थे। ये भी आगे चलकर बड़े वीर, उदार और साधु सेवी सिद्ध हुए। हमारे चरितनायक के ये अनन्य भक्त थे और उनकी प्रत्येक आज्ञा का प्राणपण से पालन करते थे। बड़े लाला चेतराम जी के तीन पुत्र थे—रघुबरदयाल, चन्द्रसेन और हमारे प्राण बन्धु बाबू हीरालाल जी। हीरालाल जी को तो उस समय का जनक कहें तो भी अत्युक्ति न होगी। जो स्थान भगवान् राम की लीला में भरत का, श्रीकृष्ण-लीला में उद्धव का और गौर लीला में श्रीवास पण्डित का था, वही हमारे महाराज जी की लीला में इनका है।

बाबू हीरालाल जी संस्कृत, अंग्रेजी और फारसी के विद्वान् थे। उर्दू और फारसी में तो सुन्दर कविता भी करते थे। आपने स्कूल छोड़ते ही व्यापार आरम्भ कर दिया था। पिताजी ने वयस्क होते ही तीनों पुत्रों में अपनी सम्पत्ति को बांट दिया था। इससे आपके हिस्से में प्राय: दस हजार रुपये आये थे। किन्तु अपने बुद्धि कौशल से आपने छ: वर्ष में ही उनसे एक लाख रुपया उपार्जन कर लिया था। कुल परम्परा के अनुसार आपका विवाह बाल्यावस्था में हो गया था। किन्तु गृहस्थ होते हुए भी आप एक प्रकार से ब्रह्मचारी ही थे। आप को कसरत और कुश्ती का शौक था तथा बाल्यावस्था से ही साधु सेवा में अत्यन्त अनुराग था। गवां में उस समय साधु-महात्माओं के लिये सब प्रकार की सुविधा थी। इसलिये कोई न कोई अच्छे विरक्त और निष्ठावान् महात्मा वहाँ बने ही रहते थे। आपको भी जब अवकाश मिलता तो उनके पास जाकर सत्संग का लाभ लेते थे।

एक बार इन्हें स्वामी सहजानन्द नाम के एक महात्मा मिले। वे हठयोग में पारंगत थे। इन्हें भी बाल्यावस्था से ही योग का शौक था, परन्तु कोई योग्य गुरु नहीं मिले थे। स्वामी सहजानन्द के मिलने पर उस अभाव की पूर्ति हो गयी और इन्होंने हठयोग की साधना आरम्भ कर दी। अभ्यास आरम्भ करने पर आपने अखण्ड ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की तथा आहार-विहार का भी बड़ा संयम रखा। उन दिनों आप

केवल मूँग, चावल और थोड़ा घी-दूध ही लेते थे। इस प्रकार आप बड़ी तत्परता से अभ्यास में लग गये। तेजस्वी पुरुष जिस काम में भी लगते हैं उसी में अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। हमारे महाराज जी भी महापुरुष का एकमात्र यही लक्षण किया करते हैं कि वह जिस काम को करता है उसी में, चाहे वह बड़ा काम हो या छोटा, अपना सारे का सारा चित्त लगा देता है। बाबू हीरालाल जी ने भी इस समय अपना सारा गृह कार्य छोड़कर योगाभ्यास में ही पूरा समय लगा दिया। अत: थोड़े ही दिनों में उन्हें उसमें अच्छी सफलता प्राप्त हो गई। उन्हें हठ योग के नेति-धोति आदि षट्कर्म सिद्ध हो गये और दो-तीन घण्टे का कुम्भक भी होने लगा। इससे उनकी ध्यान में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

किन्तु अन्त में 'योगी-रोगी-भक्त-बावले, ज्ञानी बड़े निखट्टू। कर्म काण्डी ऐसे डोलें ज्यों भाड़े के टट्टू' वाली कहावत चरितार्थ हुई। उनकी योग साधना में भी विघ्न उपस्थित हो गया। जिस समय षट्कर्म करने के बाद वे प्राणायाम करते और उसके पीछे ज्यों ही कुम्भक होने लगता कि उनका प्राण कभी तो ठीक गति से ऊर्ध्वगामी होता और कभी सुषुम्ना मार्ग से न चढ़कर बेढंगे तौर पर किसी और नाड़ी द्वारा मस्तिष्क में चढ़ जाता। उस समय वे पागल-से हो जाते थे और उन्हें महान् कष्ट होता था। यहाँ तक कि कभी-कभी तो वे मूर्च्छित से हो जाते थे। एक बार उनकी मूर्छा इतनी बढ़ी कि नाड़ी की गति भी रुक गयी और हृदय की धड़कन बन्द हो गयी। बस, वे मृतक के समान निश्चेष्ट अवस्था में पृथ्वी पर पड़े थे। जब कई घण्टे इसी प्रकार निकल गये तो घर वालों ने समझा कि इनके प्राण-पखेरू उड़ गये हैं और वे सब इनको ले जाने का प्रबन्ध करने लगे।

उसी समय करुणागार भक्त वत्सल भगवान् श्रीहरि के हृदय में पीड़ा हुई और वे अपने भक्त की रक्षा करने के लिये वहाँ श्रीमहाराज जी के रूप में आ पहुँचे। यद्यपि इस समय आपके वहाँ आने की कोई सम्भावना नहीं थी; तथापि दैवयोग से आप आ पहुँचे और वत्सहीना गौ की तरह 'हीरालाल! हीरालाल!' पुकारते ऊपर अट्टे पर चढ़ गये। जाकर देखा कि हीरालाल तो मृतक की तरह पृथ्वी पर पड़े हैं और उनका शोक मगन परिवार उनकी श्मशान-यात्रा की तैयारी कर रहा है। महाराज

जी को देखते ही सब लोग एक ओर हट गये और प्रणाम करने लगे। यद्यपि उस समय लोग इनका विशेष महत्व नहीं जानते थे, तो भी साधु सेवी थे और इनमें श्रद्धा रखते थे तथा यह भी जानते थे कि बाबूजी से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

वहाँ का सब रंग-ढंग देखकर आप आवेश में आ गये और अंग्रेजी में व्याख्यान-सा देने लगे। उस व्याख्यान का आशय यही था कि यह तुम्हारे कुल में एक महान् योगी उत्पन्न हो गया है। यह तुम्हारे सारे कुल का उद्धार करेगा। इसके द्वारा जगत् का बड़ा उपकार होगा। यह भस्म में ढँके हुए अंगारे के समान एक प्रच्छन्न महापुरुष है। तुम लोग एक योगी की गति को क्या समझ सकते हो? वह किस तरह मरता है और किस तरह जीता है—तुम्हें क्या पता? बस, भलाई इसीमें है कि तुम सब अभी यहाँ से चले जाओ; नहीं तो अच्छा नहीं होगा! तुमने एक योगी की अवज्ञा रूप घोर अपराध किया है। इसलिये तुम सब चले जाओ।

इसी तरह आपने बहुत कुछ कहा। उस समय आवेश के कारण आप अपने भक्त के गुणों का वर्णन करते अघाते नहीं थे। इससे वे बेचारे तो डर कर सभी एक दम खिसक गये और इन हज़रत ने बड़े गम्भीर नाद से ओंकार की ध्वनि की तथा बाबू जी के सिर पर हाथ रखा। बस, वे एकदम जैसे सो कर उठे हों 'श्रीहरि: श्रीहरि:' उच्चारण करते उठ बैठे। आँख खोल कर देखा तो सामने आप खड़े हैं। अत: उठ कर प्रणाम किया और बैठने के लिये आसन दिया। इस समय तक यद्यपि हीरालाल जी तो महाराजजी के स्वरूप को नहीं जानते थे तथापि महाराज जी तो उन्हें पहचानते ही थे। आप आसन पर बैठ गये और हँसकर बोले, 'भूख के कारण मेरे तो प्राण निकल रहे हैं और तुम सुख से सोये पड़े हो। भला, यह भी कोई सोने का समय है।' इस बात को सुनकर बेचारे बड़े लज्जित हुए और जल्दी से कुछ भोजन लाकर आपको खिलाया तथा क्षमा प्रार्थना करने लगे।

महाराज जी भोजन करके चले गये। किन्तु यह सब दृश्य बाबूजी के चचेरे भाई लाला जानकीप्रसाद एक ओर छिपे हुए देख रहे थे। उनका बाबूजी से घनिष्ठ प्रेम था। यह अलौकिक चमत्कार देखकर उन्होंने मन ही मन श्रीमहाराज जी के चरणों में आत्म समर्पण कर दिया और उनके चले जाने पर सब वृत्तांत बाबूजी को सुनाया।

तब उन्हें अपना परम सुहृद जानकर बाबूजी ने उनसे कहा, 'मैं सचमुच ही आज किसी दूसरे लोक में चला गया था और वहाँ से लौटने की भी इच्छा नहीं थी। किन्तु ये महापुरुष यह कह कर कि वाह, मुझे वहाँ बुलाकर आप यहाँ चले आये। तुम्हें तो अभी संसार का बहुत काम करना है;' मुझे तो बलात्कार से ले आये हैं। यह कहकर बाबूजी फूट-फूट कर रोने लगे कि 'भाई ? मैंने तो इन चरणों में बड़े-बड़े अपराध किये हैं। मैं तो अपने को ही इनसे श्रेष्ठ समझता था। मुझे तो यह अभिमान था कि मैं बड़ा योगी हूँ, ज्ञानी हूँ, विद्वान् हूँ। परन्तु आज मेरे इस अभिमान पर वज्रघात हुआ। ये क्या वस्तु है—यह तो मैं अब भी नहीं समझ पाया हूँ। अच्छा, मैं उनके स्वरूप को समझूं, या न समझूं, पर वे मुझे अवश्य पहचानते हैं कि मैं कितना नीच हूँ। इसीसे अपनी पतितपावनता का परिचय देने के लिये उन्होंने आज मुझे पुनः जीवन दान दिया है।'

ज्ञानसे प्रेमकी ओर

पहले भेरिया की सन्त मण्डली के प्रसंग में श्रीअच्युत मुनि जी का उल्लेख किया जा चुका है। अपने समय में वे गंगा-तट के सुप्रसिद्ध सन्तों में थे। उनकी मस्तानी मुद्रा, गम्भीर विद्वत्ता और बालोपम सरलता से आकर्षित होकर अनेकों सत्संगी और जिज्ञासु उनके सेवक हो गये थे। उनमें कई अच्छे धनाढ्य भी थे। वेदान्त ग्रन्थों के पढ़ाने की उनकी शैली बड़ी ही सरल और सुबोध थी। अतः सेठ गौरीशंकर खुरजा वाले पण्डित रामशंकर और पण्डित श्रीलाल अनूपशहर वाले तथा गवां के बाबू हीरालाल और पण्डित श्रीराम आदि कई सत्संगी उनसे पञ्चदशी ब्रह्मसूत्र और वृत्ति प्रभाकर आदि वेदान्त-ग्रन्थ पढ़ा करते थे। इनके साथ हमारे महाराज जी भी पाठ सुनने लगे।

जिन दिनों श्रीमहाराजजी गवां में थे श्रीअच्युत मुनि जी दीपपुर के घाट पर एक नौका में रहते थे। वहीं आप नित्य प्रति स्नान के लिये जाते थे और पाठ में सम्मिलित हो जाते थे। इसी समय नागपुर के सेठ वृद्धिचन्द जी पोद्दार के विशेष आग्रह से श्रीअच्युत मुनिजी ने वर्धा जाने का निश्चय किया। वे हमारे महाराज जी की सौम्य मुद्रा से पहले

ही आकर्षित हो चुके थे। अतः उन्होंने हीरालाल जी से कहा, 'ये सन्त मुझे बड़े प्रिय जान पड़ते हैं। इनकी नासिका से दिव्य गंध आती है। ये कोई अच्छे महापुरुष हैं। यदि ये हमारे साथ वर्धा चलना चाहें तो पूछ लेना। इनका वेदान्त-पाठ भी चलता रहेगा।'

बाबूजी ने महाराज जी से पूछा। वे चलने को तैयार हो गये और निश्चित तिथि पर श्रीअच्युत मुनि जी के साथ वर्धा पहुँचे। वहाँ आनन्द-पूर्वक रह कर नियमानुसार वेदान्त-विचार होने लगा। श्रीअच्युत मुनि जी बड़े तेज स्वभाव के महापुरुष थे। उन्होंने कह दिया था कि ठीक सूर्योदय पर ही आ जाओगे तभी हम पढ़ायेंगे। यदि पाँच मिनट की भी देरी हुई तो हम पाठ नहीं चलायेंगे। इसी भय से आप प्रातःकाल २ बजे उठते, फिर छः मील दूर नदी पर जाकर शौच स्नानादि से निवृत्त हो अपना नियमित आसन व्यायामादि करते और थोड़ी देर ध्यान करके ठीक सूर्योदय पर पहुँच कर पाठ आरम्भ कर देते। उसके पश्चात् जो कुछ पढ़ते उसे विचारते, मध्याह्न में भोजन के उपरान्त कुछ विश्राम करके पुनः स्वाध्याय करते तथा प्रायः ३ बजे से ५ बजे तक श्रीअच्युत मुनि जी के मुख से कोई वेदान्त की कथा सुनते और सायंकाल में कुछ भ्रमण कर लेते।

किन्तु सायंकाल के पश्चात् आपका कोई प्रोग्राम नहीं था। इसके लिये आपको किसी और सत्संग की खोज थी। इधर-उधर पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ से थोड़ी दूर पर समर्थ गुरु रामदास जी का एक प्राचीन स्थान है। वहाँ श्री समर्थ के समय से ही "श्रीराम जय राम जय जय राम" इस मन्त्र का अखण्ड कीर्तन चल रहा है। समर्थ श्रीरामदास स्वामी का नाम हमारे अधिकांश पाठकों से अपरिचित नहीं होगा। वे भारत के वीर रत्न छत्रपति महाराज शिवाजी के गुरु थे। महाराष्ट्र के भक्तजन उन्हें साक्षात् श्रीहनुमान जी का अवतार मानते हैं। कहते हैं यह मन्त्र उन्हें साक्षात् श्रीरामचन्द्र जी ने दर्शन देकर प्रदान किया था। राम रहस्योपनिषद् में इस मन्त्र का उल्लेख इस प्रकार किया है—

श्रीरामेति पदं चोक्त्वा जय राम ततः पदम्।
जय द्वयं वदेत्प्राज्ञो रामेति मनुराजकः॥

इस स्थान का नाम हनुमानगढ़ी था। इस समय उन्हीं समर्थ की शिष्य-परम्परा में इस स्थान की गद्दी पर श्रीपराँजपेजी महाराज थे। ये अंग्रजी, संस्कृत तथा मराठी आदि भाषाओं के अच्छे विद्वान् और बड़े भावुक भक्त थे। सायंकाल में ये स्वयं ही बड़े समारोह के साथ कथा, कीर्तन एवं आरती आदि किया करते थे।

जब श्रीमहाराज जी को इस स्थान का पता लगा तो आप सायंकाल में वहाँ गये और श्रीभगवान् तथा भक्त मण्डली को प्रणाम कर एक ओर चुपचाप बैठ गये। इस तरह आप निरन्तर तीन घण्टे तक बैठे रहे। उनका कीर्तन सुनकर आपको बड़ा ही हर्ष और आनन्द हुआ तथा आपने निश्चय किया कि यहाँ नित्य आया करेंगे। आप नित्य प्रति ठीक समय पर वहाँ पहुँचते और प्रणाम करके ठीक उसी स्थान पर, जहाँ कि पहले दिन बैठे थे, चुपचाप बैठ जाते थे। आप बड़े ही मनोयोग से कीर्तन सुनते। इससे आपको बड़ा आनन्द होता। आपके जीवन में यह नया ही अनुभव था। इससे पहले आपने कभी ऐसा भक्ति और प्रेमरस से भरा कीर्तन नहीं सुना था। यों तो आप जन्मसिद्ध थे। बचपन से ही आपकी वेदान्त निष्ठा थी तथा गुरुदेव की सन्निधि में बाल्यावस्था में ही आपको आत्म साक्षात्कार हो चुका था वैराग्य इतना बढ़ा चढ़ा था कि होशियारपुर में आश्रम की प्रवृत्ति भी सहन न हो सकी और आपको वहाँ से भागना पड़ा। आपके गुरुदेव के जीवन में यद्यपि ऐसी अनेकों घटनाएँ हुई थीं, जिनसे उनका गम्भीर भगवत् प्रेम प्रकट होता था। कहते हैं, उन्हें श्रीवृन्दावन के सेवाकुञ्ज में श्रीप्रिया प्रीतम के साक्षात् दर्शन हुए थे। तथापि उनकी प्रधान निष्ठा ज्ञान में ही थी। इसी से इस समय तक आपकी अभिरुचि भी प्रधानतया ज्ञान में ही थी। किन्तु आपको तो संसार में श्रीगुरुदेव के हृदय का गुप्त धन प्रकट करना था। अतः यहाँ से उसी का श्रीगणेश हुआ।

कीर्तन में आपको भाव समाधि होने लगी तथा अष्ट सात्त्विक भावों का उद्‌ग होकर आपके हृदय की भाव तरंगें उथल-पुथल करने लगीं। आपने हृदय को सम्भालने की बहुत चेष्टा की, परन्तु अब वह काबू से बाहर हो गया। ऐसे भावों को देख कर परांजपेजी तथा उनके साथियों के चित्त इनकी ओर आकर्षित हुए थे, परन्तु इनकी अत्यन्त शान्त और गम्भीर मुद्रा देखकर उन्हें इनसे कोई प्रश्न करने का साहस

नहीं हुआ। हाँ, जहाँ जाकर ये बैठा करते थे वहाँ अब पहले से ही अच्छा सा आसन बिछा दिया जाता था और कीर्तन के आरम्भ में ही एक पुष्पमाला पहना कर भगवत्प्रसादी चन्दन लगा दिया जाता था। उठते समय आपको बड़े आनन्द के साथ प्रसाद अथवा तुलसी भी दी जाती थी। वहाँ जितने भी कीर्तन-प्रेमी आते थे सभी इनकी ओर आकर्षित हो गये थे। कोई इनके स्थिर आसन पर मुग्ध था, कोई नीची दृष्टि पर, कोई रूप-लावण्य पर और कोई अद्‌भुत भावतरंग पर। इस प्रकार सभी मुग्ध थे।

यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। अब तक आपके जीवन में अद्वैत निष्ठा का ही प्राधान्य था। किन्तु इस भक्त समाज ने उसका प्रवाह भगवत् प्रेम की ओर मोड़ दिया। आपके जीवन का यह परिवर्तन-बिन्दु (Turning point) था। अब तक 'सोऽहम्' के रूप में जिस तत्त्व का अनुभव हुआ था उसीमें 'दासोऽहम्' भाव से आपका हृदय बँध गया। इस प्रेम-बन्धन का आनन्द बड़ा ही अनूठा था। आपने कई बार स्वयं कहा है कि मुझे गुरुदेव की कृपा से आत्म सुख का पूर्ण अनुभव था, किन्तु जिस समय 'दासोऽहम्' का अनुभव हुआ तो ऐसा प्रतीत हुआ कि यह आनन्द उससे भी विलक्षण है।

अपने इस भाव को आप कई दिनों तक रोकते रहे। किन्तु कहाँ तक रोकते? एक दिन एक साथ ही अश्रु, पुलक, स्तब्धता स्वेद, कम्प, स्वरभंग, वैवर्ण्य और मूर्छा ये आठों सात्विक विकार प्रकट हो गये। इनमें से एक-दो विकार तो भक्तों को प्रायः हुआ ही करते हैं। किन्तु आठों का एक साथ में उदय होना या तो महाभाव रूपा श्रीवृषभानु नन्दिनी में सुना जाता है, या कलिपावनावतार श्रीगौरसुन्दर में और या उनके पश्चात् इस दिव्यमंगल विग्रह में देखा गया। श्रीपरांजपेजी वैष्णवशास्त्रों के मर्मज्ञ और रसज्ञ थे। उन्होंने जब इनके अंगों में एक साथ ही इस भाव संघर्ष को देखा तो वे अवाक् होकर देखते ही रह गये। मेघों से जल की धाराओं के समान इनके नेत्रों से निरन्तर अश्रुवर्षण हो रहा था। प्रत्येक रोम की जड़ में छोटे-छोटे झड़वेर की सी गाँठें पड़ कर बार-बार रोम खड़े हो जाते थे और उनसे रुधिर के कण निकल आते थे। शरीर से इतना पसीना निकल रहा था कि सारे रोम-छिद्रों से फब्बारे से छूट रहे थे, जिनसे चारों ओर की भूमि गीली हो गयी थी। सारे शरीर में ऐसा कम्प हो रहा था

कि झंझावात से केले का पत्ता कांप रहा हो। कण्ठ का स्वर गद्‌गद् हो गया था। भावतरंग में कुछ बोलना चाहते थे, परन्तु स्वरभंग के कारण शब्द स्पष्ट नहीं निकलता था। शरीर का रंग कभी पीला, कभी एकदम मेघ-श्याम, कभी नवदुर्वा दल-श्याम, कभी श्वेत और कभी रक्त इस प्रकार क्षण-क्षण में बदल रहा था। नेत्र भी कभी कमल के समान प्रफुल्लित, कभी अर्धोन्मीलित और कभी मुकुलित हो जाते थे। इस तरह कुछ काल तक भाव संघर्ष रहा। फिर आप मूर्छित हो गये।

श्रीपरांजपेजी तथा अन्य भक्तों ने उस गाढ़ मूर्च्छा में ही आपको बड़ी श्रद्धा और साहस से उठा लिया और ठाकुर जी के सामने ही एक सुन्दर कालीन पर लिटा दिया। तब आप बार-बार मेघ-गम्भीर नाद से हुँकार करने लगे। उस दिव्यनाद को सुनकर भक्त लोगों के मन में दिव्य आनन्द की तरेंगें उठने लगीं और सभी को ऐसा प्रतीत हुआ मानो आज हमारा जीवन सफल हो गया। आज हमारे सामने सुर-मुनि दुर्लभ श्रीभगवान साक्षात् प्रकट हो गये। अतः आज हमारा मानव जन्म सफल हो गया। इन्द्र, यम, वरुण आदि देवगण जिनकी दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करते हैं, योगिजन निरन्तर ध्यानाभ्यास करने पर जिन्हें देख पाते हैं तथा वेद शास्त्रादि जिनका अनेक प्रकार से गुणगान करते हैं और देवता एवं मुनियों को भी जिनके वास्तविक रहस्य का पता नहीं लगता वे ही भगवान् आज हमारे दृष्टिगोचर हुए हैं। ऐसा भाव जाग्रत होने से एक बार तो भक्तजन स्तम्भित रह गये।

श्रीमहाराज जी में इस समय अद्‌भुत भगवदीय भाव का आवेश था। वे सब लोगों के देखते-देखते पहले तो श्रीभगवान् की ओर पांव करके लेट गये, फिर उठे और भगवान् को एक ओर खिसका कर आप सिंहासन पर जा विराजे। ऐसा भगवदीय आवेश कभी-कभी श्रीमन्महाप्रभु जी में हुआ करता था। ऐसी अवस्था में भक्त में अपना कुछ भी नहीं रहता। उसमें भगवदीय चेतना का ही आविर्भाव हो जाता है और उस समय उसके तेज और सामर्थ्य भी अलौकिक हो जाते हैं। उसमें पूर्णतया भगवदीय शक्ति का उन्मेष हो जाता है।

यह देखकर भक्तों के आनन्द का पारावार न रहा। उन्हें तो मानो श्रीश्यामसुन्दर की गिरिराज लीला का अथवा श्रीमन्महाप्रभु जी की महा-प्रकाश अवस्था का ही प्रत्यक्ष दर्शन हो गया। उस समय भक्तों को अपनी-अपनी भावना के अनुसार आपके विभिन्न रूपों में दर्शन हो रहे थे। किन्हीं ने धनुषधारी श्रीराम के रूप में, किन्हीं ने मुरली-मनोहर श्रीश्यामसुन्दर के रूप में और किन्हीं ने किसी दूसरे ही रूप में आपकी झाँकी की। तदन्तर आपने मेघ गम्भीर वाणी से कहा, 'भोग लाओ।' यह सुनकर भक्तों के आनन्द का पार न रहा। सभी उल्लास में भर कर दौड़े और कोई घर से तथा कोई बाजार से मिठाई, फल, मेवा, दूध, दही, माखन आदि अनेकों वस्तुयें लाकर भोग लगाने लगे। सभी भक्तों ने एक-एक करके भोग अर्पण किया और भगवान ने आनन्द से पाया। कितना भोग पा गये, इसका कुछ ठिकाना नहीं। पीछे भक्तों ने ताम्बूल अर्पण किया और प्रभु ने उसे भी स्वीकार किया। तत्पश्चात् वस्त्रादि भी भेंट किया गया। अन्त में प्रभु बोले, 'वर मांगो।' ये शब्द सुनकर तो सभी भक्त हड़बड़ा गये और स्थिर न कर सके कि क्या वर माँगे। पुरुषार्थ चतुष्टय के मूल साक्षात् श्रीहरि तो सामने विराजमान हैं, अब ऐसी कौन वस्तु रही जिसे हम मांगें किन्तु भगवान् बार-बार आग्रह कर रहे हैं, इसलिये भक्तों ने विवश होकर अपने स्वजन और बन्धु-बान्धवों की हित कामना से वर माँगना आरम्भ किया। किसी ने कहा,' भगवन्! मेरी स्त्री मेरे भजन में विघ्न डालती है, उसकी बुद्धि सुधार दीजिए।' कोई बोला, 'मेरा पिता साधुसेवी नहीं है, उसकी श्रद्धा सन्त चरणों में हो जाय।' किसी ने कहा, 'प्रभो! मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिये। इसी प्रकार सबने अलग-अलग वर माँगे। प्रभु ने कहा, एवमस्तु' तदनन्तर सब भक्तों ने आरती और स्तुति करके श्रीचरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर सब लोग खोल-करताल आदि वाद्य लेकर कीर्तन करने लगे। अब तो कहना ही क्या था? ज्यों ही कीर्तन की ब्रह्माण्ड-व्यापिनी ध्वनि से आकाश-पाताल गुञ्जाय मान हुआ कि सभी भक्त आनन्द में भर कर नृत्य करने लगे।

आज का कीर्तन और दिनों का-सा नहीं था। आज तो प्रेमावतार श्रीशचिनन्दन ही स्वयं वेष बदल कर पुनः इस रूप में प्रकट हुए थे। आज सब भक्त क्या बन गये थे, सुनिये—
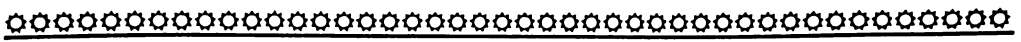
'संकीर्तनानन्दरसस्वरूपाः प्रेमप्रदानैः खलु शुद्धचित्ताः।
सर्वे महान्तः किल कृष्णतुल्याः संसारलोकान् परितारयन्ति॥' *

जब भक्तजन संकीर्तनानन्द में विभोर हो गये तब प्रभु उठकर भक्त-मण्डली के बीच में आये और स्वयं नृत्य करने लगे। बस, अब तो अद्भुत आनन्द सुधा की वर्षा होने लगी। प्रभु दोनों भुजाएँ उठा कर विचित्र गति से नृत्य करने लगे। तब जो अनूठी शोभा हुई उसने भक्त-मण्डली के बीच में नृत्य करती हुई श्रीगौरचन्द्र की कनककमनीय मूर्ति को ही साक्षात् नेत्रों के सामने उपस्थित कर दिया—

'कनकमुकुटकान्तिं चारुवक्त्रारविन्दं
मधुरमधुरहास्यं पक्वबिम्बाधरोष्ठम्।
सुवलितललिताङ्गं कम्बुकण्ठं नटेन्द्रं
त्रिभुवनकमनीयं गौरचन्द्रं प्रपद्ये॥' **

बस, एक आनन्द का बाजार लग गया। कोई प्रभु के चरणों में पड़ कर रो रहा है, तो कोई खिल खिला कर हँस रहा है। कोई किसी के गले से लिपटा हुआ है तो कोई किसी का मुख चूम रहा है। इस प्रकार वह सारी रात्रि बीत गयी। जब प्रातःकाल हुआ तो प्रभु अकस्मात् हुँकार करके पृथ्वी पर गिर गये। भक्तों ने जल्दी से अनेकों उपचार किये तो आपको चेत हुआ। सावधान होते ही आप हड़बड़ा कर बोले, 'अरे! मैं क्या अभी तक यहीं हूँ? क्या मैं पागल हो गया था? क्या मेरा दिमाग बिगड़ गया था? न जाने मैंने बेहोशी में क्या-क्या कुचेष्टायें की होंगी?' इन बातों पर विचार करके आप सब भक्तों के चरणों में प्रणाम करने लगे और बड़ी दीनता से बोले, 'आप सब लोग मेरी ढिठाई क्षमा करें। मुझे कभी-कभी यह वायु रोग हो

---

* वे संकीर्तनानन्दस्वरूप थे, संसार को प्रेम प्रदान करने के कारण शुद्धचित्त हो गये थे। वे सभी महापुरुष साक्षात् श्रीकृष्ण के समान थे जो सब प्रकार संसारिक लोगों का भी उद्धार कर रहे थे।

** जिनकी सुवर्णमुकुट की सी कान्ति है, मनोहर मुखारविन्द है, मधुर-मधुर हास्य है, पके हुए बिम्बा फल के समान अरुण ओष्ठ हैं, सुगठित और सुन्दर अंग-प्रत्यंग हैं और शंख के समान ग्रीवा है, उन त्रिलोक-सुन्दर नटराज श्रीगौरचन्द्र की मैं शरण लेता हूं।

जाता है। इसमें न जाने मैं क्या-क्या कुचेष्टायें कर बैठता हूँ।' ऐसा कहकर आप फूट-फूट कर रोने लगे। पराँजपेजी ने अनेक प्रकारसे आपको शान्त किया। तब आपने सावधान होकर जैसे-तैसे वहीं स्नान किया और ठीक सूर्योदय होने पर ही श्रीअच्युत मुनि जी के पास पहुँच कर वेदान्त का पाठ आरम्भ किया।

आप इसी प्रकार नित्य सायं काल में श्रीपरांजपेजी के यहाँ जाते और कीर्तन में सम्मिलित होकर खूब कीर्तन करते थे। इससे उस कीर्तन का रंग कुछ और ही हो गया। यह कीर्तनरूपी नदी ऐसी उमड़ी कि 'सारे आश्रम को डुबोती हुई अड़ोस-पड़ोस को भी प्लावित करने लगी। धीरे-धीरे यह बात श्रीअच्युत मुनि जी के कानों तक भी पहुँच गयी। इससे वे ठीक उसी प्रकार बिगड़ उठे जैसे श्रीगौरसुन्दर के गया धाम से लौटने पर अद्‌भुत परिवर्तन की बात सुनकर उनके विद्या गुरु श्रीगंगादास पण्डित बिगड़े थे। आपने पाठ आरम्भ करने से पहले ही पूछा, स्वामी जी, क्या तुम उस मठ में जाकर नाच-कूदकर कीर्तन किया करते हो ?' यह सुनकर श्रीमहाराजजी चुप रह गये। तब उन्होंने डाँटकर कहा, 'देखो स्वामीजी, हमारे वेदान्त पढ़ाने का क्या यही फल है ?' इधर तो अद्वैत सिद्धान्त श्रवण करते हो और उधर द्वैत भाव से उपासना करते हो ? क्या तुमको विचार-सागर का मंगलाचरण स्मरण नहीं है—

'जा कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान।
ताको होत उपाधिते, मो में मिथ्या भान॥'

तब भी महाराज जी चुप ही रहे। इस पर इन्होंने और भी आवेश में आकर अनेक प्रकार से वेदान्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए भेदोपासना का खण्डन किया। जब इस पर भी आपने कोई उत्तर न दिया तो उन्होंने बिगड़ कर कहा, 'अच्छा तुम्हारा क्या मत है, ठीक-ठीक बोलो।'

तब महाराज जी ने बड़ी शान्ति और नम्रता से प्रणाम करके कहा, महाराज जी! मेरे बिचार में तो निगुर्ण और सगुण में कोई भेद नहीं है। एक ही तत्त्व की दो नामों से अथवा अनेकों नाम और रूपों से उपासना की जाती है। जैसा कि हनुमन्नाटक में कहा है—
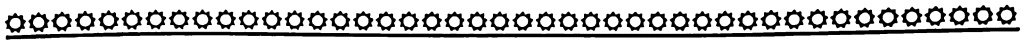
यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥ *

कहते हैं कि एक दिन श्रीरघुनाथजी ने हनुमान जी से पूछा था कि मेरे प्रति तुम्हारी क्या भावना है, तो उन्होंने भी यही कहा था—

'देहमत्या तु दासोऽहं जीवमत्या त्वदंशकः।
ब्रह्ममत्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥'

मेरे विचार से तो जितने भी प्राचीन आचार्य हुए हैं उनकी स्थिति पर विचार करने से भी भक्ति और ज्ञान में कोई विरोध नहीं जान पड़ता। जो काकभुशुण्डि जी योगवासिष्ठ में ज्ञान के आचार्य हैं वे ही श्रीरामचरित मानस में भक्ति के आचार्य माने गये हैं। सनकादि को देखिये, छान्दोग्यो-पनिषद् में नारद जी को तत्त्व ज्ञान का उपदेश देते हैं और पद्मपुराण में वे ही श्रीमद्भागवत का सप्ताह पारायण सुना कर भक्ति का प्रचार करते हैं। वे ब्रह्मनिष्ठ भी हैं और वैष्णवाचार्य भी। शिवजी और नारद जी भी योग, वेदान्त एवं भक्ति तीनों के आचार्य माने गये हैं। श्रीवेदव्यास जी ब्रह्मसूत्रों के भी रचयिता हैं और श्रीमद्भागवत् आदि भक्ति ग्रन्थों के भी प्रवर्त्तक हैं। शास्त्रों में भी जहाँ जिस विषय का वर्णन किया गया है वहाँ उसी को सर्वोपरि बताया गया है। इससे तात्पर्य यही जान पड़ता है कि ज्ञान, उपासना और कर्म सभी मार्ग अपनी-अपनी जगह पूर्ण हैं। जिसकी जिसमें निष्ठा जम जाय उसका उसी के द्वारा कल्याण हो सकता है। और मेरे विचार से तो एक व्यक्ति साथ-साथ भी तीनों का साधन कर सकता है तथा प्राचीन आचार्यों ने तो ऐसा किया भी है। यदि आज-कल के अल्प शक्ति मनुष्यों की सब में प्रगति न हो सके तो अधिकारी भेद से जिसकी जहाँ निष्ठा हो वहीं सच्चाई

*** शैव जिनकी शिव रूप से, वेदान्ती ब्रह्म रूप से, बौद्ध बुद्ध रूप से और प्रमाण-कुशल नैयायिक कर्त्ता रूप से उपासना करते हैं, जैन शास्त्रों का अनुसरण करने वाले जिन्हें 'अर्हत्' और मीमांसक जिन्हें 'कर्म' मानते हैं वह त्रिलोकाधिपति श्रीहरि तुम्हारा अभीष्ट फल प्रदान करें।**

और ईमानदारी से लगे रहना चाहिये तथा दूसरे मार्गों को बुरा नहीं कहना चाहिये। इससे उसके उत्साह तथा श्रीहरि और गुरुदेव की कृपा से उसे सभी रहस्य स्वयं ही हृदयङ्गम हो जायँगे। महाराज जी! मेरे विचार से तो पहले ब्रह्मनिष्ठा परिपक्व होने पर ही यथावत् रीति से सगुण ब्रह्म का चिन्तन हो सकता है। इसीसे शास्त्रों में पहले भित्तिभूमि रूप शान्तरस का ही वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् क्रमशः दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रस की पुष्टि होकर पूर्ण स्थिति प्राप्त होती है। अतः मेरे विचार से तो ज्ञान के बिना भक्ति और भक्ति के बिना ज्ञान अधूरे ही हैं। यह तो आज कल ही देखने में आता है कि ज्ञानी और भक्त कहलाने वाले लोग आपस में झगड़ते रहते हैं और एक-दूसरे को नीचा दिखाने पर उतारू रहते हैं। हाँ, अपनी निष्ठा की परिपक्वता के लिये यदि अन्य निष्ठा वालों से उदासीन रहा जाय तो इसमें कोई दोष नहीं। किन्तु उसमें भी दूसरे पक्ष को बुरा कहने की तो गुञ्जाइश नहीं है। गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने भी कहा है—

'एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द पर धामा॥
सो केवल भक्तन हित लागी। परम कृपालु भक्त अनुरागी॥
निर्गुन ब्रह्म सगुण भये कैसे। जल हिम उपल विलग नहिं जैसे॥
ज्ञानहिं भक्तहिं नहिं कुछ भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥'

श्रीभगवन्नाम के विषय में तो वे कहते हैं —

'ब्रह्म राम ते नाम बड़, वरदायक वरदानि।
रामायण शत कोटि महँ, लिय महेश जिय जानि॥'

तथा भगवान् व्यास भी कहते हैं—

'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥'

महाराजजी! मेरी बुद्धि तो बहुत मोटी है। आपकी इस वेदान्त प्रक्रिया को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है। जान पड़ता है, इसीसे श्रीहरि ने मुझे यह अवसर दे दिया है। अभी तक तो मुझे यह पता ही नहीं था कि भक्ति किसे कहते हैं। मैं आपसे

निष्कपट भाव से सच-सच कहता हूँ कि मुझे जो आनन्द इस भक्त मण्डली में मिला है वह मैं वर्णन नहीं कर सकता। और साथ ही इससे मेरी अहंग्रहोपासना की भी पुष्टि ही हुई है। इस प्रकार मेरी तुच्छ बुद्धि में जैसा आया निवेदन किया; अब आप जैसी आज्ञा करें, वैसा करूँ।

इस पर श्रीअच्युतमुनि जी ने शान्तिपूर्वक कहा—'भाई, हम नाम कीर्तन के लिये मना थोड़े ही करते हैं। हमने तो स्वयं प्रतिदिन एक लक्ष नाम जप किया है। इसीसे इस समय भी हमारी अंगुलियाँ हर समय चलती रहती हैं और नाम जप भी स्वाभाविक रूप से निरन्तर होता रहता है। किन्तु हम इसे केवल चित्त शुद्धि का साधन मानते हैं। हमें तो भगवान् के सगुण स्वरूप का दर्शन भी हुआ है। परन्तु वह तो हमारी दृढ़ भावना का ही परिणाम था। वास्तव में तो सब नाम रूप कल्पित ही है। इसलिये साधक को केवल एक ओर हो जाना चाहिये। यह खिचड़ी मुझे पसन्द नहीं है। अच्छा ठीक है, मैंने समझ लिया तुम्हारे स्वरूप को। तुम वेदान्त के अधिकरी नहीं हो। अब हम तुम्हें वेदान्त नहीं पढ़ायेंगे। हमारी ओर से तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है, तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो और जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ।'

श्रीमहाराज जी ने बढ़ी गम्भीरता से कहा, 'जो आज्ञा।' और प्रणाम करके वहाँ से चल दिये। चलकर सीधे परांजपेजी के आश्रम में आये और कुछ दिन वहीं रहे। अब तो भक्तों को दिन-रात आपके दर्शन, सेवा और सत्संग का अवसर मिलने लगा। उसी समय इनकी इन चमत्कार पूर्ण अवस्थाओं को देख कर परांजपेजी को श्रीगौरांग महाप्रभु का स्मरण हुआ। उन्होंने कुछ ही दिन पूर्व अंग्रेजी में श्रीशिशिरकुमार घोष कृत 'लार्ड गौरांग' (Lord Gaurang) नाम की पुस्तक पढ़ी थी। उन्हें उसकी याद आयी और उसे अपने पुस्तकालय से निकाल कर श्रीमहाराज जी को देते हुए कहा, 'यह अद्‌भुत ग्रन्थ है, इससे आपको बहुत सुख मिलेगा।'

श्रीमहाराज जी ने बड़े भाव से यह पुस्तक पढ़ी। आपको उसमें इतना मिठास मिला कि दो-चार दिन में ही उसके दोनों भाग पढ़ डाले। फिर श्रीपरांजपेजी के विशेष आग्रह से आप कथा रूप में वही पुस्तक सत्संग में सुनाने लगे। कथा कहने से पहले

आप नित्य प्रति उसे विचार लेते थे और फिर मूल को बिना बोले धारावाहिक रूप से उसका अनुवाद सुना देते थे। सुनने वालों को यही मालूम होता मानो आप हिन्दी पुस्तक ही सुना रहे हैं। आप सिद्धासन से बैठ जाते और फिर दो-ढाई घंटे आपके मुखारविन्द से कथामृत की ऐसी वर्षा होती कि सभी श्रोता मुग्ध हो जाते। सब भाव समाधि में मग्न होकर यही अनुभव करते कि साक्षात गौरसुन्दर ही अपने चरित्र का स्वयं वर्णन कर रहे हैं। वर्णन करते समय कई बार आपकी दोनों भुजाएँ ऊपर उठ जातीं, नेत्र मतवाले हो जाते और चेहरे से लालिमायुक्त प्रकाश निकलने लगता। उस समय जैसे भाव का प्रसंग होता उसी के अनुरूप आपके मुख की आकृति हो जाती। भक्तजन निर्निमेष दृष्टि से आपके मुख की ओर देखते हुए एकाग्रचित्त से विभिन्न भावतरंगों में उछलते-डूबते रहते। इस तरह वह कथा का समय एक क्षण की तरह निकल जाता। फिर सब आनन्द में भरे अपने-अपने घरों को जाते और वहाँ भी उस कथावाचक की मधुर मूर्ति एवं वाणी का स्मरण करते हुए उस प्रवचन की ही चर्चा करते रहते। उस सत्संग-चर्चा में उन्हें इतना रस मिला कि वे अपना सब काम-काज भी भूल गये। कभी-कभी वे आपस में विचार करते कि 'भाई, ये स्वामीजी क्या वस्तु हैं? अथवा कोई उच्चकोटि के जन्म सिद्ध योगी हैं, या साक्षात् श्रीमहावीर जी ही हैं, जो एक बार श्रीसमर्थ के रूप में अवतीर्ण हुए थे। नहीं, नहीं, उस दिन तो हमने इन्हें साक्षात् श्री कौशलेन्द्रकुमार के रूप में देखा था। किसी को उसी दिन श्रीबैकुण्ठाधिपति के रूप में और किसी को श्रीमुरलीमनोहर के रूप में भी इनके दर्शन हुए थे। तो फिर वास्तव में ये क्या हैं? अजी, ये कुछ भी हों। यह तो ये ही जानें, हम तो इतना ही जानते हैं कि हमारे तो ये हृदयसर्वस्व हैं। इन्होंने पूर्णतया हृदयों पर अधिकार कर लिया है।'

इस प्रकार कुछ दिन आप वहाँ रहे। इससे वहाँ के भक्तों के साथ आपका दिन-दूना रात-चौगुना प्रेम बढ़ने लगा। प्रेम की एक ऐसी तरंग उठी कि सब भक्तजन उसी में निरन्तर सन्तरण करने लगे। किन्तु भगवान् का यह नियम है कि जब वे इस मानव समाज में आते हैं तो उन्हें छिपकर क्रीड़ा करना ही प्रिय जान पड़ता है। इसीसे महानुभावों ने भगवान् के सगुण स्वरूप को निर्गुण की अपेक्षा अधिक दुर्बोध कहा है। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं।
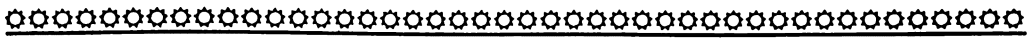
'निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण न जाने कोय।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय॥'

इसका एक विशेष कारण है। मानवहृदय तुच्छ और सीमित है। यह उस रहस्य को छिपाने में असमर्थ है। यदि इसे उस भगवद् रहस्य का कुछ भी पता लग जाय तो फिर यह आपे में नहीं रहता। उसे गुप्तधन की तरह सँभाल कर नहीं रख सकता, जिस-तिस के आगे प्रकट करने की चेष्टा करने लगता है। किन्तु उस नटवर को तो बहु-रूपिया की तरह छिपकर रहने में ही मजा आता है। जहाँ उसका भेद खुला कि भागा।

अब आपकी भी यहाँ विशेष ख्याति बढ़ गयी थी और भक्तों की भीड़ लगने लगी थी। अत: एक दिन रात्रि में ही आप अपना कमण्डलु उठा कर चल दिये। उसके बाद फिर आज तक आपने कभी उस प्रान्त की ओर मुड़ कर नहीं देखा।

इस घटना के प्राय: बीस वर्ष बाद श्रीपरांजपेजी प्रयाग के कुम्भ पर मिले थे। उस समय मैं भी श्रीमहाराज जी के साथ था। जिस समय उन्होंने आपके दर्शन किये उनकी एक विचित्र ही दशा हो गयी। वे एकदम दण्डवत् श्रीचरणों में गिर पड़े और फूट-फूट कर रोने लगे। श्रीमहाराजजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। उनके नेत्रों से निरन्तर आंसुओं की धाराएँ बह रही थीं, शरीर कांप रहा था और उसमें रोमाञ्च हो गया था। वे बहुत देर में शान्त हुए। फिर अपने साथ जो सामग्री लाये थे उससे श्रीमहाराज का षोडशोपचार पूजन किया। वह समागम भी अद्भुत ही था। उन्होंने बार-बार आपसे वर्धा पधारने के लिये प्रार्थना की; किन्तु आपने समझा-बुझाकर उस बात को टाल ही दिया। उस समय एकान्त में श्रीपरांजपेजी से बात करने पर मुझे जो कुछ मालूम हुआ था उसी के आधार पर यह प्रसंग लिखा गया है। उन्होंने यह भी बताया कि वहाँ अब भी भगवन्नाम कीर्तन की जो तरंगिणी बह रही है उसमें हजारों नर-नारी अवगाहन कर रहे हैं तथा भक्तों की भावना के अनुसार इस समय भी संकीर्तन अथवा स्वप्न में और किन्हीं-किन्हीं को प्रत्यक्ष भी आपका दर्शन होता है।

❀

फिर गवां में

बर्धा से चलकर आप अमरकण्टक पहुँचे। यह श्रीनर्मदाजी का उद्गम स्थान है। बड़ा अपूर्व दृश्य था। आस-पास अनेकों पर्वत शिखर ऊँचाई में मानो परस्पर स्पर्धा कर रहे थे। इस स्थान को देखकर आपका चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। आपको वर्धा में भगवद्रस का आस्वादन हो ही चुका था। फिर भी उसमें उन्मत्त होकर आपने अपने लौकिक और पारलौकिक कर्तव्यों की कभी अवहेलना नहीं की। अब भी आप में दुःखी प्राणियों के प्रति अत्यन्त करुणा और सहानुभूति का भाव था। कहते हैं, वहाँ एक कोढ़ी रहता था। एक दिन आप घूमते हुए उसकी ओर जा निकले तो देखा कि उसे अत्यन्त कष्ट है। आपने उससे पूछा, 'तुम क्या चाहते हो ?' उसने रो-कर कहा, 'बाबा! मेरे पास कोई नहीं आता। मैं इधर तो रोग से पीड़ित हूँ और उधर भूख से मर रहा हूँ।' आपने यह सुनकर उसे आश्वासन दिया कि तुम घबराओ मत, मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। इससे वह बेचारा बड़ा प्रसन्न हुआ।

बस, आप बड़े प्रेम से उसकी यथायोग्य सेवा करने लगे। नीम के पानी से उसके घाव धोते, उसके कीड़े निकालते, कहीं से कोई औषधि लाकर उसकी मरहम-पट्टी करते, अपने हाथ से उसे स्नान कराते, साबुन से उसके कपड़े धोते और गांव से भिक्षा लाकर उसे खिलाते। इससे उसे बड़ा सुख मिलता। वह बेचारा कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से आपकी ओर देखता और मन-ही-मन आशीर्वाद देता। इस प्रकार उसका कष्ट बहुत कम हो गया। आप कहा करते हैं कि मुझे जैसी शान्ति उसकी सेवा करने में मिली वैसी कभी नहीं मिली।

अमरकण्टक से चलकर आप और भी कई स्थानों में गये और फिर घूमते-फिरते एक दिन अकस्मात् गवां में जा पहुँचे। यह घटना सम्भवतः सम्वत् १९७० की होगी। आप सीधे बाबू हीरालाल के बगीचे में पहुँचे और उनकी कुटी के किवाड़ खट-खटाने लगे। प्रातःकाल प्रायः ८ बजे का समय था। बाबूजी सबेरे ३ बजे से ही हठयोग की क्रियाओं द्वारा निरन्तर प्राण निरोध का प्रयत्न कर रहे थे। उनका कुम्भक होना ही चाहता था कि उनके कानों में एक गम्भीर स्वरों में किवाड़ खोलो, का शब्द

पड़ा। वे मानो एकदम नींद से चोंक पड़े हों इस प्रकार दबे हुए स्वर में बोले, 'कौन ?' इस पर बाहर से आवाज आयी, 'जिसका तुम ध्यान करते हो।' फिर आश्चर्य चकित होकर प्रश्न किया कौन ? तो फिर वही उत्तर मिला जिसका तुम ध्यान करते हो— अबकी बार उन्होंने चकित होकर फिर पूछा, 'कृपया बतलाइये आप कौन हैं ?' किन्तु फिर भी वही उत्तर मिला। तब उन्होंने हड़बड़ा कर किवाड़ खोल दिये। देखा कि सामने वही उनसे पूर्व परिचित सहपाठी युवक संन्यासी हैं। किन्तु इस समय उनकी कान्ति विलक्षण है। एकदम तपाये सुवर्ण के समान गौरवर्ण है, श्रीमुख से दिव्य तेज प्रस्फुटित हो रहा है, नेत्र प्रफुल्लित नीलकमल के समान तथा मदोन्मत्त की भाँति धूर्णित हैं तथा अंग-प्रत्यंग से शोभा और लावण्य फूट-फूट कर निकल रहे हैं, मानो प्रत्येक अँग से अमृत की वर्षा हो रही हो।

देखते ही बाबूजी ने श्रीचरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उन्हें इतना आनन्द हुआ मानो किसी महान् दरिद्री को कुबेर का भण्डार मिल गया हो। अथवा मूक को वाणी, पंगु को गिरिलंघन का सामर्थ्य अथवा किसी चिरकाल के बिछुड़े हुए प्रेमी को अपना प्रेमास्पद मिल गया हो। वे आनन्दातिरेक से प्रायः मूर्च्छित हो गये। आपने उन्हें बलपूर्वक उठा कर हृदय से लगाया। आपके श्रीअंग का स्पर्श पाकर उन्हें एक विलक्षण, सुख का अनुभव हुआ और वे एकटक नेत्रों से आपकी ओर देखने लगे, मानो जन्म भर के लिये आज ही नेत्रों द्वारा आपको हृदय में बिठा लेंगे। श्रीमहाराजजी के प्रति बाबूजी का ऐसा निःसंकोच भाव शायद फिर कभी नहीं देखा गया। इसके बाद तो हमने इन्हें कभी नेत्र भर कर श्रीमहाराज जी की ओर देखते नहीं देखा और न कभी मुख खोल कर बोलते ही देखा। मानो श्रीभरतलाल की यह उक्ति ही चरितार्थ हुई—

'मैं हु सनेहु संकोच बस, सन्मुख कहेउ न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम-पियासे नैन॥'

आज मानो यह भक्त और भगवान् का अपूर्व मिलन हो गया। अथवा यों कहो कि योगी अपनापा छोड़कर अपने आप में विलीन हो गया। जीव जीवत्व से मुक्त होकर ब्रह्म से अभिन्न हो गया। सत् शिष्य अहंता-ममता छोड़कर सन्त सतगुरु

के श्री चरणों में लीन हो गया। सदा के लिये उन्हीं का स्वप्न हो गया; सद्गुरु ही रह गया—परमानन्द स्वरूप अपना आप ही रह गया। अथवा एक अनिर्वचनीय अद्भुत अखण्ड सुख रह गया। अस्तु। किन्तु आपको तो विश्व-कल्याण के लिये बहुत लीला करनी थी इसलिये फिर सेव्य-सेवक भाव का उदय हुआ और सेवक ने मानसिक भावना से अपने सेव्य का षोडशोपचार पूजन किया तथा नेत्रों के अर्घ्य से श्रीचरणों को धोया।

तब अपने प्रिय भक्त को किंकर्त्तव्य-विमूढ़ देखकर लीला-पुरुषोत्तम बोले, 'बाबूजी! क्या करते हो? उठो, अपने आपको सँभालो, अपने स्वरूप का स्मरण करो। अभी आपको बहुत कार्य करना है। इस स्वार्थपरायणता को छोड़ो—केवल अपने आत्मा के ही सुखसे चित्त को निकालो। देखो, मोक्ष की लालसा को भी तिलाञ्जलि देकर, चिरकाल से बिछुड़े हुए अपने ही स्वरूपभूत अनन्त जीवों को, जो त्रिविध तापों से जल रहे हैं, भावसागर से निकाल कर श्रीहरि के चरणों में लगाना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। संसार में सबसे बड़ी सिद्धि, सबसे बड़ा योग, सबसे बड़ा ज्ञान, सबसे बड़ा ध्यान, सबसे बड़ा उपकार और सबसे बड़ी सेवा यही है कि एक भी भगवद्विमुख जीव को श्रीहरि के सम्मुख कर दिया जाय। हम लोग संसार में केवल अपने सुख के लिये ही नहीं आये हैं। हमें तो संसार के सभी जीवों को भगवान् के सम्मुख करना है। हमारा चाहे सर्वस्व नष्ट हो जाय, किन्तु उससे किसी एक जीव को भी परमात्मसुख प्राप्त हो जाय तो हमारे जीवन का उद्देश्य सिद्ध हो जाता है। वास्तव में सच्ची भक्ति भी यही है, इसमें पूर्ण स्वार्थ-त्याग अपेक्षित है—'

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत्पिशाची हृदि वर्तते।
तावद्भक्ति सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥ *

लो, यह भगवन्नाम की पूँजी, जो मैं वर्धा से प्रसाद रूप में लाया हूँ, इसको संभालो। इसका स्वयं रसास्वाद करके प्राणिमात्र को वितरण करो। देखो, इसमें पात्र-

* जब तक हृदय में भोग या मोक्ष की इच्छारूपी पिशाची मौजूद है, तब तक उसमें भक्ति-सुख का आविर्भाव कैसे हो सकता है?

अपात्र का विचार मत करना। जो सबसे अधिक नीच और पामर है वही इसका अधिक अधिकारी है। भक्त-अभक्त, साधु-असाधु, पण्डित-मूर्ख, ब्राह्मण-चाण्डाल, स्त्री-बालक सभी इसके अधिकारी हैं। यहाँ तक कि पशु, पक्षी, शूकर, कूकर, वृक्ष, लता आदि का भी इसमें समान अधिकार है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

बाबूजी! मैं वर्धा से आपके लिये एक नये और विचित्र भगवान् लाया हूँ—कलिपावनावतार शचिनन्दन गौरसुन्दर श्रीनिमाई। यह लो, उनकी चरित-सुधा। ऐसा कहकर आपने 'लार्ड गौरांग' नामक पुस्तक बाबूजी के हाथ में दी और बोले—'इसे एक बार पढ़ जाओ, फिर मैं स्वयं आपको सुनाऊँगा अब उठो, इस योग को छोड़ो। बस, आज से इसका नाम न लेना। जो चाहोगो स्वयं ही होगा। चिन्ता मत करो, तुम्हारे बदले मैं भजन करूँगा।'

बस, उसी दिन से बाबूजी ने हठयोग छोड़ दिया। अब तो श्री महाराजजी की कृपा से इनकी विचित्र अवस्था हो गयी। रात को केवल दो घंटे निद्रा लेकर ये एक या दो बजे ही जंगल में चले जाते थे। वहाँ एकान्त में जाकर बैठते ही इनकी समाधि लग जाती थी। सबेरे ८ बजे तक ये समाधिस्थ रहते। उत्थान होते ही ये सीधे अपने बगीचे में आ जाते थे और स्नानादि से निवृत्ति होकर कुछ देर स्तोत्र पाठ करते थे। फिर अपने घर जाकर रसोई बनाते। उस समय श्रीमहाराज जी या कोई और साधु आ जाते तो उन्हें भिक्षा कराते। कभी-कभी तो इसी संकल्प से कोई विशेष भोजन बनाते कि श्रीमहाराज जी पधारें। भोजन बनाते समय भी ये बड़े मस्त रहते तथा कोई स्तोत्र पाठ या नाम-कीर्तन करते रहते थे। कई बार भोजन बनाते समय मानसिक भावना से श्रीमहाराज जी का आवाहन भी करते थे। भोजन बन कर तैयार हुआ, उसे तुलसीपत्र देकर अपने परम इष्ट श्रीमहाराज जी को अर्पण किया और एकदम भावावेश में आकर हँसने या रोने लगे कि अकस्मात् श्रीमहाराज जी आ जाते। बाबूजी अभी ध्यान में ही मस्त बैठे हैं, तब महाराजजी जोर से पुकारते, 'बाबूजी! मुझे बड़ी भूख

लगी है, कुछ खाने को दो।' बाबूजी हड़बड़ाकर उठते और विदुर-पत्नी की तरह पागल होकर ऊटपटांग चेष्टाएँ करने लगते। यदि चरण धोने में लग गये तो बड़ी देर तक चरण ही धोते रहते। तब महाराजजी के बारम्बार कहने पर सावधान होकर भोजन परोसते। परन्तु प्रेम की खुमारी अभी ज्यों की त्यों चढ़ी है। बस, अब भोजन ही परोसते जा रहे हैं। इधर भी भक्तवत्सल भगवान् अपनी मस्ती में भोजन कर रहे हैं। न ये परोसने से रुकते हैं और वे खाने से। यहाँ तक कि कभी-कभी तो दस-बीस आदमियों का भोजन कर जाते थे। मिठाई के थाल के थाल, बहुत से फल, मेवा तथा दाल, भात, रोटी सब न जाने कितना खा जाते। इस समय आप कई बार स्वयं चर्चा किया करते हैं कि 'भाई, भोजन तो कर लिया बाबूजी के हाथ से। जिस समय वे पागल की तरह सामने बैठकर भोजन कराते थे तो ऐसा मालूम होता था मानो एक-एक ग्रास के द्वारा साक्षात् ब्रह्मानन्द ही हृदय में भर रहा है। कितना ही खालो, पर पता ही नहीं लगता था कि हमने कुछ खाया है। वह भोजन जितनी देर पेट में रहता, प्रतीत होता था मानो कोई नशा पिया हो।'

उन दिनों श्रीमहाराज जी उन्मत्त की भाँति बड़ी मस्ती में रहा करते थे। जो कोई मिलता उसी से पूछते, 'भाई, भक्तजन और सत्संगी लोग कहाँ मिलेंगे?' तब किसी ने बताया कि बरोरा में पण्डित जयशंकर, नित्यानन्द और जौहरीलाल रहते हैं। वे बड़े सत्संगी हैं। बस, आप उसी समय तीर की भांति छूट और तलाश करते हुए बरोरा में पण्डित जयशंकर जी के घर पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्हें साष्टांग दण्डवत् किया। वे बेचारे एक परम तेजस्वी संन्यासी महापुरुष को दण्डवत् करते देखकर एकदम हक्के-बक्के रह गये। दोनों भाइयों ने उठकर बड़े आदर और प्रेम से इन्हें साष्टांग प्रणाम किया और इन्होंने उठाकर उन्हें हृदय से लगा लिया। इनके आलिंगन से उनके हृदय में एकदम बिजली-सी दौड़ गयी। फिर सचेत होकर उनसे जैसा बना इनका सत्कार किया। कुछ बात चीत होने पर यह स्थिर हुआ कि कल से प्रातःकाल आकर यहीं स्नान करके श्रीमद् भागवत पर विचार किया करेंगे। इसके पश्चात् आप चले आये।

पण्डित जयशंकर जी इन्हीं दिनों काशी से व्याकरण पढ़कर आये थे। अच्छे सुबोध पण्डित थे। नित्यानन्दजी को तो साधारण हिन्दी का ही ज्ञान था। इनके दो
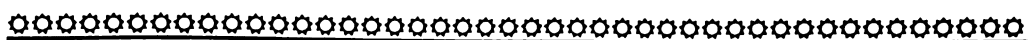
बड़े भाई और थे। उनमें बड़े बैजनाथजी थे और छोटे श्रीरामजी। इनके चाचा हरिप्रसाद जी थे तथा सीताराम और मितवल नाम के दो चचेरे भाई थे। ये बेचारे गरीब ब्राह्मण गाँव की पण्डिताई से अपनी जीविका चलाते थे। हाँ कुछ खेती और पचास-साठ गौएँ भी थीं। इनमें सबसे बड़े बैजनाथजी तो खेती करते थे और सबसे छोटे नित्यानन्द गौएँ चराते थे। श्रीरामजी पण्डिताई करते थे। आस-पास के अहीर जाति के लोग इनके यजमान थे। इस प्रकार सामान्य जीविका से ही इनका निर्वाह होता था। किन्तु था इनका ऋषि जीवन। घर में ठाकुर सेवा थी तथा प्रातः सायं सन्ध्यो-पासन भी करते थे। देखने में सभी अच्छे तेजस्वी ब्राह्मण जान पड़ते थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल ४ बजे ही गवाँ से चलकर बरोरा पहुँचे। इधर दोनों भाई प्रतीक्षा में खड़े ही थे। देखते ही परस्पर एक-दूसरे को साष्टांग प्रणाम किया। फिर नित्यानन्द ने कुएँ से जल खींचकर कमण्डलु भर दिया। और एक दातौन दे दी। आपने एक ओर एक ऊँचे से टीले पर बैठकर दातौन की। उसके पश्चात् जब तक आप बरोरा जाते रहे, उसी स्थान पर बैठकर दातौन करते रहे। वहाँ आपके दोनों चरणों के चिह्न बन गये थे। उसके बाद लघुशंका से निवृत्त होकर स्नान किया। स्नान करने का आपको बड़ा ही शौक था। उन दिनों कम से कम बीस डोल जल से आपका स्नान होता था। कभी-कभी तो चार आदमी भी जल खींचते-खींचते थक जाते थे और ये स्नान करते नहीं थकते थे। स्नान भी एक निश्चित क्रम से होता था। पहले तीन बार कमण्डलु भर कर सिर पर जल डालते। फिर मुँह में खूब पानी भरकर जल खुली हुई आँखों में जल के छींटे लगाते पीछे शरीर को खूब मलते और तौलिये से रगड़ते हुए जल डालते। इसके बीच में भी कई बार मुँह में जल भरकर आँखों में छींटे लगाते। आयुर्वेद का तो ऐसा मत है कि कम से कम सात बार शरीर को मोटे तौलिये से रगड़कर पानी से धोना चाहिये, जिससे कि रोम कूपों का मल निकलकर त्वचा साफ हो जाय। इस प्रकार आप बड़े आनन्द से खूब स्नान करते और फिर नीम के नीचे झाऊ की टटियों से घिरे हुए एक लिपे-पुते स्वच्छ स्थान में बैठकर एक घण्टा ध्यान करते।

इसके पश्चात् कुछ स्तोत्र पाठ होता और फिर श्रीमद्भागवत पर विचार किया जाता। पण्डित जयशंकर अपनी भागवत की पोथी लेकर बैठते। स्वाध्याय अधिकतर

श्रीधरी टीका अथवा किसी अन्य प्राचीन टीका के आधार पर किया जाता था। प्राय: ११ बजे आप बरोरा से गवां आते और माधूकरी वृत्ति से भिक्षा करते। उसके पश्चात् कभी महाशय सुखरामगिरि जी की दुकान पर बैठते और कभी बाबू हीरालाल के अड्डे पर चले जाते। वहाँ बालकों की तरह खूब हंसते अथवा कभी-कभी मस्ती में आकर कुछ आध्यात्मिक भावपूर्ण खेल-कूद करते।

महाशय सुखरामगिरिजी का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। ये इस समय महाराजजी के जो भक्त विद्यमान हैं उनमें सम्भवत: सबसे पुराने हैं। जाति के ये गुसांई हैं तथा हमारे बाबूजी के समवयस्क और सहपाठी थे। किन्तु इन पर आर्यसमाजी विचारों का गहरा प्रभाव था। इनका दिमाग बड़ा विचित्र था। साधु को पैसा देना ये पाप समझते थे। इनकी बुद्धि बड़ी तर्कशील थी। गाँव में कपड़े की सामान्य-सी दुकानदारी और कुछ लेन-देन करते थे। उसीसे इनके निर्वाह-योग्य आजीविका हो जाती थी। बाबूजी इनसे बहुत प्रेम करते थे। इन्हें खाने-पीने का शौक था। इसलिये जब कभी वे कोई विशेष पदार्थ बनाते तो इन्हें अवश्य बुलाते थे अथवा इनके पास ही भेज देते थे। इनका स्वभाव बड़ा शान्त और गम्भीर था। उस समय सगुणोपासना में इनकी श्रद्धा नहीं थी, किन्तु अन्य आर्यसमाजियों की तरह ये परदोष दर्शन या कुतर्क नहीं करते थे। पढ़े-लिखे साधुओं से ये अवश्य प्रेम करते थे। इसी नाते श्रीमहाराजजी से भी इनका प्रेम हो गया था। धीरे-धीरे इनकी दुकान ही महाराजजी की बैठक हो गयी। गाँव से भिक्षा लाकर वे यहीं बैठकर भोजन करते थे। कभी-कभी ये स्वयं भी उन्हें कुछ खिलाते थे।

हमारे बाबूजी तो साधुओं के अनन्य भक्त थे। ये भी मित्रता के नाते उनके साधु-सेवा रूप कार्य में उनका हाथ बँटाने लगे। इससे इन्हें साधुओं के संग का अवसर मिला। उन साधुओं में से, जिनमें इनकी श्रद्धा हुई, सबसे पहले हमारे महाराजजी ही थे। फिर भी महाराजजी की मस्ती का रंग देखकर कई बार इनका तर्कशील मस्तिष्क तरह-तरह की शंकाएँ करने लगता था। कभी-कभी तो ये ऐसी भी कल्पना कर लेते थे कि इनका दिमाग बिगड़ गया है। उस समय बाबूजी इनका समाधान करते थे।
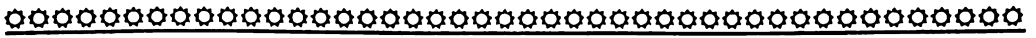
इस प्रकार धीरे-धीरे श्रीमहाराज जी में इनकी श्रद्धा बढ़ने लगी। अब तो ये उनके अनन्य भक्त हैं और सगुण निर्गुण का विवाद भी इनके चित्त से निकल गया।

हरिनाम वितरण

गवां में आने पर आपकी भगवत्प्रेममयी लीलाएँ उत्तरोत्तर बढ़ने लगीं। उन लीलाओं के द्वारा सहज ही में भगवान्नाम का प्रचार भी होने लगा। इसके लिये आपको कोई अलग प्रयास नहीं करना पड़ा। सहजावस्था में विचरने वाले महापुरुषों के द्वारा जीवोद्धार का कार्य भी स्वाभाविक ही होता है, उसके लिये उन्हें कोई अलग संकल्प नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार आपके द्वारा भी जीवों में स्वभावत: भगवत्प्रेम का प्रसार हुआ। आप सड़क पर चल रहे हैं, सामने कोई सीधा-साधा ग्रामीण व्यक्ति आ गया। मानो उसके जन्म-जन्म के पुण्यों ने ही ऐसा संयोग उपस्थित कर दिया। आप उसके पाँव पकड़ कर अनुनय-विनय करने लगते-'भाई! क्या तुमने प्यारे श्यामसुन्दर देखे हैं? यदि देखे हैं तो मुझे बता दो। हाय! मेरे प्राण निकल रहे हैं। कोई मुझे मेरे प्राणधन के दर्शन करा दो। अरे! जो मुझे मेरे प्यारे से मिलावेगा उसका आभार मैं कभी नहीं भूलूंगा।' ऐसा कहकर आप फूट-फूटकर रोने लगते। वह बेचारा चक्कर में पड़ जाता और इन्हें समझाने का प्रयत्न करता तो आप कहते अच्छा, तुम मुझे मेरे प्यारे का नाम सुनाओ। मैंने सुना है कि नाम से नामी भिन्न नहीं होता और जहाँ श्रीकृष्ण प्यारे के नाम गुणों का गान होता है वहाँ वे अवश्य पधारते हैं—

'नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥'

अत: तुम मुझे उनका नाम ही सुनाओ।

इस पर वह कहता, 'बाबा! मैं किस तरह नाम गान करूँ?' तो आप खड़े होकर केवल 'हरि हरि हरि हरि' शब्दों का उच्चारण करते और हाथों से ताली बजाते। इसी तरह वह भी करने लगता। हरिनाम की ध्वनि सुनकर और भी दो-चार ग्वालिये

इकट्ठे हो जाते। अब तो खूब रंग जमता। श्रीहरिनाम उनके मुख से चिपट जाता। उसके प्रभाव से वे विवश होकर नाचने लगते, एक नवीन तरंग में बह जाते और वहाँ आनन्द की लूट-सी होने लगती। इस तरह उन्हें पागल बना कर आप वहाँ से चल देते और फिर किसी दूसरे पर इसी प्रकार का जादू करने लगते। इस हरिनाम ने ही आपको इस प्रान्त में 'स्वामी स्वतः प्रकाश' से 'श्रीहरिबाबा' अथवा इधर के ग्रामीण लोगों की दृष्टि में 'श्रीहरि भगवान्' बना दिया।

एक बार कोई घसेरा घास खोद रहा था। आप उसके पास जा पहुँचे और उसे साष्टांग प्रणाम किया। वह बेचारा हक्का बक्का रह गया और घबरा कर बोला, 'बाबा! दण्डौत। अरे बाबा! मैं तो बहुत गरीब आदमी हूँ। तुम मुझे क्यों अपराधी बनाते हो? मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है, जो तुम्हारी कुछ सेवा करूँ। मैं तो रोज दो-चार आने की घास बेचकर पेट पालता हूँ।' तब आप बोले, 'भाई! तुम मुझे हरिनाम सुना दो।' उसने कहा, 'बाबा! मैं घास खोदूं या हरिनाम सुनाऊँ।' तब आपने उसके हाथ से खुरपी ले ली और कहा, 'तू मुझे हरिनाम सुना, मैं तेरी घास खोदता हूँ।' बेचारा गरीब बहुत गिड़-गिड़ाया, परन्तु उसकी एक न चली। अन्त में विवश होकर 'हरि हरि' करने लगा और आप बड़े मनोयोग से घास खोदने लगे। आपकी युवा अवस्था थी। शरीर में बल खूब था। अतः एक घण्टे में इतनी घास खोद डाली जो उससे दोपहर तक भी बड़ी कठिनता से खुदती। फिर गठरी बाँध कर उसके सिर पर रख दी और कहा, 'जाओ, हरिनाम को मत भूलना। मैं रोज ठीक समय पर आकर तुम्हारी घास खोद दिया करूँगा।'

पीछे भी आप बहुत दिनों तक ठीक उसी समय पहुँचकर उसके लिये एक घण्टे में एक गठरी घास खोद दिया करते थे और वह आप को हरिनाम सुना दिया करता था। इससे हरिनाम में उसका प्रेम दिनों दिन बढ़ता गया। उसकी गठरी भी पहले की अपेक्षा दो गुने पैसों में बिकने लगी। कुछ दिनों बाद खेती करने लगा और अच्छा मालदार आदमी हो गया। श्री महाराजजी के प्रति उसकी अनन्य भक्ति थी। इस घटना को स्मरण करके वह फूट-फूटकर रोया करता था। इस प्रकार उसके दोनों लोक सुधर गये। अन्त में भी उसने हरिनाम लेते हुए ही शरीर छोड़ा।

इसी तरह एक बार आप किसी किसान के पास गये। वह हल ज़ोत रहा था और बहुत थक गया था। उसने देखते ही आपको दण्डवत् की। आप उससे बोले, 'भैया! तुम बहुत थक गये हो। आओ, थोड़ी देर विश्राम लेकर श्रीहरि का नाम लो।' वह बेचारा गिड़गिड़ा कर बोला, 'बाबा! मुझे तो अभी बहुत जोतना है। तुम तो साधु हो। तुम्हारा काम भजन करना है। रोटी तो तुम मांग कर खा लोगे। मैं यदि हल नहीं जोतूंगा तो बाल-बच्चों का पेट कहाँ से भरूँगा, और कहाँ से स्वयं खाऊँगा?' आपने कहा, 'अच्छा, भाई! तेरा हल मैं चलाऊँगा, तू मुझे प्यारा हरिनाम सुना।' वह बेचारा विवश हो गया, समझ न सका कि क्या करे। तब आप उसके पाँव पकड़कर बड़ी विनय पूर्वक बोले, 'भाई? हरिनाम बोलो। बिना हरिनाम के गति नहीं है। मनुष्य-जीवन बड़े भाग्य से मिला है। इस दुर्लभ शरीर को पाकर वृथा गँवाना बड़ी मूर्खता है। इसलिये तुम हाथों से तो काम करो और मुँह से हरिनाम बोलो। इससे तुम्हारे दोनों लोक सहज ही में बन जायँगे।'

यह कहकर आपने उसके हल की मूढ पकड़ ली और उससे कहा, 'तुम हरिनाम उच्चारण करो।' वह जोर-जोर से हरिनाम उच्चारण करने लगा। आप हरिनाम उच्चारण भी करते थे और हल भी चलाते जाते थे। आपका जादू भरा हरिनाम लेकर तथा अलौकिक दीनप्रेम देखकर उसका पाषाण-हृदय मोम की भांति पिघल गया और वह हरिनाम लेता हुआ फूट-फूट कर रोने लगा।

इस घटना को देखकर आस-पास के सभी किसान इकट्ठे हो गये और चकित होकर हरिनाम लेने लगे। बस फिर तो आनन्द की एक ऐसी तरंग उठी कि सब लोगों के पाप-तापों को बहा कर ले गयी। इधर ये चतुर चूड़ामणि बड़ी चतुरता और परिश्रम से हल चलाते रहे और ठीक-ठीक उसका खेत जोतते रहे। उसे जब चेत हुआ तो उसने दौड़कर आपके हाथ से हल छीन लिया, तथा बैलों को खड़ा करके चरण पकड़ लिये और बोला, 'बाबा! आपने मुझे कृतार्थ कर दिया, बस आज से मैं सब काम-काज करते हुए भी प्यारा हरिनाम कभी नहीं छोड़ूंगा।' इस प्रकार वह सदा के लिये आपका भक्त बन गया। उसी की तरह आस-पास के अन्य किसान भी अपने-अपने खेतों में काम करते समय भगवन्नाम उच्चारण करने लगते थे। जिस खेत में आपने

हल चलाया था वह तो मानों कल्पवृक्षों का वन ही बन गया। उसमें वह किसान कैसा ही उल्टा-सुल्टा बीज डाल देता उसी से अंधाधुंध अनाज हो जाता था। इससे कुछ ही दिनों में वह मालामाल हो गया।

एक समय की बात है। ज्येष्ठ का महीना था। सबेरे के १० बजे थे। बड़े कड़ाके की धूप पड़ रही थी। आप बरोरा से गवां जा रहे थे। रास्ते में आपको एक कुम्हार मिला। वह मिट्टी के बरतनों का टोकरा सिर पर रखे कहीं जा रहा था। आपने देखा वह बूढ़ा आदमी है और दोपहर में इतना बोझा उठाने से घबरा गया है। अत: उसके पास जाकर आपने उससे पूछा, 'बाबा! तुम कहाँ जा रहे हो? बड़े थके-से जान पड़ते हो लाओ, मैं तुम्हारा टोकरा इस वृक्ष की छाया में उतरवा लूं। तुम थोड़ी देर विश्राम कर लो।' उस बेचारे ने सहानुभूति भरे वचन सुनकर कहा, 'अच्छा, बाबा! उतरवा लो।' आपने टोकरा उतरवा कर उससे पूछा, 'तुम कहाँ जाओगे?' वह बोला 'मुझे सिधौली जाना है। वहाँ के बड़े मुकद्दम के घर ब्राह्मण भोजन हैं और समय भी हो चुका है। अभी गाँव यहाँ से तीन मील है। बाबा! मैं कैसे पहुँचूंगा? यदि मैं समय पर न पहुँचा तो वे मुझे पीटेंगे और गाँव में नहीं रहने देंगे।' यह कहकर वह रोने लगा।

उसकी बात सुनकर आपका हृदय पिघल गया। आप बोले, 'ला, भाई मैं तेरा टोकरा वहाँ पहुँचा दूँ।' वह घबरा गया और बोला—'नहीं, बाबा! ऐसी बात मत कहो, इससे तो मुझे भारी पाप लगेगा।' किन्तु आपने उसे डरा धमका कर टोकरा उठा लिया और जल्दी-जल्दी चलकर वहाँ पहुँचे। फिर गाँव के बाहर ही टोकरा उसके सिर पर रखकर चल दिये। वह बेचारा बहुतेरा गिड़गिड़ाया कि भोजन यहीं करते जाओ। किन्तु आपने उसकी एक न सुनी हिरन की सी छलांग मारते चार मील दूर गवाँ में पहुँच कर ही भिक्षा की। वह कुम्हार उसी दिन से आपका भक्त हो गया। टोकरा ले चलते समय आपने उससे कहा था कि तू मेरे पीछे हरिनाम उच्चारण करता चल। बस, वह हरिनाम उसके मुख से सदा के लिये चिपट गया और उसके दोनों लोक सुधर गये।

इसी प्रकार एक दिन आप एक किसान के पास पहुँचे। वह अपने खेत में कुआँ चला रहा था। आपने उससे कहा, 'भाई, तू मुझे हरिनाम सुना दे।' वह बोला, 'महाराजजी! तुम तो साधु हो, तुम्हें तो हर समय हरिनाम ही सूझता है। मैं तो बहुत गरीब आदमी हूँ। यदि खेत में पानी न लगाऊँ तो अनाज कैसे होगा? और मेरे बच्चे क्या खायेंगे? मैं भी भूखों मर जाऊँगा।' आप बोले, 'ला, तेरी कुइया मैं ढालूँ, तू मुझे हरिनाम सुना।' वह बोला, 'नहीं बाबा! ऐसा करने से मुझे पाप लगेगा। मैं आपसे अपना काम नहीं कराऊँगा। बस, आप अपना भजन करें और मैं अपना काम करूँ।' किन्तु आपने उसके हाथ से ढेंकुली छीन ली। तब वह बेचारा विवश होकर 'हरि हरि' करने लगा। आप कुइया चलाते हुए भी उसके साथ जोर-जोर से हरिनाम उच्चारण करते जाते थे। उसने कई बार आपसे ढेंकुली छोड़ने की प्रार्थना की, परन्तु आपने उसकी एक न सुनी और दोपहर तक कुइया चलाते रहे।

उसके पास कुछ छाछ थी। वह आपने कमण्डलु में ले ली और उसमें जल मिला कर लस्सी बना ली। बीच-बीच में जब हुक्का पीता था तो आप लस्सी पी लेते थे। इस तरह उसका सारे दिन का काम आपने चार घण्टे में ही कर डाला। उसके घर से रोटी आयी तो उसके बहुत आग्रह करने पर थोड़ा सा टुकड़ा ले लिया और फिर गवाँ में जाकर ही भिक्षा की।

आपके इसी प्रकार के खेल निरन्तर चलते रहते थे। इस प्रकार खेल-खेल में ही श्रीहरिनाम वितरण होने लगा। आप प्राय: जंगल में चले जाते थे। वहाँ ग्वालियों के साथ श्रीहरिनाम कीर्तन करते और कभी कोई बालोचित खेल-कूद भी करते थे। खेल में आप पूरे बालक ही बन जाते थे। आप बालकों से दाँव लेते और उन्हें दाँव देते थे। उनकी पीठ पर चढ़ते और उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ाते थे। इस तरह गाँव के सब बालक आपके सखा बन गये थे। उस समय आप में विचित्र मस्ती थी।

भक्तवर हुलासी

भक्तवर हुलासी बरोरा के रहने वाले एवं जाति के नाई थे। ये गाँव में अपनी साधारण कुलोचित जीविका और दस बीघे जमीन में खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन करते थे। ब्राह्मण और साधुओंका क्षौर ये प्रायः बिना पैसा लिये ही बनाते थे। इसके सिवा अपनी शक्ति के अनुसार उनकी सेवा भी करते थे। स्वभाव से ये बड़े ही विनयी, विनम्र और दीन जान पड़ते थे। इनकी वाणी बड़ी मधुर थी। अपनी सामान्य जीविका से इन्हें ग्रामोचित्त भोजन-वस्त्र का कोई कष्ट नहीं था। गाँव के सभी लोग हुलासी से प्रेम करते थे। ये झूँठ किसी भी अवस्था में नहीं बोलते थे। इनकी गृहिणी भी सर्वथा इनके अनुकूल ही थी।

हमारे महाराजजी तो हर किसी से यही कहते थे कि मुझे भक्तों के दर्शन कराओ। क्या तुम्हारे गाँव में कोई भक्त नहीं है ? इस पर एक दिन किसी ने हुलासीजी का नाम ले लिया। बस, आप उसी समय उसके घर पहुँचे और 'भक्तजी! भक्तजी!' कहकर उसे पुकारा। वह तो एक साधारण गरीब आदमी था। बाहर निकला तो उसने देखा कि सामने एक परम तेजस्वी महापुरुष खड़े हैं। देखते ही वह चरणों में गिर गया और बार-बार पृथ्वी पर लोटने लगा। आपने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। किन्तु वह बेचारा तो लज्जा से गड़ा जाता था। उसने रोते हुए पीछे हटकर कहा, 'महाराज! मैं तो नाई हूँ और बहुत गरीब हूँ। मेरे मैले वस्त्रों में तो दुर्गन्ध आती है। आप बड़े महापुरुष हैं, साक्षात् भगवान् हैं, आप मुझे स्पर्श न करें। मैं तो मर जाऊँगा। नाथ! आप मुझे अपराधी न बनावें।' ऐसा कहकर वह फिर रोने और पृथ्वी पर लोटने लगा। किन्तु आपने उसे फिर बलात्कार से उठा कर हृदय से लगा लिया, और कहा—

'जाति-पाँति पूछे ना कोई। हरि को भजे सो हरि का होई॥'

'चाण्डालोऽपि द्विजाच्छ्रेष्ठः कृष्णभक्तिपरायणः।'

'मुझे तो आज कृष्ण भक्त के दर्शन हो गये, इसलिये मैं तो कृतकृत्य हो गया। भाई, मैं तो नाम मात्र का साधु हूँ। कृष्ण भक्ति मेरे भीतर नहीं है। मैंने सुना है कि भक्त के मुख से सुना हुआ हरिनाम हृदय में श्रीकृष्ण भक्ति को उदय करता है। इसी

प्रकार श्रीकृष्ण भक्त के मुख से सुना हुआ कृष्ण चरित भी हृदय में तत्काल श्रीकृष्ण की स्फूर्ति कर देता है। अतः तू मुझे श्रीहरिनाम सुना।'

हुलासी बोला, 'बाबा! मुझे मालूम नहीं, मैं किस प्रकार आपको श्रीहरिनाम सुनाऊँ। मैं तो थोड़े-से हिन्दी के अक्षर पढ़ा हूँ, सो थोड़ी-थोड़ी तुलसीकृत रामायण पढ़ लेता हूँ और बिना स्नान किये भोजन नहीं करता। इसके सिवा स्नान करके एक लोटा जल शिवजी पर चढ़ा देता हूँ और शिवजी के पास बैठकर ही दो-चार मिनट 'राम-नाम' 'सीताराम' कह लेता हूँ। पूर्णिमा और रविवार को गंगा स्नान कर आता हूँ, एकादशी को अन्न नहीं खाता तथा कोई पण्डित जी कथा कहते हैं तो सुन लेता हूँ। सो, महाराज जी! इन्हीं सब बातों को लेकर गाँव के लोग हँसी-हँसी में मुझे 'भगतजी' कहने लगे हैं। मुझमें तो कुछ भी भक्ति भाव नहीं है। मैं तो बहुत ही तुच्छ आदमी हूँ। बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? क्या मैं आपके लिये रोटी बनवा लाऊँ? और कुछ तो मेरे घर में है नहीं। आप कहें तो चार पैसे की मिठाई दुकान से ला दूँ।' आप बोले, 'तू केवल कुएँ से मेरा कमण्डलु भर ला—यही तेरी बड़ी से बड़ी सेवा है। इसके सिवा तू दिन में एक बार मुझसे अवश्य मिल लिया कर। मैं प्रातःकाल नित्यप्रति पण्डित जयशंकर के घर पर आया करता हूँ। और दस बजे तक ठहरता हूँ। वहाँ तू अवश्य आया कर।'

इस पर उसने श्रीमहाराजजी के चरण पकड़ लिये और रोने लगा। आप बोले, 'क्या चाहता है?' उसने कहा, 'महाराजजी! क्या मुझे प्यारे श्रीकृष्ण के दर्शन हो सकते हैं?' आपने हँस कर कहा, 'वाह! यह भी कोई बड़ी बात है। मुझे तो तेरे हृदय में श्रीकृष्ण दीख रहे हैं।' यह कह आप चले गये।

हुलासी तो बेचारा सीधा-सादा सरल प्रकृति का आदमी था। उसमें छल-कपट का लेश भी नहीं था। ऐसी ही सरल स्वभाव की उसकी स्त्री थी। वह सर्वदा स्नान करके ही भोजन बनाती थी और पति को भोजन कराये बिना कभी अन्न ग्रहण नहीं करती थी। यदि कार्यवश हुलासी को बाहर जाना पड़ता तो वह दो-तीन दिन तक भूखी ही रह जाती थी। घर में भी वह खूब सफाई और पवित्रता रखती थी। पति-

पत्नी दोनों ही भजन परायण थे। रात्रि को सोने से पूर्व हुलासी रामायण पढ़ता और स्त्री सुनती थी। इस प्रकार भगवच्चर्चा करते दोनों आनन्द से सो जाते थे। कभी-कभी सोते समय लल्लूलाल जी की प्रेमसागर भी पढ़ा करते थे।

आज दिन भर उनके मन में यह चटपटी लगी रही कि महाराजजी ने घर पर आकर स्वयं ही दर्शन दिये हैं, यह हमारे लिये बड़े सौभाग्य की बात है; अत: आज हमें श्रीश्यामसुन्दर के दर्शन अवश्य होंगे। रात्रि को आज उन्होंने प्रेमसागर ही पढ़ा और श्रीकृष्ण प्रेम से विह्वल हो रोते-रोते सो गये। सोते ही उन्होंने स्वप्नों में देखा कि श्रीवृन्दावन में वह वृक्ष के तले श्रीश्याम-सुन्दर त्रिभंगललित गति से खड़े हुए बंशी बजा रहे हैं। उनका श्रीअंग नवीन मेघ के समान श्याम है, उस पर रेशमी पीताम्बर चमचमाती हुई सौदामिनी की कांति को भी फीकी कर रहा है, सिर पर मनोहर मयूरपिच्छ और गले में इन्द्रधनुष के समान सुन्दर वैजयन्ती माला है। प्रभु अपने अमृतवर्षी कमलनयनों से हुलासी की ओर देखकर मुसकरा रहे हैं। हुलासी का हृदय तो अपने प्राणधन की अद्भुत रूपमाधुरी का पान करके मतवाला हो गया और वह श्रीचरणों पर लोटने लगा। प्रभु ने उठा कर उसे हृदय से लगाया और कहा, 'मैं तो तुझसे मिलने के लिये बहुत दिनों से तरस रहा था, किन्तु तूने कभी इच्छा ही नहीं की। अच्छा, अब तू वर मांग।' हुलासी बोला, 'भगवन्! मैं क्या मांगू? यदि आप देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मुझे आपका दर्शन नित्य होता रहे।' श्यामसुन्दर ने कहा, 'तथास्तु।' ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्ध्यान हो गये और हुलासी सारी रात आनन्द सागर में डूबता-उछलता रहा।

दूसरे दिन प्रात:काल उठकर शौच-स्नानादि से निवृत्त हो वह पण्डित जयशंकरजी के घर गया। साथ में भेट के लिये दो चार आने के बताशे भी लेता गया। आज हुलासी का रंग ही बदला हुआ था। उसका साँवला चेहरा एकदम लाली से मिलकर नारंगी के समान चमक रहा था। वह दीनता के कारण अपने भाव को छिपाने का प्रयत्न करता था, किन्तु भावतरंग क्या किसी के छिपाये छिपते हैं। वहाँ आकर वह साष्टांग प्रणाम कर शान्तिपूर्वक बैठ गया। बेचारा जाति का नापित और गरीब आदमी था। इसलिये पण्डित लोगों के भय से दूर ही बैठा। किन्तु बैठते ही भावसमाधि

लग गयी। श्रीमहाराजजी का दर्शन और भाषण सुनकर प्रेम से पागल-सा हो गया। नेत्रों से आंसुओं की धाराएँ बहने लगीं और शरीर में कम्प एवं रोमाञ्च हो गये। फिर भी संकोचवश अपना भाव रोकने का प्रयत्न करते रहने से वह सावधान बना रहा।

वहाँ का कार्यक्रम समाप्त होने पर जब महाराजजी गवां को जाने लगे तो उन्होंने हुलासी को हाथ पकड़कर उठाया और अपने साथ ले लिया। पण्डित जौहरीलाल * और भक्त हेतराम ** भी साथ चले। पण्डित जयशंकर और उनके भाई तो प्रणाम करके वहीं रह गये। वे आपस में विचार करने लगे, आज इस हुलासी को क्या हो गया? यह पागल तो नहीं हो गया? अथवा इसे भूत लग गया है? या यह कोई नशा पिये हुए है? तब उनमें सबसे छोटे नित्यानन्दजी ने कहा, 'नहीं भाई! ऐसी बात नहीं है। ऐसा होता तो इसकी ऐसी प्रेम की अवस्था क्यों होती, तथा श्रीस्वामीजी इसका हाथ पकड़ कर क्यों ले जाते? जान पड़ता है, इनका ही कोई चमत्कार है। यह आदमी तो पहले से ही अच्छा है। भक्त आदमी है। सम्भव है, भगवान् की कुछ विशेष कृपा हो गयी हो। भगवान् के यहाँ जाति-पाँति का विचार नहीं है। वे तो भक्ति पर ही रीझते हैं।'

श्रीमहाराजजी हुलासी को हाथ पकड़े लिये जा रहे हैं। उनके एक ओर जौहरीलाल हैं और दूसरी ओर हेतराम। जब बरोरा से कुछ दूर निकल गये तो आपने हुलासी से पूछा, 'कहो, भाई! क्या बात है?' उसने चरण पकड़ लिये। आप खूब जोर से हँसने लगे और बोले, 'अरे हेतराम! हुलासी को संभाल। देख, यह तो पागल हो गया है। पूछ तो इसने क्या देखा है?' अब वह सचमुच पागल हो गया और खूब

*** ये बरोरा के रहने वाले थे। विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु इनकी बुद्धि बहुत प्रखर थी। ये बड़े ही मसखरा और खिलाड़ी थे। साथ ही बड़े भजनानन्दी और उदारात्मा भी थे। श्रीमहाराजजी में इनका सख्यभाव था तथा उनकी वृन्दावनलीलाओं में ये मधुमंगल का पार्ट करते थे।**

**** ये निजामपुर के प्रधान भक्त थे। इनका स्वभाव बड़ा ही सौम्य, शान्त और उदार था। ये रामायण बड़े प्रेम से पढ़ते थे। महाराज जी का इनके प्रति वात्सल्य-स्नेह था। इन्हीं के मकान पर पहले-पहले संकीर्तन आरम्भ हुआ था।**

जोर से हँसते हुए पृथ्वी पर लोटने लगा। उसके नेत्रों की पुतलियाँ चढ़ गयीं और चेहरा लाल हो गया। जब वह हेतराम के काबू में नहीं आया तो उसे आपने स्वयं ही जैसे-तैसे सावधान किया।

'मन में लागी चटपटी, कब निरखूं घनश्याम।
नारायण भूल्यो सबै, खान-पान विश्राम॥
मृदु मुसक्यान निहारिकै, धीर धरत है कौन।
नारायण तनु कै तजै, कै बौरा कै मौन॥'

अब आप उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, 'क्यों हुलासी, ठीक-ठीक बता तूने क्या देखा है ?' तब उसने रात की सब घटना सुनायी और वह सुनाते-सुनाते फिर विह्वल होने लगा। तब परम कौतुकी महाराजजी ठठाका मारकर हँसने लगे और बोले, 'अरे हेतराम! इसको सँभाल। यह तो सचमुच पागल हो गया है।' फिर जैसे-तैसे उसे सँभालकर बोले, 'भाई! अपने श्यामसुन्दर से आज पूछना कि क्या हमें भी दर्शन होंगे।' बस, यह कहकर सबको विदा कर दिया और आप बड़ी तेजी से गवां को चले।

हुलासीजी के साथ आपके नित्य ऐसे ही खेल हुआ करते थे। अब इनकी अवस्था उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। ये कभी तो गोपीभाव से भावित होकर मधुर-रस का आस्वादन करते, कभी सखाभाव से सख्यरस का अनुभव करते और कभी दास्य या वात्सल्य-रस से अभिभूत होकर उसका आनन्द लेते थे। सचमुच ही ये कोई उच्च कोटि के योग भ्रष्ट महापुरुष थे। यह भी इनका सौभाग्य ही था कि एक दीन-हीन नापित के घर में जन्म लिया। क्योंकि भक्ति महारानी बड़ी ही सुकुमारी हैं। जहाँ विद्या, धन, बल, जाति या यौवन के गर्वरूपी कण्टक रहते हैं वहाँ ये कभी नहीं जातीं। ये तो गर्व रहित, शान्त, विनम्र और दीनातिदीन भावों से भरे हुए हृदय को ही अपना धाम बनाती हैं। ये सब बातें इनमें स्वभाव से ही थीं। अतः इनके हृदय-मन्दिर में श्रीभक्ति महारानी अपने प्राणनाथ प्रेममूर्ति श्रीश्यामसुन्दर के सहित विहार करने लगीं।

जिस प्रकार बाजीगर अपने जमूड़े के द्वारा खेल दिखाकर लोगों को मोहित करता है उसी प्रकार श्रीमहाराजजी की प्रेम-लीलाएँ भी हुलासी के द्वारा आरम्भ हुईं।

फिर धीरे-धीरे जगत् में उनका प्रसार हुआ। जिस प्रकार गौ अपने बछड़े के निमित्त से ही दुग्ध नीचे उतारती है, इसीसे दूसरों को भी उसका लाभ मिल जाता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी अपने नित्य लीला-परिकरों के साथ इस धराधाम पर अवतीर्ण होते हैं और उन्हींके द्वारा अपने गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों का जगत् में विस्तार करते हैं। जगत् के प्राणी अपनी-अपनी श्रद्धा और भावना के अनुसार उन रहस्यों को हृदयंगम करते हैं और अपने-अपने भाव के अनुसार ही उनसे लाभ उठाते हैं। बस, सगुण भगवान् की लीलाओं का यही तात्पर्य है। बेचारे सामान्य जीव तो भगवान् के दिव्यातिदिव्य रस को हृदय में स्वयं धारण करने में असमर्थ हैं। इसलिये नित्य-परिकरों द्वारा ही उस रस का विकास होता है। भगवान् जहाँ कहीं और जिस रूप में भी अवतार लेते हैं वहाँ उनके नाम धाम और नित्य परिकर भी साथ ही आते हैं। वे किसी भी देश या रूप में छिपे हों भगवान् स्वयं ही आकर उन्हें ढूंढ़ लेते हैं; अथवा ये स्वयं ही अपने प्रभु से आकर्षित होकर चले आते हैं। महाराजजी स्वयं कहा करते हैं कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध भी कई जन्मों का निश्चित होता है। जिस गुरु के द्वारा जिस शिष्य का जिस समय और जिस देश में कल्याण होना निश्चित होता है, उसके द्वारा वहीं और उसी समय होता है। गुरु-शिष्य सम्बन्ध बहुत ही गूढ़ है। यदि इसका ठीक निर्वाह हो जाय तो एक क्षण में ही चिज्जड-ग्रन्थि टूट जाती है और सदा के लिये शिष्य का जीवभाव नष्ट होकर उसे ब्रह्मत्व प्राप्त हो जाता है। श्रीमहाराज जी तो इस 'सोऽहम्' भाव की अपेक्षा भी 'दासोऽहम्' (मैं भगवान्‌का दास हूँ—ऐसे) भावको विशेष आदर देते हैं। इस विषय में अपनी वर्धा की घटना के प्रसंग में उन्होंने स्वयं ही बताया था कि पहले मैं ब्राह्मी स्थिति के नित्य सुख में मग्न रहता था। उसी समय वहाँ कीर्तन में अकस्मात् मेरी विचित्र अवस्था हुई। मेरा 'सोऽहम्' भाव 'दासोऽहम्' में बदल गया और ऐसी मस्ती चढ़ी कि मुझे कुछ भी होश न रहा। उस समय इतनी तन्मयता हुई कि न जाने क्या-क्या आवेश हुए। श्रीराम-कृष्णादि अवतारों के तथा नाम, धाम और लीला-इन भगवत्स्वरूपों के सब रहस्य मेरे हृदय में स्पष्ट दिखायी देने लगे। उस समय मुझे स्पष्ट अनुभव हुआ कि दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्यादि भावों के द्वारा सगुण ब्रह्म की लीलाओं का अनुभव होना ब्राह्मी स्थिति से

आगे की बात है। वैष्णव शास्त्रों में तो रसविकास का क्रम भी यही है। पहले शान्त रस और फिर भक्ति के दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य इन रसों का क्रम से अनुभव होता है। मेरे विचार से तो वेदान्तियों का सगुण ब्रह्मखण्डन और वैष्णवों का निर्गुणखण्डन बिना अनुभव के केवल बुद्धि का विलास मात्र है। वास्तव में तो दोनों एक ही हैं तथा ज्ञान भक्ति में कोई भेद नहीं है। किसी भी सच्चे ज्ञानी से भक्ति के रहस्य छिपे नहीं रह सकते और कोई भी सच्चा भक्त अज्ञानी नहीं रह सकता। भक्त और ज्ञानियों का वितण्डा तो उनकी नासमझी ही है। शास्त्रों में जो कहीं-कहीं विरोध-सा प्रतीत होता है वह भी वस्तुतः विरोध के लिये नहीं है। उसका तात्पर्य केवल अपनी-अपनी निष्ठा की परिपक्वता में ही है। हमारे प्राचीन आचार्यों की यह शैली है कि वे जहाँ जिस विषय का वर्णन करते हैं वहाँ उसी की सबसे अधिक महिमा बतलाते हैं। मेरे विचार से तो भक्ति और ज्ञान सिद्धान्त में ही नहीं साधनकाल में भी एक हो सकते हैं। यह ऐसे रहस्य की बात है जो शब्दों द्वारा नहीं बतायी जा सकती। केवल अनुभवगम्य है। वास्तव में बात तो यह है कि जैसे भी हो वैसे त्रिगुणमयी माया से ऊपर उठना होगा। फिर चाहे ज्ञान से साधन श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा संसार का बाध करके उठो, चाहे श्रवणादिक नवधा भक्ति के द्वारा सर्वत्र अपने इष्ट का दर्शन करके उठो। अपने लक्ष्य को चाहे महान् से महान् बनाओ चाहे अणु से अणु—बात एक ही है। फिर पूर्णता होने पर तो सारा भेद अपने आप ही खुल जायगा। रास्ते भिन्न हैं, गन्तव्य स्थान तो एक ही है। साधनों को भले ही भिन्न-भिन्न मान लो, साध्य तो एक ही है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

'अगुणहि सगुणहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥'

श्रीचरणों में

यहाँ तक जो लिखा गया है वह सब सुना हुआ है। अब आगे प्रायः देखी हुई बातें ही लिखी जायँगी। श्रीचरणों में आकर इन आँखों ने जो कुछ देखा है वह सब व्यक्त करने की शक्ति तो इस लेखनी में कहाँ है, फिर भी जैसा कुछ सम्भव होगा अपनी टूटी-फूटी भाषा में व्यक्त करूँगा।

किन्हीं सुयोग्य सन्त सद्‌गुरुदेव के चरणों की शरण पाने की लालसा मुझे बचपन से ही थी। माता-पिता ने बाल्यावस्था से ही मुझे प्रातः काल उठकर भजन करने की आदत डाली थी। सबेरे चार बजे से पीछे हमारे घर में कोई नहीं सो सकता था। तीन-चार वर्ष की अवस्था में ही पिताजी ने मुझे अनेकों स्तुतिपरक श्लोक और हनुमान चालीसा कण्ठस्थ करा दिये थे रात्रि के समय वे घर में सब भाई-बहिनों को इकट्ठा करके रामायण, भागवत या श्रीचरणदासजी की वाणी सुनाया करते थे। उनमें सद्‌गुरु की महिमा बहुत वर्णन की गयी है। मेरे चित्त पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ता था और मैं पिताजी से पूछा करता था कि 'ऐसे संत सद्‌गुरु मुझे कहाँ मिलेंगे?' वे मुझे कुछ बालोचित उत्तर देकर समझा दिया करते थे।

जब मेरी आयु का छठा वर्ष आरम्भ हुआ तो मुझे गाँव के मदरसे में पढ़ने के लिये भर्ती करा दिया। दो साल में मुझे साधारण अक्षर ज्ञान हो गया और मैं रामायण तथा चरणदासजी की वाणी स्वयं पढ़ने लगा। पिताजी ने गोपालसहस्रनाम भी कण्ठ करा दिया। घर में ठाकुर सेवा थी ही। मैंने भी पूजा करने का आग्रह किया तो एक पीतल के सिंहासन पर शालग्राम जी और एक बालमुकुन्दजी की मूर्ति रखकर मुझे दे दी। मैं नित्यप्रति बालोचित पूजा करके पढ़ने के लिये जाया करता था। श्रीचरणदास जी के भक्तिसागर में मैंने पढ़ा—

'दूसर के बालक हुते, भक्ति बिना कंगाल।
श्रीगुरुदेव दया करि, हरि-धन किये निहाल॥
जा धन को ठग ना लगे, धाड़ी सकै न लूट।
चोर चुराय सके नहीं, गाँठ गिरै नाहिं खूट॥'

यह पढ़कर मुझे बड़ी चटपटी लगी कि यदि मुझे ऐसे सद्‌गुरु मिल जाँय तौ सदा के लिये उनकी शरण ले लूँ।

हमारे गाँव में अच्छे महात्मा प्राय: कम ही आते थे। मैं जो भी साधु आते उनमें अपनी पोथी में पढ़े हुए सद्‌गुरु के लक्षण खोजता था। बुद्धि बहुत चंचल थी। उनसे प्रश्न भी करता था। किन्तु जब उनसे सन्तोष न होता तो बड़ी निराशा होती थी। कई बार तो दु:ख से रोने लगता था। साढ़े ग्यारह वर्ष की आयु में मैंने दर्जा ४ पास किया। इसी समय मेरा यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। दीक्षागुरु थे जिला गढ़वाल के पण्डित श्रीकृष्णदत्तजी वे ज्योतिष, व्याकरण, कर्मकाण्ड और आयुर्वेद के अनुभवी विद्वान् थे। स्वभाव के भी बड़े सरल, सत्यवादी और धर्मभीरु स्मार्त वैष्णव थे। इस ओर वे केवल आजीविका के लिये ही आते थे। सन्तोषी स्वभाव के होने से सब लोग उनसे प्रेम करते थे और उन्हें अच्छी आय हो जाती थी। जब वे शिवपुरी में आते तो हमारे घर ही ठहरते थे। मेरे पिताजी से उनकी मित्रता थी। हमारी आजीविका भी खेती और पण्डिताई से ही चलती थी। इसके सिवा पिताजी कुछ लेन-देन और वैद्यक भी कर लेते थे। इस प्रकार भोजन-वस्त्र की कोई कमी नहीं थी।

सम्भवत: सं० १९६८ में हमारे गाँव में प्लेग-महामारी का बड़ा प्रकोप हुआ। परिस्थिति बड़ी भयानक थी। मैं भी उसके चंगुल में आ गया। दोनों जाँघों में ग्रन्थियाँ उभर आयीं और १०६ डिग्री तक ज्वर हो गया। जीवन की कोई आशा न रही। पिताजी स्वयं वैद्य थे। उन्होंने बहुत औषधोपचार किया। किन्तु फिर रोग को असाध्य समझकर निराश हो गये। इससे पहले मेरा एक बड़ा भाई प्लेग का शिकार हो चुका था। इसलिये वे बहुत ही शोकाकुल हो गये। अच्छे तगड़े कसरती जवान थे, धैर्य भी उनमें कम नहीं था। परन्तु इस समय मोह और पुत्रशोक ने बुरी तरह दबा लिया। उनकी हालत अकस्मात् बिगड़ गयी। उन्हें तीन बार रुधिर का बमन हुआ। वे समझ गये अब मैं नहीं बचूंगा। उनके एक हितैषी कुटुम्बी बड़े भाई थे। उनसे उन्होंने सब हाल कहा और प्रात:काल चार बजे पृथ्वी लिपवाकर स्वयं ही चारपाई से उतरकर लेट गये तथा 'श्रीराम-श्रीराम' उच्चारण करते चल बसे। कुटुम्बियोंने मेरे छोटे भाई रामशंकर से उनके दाहकर्म और श्राद्धादि कराये। मेरा हृदय तो उस समय

इतना कठोर था कि पिताजी की मृत्यु होने पर मेरी आँखों से एक आँसू भी नहीं निकला, बल्कि उल्टी हँसी आयी।

मेरा विचार बचपन से ही साधु होने का था। अतः उसी समय सोचा कि मैं विवाह नहीं करूँगा। माँ की सेवा छोटा भाई कर लेगा। परन्तु एक महीना बाद ही दो बड़ी बहिन, माता और कुटुम्बियों ने मिलकर बलात्कार से मेरा विवाह कर दिया। अल्पायु होने के कारण बड़ों पर मेरा विशेष दबाव न पड़ सका। इससे मेरी साधु होने की इच्छा पर तो बड़ा आघात पहुँचा, किन्तु सद्गुरु की खोज तो और भी प्रबल हो उठी। कभी-कभी तो मुझे ऐसा पागलपन-सा सवार होता था कि मैं बहुत रोता था। उस समय मेरे दीक्षागुरु पं० श्रीकृष्णदत्त जी मुझे समझाया करते थे। मुझे उन्होंने बड़े प्रेम से सन्ध्या, पाठ, पूजा, गायत्री जप और उपासना पद्धति की शिक्षा दी। मैं नित्यप्रति सन्ध्योपासन, गायत्री जप तथा रुद्री एवं अन्य कई पाठ किया करता था। इनसे मुझे बड़ा सन्तोष मिलता था।

अब गृहस्थी का सारा भार मुझ पर आ पड़ा था। जो कुछ थोड़ी-सी पहली पूंजी थी वह तो विवाहादि में समाप्त हो गयी थी। मैंने घर का काम सँभाल तो लिया, किन्तु हृदय से मेरी उसमें ग्लानि ही थी। पण्डित श्रीकृष्णदत्तजी तो समय-समय पर अपने देश को चले जाते थे। उस समय मेरा सत्संग पं० रामप्रसादजी के साथ रहता था। ये दूसरे मुहल्ले में रहते थे, बड़े ही सज्जन और भजनानन्दी ब्राह्मण थे। इनके नेत्रों की ज्योति जाती रही थी। इन्हें रामायण और भागवत तो प्रायः कण्ठस्थ ही थी। इनसे दिन में एकबार मैं प्रायः मिल लिया करता था। ये शिव मन्दिर में जाकर सबेरे १० बजे तक भजन करते थे और फिर भोजन के उपरान्त कोई सद्ग्रन्थ सुना करते थे। मैंने इन्हें श्रीचरणदास जी का भक्तिसागर सुनाया। उसमें सद्गुरु की महिमा पढ़ कर मेरा चित्त व्याकुल हो गया। मैंने पण्डित जी के चरण पकड़ लिये और खूब रोया। तब उन्होंने मुझे धैर्य बंधाया और कहा, 'हम तुमको एक उपाय बतलाते हैं। यह हमारा अनेक बार का अनुभूत है। तुम श्रीरामचरित मानस का एक पाठ श्रीशिवजी को सुनाओ। शिवजी बड़े दयालु हैं, औढर दानी हैं तथा भक्ति के भण्डारी हैं। उनकी कृपा से सभी अभीष्ट फल प्राप्त हो सकते हैं। श्रीगोसाई जी तो कहते हैं—'

'इच्छित फल बिनु शिव आराधे।
लहे न कोटि जोग जप साधे॥'

उनकी यह बात मेरे हृदय में गड़ गयी। मैंने कहा, 'यह कथा किस प्रकार सुनायी जाय?' वे बोले, 'तुम्हारे मुहल्ले में जो बड़ा ठाकुर द्वारा है उसमें शिव मन्दिर के सामने विधिवत् व्यास गद्दी लगायी जाय तथा कलश और गणेशजी की स्थापना और पूजन करके कथा आरम्भ कर दी जाय।' बस, 'शुभस्य शीघ्रम्' मैंने दूसरे ही दिन सब तैयारी करके कथा आरम्भ कर दी। श्रोता श्रीशिवजी और पं० रामप्रसादजी तथा वक्ता मैं। पीछे बस्ती में पता लगने पर दस-बीस श्रोता और भी आने लगे। यह घटना संवत् १९७१ के श्रावण मास की होगी। इसके एक साल पूर्व किसी दुर्घटना के कारण मेरी माताजी तथा छोटे भाई का देहान्त हो चुका था। अतः अब घर में मैं और मेरी स्त्री दो ही प्राणी थे।

कथा के आरम्भ में जब श्रीमहावीर जी का आवाहन किया गया तो एक बहुत बड़ा मेंढ़क बाहर से छलांग मारता आया। उसने एक छलांग चौकी के कोने पर मारी और फिर दूसरी से पास की अलमारी में जाकर उसके कोने में भीतर की ओर मुँह करके बैठ गया। उस दिन इस पर हमने कोई विचार नहीं किया। दूसरे दिन कथा आरम्भ होने के पहले वही मेढ़क ठीक उसी प्रकार आकर उसी स्थान पर जा बैठा। आज मुझे कुछ विचार हुआ, किन्तु उस समय मैंने कुछ कहा नहीं। मैंने देखा कि थोड़ी-थोड़ी देर में वह मेंढक चारों पांव तान कर अंगड़ाई लेता है। उस समय उसके शरीर पर पीले-पीले झाग के बिन्दु से उठ आते हैं तथा उसके नेत्रों से आंसू गिरते हैं। इस प्रकार वह मेंढक ठीक उसी समय कथा आरम्भ होने पर आता और कथा समाप्त होते ही चला जाता। इससे मुझे बड़ा कौतूहल हुआ कि यह कौन प्राणी है। अवश्य ही ये श्रीमहावीर जी हैं, क्योंकि जहाँ भी श्रीरामायण जी की कथा होती है वहाँ किसी न किसी रूप में वे अवश्य पधारते हैं। मैंने यह बात पं० रामप्रसादजी को सुनाई। वे भी बड़े चकित हुए और बोले—'निश्चय ही ये हनुमान जी हैं। उनकी तो यह प्रतिज्ञा है कि जहाँ कहीं श्रीरामायण जी की कथा होती है वहाँ अवश्य जाते हैं। किन्तु हमें किसी से इसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। नहीं तो, उन्हें विक्षेप होगा।

अतः इस विषय में फिर कोई चर्चा नहीं की गयी। कथा प्रायः ढाई महीने तक होती रही और वह मेंढक उसी प्रकार आता एवं जाता रहा। कथा सुनते समय उसकी बड़ी विचित्र दशा होती थी।'

कथा आरम्भ करने के दो-चार दिन बाद ही मुझे अपनी पुस्तकों में 'कलिसंतरणोपनिषद्' की एक पोथी मिली। उसमें 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' इस महामन्त्र की महिमा पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे ही दिन वह पुस्तक लाकर मैंने कथा में पण्डित रामप्रसादजी तथा अन्य श्रोताओं को सुनायी। उसे सुनकर रामप्रसादजी बोले, 'हम तो इस मन्त्र को बाल्याकाल से ही जपते हैं। वे अवस्था में मुझसे प्रायः चौदह साल बड़े थे। मैंने कहा, अच्छा, मैं भी कल से इसकी पाँच माला जपा करूँगा।' पाँच माला जपने से ही मुझे अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। दूसरे दिन कथा में चर्चा हुई तो रामप्रसादजी ने कहा, 'मैंने तो दस माला जपीं थीं, मुझे सुनकर ईर्ष्या हुई। अगले दिन मैंने पन्द्रह मालाएँ जपीं। फिर उन्होंने बीस और मैंने पच्चीस।' इसी तरह होड़ा-होड़ी संख्या बढ़ने लगी और उसके साथ आनन्द भी। आश्विन मास में कथा तो समाप्त हो गयी, परन्तु जप की संख्या का लोभ उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। इसी समय एक दिन पं० रामप्रसाद जी से फिर वही चर्चा चली कि मुझे सन्त-सद्गुरु कहाँ मिलेगें। मैं इस व्याकुलता से रोने लगा। तब पण्डितजी ने मुझे आशीर्वाद दिया कि घबराओ मत, तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूरा होगा। तुम पर श्रीशिवजी की कृपा है, इसी से उन्होंने प्रसन्न होकर तुम्हें यह भगवन्नाम प्रदान किया है। तुम इसे अपनाये रहो, इसके प्रभाव से ही तुम्हें अवश्य कहीं सन्त-सद्गुरु के दर्शन हो जायँगे।

संयोगवश उसी पौष मास में कुछ दिन जीविका के लिये मेरा विचार निजामपुर जाने का हुआ। यह गाँव जिला बदायूँ तहसील गुन्नौर में है। गवां से दो कोश पूर्व की ओर है। वहाँ पूर्वजों के समय से ही हमारी यजमान-वृत्ति चली आती है। वह सारा गाँव अहीरों का ही है। वहाँ कभी-कभी मेरे पिताजी जाया करते थे। मैं बचपन में दो बार गया था; यह मेरा वहाँ तीसरी बार जाना था। अतः जैसे-तैसे घर का प्रबन्ध कर मैं एक महीने के लिये निजामपुर चला गया। पढ़ा-लिखा तो मैं

सामान्य ही था, परन्तु मुझे पण्डिताई का अभिमान बहुत था। मैंने बढ़िया वस्त्र पहने, एक अच्छी रंगीन ऊनी चादर ओढ़ी और इस प्रकार अपने को सारे निजामपुर का गुरु समझकर बड़े अभिमान और ठाट-बाट से हेतराम के दालान पर रहने लगा। एक दिन मैं दालान में लेटा हुआ था। उस समय वहाँ बैठे हुए कुछ लोग एक-महात्मा की चर्चा करने लगे। उनकी बातें मेरे कान में पड़ीं तो मैं एकदम चौकन्ना होकर उठ बैठा और उनसे पूछा, 'आप लोग किनकी चर्चा कर रहे हैं। ये महापुरुष कौन हैं और कहाँ रहते हैं?'

तब उन्होंने बताया कि प्राय: एक साल से यहाँ एक महात्मा आये हुए हैं। वे सन्यासी हैं, उनकी युवावस्था है और गौरवर्ण है। उनके चेहरे से लाली और तेज निकलते हैं। वे बड़े सिद्ध पुरुष जान पड़ते हैं। बहुत ही प्रसन्न रहते हैं तथा बच्चों के साथ 'हरि:हरि:' उच्चारण करते हैं। इसी से उन्हें 'हरिबाबा' कहने लगे हैं। वे अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू और फारसी के विद्वान् हैं। गवां में बाबू हीरालाल को पढ़ाते हैं तथा बरोरा के पं० जयशंकर को भी, जो अभी काशी से पढ़कर आये हैं। कभी-कभी वे यहाँ भी आकर बच्चों के साथ 'हरि: हरि:' किया करते हैं और हेतराम को रामायण पढ़ाते हैं।

मैं एक नया आदमी था। ये बातें सुनकर भौंचक्का-सा रह गया। मेरे हृदय में उथल-पुथल होने लगी। मैंने उनसे कहा, 'भाई! मुझे उनकी कुछ और बातें भी सुनाओ।' बोले, 'गुरुजी! वे बड़े खिलाड़ी हैं। जंगल में ग्वालियों के साथ तरह-तरह के खेल किया करते हैं। एक दिन एक कुम्हार का टोकरा अपने सिर पर रखकर तीन कोस पहुँचा आये थे। किसी घसेरे की घास खोद देते हैं, किसी का हल चलाते हैं और किसी की कुइया ढालते हैं। उन्हें जो कोई मिलता है उसी से कहते हैं, 'भाई! मुझे हरिनाम सुनाओ।' वह नहीं सुनाता तो उसके पैरों में पड़ जाते हैं, विनती करते हैं। तब वह विवश होकर 'हरि: हरि:' करने लगता है और आप उसका काम करने लगते हैं तथा जितना काम दूसरे आदमी से एक दिन में होगा उतना वे दो-तीन घण्टे में ही कर डालते हैं। गुरुजी! उनकी लीलाएँ बड़ी विचित्र हैं। कुछ समझ में नहीं आता कि वे कौन हैं। हमें तो साक्षात् भगवान् जान पड़ते हैं।'

उनकी ये बातें मैंने बड़े ध्यान से सुनीं। मैं सोचने लगा कि वे क्या वस्तु हैं, सो तो वे ही जानें, किन्तु गरीब पर दीनबन्धु एवं पतितपावन अवश्य हैं। अब, मेरे मन में उनके दर्शनों की चटपटी लगी। मुझे पं० रामप्रसादजी का आशीर्वाद याद आया और मन में निश्चय हो गया कि वे सन्त-सद्गुरुदेव ही हैं और केवल मेरा उद्धार करने के लिये ही प्रकट हुए हैं। किन्तु कोई निश्चित ठिकाना न होने से मैं असमंजस में पड़ गया। कोई बोला, 'गवां में मिलेंगे।' किसी ने कहा, 'बरोरा में।' कोई कहने लगा, 'उनका कोई निश्चित ठिकाना नहीं है, वे तो घूमते ही रहते हैं।' तब मैं विवश हो गया। किन्तु तभी से मेरे मन में बेकली उत्पन्न हो गयी। दूसरे दिन प्रत्येक क्रिया करते हुए भी मुझे उन्हीं का ध्यान बना रहा। उस समय मेरी सन्ध्या तीन घण्टे में होती थी। सायंकाल में सन्ध्योपासना करते हुए भी चित्त में उन्हीं के विषय में संकल्प-विकल्प होते रहे। सन्ध्या से निवृत्त होकर अपने निवास-स्थान पर पहुँचा तो देखा कि एक खाट पर फटा-सा कम्बल ओढ़े एक महात्मा पड़े हैं और उनके पास जमीन पर दो-चार बालक बैठे हुए 'हरिः हरिः' बोल रहे हैं। आप एक करवट से लेटे हुए उनसे बार-बार कहते हैं-'बच्चा! हरिः हरिः बोलो।' आपकी वाणी में बड़ा माधुर्य भरा हुआ है।

देखते ही मुझे निश्चय हो गया कि ये ही हरिबाबा जी हैं। उनकी चारपाई के पास एक चौकी पड़ी थी। मैं चुपचाप प्रणाम करके उसी पर बैठ गया। वे मेरी ओर पीठ किये लेटे हुए थे। मेरे मन में बार-बार उनसे पूछने का संकल्प होता था। परन्तु उनके तेज के कारण मेरी हिम्मत नहीं पड़ती थी। आप बीच में एक बार उठे और पूछा, 'क्या हेतराम आ गया?' उस दालान पर कल्यान नाम का एक बढ़ई रहता था। उसने कहा, 'बाबा! अभी नहीं आया, आता होगा।' हेतराम इस समय गुन्नौर गया हुआ था। बाबा इसी प्रकार बार-बार उठकर हेतराम को पूछते रहे।

अब मुझे कुछ साहस हुआ और मैं बोला, 'बाबा! मैं कुछ पूछना चाहता हूँ। यदि आज्ञा हो तो पूछूँ?' आपने घूमकर मेरी ओर देखा और कहा, 'पूछो क्या पूछते हो?' मैंने कहा, 'इस संसार-सागर से पार होने का सुगम मार्ग क्या है।' आप धीरे से बोले, 'बच्चा! मुझे तो कुछ भी नहीं आता, तू ही कुछ सुना।' यह सुनकर

मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी, क्योंकि यह तो मैं पहले सुन ही चुका था कि आप बड़े विद्वान् हैं। अब ऐसा प्रतीत हुआ कि आप बालक के समान सरल भी हैं। तब मैंने कहा, 'बाबा! आप सब कुछ जानकर भी मुझे नहीं बताना चाहते, यह मेरा दुर्भाग्य ही है।' इस पर आपने बड़े मीठे स्वर में कहा, 'ऐसा नहीं है बच्चा! तुम्हीं कुछ सुनाओ। इससे तुम्हारा कल्याण ही होगा।'

आपके मुख से ऐसा आशीर्वादात्मक वचन सुनकर मेरा साहस बढ़ा। मैंने सोचा कि ये सब प्रकार समर्थ होकर भी मुझ बालक की तोतली वाणी से कुछ सुनना चाहते हैं तो इनकी आज्ञा का पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है। उस समय मैं बड़ा वाचाल था और मुझे सब प्रकार के सैकड़ों श्लोक याद थे। उस समय मेरी पॉकेट में भगवान् शंकराचार्यकृत 'प्रश्नोत्तर-रत्न- मालिका' नामक पुस्तक थी। बस, मैंने निःसंकोच होकर उन्हीं श्लोकों की झड़ी लगा दी। बीच-बीच में आप कुछ पूछते थे तो मैं उनका अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दे देता था। पीछे रामजी की कुछ चर्चा चली तो आप बोले, 'रामजी कौन थे?' जब श्रीकृष्ण की बात आयी तो आपने पूछा, 'बच्चा! कृष्णजी कौन थे?' मुझसे जहाँ तक बना खूब खुलकर बोलता रहा। प्रसंगवश मेरे मुँह से यह श्लोक निकला—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥ *

इसे सुनकर आप चकित हुए और बोले, 'माता के समान पर-स्त्री—यह तो बहुत कठिन है। इसी प्रकार परद्रव्य को लोष्ठवत् देखना तो और भी कठिन है तथा आत्मवत् सर्वभूतेषु यह तो असम्भव ही है।'

आप जो भी प्रश्न करते उसी का मैं कुछ न कुछ उत्तर दे देता। इस प्रकार मैं दो घण्टे तक खूब बोला। बस, आज का बोलना क्या था, मेरे लिये तो सदा के लिये आपके सामने बोलना बन्द हो गया। मुझे बोलाते हुए केवल सम्मुख होकर

---

* जो परायी स्त्री को माता के समान, पराये धन को ढेले के समान और समस्त प्राणियों को अपने समान देखता है वही 'पण्डित' है।

अथवा अपने मूक संग से ही आपने मेरा मन सदा के लिये हर लिया। उस समय मेरी ऐसी इच्छा होती थी कि मैं बोलता ही रहूँ और ये मेरे सामने पड़े रहें। उनकी सन्निधिमात्र से मेरे हृदय में एक आनन्द की लहर-सी उठ रही थी। मेरा मन अवश हो रहा था। मैं आधा पागल-सा हो गया था। बीच-बीच में आप बछड़े से बिछुड़ी हुई गाय की तरह उठ-उठ कर 'क्या हेतराम अभी नहीं आया?' ऐसा पूछकर अपनी भक्तवत्सलता से मेरे मन को और भी आकर्षित कर रहे थे।

आखिर रात को ११ बजे के लगभग आप उठे और 'हेतराम अब नहीं आयेगा' ऐसा कहते हुए चल पड़े। कुछ दूर तक हम दो-चार आदमी साथ गये। किन्तु फिर आप हिरनकी-सी छलाँगे भरते गवां की ओर भाग गये।

अस्तु! आप चले गये, परन्तु मेरे मन बुद्धि और हृदय भी साथ ले गये। मेरी सारी सुधि-बुधि जाती रही। मैं पीछे लौटा और पागल की तरह चादर ओढ़कर चौकी पर बैठ गया। लोगों से मैंने कह दिया, 'मेरी तबियत ठीक नहीं है, मैं भोजन नहीं करूँगा।' अत: वे सब सो गये। किन्तु मुझे नींद न आयी। मेरे मन में अनेकों प्रकार की भाव तरंगें उठने लगीं। उस समय की बात तो तभी बीत गयी, अब तो स्मरण करके भी हृदय फटता है। बस, मैं रोने लगा और इतना रोया कि मेरे वस्त्र आंसुओं से भीग गये। मुझे दूसरे लोगों का संकोच था, इसलिये खुलकर रो भी नहीं सकता था। अपने भावों को बहुत दबाता था, किन्तु दवा नहीं पाता था। कभी तो मेरे मन में यह पश्चात्ताप होता था कि मेरी आयु वृथा चली गयी, हाय! अभी तक मुझे भगवान् की प्राप्ति नहीं हुई। और कभी इतना हर्ष होता था उसके वेग से मेरे नेत्रों में आंसू बहने लगते थे। मुझे यह दृढ़ निश्चय हो गया था कि जैसे सद्गुरु मैं खोजता था वैसे ही मुझे प्राप्त हो गये हैं। किन्तु मुझमें तो इनके चरणों में रहने की योग्यता ही नहीं है। इस प्रकार अपने गृहस्थी के बन्धन का स्मरण करके मेरा चित्त व्याकुल हो गया। मैं सोचने लगा, 'हाय! मैं कैसे इन चरणों को प्राप्त कर सकूंगा?' फिर मुझे ख्याल आता कि घबराना नहीं चाहिये, ये तो इस जगत् में मेरा उद्धार करने के लिए ही प्रकट हुए हैं। कभी सोचता कि ये क्या वस्तु हैं? साक्षात् भगवान् हैं या कोई जन्म-सिद्ध महापुरुष हैं। अब तक की बातों से तो मुझे यही निश्चय होता था कि 'दीनबन्धु बिन

दीन की, को रहीम सुधि लेय' इस उक्ति के अनुसार ये मेरे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ही हैं। परन्तु इस समय ये छिपकर आये हैं, इसलिये छिप कर ही लीला करेंगे। इस प्रकार के भावों से मेरा हृदय उछलने लगा और इतनी एकाग्रता हुई कि मुझे भाव समाधि हो गयी। मैं सारी रात चौकी पर ही बैठा रहा। प्रातःकाल मुझे होश हुआ तो मैंने अपना भाव रोका और लज्जित-सा होकर उठ बैठा कि कहीं ये बातें कोई जान न ले।

अब जल्दी से उठकर शौचादि से निवृत्त हो मैं पूछ-ताछ कर बरोरा की ओर चला और सीधा पं० जयशंकरजी के घर पर पहुँचा। वहाँ नीम के नीचे श्रीमहाराजजी बैठे हुए थे। ज्यों ही मैंने साष्टांग प्रणाम किया कि आप बोले, 'उठो, पण्डित जी! आ गये। मैं भी मन ही मन तुम्हें याद कर रहा था।' यह सुन कर मेरे आनन्द का पार नहीं रहा। मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि इनका प्यार मुझ पर लाख गुना है। मुझे याद आया—

'पितासों माता सौ-गुना, सुतको राखै प्यार।
भीतरसों पालन करै, मुखसों डांट अरु गार॥
मातासों हरि सौ-गुना, तिनसौं सौ-गुरुदेव।
प्यार करें औगुन हरें, चरनदास सुन लेव॥'

बस, मुझे दृढ़ निश्चय हो गया कि ये मुझे नहीं त्यागेंगे और मेरे सब प्रतिबन्ध ढीले पड़ जायँगे।

मैं प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। अब स्वाध्याय आरम्भ हुआ। पहले श्रीमद्भागवत हुई, फिर लॉर्ड गौरांग। यह पुस्तक आपने आज ही आरम्भ की थी। आपका प्रवचन क्या था मानो अमृत की धारा ही बहती थी। पण्डित जयशंकर, नित्यानन्द, जौहरीलाल, हुलासी, हेतराम और भोलेजी तथा एक-दो अन्य गिने-चुने श्रोता चित्र या पुतली की तरह बैठे कथा श्रवण कर रहे थे। आप दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये, अनन्त नेत्र किये, सिद्धासन से बैठे केवल नाम मात्र को पुस्तक हाथ में लिये मानो अखण्ड प्रेम की वर्षा कर रहे थे। मालूम होता था मानो आप आज ही हमारे सब पापों को धोकर हमें सदा के लिये प्रेमराज्य में बैठा देंगे। कभी-कभी आपकी

अमृत भरी दृष्टि हम पर पड़ती थी। उससे हमारे हृदय में बड़ी ही शान्ति का सञ्चार होता था।

इस प्रकार तीन घण्टे का समय एक क्षण की तरह बीत गया। प्रायः ११ बजे आप उठे और हुलासी तथा हेतराम का हाथ पकड़कर गवाँ की ओर चल दिये। पीछे-पीछे मैं भी चला। रास्ते में हुलासी जी से उनके रात्रि में देखे हुए स्वप्नों की बात चलती रही। उन्हें तो स्वप्न अथवा जाग्रत में नित्य ही श्रीश्यामसुन्दर के दर्शन होते थे और वे आपसे जाकर उनकी चर्चा करते थे। हुलासीजी मेरे सामने अपना अनुभव बताने में संकोच करने लगे तो आपने इन शब्दों में मेरा परिचय दिया, 'ये बड़े पण्डित हैं, निजामपुर के गुरुजी हैं और बड़े भारी भक्त हैं। कल इन्होंने मुझे बड़ा उपदेश दिया था' इत्यादि। आपके इन शब्दों को सुनकर मैं तो लज्जा के करण गड़ा जा रहा था। मैंने चरणों में गिरकर कहा, 'भगवन्! मैं किस योग्य हूँ, मेरी ढिढाई क्षमा की जाय।' तब आपने समझा-बुझा कर मुझे शान्त किया और हुलासी जी से मेरा मेल करा दिया।

निजामपुर के गुरु के नाते आप तथा आपके साथी मुझे 'गुरुजी', कहकर ही बोल रहे थे। इस तरह आमोद-प्रमोद करते हम गवां की ओर जा रहे थे कि इतने ही में आपको खगूपुरा के कुछ ग्वालियों ने घेर लिया और कहा, 'बाबा! हरि हरि करो।' तब आपने मेरी ओर संकेत करके कहा, 'देखो, ये बड़े भारी पण्डितजी हैं, इन्हें चले जाने दो, पीछे हम तुम हरि हरि करेंगे।' आपने हम सबको लौट जाने के लिये कहा। तब यह देख कर आप मुझसे संकोच करते हैं मैं वहाँ से हटकर एक वृक्ष की ओट में हो गया। आप 'हरि हरि' उच्चारण करने लगे। बीच में आप और आस-पास सब ग्वालबाल थे—इससे ऐसी विचित्र शोभा हुई मानो ग्वालमण्डली के बीच में श्रीश्यामसुन्दर बंशी बजा कर नृत्य कर रहे हैं। आपके 'हरि' शब्द के उच्चारण और करताली की फटकार से एक विचित्र शक्ति उत्पन्न हो जाती थी। उससे गाँव के छोटे-छोटे बच्चों का भी ताल-स्वर मिल जाता था। आप उछल-उछल कर नृत्य कर रहे थे और आपके आस-पास बालक भी उछल रहे थे। उछलते उछलते उनमें से कोई पृथ्वी पर गिर पड़ा, कोई रोने लगा, कोई हँसने लगा और कोई लोट-पोट

हो गया। बस, झट आप सबको छोड़ कर भाग गये, थोड़ी देर में बालक भी सावधान होकर अपने-अपने कामों में लग गये।

यह सब देखकर मेरे मन में बड़ी चटपटी लगी। मैं वहीं बैठकर रोने लगा और मन ही मन भगवान् से प्रार्थना की 'प्रभो! मेरा ऐसा सौभाग्य कब होता कि मैं श्रीमहाराजजी के साथ कीर्तन करूंगा। मुझमें तो ऐसी योग्यता नहीं है, परन्तु आपकी कृपा तो स्वतन्त्र है। आप 'कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुम् समर्थ' हैं।' इस प्रकार बहुत देर तक वहीं बैठा रोता रहा। इससे चित्त में कुछ ढांढस बंधा और निश्चय हुआ कि यदि इनके साथ कीर्तन करने का मेरा सौभाग्य न होता तो ये मुझे दर्शन ही क्यों देते। अब करुणा करके दर्शन दिये हैं तो अपने साथ कीर्तन करने की योग्यता भी प्रदान करेंगे।

बस, मैं सावधान होकर उठा और वहाँ से चल दिया। उस समय मेरे मन की विचित्र स्थिति हो गयी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कोई नशा पी लिया हो। एकदम मस्ती ही मस्ती, भूख प्यास और निद्रा का कोई ख्याल ही नहीं, शरीर अत्यन्त हल्का और स्वच्छ तथा नेत्र खोलने की भी अनिच्छा। बस, वही छटा जो आज कीर्तनमण्डल में देखी थी हृदयपटल पर अंकित हो गयी। आँख मूंदकर निरंतर उसी को देखने लगा। वह दिव्य मूर्ति कठपुतली की तरह मेरे हृदय में नाचती-सी प्रतीत होने लगी। मेरे जीवन में आज यह नवीन ही अवस्था थी। इससे पहले मुझे इसका कोई अनुभव नहीं था। इधर लोक-लज्जा और कुलमान का विचार भी बाधा दे रहा था। सोचता था, मैं सारे गाँव का गुरु हूँ। ये लोग मुझे क्या कहेंगे। समझेंगे कि गुरु जी पागल हो गये। अतः अपने भाव को छिपाने के लिये ही मैंने जैसे तैसे अपने हाथ से बनाकर भोजन किया। परन्तु मेरे आंसू बन्द ही नहीं होते थे। आँखे प्रायः बन्द रहती थीं। अतः लोगों के संकोच से मैं जंगल में चला गया। वहाँ कभी तो हरिनाम उच्चारण करता था, कभी ध्यान में बैठ जाता था और कभी इधर-उधर टहलने लगता था। चित्त यही चाहता था कि एक क्षण भी श्रीमहाराजजी से विलग न होऊँ। ऐसी हालत में दोपहरी में भी भाग कर गवां पहुँचा। वहाँ किशोरीलाल के बगीचे की कुटी में महाराजजी कथा कर रहे थे। दो-चार श्रोता बैठे थे। मन में आया कि जाकर लिपट

जाऊँ। किन्तु संकोच और भय के कारण चुपचाप एक ओर जा बैठा। ऐसा मालूम होता था मानो किसी दिव्यलोक में बैठा हूँ और श्रवणों के द्वारा मेरे हृदय में एक अमृत का झरना झर रहा है। आँख उठाकर श्रीमहाराजजी की ओर देखा तो ऐसा मालूम हुआ मानो साक्षात् शुकदेवजी ही कथामृत का पान करा रहे हैं।

कथा समाप्त होने पर आप बैठे। मैं श्रीचरणों में लिपट गया और बहुत रोया। तब आपने समझाया,'भैया ! धैर्य से काम लेना चाहिये। उतावलापन ठीक नहीं। जहाँ तक बने अपने भावों को रोकना चाहिये। जितना अपने भावों को रोकेगें उतनी ही गम्भीरता आवेगी और भाव स्थायी होगा। जल्दी नहीं करनी चाहिये और सहसा कोई मर्यादा भी नहीं तोड़नी चाहिये। श्रीहरि अन्तर्यामी हैं, वे जिस समय जैसा आवश्यक समझेंगे स्वयं ही वैसा समागम बना देगें।' इसके बाद आपने हीरालाल जी से मेरा परिचय कराया और कहा, 'अब तुम जाओ। यहाँ इतनी दूर मत आया करो। यदि आवश्यक समझूंगा तो मैं स्वयं ही वहाँ आ जाऊँगा।' मैंने निरन्तर साथ रहने की प्रार्थना की तो आप बोले,'अभी नहीं, समय आने पर स्वयं ही ऐसा संयोग बन जायेगा।' मैं प्रणाम करके चलने लगा तो बाबूजी ने मुझे कुछ खिलाने की इच्छा प्रकट की। तब आपने मुझसे कहा, 'खबरदार। जो मेरे कहे बिना उनकी कोई चीज स्वीकार की।' और उनसे कहा, 'भाई ! तुम लोगों का अन्न खाकर पचाना सहज बात नहीं है।'

बस, मैं प्रणाम करके चल दिया। उस समय मस्ती के विषय में क्या कहूँ ! शरीर तो इतना हल्का जान पड़ता था मानो हवा में उड़ रहा है। निरन्तर यही चटपटी लगी रहती थी कि कब श्रीमहाराजजी मिलें। जैसे-तैसे रात कटी। प्रातःकाल ही स्नानादि से निवृत्त हो मैं बरोरा की ओर चल दिया। रास्ते में विभीषण की भाँति तरह-तरह के मनोरथ करता मैं वहाँ पहुँचा। आप इस समय मन्दिरमें ध्यान लगाये बैठे थे। मैं प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। थोड़ी देर में कथा आरम्भ हुई। पहले तीन बार ओंकार का उच्चारण किया, फिर कुछ चुने हुए प्रार्थनात्मक श्लोकों से मंगलाचरण और उसके पश्चात् कुछ संस्कृत टीकाओं के आधार पर श्रीमद्‌भागवत के वेदस्तुति प्रसंग के एक श्लोक की व्याख्या की गयी। पं० जयशंकरजी के आगे श्रीधरी टीका वाली प्रति थी। वे बीच-बीच में कुछ शंका समाधान भी करते जाते थे। इसके पश्चात्

विष्णुसहस्रनाम-भाष्यकी कथा हुई और सबके अन्त में वही रस का भण्डार गौर चरित (Lord Gaurang)हुआ। आपके सामने पुस्तक तो नाममात्र को रहती थी। बस, धारावाहिक रूप से आपकी वक्तृता होती थी। गौर-चरित्र-वर्णन करते हुए तो ऐसा जान पड़ता था मानो साक्षात् गौरसुन्दर ही अपनी लीलाओं का वर्णन कर रहे हैं। श्रोतागण मुग्ध-से होकर चित्रपुत्तलिका की तरह भावसमाधि में बैठे हुए कथा श्रवण कर रहे थे। कथा क्या थी एक अमृत की धारा ही थी अथवा मधुरता का भण्डार ही थी, किंवा साक्षात् मूर्तिमान् रस ही थी। मेरे पास तो ऐसा कोई शब्द नहीं जिससे मैं उसका वर्णन कर सकूं। बस, वह स्थान एक पागलखाना ही बना हुआ था। कथा समाप्त होने पर आप नित्यप्रति के नियमानुसार हुलासी और हेतराम को साथ लेकर चल दिये। पीछे-पीछे मैं भी हो लिया।

रास्ते में आप हुलासी से रात का स्वप्न और हेतराम का अनुभव पूछने लगे। हुलासी का चित्त श्रीकृष्णमय हो चुका था। श्रीकृष्ण और श्रीमहाराज जी में उसकी अभेद दृष्टि थी। उसे कई बार ऐसा अनुभव हो चुका था कि श्रीकृष्ण ही गौरसुन्दर हैं और इस समय वे ही श्रीमहाराजजी के रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं। कभी-कभी वे देखते थे कि महाराजजी में से निकल कर श्रीकृष्ण क्रीड़ा कर रहे हैं और श्रीमहाराजजी अलग हैं। फिर वे ही श्रीकृष्ण महाराजजी में विलीन हो जाते हैं। कभी श्रीमहाराजजी नहीं, श्रीकृष्ण ही रहते और सारा जगत् श्रीकृष्ण ही प्रतीत होता। कभी देखते कि श्रीमहाराजजी का यही रूप है, किन्तु उसमें दिव्य ज्योति निकल रही है तथा शरीरकी दिव्य अलौकिक शोभा हो रही है। उस समय उन्हें जड़-चेतन सारा जगत् महाराजजीमय ही प्रतीत होता था। वे उस समय पागल-से हो जाते थे। कभी जगत् को श्रीकृष्णमय देखकर वे प्रत्येक वृक्ष और लता को आलिंगन करते थे। कभी ऐसा जान पड़ता था मानो वे श्रीकृष्ण को पकड़ने जा रहे हैं और श्रीकृष्ण बलगइये देकर इधर-उधर निकल जाते हैं तो वे उनको गाली देते हुए दौड़ रहे हैं। कभी उनके शब्दों से यह प्रतीत होता था कि श्रीकृष्ण खेल में उनका दाँव लेकर भाग रहे हैं और वे गाली देकर कहते हैं—'सारे! मेरो दाँव नायँ देगो। ले भाग, कहाँ भागेगो बच्चू! पकड़ लियो तो खूबही पीटूंगो। आज तो तोकूँ मैं जसोदा मैया की गोदी हू में नायँ छोड़ूंगो।'

क़भी ताली पीट कर खिलखिला कर जोर से हँसते और कहते, 'ले सारो! गिर गयो।' फिर बड़े प्यार से पुचकारते, 'आज भैया! तू मतीना डरै। अच्छा, मैं दाँव नायँ लेऊँगो, और तोकूँ अपनी पीठ पै चड़ायकै चड्डी खवाऊँगो।' फिर सचमुच ही अपनी कमर लचका कर इस प्रकार घूमते मानो श्रीकृष्ण उनकी पीठ पर बैठे हैं।

इस प्रकार इनका भाव-राज्य बड़ा ही विलक्षण था। इनकी ऐसी अद्‌भुत अवस्थाओं की चर्चा सुनकर गवां के बाबू हीरालाल जी को इनके दर्शनों की बड़ी उत्कण्ठा हुई उन्होंने एक दिन डरते-डरते श्रीमहाराज जी से प्रार्थना की कि मुझे कभी हुलासी के दर्शन कराइये। इस पर श्रीमहाराज जी ने 'अच्छा' कह दिया था। आज इनकी विलक्षण अवस्था थी और बहुत यत्न करने पर भी वे होश में नहीं आ रहे थे। अतः आपने यह सोचकर कि देर बहुत हो गयी है, भिक्षा का समय भी हो चुका है, वहाँ लोग प्रतीक्षा करेंगे। तथा बाबूजी भी इसे देखना चाहते ही थे; चलो, इसे साथ ही ले चलें—उसे उठा लिया। उसका एक हाथ हेतराम के कंधे पर रखा और दूसरा अपने कंधे पर। इस प्रकार उन्मत्त की भाँति बाह्य-ज्ञान-शून्य अवस्था में उसे गवाँ में ले आये। बाबू हीरालालजी के अट्टे पर पहुँचकर भी उसे सावधान करने के बहुत प्रयत्न किये। पर वह अचेत ही रहा। उसके मुँह में मिश्री की डेली डाली, पर बहुत देर बाद निकालने पर भी वह ज्यों की त्यों सूखी निकली। मानो लार उसके मुख में थी ही नहीं। उसके शरीर की सारी क्रियाएँ बन्द थीं, आँखें पथरा गयी थीं, नाड़ी की गति भी रुक गयी थी तथा हृदय भी स्पन्दन शून्य हो गया था।

उसकी ऐसी अद्‌भुत अवस्था देखकर बाबूजी घबरा गये। उन्होंने समझा कि यह मर गया है। उन्हें घबराया देखकर श्रीमहाराज जी बड़े जोरों से हँसे और बोले, 'वाह बाबूजी! अच्छा बुलाया बेचारे को, प्राणों से ही खो दिया!' महाराजजी की हँसी देखकर उनकी जान में जान आयी। वे समझे कि इसमें कुछ इनकी ही करामात है। महाराजजी ने कहा, 'बाबू जी! अपने योग की अवस्थाओं में देखो कि इसकी कौन-सी अवस्था है। हमने तो इसकी ऐसी अवस्था कई बार देखी है।' बेचारे बाबूजी के योगीपने के अभिमान पर वज्रपात हुआ। अब उनको श्रीमहाराजजी के वे शब्द याद आये कि यह हठयोग छोड़ दो, सब कुछ आप ही हो जायगा। आज उनको विश्वास

हुआ कि योगाभ्यास के बिना भी महापुरुषों की कृपा से ऊँची से ऊँची अवस्था प्राप्त हो सकती है। सच है, भाई! चमत्कार को ही नमस्कार होता है, कोरा व्याख्यान कौन सुनता है? बस, आजसे बाबूजी ने हठयोग का साधन एकदम छोड़ दिया। फिर श्रीगुरुदेव की कृपा से ही उन्हें अपने-आप अनेकों विचित्र अवस्थाओं का अनुभव हुआ और वे कृत्कृत्य हो गये।

अब श्रीमहाराज जी ने हुलासी को सचेत करने के लिये उसके सिर पर तेल लगवाया, उसके मेरुदण्ड की मालिश करवायी और उसके सिर पर ठण्डा जल डलवाया। किन्तु ये सब उपाय तो केवल दिखाने के लिये ही थे। उसकी असली औषधि तो भगवन्नाम ही थी। आपने बड़े जोरों से उसके कानों में भगवन्नाम सुनाया। इससे वह निद्रा से उठे हुए के समान सचेत हो गया। अपने को उस स्थान पर देखकर वह बड़ा लज्जित हुआ और श्री महाराजजी के चरणों में लोट गया। फिर उसने बाबूजी को भी प्रणाम किया। तदन्तर श्रीमहाराज जी ने भिक्षा की और बाबूजी ने हुलासी को भी बड़े प्रेम से भोजन कराया। वह बेचारा गरीब नाई इतने बड़े रईस, विद्वान् और परमार्थ परायण सज्जन द्वारा इतना सत्कार पाकर संकोचवश गड़ा जाता था।

इसके पश्चात् गवाँ से चलकर रास्ते में हुलासी और हेतराम के अद्भुत अनुभव सुनते हम बरोरा आये। इसी प्रकार नित्य नयी लीलाएँ देखते हुए कुछ दिन बड़े आनन्द में निकल गये। धीरे-धीरे श्रीमहाराजजी के साथ कीर्तन करने की मेरी लालसा इतनी तीव्र हो उठी कि उसने मुझे विकल कर दिया। अन्त में दो ही चार दिन टालते हुए आपने मुझे आज्ञा दी कि तुम स्वयं ही निजामपुर के बालकों के साथ कीर्तन, आरम्भ कर दो।

निजामपुर में आकर मैंने विचार किया कि किस प्रकार बालकों को इकट्ठा किया जाय। इसके लिये कुछ प्रसाद मँगाना अच्छा जान पड़ा। अतः मैंने चार आने के बताशे मँगाये और बालकों को इकट्ठा करके कहा, 'देखो भाई! तुम मेरे साथ 'हरि हरि' उच्चारण करो, तुम्हें प्रसाद मिलेगा।' बस, ज्यों ही प्रसाद के लोभ से बालकों ने 'हरि हरि' कहना आरंभ किया कि हरिनाम उनके मुखसे चिपट गया। उसमें उन्हें रस आने लगा और वे कठपुतलियों की तरह नाचने लगे। साथ ही मैं भी 'हरि हरि'

बोलकर नृत्य करने लगा। पता नहीं, उसमें ऐसा क्या अद्भुत रस था कि उसने हम सभी को पागल कर दिया। उनमें से कई बालक तो फूट-फूट कर रोने लगे और कोई पृथ्वी पर लोटने लगे। मैं भी आनन्द में भरकर इस विचित्र दृश्य को देख रहा था। प्रायः एक घंटा कीर्तन हुआ। सबका स्वर-ताल स्वाभाविक ही मिल गया। बस, आनन्द ही आनन्द छा गया। गवाँ के लोग देखने के लिये आये। देखते-देखते वे सब भी आनन्द में भरकर कीर्तन करने लगे, मेरे हृदय में तो इतनी भारी तरंग-सी उठी कि सँभालना कठिन हो गया। लोकलाज के कारण ही मेरा होश-हवाश बना रहा, नहीं तो डूब ही जाता।

दूसरे दिन उसी प्रकार फिर सबेरे ही बरोरा पहुँचा। आज मेरे आनन्द का पारावार नहीं था। महाराजजी मुझे कुछ और ही प्रकार दीख पड़े। मुझे कभी तो प्रतीत होता था कि मैं अलग हूँ और शरीर अलग है। कभी संसार मेरी दृष्टि से ओझल हो जाता। इसी तरह की अनेकों अवस्थाओं का अनुभव मुझे होने लगा। श्रीचरणदास जी ने जो भक्तिसागर में लिखा है वह अक्षरशः सत्य प्रतीत हुआ—

'जब सत्गुरु किरपा करें, खोल दिखावें नैंन।
जग झूठा दीखन लगे, देह परैखी सैन॥
कृपा होय गुरुदेव की भजै, मान और मैन।
जग वासना के छुटै, अति ही पावै चैन॥'

बस, इसी तरह मैं नित्य प्रातः काल बरोरा जाता और आनन्द से कथा सुनता। फिर सड़क पर गवाँ की ओर जाकर हुलासीजी के साथ की विचित्र लीलाएँ देखता और दोपहर को निजामपुर में पहुँचकर स्वयं बनाकर भोजन पाता। और सायंकाल में बालकों को इकट्ठा करके कीर्तन करता। अब तो बालकों को कीर्तन का ऐसा लोभ हो गया था कि वे बिना बुलाये ही इकट्ठे हो जाते थे। उस समय आनन्द की एक अद्भुत तरंग हृदय में हिलोरें लेने लगती थी और हम उसी आनन्द में घण्टों कीर्तन करते रहते थे। हमारे हृदय का उत्साह क्षण-क्षण में नवीन होता रहता था। हमें ऐसा प्रतीत होता था मानों कोई अदृश्य शक्ति बलात्कार से हमें नचा रही है। कुछ दिनों बाद श्रीमहाराजजी भी हमारे कीर्तन में सम्मिलित होने लगे। अब तो कीर्तन भी आँधी की

तरह बढ़ने लगा और स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध, ब्राह्मण, चाण्डाल एवं पतित सभी अहर्निश कीर्तनरस में मग्न रहने लगे। सब लोग काम-काज करते हुए भी श्रीहरिनाम उच्चारण करने लगे। इससे उन्हें तरह-तरह के चमत्कारों का भी अनुभव होने लगा। किसी की मृत्यु होने वाली होती तो कई लोग मिलकर उसकी सद्गति के लिये कीर्तन करते। उस समय प्रत्यक्ष देखने में आता कि अत्यन्त सामान्य पुरुष भी भगवन्नाम लेता हुआ अनायास शरीर त्याग कर भगवद्धाम को जा रहा है। इस प्रकार भगवन्नाम के प्रभाव से सभी के त्रिविध ताप नष्ट हो गये—

'दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहि स्वधर्म निरत श्रुति रीति॥
चारिहु चरन धरम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीं॥'

इस प्रकार निजामपुर में श्रीहरिनाम के प्रभाव से इस घोर कलिकाल में भी रामराज्य की स्थापना हो गयी, वहाँ से अपने-पराये का भी भाव उठ गया।

संकीर्तन का प्रभाव

एक बार इस प्रान्त में अवर्षण के कारण हाहाकार मच गया। सब लोग घबरा गये। बेचारे गरीब ग्रामीण अत्यन्त आतुर होकर श्रीमहाराजजी से प्रार्थना करने लगे कि किसी प्रकार इस संकट से उद्धार करें आपने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा, 'भैया! ऐसा कोई भी लौकिक या अलौकिक कार्य नहीं है जो श्रीहरिनाम के द्वारा न हो सके। इस कलिकाल में केवल संगठन की आवश्यकता है—'संघे शक्तिः कलौ युगे।' बस, यदि ऐसे पाँच पुरुष भी मिल जायँ तो तन, मन, प्राण से एक हों—देखने में पाँच किन्तु वास्तव में एक हों सबका एक ही संकल्प हो, एक साथ और एक ही-सा भोजन, शयन, जागरण और साधन भजन हो तथा किसी कारण से क्रिया में भेद हो तो भी भाव में रञ्चकमात्र भी भेद न हो—तो मेरा विश्वास है कि उनके द्वारा ईश्वर की पूर्ण शक्ति का विकास हो सकता है और उनमें से किसी एक का भी जो संकल्प होगा

वही सिद्ध हो जायगा। यदि दो दिल एक हो जायँ तो ऐसी कोई मुश्किल नहीं जो आसान न हो जाय।'

इसके सिवा आपने गुरु गोविन्दसिंह जी के पंच प्यारों का भी दृष्टान्त सुनाया और बोले, 'आओ, हम पाँच भी मिल जायँ।' वे पाँच ये श्रीमहाराजजी, पं० जयशंकर, नित्यानन्द, जौहरीलाल और मैं। हम पाँचों मिलकर विचार करने लगे कि यह अवर्षण तो सामान्य-सी बात है, वास्तव में तो सृष्टि के सारे जीव ही हरि नाम से वञ्चित होकर त्रिविध ताप से जल रहे हैं, उन सबके पाप-ताप दूर होकर उनकी श्रीहरिनाम में स्वाभाविक प्रीति हो और वे परस्पर प्रेम करते हुए श्रीहरिनाम की शरण लेकर सदा के लिये सुखी हो जायँ—ऐसा उपाय करना चाहिये। ऐसी भावना से हम सब मिलकर श्रीहरि से प्रार्थना करने लगे, 'प्रभो! हम पाँच परस्पर एक हो जायँ। हमें अपने सुख-दुःख की परवाह न हो । विश्व सुखी हो, निरोग हो। विश्व का कल्याण हो और किसी को भी कोई दुःख न हो। हे प्रकाशस्वरूप! हे देव! जिस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के पापों का नाश और सबका कल्याण हो वैसी ही आप उन्हें प्रेरणा करें।'

इस प्रकार जब हम पाँचों अपने सुख-दुःख की बात भूलकर विश्व-कल्याण की भावना से प्रार्थना करने लगे तो एक अनिर्वचनीय और दिव्य भावतरंग ने हमारे हृदय को उथल-पुथल कर डाला और मानों एक कूपमण्डूक वृत्ति से हमें एक अनन्त अथाह आनन्द समुद्र के प्रेमामृत का पान कराया। हमने समझा कि हम सब तो कृतार्थ हो गये, अब हम सारे विश्व को प्रेम से भर देंगे, और अवर्षण की तो बात ही क्या सारे संसार को त्रिविध तापों से मुक्त कर देंगे। हम स्वयं श्रीहरिनामसुधा का पान करेंगे तथा सबको भी पिलाकर सदा के लिये उस अनन्त प्रेमार्णव का मत्स्य बना देंगे। हम श्रीहरिनाम का झण्डा उठाकर विश्व के कोने-कोने में नाममन्त्र को फूंककर सदा के लिये सबका विषमविष हर लेंगे। हम सब भगवान् के पार्षद हैं और श्रीहरि के सहित इसी कार्य के लिये धराधाम में अवतीर्ण हुए हैं। इस तरह की एक अनिर्वचनीय तरंग ने आकर हम सबको विगलित कर दिया और हमारे मन में यह जागृति प्रत्यक्ष हो उठी कि हम श्रीहरि के नित्यदास हैं, उनसे हमारा कभी एक क्षण के लिये भी वियोग नहीं है। माया के द्वारा जो वियोग-सा प्रतीत होता था वह हमारा

भ्रम था। वास्तव में वह कुछ भी नहीं था, केवल स्वप्न ही था श्रीचरणदासजी का यह दोहा मुझे बार-बार याद आने लगा—

'कृपा होय गुरुदेव की, क्षण में करें निहाल।
जग झूठा दीखन लगे, कागा होय मराल॥'

बस, मैं तो श्रीमहाराज जी के चरणों में लोट-पोट हो गया। मुझे ऐसा मालूम होता था मानो आनन्दकी तरंग पर तरंग आकर मेरे हृदय में विगलित कर रही है। इसी समय श्रीमहाराजजी ने एक मीठी-सी डांट बताकर मुझे मूर्च्छित होने से बचा लिया। वे बोले, बस, इसी तरह विश्व का कल्याण करोगे? अपना पेट भरने में ही अपने को कृतार्थ मानने लगे। भैया! स्वार्थपरता बहुत दूर तक जीव का पीछा करती है। मोक्ष की इच्छा भी कोरा स्वार्थ नहीं तो क्या है? इसी से शास्त्रों में कहा है— 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।' यह बड़ी ही सावधानी से चलने का मार्ग है। इसमें पग-पग पर बरछी लगे, स्वास-स्वास पर तीर। सावधान! सेवा में कभी स्वार्थ का प्रवेश न हो जाय। स्वार्थ ने प्रवेश किया कि सेवा से वञ्चित हुआ। अतः अपने भावों का संवरण करके उपस्थित कर्त्तव्य पर विचार करो।

अब, हमने निश्चय किया कि हम पाँचों ही सात दिन केवल दूध पीकर कीर्तन करते हुए चार गाँवों में फेरी करेंगे और कथा का समय होने पर कहीं भी बैठकर कथा करेंगे। फिर आठवें दिन चारों गाँव मिलकर अखण्ड कीर्तन और समष्टि भोजन करेंगे। इस प्रकार यह चौबीस घण्टे का सबसे पहला अखण्ड कीर्तन था।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्नानादि नित्यकर्मों से निवृत्त हो श्रीमहाराज जी सबसे आगे और हम एक-दूसरे के पीछे, इस प्रकार 'अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्ण दामोदरं वासुदेव हरिम्। श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।' यह कीर्तन करते और हाथों से ताली बजाते हुए चले। हम क्रमशः बरोरा से निजामपुर, भैंसरौली, बेलबाबा और बरोरा-ईसापुर गये। फिर जयशंकरजी के घेरे पर आकर हमने दुग्धपान किया। और थोड़ी देर विश्राम करके फिर उसी प्रकार फेरी की। रात्रि को निजामपुर में कीर्तन करके बरोरा आकर हम पण्डित जयशंकरजी के घर पर सो जाते थे। चित्त में एकदम इतना सत्त्वगुण बढ़ा हुआ था कि बहुत प्रयत्न करने पर

हमें थोड़ी-सी निद्रा आती थी। श्रीमहाराजजी तो दो ही बजे उठकर बैठ जाते थे। हम लोग प्रायः तीन बजे उठते और फिर शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर प्रभाती कर्तन करते थे। इसके पश्चात् थोड़ा पाठ स्वाध्याय आदि करके उसी प्रकार 'अच्युतं केशवं रामानारायणम्' की ध्वनि बोलते चल पड़ते थे। चलते हुए ऐसा प्रतीत होता था मानो हम सबका नवीन-जन्म हो गया है और हम किसी दिव्य लोक में विचरण कर रहे हैं। कितना भी कीर्तन करें, कितना भी भ्रमण करें, किन्तु थकान का नामोनिशान भी नहीं इस प्रकार आनन्द में विचरण करते और हरिनामामृत के साथ-साथ दुग्धपान करते मानो हमारे शरीर और मनों का कल्प हो गया। हम सब नयी स्फूर्ति, नया बल, नया उत्साह, अनुपम शान्ति और दिव्यातिदिव्य आनन्द का अनुभव करने लगे।

आठवां दिन आने पर व्रत की पूर्ति में केवल मूँग की दाल खाने का विचार हुआ और यह भी निश्चय किया गया कि निरन्तर श्रीहरिनाम उच्चारण करते हुए हम लोग स्वयं ही वह दाल बनावेंगे। उस पर और किसी की दृष्टि भी न पड़े। ऐसा ही किया गया। दाल कढ़ाही में बनायी गयी। जब वह सिद्ध हो गयी तब महाराजजी ने स्वयं घी डाल कर करछी से प्रायः एक घण्टा उसे घोटा। साथ ही वे कई स्तोत्रों का पाठ भी करते रहे। इस प्रकार दिव्य चित्त शक्ति से न जाने उन्होंने उस दाल में क्या जादू भर दिया। फिर हम सबको बिठाकर उन्होंने स्वयं ही उसे परोसा और कहा, 'सब लोग आँखें मूंदकर इसे श्रीभगवान् को अर्पण करो।' इस प्रकार भगवान् का भोग लगाकर हम पाने लगे। भाई! क्या कहें, उस दाल में तो ऐसा दिव्य स्वाद था कि हम दंग रह गये। खाते-खाते एक दिव्य नशा-सा होने लगा। श्रीमहाराज जी स्वयं भी खा रहे थे तथा एक हाथ से हम सबको परोसते भी जाते थे। वे बोले, 'आज इस दाल के रूप में भगवान् श्यामसुन्दर का अधरामृत ही हमें मिला है। यह पार्थिव पदार्थ नहीं है। यह साक्षात् दिव्य चिन्मय भोग है। इसे जो जितना अधिक खायगा वह उतना ही अधिक भगवत्कृपा का पात्र होगा।' यह सुनकर हम लोग होड़ा-होड़ी अधिक से अधिक खा गये। यहाँ तक कि वह कढ़ाई भरी सारी दाल समाप्त कर दी। साधारणतया तो वह दाल दस आदमियों के लिये भी अधिक थी। खाते-खाते हमारे पेट नगाड़े की तरह खूब तन गये। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इतना पेट

भरने पर भी हमारे शरीर एकदम हल्के, मन परम शान्त और प्रसन्न तथा श्वांस भी बहुत हल्का था। हमने बहुत थोड़ी देर विश्राम किया, फिर भी निद्रा या आलस्य का नाम नहीं था। तथा रात्रि को फिर उसी प्रकार कीर्तन किया।

दूसरे दिन समष्टि भोजन का प्रबन्ध चारों गाँवों के लोगों ने मिलकर बेलबाबा पर किया था। अखण्ड कीर्तन प्रातःकाल से ही निजामपुर में आरम्भ हो गया। हम लोग सायंकाल में बेलबाबा पहुँचे। प्रायः एक हजार मूर्तियों का भोजन बनाना था। सब लोग भोजन की सामग्री लेकर वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे। श्रीमहाराजजी की ओर से चारों गाँवों में यह घोषणा पहले दिन ही करा दी गयी थी कि कल का सारा दही बेलबाबा पहुँचना चाहिये। रात को वहाँ पहुँचने पर भोजन बनाने का आयोजन होने लगा। हम भी उसी उद्योग में लग गये। यह साक्षात् गिरिराजपूजन का-सा दृश्य था। इतने ही में बादल की घनघोर घटाएँ गर्ज-गर्ज कर उठीं और नन्हीं-नन्हीं बूदें भी पड़ने लगीं। वहाँ छाये हुए स्थान के नाम पर तो केवल फूस की एक छोटी-सी झोंपड़ी थी। इसलिये सब सामग्री खुले ही में पड़ी थी। सब लोग घबराये कि अब कैसे क्या किया जाय। गाँव वहाँ से प्रायः एक मील था। सबको घबराते देख श्रीमहाराजजी ने उठकर ताली बजायी। इन सबने भी वैसा ही किया और बड़े जोरों से कहने लगे—'दुष्ट इन्द्र, हमारे यज्ञ में विघ्न करना चाहता है? पकड़ो, मारो इन्द्र को।' इस प्रकार हम एकदम कूद-कूदकर हल्ला मचाने लगे। बस, इसी क्षण बादलों का कहीं नामोनिशान भी नहीं रहा और हम लोग निश्चिन्त होकर काम करने लगे। थोड़ी ही देर में फिर उसी प्रकार गर्ज-गर्ज कर बादल घिर आया और बूँदें गिरने लगीं। श्रीमहाराजजी ने हँसते-हँसते कहा, 'भाई! सावधान होकर इन्द्र को भगाओ।' बस, फिर उसी प्रकार ताली बजाते हुए कूद-कूद कर इन्द्र को मारो, पकड़ो की तुमुल ध्वनि से आकाश गूँज उठा। थोड़ी देर में बादल फिर गायब हो गये। उस समय हम लोगों के भीतर यही भाव भर गया था कि हम सब भगवान् के भोग के लिये सामग्री तैयार कर रहे हैं और इन्द्र उसमें विघ्न करना चाहता है। परन्तु वह कुछ कर नहीं सकेगा।

इस तरह वह सारी रात इन्द्रदेव से युद्ध करते हुए ही बीती। न हम सोये और न इन्द्र देवता ही हटे। बार-बार बूंदें गिरतीं और हम सब मिलकर हल्ला मचाते तो

बादल भाग जाते। उस रात्रि का आनन्द क्या कहा जाय। बस, एक दिव्यातिदिव्य आनन्द का अनुभव करते हुए ही वह सारी रात निकल गयी।

प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर समष्टि कीर्तन किया गया। कितना दिव्य कीर्तन हुआ उस दिन, कुछ कहा नहीं जा सकता! ऐसा जान पड़ता था मानो मध्य में साक्षात् श्रीगौरसुन्दर नृत्य कर रहे हैं और उनके चारों ओर पार्षद गण हैं। उस दिव्य कनक-पुतली का अद्भुत नृत्य और 'हरि हरि' की मधुर गुञ्जार तथा करताली की विचित्र फटकार! बस, एक आनन्द का भण्डार ही खुल गया। भक्तों को ऐसा अनुभव होने लगा मानो हम चिरकाल से बिछड़े हुए अपनी आनन्दमयी माँ की गोद में दिव्य चिन्मय रस का पान कर रहे हैं—अपनी बहुत दिनों की दुर्दान्त पिपासा को शान्त कर रहे हैं। अहा! हमको तो आज ही पता लगा कि यह प्रेम रस का असीम भण्डार ही हमारा वास्तविक धन है। हा दुर्दैव! हम तेरे फन्दे में फँसकर विषयों के प्रचण्ड ताप से तापित होकर जन्म-जन्मान्तर से इसी तरह भटक रहे थे। आज हमको चिरवाञ्छित शान्ति प्राप्त हुई। अहा! किन शब्दों में उसका वर्णन करें? भला, वाणी में ऐसी शक्ति ही कहाँ है? यह जड़ लेखनी भी उसका कैसे उल्लेख कर सकती है? बस, एक आनन्द का बाजार-सा ही लगा हुआ था। सैकड़ों रो-रोकर पृथ्वी पर लोट रहे थे तो सैकड़ों को कम्प और पुलक हो रहे थे। सैकड़ों अपनी मस्ती में ठहाका मार कर हँसते थे तो सैकड़ों नृत्य करते हुए पागलों की तरह न जाने क्या-क्या प्रलाप कर रहे थे। श्रीमहाराज जी ने यद्यपि सबको पागल बना दिया था तो भी आप कीर्तन और नृत्य को विराम देकर मूर्तिमान शान्त रस की भाँति अत्यन्त गम्भीर भाव से सबके मध्य में विराजमान थे। इसके पश्चात् कई ग्रामीण गायकों ने गायन द्वारा अपने सद्भावों को प्रकट किया।

मध्याह्न में प्रायः बारह बजे मैंने आकर निवेदन किया कि भगवन्! भोजन तैयार है, जैसा उचित समझें आज्ञा करें। श्रीमहाराजजी उठे और हम लोगों के साथ उठे और हम लोगों के साथ भण्डार में गये। वहाँ तुलसी पत्र देकर हम सबके साथ अनेकों श्लोकों द्वारा भगवान् की प्रार्थना की। इसी समय मैंने अपने बालोचित स्वभाव

से कहा, 'महाराजजी! भोजन तो प्राय: एक हजार व्यक्तियों का है, किन्तु यहाँ भीड़ अधिक जान पड़ती है।' इस पर आप हँसकर बोले, 'कोई चिन्ता की बात नहीं। भगवान् अनन्त हैं, इसी प्रकार उनकी प्रत्येक वस्तु भी अनन्त है। यह भगवत्प्रसाद है, इसलिये यह अक्षय है। तुम निर्भय होकर सबको भगवत्स्वरूप समझते हुए बड़े प्रेम और नम्रता से प्रसाद दो। कम है या ज्यादा इसकी चिन्ता ही छोड़ दो।' ऐसा कहकर आप भण्डार में गये और अपना एक अंगोछा पूड़ियों पर डाल दिया और कहा, 'तुम्हें जितनी पूड़ियाँ चाहिये इसके नीचे से निकाल लेना, किन्तु इसे उघार कर मत देखना।'

बस, हजारों आदमियों की भीड़ भोजन के लिये बैठ गयी। दही की अनेकों मटकियाँ गाँवों से आयी हुई थीं। दही-बूरा और पूड़ी-साग की पंगत पर पंगत उठने लगीं। दोपहर के बारह बजे से रात के दस बजे तक जेवनार होती रही। किन्तु सभी सामान अक्षय हो गया। भोजन में अद्भुत रस था तथा कितना ही खा लेने पर भी शरीर में आलस्य नहीं होता था। रात्रि को ११ बजे, जब कोई और भोजन करने वाला न रहा, निजामपुर के दो-चार भक्तों के साथ हम पाँचों ने यज्ञावशिष्ट महाप्रसाद पाया। अहा! उसमें कैसा विचित्र रस था, कुछ कहा नहीं जाता। उस परम पवित्र प्रसाद को पाते ही शरीर हल्का, मन प्रसन्न और हृदय प्रफुल्लित हो उठा। यद्यपि कई दिनों से अथक् परिश्रम किया था, तथापि इस समय शरीर में थकान का नाम भी नहीं था।

सब काम से निवृत्त होकर रात्रि में प्राय: १२ बजे शयन किया। अभी आँखें झपीं ही थीं कि बादलों की घनघोर घटाएँ घिर आयीं और चारों ओर से घुमड़-घुमड़ कर मूसलाधार जल बरसने लगा। चार घड़ी में ही सारी पृथ्वी जलमयी हो गयी। लोग अवर्षण के कारण त्राहि-त्राहि कर रहे थे, सो सब ओर आनन्द और शान्ति छा गयी। सबके हृदय में भगवद्विश्वास जाग उठा तथा सभी की श्रीहरिनाम में श्रद्धा बढ़ गयी। हम लोग भी निद्रा छोड़कर जोर-जोर से प्रभाती कीर्तन करने लगे। इस प्रकार दीनबन्धु श्रीहरि ने आर्त्तजनों का दु:ख दूर कर पहले-पहल समष्टि संकीर्तन का श्रीगणेश किया।

नव वृन्दावन

नाम, रूप, लीला और धाम-ये चारों ही भगवत्स्वरूप हैं। जिस प्रकार श्रीभगवान् का रूप दिव्य-चिन्मय है उसी प्रकार उनके नाम, लीला और धाम भी विशुद्ध चित्स्वरूप ही हैं। अपने अलौकिक रूप में तो ये भगवत्स्वरूप हैं ही, इस लोक में भी जब श्रीभगवान् का अवतार होता है तो यहाँ के नाम, लीला और लीलाक्षेत्र भी उनके दिव्यमंगल विग्रह की तरह ही वन्दनीय माने जाते हैं—उनमें भी उनके दिव्य चिन्मय नाम लीला और धाम का अंश रूप से अवतरण होता है। इसी प्रकार जब श्रीभगवल्लीलाओं का अनुकरण किया जाता है तो उनमें भी भावुक भक्त साक्षात् अपने इष्टदेव की दिव्य चिन्मयी लीलाओं की ही झाँकी करता है। उसके लिये वे लीला स्वरूप और वह लीलाभूमि भी साक्षात् भगवस्वरूप ही होती है। यही प्रतीकोपासना की पद्धति है।

हमारे श्रीमहाराजजी भी कई बार भगवद्भाव से आविष्ट होकर तरह-तरह का भगवल्लीलाओं का अनुकरण किया करते थे। उनका वह अनुकरण किसी प्रोग्राम या प्रदर्शन की पूर्ति के लिये नहीं, बल्कि किसी लोकोत्तर भाव का आवेश होने पर स्वान्तःसुखाय ही होता था। इन लीलाओं का आवेश जिस क्षेत्र में होता था उसका नाम उन्होंने 'नव वृन्दावन' रक्खा था। निजामपुर, बरोरा, भिरवटी, ईसापुर और भेसरोली आदि गाँवों के बीच में प्रायः चार-पाँच मील लम्बा-चौड़ा एक बड़ा ही सुहावना जंगल है। इसमें अधिकतर ढाल के वृक्ष हैं, इसलिये यह 'ढाका' कहलाता है। थोड़े से कदम्ब, पीपल, बट और करील के भी पेड़ हैं। इनके सिवा बीच-बीच में बहुत से लम्बे, चौड़े या गोल आकार के मैदान भी हैं। ये चौक आस-पास वृक्ष एवं लताओं से घिरे हुए हैं। इनमें लम्बे चौड़े कालीनों के समान घास के सुन्दर फर्श बिछे हुए हैं तथा चारों ओर तरह-तरह के सुहावने जंगली पुष्प सुशोभित हैं। रात्रि के समय खिली हुई चाँदनी में तो इस जंगल की बड़ी ही अलौकिक शोभा हो जाती है। इसमें बीच-बीच में अनेकों छोटे-बड़े सरोवर भी है, जिनमें से एक तो प्रायः एक मील लम्बा-चौड़ा है। श्रीमहाराज जी ने उस वन के विभिन्न स्थानों के वंशीवट, केलिकदम्ब, कल्पतरु आदि सांकेतिक नाम रख दिये थे तथा वहाँ के सरोवरों को भी गदाधर कुण्ड,

दावानल कुण्ड, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, युगलविहारकुण्ड, स्नानकुण्ड एवं यमुना जी आदि विभिन्न नामों से पुकारते थे। एक जगह गाँव की सीमा पर एक गज लम्बा पत्थर पड़ा हुआ था। उसकी श्रीगोपेश्वर की भावना से खूब पूजा होती थी।

जिस समय आप हम सबको लेकर उस नवीन वृन्दावन में प्रवेश करते तो अपने में साक्षात् श्रीजी की भावना कर लेते और हम सब में गोपियों की। श्रीवन की सीमा में पहुँचते ही वे बड़े भाव से साष्टाङ्ग प्रणाम करके इस प्रकार प्रार्थना करते—'हे श्रीवन! तुम हमको दिव्यदृष्टि प्रदान करो, जिससे हम तुम्हारे स्वरूप को पहचान कर तुम्हारा वास्तविक दर्शन कर सकें। हे श्रीवृन्दावन! तुम हमें प्यारे श्यामसुन्दर के दर्शन कराओ। हमारे मन और इन्द्रियों को वह दिव्यशक्ति प्रदान करो जिससे हम तुम्हारा और तुम्हारे स्वामी श्रीकृष्ण का दर्शन कर सकें।' आपकी यह प्रार्थना क्या थी मानो जादू था—वंशी की दिव्य झनकार थी। उस समय हम सबके हृदय एकदम जाग्रत होकर एक आनन्द साम्राज्य में प्रवेश कर जाते थे। इस वृन्दावन के पथप्रदर्शक या मधुमंगल थे पण्डित जौहरीलाल जी। आप इनसे प्रार्थना करते—'हे वृन्दावन के देवता! तुम हमें ऐसी योग्यता प्रदान करो कि हम इस वन में प्रवेश करने के अधिकारी बन सकें।' कभी कहते 'मधुमंगल जी! तुम श्रीकृष्ण के प्यारे सखा हो। तुम अपने मित्र से हमारी सिफारिश कर दो कि वे हमें दर्शन देकर कृतार्थ करें।' इसी प्रकार हुलासी जी इस लीला में श्रीकृष्ण बनते थे। कभी-कभी दानलीला होती थी। उस समय श्रीकृष्ण अपने सखाओं को साथ लेकर गोपिकाओं के सहित श्रीराधिका जी का मार्ग रोककर खड़े हो जाते और इस प्रकार संवाद होता—

श्रीकृष्ण—अरी! तुम कौन हो? तुम बड़ी ढीठ हो, जो इस वन के माली की आज्ञा लिये बिना फूल तोड़ रही हो। क्या तुम्हें कुछ भी भय नहीं है? हम इस वन के राजा हैं। यदि तुम्हें फूल तोड़ने ही हैं तो पहले हमारा दान दे दो, फिर हमारी आज्ञा से फूल तोड़ना।

ललिताजी—अजी! तुम कौन हो हमारी प्यारीजी को फूल तोड़ने से रोकने वाले? यह वृन्दावन क्या तुम्हारे बाबा का है? इस सारे ब्रज में तो हमारे बाबा की बाँह की छाँह में बास करते हैं। फिर बताओ लाल जी! यह बन तुम्हारा कैसे हो गया?

मधुमंगल जी—अरी ढीठ ग्वालिनी! तू बहुत बढ़-बढ़कर बात कर रही है। तू जानती नहीं, हमारे सखा श्रीकृष्ण कौन हैं? वे राजपुत्र हैं तू इनका तिरस्कार करती है! ये इस वन के राजा हैं। इनकी आज्ञा के बिना तुम्हें इस वन में फूल तोड़ने का क्या अधिकार है? खबरदार, जो अब आगे कदम रखा।

श्रीजी—ललिते! इस बामन के छोकरे से बकवाद करके तू वृथा अपना समय नष्ट करती है। हम लोगों का काम ऐसे धूर्तों से बात करना नहीं है।

[यह कहकर श्रीजी दूसरी कुञ्ज की ओर चली जाती हैं और श्रीकृष्ण अपने सखाओं के सहित कुञ्ज की आड़ में छिप जाते हैं। तब मधुमंगल हल्ला मचाता है तो श्रीकृष्ण अपने हाथ से उसका मुँह ढाँपकर चुपके-से कहते हैं, 'अरे मूर्ख! जरा छिपकर प्यारीजी के फूल तोड़ने की शोभा देखने दे।' तब सभी छिपकर देखते हैं। श्रीजी लवंगलता के पुष्प तोड़ती हैं, तो एक बूढ़ी-बड़ी सखी कहती है।]

बूढ़ी-बड़ी—प्यारीजी! लवंगलता के पुष्प मत तोड़ो। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि इस लता से श्रीकृष्ण को बहुत प्यार है। यदि तुम नहीं मानोगी तो अवश्य श्रीकृष्ण के हाथ पड़ जाओगी।

विशाखा—प्यारी जी! यहाँ से जल्दी चलो। मुझे तो यहाँ बड़ा भय लगता है।

श्रीजी—विशाखाजी! भय किस का? यह वन तो हमारा ही है।

ललिताजी—हाँ, हाँ प्यारी जी! वन तो तुम्हारा ही है; फिर भय किसका? तुम खूब-खूब आनन्द से पुष्प-चयन करो।

[इतने ही में एक भ्रमर आकर प्यारीजी के मुख पर मँडराने लगता है। प्यारीजी बार-बार उस भ्रमर को उड़ाती हैं। किन्तु यह बार-बार उधर ही आता है। इस समय प्यारीजी के मुख की अलौकिक शोभा हो रही है। यह देख कर मधु-मंगल जोर-जोर से हँसने लगता है। तब श्रीकृष्ण उसका मुँह अपने हाथ से ढाँप कर कहते हैं—]
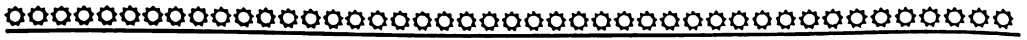
श्रीकृष्ण—चुप मूर्ख! तनिक प्यारीजी के मुख की शोभा तो निहार लेने दे।

बूढ़ी-बड़ी—अरी अबोध बालिकाओ! तुम मेरी बात नहीं मानती। देखो, तुम अवश्य पछताओगी। मुझे तो यहाँ वन्य पशुओं का बड़ा भय जान पड़ता है। उनमें एक तो मतवाला हाथी और एक दुलत्ती मारने वाला गधा भी है।

मधुमंगल—(बिगड़कर) बस, बहुत सहन कर लिया, अब और सहन नहीं किया जा सकता। तू तो निरा मूर्ख ही है। क्या सुना नहीं वह बूढ़ी ग्वालिनी हमें वन्य पशु बता रही है। उसने तुझे मतवाला हाथी कहा है और मुझे गधा। अरे तू तो एकदम ना समझ है, इसी से गो-लोकपति ग्वालिया गँवार बना है। मैं तो तपस्वी ब्राह्मण हूँ। (प्रकट होकर) अरी ओ गँवारी ग्वालिनी! तुझे आँखों से दिखायी और कानों से सुनायी नहीं देता, फिर भी तेरा बड़ा दुःसाहस है जो त्रैलोक्याधिपति को वन्य पशु बता रही है।

बूढ़ी-बड़ी—अरे ब्राह्मण के छोकरे। चुप रह। नहीं तो मैं अभी राजा कंस के पास जाकर उसके दूतों से तुझे और तेरे त्रैलोक्याधिपति को पकड़वा दूंगी।

(बस, सब सखा मिलकर सखियों को घेर लेते हैं और श्यामसुन्दर श्रीजी का आँचल पकड़ लेते हैं। परस्पर नयनों का मिलन होता है। बूढ़ी-बड़ी प्यारीजी के आंचलसे सब फूल लेकर श्रीश्यामसुन्दर पर डाल देती हैं और प्यारीजी का आंचल छुड़ा-कर बड़-बड़ाती हुई चल देती है।)

इसी तरह अनकों प्रकार की अलौकिक रसमयी लीलाएँ हुआ करती थीं। कभी आप श्रीकृष्ण के भाव से भावित होते और कभी अपने में श्रीकिशोरीजी की एक तुच्छ दासी या मंजरी की भावना करके इधर-उधर भ्रमण करते। कभी कहीं बैठकर या घूमते हुए 'अच्युतं केशवं रामनारायणम्' अथवा 'गोपीवल्लभ गोपीनाथ' या 'राधेकृष्ण जय कुंजबिहारी। मुरलीधर गोवर्धन-धारी' इत्यादि किसी ध्वनि का कीर्तन करने लगते। जिस समय हृदय में जैसा भाव जाग्रत हो जाता उस समय वैसी ही किसी नवीन ध्वनि की सृष्टि हो जाती। इसके आचार्य थे पं० जौहरी-लाल। उस समय आज-कल की तरह विशेष धूमधाम के कीर्तन नहीं होते थे। केवल करताली

बजाकर पाँच-सात आदमी ही इकट्ठे होकर कीर्तन करने लगते थे। परन्तु उन कीर्तनों में कुछ वास्तविकता थी। बस, नाम मुख पर आया कि इष्ट-मूर्ति हृदयों-में नाचने लगी, श्रीमहाराजजी की कण्ठसुधा और करतालीमें तो साक्षात् वंशी की ही मधुरिमा भरी हुई थी। कीर्तन आरम्भ होते ही सब लोग किसी राज्य में प्रवेश कर जाते थे और स्वयं ही सबके हृदयों में किसी दिव्य लीला का स्फुरण हो जाता था। इस प्रकार स्वयं ही आवेश में आकर सब लोग कठपुतली की तरह कोई लीला आरम्भ कर देते थे।

अजी ! उसे लीला कहें या साक्षात् रस का भण्डार। किस प्रकार उसका वर्णन करें ? बस, 'सो जाने सपनेहु जिन देखा।' कभी संयोगलीला हो रही है तो अपने-अपने भाव के अनुसार हम सब गोपीभाव से भावित होकर श्रीकृष्ण-विरह में रोने लगते तो इतने रोते कि कुछ ठिकाना नहीं। सिसक-सिसककर मानो प्राण निकल जायेंगें। पीछे स्वाभाविक ही किसी के हृदय में भाव जाग्रत होता और वह सन्देशवाहक के भाव से भावित होकर श्रीश्यामसुन्दर का सन्देश लाता और हम सबको आश्वासन देता कि श्रीकृष्ण आ रहे हैं। अभी, थोड़ी देर पहले जो किशोरी जी के भाव से भावित होकर रुदन कर रहे थे वे ही अब श्रीश्यामसुन्दर की तरह त्रिभंगललित होकर बंशी बजाने का भाव प्रदर्शित करने लगते। तब हम सब गोपीभाव से भावित हो उनकी ओर घूम-घूमकर 'गोपीवल्लभ गोपीनाथ' का कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगते। बस, ऐसा रंग जमता कि सब आनन्दसागर में गोता खाने लगते। रोमाञ्च, कम्प, स्वेद आदि अष्ट सात्त्विक भावों का उद्रेक हो जाता तथा आनन्दातिरेक से कोई पृथ्वी पर लोटने लगता, कोई किसी को आलिंगन करता और कोई किसी के चरण पकड़कर अपने हृदय पर रख लेता। बस, एक आनन्द की हाटसी लग जाती। जब कुछ देर बाद सबको चेत होता तो बड़ी लज्जा-सी लगने लगती।

अब, जो थोड़ी देर पहले खेल में चंचल शिरोमणि थे वे ही अत्यन्त गम्भीर बन जाते, मानो शान्त रस के भण्डार हैं। सामान्यतया तो आप निरन्तर नासिकाग्र दृष्टि ही रखते थे, कभी किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते थे। रास्ते में चाहे बीस कोस चले जायँ कभी दायें-बायें या पीछे मुड़कर नहीं देखते। अतः अब आप अपनी इसी शान्त मुद्रा में आ जाते। कुछ देर आँखें बन्द किये सिद्धासन या वीरासन
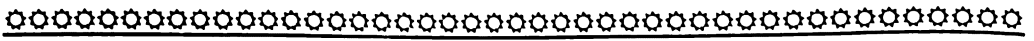
से बैठे रहते। और सब लोग भी आस-पास ध्यानावस्थित की तरह बैठ जाते। उस समय सभी आनन्द-समुद्र में सन्तरण करने लगते। भीतर-बाहर सभी को श्रीश्यामसुन्दर के दर्शन हो रहे हैं। भक्तवर हुलासी जी तो वृन्दावन में प्रवेश करते ही एकदम सुधबुध भूल जाते थे। उन्हें तो लीला समाप्त होने पर ही चेत होता था। और सब भी अपने-अपने भावानुसार आनन्द में मग्न हो जाते थे। ऐसा तो एक भी व्यक्ति नहीं था जिसे इतने समय तक अपना घर-बार याद आता हो। सभी दिव्यातिदिव्य आनन्द का अनुभव करते थे। कभी श्रीकृष्ण के दर्शन कर रहे हैं और वन के फूल, मयूरपिच्छ एवं पल्लवादि तोड़कर उनका वृन्दावनोचित शृंगार कर रहे हैं। कभी दधि बेचने की स्फूर्ति हुई तो श्यामसुन्दर दधि का दान माँगने लगे, और इसी मिससे परस्पर प्रेमालाप एवं प्रेम-विवाद खड़ा हो गया। उस समय हम सब भी लीला के अनुरूप हाव-भाव प्रकट करके उसमें सहयोग प्रदान करते थे। तथा दूसरे लोग जय-जयकार करते हुए श्रीहरिनाम घोष करते थे। उन अद्भुत दिव्य रसमयी लीलाओं को याद करने से आज तो हृदय विदीर्ण होता है।

वाह रे लीलानायक! तेरा वह अद्भुत खेल! कभी वृक्षों पर चढ़कर बारी-बारी से गान कर रहे हैं। कभी एक-दूसरे की नकल करके खूब अट्टहास कर रहे हैं। कभी वृक्षों पर बन्दरों की तरह डाली से दूसरी डाली पर छलांग मारते हैं। कभी एक दूसरे को पकड़ने की चेष्टा करते हैं। कभी कोई किसी की टाँग पकड़ कर लटक जाता है तो कोई किसी का वस्त्र उठाकर फेंक देता है। कभी आँख-मिचौनी, कभी कबड्डी और कभी अन्यान्य प्रकार की बालोचित चेष्टाएँ हो रही हैं। किन्तु इन खेलों में किसी को भी संसार का पता नहीं रहता था, सबके हृदयों में प्रेम का दिव्य चिन्मय राज्य ही जाग्रत हो जाता था। सर्वत्र अनन्त आनन्द की ही अनुभूति होने लगती। फिर सब लोग उठते और आगे श्रीमहाराजजी तथा पीछे हम सब लोग चुप-चाप वहाँ से चल देते। कोई एक शब्द भी न बोलता। और फिर सभी अपने-अपने स्थानों को चले जाते।

इस प्रकार नित्य नयी-नयी लीलाएँ होतीं। कीर्तन का रंग भी दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा। बालक, स्त्री कृषक सब अपना-अपना काम-काज करते हुए भी भगवन्नाम उच्चारण करते रहते। जातकर्म से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त कोई भी संस्कार
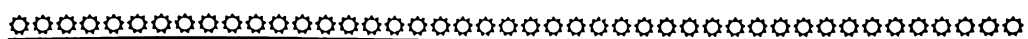
हो उसमें प्रधानता श्रीहरिनामसंकीर्तन की ही रहने लगी। सचमुच जो भी इस भगवन्नाम कीर्तन की शरण लेता है उसके त्रिविध ताप नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, वह सुर-मुनि-दुर्लभ श्रीकृष्ण प्रेम को भी प्राप्त करके कृत्-कृत्य हो जाता है।

भावराज्य में

श्रीमहाराजजी उस समय बड़ी मस्ती में रहा करते थे। कभी-कभी तो कुरता भी उतारकर फेंक देते और कभी जंगल में कौपीन भी निकाल देते थे। कभी वस्त्रों के सहित ही किसी कुण्ड में 'जय यमुने।' कहकर कूद पड़ते। जंगल में जो कोई मिल जाता उसे ही साष्टांग दण्डवत् करते और अत्यन्त दीनभाव से प्रार्थना करते कि भैया! मैं भवसागर में गोते खा रहा हूँ, कृपा करके मुझे यह बताओ कि भगवान् कहाँ मिलेंगे ? कभी-कभी तो उसके आगे बिलख-बिलखकर रोने लगते, मानो विरहसागर में डूबे हुए हों। वह बेचारा इनकी लीलाओं को क्या समझे। चक्कर में पड़ जाता और जो भी मन में आता कहकर इन्हें आश्वासन देता। कभी श्रीराधिकाजी के भाव से भावित होकर जो भी मिलता उसके पाँव पकड़ कर प्रार्थना करते कि तुमने प्यारे श्यामसुन्दर देखे हैं तो बताओ वे किधर गये हैं। कभी किसी वृक्ष को श्यामसुन्दर समझकर उसे आलिंगन करते और कभी हुलासीजी को श्यामसुन्दर समझकर जानकर उनके साथ प्रेमालाप करते। इसी प्रकार आपके हृदय में निरन्तर नयी-नयी भावतरंगें उठती रहती थीं।

कभी-कभी हम आपस में विचार करके कुछ लीलाभिनय भी किया करते थे। किन्तु उस अभिनय में वेश-भूषा कुछ नहीं होती थी, केवल भाव ही भाव रहता था। लीला आरम्भ होने से पहले आप सूत्रधार के रूप में हाथ में लाठी लेकर उछलते-कूदते बड़े आवेश से कहते, 'सावधान! मैं गो-लोक का कोतवाल हूँ। अभी गो-लोक से आ रहा हूँ। देखो, सब मिलकर श्रीकृष्ण का भजन करो, श्रीहरिनाम गान करो तथा श्रीकृष्ण लीलाओं का अनुकरण करके प्रेम से ही संसार-सागर से पार हो

जाओ।' इस प्रकार की बहुत-सी बातें कहकर सबके हृदयों में एक दिव्य मधुर भाव जाग्रत कर देते थे। उसके पश्चात् स्वयं ही कोई लीला आरम्भ हो जाती थी। उसमें यद्यपि ऊपर का आडम्बर कुछ भी नहीं था, केवल भाव का ही प्राधान्य होता था, तथापि सब लोग आनन्द-सागर में गोते खाने लगते थे। आपके दो-चार शब्दों से अथवा संग या दृष्टि मात्र से ही सबके हृदयों में भाव की धारा प्रवाहित होने लगती थी। उसका इस समय वाणी से क्या वर्णन करें, उसे तो हृदय ही जानता है।

एक दिन बेलबाबा में विभीषण शरणागति की लीला हुई। आप श्रीरामजी बने, मैं विभीषण और मेरे भाई छेदालाल जी रावण बने। अजी! वह तो सचमुच की लीला हो गयी। जिस समय रावण की लात खाकर विभीषण चला उस समय किसी भावतरंग ने आकर मुझे पागल बना दिया। सारी रात मेरी मनोरथों की कल्पना चलती रही और वहीं लीला का विराम हो गया। मैं प्रायः मूर्च्छित हो गया था और वह पागलपन कई दिनों तक मेरे दिमाग से नहीं निकला।

इसी तरह कभी-कभी आपस में खिलवाड़-सा करते हुए ही आप में किसी भगवल्लीला का प्राकट्य हो जाता था। आप श्रीश्यामसुन्दर की तरह घर-घर जाकर माखन-रोटी तथा दूध दही आदि छीन-छीनकर खाते थे। बारोरा में निरबल नाम के एक वृद्ध अहीर रहते थे। उनकी वृद्धा पत्नी का आपके प्रति बड़ा स्नेह था। आप भी उसे 'माँ' कहकर सम्बोधन करते थे। कभी-कभी तो सेबेरे ही आप उसके घर पहुँच जाते और कहते, 'माँ! मुझे बड़ी भूख लगी है।' वह कहती, 'बाबा! बैठो, मैं अभी गरम रोटी बनाती हूँ। आप * अलाव के पास बैठ जाते और कहते,' 'मैं तो बासी रोटी खाऊँगा।' बेचारी लाचार होकर मक्का या बाजरे की बासी रोटी अलाव पर सेकती और कुछ दही में शक्कर डालकर दे देती। परन्तु ये हजरत इस तरह कब मानने वाले थे। ये तो पहले से ही लूटकर खाने की ताक में आये थे। अतः रूठ जाते और कहते, 'मैं तो यह दही नहीं खाऊँगा, मुझे तो सारे घर का माखन और दही की जाली चाहिये।'

* गाँवों में शीतनिवारण के लिये ग्रामीण लोग कुछ कूड़ा-कचरा जला लेते हैं, उसे 'अलाव' कहते हैं।
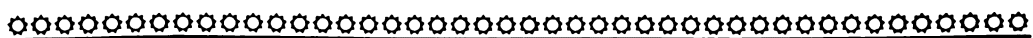
तब वह मजबूर होकर दही की मटकी उठा लाती। आप उसकी सब जाली निकाल कर खा जाते और स्वयं ही उसके घर में घुसकर दूसरी हांड़ियों में से मलाई निकाल-निकाल चट कर जाते तथा कुछ बालकों को भी बाँट देते। कभी आप आये और बूढ़ी माँ घर न हुई तो आवाज देकर घर में घुस जाते और जो कुछ दही माखन या शक्कर मिलता उसे स्वयं खाते और बाकी बालकों को बांटकर चम्पत हो जाते। कभी दो-चार दिन आप न आते तो बूढ़ी माँ स्वयं ही माखन, रोटी, दही और खीर आदि लेकर पण्डित जयशंकर जी के घर पर पहुँच जाती और दो-चार खरी-खोटी सुनाती। वास्तव में उसमें तो साक्षात् यशोदा मैया का-सा ही प्रेम था।

ऐसे ही प्रेमी भक्त डालचन्द और उनकी पत्नी-धम्मनियां थे। धम्मनियां का प्रेम भी अलौकिक था। वह आपके आगे बहुत-सा भोजन, जिसे दो-चार आदमी खा सकें, परोसकर लाठी लेकर खड़ी हो जाती और कहती, 'बाबा! यह सब खाना पड़ेगा, नहीं तो लाठी से खबर लूंगी।' तब आप भयवश कुछ खाते, कुछ बाँटते और फिर बहुत अनुनय-विनय करने पर छुट्टी पाते। कभी-कभी भावावेश में आकर घर का सारा दूध-दही और माखन-रोटी चट कर जाते और उससे कहते, 'और ला।' वह पड़ोसी के घर से और दूध-दही लेने जाती तो आप भाग जाते।

इसी तरह एक अंगनलाल ब्राह्मण भी बड़े प्रेमी थे। उनके घर दूध बहुत होता था, परन्तु वे थे लोभी। वे तो आपको जाली या माखन थोड़ा ही खिलाना चाहते, किन्तु आपका चन्द्रावली की भाँति उनसे खूब झगड़ा होता। आप उनका सारा दूध, दही, माखन घी और रोटी सचमुच ही कुछ खाते कुछ बाँटते और बाकी पृथ्वी पर गिरा देते। वे झगड़ा तो बहुत करते, किन्तु लूट होने पर प्रसन्न भी खूब होते तथा इन्हें पकड़कर कहते, 'इतना खा कर अब कहाँ जाते हो, तनिक मेरे आंगन में कीर्तन और नृत्य तो करो।' बस, फिर क्या था? तुरन्त कीर्तन आरम्भ हो जाता। श्रीमहाराजजी ने जहाँ दीर्घ प्रणव का उच्चारण किया मानो साक्षात् वंशी बज उठी। मानो सभी के चित्तों को बलात् अपनी ओर खींच लिया और सभी सुध-बुध बिसर गयी। उसके पश्चात् दो-चार बार दीर्घस्वर में 'राम' नाम का उच्चारण होता फिर 'हरि हरि' की ध्वनि होने लगती। उस कीर्तन में एक अद्भुत रस का आस्वादन होता था। मध्य में

श्रीमहाराज जी नृत्य करते थे और उसके आस-पास हम लोग तथा गाँव के अन्य स्त्री, पुरुष एवं बालक कूद-कूद कर नृत्य करने लगते थे।

कहते हैं, श्रीभगवान् की आजानु (घुटनों तक लम्बी) भुजाएँ हैं। परन्तु उस दिन अंगनलाल के आँगन में तो भक्तों ने वे प्रत्यक्ष देखीं। आप कीर्तन में पहली ध्वनि में तो जोर-जोर से करताली बजाते थे, फिर दूसरी ध्वनि में दोनों भुजाएँ ऊँची उठाकर नृत्य करने लगते थे। उस दिन तो ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् श्रीगौरसुन्दर ही श्रीवासपण्डित के प्राङ्गण में नृत्य कर रहे हैं। आपकी दिव्य गौर मूर्ति की ऐसी शोभा हो रही थी मानो एक सुवर्ण की पुतली ही भावावेश में नृत्य कर रही है। नृत्य करते समय श्रीचरणों में एक तेजोमयी लालिमा निर्झरित होती थी। उससे श्रीचरणों के चारों ओर एक विचित्र मंडल-सा बन जाता था। कभी-कभी ऊपर को उछलते समय ऐसा प्रतीत होता था मानो दो-चार मिनट तक आप पृथ्वी से एक बालिश्त ऊपर ही नृत्य कर रहे हैं। इस अद्‌भुत दृश्य को देखकर भक्तजन पागल हो जाते थे। कभी विशेष भाव आने पर ऐसा भी अनुभव होता था मानो आप प्रफुल्लित कमल के समान खुले हुए नेत्रों से भक्तों की ओर करुणापूर्वक देखकर उन पर अमृत की वर्षा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति कितनी देर रहे इसका कोई नियम नहीं था।

एक दिन पण्डित अंगनलाल के आँगन में नृत्य करते हुए श्रीमहाराजजी भुजाएँ ऊँची उठाये उछल रहे थे। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि जब भुजाएँ ऊपर को जाती हैं तब उनका रंग एकदम श्याम हो जाता है, वे बढ़कर सारे कीर्तन मण्डल पर आच्छादित हो जाती हैं तथा उनमें से एक दिव्य मधुर कान्ति और सौरभ निकल कर सब भक्तों को विचित्र भाव रंग में डुबो रहा है। उस दिन कीर्तन का रंग भी खूब जमा। ऐसा एक भी मनुष्य नहीं था जो प्रेम से पागल न हो गया हो। कोई जोर-जोर से रो रहा था, कोई खिलखिला कर हँस रहा था, कोई पृथ्वी पर लोट रहा था, कोई किसी का गाढ़ आलिंगन किये हुए था, कोई किसी के गले का हार बना हुआ था और कोई किसी के चरणों की रज ही सिर पर धारण कर रहा था। अजी! क्या कहें? उस समय तो एक अद्‌भुत प्रेम की हाट-सी लगी हुई थी। अथवा यों कहिये कि

विचित्र भाव-पुष्पों से भरी प्रेम की फुलवारी ही महँक रही थी और साक्षात् प्रेमदेव अपनी दृष्टिसुधा से सींच रहे थे।

आजकल के संकीर्तन में बड़ा साज-बाज रहता है और बहुत परिश्रम किया जाता है तब कुछ क्षण के लिये चित्त-एकाग्र होता है, किन्तु उस समय तो एक अद्भुत चमत्कार था। जहाँ श्रीमहाराजजी के मुख से ओंकार का उच्चारण हुआ कि सभी के हृदय भावातिरेक से क्षुब्ध हो उठे। मानो श्रीश्यामसुन्दर का वंशीरव सुनकर सब गोपिकाएँ सुध-बुध भूलकर व्याकुल हो गयीं। श्रीगौर-चरित्र में सुना है कि जब श्रीगौरचन्द्र और प्रभुपाद श्रीनित्यानन्दजी का मिलन हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानो चिरकाल से बिछुड़े हुए दो बन्धु ही मिले हों। उस समय बलरामस्वरूप श्रीनिताई ने अपने कनिष्ठ-भ्राता गौररूप कन्हाई से प्रेमातिरेक के कारण गद्गद् कण्ठ होकर साँकेतिक भाषा में पूछा था।

'क क क क कान्हा तुम्हीं हो कारे।
ब्रज को वेष मुकुट पीरो पट वंशी कहाँ बिसारे?'

इस प्रश्न को सुनकर श्रीगौरसुन्दर ने उत्तर दिया—

'भ्रात मोहि पूछत कहा जान।
ब्रज के वेष बजत ही वंशी नदिया खेल हरी गुनगान॥
ब्रज के वेष मुकुट पीरो पट यहाँ डोर कौपीन विधान।
दौरा-दौरी खेल हो ब्रज को नदिया खेल धरिण बिलुठान॥'

कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् जिस अवतार में जैसी आवश्यकता समझते हैं उसमें उसी प्रकार अपनी अचिन्त्य लीला विस्तारिणी विशुद्ध चिन्मयी आल्हादिनी शक्ति का प्रयोग करते हैं। इसी से ये कहीं धनुष की टंकार के रूप में, कहीं हुँकार के रूप में, कहीं वंशीनाद के रूप में और कहीं श्रीहरि ध्वनि के रूप में प्रकट होती हैं। अत: जान पड़ता है इस समय तो वे श्रीमहाराजजी के वदनारविन्द से झरते हुए श्रीहरिनामामृत के रूप में ही आविर्भूत हुई हैं। बस, जहाँ आपके श्रीमुख से दीर्घ प्रणव का घोष हुआ कि सब भक्त गोपीभाव से भावित हो गये। फिर तो

'ब्रजेर जे महारास सेइ कीर्तन विलास' की कहावत चरितार्थ हो जाती। सभी प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य करने लगते। उस समय नृत्य स्वाभाविक होता था। आजकल तो नृत्य-गानादि के द्वारा आनन्द का आविर्भाव किया जाता है, किन्तु उस समय तो हृदय आनन्द से भर जाने पर ही नृत्यगान आरम्भ होता था। फिर तो ऐसे हाव-भाव कटाक्ष होते थे कि देखने वालों के चित्त भी बलात्कार से आकर्षित हो जाते थे। ऐसा जान पड़ता था मानो सभी आनन्द समुद्र में गोते खा रहे हैं। आनन्द की तरंग पर तरंग उठ रही हैं, कुछ ठिकाना नहीं कब अन्त होगा। कभी-कभी तो सारी रात निकल जाती और कीर्तन का विराम ही न होता। फिर किसी प्रकार कीर्तन बन्द हुआ, किन्तु आश्चर्य यह कि किसी को थकान का लेश भी नहीं। एक बार मुझे कई दिनों तक ज्वर आता रहा, किन्तु रात्रि के समय कीर्तन किसी दिन नहीं छूटा। उस समय कीर्तन से पहले तो मालूम होता मानो अब गिरा, परन्तु फिर तो पागल हो जाता और छः सात घण्टे कीर्तन करने पर भी लेश मात्र थकान न होती। उस समय हम सभी लोगों की ऐसी स्थिति थी कि मरना, जीना, सुख-दुःख, लाभ-हानि, पुण्य-पाप, राग-द्वेष आदि सभी द्वन्द चित्त से स्वाभाविक ही निकल गये थे। चित्त निरन्तर भगवद्भाव से भावित होकर उन्मत्तप्राय रहता था। किसी को किसी प्रकार की सांसारिक चर्चा नहीं सुहाती थी। वह, निरन्तर श्रीमहाराजजी की चर्चा अथवा कथा-कीर्तन में ही लगे रहते थे।

कभी-कभी संकीर्तन में अद्भुत चमत्कार भी होते थे। संकीर्तन हो रहा है और अकस्मात् किसी को दिव्य नूपुरों की ध्वनि सुनायी देने लगी। वह ध्वनि कभी किसी एक भक्त को सुनायी देती और कभी सभी को। कभी एकदम दिव्य सुगन्ध फैल जाती; उससे सभी उन्मत्त हो जाते, सबको दिव्य आनन्द का अनुभव होता और सभी उछल-उछल कर नृत्य करने लगते। संकीर्तन में सैकड़ों मनुष्य होते थे, किन्तु किसी को एक-दूसरे का अनुसन्धान नहीं रहता था। उसी समय किसी भक्त को श्रीमहाराजजी के दिव्य-मंगल विग्रह में श्रीकृष्ण के दर्शन होते और वह पागल हो जाता तथा अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करने लगता। कभी जोर-जोर से हँसता, कभी रोने लगता और कभी तरह-तरह का प्रलाप करने लगता। वह प्रलाप कभी सख्यभावोचित, कभी मधुर-भावोचित और कभी दास्यभावोचित होता। कभी किसी

भक्त को श्रीमहाराजजी से पृथक् श्रीराम, श्रीकृष्ण अथवा श्रीशिवरूप में भगवान के दर्शन होते और वह आनन्द में विह्वल हो जाता।

श्रीमहाराजजी की आयु उस समय प्राय: पैंतीस साल की होगी। क्या कहें उस समय का रूप लावण्य। दिव्य गौरवर्ण, नख से शिखापर्यन्त मानो सांचे में ढला हुआ अत्यन्त सुगठित दीर्घ कलेवर, आजानुबाहु और मुख पर दिव्य प्रकाश की अद्‌भुत छटा। संकीर्तन के भावावेश में वह और भी शतगुण चमक उठती थी। ऐसा जान पड़ता था मानो चारों ओर किरणें छिटक रही हैं। उस समय का आनन्द हृदय ही जानता है। वाणी वर्णन करने में असमर्थ है। मालूम होता था मानो साक्षात् भगवद्‌भाव ही धरातल में उतर आया है।

ग्रामीणों का प्रेम

श्रीमहाराजजी ने पंजाब प्रान्त के एक सम्भ्रान्त और सुशिक्षित कुल को अपने आविर्भाव से अलंकृत किया था। स्वयं भी अंग्रजी की उच्चकोटिकी शिक्षा प्राप्त की थी। आपकी आध्यात्मिक सम्पत्ति भी असाधारण थी। फिर भी आपने अपना लीलाक्षेत्र बनाया श्रीगंगाजी का ऊबड़-खाबड़ खादर और आपके लीलापरिकर हुए सर्वथा अशिक्षित या अर्धशिक्षित ग्रामीण लोग जिनमें अधिकतर अहीर जाति के ही व्यक्ति थे। यह आपकी अहैतुकी दीनवत्सलता नहीं, तो क्या थी ? ऐसे करुणावरुणालय प्रभु को पाकर वहाँ के भोले-भाले ग्रामीण भी अपने को कम भाग्यवान् नहीं समझते थे। वे लोग घर-बाहर का सब प्रकार का काम-काज करते हुए भी आप ही की चर्चा करते रहते थे। उन्हें निरन्तर आप ही की स्मृति बनी रहती थी। और इस लालसा से कि कब सायंकाल हो और आपके साथ नाच-कूदकर कीर्तन करें, बराबर घड़ियाँ गिनते रहते थे। आपका यह सायंकालीन संकीर्तन का कार्यक्रम बहुत दिनों तक निजामपुर में ही रहा था। जहाँ सूर्यास्त हुआ कि स्त्री, पुरुष और बालक घर का सब धंधा छोड़कर आपकी प्रतीक्षा में गाँव के बाहर इकट्ठे हो जाते और उत्सुक नेत्रों से मार्ग की ओर निहारते हुए हरि-नाम उच्चारण करते रहते।

आप ठीक निश्चित समय पर गवां की ओर से मृतब-सा गौ की भांति दौड़ते हुए पहुँचते। आपको देखते ही 'श्रीहरि भगवान् की जय' की ध्वनि से आकाश गूँज उठता। बस, आगे-आगे आप तथा पीछे सब लोग हेतराम के दालान पर पहुँचते और कीर्तन आरम्भ हो जाता। अब कीर्तन में ढोलक और एक दो मंजीरों की जोड़ियाँ भी बजने लगी थीं। ढोलक बजाने वाले थे कल्याण कारीगर, जो हेतराम के दालान पर ही रहते थे। ये तीन-तीन घण्टे तक बड़े प्रेम से ढोलक बजाते थे।

उस समय एक बार कीर्तन आरम्भ होने पर तीन घंटे में ही विराम होता था। ये तीन घण्टे तीन पल की तरह निकल जाते थे। उस आनन्द में थकान तो क्या और भी अधिक उत्साह बढ़ जाता था। कहा भी है—

'प्रबलं बलवद्भ्योऽपि दुर्बलानां परं बलम्।
सम्बलं भवपन्थानां हरेर्नामैव केवलम्॥' *

फिर पन्द्रह मिनट का विराम होता। उसमें दो चार बालक मिल कर कोई सामान्य-सा पद गाते थे। किन्तु प्रेम के कारण उनके कण्ठ से मानो साक्षात् अमृत ही झरता था। फिर दूसरा कीर्तन आरम्भ होता। यह तो साक्षात् मधुरिमा का भण्डार ही होता था। इसमें जो अद्भुत रस प्रवाहित होता था उसमें अनेकों भाग्यवान् मतवाले हो जाते थे। कभी-कभी इस कीर्तन में किसी लीला का आविर्भाव हो जाता था दस-पाँच कीर्तनकारों में ऐसा आवेश होता कि वे स्वयं ही लीला करने लगते थे। उन्हें अपना कोई होश नहीं रहता था। उनकी सारी चेष्टाएँ पर-प्रेरित सी होती थीं। मानो कोई दिव्य प्राणी ही उनमें आविष्ट होकर वह लीला करते थे। एक अद्भुत चमत्कार यह था कि लीला से कीर्तन के तालस्वर में कोई अन्तर नहीं आता था। ऐसा जान पड़ता था मानो एक ही व्यक्ति बोल रहा है और एक ही करताली बज रही है। श्रीमहाराजजी का स्वर-ताल की एकता पर सदा से ही बहुत जोर रहा है। आप कहा करते हैं कि स्वर-ताल की एकता ही भगवान् का स्वरूप है। वह एकता प्रेम में तो स्वयं हो जाती और वैध कीर्तन में प्रयत्नपूर्वक करनी पड़ती है।

*** केवल यह श्रीहरि का नाम ही बलवानों से बलवान् है, दुर्बलों का बड़ा भारी बल है और संसार-मार्ग के पथिकों का एकमात्र पाथेय (तोशा) है।**

बस, इस आनन्द ही आनन्द में रात के बारह बज ज़ाते। समय पूरा हो गया, परन्तु उत्साह और भी सौ-गुना बढ़ गया। श्रीमहाराजजी कीर्तन समाप्त कर 'हरि बोल' बोलते और दण्डवत् करके चल देते। हम लोग भी कई आदमी पीछे-पीछे चलते, किन्तु ग्राम से बाहर होते ही वे हम सबको छोड़कर हिरन की-सी चौकड़ी भरते गवाँ की ओर भाग जाते।

हम सब कुछ खा-पीकर विश्राम करने लगते। परन्तु पागलों का विश्राम ही क्या ? चार घड़ी के बाद ही आँखें खुल जातीं। बस, शौच स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होते और प्रातः काल ही बरोरा पहुँच जाते। मन की बड़ी ही अजीब हालत रहती—

'मन में लागी चटपटी, कब निरखूं घनश्याम।
नारायण भूली सबै, खान-पान विश्राम॥'

कभी-कभी तो कीर्तन के बाद बड़ी रुलाई आती। परन्तु 'मैं सारे गाँव का कुलगुरु हूँ' यह अभिमान खुलकर रोने भी न देता। बस, मन मसोस कर रह जाता। जब किसी प्रकार वेग न रुकता तो उसी समय वहाँ से चुपचाप उठ कर गवाँ की ओर भागता और जोरों से रोता-पीटता, लोट-पोट होता पागल की तरह लाला किशोरीलाल के बगीचे में श्रीमहाराजजी की कुटी पर जा पड़ता। माघ का महीना, घोर शीत, किन्तु मुझे इसका कुछ भान ही न होता। एक सामान्य-सा कुर्ता पहने नंगे सिर और नंगे पांव ही चला जाता। एक घण्टे का मार्ग तय करने में प्रायः तीन घण्टे लग जाते।

कुटी पर पहुँचकर खूब खुलकर गला फाड़कर रोने लगता। श्रीमहाराजजी ध्यान छोड़कर बड़ी व्यग्रता से आते और सिर पर हाथ फेर कर मुझे धैर्य बँधाते। उस समय मुझे जो अपूर्व आनन्द मिलता उसे किन शब्दों में वर्णन करूँ? तब श्रीमहाराजजी कहते—'भाई! जहाँ तक हो अपने भाव के वेग को गम्भीरता से सहन करना चाहिये। जितना भी सहन हो सकेगा भविष्य में उतना ही सुखदायी होगा।'

'लाजिम है सोजे इश्क का शौला अयाँ न हो।
जल भुनिये इस तरह से कि मुलतक धुआँ न हो॥'

मैं निरन्तर साथ रहने का आग्रह करता; किन्तु आप समझा बुझा कर लौटा देते। प्रात:काल बरोरा में फिर गौर-चरित्र सुनते और वहाँ जो लीला श्रवण करते वही सायंकाल के कीर्तन में प्रत्यक्ष होकर सामने आ जाती। इस प्रकार हमारा आनन्द उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। उसके साथ ही हमारी लोकलाज और कुल-कान भी न जाने कहाँ चली गयी। जिस निजामपुर के गुरु होने का मुझे अभिमान था उसी की गलियों में मैं लोटने लगा।

कभी-कभी किसी गांव के भक्तजन श्रीमहाराजजी को भिक्षा के लिये निमन्त्रित करते थे। तब आप उनसे कहते थे, 'तुम अपने गाँव में खूब सफाई करो और घरों को लीप-पोत कर बन्दरवार लगाओ।' बस, फिर तो गाँव के सभी लोग सफाई में लग जाते। इस बीच में आप आ जाते तो स्वयं भी इसी काम में जुट पड़ते। आप तो अकेले ही दस आदमियों का काम कर डालते थे। इस प्रकार सारा गाँव बात की बात में स्वच्छ हो जाता। घरों को लीप-पोतकर आम्रपल्लवों की वन्दनवार बाँध दी जाती और चौक पूर दिये जाते।

दूसरे दिन दस-पाँच भक्तजन मिलकर भोजन बनाते थे। उसमें आज-कल की तरह पकवान, मिठाई या हलवा आदि नहीं बनाये जाते थे। मीठे के स्थान में तो प्राय: खीर ही बनायी जाती थी। इसके सिवा बथुआ की भूजी, बथुआ का रायता, बथुआ भरी रोटी, लौकी का शाक, मूँग की दाल तथा चना जौ और गेहूँ की रोटी ऐसे ही पदार्थ बनते थे। समय होने पर मक्का या बाजरे की रोटियाँ भी बनती थीं। मिर्च-मसाले और नमक बहुत कम डाले जाते थे। साथ ही यह सब काम करते हुए भगवन्नामोच्चारण करना जरूरी था। यदि किसी ने इसमें ढील कर दी तो पता नहीं आप भोजन करें या ना करें। सम्भव है, आयें या नहीं, अथवा आकर लौट जायँ। आपके ऐसे व्यवहारों से सबकी यह दृढ़ धारणा हो गयी थी कि श्रीमहाराजजी सर्वज्ञ एवं सर्वान्तरयामी हैं। आप प्राय: कथा में अथवा किसी अन्य प्रसंग से भक्तों के मन की बात बता देते थे। बहुत बार ऐसा होता कि किसी को कोई प्रश्न करना होता तो आप सामने आने पर बिना पूछे ही उसे उत्तर दे देते थे। इसलिये भक्तजन प्राय: आपके नियम और रुचि आदि का पूरा ध्यान रखते थे।
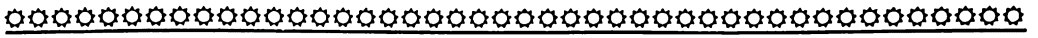
एक बार निजामपुर में आपकी भिक्षा हुई। आप बरोरा से कथा समाप्त करके चले। मार्ग में कोई कीर्तन की ध्वनि आरम्भ कर दी। इस प्रकार मानो पग-पग पर अमृत का घूट भरते सब लोग निजामपुर के समीप पहुँचे। वहाँ गाँव के बाहर सैकड़ों स्त्री-पुरुष श्रीहरिनाम कीर्तन करते हुए आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सबने 'हरिबोल' की तुमुल-ध्वनि से आकाश को गुंजायमान करते हुए आपको साष्टांग प्रणाम किया। तथा आपने और हम सबने भी भक्तमण्डली को साष्टांग प्रणाम किया। फिर सब लोग कीर्तन करते हुए भोजन स्थान पर गये। वहाँ प्रायः एक घण्टा समष्टि कीर्तन हुआ। फिर कुछ देर विश्राम करने के लिये बैठे। उस समय एक-दो भक्तों ने प्रेमपूर्वक पदगायन किया। तदनन्तर हाथ-पाँव धोकर भोजन-भवन में पधारे। वहाँ पहले सबने श्रीमहाराजजी तथा भोजन-भगवान् को प्रणाम किया। फिर श्रीमहाराजजी ने दिव्य शब्दों में भगवान की स्तुति करते हुए भोग अर्पण किया तथा हम सबने भी कुछ स्तुतिपूरक श्लोकों से भगवान् की प्रार्थना की।

इसके बाद सब लोग आसनों पर बैठकर शान्तिपूर्वक 'अच्युतं केशवं रामनारायणम्' इत्यादि बोलने लगे। कुछ लोग कीर्तन करते हुए दर्शन कर रहे थे और कुछ भगवन्नाम लेते हुए परोस रहे थे। इस प्रकार एक आनन्द की लूट-सी हो रही थी। उस समय भोजन में बड़ा ही आनन्द आया। ऐसा जान पड़ता था मानो ग्वालबालों के साथ साक्षात् श्यामसुन्दर अथवा भक्तमण्डली के साथ श्रीगौरसुन्दर ही भोजन कर रहे हैं, परम कौतुकी श्रीमहाराजजी बीच-बीच में कोई ऐसा कौतुक कर देते थे, जिससे सब लोग जोर-जोर से हँसने लगते थे।

इस प्रकार आप तरह-तरह की लीलाएँ और आमोद-विनोद करते हुए यहाँ के ग्रामीणों को कलिकाल का एकमात्र परम-धन श्रीभगवन्नाम लुटाने लगे। आप में जैसा रूप-लावण्य था वैसा ही अद्‌भुत करुणापूर्ण हृदय था। आपके उस अश्रुतपूर्व सौहार्द ने आनायास ही सबके हृदयों को अपने अधीन कर लिया और यहाँ के ग्रामीण लोग सदा के लिये आपके अनन्य भक्त हो गये।

अवन्तिका और भगवानपुर में

गवाँ से प्राय: चार कोश गंगाजी के उस पार अवन्तिका की झाड़ी है। यहाँ अवन्तिका देवी और अम्बिकेश्वर महादेव के बहुत प्राचीन स्थान हैं। नवरात्र और शिवरात्रि के समय यहाँ काफी भीड़ हो जाती है। एकबार शिवरात्रि के अवसर पर सब लोगों का विचार श्रीअम्बिकेश्वर की यात्रा करने का हुआ। अत: श्रीमहाराजजी के साथ भोलेजी, नित्यानन्दजी और जौहरीलाल जी आदि चार पाँच आदमी बड़े आनन्द और उत्साह से भगवान शंकर के दर्शन करने के लिये चले, उस समय मन में ठीक यही भाव होता था कि हम सब गोपिकाएँ हैं और श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये श्रीगोपेश्वरनाथ का पूजन करने के लिये जा रही हैं।

सब लोग गवां से ही 'शिव शिव शम्भो हर हर महादेव' का कीर्तन बोलते चले। कभी बीच-बीच में जलहरी * भी बोलते थे। सबको भांग का-सा नशा चढ़ा हुआ था। श्रीमहाराजजी तो सचमुच उन्मत्त से हो गये थे। उन्हें जो स्पर्श कर लेता था वह भी पागल हो जाता था। वे रास्ते में चलते-चलते किसी के पैरों में पड़ जाते और अत्यन्त दीन होकर प्रार्थना करते, 'भाई! मैं संसार-सागर में डूबा हुआ हूँ। मुझे इससे निकलने का मार्ग दिखलाओ। हाय! मेरे प्राण निकल रहे हैं। अरे! मैं भगवान् के बिना जी रहा हूँ। मेरा यह जीवन व्यर्थ ही है। मैं वृथा ही इन नीच प्राणों को धारण कर रहा हूँ।' यह कहकर आप विलख-बिलखकर रोने लगते। यह सुनकर वह बेचारा तो घबरा जाता। फिर जैसे-तैसे आप सावधान हुए। किन्तु कुछ ही आगे चलने पर श्रीजी के भाव से भावित होकर किसी साथी में सखी की भावना करके उसका गला पकड़ कर रोने लगे—'हे दीनों पर दया करने वाले! हे प्राणनाथ! हे मथुराधीश! आप

*** इधर जब कुछ आदमी मिलकर गंगा-स्नान के लिये जाते हैं तो उनमें से पहले एक कोई दोहा बोलता है। फिर सब लोग मिलकर 'बोलो जी भाई बं' इस प्रकार बोलते हैं। इसे 'जलहरी' कहते हैं। श्रीमहादेवजी पर जल चढ़ाने के लिये जाते समय भी इस प्रकार की जलहरी बोली जाती है।**

मेरी ओर कब कृपा दृष्टि करेंगे? प्यारे, आपको न देखकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। प्यारे! बताओ तो, अब मैं क्या करूँ।' *

जिस समय आप श्रीजी के भाव से भावित होकर श्रीकृष्ण-विरह में रुदन करते हुए प्रलाप कर रहे थे उस समय आपके कण्ठ की मधुरिमा सर्वथा अलौकिक ही थी। सचमुच ऐसा ही जान पड़ता था मानो स्वयं महाभावमयी माधुर्यमूर्ति श्रीकिशोरीजी ही अपने रसघन प्रियतम के विरह में रुदन कर रही हों। वह दिव्य मधुरिमा जिसके कर्णकुहरों में पड़ती वही आनन्दातिरेक से नृत्य करने लगता था। एक बार तो ऐसा ही प्रतीत होता था कि आपका शब्द साक्षात् वंशीनाद है या स्वर्गीय सुधामयी स्वरलहरी है। वह रुदन-सर्वथा अलौकिक था, उसने तो सैकड़ों प्राणियों के प्राणों को व्याकुल कर दिया। साथियों के प्राण भी छटपटाने लगे। किसी की समझ में और कोई उपाय तो आया नहीं अतः सब लोग मिलकर आपका प्राणप्रिय हरिनाम ही उच्चारण करने लगे। बस, फिर तो जहाँ कीर्तन का रंग जमा कि उस कीर्तनप्रिय नटवर का हृदय उछलने लगा और वह सारा भाव परिवर्तित हो गया।

अब आप भी जोर-जोर से ताली बजाते हुए 'हरि-हरि' उच्चारण कर नृत्य करने लगे। फिर तो कीर्तन का ऐसा रंग जमा कि सभी दर्शक मुग्ध होकर ग्रहग्रस्त अथवा मन्दोन्मत्त की तरह उछल-उछल कर कीर्तन करने लगे। इस प्रकार कुछ काल तक बड़ी धूमधाम से कीर्तन हुआ। फिर साथियों के बार-बार प्रार्थना करने पर आप सावधान होकर चले। किन्तु अब भावान्तर हो गया। मानो अपने ग्वाल-सखाओं के साथ श्रश्श्यामसुन्दर वन में भ्रमण कर रहे हैं।

इस प्रकार एक दूसरे को हँसते-हँसाते उछलते-कूदते कभी किसी के कन्धे पर चढ़ते और कभी किसी को अपने कन्धेपर चढ़ाते सब लोग श्रीगङ्गा तट पर पहुँचे। बस, गंगाजी को देखते ही आपको यमुनाजी की स्फूर्ति हुई और 'जय यमुने!' कहकर वस्त्रों सहित ही गंगाजी में कूद पड़े तथा उछल-उछलकर स्नान करने लगे। फिर

---

* **'अयि दीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।**
हृदयं त्वदालोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥'

आपस में कई प्रकार की जल-क्रीड़ायें होने लगीं। एक ओर श्रीमहाराजजी हुए और दूसरी ओर अन्य सब लोग और फिर दोनों दलों में जल-युद्ध छिड़ गया। सब लोग उछाल-उछाल कर आपको जल के छींटे मारते रहे। किन्तु जब आप अकेले ही जल उछालने लगे तो ऐसा मालूम हुआ मानों सहस्त्रों हाथों से छींटे मार रहे हैं। बस सभी लोग हारकर भाग गये और आप हँसने लगे। इसी तरह अनेक प्रकार के कौतुक-विनोद करते हुए स्नान समाप्त हुआ।

फिर सब बड़े आह्लाद और आमोद में भरकर 'शिव-शिव शम्भो हर-हर महादेव' का कीर्तन करने तथा उछलते-कूदते श्रीअम्बिकेश्वर महादेव के स्थान पर पहुँचे। वहाँ एक टूटी-फूटी झोंपड़ी में पड़ गये। उस दिन वहाँ मेला था, अतः सर्वत्र अनेक प्रकार का कोलाहल हो रहा था। कोई भजन गा रहे थे, कहीं कथा हो रही थी और कहीं कुछ लोग मिलकर शिवजी की जलहरी बोल रहे थे। इस प्रकार का कौतूहल देखकर हमारे परम कौतुकी सरकार को भी कुछ लीला करने की सूझी। बोले—'भाई! तीर्थ में आकर समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। यहाँ प्रथम दिवस तो उपवास करके भजन ही करना चाहिए। इसलिए हम लोग भी मिलकर कुछ करें।'

बस, ये लोग पहले तो जलहरी बोलते रहे। उसमें आप शिवजी के भाव से आवेशित होकर जोर-जोर से 'बं-बं' अथवा और भी अनेकर प्रकार के शब्द उच्चारण करने लगे। फिर 'शम्भु गिरजा भोलानाथ' का कीर्तन हुआ। उसमें आप उठकर ताण्डव नृत्य करने लगे। कभी-कभी शृङ्गी बजाने की-सी चेष्टा करते थे। उसमें एक दो साथियों को तो साक्षात् शिवजी के रूप में ही आपके दर्शन हुए। यह अलौकिक खेल देखकर समस्त मेले का ध्यान इस ओर आकर्षित हो गया। नृत्य करते-करते ही गिरकर आप मूर्छित हो गये और बड़े ही करुण स्वर से विलख-विलखकर रोने लगे। यह रुदन ठीक ऐसा ही जान पड़ता था मानो कोई पतिविरहिणी राजमहिषी अपने सुकोमल मधुरकण्ठ से विलाप कर रही हो। उसे सुननेवालों के प्राण छटपटाने लगते थे। वैष्णव-शास्त्रों में कहा है कि श्यामसुन्दर की बंशी में जो मोहकता है वही श्रीकिशोरीजी के विरह-विलाप में भी है। अजी! यह क्रन्दन क्या

था दिव्य संगीत-सुधा की स्वर-लहरी ही थी। बेचारे ग्रामीण लोग उस दिव्य मधुर वाणी को सुनकर व्याकुल हो गये। कोई-कोई भद्रपुरुष भी दौड़े आये। उन्होंने देखा कि एक बाबाजी जोर-जोर से विलाप कर रहे हैं और चार-पाँच आदमी उन्हें घेरकर 'हरि-हरि' उच्चारण कर रहे हैं। वे लोग यह जानने की चेष्टा करने लगे कि आखिर बात क्या है। इन महात्माजी को क्या दुःख है? परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी वे कुछ समझ न सके। आखिर सबके साथ मिलकर हरिनाम उच्चारण करने लगे। इससे इनका रुदन कुछ शान्त हुआ तो लोगों का नामोच्चारण में और भी उत्साह बढ़ गया। इससे संकीर्तन का ऐसा रोल उठा कि हजारों आदमी उसमें सम्मिलित हो गये। फिर तो आप रोना बन्द करके नृत्य करने लगे।

अब क्या था? कीर्तन का जोश और भी बढ़ गया। सारी रात्रि इसी प्रकार कीर्तनानन्द में व्यतीत हो गयी। नृत्य करते-करते आपको भगवदावेश हो गया। आप हुँकार गर्जन करने लगे और शरीर से दिव्य कान्ति फूट-फूटकर निकलने लगी। भक्तों ने एक कम्बल बिछा दिया। उसी पर आप वीरासन से बैठ गये और जोर-जोर से कहने लगे, 'भोग लाओ।' यह सुनकर भक्तजन हड़बड़ाकर इधर-उधर खोज करने लगे तो एक दुकान पर गुड़ मिला। भोले जी वही मोल ले आये और आपके सामने निवेदन किया—'महाराज! लो, यह गुड़ ही मिला है।' आप उनके हाथ से लेकर बड़े प्रेम से खाने लगे और बड़े जोर से हँसकर बोले, 'बस, इस कलिकाल में गुड़ का ही भोग रह गया है। आगे तो शायद यह भी न मिले।' आपने कुछ गुड़ खाकर बाकी भोलेजी को दे दिया। वह सब भक्तों ने मिलकर बाँट लिया।

इसी प्रकार सारी रात्रि बीत गयी। आपकी इस दिव्य लीला ने मेले के हजारों आदमियों से हरिनाम लिवाया और सबको आनन्द वितरण किया। महापुरुषों की विचित्र लीला होती है। वे अपने आचरण द्वारा ही संसार को सन्मार्ग पर अग्रसर कर देते हैं। इसके लिये उन्हें किसी विशिष्ट कार्यक्रम या आन्दोलनादि करने की आवश्यकता नहीं होती। उनका आदर्श चरित्र मूकभाषा में जो काम करता है वह भाषणादिके द्वारा तो किसी प्रकार नहीं हो सकता। वह तो जीवों के हृदय को परिवर्तित करके सदा के लिए उन्हें सन्मार्ग में प्रवृत्त कर देता है, जबकि कोरा पाण्डित्य केवल मस्तिष्क

तक ही रहता है, वह हृदय को स्पर्श भी नहीं कर पाता। श्रीगीताजी में कहा है—

'यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥' *

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो मन्दिर में जाकर बड़े भाव से शिवजी पर जल चढ़ाया। तदन्तर कुछ कीर्तनकर रुद्राष्टक एवं कुछ अन्य श्लोकों द्वारा भगवान् की स्तुति की। फिर भक्ति भाव से दण्डवत् कर वहाँ से चले। उस समय आपका विचार हुआ कि यहाँ से दस कोस पर गंगा किनारे भगवानपुर में बाबा हीरादासजी विराजते हैं, उनके दर्शन करें। किन्तु 'सन्त मिलन को चालिये, तजि माया अभिमान। ज्यों-ज्यों पग आगे परें, कोटिन यज्ञ समान।' इस उक्ति के अनुसार वहाँ अकेला ही जाना चाहिये। तथापि भोलेजी ने साथ चलने का बहुत आग्रह किया और कहा कि मेरे पूर्वपरिचित हैं, मैं भी उनके दर्शन कर आऊँगा इसलिये उन्हें साथ ले लिया तथा और सबको बिदा कर दिया।

भगवानपुर में पहुँचकर आपने भोलेजी से कहा, 'पहले कुछ देर विश्राम कर लें। फिर गंगा-स्नान करके शान्त चित्त से ही श्रीस्वामीजी के पास चलेंगे, क्योंकि महात्माओं के पास पवित्रता-पूर्वक शान्त चित्त से ही जाना चाहिये। साथ ही बन सके तो कुछ प्रसाद भी ले जाना चाहिये। यदि और कुछ न हो तो पत्र, पुष्प, जल अथवा दातौन ही ले जाय।' अतः आप स्नानादि से निवृत्त हुए और फिर भोलेजी से कहा, 'तुम आगे चलो, मैं पीछे आता हूं।' भोलेजी आगे चले गये। पीछे से आप पहुँचे और अत्यन्त विनयपूर्वक प्रणाम करके एक ओर बैठ गये।

बाबा हीरादासजी तत्कालीन विरक्तों में अग्रगण्य थे। उनकी विरक्ति और विद्वत्ता की सन्त-समाज में बड़ी धाक थी। आपको देखकर उन्होंने बड़े प्रेम से पास बुला लिया। फिर कुछ परमार्थ-चर्चा होने लगी। चर्चा के बीच में ही उन्होंने पूछा, 'इस समय कहाँ से आ रहे हो।' आपने कहा, 'गवां से।' तब बाबा जी बोले, 'मैंने सुना है, तुम बड़ा ऊधम मचाते हो। गवां से तुम्हारा राग तो नहीं हो गया?'

---

* श्रेष्ठ पुरुष जैसा-जैसा आचरण करता है वैसा ही दूसरे लोग भी करते हैं। जिस बात को वह प्रमाणित कर देता है, संसार उसीका अनुसरण करता है।

आपने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, 'मुझे तो अपने चित्त का ठीक पता नहीं है। आप महापुरुष हैं, इसलिये मेरी स्थिति के विषय में ठीक विचार कर सकते हैं।' इस पर उन्होंने कुछ तेजी से कहा, 'नहीं, मनुष्य स्वयं ही अपनी अवस्था को ठीक जान सकता है। आखिर, तुम वहाँ अधिक क्यों रहते हो?' आपने धीरे से कहा, 'महाराजजी! वहाँ उन लोगों के सत्संग में मेरा चित्त प्रसन्न रहता है। मेरा भगवच्चिन्तन ठीक होता है, इसी से रहता हूँ।'

तब बाबा ने कहा, 'देखो, स्वामीजी! तुम अभी बालक ही हो। नये साधक हो। यह संसार बड़ा भयंकर है तथा चित्त भी बड़ा धोखेबाज है। यह सर्वदा मान, प्रतिष्ठा और सत्कार ही चाहता है। इसे जिनसे अधिक आदर मिलता है उन्हीं को सत्संगी मान लेता है। भाई, तुम्हारे ये सत्संगी तो एक दिन तुम्हें संसार में घसीट लेंगे। इनका निरन्तर संग करने से तो साधक का पतन निश्चित है। सत्संग सर्वदा अपने से श्रेष्ठ का करना चाहिये। जहाँ इसकी हर एक चाल पर उनकी दृष्टि रहे और इसका मन भी उनसे डरता रहे। इसलिये वास्तव में पूछो तो सबसे उत्तम संग अपने गुरुदेव का ही है। वहीं इसकी स्वतन्त्रता सब प्रकार नष्ट हो सकती है। अत: साधक को चाहिये कि समर्थ गुरु का आश्रय लेकर प्रमाद और आलस्य को त्यागकर निरन्तर सावधानी से उनकी सेवा में तत्पर रहे। स्वतन्त्रता एक क्षण के लिये भी न आने दे। भोजन, शयन, स्नान आदि प्रत्येक क्रिया में उनके अनुकूल ही रहे। सर्वदा उनकी मनोवृत्ति को देखता रहे कि वे क्या चाहते हैं। इस तरह निरन्तर कड़े शासन में रहने से ही मनीराम अपनी चालों को छोड़कर सीधे होते हैं। और यदि वहाँ भी वे मनीराम अपनी चालबाजी से श्रीगुरुदेव में छिद्रान्वेषण करने लगें तो फिर साधक का ठिकाना नहीं है। कहा भी है—'

'गुरुनिन्दक नहिं मुक्त नरक फिर आवहिं।
चौरासी लख भुगत महादुख पावहीं॥
जो गुरु झिड़कें लाख तो मुख नहिं मोड़िये।
गुरुसों नेह लगाय सबनसो तोड़िये॥'

इस प्रकार बाबा हीरादासजी ने बहुत कहा। तब आप बोले—'आपकी जैसी आज्ञा हो वैसा ही करूँगा।' बाबा बोले, 'करोगे तो तुम वही जो तुम्हारे मन में होगी। तुम गवां ही जाओगे और वहीं रहोगे। व्यर्थ हमारी जबान क्यों खराब करते हो?' तब आपने कहा, 'नहीं, महाराजजी! मैं आपसे सत्य कहता हूँ। आप जो भी कहेंगे मैं वही करूँगा। यदि आप कहेंगे तो मैं जीवन भर गवां नहीं जाऊँगा। मैं तो सर्वदा यही मानता हूँ कि सब कुछ भगवत्प्रेरणा से ही हो रहा है। भगवान् जहाँ चाहते हैं ले जाते हैं और जैसा चाहते हैं कराते हैं। इसलिये आज आपके द्वारा ही यदि वे मेरा हित करना चाहते हैं तो बड़े आनन्द की बात है। आप निःसंकोच भाव से मुझसे स्पष्ट कह दें कि मैं कहाँ जाऊँ और किस प्रकार रहूँ। मैं वही करूँगा।' यह सुनकर उन्होंने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'भाई! हम क्या कहें? तुम स्वयं ही सोच लो। हमारा तुमसे या गवां से कोई द्वेष थोड़े ही है, हमने तो तुम्हारे हित के नाते ही कुछ कहा है। आगे तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो।'

तब आपने विचार किया कि इनकी इच्छा मेरे गवां जाने में नहीं है। इन महापुरुष के रूप में मुझे यह साक्षात् श्रीभगवान् का ही आदेश है। अतः इसका पालन करने में ही मेरा हित है। फिर आपने बाबा को साष्टांग प्रणाम किया और प्रार्थना की कि आप मेरा अपराध क्षमा करें और शक्ति प्रदान करें कि मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सकूं। उन्होंने हँसकर कहा, 'नहीं, ऐसा विचार कभी मत करना कि हम तुम पर अप्रसन्न हैं महात्मा कभी किसी पर अप्रसन्न नहीं होते। हमारा तो तुम पर अत्यन्त प्रेम है।'

इसके पश्चात् आप बाहर आये और भोलेजी से कहा, 'भाई! तुम बरोरा जाओ। अब मैं उधर नहीं जाऊँगा।' भोलेजी बहुत रोये, किन्तु आपने समझा-बुझाकर उन्हें विदा कर दिया। सच है, महापुरुषों के चित्तों की कोई थाह नहीं पा सकता। वे वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल होते हैं—

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।'

प्रेम का आकर्षण

भगवानपुर से गंगाजी के किनारे-किनारे आप गढ़-मुक्तेश्वर की ओर चले। पास में सामान्य वस्त्र और कमण्डलु ही थे। गढ़मुक्तेश्वर से रेल में बैठकर मुरादाबाद पहुँचे। यहाँ से आप नवद्वीप जाना चाहते थे और वहाँ जाने के विचार से ही प्लेटफार्म पर घूम रहे थे। इतने में दैवात् गवां के लाला किशोरीलाल और कुंवर इन्द्रसिंह ने आपको देख लिया। आपको अकस्मात् इस नवीन स्थान पर देखकर उन्होंने प्रणाम किया और पूछा, 'श्रीमहाराज जी! कहाँ जा रहे हैं?' आप बोले, 'कहीं जा रहा हूँ।' तब उन्होंने बड़े आग्रह से कहा, 'आप हमारे साथ गवां चलें। वहाँ से आप जहाँ जाने को कहेंगे वहीं हम भेज देंगे।' आपने बहुतेरा मना किया, परन्तु वे किसी प्रकार न माने। अंत में विवश होकर आपने जाना कि यह भी भगवदिच्छा ही है। अतः हठ करना छोड़कर उनके साथ गवां के लिये गाड़ी में बैठ गये और रात को ही बबराला स्टेशन उतरकर गवां पहुँच गये।

वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि आज आपको गये चार-पाँच दिन हुए हैं। तबसे हुलासी और उसकी स्त्री ने अन्न तो क्या जल भी ग्रहण नहीं किया है। उसने जब से भोलेजी द्वारा आपके जाने का समाचार सुना है तबसे प्रतिज्ञा की है कि जब तक श्रीमहाराजजी नहीं आयेंगे मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। उसके जो दो छोटे-छोटे लड़के हैं उन्हें भी उसने रोटी बनाकर नहीं दी है। तब उन बेचारों को तो उसके परिवार वालों ने तथा पण्डित नित्यानन्द ने रोटी खिला दी है। वे दम्पति तो दिन-रात रोते हैं, कभी आपस में आपकी चर्चा करते हैं और कभी किसी ज्योतिषी के पास जाकर पूछते हैं कि महाराजजी कब आयेंगे। वे सचमुच पागल हो गये हैं, उन्हें विरहोन्माद हो गया है। कभी सारे दिन जंगल में घूमते रहते हैं और श्रीनववृन्दावन में जहाँ-जहाँ आपके साथ लीलाएँ की थीं वहाँ-वहाँ जाकर रुदन करते हैं। कभी रोते-रोते मूर्च्छित हो जाते हैं तो उस अवसथा में उन्हें भगवान् श्यामसुन्दर के दर्शन होते हैं। किन्तु वे उनसे नहीं बोलते और गालियाँ देते हुए कहते हैं,'तू चला जा, पास मेरे क्यों आया है? मेरे महाराजजी को बुला ला, नहीं तो मैं तुझसे नहीं बोलूंगा।'

फिर भी जब उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि श्यामसुन्दर नहीं गये तो डण्डा लेकर दौड़ते हैं और कहते हैं, 'अरे छलिया चोर! तू ही मेरे महाराजजी को ले गया है। सो जल्दी ही लिवा ला, नहीं तो इतना पीटूंगा कि ठीक हो जायगा।' इस प्रकार वे बहुत प्रलाप करते हैं। लोगों को तो उनका यह प्रलाप ही सुनायी देता है, भगवान् तो उन्हें ही दीखते हैं। कभी-कभी ऐसा भी जान पड़ता है मानो आप आ गये हों। तब उन्हें मान हो जाता है। वे रूठकर किसी झाड़ी में छिप जाते हैं और गाली देकर कहते हैं,' भला, तू हमको छोड़कर चला कैसे गया। मैं तुझसे नहीं बोलूँगा। मैं तो अब प्राण त्याग दूँगा और तेरे सिर पर कलंक का टीका लगाऊँगा।' फिर होश में आकर रोने लगते हैं। उनका विलाप सुनकर तो पत्थर भी पिघल जायगा। उन्हें क्षण-क्षण में मूर्च्छा होती रहती हैं। गाँव वाले उन्हें बहुतेरा समझाते हैं परन्तु उन पर किसी का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वे तो बेचारे निरन्तर जल से बिछुड़ी हुई मछली के समान तड़पते रहते हैं।

यह सब सुनकर आप बड़े ही चकित और दुखित हुए। किन्तु ऊपर से बड़े धीर और गम्भीर बने रहे। आपने चित्त को सँभालकर अपने सब प्रात:कालीन कृत्य किये। पं० जयशंकर के यहाँ टट्टियों के घेरे में बैठकर ध्यान किया। फिर यथापूर्व स्तोत्र-पाठ और स्वाध्याय भी किये। किन्तु यह सब करते हुए आपका चित्त निरन्तर हुलासी के पास ही रहा। आप बार-बार सोचते थे, क्या कारण है हुलासी यहाँ नहीं आया। तो क्या मैं ही उसके पास चलूँ? फिर सोचा—अच्छा, उठते समय चलूँगा। बीच में उठने से न जाने ये पण्डित लोग क्या समझें।

उधर हुलासी के चित्त की भी बड़ी विचित्र अवस्था थी। उस समय की अपने चित्त की स्थिति उसने मुझे स्वयं बतायी थी। उसे श्रीमहाराजजी के आने का समाचार प्रात:काल ही मालूम हो गया था। किन्तु अभी तक वह मिलने नहीं आया। उसके हृदय में पहले तो मान का उदय हुआ। 'प्रेम्णस्तु कुटिला गति: ।' फिर वह सोचने लगा, 'अरे! मैं भूल गया। कहाँ श्रीमहाराजजी और कहाँ मैं नीच नापित! भला, मेरा उन पर क्या अधिकार है? प्रेम तो समान व्यक्तियों में होता है। इसलिये मेरे दुराग्रह से आज यदि वे आ ही गये तो भी कल उनका क्या ठिकाना है कहाँ चले जायँ। इसलिये बार-बार इस झंझट में कौन पड़े। अब तो इस अधम शरीर को उनसे प्रेम करने की

ढिठाई का यही दण्ड है कि इसे त्याग ही दिया जाय। किन्तु क्या यह भी मेरा ढोंग ही नहीं है। क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ? अच्छा, तो मैं वहीं चलूँ? किन्तु पता नहीं सामने जाने पर इस पागल चित्त में क्या तरंग उठ खड़ी हो और उसके कारण न जाने मैं क्या कुचेष्टा कर बैठूँ, जिससे वहाँ के पण्डित लोगों और महाराजजी को संकोच में पड़ना पड़े। इसलिये यही अच्छा है कि इस झोंपड़ी में पड़ा-पड़ा ही इन अधम प्राणो को त्याग दूँ, जिससे सदा के लिये सब झंझट छूट जायँ। परन्तु श्रीमहाराजजी बड़े दयालु हैं; वे स्वयं ही यहाँ आ जायँगे। अतः कहीं जंगल में चलकर छिप जाऊँ। किन्तु वे तो अन्तर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं, उनसे छिपकर मैं कहाँ जा सकता हूँ, और मेरे मरने से भी तो श्रीमहाराजजी को दुःख ही होगा तथा इसका कलंक भी संसार उन्हीं को लगायेगा। इसलिये ऐसा करना ठीक नहीं। अरे चित्त! ये सब चालाकियाँ छोड़कर तू वही कर जिससे श्रीमहाराजजी का सुयश हो और उन्हें किसी प्रकार का कलङ्क या दुःख न हो।'

यह सब सोचकर वह चुपचाप वहाँ से चला। मन को बहुत कुछ रोका भी। किन्तु सामने आते ही धैर्य का बाँध टूट गया। प्रणाम करने का भी उसे ध्यान न रहा। न जाने किस भाव-तरंग ने उसके चित्त को उथल-पुथल कर दिया, यह तो वही जाने या उसका अन्तर्यामी नटखट। देखने में तो यही आया मानो श्रीदामा ग्वाल का अपने सखा श्यामसुन्दर से खूब झगड़ा हो रहा हो। वह आते ही महाराजजी से लिपट गया तथा रोष में भरकर बुरी-बुरी गालियाँ देता कहने लगा, 'साले! अब तो भाग जा। देखूँ, कैसे भागता है।' फिर पागलों की तरह कभी रोता, कभी हँसता और कभी अगूँठा दिखाकर टिल्लीली करता कहने लगता, 'क्यों, भाग क्यों नहीं गया? क्यों लौटा? भाग जाता तो बहादुर समझता।' इस प्रकार तरह-तरह से प्रलाप और झगड़ा करता वह धड़ाम से पृथ्वी में गिरकर मूर्च्छित हो गया। उस समय का दृश्य बड़ा अजीब था। श्रीमहाराजजी के नेत्रों से आँसू बहने लगे। किन्तु उन्होंने अपने को सँभाल लिया और हँसते हुए उसे समझाने लगे। परन्तु उसने उनकी एक न सुनी। वह पागलों का-सा प्रलाप करता मूर्च्छित हो गया। तब जल के छींटे देकर उसे सचेत किया और कहीं से दूध मँगाकर बड़ी मुश्किल से उसे पिलाया। उसकी स्त्री बाहर खड़ी रो रही थी।

उसे भी आपने सान्त्वना दी, और फिर जैसे-तैसे कुछ शान्त होकर गवां की ओर चले। उस समय हुलासी, हेतराम और पं० जौहरीलाल भी साथ हो लिये।

गवां जाते समय भी उसकी अर्धवाह्य अवस्था थी। एक ओर श्रीमहाराजजी बड़े प्रेम से उसके कन्धे पर हाथ रखे हुए थे और दूसरी ओर उसने हेतराम के कन्धे पर रखा हुआ था। उसके पांव मदोन्मत्त शराबी की तरह डगमगाते थे, चेहरा नारंगी की तरह लाल हो रहा था नेत्र घूर्णित हो रहे थे। श्रीमहाराजजी तरह-तरह से प्रलाप करते जा रहे थे। इतने में ही एक भाव तरंग ने उसे विवश कर दिया और वह ऐसी चेष्टायें करने लगा मानो अपनी स्त्री को सम्बोधन करके कह रहा हो—(किन्तु वास्तव में इस समय उसकी स्त्री साथ नहीं थी।) 'अरी! तू नहीं जानती की यह संसार और संसार के बन्धन सब मिथ्या हैं। हमारा जो कुछ भी सम्बन्ध है वह सब देखने भर का है। इस असार संसार में आसक्ति करना बड़ी भूल है। मेरे, तेरे और सारे संसार के एकमात्र रक्षक, सहायक और प्रेरक श्रीहरि ही हैं। देख, मेरे जाने से तू किसी प्रकार चिन्ता मत करना। मुझे तो श्रीकृष्ण बुला रहे हैं, मैं अवश्य जाऊँगा। तू हठ मत करना।'

ऐसा कहते-कहते वह विह्वल हो गया। फिर अपनी स्त्री को सम्बोधन करके कुछ घर की व्यवस्था सम्बन्धी बातें करने लगा—देख, अमुकका मुझे यह देना है और अमुक से यह लेना है। तू सन्तोष से घर बैठकर भजन करना। इत्यादि। इस प्रकार वह अपनी ही कह रहा था। किसी दूसरे की बात पर उसका कोई ध्यान ही नहीं जाता था। उसकी बातों से प्रतीत होता था कि मानो वह साधु होना चाहता है और घर से निकल रहा है। फिर जब उसे चेत हुआ तो समझा-बुझाकर घर भेज दिया।

आज के भाव का भविष्य यह निकला कि थोड़े ही दिनों बाद वह इस असार-संसार से चल बसा। उसके पीछे उसकी स्त्री ने भी अन्न-जल त्याग दिया और निरन्तर भगवन्नाम जपते हुए उससे आठवें दिन पतिलोक को चली गयी। धन्य है, ऐसे दम्पति को। इन्होंने अपने जीवन और मरण दोनों ही को चरितार्थ कर लिया।

हुलासीजी ने एक निम्न कोटि के कुल में जन्म लिया और इनकी शिक्षा-दीक्षा भी प्रायः कुछ नहीं थी। किन्तु उन्हें जो भगवत्प्रेम प्राप्त हुआ था वह तो बड़े-बड़े देवता और मुनियों को भी दुर्लभ है। श्रीमहाराजजी में तो उत्कृष्ट भाव और किसी
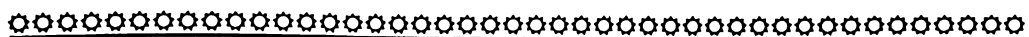
का नहीं देखा गया। उनकी दृष्टि में महाराजजी साक्षात् भगवान् ही थे। एक दिन बरोरा से गवां की सड़क पर जाते हुए इन्हें भावावेश हुआ। उस समय ये सम्पूर्ण जगत् को श्रीकृष्णमय देख रहे थे। कभी दौड़कर किसी वृक्ष का आलिंगन करते और कभी प्रेमोन्मत्त प्रेमिका की भाँति प्रलाप करने लगते थे, 'मेरे प्यारे! अब मुझसे छूटकर कहाँ जाओगे। मैंने तुम्हें अपने भुजपाश में बाँध लिया है। देखता हूं कैसे भागोगे?' फिर उस वृक्ष को छोड़कर भागते और किसी दूसरे को आलिंगन कर लेते। कभी धड़ाम से गिरकर मूर्छित हो जाते और फिर प्रलाप करने लगते। उनका वह प्रलाप तो सुनते ही बनता था। हृदय में उसे धारण करने की शक्ति नहीं, फिर लेखनी द्वारा तो उसे कैसे व्यक्त किया जा सकता है। कभी श्रीमहाराजजी को ही आलिंगन कर लेते और ब्रज के सखाओं की तरह गालियाँ देने लगते और कहते, 'जहाँ-तहाँ सम्पूर्ण रूपों में दीखने वाला भी तू ही तो है। तू मुझे धोखा देता है। अब, मैं तेरे धोखे में नहीं आऊँगा। सच बतला, सब रूपों में तू ही है कि नहीं?' यह प्रलाप सुनकर श्रीमहाराजजी खूब हँसते और कभी-कभी तो उन्हें बाध्य होकर स्वीकार करना पड़ता कि हाँ, मैं वही हूँ। केवल तुम्हारा प्रेम बढ़ाने के लिये ही यह लीला करता हूँ। किन्तु सावधान यह बात किसीको बताना नहीं। ऐसा कहकर आप खूब हँसते।

ये कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे। किन्तु जिस समय श्रीकृष्ण की माधुरी का वर्णन करने लगते थे तो हम लोग मन्त्र-मुग्ध की तरह उनकी वाक्सुधा का पान करके चकित रह जाते थे। कभी-कभी वर्णन करते-करते वे हठात् रुक जाते थे, कारण कि उस समय श्रीकृष्ण उनके सामने प्रकट होकर अपने कर-कमलों से उनका मुख ढाँप लेते थे। किन्तु ऐसा तो उन्हें ही अनुभव होता था, हमें तो वे स्वयं ही अपने हाथ से अपना मुख ढाँपते दिखायी देते थे। कभी रात्रि में श्रीकृष्ण उनके सामने प्रकट होते और उन्हें श्री महाराजजी के नववृन्दावन में वंशीवट पर ले जाते। वहाँ वे उन्हें त्रिभंगललित बांकी अदा से वंशी बजाते दिखायी देते। उनके दिव्य वंशीनाद से हुलासीजी पगाल हो जाते और सखा भाव से अन्य ग्वालबालों के साथ खेलने लगते। इस तरह सारी रात खेलते रहते। प्रातःकाल जब चेत होता तो चुपचाप घर आ जाते, जिससे किसी को इस रहस्य का पता न लगे।

एक दिन की बात है बाबू हीरालालजी के मकान में हुलासीजी, बाबूजी और मैं सोये हुए थे। अकस्मात् हुलासी जी चौंक पड़े और बड़े जोर से पुकारकर कहा कि ठहरो, मैं आया। और उठकर भागे। मैंने उन्हें रोका और कहा, 'ऐसी दोपहरी में कहाँ जाते हो।' वह बोले, 'क्या तुमने नहीं सुना, श्रीमहाराजजी मुझे बुला रहे हैं। वे इस समय वंशीवट पर गये हैं।' मैंने कहा, 'नहीं, वे तो इस समय पंजाब में है।' यह सुनकर वह खूब जोर से हँसे और बोले, 'होंगे पंजाब में, मेरे साथ तो वे नित्य वृन्दावन में खेला करते हैं।' यह कहकर वे बलात् हाथ छुड़ाकर नंगे पैर और नंगे सिर भागे। हम सब तो देखते ही रह गये। फिर दूसरे दिन जब मैं बरोरा गया तो मैंने पूछा, 'क्या तुम्हें सचमुच श्रीमहाराजजी मिले थे?' इस पर पहले तो वे छिपाने लगे, किन्तु पीछे मेरे अधिक अनुरोध करने पर बोले कि हां, गवां से तो वे मेरे आगे-आगे आये थे। फिर वंशीवट पर दो-तीन घण्टे मेरे साथ खेल-कूदकर चले गये। किन्तु यह बात आप किसी से कहें नहीं, इसी प्रकार प्रायः नित्य ही, श्रीमहाराजजी कहीं भी हों इनसे अवश्य मिल लिया करते थे।

इनमें निःस्पृहता भी कमाल दर्जे की थी। श्रीमहाराजजी से सम्बन्ध होने पर बाबू हीरालालजी यथासाध्य इनकी सहायता करना चाहते थे। वे इनके प्रति बहुत प्रेम और श्रद्धा का भाव रखते थे। किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी वे इनकी कोई सेवा करने में सफल न हो सके। जब वे अधिक आग्रह करते थे तो ये फूट-फूटकर रोने लगते थे। आखिर, उन्हें अपना वह विचार छोड़ना ही पड़ा। किन्तु इनकी इस निःस्पृहता से वे इनकी ओर और भी अधिक आकर्षित हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हुलासी का जीवन एक बहुत ही उच्चकोटि के भक्त का जीवन है। इसमें सन्देह नहीं वे कोई योगभ्रष्ट महापुरुष थे और श्रीमहाराजजी से उनका अनेकों जन्मों का अटूट सम्बन्ध था। हम सबके लिये उन्होंने भगवत्प्रेम और गुरुनिष्ठा का एक अद्भुत आदर्श उपस्थित कर दिया है।

बड़ी गढ़ीवाली का प्रेम

गवां के रईस ठाकुर गिरवरसिंहजी की धर्मपत्नी रामदेवी कुँवरि परम भक्त और आदर्श महिला हैं। ये 'बड़ी गढ़ीवाली' कही जाती हैं। इनका निजामपुर की एक पढ़ी-लिखी भजनानन्दी माई केशरदेवी से बहुत प्रेम था। उनसे इन्होंने श्रीमहाराजजी की महिमा सुनी तो मन ही मन उनके चरणों में आत्म-समर्पण कर दिया। केशरीदेवी की श्रीमहाराजजी के चरणों में बहुत श्रद्धा थी और वह कुंवरि रामदेवीजी के पास जाती रहती थीं तथा कुछ दिनों तक वहाँ ठहर भी जाती थीं। वे एक प्रभावशालिनी उपदेशिका थीं। आस-पास के गांवों की स्त्रियों पर उनका अच्छा प्रभाव था। उनके कारण रामदेवीजी भी महाराजजी की भक्त हो गयीं और उनके हृदय में उनके दर्शनों की आकांक्षा प्रबल हो उठी। किन्तु वे एक सम्भ्रान्त राजपूत रईस की पत्नी थीं। इन लोगों में बहुत कड़ा पर्दा रहता है। इसके सिवा ठाकुर गिरवर सिंह एक सामान्य विचार के विषयासक्त भोगी पुरुष थे। उनमें परमार्थ का सर्वथा अभाव था और न वे कभी किसी साधु के पास ही जाते थे। ये उनकी द्वितीय विवाहिता पत्नी थीं। इसलिये इनके यौवनसुलभ रूप, लावण्य एवं पतिपरायणता आदि शुभ गुणों के कारण वे इनसे प्रसन्न रहते थे और प्रायः इनका मन रख कर ही चलते थे।

श्रीरामदेवीजी ने पहले तो कई बार केशरदेवी के द्वारा श्रीमहाराजजी के लिये प्रसाद और वस्त्रादि भेजे। किन्तु महाराजजी इनके भेजे हुए समान की उपेक्षा ही करते रहे। कई बार इन्होंने पत्र लिखकर भेजा परन्तु महाराजजी ने उसे पढ़ा तक नहीं क्योंकि आप तो मर्यादा-पुरुषोत्तम ठहरे। अथवा यों कहिये कि महात्माओं की लीला बड़ी अटपटी होती है। वे जिसके प्रति गाढ़ प्रेम होता है उसकी उपेक्षा ही करते हैं। इससे सच्चा प्रेम तो उत्तरोत्तर बढ़ता ही है। यहाँ भी ऐसा ही हुआ। महाराजजी जितनी इनकी उपेक्षा करते गये उतना ही ये अधिक सामान भेजती रहीं।

एक बार की घटना मुझे याद है। वे सायंकाल में नित्य प्रति प्रायः ५०) की लागत का सामान, जिसमें अनेक प्रकार के मेवे, मिठाई और अपने हाथ से बनाये हुए नमकीन पदार्थ होते थे, थालों में लगाकर बगीचे में भेजती थीं। किन्तु महाराजजी

उसे लौटा देते थे और लानेवालों को बड़े प्रेम से समझा देते थे कि इस तरह कोई सामान हमारे पास मत लाओ। हमें आवश्यकता होगी तो हम स्वयं मँगा लेंगे। इस सामान को ले जाओ और अपने घर कीर्तन करके बाँट दो। बस, उन्होंने मुहल्ले की स्त्रियों को बुलाकर कीर्तन कराया और वह सारा सामान उन्हें बाँट दिया। किन्तु दूसरे दिन के लिये इन्होंने फिर नये उत्साह से बढ़िया प्रसाद बनाना आरम्भ कर दिया। और फिर शाम को उसी प्रकार पाँच-सात थालों में लगाकर भेज दिया। परम कौतुकी सरकारने उसे भी फिर उसी तरह वापिस कर दिया और उन्होंने फिर कीर्तन करके सब सामान गरीबों को बाँट दिया। इस प्रकार नित्य नये उत्साह से उन्होंने नौ दिन तक बराबर सामान भेजा और श्रीमहाराजजी लौटाते रहे। अन्त में आपने कह दिया कि वे इस तरह कोई सामान न भेजें। जब आवश्यकता होगी तो मैं स्वयं मँगा लूँगा। तब उनके ध्यान में आया कि मैं यह सब ठाकुर साहब की अनुमति के बिना कर रही हूँ। इसलिये मेरे मर्यादापुरुषोत्तम राम को यह स्वीकार नहीं हुआ। अतः अब वे मन ही मन घण्टों रोया करतीं और भगवान् से प्रार्थना करतीं कि किसी प्रकार ठाकुर साहब का मन परमार्थ की ओर झुक जाय।

ठाकुर साहब बहुत सीधे, सच्चे और प्रजावत्सल पुरुष थे। उनकी रुचि सर्वथा संसारी कामों में ही थी। परन्तु परमार्थ से उनका विरोध नहीं था। बल्कि साधुओं से तो वे कुछ डरते भी थे। अपने बाग में उन्होंने एक कुटिया भी बनवा रखी थी। उसमें सन्तसिंह नाम के एक पंजाबी सन्त रहते थे। उनके लिये भिक्षा और दूध का प्रबन्ध ठाकुर साहब की ओर से ही था। आखिर, रामदेवी की प्रार्थना भी अन्तर्यामी प्रभु ने सुनी। एक दिन वे इसी चिन्ता में उदास बैठी थीं कि ठाकुर साहब बाहर से आये और इनसे पूछा, 'आज तुम उदास क्यों हो?' इन्होंने यों ही कुछ बहाना करके टाल दिया। किन्तु जब उन्होंने अपनी शपथ दिलाकर पूछा तो वे विवश होकर कहने को तैयार हुईं। पर पहले ठाकुर साहब से वचन ले लिया कि उनकी बात स्वीकार की जायगी। फिर मन ही मन श्रीमहाराजजी का स्मरण कर उन्होंने आरम्भ से अब तक की सारी घटनायें सरलता से कह डालीं। महाराजजी का वैराग्य और प्रसाद लौटाने का प्रभाव ठाकुर साहब के हृदय पर अङ्कित हो गया। उन्होंने समझा कि ये

कोई समर्थ और त्यागी महापुरुष हैं। अतः रामदेवीकुँवरि से बोले, 'तुम क्या चाहती हो।' इन्होंने कहा, 'श्रीमहाराजजी के दर्शनों की मेरी प्रबल इच्छा है।' तब ठाकुर साहब ने बड़ी प्रसन्नता से आज्ञा दे दी और कहा, 'तुम जब चाहो दर्शनों को जा सकती हो और जो चाहो उनकी सेवा कर सकती हो। हमारी तो इस प्रकार की आदत नहीं है, इसलिये हम तो क्षमा चाहते हैं। हाँ, तुम जिस समय जिस प्रकार की सहायता चाहोगी वह हम कर दिया करेंगे।' तब रामदेवीकुँवरि ने प्रार्थना की कि आप एक बार अपना खास आदमी भेजकर श्रीमहाराजजी को उनके परिकर सहित निमन्त्रित करके बुलावें। वे मेरे बुलाने से नहीं आयेंगे। ठाकुर साहब ने यह बात स्वीकार कर ली और दूसरे ही दिन अपने एक योग्य कारिन्दा को भेजा। उधर रामदेवी ने एक पत्र लिखकर केशरीदेवी के द्वारा भेजा। उसमें उन्होंने श्रीमहाराजजी से बहुत ही अनुनय-विनय की थी।

इधर हमारे परम कौतुकी सरकार भी आज अकस्मात् हम लोगों से चर्चा कर रहे थे कि कभी-कभी मुझसे बड़ी गलती हो जाती है। देखो, मैंने बड़ी गढ़वाली का कितना तिरस्कार किया है। आज तक मैंने उसकी कोई भी चीज स्वीकार नहीं की और न उसकी कोई चिट्ठी ही पढ़ी। परन्तु मैं करूँ क्या। मेरा तो जन्म से ही ऐसा स्वभाव है। मुझे स्त्री मात्र से बड़ा संकोच लगता है। मैं बड़ा होने पर अपनी माँ से भी मुँह भरकर नहीं बोला। मेरी सब बहिनें मुझसे बड़ी थीं और परमार्थपथ में भी मुझसे आगे थीं; परन्तु मैं न तो साधु होने पर और न घर ही में उनसे जी खोलकर बोल सका। किन्तु देखो, इस रामदेवी का कितना प्रेम है कि इतना तिरस्कार होने पर भी उसके मन में रञ्चकमात्र ग्लानि नहीं हुई। यही तो सच्चे प्रेम का लक्षण हैं। सच्चा प्रेमी जितना भी उपेक्षित होता है उतना ही प्रेम में अग्रसर होता है। सोने को जितना भी तपाओ उतना ही उसका रूप-रंग अधिक चमकता है। उसका ऐसा विशुद्ध प्रेम देखकर अब तो मेरे मन में यह आता है कि स्वयं ही उसके यहाँ माँगकर खा लूँ।

इसी समय केशरीदेवी रामदेवी की चिट्ठी, कुछ प्रसाद और कारिन्दा को साथ लेकर आ गयीं। उन्होंने प्रसाद और चिट्ठी सामने रखकर प्रणाम किया। फिर कारिन्दा ने प्रार्थना की कि भगवन्! ठाकुर साहब की हार्दिक इच्छा है कि कल सब भक्तों के

सहित आप उनके घर पधारकर भिक्षा करें। आपने कहा, 'अच्छा कल १२ बजे वहाँ पहुँच जायेंगे।' कारिन्दा ने कहा, 'आप अपने भक्तों सहित पधारेंगे। अत: सबके लिये जितनी सवारियों को जिस स्थान पर भेजने की आज्ञा करें वहीं भेज दी जायँ।' आप बोले, 'सवारियों की कोई आवश्यकता नहीं हैं। जो कोई भी आ सकेंगे उनके साथ मैं पैदल ही आ जाऊँगा।' यह कहकर आपने उनका प्रसाद बाँट दिया।

दूसरे दिन प्रात:काल जब आप बरोरा पधारे तब सब लोगों से कहा, 'भाई! आज बड़ी गढ़ी में निमंत्रण है। हम सबको वहाँ १२ बजे पहुँचना है।' ऐसा कहकर आप अपने नित्य-कृत्य से निवृत्त हुए और फिर वहाँ का कार्यक्रम कुछ शीघ्र ही समाप्त करके कहा, 'चलो, आज नववृन्दावन में भी भ्रमण करें।' सब लोगों ने इकट्ठे होकर भगवान् को प्रणाम किया और श्रीनित्यानन्दजी ने पहले श्रीमहाराजजी को लगाकर सबको चन्दन लगाया। इसके पश्चात् आपने बड़ी एकाग्रता से प्रार्थना की, 'हे सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वाधार, सर्वनियन्ता प्रभो! हम सबको शक्ति प्रदान करो। हम सब स्वयं प्रेम से भरकर सारे विश्व को प्रेम प्रदान कर सकें। हम माया की दासता से छूटकर तन, मन, प्राण से आपके सच्चे सेवक बन सकें। हम आपस में राग-द्वेष रहित होकर सबको आपका स्वरूप जानकर प्राणिमात्र की सेवा कर सकें। हमारा मन निरभिमान होकर सदा आपका चिन्तन कर सके। सब जीव सुखी हों, सब नीरोग हों और सभी वास्तविक कल्याण को प्राप्त हों। किसीको कभी कोई दु:ख न हो। हे प्रकाश स्वरूप! आप विश्व के पाप और अन्धकार को दूर करें और जो भी वास्तविक कल्याण हो वही सबको प्राप्त करावें।'

आपके इन शब्दों में बड़ा ही ओज था, बल था और शक्ति थी। इन्हें सुनकर सभी के हृदयों में मानो नवीन शक्ति का संचार हो गया। फिर पंडित जयशंकर जी के साथ हम सभी ने कुछ श्लोकों द्वारा प्रार्थना की और साष्टांग दण्डवत् कर वृन्दावन को चल पड़े। वृन्दावन की सीमा पर पहुँचकर हम सबने साष्टांग प्रणाम किया और फिर आपने इस प्रकार प्रार्थना की, 'हे वृन्दावन! तुम हमें दिव्य और स्वच्छ दृष्टि प्रदान करो। तुम साक्षात् श्रीराधा-कृष्ण के स्वरूप और विहार स्थल हो। हम तुम्हारे वास्तविक स्वरूप को जानकर श्रीयुगल सरकार की दिव्य लीलाओं का रसास्वादन कर सकें।

हम प्रत्यक्ष वृक्ष, लता, कुंज, शाखा, पत्र और पुष्प में श्रीश्यामसुन्दर की मधुर झाँकी कर सकें। हम सब आपको भूलकर सारे जगत् में श्रीराधाकृष्ण को ही देखें।'

इस प्रकार प्रार्थना करके आपने वृन्दावन में प्रवेश किया। उससे पहले मधुमंगल-स्वरूप पंडित जौहरीलाल से प्रार्थना की कि महाराज! हमें वृन्दावन में प्रवेश करने का अधिकार प्रदान करो। आप इस वन के माली हैं। तब मधुमंगलजी ने कहा, 'यहाँ गोपिकाओं के सिवा किसी और को प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। यदि आप लोगों को वृन्दावन में जाना है तो गोपीरूप धारण करो।' श्रीमहाराजजी हँसकर बोले, 'महाराज! हमें गोपिकाओं की वेष-भूषा प्रदान करो।' विदूषकजी बोले, 'यहाँ तो केवल भावसाम्राज्य है। यहाँ बाह्य वेष-भूषा की आवश्यकता नहीं है। तुम सब अपने मन से ही भावना करो कि हम गोपिकाएँ हैं। गोपी किसी स्त्री का नाम नहीं है तथा कृष्ण किसी पुरुष को नहीं कहते। यह तो दिव्य चिन्मयभाव है। जो जीव सारी अभिलाषाएँ त्यागकर ज्ञान और कर्मादि से रहित हो दसों इन्द्रियों द्वारा श्रीश्यामसुन्दर का सेवन करता है वही 'गोपी' है। आप केवल गोपीभाव से भावित होकर वृन्दावन में प्रवेश करें। यह चिन्मय धाम है, यह करुणा करके स्वयं ही अपना स्वरूप आपके हृदयों में प्रकट कर देगा।'

इसके पश्चात् सब लोग 'अच्युतं केशवं रामनारायणम्' इत्यादि पद का कीर्तन करते हुए श्रीवृन्दावन में भ्रमण करने लगे। आज का भ्रमण विचित्र था। आज आप चाहते थे कि हम सब मन, वाणी और शरीर से इतना परिश्रम करें कि हमारी क्रिया शक्ति अत्यन्त शिथिल हो जाय और हम किसी प्रकार की चपलता न कर सकें। अतः पहले तो आपने खेल कूद आरम्भ कर दिया। खूब डटकर कबड्डी और आँख-मिचौनी का खेल हुआ। फिर एक ऊँचे से वृक्ष पर चढने-उतरने की लीला हुई। उसके बाद वीरासन से खड़े होकर करीब एक घंटे बड़ी धूम से कीर्तन हुआ। अब तो सभी शिथिल पड़ गये। सबके प्राण संकट में पड़ गये। पण्डित जयशंकर कुछ स्वतन्त्र प्रकृति के थे। कीर्तन समाप्त होने पर घड़ी देखी तो साढ़े ग्यारह बज रहे थे। आप बोले, 'भाई! बहुत विलम्ब हो गया। मैंने तो ठीक १२ बजे गवां पहुँचने का वचन दिया है। जल्दी करो, हमको दौड़कर आधे घण्टे में तीन मील जाना है।' फिर पूछा,

'जयशंकर कहाँ है ?' तो नित्यानन्दजी बड़ी कठिनता से उन्हें ढूँढकर लाये। तब जैसे तैसे आपने उन्हें चलने को राजी किया और वीरों की तरह कमर कसकर नंगे पाँव ही चले। चले क्या घोड़ों की तरह दौड़े। वाह रे कौतुकी! तेरी यह अनौखी लीला! अजी! सचमुच पच्चीस मिनट में ही गवाँ पहुँच गये।

गढ़ी के सब लोग प्रतीक्षा में ही खड़े थे। ज्यों ही गढ़ी में पैर रखा कि बारह का घण्टा बजा। बड़ी भारी तैयारी थी। बढ़िया बीन बाजे से स्वागत हुआ। बाहर तक बढ़िया वस्त्रों के पांवड़े पड़े थे तथा अनेक प्रकार के वन्दनबार, कदलीस्तम्भ और ध्वजा-पताका आदि से भारी सजावट की गयी थी। दरवाजे पर गरम जल से चरण धोये गये। भीतर गये तो रानी साहिबा अनेकों महिलाओं के सहित आरती लेकर कीर्तन करती उपस्थित हुईं। उन्होंने बड़े भाव से आरती की। फिर सब लोग सुन्दर-सुन्दर आसनों पर बैठे। उन्होंने सात्त्विकी सजावटसे आज अपने घर को साक्षात् बैकुण्ठ बना दिया था। भगवान् के बड़े-बड़े चित्र लगाकर एक बहुत बढ़िया सिंहासन बनाया था। श्रीमहाराजजी ने सबके साथ खड़े होकर भगवान् की स्तुति की। फिर बड़े जोरों से कीर्तन हुआ। बस, अब सबकी अक्ल ठिकाने आ गयी। मैं सच कहता हूँ कि शास्त्रों में ज्ञानी के विषय में जो कहा है कि वह सुनते हुए भी नहीं सुनता, देखते हुए भी नहीं देखता, चलते हुए भी नहीं चलता और खाते हुए भी नहीं खाता अर्थात् इन्द्रियों के सब व्यापार करते हुए भी नहीं करता, वह हमें प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। उस दिन सचमुच हमारी भी ऐसी ही अवस्था हो गयी थी। चाहे वह थकान के कारण हो चाहे सन्त-सद्गुरु की अहैतुकी कृपा का फल हो।

इसके पश्चात् सब लोग शान्तिपूर्वक भोजन करने लगे। उस समय सभी लोग गृहग्रस्तों की तरह अपना आपा भूलकर भोजन कर रहे थे। भोजन कराने वाले भी पागल हो रहे थे। किसी को अपने तन-मन की सुध नहीं थी। वह तो एक अद्भुत दृश्य था।

'सब घर पागल, सब घर पागल, सब घर दीवाना।
नौकर पागल, चाकर पागल, चक्कर में आना॥'

आज तो सभी पागल थे। एक आनन्द की लूट-सी हो रही थी। रानी साहिबा की तो विचित्र अवस्था थी। उनके नेत्रों से आँसुओं का प्रवाह रुकता ही नहीं था। उनका सारा शरीर काँप रहा था। उनमें तो भोजन परोसने की भी शक्ति नहीं रह गयी थी। बस, एक ओर चित्रकी पुतली-सी बनी यह सब दृश्य देख रही थीं।

इस प्रकार सानन्द भोजन समाप्त हुआ। सबने आचमन किया और मुख-शुद्धि लेकर चलने लगे। इसी समय केशरदेवी ने रामदेवी कुंवरि को संकेत किया। वे झट श्रीमहाराज जी के चरणों से लिपट गयीं तथा हर्ष और अनुताप के वेग से फूट-फूटकर रोने लगीं। महाराजजी ने खड़े-खड़े ही दो-चार शब्द कहे। वे बोले– 'देखो, यह सब समझकर कि भगवान् हमारे हैं और हम भगवान के हैं। सदा प्रसन्न रहना चाहिये भगवान् हमें कभी नहीं त्यागते। हम भले ही उन्हें न देख पायें किन्तु वे तो हमें निरन्तर देखते रहते हैं। हम चाहे कितने ही बन्धन में रहें, किन्तु हैं सदा श्रीभगवान् की ही गोद में। हमको जितने भी अधिक प्रतिबन्ध हों उतनी ही भगवान् की अधिक कृपा समझनी चाहिये। इससे वह दिन भी शीघ्र ही आ जायगा जब हम परम स्वतन्त्र हो जायँगे। हमें निराश कभी नहीं होना चाहिये। भगवान् कल्पतरु हैं; उनके यहाँ देर तो है, किन्तु अन्धेर नहीं है।'

इन दो-चार शब्दों में ही उनका हृदय आनन्द से भर गया। वे उठकर हर्षातिरेक से कीर्तन करने लगीं। हम सबने भी उनका साथ दिया। फिर सब लोग आनन्द में भरे हुए कुटिया पर आकर वृक्षों की छाया में विश्राम करने लगे। किन्तु आश्चर्य तो यह था कि आज इतना परिश्रम करने पर भी किसी को निद्रा नहीं थी। सबके शरीर फूल की तरह हल्के थे, चित्त एकाग्र थे और वृत्ति आनन्द में डूबी हुई थी। किसी ने टहलकर, किसी ने पुस्तक पढ़कर और किसी ने ध्यान करके दोपहरी का समय बिताया तीन बजे श्रीमहाराजजी की कथा आरम्भ हुई। हम सभी के मन में यह बात पूछने की इच्छा थी कि आज इतना परिश्रम करने और इतना अधिक भोजन करने पर भी हमारे शरीर में आलस्य नहीं है– इसका क्या कारण है? सो कथा में बैठते ही आपने यह बात छेड़

दी। आप बोले, 'जीव अपने पुरुषार्थ से कुछ भी नहीं कर सकता। भला, यह अल्पशक्ति जीव अपने बल से भगवान् को कैसे पा सकता है? इससे यह शंका हो सकती है कि तब तो साधन करना न करना समान है। यही एक उलझी हुई ग्रन्थि है। जब साधक समर्थ सद्गुरु की शरण लेकर और एक बार दाँत से दाँत पीसकर अपने पुरुषार्थ की सीमा को पार कर लेता है तो भगवत्कृपा का द्वार खुल जाता है, और यदि वह आलस्यवश साधनहीन होकर पड़ जाय तो भगवत्कृपा कभी सम्भव नहीं है। अपना बालोचित पुरुषार्थ करते हुए निरन्तर वाट जोहने से अवश्य भगवत्कृपा होती है।' श्रीमहाराजजी ने जब इस प्रकार समझाया तो हम सबके सन्देह दूर हो गये। हम आनन्द से कथा सुनते रहे और सायंकाल में सब लोग यथास्थान चले गये।

रानी रामदेवी का भाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। इसके पीछे भी श्रीमहाराजजी तो इनकी उपेक्षा ही करते रहे। इनका स्वभाव बड़ा उदार था। वैसे ही ठाकुर साहब बड़े खर्चीले स्वभाव के थे। अतः इनकी जमीदारी की आमदनी चुटकियों में उड़ जाती थी। ये अपने नौकरों पर कभी कड़ा शासन नहीं करती थी। खाने-पीने की कभी कोई भी चीज कभी कोई नौकर खा लेता तो ये उस पर अप्रसन्न नहीं होती थीं। इनके यहाँ यद्यपि खर्चे की सर्वदा खींचातानी ही रहती थी, तो भी श्रीमहाराजजी की सेवा जितनी ये करती थीं उतनी और कोई नहीं कर पाता था। श्रीमहाराजजी भी इनका हार्दिक भाव समझकर उत्सवादिके समय जब अधिक भक्तों के आने की सम्भावना होती थी इनके यहाँ खबर भेज देते थे, और ये आज्ञानुसार ठीक समय पर बढ़िया से बढ़िया भोजन बनाकर भेज देती थीं। इनमें यह खास गुण था कि ये महाराजजी से भी अधिक इनके आश्रित हम लोगों को चाहती थीं और कहा करती थीं—

'राम ते अधिक राम कर दासा।'

इसके दो-चार वर्ष बाद ही ठाकुर साहब का शरीर पूरा हो गया। वे अपने साले के पुत्र अल्पवयस्क वीरेन्द्रसिंह को दत्तक-पुत्र मानकर उसीके नाम उत्तराधिकार-पत्र (वसीयतनामा) लिख गये। किन्तु साथ ही जीवन पर्यन्त इनको

स्वतन्त्रता भी लिख दी। ये व्यवहार में भी बहुत कुशल थीं। अदालती दाँव-पेच को खूब समझती थीं। इनके व्यवहार में सरलता, सरसता, उदारता, निर्भीकता और शान्ति आदि सभी गुण कूट-कूटकर भरे थे। उत्सवों के अवसरों पर ये बड़े चाव और प्रेम से तैयारी करती थीं। इनका प्रेम आज तक बराबर बढ़ता ही गया है, उसमें कभी कमी नहीं आई है।

बाबूजी के यहां भोजन

एक बार बाबूजी हीरालाल के मन में विचार हुआ कि किसी दिन श्रीमहाराजजी गवाँ, बरोरा और निजामपुर के समस्त भक्तों सहित हमारे यहाँ भोजन करें। आप अपना भोजन स्वयं ही बनाया करते थे। आपके पास सीताराम नाम का एक आदमी रहता था। यह सोंधन गाँव का रहने वाला बड़ा सौम्य, सरल, ईमानदार, उदार और शान्त प्रकृति का लड़का था। इसकी खाने-पीने में बिलकुल लोलुपता नहीं थी। यदि इसे खाने की अच्छी चीज मिलती तो दूसरों को ही खिला देता था, या उसे कहीं रखकर भूल जाता था। यह सदाचारी, ब्रह्मचारी और साधुसेवी था। वह तो सचमुच श्रीएकनाथजी के श्रीखण्डिया या श्रीमहाप्रभुजी के गोविन्द के समान ही था। बाबूजी का जिसके साथ जैसा भी व्यवहार होता, वह उसके साथ ठीक उसी प्रकार निभा देता था। बाबूजी के सभी काम वह बड़ी खूबी से करता था। रात्रि को केवल तीन घंटे सोता था, बाकी इक्कीस घंटे निरन्तर सेवा में लगा रहता था। वह जैसा पुरुषार्थी था वैसा ही भोजन बनाने में कुशल भी था। यदि दस आदमियों के लिये दस प्रकार की चीजें बनानी हों तो वह तीन-चार अंगीठियाँ जलाकर बड़ी फुर्ती से तैयार कर देता था। बाबूजी को किसी प्रकार का लोभ तो था नहीं। उनके यहाँ घी पानी की तरह खर्च होता था। तथापि सीताराम दूसरों को सेरों घी खिलाकर भी स्वयं सूखी रोटी खाता था। उसके कारण बाबूजी साधुसेवा से निश्चिन्त थे। तथा साधु और सत्संगी लोग भी बाबूजी के अट्टे को अपना ही घर समझते थे। वे बिना रोक-टोक

चाहे जब पहुँचकर इच्छानुसार भोजन प्राप्त करते थे। सीताराम को आलस्य तनिक भी नहीं था। उसके अंगीठी और चूल्हे जलते ही रहते थे।

पाठक कहेंगे कि यह भी अजीब पागल आदमी है, एक साधारण सेवक की प्रशंसा करते-करते नहीं अघाता। परन्तु भाई! मैं शपथ खाकर कहता हूँ—सीताराम जैसा सेवक तो मैंने दुनियाँ में नहीं देखा। पीछे जब हमारे बाबूजी हम सबको यहीं छोड़कर दिव्यलोक पधारे तो सीताराम को वे श्रीमहाराजजी के हाथों में सौंप गये थे। सीताराम ने भी प्रायः दस वर्ष तक आहार और निद्रा को जीतकर आलस्य-प्रमादादि दोषों से रहित हो बड़ी तत्परता से मानों अन्तर्यामी होकर ही अपने अन्तर्यामी प्रभु की सेवा की थी। वह सर्वदा श्रीमहाराजजी की मनोवृत्ति जानकर ही उनकी सेवा में तत्पर रहा। श्रीमहाराजजी को कभी किसी कार्य के लिये उससे कहना नहीं पड़ा।

इसके सिवा हम हजारों आदमी श्रीमहाराजजी से सम्पर्क रखते थे। तथापि सीताराम हम सभी को प्रसन्न रखता था। और यथासमय सभी की आवश्यकतानुसार सेवा करता था। हम में से प्रत्येक पुरुष यही जानता था कि सीताराम सबसे अधिक प्रेम मुझसे ही करता है। श्रीसरकार की सेवा में तो मैं भी निरन्तर दस वर्ष रहा था और मैंने सब प्रकार की सेवा भी की थी, सीताराम मेरे बाद ही आया था; परन्तु मैं सच कहता हूँ कि उसकी सी सेवा तो मैं एक क्षण भी नहीं कर सका। हमारे कौतुककी सरकार ने स्वयं कई बार अपने श्रीमुख से कहा है कि 'सीताराम जैसा सेवक तो संसार में दुर्लभ है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् बाबूजी ही सीताराम में प्रवेश करके सेवा का आदर्श दिखाने के लिये मेरी सेवा कर रहे हैं। सीताराम को मैंने सदा एकरस पाया। मैंने कई बार इसकी परीक्षा की और जान-बूझकर काम ठीक होने पर भी कह दिया कि ठीक नहीं है, तो भी उसने बड़ी प्रसन्नता से अपना अपराध स्वीकार कर लिया। ऐसा देखकर मैं स्वयं लज्जित हो जाता था। मैंने स्वयं कई बार विचार किया है कि यह सीताराम क्या वस्तु है! यह कोई योगी है, या महात्मा है? तो निःसन्देह यही निश्चय हुआ कि यह कोई योगभ्रष्ट प्राणी है, अपना प्रारब्ध

भोगने के लिये सीताराम रूप में प्रकट हो गया है। इस प्रकार करुणा-सागर सरकार ने सीताराम की कई बार मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। विशेषत: उस समय जबकि सीताराम ने सीता-राम होकर नित्य-लीला में प्रवेश किया था।

अस्तु! बाबूजी ने श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की कि एक दिन सबका यहीं पक्की कुटिया पर भोजन हो। आपने स्वीकार कर लिया और जब प्रात:काल बरोरा गये तब सबसे कह दिया। इसके पश्चात् नित्य कर्म से निवृत्त हुए। फिर स्वाध्याय और गौर-चरित्र हुआ। इस प्रकार जब ग्यारह बज गये तो आप चलने को तैयार हुए। शीतकाल था। आपने उठकर ठाकुर जी को प्रणाम किया तथा प्रार्थना के पश्चात् जब चलने लगे तो देखा कि जयशंकर नहीं है। पूछा 'कहाँ गये?' तो खोज करने पर मालूम हुआ कि वहाँ जाने में अरुचि प्रकट करते हुए जंगल की ओर चले गये हैं। तब श्रीमहाराजजी ने मुझे उनको बुलाने का संकेत किया। मैं दौड़कर गया तो देखा कि वे धीरे-धीरे जंगल की ओर जा रहे हैं। मैंने जोर से पुकारा, 'भाई जयंशकरजी! आपको महाराजजी बुलाते हैं।' इस पर जयशंकरजी ने बड़ी तेजी से जबाब दिया, 'तुम लोग जाओ, मैं ऐसे न्योंता-परोंता खाने नहीं जाता।' मैंने फिर जोर से पुकारा, 'महाराज जी खड़े हैं। जल्दी आ जाओ। देर हो रही है।' तो वे यह कहकर कि मैं नहीं जाऊँगा' जोरों से जंगल की ओर भागे। बस, मैं भी बालक की तरह उनके पीछे दौड़ा। करीब एक मील दौड़कर पकड़ने पर उनके चरणों में लोट गया और जोरों से रोने लगा। मुझे रोते देख वे भी फूट-फूटकर रोने लगे। उनके रोने में क्या कारण था, यह तो वे ही जानें, पर मेरे मन में तो इसी भाव की छाया थी कि-

'माता सों हरि सौ गुना, तिनसों सौ गुरुदेव।
प्यार करें औगुन हरें, चरनदास सुन लेव॥'

हाय! अपार करुणासागर वात्सल्यरसामृतसिन्धु श्रीगुरुदेवकी तो ऐसी कृपा और उसका दुरुपयोग करके यह जयशंकर अपने हठ और दुराग्रह के कारण महाराजजी को दु:ख देता है। सो भगवान् दया करके इसके स्वभाव को कोमल करें और इसकी बुद्धि को स्वच्छता प्रदान करें। बस, मेरी तो यही लालसा थी।

उस समय श्रीमहाराज जी में मेरा मातृभाव था। अतः मैं रोते-रोते यही प्रार्थना कर रहा था कि माँ! तू मेरे भाई जयशंकर को शुद्ध प्रेम प्रदान कर, जिससे यह मेरे स्वरूप को और अपने कर्तव्य को समझ सके। उस समय यह भाव इतना बढ़ा कि मैं रोते-रोते मूर्च्छित हो गया।

श्रीमहाराजजी ने बहुत देर प्रतीक्षा की। जब हम नहीं लौटे तो आप भी और लोगों को साथ लेकर वहाँ पहुँचे और हम दोनों को समझाने लगे। किन्तु मैं महाराजजी के चरण पकड़कर और भी रोने लगा। उस समय मेरे मुख पर बस यही शब्द थे—'मेरे भैया को प्रेम प्रदान करो।' जब महाराजजी चुप कराते-कराते हार गये तो वे स्वयं रोने लगे। आपका रुदन तो और भी भीषण हो गया। आप तो मृतवत्सा गौकी तरह डकराते थे। आपके रुदन को देखकर तो सबका हृदय फटने लगा और अन्य सब लोग भी रोने लगे। हमने जब श्रीमहाराजजी का रुदन सुना तो हम घबराकर चुप हो गये और उन्हें चुप कराने में लग गये। तब बड़ी देर में आप सावधान हुए। इस प्रकार प्रायः दो बजे गवाँ को चले गये वहाँ से झलांगे मारते और भगवन्नाम लेते प्रायः आध घंटे में ही गवाँ पहुँच गये। वहाँ बाबूजी सब सामान रक्खे प्रतीक्षा कर रहे थे।

पहुँचते ही बाबूजी एक हाथ में गरम जल और दूसरे में परात लेकर श्रीमहाराजजी के चरण धोने चले। कौतुकी सरकार ने चुपचाप चरण धुलवा लिये। आज यह दृश्य देखकर हम दंग रह गये। मैंने बड़े गौर से बाबूजी की ओर देखा। वे अर्धविक्षिप्त और मदोन्मत्त की भाँति अर्धबाह्य दशा में थे। उनका मुँह भावावेश में लाल हो गया था, नेत्र चढ़े हुए थे और वे पागलों की तरह कुछ प्रलाप भी करते जाते थे। आज वे किसी बड़े गम्भीर भाव से भावित थे। मुझे तो उस दिन की अवस्था से यही प्रतीत होता था, मानो चिरविरहिणी श्री राधिकाजी को अत्यन्त मर्माहत समझकर श्रीश्यामसुन्दर अत्यन्त द्रवित चित्त हो उनकी कुंज में पधारे हैं, यदि आज भी वे उनकी उपेक्षा करेंगे तो सम्भवतः श्रीकिशोरीजी मर्माहत होकर प्राण परित्याग कर देंगी। इसी आन्तरिक भावगाम्भीर्य को समझकर हमारे परम कौतुकी सरकार ने चुपचाप चरण धुलवा लिये हैं। नहीं तो सामान्य
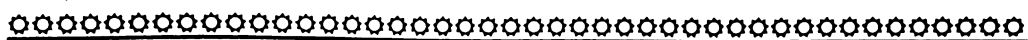
अवस्था में सहसा आपके चरण धोने का साहस करना तो नितान्त असम्भव ही था, और वह भी बाबूजी जैसे संकोची भक्त को, जिन्होंने कभी आँख भरकर भी श्रीमहाराजजी के मुख की ओर नहीं देखा। सचमुच–

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेव कीर्तनीयः सदा हरिः॥

यह श्लोक तो अपने परिकर से पूर्णतया बाबू हीरालालजी पर ही चरितार्थ होता देखा। जब ये पहले ही श्रीमहाराजजी से मिले थे तभी अपने योग, ज्ञान या वैराग्य के आवेश में उनके सामने बोल पड़े थे। किन्तु अब तो उन बातों को स्मरण करके फूट-फूटकर रोया करते थे। जब से आपने श्रीमहाराजजी का स्वरूप जाना तब से आपकी वाणी बन्द हो गयी तथा आँख-कान भी मुँद गये। अब तो मीराबाई की तरह आपको अनन्य निष्ठा थी–

'पल काटो इन नयननि के गिरधारी बिना पल अन्त निहारें।
जीभ कटै न भजै नन्दनन्दन बुद्धि कटै हरिनाम बिसारै॥
मीरा कहै जरि जाय हियो पदपंकज बिनु पल अन्त न टारै।
जो सीस नवै ब्रजराज बिना तेहि शीशहिं काटि कुआ किन डारै॥'

अब तो चातक की भाँति आपका 'एक भरोसो एक बल एक आश विश्वास' था।

बस, सब लोग पंगत में बैठकर 'अच्युतं केशवं रामनारायणम्' इत्यादि कीर्तन करने लगे और बाबूजी स्वयं हलवा परोसने लगे। पण्डित श्रीराम और सीताराम ने शाक और परांठे परोसे। ये तीन ही चीज आज की भिक्षा में थीं और तीन ही इनके बनाने वाले थे। हलवा बनाया पण्डित श्रीरामजी ने, क्योंकि ये हलवा बनाने में बड़े कुशल थे। जितने भी शाक मिले उन सबको मिलाकर एक शाक बनाया स्वयं बाबूजी ने। और पचास आदमियों के लिये परांठे बनाये सीताराम ने। यह परांठे बनाने में बहुत होशियार था। इस सादे भोजन के आगे छप्पन प्रकार के भोग भी तुच्छ थे। न जाने उस दिन बाबूजी ने भोजन में क्या जादू कर दिया था। भाई! अपनी तो मैं कहता हूं कि भोजन के प्रत्येक ग्रास पर

हृदय में आनन्द की एक तरंग सी भरती जा रही थी। सभी को एक प्रकार का नशा-सा हो रहा था। खूब खाते जा रहे हैं, किन्तु पता ही नहीं कि पेट भरा है या नहीं। बाबूजी तो सचमुच पागल हो रहे थे। भोजन परोसते-परोसते उठकर नाचने लगते थे। हमारे सरकार भी गम्भीरता त्यागकर खिलवाड़ में पड़ गये तथा बाबूजी को लक्ष्य करके अनेक वाक्य-विनोद करने लगे। कभी कहते, भाई! ये योगीराज हैं, कहीं इन्होंने अपने योगबल से आज भोजन में जादू तो नहीं कर दिया। देखो, आज भोजन कराकर ये हमें सदा अपने वश में रखेंगे।' कभी कहते, 'यह तो भोजन नहीं, साक्षात् दिव्य चिन्मय रस ही मूर्तिमान हुआ है। अथवा यही वेदान्तियों का ब्रह्म, योगियों की आत्मा तथा भक्तों का भगवान् है।' फिर कहते, 'भाई! इससे डरो मत। इसको जो जितना अधिक खायगा वह उतना ही बड़भागी है। इसे भोजन मत समझो। यह साक्षात् प्रेमरस ही है।' इस प्रकार तरह-तरह से विनोद करके आप स्वयं खूब हँसते थे और दूसरों को भी हँसाते थे। बस, बड़े आनन्द से भोजन समाप्त हुआ। किन्तु सचमुच ही भोजन करके उठे तो ऐसा मालूम होता था मानो भोजन किया ही नहीं है। शरीर एकदम हल्का, मानों आकाश में उड़ जायगा। अन्त में आचमन करके मुख-शुद्धि ली और श्रीमहाराज जी की कुटी पर आ गये। फिर घड़ी भर विश्रामकर जंगल की ओर चल दिये।

आज देर हो जाने के कारण कथा की छुट्टी कर दी। जंगल में जाकर खूब हँसे और कुछ खेल-कूद भी किया। उसी समय बात-बात में यह भी कहा कि श्रीअच्युतमुनिजी ने मुझसे स्वयं कहा था कि जो अवस्था मुझे प्राप्त नहीं है वह हीरा को प्राप्त है। अर्थात् हीरालाल को निर्विकल्प समाधि प्राप्त हो चुकी है। आप बोले, भाई, बाबूजी छिपी हुई अलौकिक विभूति हैं। ये ज्ञान, भक्ति, योग और कर्मयोग चारों से पूर्ण हैं। इनकी शक्तियों का विकास इस जन्म में नहीं होगा। ये लोकोपकार के लिये स्वयं अपनी इच्छा से दूसरा जन्म ग्रहण करेंगे। आज के भोजन में भी इनकी चित्त-शक्ति का ही बल था।' इस प्रकार हास्यविनोद में ही आपने कई रहस्य की बातें कहीं।
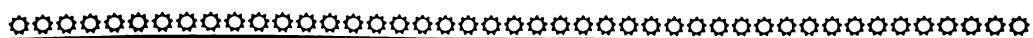
मेरी वैराग्य की तरंग

उन दिनों मुझे वैराग्य का एक नशा-सा चढ़ा रहता था। मैं श्रीमहाराजजी के पीछे नृत्य करता हुआ-सा चलता था। पण्डित जयशंकर आदि तो मेरी, हँसी किया करते थे। मैंने अपने अच्छे-अच्छे सभी कपड़े बाँट दिये। अपनी रंगीन ऊनी लोई पण्डित जयशंकर को दे दी तथा अन्यान्य वस्त्र दूसरे लोगों को बाँट दिये। एक दिन महाराजजी बरोरा में डालचन्द अहीर के घर भोजन करने गये। उस समय मैं पंडित जौहरीलाल के घर बैठा हुआ था। इतने ही में वहाँ एक विचित्र साधु आया। उसका गौर वर्ण था तथा प्राय: पच्चीस वर्ष की अवस्था थी। उसकी लम्बी-लम्बी जटाओं का जूड़ा बँधा हुआ था, कन्धे पर झोली पड़ी थी, बगल में मृगचर्म था, कमर में मूँज की करधनी थी तथा एक हाथ में डमरू और दूसरे में कमण्डल था। वह लाल रंग का लँगोटा तथा रामनामी दुपट्टा धारण किये था।

उसने मुझसे कहा, 'बाबा! कुछ भिक्षा दे, तेरा भला हो। मुझे उसके शब्द बड़े प्रिय लगे और उसका रूप भी बड़ा प्यारा मालूम हुआ। मेरी उस समय ऐसी भावना हुई कि ये साक्षात् कैलाशपति भगवान् शंकर ही हैं। मेरी हितकामना से अथवा मुझे त्याग का आदर्श दिखाने के लिये ही ये पधारे हैं। आज ये मेरे सारे मायिक बन्धनों को तोड़कर मुझे विरक्त संन्यासी बनाने के लिये आये हैं। यदि मैं इस अवसर पर चूक गया तो बड़ी हानि होगी। मुझे भिक्षा माँगकर तो ये मेरी परीक्षा कर रहे हैं। अथवा इस प्रकार कुछ लेने के मिस से ये मुझे श्रीराम-भक्ति ही प्रदान करना चाहते हैं।

यह सब सोचकर मैंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और चरण पकड़कर कहा, 'क्याआप साक्षात् श्रीशंकर भगवान् हैं?' इस पर वे हँसे और बोले, 'बाबा! साधु सभी शंकर-स्वरूप होते हैं। तुम मुझे कुछ भिक्षा दो, मैं तुम्हारे पास बड़ी आशा करके आया हूं।' यह सुनकर मुझे बड़ा संकोच हुआ कि साक्षात् शंकर भगवान् को मैं क्या दूँ। अन्त में मैंने निश्चय किया कि अपना सर्वस्व ही इनके चरणों में अर्पण कर दूँ। इसी विचार से मैंने अपना मनीबैग, जिसमें दस-बीस

रुपये थे कोट की जेब से निकाल कर उनकी झोली में डाल दिया और अपने सारे कपड़े भी उतार कर उन्हें दे दिये। केवल एक लँगोटी और अंगोछा ही रहने दिया।

भाई! सच कहता हूँ, उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो मेरे सब बन्धन कट गये। मैं मानो संसार से सर्वथा मुक्त हो गया और मेरे सिर से सारा बोझ उतर गया। अब तो मैं संसार का नहीं, भगवान् का हो गया। उसी समय एक आदमी ने आकर कहा, 'महाराजजी तुम्हें बुला रहे हैं।' मैं जिस प्रकार भूखा बछड़ा गौ के पास दौड़ जाता है उसी प्रकार उस आदमी के साथ दौड़ता हुआ डालचन्द अहीर के यहाँ पहुँचा। वहाँ देखा कि सौ माताओं से भी अधिक स्नेह भरे हुए श्रीमहाराजजी एक कम्बल के आसन पर सिद्धासन से विराजे और उनके सामने कई पात्रों में भोजन रखा हुआ है। किन्तु एक थाली आपके हाथों है। उसमें आप दाल, शाक, खिचड़ी, दही, खीर आदि सब प्रकार का सामान हाथ से मिला रहे हैं और मुख से धीरे-धीरे कुछ उच्चारण करते हुए बड़े भाव से उस भोजन में भावनाओं का बल भर रहे हैं। मैंने जाते ही चरणों में प्रणाम किया। आप बोले, 'उठ, मैंने तेरे लिये भिक्षा तैयार की है। तू बहुत दिनों का भूखा है, ले भोजन कर ले।' मैं सामने बैठ गया। आपने एक दूसरे पात्र में उसमें से आधा भोजन रख दिया और कहा खा।' साथ ही आप भी खाने लगे। बस, पूछिये मत। ऐसा भोजन तो न भूतो न भविष्यति। मुझे तो एक-एक ग्रास में पूर्ण तृप्ति, शान्ति और आनन्द का अनुभव होने लगा। भोजन करते हुए मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि आज आपने ही शिवरूप धारण करके मुझसे त्याग कराया है और अब सद्गुरु रूप से मुझे भिक्षा प्रदान की है। क्योंकि शास्त्र की ऐसी मर्यादा है कि जिस दिन गुरु शिष्य को संन्यास की दीक्षा प्रदान करता है उस दिन स्वयं भिक्षा करके उसे खिलाता है।

अस्तु! उस समय मेरे हृदय में जो भाव तरंगें उठ रही थीं उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। आज मेरे लिये यह पहला दिन था जब मैंने ब्राह्मणेतर जाति का बनाया हुआ कच्चा भोजन पाया मैं तो पूर्वीय ब्राह्मण छूआछूत की

साक्षात् मूर्ति ही ठहरा। निजामपुर में भी बराबर अपने हाथ से ही बनाकर भोजन करता था। किन्तु आज इन सब बन्धनों से छूटकर प्रसन्न हो गया।

वहाँ भिक्षा करके आप गवाँ की ओर चले, तब पण्डित जयशंकर, नित्यानंद, जौहरीलाल और मैं पीछे-पीछे हो लिये। आज मेरे हृदय में उत्कट वैराग्य हिलोरे ले रहा था। यह त्यागूँ कि वह त्यागूँ, यहाँ तक कि शरीर का त्याग भी सुखकर प्रतीत होता था। इस समय मुझे बड़ा गहरा नशा चढ़ा हुआ था। मैं पागल की तरह नृत्यसा करता चल रहा था। मेरे पाँव शराबी की तरह लड़खड़ा रहे थे। इस तरंग में मैं अपना अँगोछा भी खोलकर फेंकने लगा। तब नित्यानन्दजी ने पुकारकर कहा, 'महाराजजी! आज ललिताप्रसाद को क्या हो गया? यह तो पागल हो गया है; अपनी लँगोटी भी उतारकर फेंक रहा है।'

तब महाराजजी ने घूमकर मेरी ओर देखा और डाँटकर कहा, 'क्या करता है? मैं खिल-खिलाकर हँस पड़ा और पैरों में लोट गया। आप बोले, 'खबरदार जो तूने कोई जाहिरदारी की। भाई त्याग तो हृदय की एक गहरी अवस्था-विशेष है। यह कोई बाहर की चीज नहीं है। कपड़े नहीं पहनने से, भूखा रहने से, पैसा नहीं रखने से, कपड़े रंग लेने अथवा और कोई बाहरी चिह्न धारण करने से कोई त्यागी नहीं होता। इसमें तो दम्भ की ही सम्भावना रहती है। बाह्य चिह्न तो केवल चपरास मात्र हैं। किन्तु यदि भीतर का त्याग न हो तो बाहरी त्याग तो केवल विडम्बनामात्र है। तुम जो लँगोटी भी फेंककर बड़े त्यागी बनना चाहते हो, इससे तो संसार तुम्हारा बहुत मान करने लगेगा। लोग तरह-तरह की भोग-सामग्री लिये हर समय तुम्हारे पास खड़े रहेंगे। तुम भी धीरे-धीरे अपने को उनसे श्रेष्ठ समझकर उनकी सेवा-सत्कार स्वीकार करने लगोगे। इस तरह अपने लक्ष्य से गिरकर तुम परमार्थ से भी भ्रष्ट हो जाओगे। केवल मान-प्रतिष्ठा ही तुम्हारे हाथ लगेगी और कुछ भी तुम प्राप्त नहीं कर सकोगे। हमारे गुरुजी महाराज ने तो कभी किसी को साधु नहीं बनाया। हाँ, अत्यन्त उत्कट वैराग्य' देखकर केवल स्वामी परमानन्द को अवश्य संन्यास दिया था। वे बड़े ऊँचे दर्जे के त्यागी थे। उनका बहुत शीघ्र युवावस्था में ही शरीर शान्त हो गया। मैंने तो

बार-बार आग्रह किया, तो भी मुझे उन्होंने संन्यास नहीं दिया। आखिर मैंने स्वयं ही कपड़े रँग लिये। सो मैं तो इसे अपनी भूल ही मानता हूँ। मेरा तो यह सिद्धान्त है कि इस घोर कलिकाल में अल्पशक्ति जीव से संन्यास के कठोर नियमों का पालन होना असम्भव है। इसलिये मैं तो यही अच्छा समझता हूँ कि शुद्ध साधनों से सचाई के साथ निर्वाहमात्र जीविका का सम्पादन करते हुए श्रीसंत सद्‌गुरु के चरणों का आश्रय लेकर भगवान्नाम की शरण हो जाय। कलियुग में तो श्रीहरि का नाम ही जीवों का एकमात्र आश्रय है। इसके सिवा किसी और साधन को यथावत् सम्पादन करने की तो जीवों में शक्ति ही नहीं है।'

आपके इस उपदेश ने मेरी उस तरंग को संयत कर दिया। इधर दो महीने में कीर्तन की ऐसी वृद्धि हुई कि सारा प्रान्त प्रेमानन्द की बाढ़ से आप्लावित हो गया। मैं केवल एक महीने का प्रबन्ध करके अपनी स्त्री को अकेली छोड़कर आया था। किन्तु यहाँ मुझे तो स्वप्न में भी ध्यान यही आता था कि शिवपुरी जाना भी मेरा कोई धर्म है। शिवपुरी से चिट्ठी लेकर एक आदमी आया कि जल्दी से जल्दी आ जायँ। किन्तु मैंने तो सुनी-अनसुनी कर दी। यह खबर किसी प्रकार श्रीमहाराजजी के पास पहुँच गयी। तब उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम्हारे घर पर कौन है। मैंने स्पष्ट कह दिया कि केवल मेरी स्त्री है, उसके पास अपनी मामी को छोड़कर आया हूँ। तब आप बड़े प्रेम से बोले, 'भाई! किसी को दुःख देकर भजन करना अच्छा नहीं है। अतः अब तुम घर चले जाओ। फिर अवसर मिलने पर चले आना।' यह सुनकर मैं बड़ा मर्माहत हुआ और पृथ्वी पर लोटता हुआ फूट-फूटकर रोने लगा। इससे उस समय तो आपने यह कहकर टाल दिया कि फिर विचार करेंगे। किन्तु फिर किसी निजामपुर वाले ने कहा कि इनके घर न जाने से वहाँ विशेष चिन्ता है। तब एक दिन आपने मेरा हाथ पकड़कर कहा, 'तू मेरी एक बात मानेगा?' मैं समझ गया कि ये शिवपुरी जाने को कहेंगे। अतः कुछ उत्तर न देकर रोने लगा। तब आपने मुझे बहुत फटकारा और कहा, देखो, अपनी सत्ता किसी बात में नहीं होनी चाहिए। जब तुम मुझे बड़ा समझते हो तो मैं कुछ कहूँ उसमें अनुचित-उचित विचार करने का तुम्हें कोई अधिकार

नहीं है। भगवान् जो कुछ करते हैं वही ठीक है। जल्दी करने से काम बिगड़ जाता है। हमें तो बिल्ली के बच्चे की तरह अपनी माँ पर निर्भर रहना चाहिए। वह चाहे 'हमें गुदगुदे बिछोने पर रखे, चाहे कांटों में। वह हमें जहाँ भी रखेगी उसी में आनन्द है। बस, खबरदार अब कुछ मत बोलना। जल्दी से जल्दी शिवपुरी चला जा। शिवपुरी कौन-सी दूर है। यदि इच्छा हुई तो मैं स्वयं वहाँ जा सकता हूँ और तुम भी जब चाहो तभी आ सकते हो। किन्तु अभी आने की जल्दी मत करना। जो कुछ होना होगा स्वयं ही हो जायगा।'

मैंने सोचा अब रोने-धोने से कुछ नहीं बनेगा। अब तो यह कड़वा घूँट भरना ही पड़ेगा। किन्तु उस समय चित्त की ऐसी ही स्थिति थी कि अपने वश की बात नहीं थी। रात-दिन चौबीसों घण्टे श्रीमहाराजजी के सिवा मुझे कुछ नहीं सूझता था। ऐसा जान पड़ता था कि महाराजजी के बिना तो मेरे प्राण निकल जायेंगे। शिवपुरी में तो सब बर्हिमुख लोग हैं। वहाँ मैं किसके साथ कीर्तन करूँगा और किसकी कथा सुनूँगा। हाय! वहाँ जाकर मैं क्या करूँगा? कैसे मेरे दिन कटेंगे? ये सब बातें मैंने महाराज से कहीं। तब आप बोले, भाई! श्रीहरि सर्वशक्तिमान हैं, समर्थ हैं तथा 'कर्तुमकर्तुमन्यथार्तुं समर्थ है। उनकी माया अघटन घटनापटीयसी है। जब हम उनकी शरण हैं तो हमें चिन्ता क्यों? वे यदि चाहेंगे तो सब प्रकार के विक्षेप हटाकर हमारी सब प्रकार की सुविधा कर देंगे। बस, तुम चिन्ता छोड़कर मेरे कहने से शिवपुरी चले जाओ। पीछे क्या होगा यह मैं स्वयं ही सम्भाल लूँगा।'

तब मैंने कहा, 'वहाँ जाकर मैं किस प्रकार काल यापन करूँ और क्या साधन करूँ?' आप बोले, 'तुम पहले क्या जप करते थे।' मैंने कहा, 'गायत्री।' आप बोले, ठीक है, तुम गायत्री का ही जप करो। किन्तु उसके अर्थ पर ध्यान रखकर जपो।' फिर उसका अर्थ बताकर आप बोले, 'हृदय में इष्टमूर्ति का ध्यान, चित्त में अर्थ का चिन्तन और मुख से जप इस प्रकार एकान्त में स्थिर आसन से बैठकर जितनी अधिक देर तक हो सके जप करो। गायत्री तो समष्टि प्रार्थनात्मक मन्त्र है। उसके अर्थ पर खूब ध्यान देकर हमें सबसे पहले अपने शत्रुओं के कल्याण की भावना करनी चाहिये। फिर उदासीनों के हित की कामना करे और

तत्पश्चात् अपने इष्टमित्र और सम्बन्धियों की हित-कामना से हार्दिक प्रार्थना करे। चित्त को यहाँ तक समाहित करना चाहिये कि वह सचमुच सबके दुःख से व्याकुल हो उठे। भाई! तुम जो कुछ अपने लिये चाहते हो वह दूसरों के लिय चाहो। इसका परिणाम यह होगा कि तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जायगा और दूसरे लोग भी तुम्हारे हितैषी एवं सहायक बन जायेंगे।'

एक बार मैंने श्रीमहाराजजी से पूछा था कि लोग मुझसे अकारण द्वेष करते हैं, इसका क्या उपाय करूँ? तब आप बोले, 'तुम्हें यह क्या पता कि वे अकारण द्वेष करते हैं। संसार में अकारण तो कुछ भी नहीं होता। यह दूसरी बात है कि हम उसका कारण न समझ सकें। मैंने कहा, 'महाराजजी! मैं तो कभी किसी को कोई हानि नहीं पहुँचाता, तथापि दूसरे लोग बराबर मेरा गला काटने को तैयार रहते हैं।' आप बोले, 'नहीं, भाई! ऐसा नहीं हो सकता। यह तुम्हारी समझ की भूल है। अच्छा यह बताओ कि जो लोग तुमसे द्वेष करते हैं उन्हें तुम अपना शत्रु समझते हो या मित्र? मैं बोला, 'मेरी धारणा तो यही रहती है कि ये मेरे शत्रु हैं। तब आप हँसे और बोले–बस, यही कारण है कि वे तुमसे शत्रुता करते हैं। अब तुम उन्हें शत्रु न समझकर अपना मित्र मानो, अथवा उनमें भगवद्बुद्धि करो, या ऐसा समझो कि हम सब एक परमपिता की सन्तान होने से आपस में भाई हैं। इस प्रकार किसी भी सम्बन्ध से सही, उनके निमित्त रो-रोकर ईश्वर से प्रार्थना करो कि प्रभो! इनकी बुद्धि शुद्ध कीजिये। ये बेचारे बड़े दुःखी जीव हैं जो अकारण ही द्वेष से अपने अन्तःकरण को अपवित्र करते हैं। बस, ऐसा करने से वे सब तुम्हारे मित्र बन जायेंगे। इसके पश्चात् मैंने सबसे पहले इस बात को वहीं पण्डित जयशंकर पर आजमाया। इससे तीसरे ही दिन वे मेरे पैरों पर पड़कर खूब रोये। बस, हम दोनों भाई एक-दूसरे को गले लगाकर मिले और सदा के लिये एक हो गये। इसी प्रकार और भी दो-चार व्यक्तियों पर मैंने यह बाण चलाया। वहाँ भी यह अमोघ निकला। हाँ, उसमें यह शर्त अवश्य है कि हमारा हृदय द्वेषशून्य होकर उस व्यक्ति की हितकामना से भरपूर हो और प्रार्थना भी अत्यन्त करुणापूर्ण हृदय से एकाग्रचित्त होकर की जाय, वह केवल दिखावामात्र न हो।

फिर श्रीमहाराजजी के अधिक कहने पर, यह समझकर कि विशेष हठ करने से इन्हें दुःख होगा, मैं कलेजे पर पत्थर रखकर एक दिन शिवपुरी को चल पड़ा। किन्तु हृदय बड़ा व्याकुल था कि हाय! अब यह आनन्दविहार और रात-दिन का अमृत-स्वरूप सत्संग कहाँ मिलेगा। उस दिन चलते समय मैंने पद गाया—

हुआ बलिहार, अब कहाँ जाऊँ प्रभो!
धन धन तेरे दासों की मण्डली, जहँ बरसै नित अमृतधार।
यह विश्वासी दास प्रभु तेरा, रहै तेरे ही आधार॥

बस, इसी पद को गाता मैं रोते-रोते रेल में बैठा और वहाँ भी रोता ही रहा। लोग देखकर आश्चर्य करते और मुझसे इसका कारण पूछते थे। मैं केवल हाथ जोड़ देता था, बताने की शक्ति नहीं थी।

शिवपुरी के साथी

जैसे-तैसे शिवपुरी पहुँचा। किन्तु वहाँ मेरे प्राण छटपटाने लगे। मुहल्ले के लोग तमाशा देखने आये और बार-बार पूछने लगे कि कहो भाई! क्या बात है, तुम रोते क्यों हो? मैं कुछ बहाना करके उन्हें टालता रहा। किसी से कुछ कह देता और किसी से कुछ, किन्तु मर्म की बात किससे कहूँ? मेरे प्राणों की रक्षा का एक ही साधन था कि निरन्तर मौन रहकर हृदय में श्रीमहाराज जी की नृत्य करती हुई मूर्ति का ध्यान करूँ तथा कोई ऐसा सत्संगी मिले जिसके साथ उनकी चर्चा हो सके। जब यह इच्छा बहुत प्रबल हो उठी तो एक दिन मेरे एक कुटुम्बी भाई पण्डित छेदालाल मेरे पास आये। उनके विचार पहले से ही बहुत अच्छे थे। उन्होंने आकर मुझसे बड़े आग्रह से पूछा कि सच बताओ, क्या बात है। उनका प्रेमपूर्ण आग्रह देखकर मैंने उनसे सब बातें कह दीं। श्रीमहाराजजी की बातें सुनते ही वे व्यांकुल हो उठे और फूट-फूटकर रोने लगे। बस, हम दोनों आपस में लिपटकर खूब रोये।

आज मेरा चित्त कुछ हल्का हुआ। अब कुछ सहारा मिला। चलो, अपना दु:ख प्रकट करने के लिये एक साथी तो मिला। फिर वे बार-बार बड़े आग्रह से मुझसे महाराजजी के विषय में पूछने लगे। मुझे भी कहने में बड़ा आनन्द आता था। अत: घण्टों तक उन्हें सुनाता रहता था।

इधर अपनी स्त्री से मुझे घृणा हो गयी थी। वह एक अनपढ़, मूर्ख और कुसंग में पली हुई बहिर्मुख स्त्री थी। उसको परमार्थ का प्रेम बिलकुल नहीं था। मैं उसकी ओर से उदासीन हो गया। इसके सिवा एक ऐसा गुप्त कारण भी हुआ जिसे प्रकट करना तो शोभा नहीं देता, किन्तु पाठक इतने से ही समझ लें कि उसी के किसी षड्यन्त्र से अभी पिछले वर्ष मेरे छोटे भाई रामशंकर और मेरी माता की मृत्यु हो चुकी थी। मुझे तो किसी युक्ति से उसी के द्वारा इस षड्यन्त्र का पता लग गया था। तभी से मैंने उसका परित्याग कर दिया था। केवल लोकलाज और कुलकान के कारण ही उसे घर में रहने दिया था, नहीं तो उसे घर से बाहर निकाल देता। किन्तु अब तो हृदय शान्ति से लबालब भरा हुआ था, इसलिये उससे या किसी से भी द्वेष करने की तो गुञ्जाइश ही नहीं थी। फिर भी उसके साथ घर में रहने, उसी के हाथ का भोजन करने और उसके रक्षणावेक्षण की जिम्मेदारी तो मुझ पर थी ही। अत: उस समय का उसका संग मेरे जीवन में बड़ा संकटकाल था। साथ ही निरन्तर प्राण जाने का भी भय था। किन्तु श्रीमहाराज जी की अपार करुणा के कारण मेरे लिये वह संकट भी सुख की सामग्री बन गया।

श्रीमहाराजजी ने चलते समय मुझसे ये शब्द कहे थे कि अपनी ओर से कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। त्याग या संग्रह जो कुछ होना है, स्वयं ही होगा। एक दिन मैंने उनसे यह भी कहा था कि महाराजजी! मैं तो यह चाहता हूं कि मेरी स्त्री मर जाय। इस पर आपने बड़े नाराज होकर कहा, इसके बजाय तुम यह क्यों नहीं चाहते कि हम ही मर जायँ। तुम्हारा क्या अधिकार है कि किसी भी जीव का अनिष्ट चिन्तन करो। खबरदार जो कभी ऐसा संकल्प किया। भाई, भले-बुरे सब श्रीभगवान् के ही तो हैं। उत्तर पक्ष तो यह है कि हम किसी को भला या बुरा न समझकर केवल भगवत्स्वरूप समझें।

मध्यम पक्ष यह है कि सबकी शुभकामना से, सबकी हित-दृष्टि से उनके कल्याण के लिय श्रीहरि से प्रार्थना करें कि प्रभो! ये जीव आपकी महिमा को न जानकर और आपकी माया से मोहित होकर भूले हुए हैं। इसी से हमसे द्वेष करके ये अपने लोक-परलोक बिगाड़ते हैं। दयामय! इन पर दया करो और इन्हें प्रेमदान करो, जिससे इनकी बुद्धि शुद्ध हो। ये हमसे द्वेष न करें और आपका आश्रय ग्रहण करके अनायास ही संसार-सागर से पार हो जायँ।'

चलते समय मुझे ऐसी आज्ञा हुई थी। उसीके आधार पर मैंने उसकी ओर से अपना चित्त उदासीन कर लिया था। अथवा स्वाभाविक ही वह ऐसा हो गया था। अब मैं दिन-रात अपनी धुन में मस्त रहने लगा। प्रातः काल चार बजे ही शौच-स्नानादि से निवृत हो नितान्त एकान्त स्थान में सन्ध्योपासन करके गायत्री जप में लग जाता था। मैंने श्रीमहाराजजी के बताये हुए अर्थ में चित्त लगाकर और हृदय में श्रीमहाराजजी की नृत्य करती हुई मूर्ति का ध्यान करते हुए गायत्री का जप किया। इससे मेरा चित्त एकदम शान्त और एकाग्र हो गया। जप करते समय थोड़ी देर तो यत्न करने में संख्या का ध्यान रखता, किन्तु फिर संख्या भूल जाता। चित्त स्थिर हो जाता और मैं उसी आसन से १२ बजे तक बैठा रहता। फिर उठकर भोजन करके कुछ विश्राम करता। उसके पश्चात् स्वाध्याय में लग जाता। सायंकाल ६ बजे के लगभग बाहर जंगल में घूमने चला जाता। वहाँ से लौटकर सायंकाल की सन्ध्या करता, स्वयं कुछ पद गाता और नामकीर्तन करता। इस प्रकार रात के १२ बजे सोता और ३ बजे उठकर फिर उसी कार्यक्रम में लग जाता। किन्तु यह सब करते हुए भी प्राण छट-पटाता रहता। निजामपुर का कीर्तन, बरोरा की कथा, भक्त हुलसी जी के साथ सड़क पर विहार, नववृन्दावन का भ्रमण आदि सभी लीलाएँ निरंतर स्मृति के सामने नाचती रहती। जब उनकी याद आती तो मैं बिना जल के मछली की तरह छटपटाने लगता और रोते-रोते मूर्च्छित हो जाता।

एक बार मैं अपने परम हितैषी पण्डित रामप्रसादजी से मिलने गया। वहाँ पहुँचते ही उनके चरण पकड़कर रोने लगा। मेरी ऐसी विह्वलता देखकर

वे घबरा गये और तरह-तरह से मुझे सान्त्वना देने लगे। जब मैं कुछ शान्त हुआ तो आपने पूछा 'क्यों, क्या बात है? उनके विशेष आग्रह पर मैंने उनसे सब बातें कहीं। अब तो श्रीमहाराजजी की चर्चा सुनकर वे भी छटपटाने लगे और उनके हृदय में यह तीव्र उत्कण्ठा हुई कि किसी प्रकार मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन हों। वे बोले, 'भाई! शिवजी की कृपा, श्रीरामायणजी के प्रताप और श्रीहनुमानजी की अनुकम्पा से ही तुम्हें इस प्रकार सन्त-सद्गुरु के दर्शन हुए हैं। तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है।' यह कहकर वे बार-बार श्रीमहाराजजी का चरित पूछने लगे। मुझे जो कुछ मालूम था और दो महीनों में जो कुछ लीला मेरे सामने हुई थी उस सबका मैंने क्रम से वर्णन किया। फिर यह कहकर कि आज की कथा का विराम हुआ, अब कल फिर मिलेंगे, मैं चल दिया।

इस प्रकार रामप्रसादजी से मिलकर चित्त को बहुत सहारा मिला। ये गौड़ ब्राह्मण थे। इनके पिताजी का नाम कल्याणदास था तथा इनके दो भाइयों में नारायणदास जी इनके बड़े और दुलीरामजी छोटे थे। ये छः वर्ष की आयु में चेचक निकलने से अन्धे हो गये थे। इनके पिता खेती के काम से अपनी जीविका चलाते थे। वे बड़े ही ईमानदार, सज्जन और सत्संगी पुरुष थे। उस समय शिवपुरी में साल में एक-दो बार श्रीमद्भागवत तथा रामायण की कथा अवश्य होती थी। अतः इनके पिता बड़े प्रेम से नियमपूर्वक कथा सुनते थे। बालक रामप्रसाद भी उनके साथ कथा सुनने जाते थे। इनकी कथा में विशेष रुचि देखकर इनके पिता घर पर भी कुछ राम-चर्चा सुनाते रहते थे। वे बड़े बुद्धिमान और स्मरणशील श्रोता थे। एकबार सुनते ही इन्हें याद हो जाता था और फिर जन्मभर नहीं भूलता था। इसके सिवा ये किसी पण्डित के पास जा बैठते थे तो उससे ज्योतिष की बातें याद कर लेते थे। भगवत्स्तोत्र भी इन्हें बहुत कण्ठ थे। विष्णुसहस्त्रनाम, रामरक्षा, शिवमहिम्न एवं शिवताण्डव आदि संस्कृत स्तोत्र तथा रामायण की प्रायः सभी स्तुतियाँ इन्हें कण्ठस्थ थीं। इनके पिता भजनानन्दी भी थे। अतः इनकी भी बचपन से ही भजन में अत्यन्त रुचि थी और वह आगे भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी इन सब गुणों के कारण लोग इनका हृदय से आदर करते थे। मैं पीछे लिख चुका हूँ कि इन्हीं की अनुमति से मैंने श्रीरामचरितमानस का पाठ भगवान्

शंकर को सुनाया था और महामन्त्र का जप किया था। तथा इसीके प्रताप और इनके आशीर्वाद से ही मुझे श्रीमहाराजजी के चरणों की प्राप्ति हुई थी।

बस, अपने मनोरथ को पूर्ण होते देख आज भक्तराज रामप्रसाद जी के आनन्द का पारावार न रहा। वे अपने अंग में फूले नहीं समाते थे। प्रेम में पागल होकर वे मुझसे लिपट गये और फूट-फूटकर रोने लगे। बोले, भाई! मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन कैसे हों? हाय! मैं तो नेत्रहीन, भाग्यहीन अत्यन्त दुर्बल मनुष्य हूँ। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि रामप्रसाद जी! घबराओ मत। महाराजजी तो अन्तर्यामी हैं और बड़े ही गरीब-निवाज हैं। आप हृदय से ही उन्हें पुकारें, वे अवश्य दर्शन देंगे। इस प्रकार उन्हें कुछ ढाँढस हुआ।

अब हम तीन हो गये। हमारे सिवा एक लड़का मिढईलाल गोले भी था। यह बाल्यावस्था से ही मेरे छोटे भाई रामशंकर के साथ खेला करता था। उसका भी मुझसे प्रेम था। वह भी हमारी इस रामकहानी में सम्मिलित हो गया। बस, हम तीन-चार व्यक्तियों ने ही मिलकर थोड़ा-थोड़ा श्रीहरिनाम कीर्तन करना भी आरम्भ कर दिया।

उन दिनों न जाने क्यों मेरी चित्तशक्ति इतनी प्रबल हो गयी थी कि जो भी संकल्प करता वही तत्काल पूरा हो जाता। हमारे पंडित रामप्रसाद जी के एक चचेरे भाई पंडित मुकुन्दराम गौड़ थे। वे बड़े तर्कशील और कोरे दुनियादार आदमी थे। उन्होंने किसी प्रकार मेरा और पंडित रामप्रसाद का कुछ रोना-धेना सुन लिया। बस, अब तो उन्हें मौका मिल गया और वे हमारा खूब मजाक उड़ाने लगे। रामप्रसादजी की तो पहले भी दिल्लगी किया करते थे। उनका ऐसा व्यवहार देखकर बेचारे रामप्रसाद जी बड़े दुखी हुए और मेरे सामने रो पड़े। मैंने कहा, क्यों, क्या बात है? तो उन्होंने मुकुन्दराम के चिढ़ाने की बातें बतायीं और बोले, भगवान उसकी बुद्धिको पलट दें, उसने हमारे रोने की दिल्लगी उड़ाई है, सो वह भी डाढें मारकर खूब रोवे तो मेरा हृदय ठंडा हो जाय। किन्तु ऐसा होगा कैसे? वह तो इतने कठोर हृदय का आदमी है कि अपने माता, पिता और बड़े भाई के मरने पर भी नहीं रोया। यही नहीं वह तो बड़ा ही नृशंस, क्रूर, डाकू, पक्का चोर

और क़ातिल भी है। आज उसने मुझे यह चुनौती भी दी है कि यदि तू मुझे रुला दे तो मैं जानूं कि तेरा प्रेम सच्चा है। यह सब सुनकर मैंने कहा, 'रामप्रसादजी! आप हृदय से भगवान् से प्रार्थना करें तो यह कोई कठिन बात नहीं है।'

इसके पश्चात् एक दिन मैं सायंकाल के पाँच बजे के लगभग रामप्रसादजी के घर गया तो देखा कि वे और मुकुन्दरामजी एक ही पलंग पर बैठे हैं। मैं दोनों को नमस्कार करके एक दूसरी खाट पर बैठ गया। बस, अब वही चर्चा चलने लगी। मुकुन्दराम रामप्रसादजी के रोने की दिल्लगी उड़ाने और नास्तिकों के से तर्क करने लगा। मैं चुपचाप बैठा सुन रहा था। किन्तु हृदय में बड़ा दुःख हुआ। उस समय मेरा चित्त बहुत कमजोर हो गया था, इधर-उधर की बात जरा-सी भी नहीं सुन सकता था। मैं दुखी होकर उठना चाहता था, परन्तु यह सोचकर कि इससे भक्त रामप्रसादजी को पीड़ा होगी उठ न सका। अन्त में मन ही मन श्रीमहाराजजी से प्रार्थना करने लगा, 'भगवन्! यह दुखिया जीव आपकी माया में भूला हुआ है। इसलिये आपके स्वरूप को नहीं जानता। प्रभो! इस पर दया करो, इसे प्रेमदान देकर अपनी अचिन्त्य शक्ति का परिचय दो और अपने भक्त रामप्रसाद को शांति प्रदान करो।' यह प्रार्थना करते-करते मेरे नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। मेरी आँखें बन्द थी। अकस्मात् मेरे कानों में एक धड़ाके की-सी आवाज पड़ी और मैंने चौंक कर आँखें खोलीं तो देखा कि मुकुन्दराम मूर्च्छित हुआ पृथ्वी पर पड़ा है। रामप्रसादजी ने घबराहट से अस्त-व्यस्त होकर उसे उठाया। उनके स्पर्श से उसे होश हुआ तो वह रामप्रसाद जी के चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगा। यह सब देखकर मैं तो अपने भगवान् की दया का स्मरण करते हुए यह छन्द गाने लगा—

पाई न गति केहि पतितपावन राम भज सुनु शठ मना,
गणिका अजामिल गीध व्याध गजादि खल तारे घना।
आभीर यवन किरात खल स्वपचादि अति अघरूप जे,
कहि नाम वारेक तेपि पावन होत राम नमामि ते॥

अब क्या था? मानो बारूदखाने में आग लग गयी। मुकुन्दराम उठकर नाचने लगा। रामप्रसादजी भी उपर्युक्त छन्द गाते-गाते अपने रामकी पतितपावनता का परिचय पाकर मस्त हो गये। मुकुन्दराम ने रामप्रसादजी को आलिंगन किया। फिर वे मेरे पैरों की ओर झुके। यह देखकर मैं तो फूट-फूटकर रोने लगा। उस समय मुझे तो किसी का भी आदर, नमस्कार, सत्कार और पूजा आदि हृदय से सहन नहीं होता था। मेरा रोना देखकर तो वे अपना रोना भी भूल गये।

बस, उसी दिन से मुकुन्दराम का रामप्रसादजी से सच्चा स्नेह हो गया। अब वे उन्हें कभी नहीं चिढ़ाते थे, बल्कि जब भी मिलते केवल सत्संग तथा महाराजजी की ही चर्चा करते थे। उनके चित्त में भी श्रीमहाराजजी के दर्शनों की इच्छा बढ़ी। इस प्रकार कई आदमी एक ही व्यथा के रोगी हो गये। कई मनुष्यों का हमारे साथ पूर्वजों के समय से ही बैर-भाव चला आता था। अत: इस समय वे मुझसे भी बैर मानते थे। उन्हीं के विषय में मैंने श्रीमहाराजजी से कहा था और उन्होंने उस बैर की निवृत्ति का उपाय बताया था। अब श्रीमहाराजजी के आदेशानुसार, जब मैं एकान्त में भजन करने बैठता तो, उनके बैर की निवृत्ति के लिये भगवान् से प्रार्थना करने लगा। ऐसा करनेसे दो-चार दिन में ही वे लोग, जो मुझे जन्म भर शत्रु की दृष्टि से देखते और मौका मिलने पर मारना चाहते थे, अब एक-एक करके मेरे पास आकर अपना अपराध स्वीकार करने लगे और सदा के लिये निर्वैर हो गये। इतना ही नहीं, उनमें से कितने ही तो परमार्थ-पथ में मेरे मित्र बनकर भजन साधन में भी सहायक हो गये। भगवान की इस अहैतु की कृपा का मैं बार-बार धन्यवाद देने लगा। श्रीरामचरितमानस के ये वाक्य मैं बार-बार पढ़ने लगा-

'यथा सुअंजन आंजि दृग, साधक सिद्धि सुजान।
कौतुक देखहिं शैल वन भूतल भूरि निधान॥'
'गुरु बिनु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावहिं वेद-पुरान, सुख कि लहिय हरिभक्ति बिनु॥'
'गुरुबिनु भव निधि तरइ कि कोई। जो विरंचि शंकर सम होई॥'

इन सब बातों का सत्य रहस्य श्रीगुरुकृपा से ही समझ में आया है। मैंने जिन भक्तिसार और रामायण आदि ग्रन्थों को जन्मभर पढ़ा और सुना था उनमें

क्या-क्या रहस्य भरे पड़े हैं, इसका पता तो श्रीगुरुकृपा से आज ही लगा। उनका गूढ़तम गुप्त रहस्य तो आज ही दृष्टिगोचर हुआ। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि उनके एक-एक पद पर प्राणपर्यन्त न्यौछावर कर दूँ। भाई! सच बात तो यह है कि जब तक श्रीगुरुकृपा से हृदय के पटल खुल नहीं जाते तब तक स्वार्थ-परमार्थ का कुछ भी रहस्य समझ में नहीं आता। किन्तु वह गुरुकृपा भी तो बड़ी दुर्लभ वस्तु है। उसकी प्राप्ति का साधन भी वही है और साध्य भी वही है। वह परम स्वतन्त्र है। हाँ, उसकी प्राप्ति सच्ची भूख ही उसका एकमात्र साधन बताया जाता है। पर वह भूख पैदा कैसे हो– इस प्रश्न से फिर वही उलझन खड़ी हो जाती है। मेरी उस समय क्या स्थिति थी, कुछ कहने सुनने में नहीं आती। मैं दिन-रात पागल की-सी चेष्टाएँ करता रहता था। उस समय मुझे निरन्तर ही पूर्णतया यह अभिमान जाग्रत रहता था कि मैं राम का दास हूँ–

दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः।।
'यह अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।'

उन दिनों मेरी अवस्था बड़ी अजीब रहती थी। मुझे छः-छः घण्टे तक बड़े विचित्र स्वप्न दिखाई देते थे। उनमें मुझे साकेत, गोलोक, बैकुण्ठ तथा कैलाश आदि भगवद्धामों का और यमपुरी के सब नरकों का भी प्रत्यक्ष की तरह दर्शन हुआ। उसी अवस्था में मुझे यह भी अनुभव हुआ ये सब धाम वस्तुतः एक ही हैं–एक ही चिन्मय-धाम भक्तों की अपनी-अपनी भावना के अनुसार उस-उस रूप में प्रतीत होता है।

शिवपुरी में प्रथम पदार्पण

उस समय मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शनों की निरन्तर बड़ी उत्कण्ठा बनी रहती थी। इसलिए मुझे खाना, पीना, सोना या बात करना कुछ भी नहीं सुहाता था। मैं दोपहर तक तो जप में लगा रहता था और फिर भोजन करने के पश्चात् रात के दस-ग्यारह बजे तक रामप्रसादजी के पास, एकान्त❀ में गंगा तट पर अथवा जंगल में बिताता था। उन दिनों मुझे आदमी की गन्ध नहीं सुहाती थी। बस, कोई चर्चा करता तो महाराजजी की और सुनता तो महाराजजी की। मैं जब एकान्त में रोने लगता तो रोते-रोते मूर्च्छित हो जाता था और घंटों मूर्च्छित ही पड़ा रहता था। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि महाराजजी मेरे सामने खड़े हैं, अथवा बैठे हैं और मुझे बड़े प्यार से समझा रहे हैं। इसी से मैं सावधान हो जाता था। मुझे ऐसा अनुभव दिन में दो-चार बार होता था। वास्तव में यह क्या बात थी, सो तो वे ही जानें। मुझे प्रथम तो निद्रा आती ही बहुत कम थी और जब आती थी तब भी स्वप्न में श्रीमहाराजजी को ही देखता था। ऐसा मालूम होता मानो निजामपुर में कीर्तन कर रहा हूँ, गवाँ की कुटिया पर बैठा हूँ अथवा श्रीमहाराजजी के साथ कहीं ज़ंगल में घूम रहा हूँ।

यह सब होते हुए भी मुझे यह चिन्ता निरन्तर बनी रहती थी कि अब मुझे श्रीमहाराजजी के दर्शन कब और कहाँ होंगे। मुझे रोज यह इच्छा होती थी कि आज महाराजजी के पास चला जाऊँ। किन्तु चलते समय मुझे उन्होंने आज्ञा दी थी कि जब तक मैं न बुलाऊँ मत आना या पत्र लिखकर मुझसे पूछ लेना। अथवा जब उचित समझूँगा तब मैं स्वयं ही तुम्हारे पास आ जाऊँगा। अत: इन सब बातों को स्मरण करके मेरे प्राण छटपटा रहे थे कि हाय ! अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे श्रीमहाराजजी के दर्शन मिलें। मैं निरन्तर इन्हीं विचारों में डूबा रहता था; किन्तु यह आशा तो मुझे स्वप्न में भी नहीं थी कि

❀ रामगंगा।

महाराजजी स्वयं ही कभी यहाँ भी आ सकते हैं। इस स्थान का तो उन्हें ठीक पता भी मालूम नहीं था। अतः मैं यह समझकर कि महाराजजी ने मुझे टाल दिया है, निराश हो जाता था।

अब यहाँ पाँच-सात सत्संगी बन गये थे। इन्हींके साथ मिलकर कुछ कीर्तन और श्रीमहाराजजी की चर्चा कर लेता था। उनकी चर्चा में ऐसा जादू था कि उसे सुनकर ये लोग भी मुग्ध होने लगे तथा इनकी इच्छा भी श्रीमहाराजजी के दर्शनों की होने लगी। बस, जैसे-तैसे हमारा काल-यापन हो रहा था। किन्तु यह चिन्ता हर समय बनी रहती थी कि श्रीमहाराजजी कब और कहाँ मिलेंगे। अकस्मात् एक दिन दोपहर को किसी ने आकर कहा, 'कोई संन्यासी महात्मा श्रीभागवतजी के मन्दिर में बैठे हैं। वे बड़े तेजस्वी हैं, उनका गौर वर्ण है और लम्बा शरीर है तथा वे लम्बा ही कुरता पहने हुए हैं। उनके हाथ में कमण्डलु है तथा साथ में दो आदमी और भी हैं। वे अभी घाम में चलकर आये हैं; इसलिये घाम और थकान के कारण वहाँ बैठ गये हैं और तुम्हें बुला रहे हैं।'

बस, ये शब्द सुनते ही मैं पागल की तरह दौड़ा। मन में निश्चय हो गया कि अवश्य महाराजजी ही हैं। जब मन्दिर में पहुँचा तो देखा आप वहाँ बैठे हैं और घाम के कारण बहुत व्याकुल हो गये हैं। मैंने जाकर श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम किया और लोटने लगा। उस समय मेरी जो हालत थी उसे श्रीगोस्वामीजी के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

'जिमि मरुभूमि कल्पतरु जामा।'
अथवा— **यथा दरिद्रहिं पारस पाये।'**
अथवा— **'अन्धहिं लोचन लाभ सुहावा।'**
अथवा— **'जन्म दरिद्र मनहु निधि पाई।'**

बस, मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा। मैं श्रीमहाराजजी की इस अहैतुकी अपार करुणा को देखकर मुग्ध हो गया, जड़ हो गया। घोर ग्रीष्म, वैशाख मास की कड़ी धूप और दिनकी ९ बजे की गाड़ी से करेंगी स्टेशन पर उतरकर दस

मील कच्चा रास्ता पैदल ही चलकर आये हैं। हाय! कितना कष्ट सहन किया। उधर रात को २ बजे गवाँ से चलकर बारह मील दूर बबराला स्टेशन से प्रातः काल ७ बजे के लगभग गाड़ी पर बैठे थे। इतना भारी कष्ट आपने इस अधम शरीर के लिये उठाया। अहा! कैसी अजीब करुणा है! कैसा अपूर्व वात्सल्य है! कितनी उदारता है! क्या कभी कोई जीव या ईश्वर भी ऐसा अद्‌भुत प्रेम कर सकता है?

जब मैं बहुत देर तक रोता रहा तो आप बोले, 'अरे ! पागल ! तुझे रोने की सूझी है, हमारे तो भूख प्यास के मारे प्राण छटपटा रहे हैं। चल उठ, जल्दी से जल पिला।' यह सुनकर मैंने अपने को सँभाला और आपका सामान उठाकर चला। मेरे मकान के सामने एक छोटा-सा शिवमन्दिर और कुआँ है। वहीं लाकर आपको बैठाया और फिर जल्दी से दही की लस्सी बनाकर आपके सामने रक्खी। तब आपने हाथ-पाँव और मुँह धोकर जलपान किया। फिर बोले, 'अरे भाई! आज तो बड़ी कठिनता से प्राण बचे हैं। चलते समय प्रतिज्ञा की थी कि शिवपुरी पहुँच कर ही अन्न-जल ग्रहण करेंगे। हमको यह पता नहीं था कि शिवपुरी स्टेशन से इतनी दूर है। आज तो शिवपुरी आने में पूरा तप हो गया। मैं और यह थानसिंह तो इतने नहीं घबराये, किन्तु यह हेतराम बड़ा कमजोर है। इसके तो सचमुच ही प्यास के कारण प्राण छटपटाने लगे। इस बेचारे को एक-एक कदम चलना भारी हो गया। मैं इसे बड़ी हिम्मत बँधाकर यहाँ तक लाया हूँ। यह तो एक-दो मील पर ही बैठ जाता था, इसको अधिक व्याकुल देखकर मैंने इससे कई बार कहा भी कि तू कुछ खाकर पानी पी ले। किन्तु इसने कहा, 'आपके बिना मैं कैसे पानी पी सकता हूँ। यदि प्यास के कारण मेरे प्राण भी चले गये तो कोई परवा नहीं। अपने गुरुजी के पास जाने में मरकर भी मैं बैकुण्ठ जाऊँगा। सचमुच हेतराम निकला बहुत पक्का। फिर हेतराम की पीठ ठोककर आप हँसने लगे, शाबास, बेटा! यह मार्ग इतना ही कठिन है। इसमें तो **'पग-पग पर बरछी लगें, स्वास-स्वास पर तीर'** अरे! बड़े से बड़ा कष्ट उठाकर भी यदि गुरुदेव के दर्शन हो जायँ तो बहुत ही सस्ता है। बस, जीव

का तो परम-पुरुषार्थ यही है कि दाँत से दाँत पीसकर श्रीसद्‌गुरु के चरणों की प्राप्ति कर ले तथा एक बार बड़े से बड़ा कष्ट सहकर भी उनकी कृपा को सम्पादन कर ले। फिर तो वह सदा के लिये निश्चिन्त हो जाता है। सो भाई हेतराम! तू धन्य है, जो तू ने प्राणों की बाजी लगाकर अपने गुरुदेव के दर्शन किये। अब तेरा कर्त्तव्य पूरा हो गया। तू निर्भय है, अब तो निश्चिन्त होकर तान दुपट्टा सो जा।

पाठको! देखा आपने, हेतराम को निमित्त बनाकर हम लोगों को आपने कैसा सुन्दर उपदेश दिया है। बाह श्रीगुरुदेव दयालु! आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

मैंने भोजन तैयार कराया तथा थोड़ी देर विश्राम कर लेने पर वहाँ कुएँ पर ही आपको स्नान कराया। स्नान करते-करते आप कुआँ और मन्दिर की सफाई करने लगे। ऐसी बढ़िया सफाई हुई कि कुआँ और मन्दिर आइना हो गये। सफाई करते-करते आप बोले-

'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चन वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥'

'यह जो नौ प्रकार की भक्तियाँ हैं इनमें चौथी पादसेवन भक्ति है। इसी के अन्तर्गत मन्दिर और कुएँ की सफाई करना भी है।

स्नान कर चुकने पर आपने थोड़ी देर मन्दिर में बैठकर ध्यान किया। इतने में भोजन भी तैयार हो गया। जल्दी-जल्दी में तथा बनाने वाली भी चतुर एवं भावपूर्ण न होने के कारण बहुत सामान्य-सा आलू का शाक और पूड़ियाँ ही बन सकीं। किन्तु आपने प्रेम से भोजन किया और खूब खाया। आश्चर्य तो यह था कि आप पूड़ी अथवा आलू का शाक प्रायः नहीं खाते थे, किन्तु उस दिन तो बड़े प्रेम से खाया। मुझे तो बड़ी ही लज्जा मालूम हो रही थी कि क्या यह भोजन आपके योग्य है, किन्तु आप उल्टी सराहना करते जा रहे थे। उनके कारण मेरा संकोच और भी बढ़ रहा था। तथा आपकी अपार करुणा और वात्सल्य देखकर मेरा हृदय छटपटा रहा था।

भोजन के बाद कुल्ला करके आपने उसी शिवमन्दिर में थोड़ी देर विश्राम किया। फिर आप उठकर बैठे तो इधर-उधर से दो-चार आदमी आकर आपके पास बैठ गये। उनसे कुछ भगवच्चर्चा होती रही। सायंकाल में मैंने अपने मकान के सामने वाले लम्बे चबूतरे को खूब साफ करके उस पर खूब छिड़कावकर दिया। प्रायः ६ बजे आप वहाँ विराजे और आने वाले नर-नारियों को उपदेशामृत पान कराते रहे। आपके श्रीमुख का वचनामृत पान करके लोगों को बड़ा आनन्द हुआ। फिर साढ़े सात बजे आप जंगल को चल पड़े। मैं आगे-आगे हो लिया। प्रायः एक मील जाकर बोले, 'आज इतना ही ठीक है, सब लोग थके हुए हैं। वहाँ शौचादि से निवृत्त होकर कुछ देर एकान्त में ध्यान में बैठे। फिर प्रायः ९ बजे लौटकर भोजनादि से निवृत्त हुए। इस समय कुछ लोग आ गये। तब आपने बैठे-बैठे ही कुछ देर कीर्तन किया और कुछ देर कीर्तन का स्वरूप वर्णन किया। उस समय सब लोगों ने प्रार्थना की कि महाराजजी! एक बार तो यहाँ अच्छी तरह कीर्तन हो जाना चाहिये। आप बोले, अच्छा, अब तो असमय हो गया। कल कहीं खुली जगह देख लेना, तब कीर्तन करेंगे, यहाँ के सभी प्रेमियों को सूचना दे देना कि कल शाम को सूर्यास्त के समय अमुक स्थान पर एकत्रित हो जायँ। बस, सबके विचार से वैश्यों का ठाकुर द्वारा कीर्तन के लिये निश्चित हुआ। तब आपने कहा, उस स्थान की जितनी भी हो सके सफाई की जाय हो सके तो उसे गोबर से लीप भी दिया जाय। देखो, हमारे गुरु महाराज कहा करते थे कि सफाई ही खुदाई है। अतः तुम लोग जितनी बाहर की—स्थान, वस्त्र, शरीर एवं भोजनादि की सफाई रखोगे उतना ही जल्दी तुम्हारा चित्त शुद्ध होगा और अपने पूज्य स्थानों की सफाई तो साक्षात् भगवान् की पादसेवन भक्ति ही है। इसलिये यह बात भी अभी निश्चय कर लो कि कौन-कौन वहाँ की सफाई का काम करेंगे। तब कई लोगों ने बड़े हर्ष से कहा, महाराज! हम सफाई करेंगे और हम ही सब लोगों को सूचना भी कर देंगे।

फिर आपने कहा, 'सुना है, यहाँ रामगंगाजी हैं। सो जहाँ भी सुन्दर और एकान्त घाट हो अभी निश्चय कर लो। हमें प्रातः काल ३ बजे उठकर गंगा-स्नान

को जाना है। उस समय कोई होशियार-सा आदमी साथ चलकर हमें रास्ता बता दे। 'इस पर कई आदमियों ने कहा, 'महाराज! मैं बड़े बढ़िया घाट पर ले चलूँगा।' आप बोले, अच्छा, प्रातः काल जो भी ठीक तीन बजे आ जायगा उसीके साथ चलेंगे। अब आप लोग घर जाकर आराम करें। 'लोगों को बहुत कष्ट हुआ, क्षमा करें।' तब कुछ लोगों ने चरण-सेवा करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु आपने बड़े प्रेम से निषेध कर दिया। अतः सब लोग चले गये। आप भी आराम करने लगे। किन्तु मैं निषेध करने पर भी हठपूर्वक चरण दबाने लगा। तब आप हँसकर हेतराम से बोले, 'अरे हेतराम! भाई, तू बहुत थक गया है। अतः हम लोगों का धर्म तो यह है कि तेरे पाँव दबायें।' इस पर वह बालक की तरह गिड़गिड़ाने लगा और स्वयं आकर महाराजजी के चरण चाँपने लगा। तब आप बोले, हेतराम! यह भी एक खास युक्ति है कि यदि स्वयं थका हो तो किसी दूसरे के पाँव दबा दे। इससे अपनी थकान दूर हो जाती है, और वास्तव में तत्त्व की बात भी यही है कि जो कुछ तुम अपने लिये चाहते हो वही दूसरों के साथ करो। बस, भगवान् तुम्हारी उदारता से प्रसन्न होकर वह चीज पहले तुम्हें प्रदान करेंगे, फिर दूसरे को भी देंगे। स्वार्थी होकर केवल अपने ही भले की इच्छा करना उत्तम पक्ष नहीं है। देखो, श्रीरामजी ने गृधराज से कहा था—

'परहित बस जिनके मन माहीं । जिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देहुँ कहा, तुम पूरण कामा ॥'

फिर आपने बड़े प्रेम से हम लोगों को सोने की आज्ञा दी और यह भी कहा, 'कौन ऐसा वीर है जो हमको ठीक ३ बजे जगा दे। उस समय सम्भवतः आपके पास जेबी घड़ी थी। मैंने मन में विचार किया कि मैं ही जगाने की चेष्टा करूँगा, किन्तु प्रकट में कुछ नहीं कहा। सब लोग यथा स्थान जाकर सो गये। किन्तु उस समय आँखों में नींद कहाँ? हर समय मस्ती ही मस्ती थी। ठीक बारह बजे जाकर तो सोये ही थे। कठिनता से दो ही घण्टे नींद आई होगी कि मेरी आँखें खुल गयी। आप बाहर चबूतरे पर सोये थे और मैं भीतर घर में। मैं उठकर बाहर आया तो देखा कि आप पहले से ही उठकर ध्यान में बैठे हैं।

साथ ही भाई छेदालाल और मिढ़ईलाल आदि कुछ भक्तजन भी बैठे हुए हैं। मैं देखकर दंग रह गया। भाई! ये लोग धन्य हैं। मेरा अभिमान तो वृथा ही हुआ।

हम लोगों को आया जानकार आपने घड़ी देखी तो प्राय: तीन ही बजे थे। आप तुरन्त उठकर चल पड़े। गंगाजी वहाँ से प्राय: दो मील थीं। वहाँ जाकर शौचादि से निवृत्त हुए और स्नान किया। बहुत देर तक तैरते रहे। फिर लौटकर बाबा कैलाशगिरिजी की मढ़ी पर गये। यहाँ एक झाड़ी और बाग है। बड़ा ही रमणीक एकान्त स्थान है। वहाँ अनेक प्रकार के विनोद करते रहे। कहीं कीर्तन किया, कहीं बैठकर थोड़ी देर ध्यान किया तथा सब लोगों से भजन सुने। मैंने भी अपने वही पुराने दो पद गाये–

'हुआ बलिहार अब कहाँ जाऊँ प्रभो।' इत्यादि ।

तथा–

'पाई न गति केहि पतितपावन राम भजु सुनु शठ मना।' इत्यादि।

बस, ऐसा रंग जमा कि सब आनन्द में विभोर हो गये। फिर बस्ती में आकर भोजन करके बड़े ठाकुरद्वारे में विश्राम किया। तदनन्तर आप स्वाध्याय करने लगे। इतने ही में इधर-उधर से कुछ प्रेमी आ गये। तब कुछ राम चर्चा होने लगी। भीड़ कुछ अधिक हो गई तथा सब प्रकार के लोग इकट्‌ठे हो गये। मित्रसेन पण्डा आकर कुछ तर्क-वितर्क करने लगे। तथा सुल्फेबाज मूलचन्द पुजारी अलग ही अपनी दाढ़ी फटकाने लगे और बोले, 'हमसे कहो तो अभी पाँच मिनट में भगवान् को प्रकट कर दें' तब महाराजजी ने बड़ी नम्रता से कहा, 'हाँ महाराज! सन्तों को सब सामर्थ्य है। भगवान तो सन्तों के आधीन हैं। श्रीमद्भागवत में कहा है–**'अहं भक्तपराधीनों ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः।** मैं तो भक्तों के अधीन हूँ। जिस प्रकार पक्षी पिंजड़े में बँध जाता है उसी प्रकार मैं भी भक्तों के में हृदय बँध जाता हूँ।' अच्छा तो, आओ भाई! इन्हीं सन्त-भगवान् के चरणों को पकड़ें। ये ही हम पर कृपा करके श्रीहरि के दर्शन करायेंगे।'' ऐसा कहकर आप ज्यों ही उठे कि मूलचन्द भागे। तब महाराजजी हँसते हुए बोले, 'ललिताप्रसाद! पकड़ लो, सन्त भगवान् भाग चले।' बस, मैं चला उनके पीछे

और वे भागे। वे संकोचवश ऐसे भागे कि उन्होंने फिरकर पीछे फिर भी नहीं देखा, क्योंकि आयु में बड़े होने पर भी सम्बन्ध में वे मेरे भतीजे होते थे। इसी तरह आप और भी विनोद करते रहे।

वहीं रामप्रसादजी के भाई मुकुन्दराम भी आ गये। उन्होंने प्रार्थना की कि महाराजश्री! हमारी बस्ती पर कृपा करके कुछ दिन यहीं विराजें। आप बोले, 'भाई! कुछ दिन क्यों, मैं तो सदा यहीं रहना चाहता हूँ। तुम मुझे नौकर रख लो। तुम्हारा सब काम-काज करता रहूँगा। बस, तुम मुझे दो रोटियाँ खाने को दे देना। इसी प्रकार जब पण्डित वेणीराम कान्यकुब्ज ने कुछ वेदान्त सम्बन्धी प्रश्न किये तो उनको भी बड़ी शान्ति से समझा दिया। फिर रामप्रसादजी ने पूछा, महाराजजी! क्या इस अधम शरीर को भी श्रीरघुनाथजी के दर्शन हो सकते हैं? यह कहकर वे रो पड़े। बस श्रीमहाराजजी ने कहा, रामप्रसादजी! निराश होने की कोई बात नहीं है श्रीरामजी तो कोल, किरात, भील, वानर और भालुओं के भी मित्र हैं, आप जैसे भक्तों को तो स्वयं ढूँढते फिरते हैं।

इतने ही में पण्डित मुकुन्दराम का लड़का ब्रजलाल, जो इस समय छः साल का था आया। उसने अपने पिताजी के कहने से श्रीमहाराजजी को प्रणाम किया। महाराजजी ने उसके सिर पर हाथ रखा। हाथ रखते ही उसका अन्तःकरण स्वच्छ हो गया। अब तो एक बाजीगर का-सा खेल होने लगा। उससे कोई भी व्यक्ति कुछ पूछता तो ब्रजलाल स्वयं ही बोल पड़ता और उस बात का ठीक उत्तर दे देता। महाराजजी तटस्थ होकर यह तमाशा देखने लगे। ब्रजलाल की बुद्धि का चमत्कार देखकर आप, यदि कोई प्रश्न करता तो उससे यही कह देते कि इस बालक से पूछो, मुझसे तो यही बढ़कर है। उस समय उसका अन्तःकरण ऐसा स्वच्छ हुआ कि वह पूरा अन्तर्यामी और सर्वज्ञ बन गया। बिना पूछे ही दूसरों के हृदय का हाल कहने लगा तथा बड़ी गम्भीरता और शान्ति से सबके प्रशनों का उत्तर देने लगा। यह चमत्कार देखकर सब लोग चकित हो गये। सबने समझा कि यह कोई बाबाजी की करामात है।

इसी समय ब्रजलाल ने महाराजजी के चरण पकड़कर प्रार्थना की कि सारी शिवपुरी को प्रेम प्रदान करो। महाराजजी ने कहा, भाई! तू भगवानदास है। तू जो भी चाहे हो ही सकता है। दास तो भगवान् से भी बढ़कर होता है–

'भक्त बड़ो भगवान् ते, चारों जुग परमान।
सेतु बाँधि रघुवर गये, कूद गये हनुमान॥

बस, तू आज से भगवानदास हुआ। अब सब तुझे इसी नाम से पुकारेंगे। अच्छा, भगवानदास! तू चाहता है कि सारी शिवपुरी को प्रेम प्रदान करें; सो जिसे भगवत्प्रेम की इच्छा है उसे तो तुम प्रेम प्रदान कर सकते हो किन्तु जो चाहता ही नहीं उसे तुम क्या करोगे? यह सुनकर भगवानदास चरणों पर लोट गया और बोला, 'नहीं, महाराजजी ! सभी को प्रेम प्रदान करो।' यह कहकर वह जोर-जोर से रोने और पृथ्वी पर लोटने लगा।

बेचारे मुकुन्दराम जी घबरा गये कि उनके एकमात्र पुत्र को यह क्या हो गया। किन्तु वे भी प्रेम का कुछ चमत्कार देख चुके थे, इसलिये चुप रहे। तब श्रीमहाराजजी ने कहा, 'उठो, भगवानदास! तुम जो चाहोगे वही होगा। अच्छा इन सब लोगों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करो कि शाम को यहाँ आकर दर्शन दें तथा और भी सब लोगों को साथ लावें।' तब भगवानदास उठकर एक-एक के पैरों में पड़कर प्रार्थना करने लगा। सब लोग चकित होकर आपस में इस अद्भुत प्रसंग की चर्चा करते चले गये। इस तरह हमारी शिवपुरी में यह सम्वाद पहुँच गया कि एक बहुत बड़े सिद्ध महापुरुष आये हैं और आज रात को बड़ा भारी कीर्तन करेंगे, उसमें वे सभी को भगवत्प्रेम प्रदान करेंगे।

सायंकाल में महाराजजी का कमण्डलु हाथ में लेकर वही जमूड़ा भगवानदास आगे-आगे चला और पीछे-पीछे हम सब हो लिये। बाहर जंगल में जाकर सब शौचादि से निवृत्त हुए और कुछ देर एकान्त में बैठे। बालक भगवानदास तो विचित्र हो गया। वह तो श्रीमहाराजजी के मन की बात जानने लगा। उसमें तो सचमुच कोई दिव्य आवेश आ गया। अब यहाँ महाराजजी ने

अपने दूसरे जमूड़े को भी चेताया। वह था उनका गवाँ के बगीचे का बागवान थानसिंह। आपने उससे हँसकर कहा, 'थन्ना! भाई, आज तो बड़ा संकट उपस्थित है। आज अपने महावीर को बुलाओ, वे हमें इस संकट से बचावें। फिर आप हेतराम से बोले, 'हेतराम? अरे, यह तेरा महावीर है, तू इसे प्रणाम कर।' तब भोलाभाला हेतराम हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा। जब पाठ समाप्त हो गया तो आपने हँसते हुए हेतराम को डाँटकर कहा, 'अरे! तू इसको प्रणामकर।' तब बेचारे हेतराम ने थन्ना को प्रणाम किया। बस, प्रणाम करते ही थन्ना को आवेश हो गया। वह 'हूँ' 'हूँ' करने लगा, जोरों से ऊपर को उछलने लगा तथा बड़े जोर से रामनाम उच्चारण करके गर्जने लगा। बोला, 'हेतराम! तू क्या चाहता है?' बेचारा हेतराम महाराजजी का मुँह ताकने लगा। महाराजजी ने कहा, 'आज हेतराम बड़ी भारी बात चाहता है। उसकी इच्छा है कि सारे विश्व को भगवत्प्रेम प्राप्त हो और उसका श्रीगणेश यह हो कि आज सारी शिवपुरी भगवत्प्रेम में पागल हो जाय।'

थन्ना बोला, 'आप जो चाहेंगे वही होगा।' यह कहकर वह श्रीमहाराजजी के चरणों में लोट गया। महाराजजी जोरों से हँसने लगे तथा हम सबको भी हँसी आ गई। बड़ा आनन्द हुआ।

अब शाम हो गयी। बोले, 'जल्दी चलो, आज कीर्तन करना है।'

शिवपुरी की अद्‌भुत बातें

आज कई भक्तों ने बड़े परिश्रम से मन्दिर साफ किया है। लीप-पोतकर आम का बन्धनवार लगा दिया है तथा कहीं से लाकर एक-दो फर्श भी बिछा दिये हैं महाराजजी ने सायंकाल में ठीक आठ बजे पहुँचकर कीर्तन आरम्भ किया। सबसे पहले कीर्तन मण्डल में पहुँचकर साष्टांग प्रणाम किया, फिर कुछ प्रार्थनात्मक शब्द कहे। आप बोले, 'हे जगदीश्वर! हे जगन्नाथ! हे जगन्नियन्ता! हे जगदाधर! विश्वमूर्ते! हम सब आपके चरणों में प्रणाम करते हैं। हे प्रकाशस्वरूप! हे प्रेमस्वरूप! हे कल्याणस्वरूप! आप हमें मार्ग दिखाओ। हे अनन्तशक्ति सर्वाधार शिवस्वरूप! हमारे त्रिविध तापों को दूर करो और हमें अपने चरणों की भक्ति प्रदान करो। सुना है कि आपके नाम, धाम लीला और स्वरूप वस्तुत: एक ही हैं। आज हमारे हृदय में अपने पवित्र नाम की दिव्यशक्ति प्रदान करो, जिससे हमारा मन चंचलता को त्याग आपके चरण कमल का चंचरीक बन जाय। हे शचिनन्दन गौर हरि! हे श्रीपाद नित्यानन्द! तथा हे अद्वैत, गदाधर एवं श्रीवासादि भक्तवृन्द! आज हमारे हृदयों में प्रकट होकर श्रीहरिनाम का रस प्रदान करो। आज हम सभी नाम प्रेम से भरकर विश्व को प्रेम-प्रदान करने में समर्थ हो सकें। इस प्रकार आपके श्रीमुख से उस समय जो शब्द निकलते थे वे तो मानो साक्षात् मुरली का दिव्य नाद ही था। आज मुझे उसकी छायामात्र स्मृति है। उसी के आधार पर उपर्युक्त पंक्तियाँ लिखी हैं।

आज भक्तों की भीड़ से मन्दिर का आँगन खचाखच भरा हुआ था। प्रार्थना सुनकर सभी के चित्त एकाग्र हो गये। तब सबके साथ मिलकर आपने दीर्घ स्वर में ओंकार और 'राम' नाम का उच्चारण किया और उसके पश्चात् 'हरे राम! हरे कृष्ण!' केवल इतने पद का कीर्तन आरम्भ किया। बस, फिर क्या था? सारी शिवपुरी में हल्ला मच गया। चली भीड़ की भीड़। कोई भक्तिभाव से चले, कोई कुतूहलवश तमाशा देखने चले और कोई छिद्रान्वेषी छिद्र देखने के लिये ही चल दिये। किन्तु वहाँ पहुँचकर तो सभी नाचने लगे।

अब कीर्तन बड़े जोरों से होने लगा। श्रीमहाराजजी बीच में, उनके आस पास हम लोग हमारे आस-पास दूसरे सैकड़ों आदमी ताली बजाकर वहीं 'हरे राम, हरे कृष्ण' की ध्वनि बोल रहे थे। परन्तु आज तो बड़ा ही अद्भुत व्यापार है। आज तो नाम का जादू सिर पर चढ़कर बोल रहा है। नाम का भूत सबको कठपुतली की तरह नचा रहा है। जो बेचारे भोले भक्त हैं उनकी तो कुछ बात ही नहीं, वे तो अपने प्रभु की अहैतुकी कृपा को स्मरण करके मुग्ध हो रहे हैं; किन्तु जो अपने को बड़ा बुद्धिमान मानने वाले तार्किक पुरुष हैं, आज तो उनके हृदय भी भाव तरंगों से उथल-पुथल हो रहे हैं। इस प्रकार वहाँ भक्त-अभक्त सभी की एक-सी दशा है। कोई रो रहे हैं, कोई हँस रहे हैं, कोई पृथ्वी पर लोट-पोट हो रहे हैं और कोई सबकी परिक्रमा कर रहे हैं, भाई! क्या कहें, एक अजीब व्यापार है, अजीब तमाशा है, अजीब खेल है! एक भूल-भुलैया का सा तमाशा हो रहा है। अथवा जैसे सूत्रधार कठपुतलियों को नचाता है उसी प्रकार बेचारे सब भावुक-अभावुक, शुद्धचित्त-अशुद्धचित्त तथा पापी-पुण्यी विवश होकर नाच रहे हैं। किन्तु आश्चर्य यह है कि इतना कोलाहल होने पर भी कीर्तन गगनभेदी तुमुल ध्वनि में ठीक ताल-स्वर से हो रहा है।

तथापि कोई-कोई ऐसे कट्टर जीव भी थे जो अभी तक नहीं आये। अब जब कीर्तन का कोलाहल इनके कानों में पड़ा तो उन्होंने सोचा कि चलकर देखें तो, क्या मामला है? तब कोई बोला, 'अजी! वहाँ गये कि पागल हुए। वहाँ तुम्हारी यह चालाकी हवा हो जायगी। इस पर उन्होंने अकड़कर कहा, भैया! ये बच्चे सच्चे ही पागल हो गये हैं। उनमें कोई चतुर और समझदार आदमी भी है? लो, हम अभी जाते हैं। देखें तो, स्वामीजी हमारा क्या कर लेंगे। आखिर, हम भी ब्राह्मण हैं, हमें भी अपने इष्ट का बल है। ऐसा कहकर वे बड़ी ठसक से मन्दिर में गये और दूर ही से खड़े-खड़े वहाँ का व्यापार देखने लगे। फिर सोचा कि आखिर ये भगवान का नाम ही तो ले रहे हैं, इसमें कोई बुरी बात तो है नहीं। ऐसा सोचकर वे पास जाकर और प्रणाम करके-स्वर एवं ताल में ताल मिलाकर कीर्तन करने लगे। थोड़ी ही देर में एकाग्रता होकर अपने आप
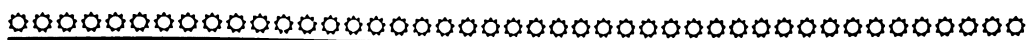
उनकी आँखें बन्द हो गयीं और धीरे-धीरे स्वयं ही उनके पाँव भी उठने लगे। इतने ही में एका-एक उन्हें ख्याल आया कि अरे! लोग क्या कहेंगे, अभी तो हम कीर्तन का मजाक बना रहे थे और अब स्वयं नाचने लगे। फिर सोचा कि हमने तो नासमझी से व्यर्थ ही ऊटपटांग बक दिया था यहाँ तो बात ही और निकली। फिर जो उन्होंने नेत्र भरकर श्रीमहाराजजी की ओर देखा तो उनका हृदय अनुतापानल से पिघल गया और वे इस प्रकार पश्चाताप करने लगे, हाय! हमारी बुद्धि को धिक्कार है, जो हमने ऐसे दिव्य महापुरुष में अनेकों दोषारोपण किये और इस प्रेमानन्द से वञ्चित रहे! अब तो एकबार इनके श्रीचरणों में प्रणाम करके और इनकी चरणधूलि मस्तक पर चढ़ाकर अपने पापों का प्रायश्चित कर लें। ऐसा सोचकर वे श्रीचरणों में लोट गये और उस भूमि की रज से सारे शरीर को स्नान कराते रोते-रोते पृथ्वी पर लोटने लगे।

उस समय ऐसी अवस्था अनेकों लोगों की हुई। श्रीगौरसुन्दर के प्रधान पार्षद प्रभुपाद प्रबोधानन्दजी सरस्वती पहले काशी में हजारों संन्यासियों के गुरु थे। उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य की बड़ी धूम थी किन्तु जब उन्होंने श्रीगौरहरि के स्वरूप को जाना और सारा पाण्डित्य भूलकर नामघोष करते हुए पृथ्वी पर लोटने लगे, तब कहा था-

'परिवदतु जनो यथातथायं ननु मुखरो न च विचारयाम।
हरिरसमदिरामदेद मत्ता भुवि विलुठाम नटाम निर्विशाम ॥'

अर्थात् ये वाचाल लोग चाहे कुछ भी कहा करें, हम उसका विचार नहीं करते। हम तो हरिरसरूपी मदिरा के मद से उन्मत्त होकर पृथ्वी पर लोटते हैं, नाचते हैं और बैठे रहते हैं।

स्वामी रामतीर्थ ने इस विषय में एक बड़ा सुन्दर दृष्टान्त कहा है। वे कहते हैं कि एक अन्धे ने हठपूर्वक कहा कि रंग नाम की कोई वस्तु नहीं है। यदि होती तो मैं टटोलकर जान ही लेता। इस पर लोगों ने उसे समझाया कि भाई! ऐसा हठ मतकर, हम तो प्रत्यक्ष लाल, पीला, हरा आदि अनेकों रंगों को
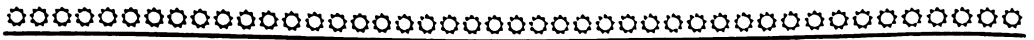
देखते हैं। तथापि उस जन्मान्ध ने किसी की भी एक न सुनी। अपनी हठ पर ही तुला रहा कि रंग यदि है तो मुझे दिखाओ। अन्त में एक दिन उस ओर एक समर्थ और दयालु डाक्टर आ निकले। उसने उनसे भी यही कहा, तब उन्होंने एक सलाई दिव्य अञ्जन की उसकी आँखों में लगा दी। बस, वह सब रंगों को देखता हुआ डाक्टर साहब को धन्यवाद देने लगा। इसी तरह जिन्होंने अपने श्रद्धारूप नेत्रों को खो दिया है वे नास्तिक लोग जब परमार्थतत्त्व में हठपूर्वक अविश्वास करते हैं और उस अन्धे की तरह हठधर्मी पर तुल जाते हैं, तभी प्रभु अवतार, आचार्य, महापुरुष अथवा सन्तों के रूप में प्रकट होकर उन शास्त्रविहित तत्त्वों को स्वयं आचरण और अनुभव करके अपने अलौकिक सामर्थ्य से इस घोर कलिकाल के अविश्वासी जीवों के कलुषित हृदयों में भी उनका प्रत्यक्ष अनुभव करा देते हैं। इसीसे गीताजी में भगवान् कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

यही बात श्रीगोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने भी कही है—

जब-जब होइ धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब-तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सन्तन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन्हिं, राखिहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं विशद यश, राम जनम कर हेतु॥

किन्तु प्रेमावतार श्रीगौरांगदेव ने तो दुष्टों का नाश न करके उनकी दुष्टता का ही नाश किया। तथा लोगों को शास्त्रोक्त कठिन साधन न बताकर केवल हरिनाम द्वारा ही सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित कराकर उन्हें श्रीहरिचरणारविन्दों की प्राप्ति करा दी। जप, तप, दान और व्रत आदि साधनों की कठिनाई से छुटाकर केवल नचा-नचाकर ही आनन्दधाम का रास्ता साफ कर दिया। अस्तु।

इस प्रकार प्राय: तीन घण्टे वहाँ आनन्द की लूट मची रही। फिर सब प्रणाम करके बैठ गये तथा श्रीमहाराजजी की आज्ञा से किसी ने पद गाया। पीछे यह विचार हुआ कि सभी लोग कीर्तन करते-करते थक गये हैं तथा गर्मी भी बहुत है, (आज सम्भवत: वैशाखी पूर्णिमा थी, चाँदनी छिटक रही थी) इसलिये सब चलकर गंगाजी की बालुका में बैठें और गंगाजी में स्नान करके विश्रान्ति लें।

बस, श्रीमहाराजजी चल दिये और हम सब उनके पीछे-पीछे हो लिये। इस तरह सैकड़ों आदमियों की भीड़ के साथ कीर्तन करते बड़े आनन्द से गंगाजी की ओर चले। आज भक्तों ने जिस दिव्य एवं अलौकिक आनन्द का उपभोग किया था उसका नशा अभी उतरा नहीं था। सबके शरीर एकदम हल्के हो रहे थे। थकान का लेश भी नहीं था। सभी मदोन्मत्त की भाँति आनन्द में विभोर, कीर्तन करते तथा नाचते गाते चले जा रहे थे तथा सभी आश्चर्यचकित थे। श्रीगंगाजी के तट पर जाकर महाराजजी ने स्नान किया और फिर वस्त्र बदलकर चल पड़े चलते-चलते थोड़ी दूर जाकर स्वच्छ रेती में खड़े हो गये। इस समय रात के १२ बजे होंगे। इसलिये बहुत लोग चले गये थे, केवल थोड़े खास-खास प्रेमी ही रह गये थे।

वहाँ खड़े होकर हमारे कौतुकी सरकार को कुछ और कौतुक करने की सूझी। आपने कहा, 'रामप्रसादजी! क्या आज तुम को अपने रघुनाथजी के दर्शन हुए?' रामप्रसादजी बोले, 'महाराजजी! आज कीर्तन में तो बड़ा आनन्द आया। किन्तु मुझ नेत्रहीन को रघुनाथजी के दर्शन कैसे होते?' आप बोले, रामप्रसाद! रघुनाथजी के दर्शन क्या इन चर्मचक्षुओं से होते हैं। वे तो दिव्यसच्चिदानन्दघनमूर्ति हैं। उनके दर्शन तो हृदय के दिव्यनेत्रों द्वारा ही होते हैं और जिस समय वे अपने दिव्यमंगलविग्रह से प्रकट होते हैं उस समय उनके संकल्प-मात्र से चर्मचक्षु भी खुल सकते हैं।' रामप्रसादजी ने कहा, 'महाराजजी! मैं तो आपको साक्षात् श्रीरघुनाथजी का ही स्वरूप मानता हूँ। आपकी वाणी की मधुरता तथा स्वभाव की कोमलता एवं दयालुता साक्षात् श्रीरघुनाथजी के ही समान है। बस, मैं तो इतने में ही कृतकृत्य हो गया। मेरी ये बाहर की आँखें

खुल जायँ—ऐसा कोई चमत्कार देखने की तो मुझे स्वप्न में भी इच्छा नहीं है। भक्तराज श्रीसूरदासजी ने तो इन नेत्रों को विघ्नरूप समझकर अपने हाथों से फोड़ लिया था। मुझे तो भाग्य से ही ऐसी स्थिति प्राप्त हो गयी है। फिर मैं क्यों ऐसी इच्छा करूँ। महाराज मैं तो अपनी इसी स्थित में प्रसन्न हूँ। भगवान् जो कुछ भी करते हैं वही अच्छा है। बस, मुझे तो उनके नाम और कथा में रुचि बनी रहे, इसके सिवा और कुछ नहीं चाहिये।'

महाराजजी उनके इस निष्कामभाव से बड़े प्रसन्न हुए और बोले, रामप्रसादजी! आप बड़े ही भाग्यवान् हैं जो भगवान की इच्छा में ही प्रसन्न हैं। भाई! वास्तव में भक्ति का तत्व भी इतने ही में है। गुरु नानकदेव के भी ये ही शब्द हैं—

'हरिका भाना मीठ लगाना।'
'जो तुद भावे साईं भलीकार। तू सदा सलामत निरंकार॥'

बस, जो कुछ हो रहा है उसे श्रीभगवान् की ओर से ही होता हुआ मानो। इसमें मेरे प्रभु का ही हाथ है तथा मेरे प्रभु का विधान ही परम सुखमय है— ऐसा समझकर सदा प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहो। किन्तु रामप्रसादजी! यद्यपि सच्चे भक्त अपने लिये तो कुछ नहीं चाहते, तथापि दूसरों के लिये सब कुछ चाहते हैं। वे दूसरों के लिये प्रभु से बालक की तरह हठ भी किया करते हैं। अतः तुम भी आज हमारे लिये अपने रघुनाथजी से खूब हठ करो कि प्रभो! आप इन सबको दर्शन देकर कृतार्थ करें।'

इस पर बेचारे रामप्रसादजी ने गद्‌गद् होकर अपने टूटे-फूटे शब्दों में कुछ प्रार्थना की। इसके पश्चात् आप खड़े हुए और आँखें मूँदकर हाथ जोड़े बड़े मार्मिक शब्दों में प्रार्थना करने लगे। आपकी प्रार्थना से सबका हृदय आनन्द से भर गया और सभी के हृदयों में श्रीरघुनाथजी के दर्शनों की लालसा जाग्रत हो उठी। अब आपने अपने प्रिय पार्षद थन्ना को कुछ कड़े शब्दों में खटखटाया। आप बोले, 'अरे थन्ना! तेरा महावीर जीता-जागता है या मर गया। अगर जीता

है तो उससे कह कि अपने रामजी के दर्शन हम सबको करा दे। नहीं तो, आज हम सब यहीं अपने प्राण त्याग देंगे।' फिर सबसे बोले, भाई! हनुमान चालीसा का पाठ करो। तब सबने मिलकर ऊँचे स्वर से हनुमान चालीसा का पाठ किया। बस, उसी समय थन्ना को हनुमानजी का आवेश हो गया। वह हुँकार गर्जन करता बड़े जोर से 'श्रीराम' 'श्रीसीताराम' आदि कहने लगा। महाराज जी हँसकर बोले, 'अरे! थन्ना का महावीर आ गया। सब इसे पकड़ो। आज इसके पाँव पकड़ लो और जब तक श्रीरघुनाथजी के दर्शन न करा दे इसे मत छोड़ो। 'अरे! आज सब यहीं मर जाओ। सब इस सामने वाली चिता में जलकर भस्म हो जाओ।' यह सुनकर हम सब रोते-रोते महावीर के चरणों पर गिर पड़े। उस समय वास्तव में उसमें इतना बल था कि चारों ओर से हम दस-बीस आदमियों के पाँव पकड़ने पर भी ऐसा मालूम होता था मानों हम सबको लेकर आकाश में उड़ जायगा। आप फिर बड़े-कड़े शब्दों में बोले, 'अरे भाई! आज या तो साक्षात् श्रीरघुनाथजी को प्रकट करो, नहीं तो यहीं प्राणों को त्याग दो। अरे! महाराज दशरथ तो श्रीरामजी का वियोग तनिक भी सहन नहीं कर सके। उन्होंने तो उनके बिछुड़ते ही अपने प्राण त्याग दिये थे। देखो, हम तो चिरकाल से श्रीरामजी के चरणों से बिछुड़े हुए हैं। भला इस निःसार जीवन को धारण करके अब क्या करोगे? बस प्रतिज्ञा करो 'शरीरं व पातयामि स्वकार्यं वा साधयामि'-या तो इस शरीर को नष्ट कर दूँगा या अपना कार्य सिद्ध करके रहूँगा। या तो आज श्रीरामजी के दर्शन करके सदा के लिये कृतकृत्य हो जाओ, या फिर इस अधम शरीर को ही त्याग दो। मैं तो आज अवश्य इस सामने जलती हुई चिता में अपने शरीर को जला दूँगा।'

इस प्रकार के ओज भरे शब्द मेरे हृदय के मर्म स्थान में घर कर गये। मैंने हनुमानजी के चरणों में पड़े-पड़े ही प्रार्थना की कि हे अंजनीनन्दन! आज मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं खुशी-खुशी इस शरीर को त्याग सकूँ। यह प्रार्थना करते ही मेरे हृदय में उत्साह-सा हुआ और मेरा हृदय खुशी से भर गया। मेरे मन में आया कि अरे! शरीर को त्यागना भी क्या कोई बड़ी बात है। मैं तो लाख बार इस शरीर को चिताग्नि में तृण के समान त्याग सकता हूँ। यह
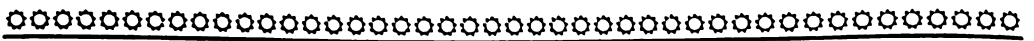
विचार कर जैसे ही मैं उठा कि मुझे गंगाजी के किनारे तीन चिताएँ जलती दिखाई दीं। उनमें से एक बड़ी प्रचण्डता से जल रही थी। मैंने जो दृष्टि भरकर उसकी ओर देखा तो मुझे सारा संसार अग्निमय ही दिखायी देने लगा। बस, मैं वहाँ से तीरकी तरह छूटा और जाते ही 'श्रीराम जय राम जय जय राम' कहता बड़े जोर से छलांग मारकर उस चिता में कूद पड़ा। किन्तु किसी अदृश्य शक्ति ने मुझे वहाँ से उठाकर बाहर फेंक दिया। मैं फिर संकल्प करके कूदा। किन्तु फिर भी वही बात हुई। इसके बाद जब तीसरी बार मैंने हठ पूर्वक छलांग मारी तो मुझे थानसिंह ने बलात् चिता में से खींचकर बाहर निकाला और कहा, 'चलो, तुम्हें रघुनाथजी बुलाते हैं।' मैंने कहा, 'मैं नहीं जाऊँगा।' किन्तु फिर भी उसने बलात् मुझे उठा लिया और ले चला। उसके शरीर में उस समय अनन्त बल था।

पीछे पूछने पर मालूम हुआ कि जब मैं चिता की ओर चला तब आप हँसे और बड़ी शान्त पूर्वक खड़े देखते रहे। जब मैंने एक छलांग मार दी तब आपने थन्ना से कहा, 'अरे! तू कैसा महावीर है! देख, वह मेरा भक्त मर रहा है और तू खड़ा देखता है। जा, जल्दी से उसे चिता से निकाल, अभी तो उसके द्वारा बहुत काम कराना है। 'इस प्रकार आज्ञा पाकर जितनी देर में थन्ना दौड़कर गया, मैंने दो छलांगें और मार दीं। कूदते समय मुझे भी ये शब्द स्पष्ट सुनाई दिये, खबरदार, अभी नहीं। अभी तो इस शरीर से बहुत काम कराना है। किन्तु मुझे तो उस समय मरने में ऐसा सुख प्रतीत होता था कि कहा नहीं जा सकता। श्रीमहाराजजी कहा करते थे-

'इस मरने में क्या लज्जत है, जिस मुँह को चाट लगे इसकी।
वह थूके शहंशाही पर, सब न्यामत दौलत हों फीकी।।'

थन्ना मुझे अपनी पीठ पर लादकर श्रीमहाराजजी के पास आया। मैं वहाँ श्रीचरणों से लिपटकर खूब रोया। तब महाराजजी ने मुझे प्रेम भरे शब्दों में खूब समझाया। इससे मेरा चित्त शान्त हुआ। अब मेरे जलने की बात सुनिये। उस प्रचण्ड चिताग्नि में तीन बार कूदने पर भी मेरी धोती बिल्कुल नहीं जली और

चूतड़ सारे जल गये। इसी प्रकार बनियान बिल्कुल नहीं जली और हाथ कोहिनी तक जल गया, यहाँ तक कि मेरी कलाई में एक सूत का धागा बँधा था, वह भी नहीं जला। किन्तु आश्चर्य यह था कि जले हुए स्थानों की भी केवल खाल ही चटकीसी दीखती थी, उनमें मुझे दाह या पीड़ा कुछ नहीं जान पड़ती थी। बल्कि सारे शरीर में शान्ति और आनन्द की लहरें-सी चल रही थीं। उस समय का सुख हृदय ही जानता है।

'सोई सुख लवलेश, जिन वारेक सपनेहु लहेउ।
ते नहिं गनैं खगेस, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति॥'

किन्तु अभी तो हमारे कौतुकी सरकार का कुछ और भी कौतुक शेष था। आप बोले, 'चलो, भाई! अब तो बहुत कुछ हो गया' सब लोग चल पड़े। रात के प्राय: दो बजे होंगे। सब लोग भूख और थकान से व्याकुल होने पर भी किसी प्रकार का कष्ट अनुभव नहीं कर कर रहे थे। वरन् सभी आनन्द में मस्त थे। चलते-चलते आप हठात् फिर खड़े हो गये और बोले, क्यों रामप्रसादजी! 'क्या श्रीरघुनाथजी का दर्शन सब लोगों को हुआ। 'अच्छा, एक-एक से पूछो।' सबसे अलग-अलग पूछा गया और प्राय: सभी ने अस्वीकार किया। मेरी भी बारी आयी। तब मैं रोकर श्रीचरणों पर गिर पड़ा और बोला, 'बस, मुझे तो सब लोग यही आशीर्वाद दें कि मेरे हृदय में वही रूप बसा रहे। आप हँसकर बोले, 'लोमड़ी को अंगूर नहीं मिले तो कहने लगी खट्ठे हैं।' किन्तु भाई, बड़े आश्चर्य की बात है। सोचो तो सही जीते-जागते चिता में कूद पड़ना कोई साधारण बात नहीं है। किन्तु फिर भी श्रीभगवान् का दर्शन नहीं हुआ- इसका क्या कारण है? अच्छा, अपने-अपने हृदय पर हाथ रखकर धर्मपूर्वक बताओ कि क्या वास्तव में सबके हृदय में भगवद्दर्शन की एक सी लालसा है। बोलो, 'भाई! ठीक-ठीक कहो।' तब एक-एक से पूछने पर प्राय: सबने यही कहा कि यदि सुखपूर्वक दर्शन हो जायें तब तो कोई बात नहीं, नहीं तो भगवद्दर्शन के बदले शरीर में एक काँटा लगने का कष्ट सहने वाला, भी कोई बिरला ही वीर होगा।
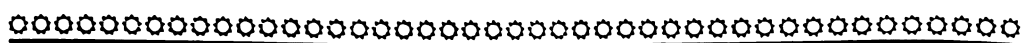
तब आप बोले, 'देखो, भाई! भगवान् का दर्शन कोई हँसी खेल नहीं है। यह तो सचमुच प्राणों की बाजी लगाने पर भी हो जाय तो सस्ता ही है।

'जो सिर काटे हरि मिलें, तो पुनि लीजै दौर।
ना जानूँ कछु देर में, गाहक आवें और॥'

भाई! इस पार्थिव शरीर की भला कीमत ही क्या है। इसे तो न जाने हमने कितनी बार त्यागा और ग्रहण किया है। इसके सिवा जो सचमुच ही भगवान् के लिये शरीर को त्यागते हैं उनमें भी अपनी-अपनी भावना के अनुसार अनेक भेद हैं। क्या पता वे भीतर से शरीर के सुरक्षित रहने की आशा रखकर ही त्यागने का ढोंग कर रहे हों। अथवा कोई लोक-वासना रखकर ही ऐसा करने में प्रवृत्त हुए हों। खैर, किसी भी प्रकार हो, भगवान् के लिये प्राण त्यागने की प्रवृत्ति सराहनीय ही है। किन्तु यदि कोई साधक अकेला ही अपने साधन में प्रवृत्त हो तो, उसे अपने उत्साह और साधन के स्तर के अनुसार सफलता मिलेगी। और जब हम मिलकर कोई साधन करें तो हम सबका एक तन, एक मन, एक प्राण, एक साधन, एक बल और एक सहारा होना चाहिए। हम बाहर से भिन्न-भिन्न प्रतीत होने पर भी वास्तव में भीतर से एक हो जायँ। किन्तु भाई! हम लोग तो तमाशा देखने वालों की तरह इकट्ठे हो गये हैं। एक अपनी जान की बाजी लगा रहा है तो दूसरा तमाशा ही देख रहा है तथा कोई खड़ा-खड़ा घबरा रहा है कि कहाँ किस बला में आ फँसे, किसी तरह छूटें तो प्राण बचें। भला, ऐसे संग से क्या भगवद्दर्शन हो सकते हैं?

तब हम में से किसी ने कहा, 'महाराज! यह घोर कलिकाल है। हम तो तुच्छ जीव है। भला, हमारी क्या सामर्थ्य है जो एक मन एक प्राण हो जायँ। अब हम पर कृपा करके आप ही कोई चमत्कार दिखावें। हम तो आप ही को श्रीरघुनाथजी समझते हैं। अतः आप कृपा करके हमें अपने उसी रूप में दर्शन दें। इस पर आप हँसते हुए बोले, 'अच्छा, देखो मैं ही चेष्टा करूँ। असली नहीं तो नकली रघुनाथजी ही बन जाऊँ।' और एक ओर चले गये। सब लोग बड़ी उत्सुकता से उसी ओर दृष्टि लगाये हुए थे। प्रायः दस मिनट में आप आते दिखायी दिये।

उस समय लोगों को बड़े चमत्कार हुए। कृष्णभक्तों को तो वंशीनाद सुनाई दिया और ऐसा जान पड़ा मानो श्रीश्यामसुन्दर नूपुर बजाकर नाचते हुए त्रिभंगललित गति से वंशी बजा रहे हैं। रामभक्तों को नवदूर्वादल- श्याम,धनुर्वाणधारी श्रीकौशल्यानन्दन के दर्शन हुए तथा किन्हीं-किन्हीं को श्रीमहाराजजी के शरीर में कुछ प्रकाश-सा ही दिखाई दिया। इस प्रकार अपनी- अपनी योग्यता के अनुसार सभी को कुछ विचित्र छटा दिखाई पड़ी, एवं सभी आनन्द में विभोर हो गये।

फिर सबने प्रणाम किया और कीर्तन करते चल पड़े। उस दिन सायंकाल की भिक्षा लेखराजजी के यहाँ थी। अब सबेरे के चार बज चुके थे। परिश्रम भी काफी हुआ था और सभी लोग भूखे थे। अत: सबने उसी समय महाराजजी के साथ प्रसाद पाया। प्रसाद पाते समय भी आप तरह-तरह के विनोद करते रहे। यहाँ उन्हें कहाँ तक लिखूँ, यह तो सागर को गागर में भरने की सी बात है। इसके बाद मन्दिर में आकर दो घण्टे विश्राम किया।

दूसरे दिन सब कार्यक्रम नियमानुसार रहा। दोपहर बाद कुछ सत्संगियों के साथ परमार्थ-चर्चा चलती रही। आपका तो सिद्धान्त है कि जो जिस मार्ग से चल रहा है उसे दृढ़ता पूर्वक उसी पर बढ़ते रहना चाहिये। वह उसीसे परमतत्व को प्राप्त कर लेगा। आप कहा करते थे, भाई! मार्ग जुदे-जुदे हैं, गन्तव्य स्थान तो एक ही है। हाँ, लगन सच्ची होनी चाहिये। साधक को चाहिए कि बड़ी तत्परता से प्राणों की बाजी लगाकर अपनी सारी शक्ति साधन में लगा दे। फिर भूलकर भी दायें-बायें न देखे। किसान अपने खेत में पानी लगाने के लिये एकबार खाना-पीना भूलकर मन प्राण से प्रयत्न करता है। किन्तु जिस समय पानी उसके खेत में आ जाता है उसके आनन्द का पारावार नहीं रहता। इसी प्रकार साधक भी बड़े से बड़ा परिश्रम करके एकबार इस त्रिगुणात्मिका माया से ऊपर उठ जाय। इसके लिये उसका मार्ग कोई भी हो-इसका झगड़ा नहीं है। किन्तु अपने साधन में दृढ़ता पूर्वक लगे रहने पर भी दूसरे मार्गों की निन्दा न करे। आपकी इस उदारता के कारण आप से सभी मतों के अनुयायी एक-सा प्रेम करते थे।

यह सब होते हुए भी आपका जोर प्रधानतया भगवन्नाम पर ही रहा है। आप वर्तमान समय में सर्वसाधारण के लिये हरिनाम को ही एकमात्र अवलम्ब मानते हैं। आपका कथन है– 'भाई! वेदान्त तो बहुत गुप्त रखने की चीज है। वह तो बड़े बुद्धि कौशल का सिद्धान्त है। वेदान्त कहने, सुनने या गाने की चीज नहीं है। इस घोर कलिकाल में तो विरले ही उसके अधिकारी हैं। उसे समझना तो बड़ी तीव्र बुद्धि का काम है। वास्तव में वह बहुत ही ऊँचा सिद्धान्त है। किन्तु हमारे जैसे साधारण बुद्धिहीन व्यक्तियों के लिये तो एकमात्र हरिनाम का ही सहारा है। श्रीगौरसुन्दर के भक्त भी निरन्तर आकुल प्राणों से केवल श्रीकृष्ण के नाम और लीलाकथाओं का ही गान करते रहते थे। वे ही उनके एकमात्र आधार थे–

'निरन्तरं कृष्णकथाः परस्परं सुभक्तिदं नाम हरेर्वदन्ति वै।
जल्पन्ति लोका भुविभावविह्वला गौरेऽवतीर्णे कलिपापनाशके॥'

अतः हमारा भी एकमात्र श्रीहरिनाम ही आश्रय है–

हरेर्नाम हरेर्नाम नामैव मम जीवनम्।
कलौनास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥'

'रामहिं सुमिरिया गाइय रामहिं। संतत सुनिय रामगुण ग्रामहिं॥'

आप उपदेश भी बहुत कम किया करते थे। आपका तो जीवन ही उपदेश रूप था। आप कहा करते थे, 'तुम जो आदर्श जगत में स्थापित करना चाहते हो वैसा ही अपना जीवन बना दो। वास्तविक उपदेश तो जीवन के द्वारा ही होता है। कोरा वाणी का व्यायाम करने से कोई लाभ नहीं। बड़े-बड़े व्याख्यान-विशारदों और कथक्कड़ों के कथा एवं व्याख्यान तो केवल पल्लेझाड़ ही होते हैं। थोड़ी देर की वाह-वाह के अतिरिक्त उनसे कोई और लाभ नहीं होता। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि बाह्य आडम्बरों में न फँसकर अपने आचरण को सुधारने की चेष्टा करे। यदि तुमने बड़े से बड़ा कष्ट उठाकर भी इस जीवन
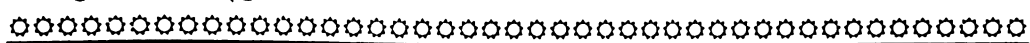
में भगवान को प्राप्त कर लिया तो सचमुच संसार का बड़े से बड़ा उपकार होगा। जो लोग अपने जीवन को बनाने की परवा न करके परोपकार का आडम्बर करते हैं उनका तो ऐसा अध:पतन होता है कि उन्हें सँभलना कठिन हो जाता है। इसलिये नितान्त निष्काम हुए बिना परहित की भावना करना भी केवल विडम्बनामात्र है। कोई कितना भी निष्काम बने, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर मालूम होगा कि प्रकारान्तर से वह सकाम ही है। यह जीव जब तक मायातीत होकर भगवच्चरणारविन्दों को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक एक क्षण को भी निष्काम नहीं हो सकता। इसलिये साधन में तो परोपकारादि भी एक प्रकार से विघ्न ही हैं। किन्तु इसका यह आशय नहीं समझना चाहिये कि हृदय में परोपकार की भावना ही न रखे। होना तो यह चाहिए कि अपना सारा कर्तव्य जीवमात्र के कल्याण की सद्भावनापूर्वक भगवदर्पण बुद्धि से हो। निषेध तो केवल इसी बात का है कि भीतर से तो कूट-कूटकर स्वार्थ भरा है और ऊपर से परोपकार का ढोंग है, न कि वास्तविक परोपकार का।

इस प्रकार आप सबको अपने उपदेशामृत-आनन्द देते रहे। फिर आपने होशियारपुर जाने का अपना विचार प्रकट किया तथा थन्ना और हेतराम से कहा कि तुम अपने-अपने गाँव को चले जाओ। लोगों ने कुछ समय और रुकने की प्रार्थना की किन्तु आप सबको समझा-बुझाकर उस समय चल पड़े। सवारी के लिये भी बहुत कहा गया, परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया। श्रीगंगाजी तक तो बहुत लोग साथ चले, किन्तु फिर सबको लौटाकर आपने केवल एक आदमी रास्ता बताने और टिकिट दिलाने के लिये साथ ले लिया। आखिर, सब लोग निराश होकर लौट आये।

चलते समय आप पण्डित वेणीराम वैद्य से कह गये थे कि कोई जले पर लगाने का मरहम बनाकर इसे दे देना। किन्तु उन्हें इसका कुछ स्मरण न रहा। मुझे तीन दिन तो कोई कष्ट नहीं हुआ। किन्तु चौथे दिन सारा हाथ और चूतड़ सूज गये तथा उनमें असह्य वेदना होने लगी। अब तो उठना बैठना तक भारी हो गया और खाना-पीना भी भूल गया। उसी रात को पूर्वा हवा चलने

से बड़ा दर्द हुआ और सारा हाथ पक गया। पाँचवें दिन अँगुलियों से लेकर कोहिनी तक सारे हाथ की त्वचा फूट की तरह फट गई और उसमें से पीव बहने लगा। मारे दर्द के मैं छटपटाने लगा। मुझे प्राणान्त कष्ट हुआ। उस समय मेरी यह भावना दृढ़ हो गई कि मैं सचमुच दशरथ हूँ और मेरे रघुनाथस्वरूप महाराजजी वन को चले गये हैं। अत: उनका विरह ही इस दर्द के रूप में परिणत हो गया है। अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे। ऐसी भावना होने से मुझे उस अवस्था में भी बड़ा आनन्द अनुभव होता था। मैं निरन्तर—

'हा रघुनन्दन प्राणपिरीते ! तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते ।'

इत्यादि चौपाइयों दुहराता और रोता रहता था। मेरे जीवन का वह भी बड़ा ही विचित्र समय था। वह मानो विष और अमृत का मिश्रण अथवा गरम-गरम गन्ने का चूसना ही था। एक ओर कष्ट की पराकाष्ठा तो दूसरी ओर असीम आनन्द। बस, मैं तो श्रीहरि से यही भीख माँगता हूँ कि मेरी वही अवस्था जन्म भर बनी रहे। किन्तु वह तो केवल तीन ही दिन रही। मैं निरन्तर मछली की तरह तड़पता रहा। वाणविद्ध पक्षी की तरह मेरे प्राण छटपटा रहे थे। एक ओर तो दुःख की वह अवस्था और दूसरी ओर यह भावना कि मैं दशरथ हूँ तथा राम के वियोग में प्राण त्याग रहा हूँ। श्रीमहाराजजी कहा करते थे, यदि शारीरिक कष्ट के समय ऐसी भावना हो जाय की यह मेरे प्यारे प्रभु की ओर से है। तो वह कष्ट तप का फल देता है।

पण्डित वेणीराम तो मरहम बनाने की बात भूल ही गये थे किन्तु तीसरे दिन स्वप्न में उनसे श्रीमहाराजजी ने कहा, 'वेणीरामजी! क्या मरहम बनाना भूल गये? उसे तो बड़ा कष्ट है।' तब शाम को वे मेरे पास आये और सब बात सुनाकर बोले, अच्छा, कल सबेरे मैं दवा बनाकर लाऊँगा। बस, सबेरे ही वे एक मरहम लाये और मैंने लगाया। एक बार लगाने पर ही उससे मुझे बड़ी शान्ति मिली और आधा मेरा दर्द जाता रहा। धीरे-धीरे वह दुःख दूर होने लगा। मेरे पास आने वाले अधिकांश लोग कहते थे कि जला हुआ देर में ठीक होता
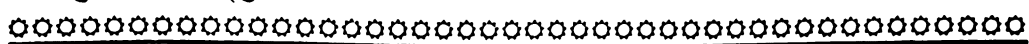
है और मैं भी समझता था कि इसमें कम से कम छः महीने लग जायेंगे। परन्तु तीन ही दिन में मेरा सब कष्ट दूर हो गया और पन्द्रह दिनों में तो ऐसी स्थिति हो गयी मानो मेरा हाथ कभी जला ही नहीं था। इससे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और सबने यही समझा कि यह सब श्रीमहाराजजी की ही कृपा है।

अब हम पाँच-सात सत्संगी मिल गये थे। हमने अपना भजन, स्वाध्याय और कीर्तनादि का निश्चित क्रम बना लिया था। हम प्रातः काल २ से ८ बजे तक छः घण्टे कीर्तन करते थे। वह कीर्तन क्या था मानो आनन्द की वर्षा ही थी, अथवा भगवद्दर्शन में उन्मत्त पागलों का प्रलाप ही था। फिर स्नानादि से निवृत्त होकर ठाकुर-सेवा तथा स्तोत्र पाठ करते। ठीक १२ बजे भोजन होता। फिर एक घंटे विश्राम करके कुछ स्वाध्याय करते। दोपहर बाद तीन से पाँच या चार से छः बजे तक परस्पर सत्संग या कथा का क्रम रहता। सायंकाल में ६ से ८ बजे तक गंगातट पर एकान्त सेवन करते और रात्रि में ८ से १० बजे तक मन्दिर में समष्टि कीर्तन होता। इस प्रकार हमारा सारा समय बड़े आनन्द से व्यतीत होने लगा।

मेरी बीमारी और दरोगाजी

बस, श्रीमहराजजी तो होशियारपुर चले गये और मैं निजामपुर चला आया। यह घटना सम्भवत: सन् १९२० ई० की है। यहाँ उन दिनों में बड़े दिव्य कीर्तन हुए। नित्य प्रति सायं काल ६ बजे से रात के १२ बजे तक कीर्तन होता था और कभी-कभी तो सारी रात ही होता रहता था। अजी! क्या कहें उन कीर्तनों की बात। उनमें एक अपूर्व मादकता थी। थकान का तो कभी पता ही नहीं लगता था। वरन् और भी अधिक बल एवं उत्साह बढ़ते थे। कीर्तन छोड़ने को मन ही नहीं होता था। उस समय तो यह बात प्रत्यक्ष अनुभव होती थी–

प्रबलं बलवद्भ्योऽपि दुर्बलानां परं बलम्।
सम्बलं भवपान्थानां हरेर्नामैव केवलम्॥

इस प्रकार निजामपुर में जितने दिन रहा खूब आनन्द से रहा। वहाँ से फिर शिवपुरी चला आया। यहाँ मेरा चित्त बहुत व्यग्र रहने लगा। अत: एकान्तवास के विचार से मैं नरवर चला गया। वहाँ एक महीना रहने पर श्रावण के शुक्ल पक्ष में मुझे ज्वर आ गया। सात दिन लंघन करने पर उससे छुटकारा मिला। तब मैं शिवपुरी लौट आया। किन्तु कुपथ्य के कारण यहाँ बार-बार ज्वर आने लगा। यहाँ तक कि मैं मरणासन्न हो गया। कई डाक्टर वैद्यों ने तो यहाँ तक कह दिया कि तुम्हें यक्ष्मा हो गयी है। आखिर, मैंने होशियारपुर को एक पत्र लिखा। उसमें क्या-क्या लिखा था, वह सब तो मुझे अब स्मरण नहीं है। हाँ, एक पद्य लिखा था, वह याद है, उसे लिखता हूँ–

खुशामद और मिन्नत है, नहीं और कुछ जोर है मेरा।
सरासर तुझ से झूठा हूँ, मैं पापी चोर हूँ तेरा॥
दयानिधि जानकर मैंने तुझे हे नाथ! है हेरा।
प्रण पालो मेरा स्वामी, लगाई अब कहाँ देरा॥

यह पत्र लिखने का मेरा यही अभिप्राय था कि एकबार मुझे दर्शन हो जाय। फिर मैं मरूँ या जीऊँ।

इसके उत्तर में आपने जो अपूर्व करुणा और शरणागत वत्सलता का भाव व्यक्त किया उसे मैं क्या वर्णन करूँ। मैं निहाल हो गया जब मैंने आपकी ये पंक्तियाँ पढ़ीं –

न कर मिन्नत न तज हिम्मत सरासर तू तो है मेरा।
काहे को फिक्र करता है लिया सिर बोझ है तेरा॥
जो आवे शरण मेरी है उसीका है जो मेरा।
नहीं मोहि चैन पड़ती है न इक छिन जो उसे हेरा॥
फकत औरों के कारण ही उसे दुःख मैं सहाता हूँ।
निमित्त उसको बनाकर मैं भक्ति सबको सिखाता हूँ॥

भाई इस कविता का मर्म तो उस समय मेरे चित्त ने ही जाना था। इसके एक-एक अक्षर में कितनी शक्ति, कितना बल, कितनी करुणा,कितना वात्सल्य, कितनी सरलता और कितनी सरसता भरी हुई है, उसे तो कोई सन्तप्त चित्त ही समझ सकता है। मेरे छन्दों को ज्यों का त्यों उलट दिया गया है। आपको तो हमने जन्म भर कविता का शौक नहीं देखा। ये उसी अनन्त प्रेम, करुणा और वात्सल्य से भरी हुई माँकी-सी बातें हैं जो अपने बच्चे की तोतली बोली को स्वयं भी उसी तरह दुहराकर सुख मानती है।

आगे उसी पत्र में लिखा था कि मैं आश्विन शुक्ला दशमी पर भेरिया पहुँच रहा हूँ, यदि सम्भव हो तो तुम भी वहाँ आ जाना।

जिस समय मुझे वह पत्र मिला उस समय सम्भवतः प्रतिपदा या द्वितीया थी। उन दिनों मैं इतना निर्बल हो रहा था कि मुझ में करवट बदलने की भी शक्ति नहीं थी। मेरा हृदय हर समय घड़ी की तरह धड़कता रहता था। दो ढाई महीने का बीमार था। पुराना बुखार,कफ, खाँसी, दमा, अतिसार, संग्रहणी और न जाने क्या-क्या रोग थे। किन्तु यह पत्र पढ़ते ही मेरे शरीर में बिजली-सी दौड़ गयी। उसी समय मेरे अन्दर मानो किसी भूत का आवेश हो गया। मुझे पता ही नहीं रहा कि बीमारी और कमजोरी दुनिया में कोई चीज है। मैं उसी
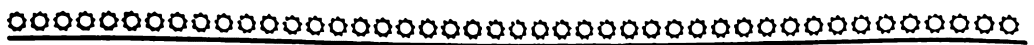
समय उठा और प्राय: एक मील का चक्कर लागाकर एक कार्ड लाया तथा गवाँ को सवारी के लिये लिखा। अष्टमी तक मैं अच्छी तरह चलने-फिरने योग्य हो गया। बीमारी का तो मुझे स्मरण भी नहीं रहा। अब तो श्रीमहाराजजी की प्रतीक्षा में मुझे एक-एक क्षण भारी हो रहा था। आखिर अष्टमी को प्रात:काल ४ बजे बैलगाड़ी में बैठकर मैं करेंगी स्टेशन चला। मुझे नौ बजे की गाड़ी पकड़नी थी और बैल, वर्षा ऋतु के कारण मार्ग खराब हो जाने से धीरे-धीरे चल पाते थे। अत: कुछ देरी हो गयी। किन्तु सौभाग्य से गाड़ी कुछ लेट थी। मैंने स्टेशन पर पहुँचते ही टिकट लिया और अपना तीस सेर का पुलिन्दा स्वयं उठाकर प्लेटफार्म से दूसरी ओर खड़ी हुई गाड़ी में चढ़ गया। फिर बबराला पर उतरकर बैलगाड़ी द्वारा गवाँ गया और वहाँ से नवमी की शाम को भेरिया पहुँच गया।

भेरिया में श्रीचरणों के दर्शन करके मैं सारी थकान भूल गया। दूसरे दिन बड़े आनन्द से दशहरा का उत्सव मनाया गया। इस समय वहाँ बरेली के पण्डित रामकुमार दरोगा भी आये हुए थे। ये किसी झंझट में पड़कर नौकरी छोड़कर साधु हो गये थे, किन्तु रहते सफेद कपड़ों ही में थे। ये बड़े अच्छे गवैया थे और कथा भी बड़ी सुन्दर कहते थे। इनकी इच्छा महाराजजी के पास रहने की थी, परन्तु अपनी स्वतन्त्रता भी नहीं छोड़ते थे। दशहरा के पीछे श्रीमहाराजजी ने मुझ से कह दिया कि दरोगाजी के साथ मिलकर भोजन बना लिया करो। आप स्वयं तो उन दिनों स्वामी शास्त्रानन्दजी के साथ माधूकरी भिक्षा करते थे।

मैं उस समय कमजोर तो था ही। इसलिये भेरिया की इतनी ऊँची ढाय पर से उतरकर गंगाजल लाना और चौका-बरतन सारा काम करके रोटी बनाना मेरे लिये कठिन ही था। उस पर भी दरोगाजी की हकूमत। उन्हें तो मैं बेपैसे कौड़ी का नौकर मिल गया था। खाने-पीने में भी मेरे साथ उनका व्यवहार वैसा ही भद्दा था जैसा कि आजकल के स्वार्थी और मानी लोगों का अपने गरीब नौकरों के साथ होता है। वे कथा कीर्तन के समय तो आँखों में से घड़ों पानी निकालते थे और सारी जनता को मुग्ध कर देते थे, किन्तु व्यवहार तो उनका

बहुत ही बुरा था। मुझे तो वह बहुत अखरने लगा, किन्तु महाराजजी के डर से मैं सहन करता रहा। उनके व्यवहार से तो मैं इतना तंग हो गया कि घण्टों एकान्त में रोया करता था।

आखिर, दरोगाजी के ही किसी दुर्व्यवहार के कारण श्रीमहाराजजी का चित्त उनकी ओर से फिरा। तब एक दिन उन्होंने स्वामी शास्त्रानन्दजी से कहा, 'स्वामीजी! अब दरोगाजी मुझे अच्छे नहीं लगते। मुझे इनके व्यवहार में रजोगुण बहुत दीखता है और वह मुझे बहुत अखरता है। अवश्य ही वे कथा-कीर्तन में तो बड़ा प्रेम-प्रदर्शित करते हैं,किन्तु मुझे तो ऐसे प्रेम में श्रद्धा नहीं है। जिसका व्यवहार भद्दा है उसका परमार्थ कभी ठीक नहीं हो सकता। हमारा परमार्थ तो बिगड़ा नहीं है, वह तो बना बनाया ही है। बिगड़ा तो व्यवहार ही है। अत: मेरे विचार से तो व्यवहार को बनाना परम आवश्यक है। जिस परमार्थ का हम विचार या अनुभव करते हैं वह यदि आचरण में न उतरा तो इसका क्या प्रमाण है कि हमारा पारमार्थिक विचार ठीक ही है। यदि हम निरन्तर यह कहते या सुनते भी रहें कि सर्वत्र एक ब्रह्म, राम या कृष्ण ही हैं, किन्तु साक्षात् राम-कृष्ण से ही, जो अनेकों नाम और रूपों में हमारे साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, राग-द्वेष करें, उन पर हुकूमत करें, अथवा उनके साथ किसी प्रकारका दुर्व्यवहार करें तो हमारी यह भावना जो कथा-कीर्तन के समय प्रकट होती है, केवल विडम्बना मात्र ही है, और यदि हम अपनी मान-प्रतिष्ठा के लिये ही केवल ऊपर से ऐसा दम्भ करते हैं तब तो हमसे वही अच्छा है जो भीतर-बाहर से पाप ही करता है। एक दिन उसका उद्धार भले ही हो जाय, किन्तु जो ऊपर से तो महात्मा भक्त या साधक बनता है, किन्तु भीतर से विषय-चिन्तन करता है, उसका उद्धार कभी नहीं हो सकता।

मन मैले तन ऊजरे, बगुलन के से भेष।
इनते तो कागा भले, जो भीतर ऊपर एक।।
कर्मण्येकं वचस्येकं मनस्येकं महात्मनाम्।
कर्मण्यन्यत् वचस्यन्यत् मनस्यन्यद् दुरात्मनाम्।।

मैं अपनी बात कभी-कभी स्वामी शास्त्रानन्दजी से कह दिया करता था। अत: उसी समय श्रीस्वामीजी ने कहा कि ललिताप्रसाद से भी पूछो, इसके साथ क्या-क्या बीती है। तब आपने मुझ से कहा, 'क्यों क्या बात है?' मैं रो पड़ा और मेरे मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। तब स्वामीजी ने ही सब बातें बतलायीं उन्हें सुनकर आपका चित्त बहुत ही खिन्न हुआ। आप बोले, 'इनकी ऐसी बातें कई आदमियों ने गवाँ में भी कहीं थीं। पर मैंने ध्यान नहीं दिया। यों ही टाल दिया कि लोगों का तो एक दूसरे की शिकायत करने का स्वभाव होता हैं' फिर आपने मुझे समझाया कि दूसरे के अत्याचारों को सहन करने से आत्मिक बल बढ़ता है क्यों कि वास्तव में तो सर्वत्र हमारा इष्ट ही है। हमको अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों ही में अपने इष्ट का दर्शन करना चाहिये। इसीसे सहिष्णुता दृढ़ हो सकती है।

किन्तु साथ ही आपने यह निश्चय कर लिया कि दरोगाजी का हित इस तरह चलते रहने में नहीं है। इसलिये हमें उनसे अलग हो जाना चाहिये। ऐसा विचार कर आपने दरोगाजी को बुलाया और उनसे स्पष्ट कह दिया कि मुझे आपका व्यवहार पसन्द नहीं है। अत: आप यहाँ रहें, मैं कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा, और अब हम कम से कम एक साल नहीं मिलेंगे। देखिये, हम लोग तो परमार्थ के लिये आपस में मिलते हैं, किन्तु हमारा व्यवहार गृहस्थों की तरह राग-द्वेष से दूषित हो जाता है और हम अपने व्यवहारों के कारण एक दूसरे के परमार्थ में बाधक हो जाते हैं। इसलिये आप इसमें बुरा न मानें, मैं आज ही अन्यत्र चला जाता हूँ।

तब दरोगाजी बोले, 'नहीं, आप क्यों,मैं ही अन्यत्र चला जाऊँगा। मैं तो यहाँ केवल आपके कारण ही रहता था; नहीं तो मेरे जैसे रजोगुणी आदमी को यहाँ जंगल में क्या रखा है? अत: मैं आज ही चला जाऊँगा।' ऐसा कहकर वे खूब फूट-फूटकर रोने लगे। किन्तु महात्माओं के चित्त तो 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' होते हैं। बस, आपने उनसे फिर एक भी शब्द नहीं कहा और उठकर अपने कार्य में लग गये।

बेचारे दरोगाजी बड़े ही मर्माहत हुए। परन्तु वे आपके स्वभाव को जानते थे कि यदि मैं आज न गया तो वे कल अवश्य यहाँ से अकेले ही चल देंगे इसलिये विवश होकर उन्होंने जाने की तैयारी कर ली। श्रीमहाराजजी ने मुझे उन्हें कुछ दूर तक साथ जाकर पहुँचाने की आज्ञा दी। वे ठीक दीपावली के दिन शाम को चार बजे राजघाट स्टेशन को चले। मैं एक मील तक उनके साथ गया। वे अपने व्यवहार का स्मरण करके बहुत रोये और मुझसे क्षमा मांगने लगे। इससे मेरा हृदय तो उस समय टूक-टूक हो गया और मैं भी रोने लगा। मैंने कहा, दरोगाजी! आप लौट चलिये, मैं आपके बदले श्रीमहाराजजी से क्षमा याचना कर लूँगा। किन्तु वे फिर नहीं लौटे और मेरे अलग होते समय मुझसे लिपटकर खूब रोये। फिर उन्होंने मुझसे कहा, श्रीमहाराजजी से कह देना— 'बहुत बेआबरू होकर तेरी महफिल से हम निकले।' इतना कहकर वे धड़ाम से पृथ्वी पर गिर गये। मैंने जैसे-तैसे उनको सँभाला। फिर वे उधर को गये और मैं इधर को लौट आया। किन्तु मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा कि वे बराबर रो ही रहे थे।

मैने सायंकाल के सत्संग के बाद श्रीमहाराजजी से उनका कहा हुआ वाक्य कहा। तब महाराजजी खूब हँसे और उनके गुणों की प्रशंसा करने लगे। आप बोले भाई! किसी के वश की बात नहीं है। 'स्वभावो दुरतिक्रमः'। वैसे तो उनका चित्त बहुत कोमल है। उनका स्वभाव भी बालकों का सा है। परन्तु निरन्तर सहवास से भी प्रमाद होने लगता है। अतः बुद्धिमान शिष्य या सेवक को चाहिये कि जब चित्त में प्रमाद आने लगे तब कुछ दिनों के लिए अलग हो जाय। नहीं तो लाभ के स्थान में हानि की सम्भावना हो जाती है। जहाँ सच्चा प्रेम होता है वहाँ तो वह विरहाग्नि में तपकर और भी उज्जवल हो जाता है। फिर कुछ दिनों के वियोग के बाद जो संयोग होता है तो वह बड़ा ही सुखप्रद होता है। तथा जहाँ केवल बनावटी प्रेम है वहाँ भी अलग हो जाना ही अधिक हितकर है। अतः हम लोगों को परमात्मा से हार्दिक प्रार्थना करनी चाहिये कि उनका कल्याण हो, वे सुखी रहें, निरोग रहें और उनको किसी प्रकार का दुःख न हो।

इसके थोड़े दिनों बाद आप गवाँ चले गये और वहाँ फिर वही प्रोग्राम आरम्भ हो गया। मैं अधिकतर निजामपुर में रहता था। मेरी हालत उन दिनों बड़ी विचित्र थी। मुझे नित्य ही ज्वर होता था, क्योंकि मेरे जिगर और तिल्ली दोनों ही खराब गये थे। अत: कभी नित्य और कभी तीसरे दिन अवश्य ही ज्वर हो जाता था। मुझे सारे दिन तो बुखार चढ़ा रहता, किन्तु शाम को श्रीमहाराजजी के आने से पूर्व ही मैं सावधान हो जाता था। फिर जैसे-तैसे कीर्तन में खड़ा होता और ऐसा प्रतीत होता कि मैं अब गिरा, अब गिरा। किन्तु थोड़ी ही देर में न जाने कौन देवता मेरे शरीर में आविष्ट हो जाता कि मुझे फिर शरीर का बिल्कुल होश नहीं रहता था। भाई! उस समय कीर्तन क्या होता था मानो रस का समुद्र ही उमड़ आता था। उसमें देहाध्यास का कूड़ा-करकट एकदम बह जाता था। उस समय मेरा शरीर भी रुई के समान एकदम हल्का हो जाता था। मैं मानो उड़ने लगता था। यह सब केवल श्रीमहाराजजी की कृपा का ही फल था, अपना उसमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं था।

श्रीमहाराजजी कहा करते थे कि साधक अपनी शारीरिक और मानसिक दुर्बलता को कभी समर्थ गुरु के सामने प्रकट न करे। उनके सामने सर्वदा फूल की तरह खिला ही रहे। इससे उनके अन्दर यह संकल्प होगा कि यह तो बड़ा ही उत्साही पुरुष है, सदा प्रसन्न ही रहता है, तो उनके उस सत्य संकल्प से वह कृत्रिम प्रसन्नता भी वास्तविक प्रसन्नता में बदल जायगी। इस विषय में आप अपने गुरुभाई बाबू शालग्रामजी का दृष्टान्त दिया करते थे। साथ ही आपका यह भी कथन था कि इस प्रकार की प्रसन्नता भी साधन-दृष्टि से ही होनी चाहिये, दंभ या मान-प्रतिष्ठा के लिये नहीं। नहीं तो इससे सर्वनाश हो जायगा।

मैं तो उस साल प्राय: दस महीने इसी प्रकार की रुग्णावस्था में रहा। किन्तु साथ ही आनन्द की लहरें भी दिनों-दिन जोर पकड़ती रहीं। अन्त में सत्य की ही जय हुई और मैं भला-चंगा हो गया। श्रीमहाराजजी कहा करते हैं कि यदि रोग को भी भगवान् की ही देन मान लें तो प्रारब्ध भोग भी हो जाता है

और वह रोग तप का फल देता है। उससे भगवत्कृपा की ही उपलब्धि होती है। यह बात उस समय मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुई।

इसी वर्ष सन् १९२१ में बेलबाबा पर इन्द्र को परास्त करके बड़ा भारी भण्डारा हुआ था, जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है। उसके आठवें दिन शाम को ६ बजे से बेलबाबा के पास ही खुले मैदान में कीर्तन आरम्भ हुआ। उसमें बरोरा, निजामपुर और भेंसरोली तीन गाँवों के मनुष्य थे। माघ मास का जाड़ा था और वहाँ शीत भी अधिक पड़ता है। दैवयोग से उस दिन बर्फ भी पड़ रही थी तथा ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। आप जब कीर्तन में खड़े हुए तभी स्वर-ताल में कुछ गड़बड़ पड़ गयी। बस, बिगड़ उठे और बोले, 'आलस्य में भगवान् का भजन नहीं हो सकता। आलस्य तो घोर तमोगुण है, उसका फल तो नरक है। श्रीभगवान् का चिन्तन तो सात्विक चित्त में ही हो सकता है। अतः सब कपड़े उतार दो।' ऐसा कहकर आपने भी ऊपर का गाढ़े का कुर्ता उतार दिया। अब केवल ऊँचा-सा मलमल का कुर्ता रह गया। हम लोगों ने भी सब कपड़े उतार दिये, केवल नीचे का एक-एक कुर्ता ही शरीर पर रहने दिया।

अब आपने व्याख्यान देना आरम्भ किया। भाई! क्या कहें, उस समय का भाषण तो ऐसा मधुर था कि साक्षात् अमृत की वर्षा हो रही थी। किन्तु जाड़े के मारे सबके प्राण निकल रहे थे, अतः उस अमृत को पिये कौन? बस, एक-एक करके सब खिसक गये और कपड़े ओढ़-ओढ़कर इधर-उधर झाड़ियों में जा दुबके। केवल बीस-पच्चीस आदमी रह गये, जिनका चित्त आपके व्याख्यान में लग गया था, अथवा यों कहिये कि जिनको आपने रखना चाहा था। 'जे राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि काल महँ।' आपका परीक्षा लेने का ढंग ही ऐसा विचित्र है; उसमें कोई बिरले वीर ही उत्तीर्ण हो पाते हैं। उस समय आप तीन घण्टे तक व्याख्यान देते रहे। पीछे जब आपने आँखें खोलकर देखा तो वहाँ बीस-पच्चीस ही आदमी दिखायी दिये। आपने मुझसे कहा, देखा, ये सब लोग कहाँ गये। तब मैंने सबको बुलाया और अब मण्डल बाँधकर कीर्तन आरम्भ हुआ। बड़े जोरों का कीर्तन हुआ। इसी समय उसमें से नृत्य करता हुआ
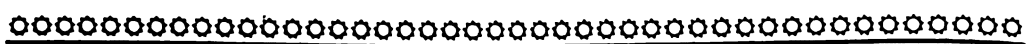
खूबीराम निकलकर एक ओर झाड़ी में ध्यानावस्थित होकर बैठ गया। मुझे आपने आज्ञा दी कि तू खूबीराम को पकड़ ला। मैं गय तो खूबीराम अकड़ गया और आवेश में आकर बोला, 'क्या कीर्तन-कीर्तन लिये फिरते हो? हम तो ध्यान करते हैं, समाधि लगाते हैं;' हम क्या किसी से कम हैं। उसकी बातों से मालूम हुआ कि वह अपने-आप में नहीं है, उसमें किसी योगी का आवेश है। खैर, मैं उसे पकड़ लाया।

किन्तु कीर्तन में आते ही उसमें कलियुग का आवेश हो गया और वह कीर्तन का विरोधी होकर सबका मुँह पकड़-पकड़ कर कीर्तन बन्द करने लगा तथा उछल-उछलकर सबको डराने लगा। बोला, 'मैं इस समय का राजा हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञा नहीं मानोगे तो मैं तुम्हें तंग करूँगा। इसिलये तुम मेरी बात मानो।' इसी समय पंडित जौहरीलाल में नारदजी का आवेश हो गया। वे सबको कीर्तन का उपदेश करने लगे। वे आग्रहपूर्वक सबसे कीर्तन कराते थे और खूबीराम के रूप में कलियुग सबको मना करता घूम रहा था। यह सब होते हुए भी बड़े जोर से कीर्तन हुआ, कलियुग की बात किसी ने नहीं सुनी। तब नारदजी ने कलियुग को कीर्तन-मण्डल से बाहर निकाल दिया और सचमुच ही उसे मुँह बाँधकर डाल दिया। तब वह गिड़गिड़ाने लगा कि महाराज! मुझे छोड़ दो, मैं अब कीर्तन में विघ्न नहीं करूँगा।

इस तरह करते-करते सबेरे के चार बज गये। तब कीर्तन समाप्त करके निजामपुर आये तथा हेतराम के दालानपर भोजन और दूध मँगवाया। कई घरों से दाल, रोटी और दूध आदि सब प्रकार का सामान आया। उस समय कलियुग महाराज की बन पड़ी। वे पंडित जयशंकर और नित्यानन्द के सिर पर चढ़कर बिगड़ उठे। मैंने पंडित नित्यानन्द से कहा कि आप (अहीरों की) रोटी तो खायेंगे नहीं, इसलिये दूध ही पी लें। वे एकदम बिगड़ उठे और नाराज होकर श्रीमहराजजी से बोले, 'तुमने सबको भ्रष्ट कर दिया। सब जातियों को एक कर डाला। तुम क्या प्रेम-प्रेम पुकारते हो? याद रखो, इस जन्म में तुम एक प्राणी को भी प्रेम प्रदान नहीं कर सकोगे।' श्रीमहाराजजी ने उन्हें बड़े प्रेम से समझाया और दूध

पिलाया, मैंने और पंडित जौहरीलाल ने तो रोटी ही खायी। किन्तु तब से इस बात को श्रीमहाराजजी भूले नहीं हैं। समय-समय पर आप कई बार कह चुके हैं कि मुझे तो नित्यानन्द ने शाप दे दिया है कि तुम एक भी प्राणी को प्रेम प्रदान नहीं कर सकोगे।

जिन दिनों की यह बात है उन्हीं दिनों आपके दर्शनों के लिये शिवपुरी के कुछ भक्त आये हुए थे। उनमें एक बाबाजी भी थे। वे एक मन्दिर के पुजारी थे। यों तो वे प्रायः निरक्षर थे, किन्तु वेष-भूषा से बड़े योगी-से जान पड़ते थे। उनके शिर पर जटाजूट थे तथा अंग में विभूति लगी हुई थी। जब वे ध्यान में बैठते थे तो उनकी गर्दन मुड़कर घुटनों से लग जाती थी। मेरे विचार से तो वह केवल निद्रा ही थी, किन्तु बहुत से लोग उसे समाधि मानते थे। इस स्थिति में वे घण्टों पड़े रहते थे। कुछ अनपढ़ वैश्य उनकी इस अवस्था में बड़ी श्रद्धा रखते थे। इस तरह उनके जीवन में अपना बड़प्पन दिखाने की प्रवृत्ति बहुत थी। उनकी बातें बड़ी विचित्र होती थीं। गृहस्थ लोगों को वे कई प्रकार के आशीर्वाद और गण्डा-ताबीज भी देते थे। किसी-किसी को घुणाक्षर न्याय से कुछ लाभ भी हो जाता था। किन्तु इन सब कारणों से बाबाजी को बड़ा अभिमान था।

बाबाजी को यद्यपि परमार्थ का कुछ भी पता नहीं था। परन्तु हमारे सरकार तो अदोषदर्शिता की मूर्ति ही हैं। अतः लोगों से जैसा सुन रखा था उसी के आधार पर आप बाबाजी में बड़ी श्रद्धा रखते थे। किन्तु जिस समय आपने शिवपुरी वालों के साथ पहली ही बार देखा तो आप उसी समय निजामपुर से भागे और हिरण की तरह चौकड़ियाँ भरते गवाँ की ओर चले गये। आपके पीछे और सब लोग भी भागे। इस तरह जो खास प्रेमी थे वे तो साथ-साथ भागते रहे, किन्तु बाबाजी साहब अपनी मड़क में ही रह गये। बेचारे प्रज्ञाचक्षु भक्त रामप्रसादजी भी किसी का हाथ पकड़कर हाँफते-हाँफते पहुँच गये। आप गवाँ के समीप भट्टा पर पहुँचकर ही रुके। जब सब लोग पहुँच गये तो आप बड़े प्रसन्न हुए और रामप्रसादजी से बोले, 'भाई! तुम तो थक गये होंगे। मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? मैंने आप सब लोगों को भगाकर बड़ा दुःख दिया।'

तब एक मनचले भक्त ने पूछा, 'महाराजजी! आप क्यों भागे थे?' आप बोले, 'इसमें दो कारण हैं– एक तो यह कि मैं बाबाजी से डर गया था। दूसरा यह कि यह मार्ग ऐसा ही है। इसको बड़ी तीव्र गति से चलने पर ही तय किया जा सकता है। यह संसार बड़ा ही भयानक है। इसमें साधक को पग-पग पर भय है। भक्तिमार्ग में सरलता की बड़ी आवश्यकता है। किन्तु इतना सावधान भी रहे कि किसी अनुचित स्थान में न फँस जाय। पूर्ण श्रद्धा और सरलता पूर्ण विश्वास तो अपने गुरुदेव में ही रखे। अतः जब तक सर्वत्र अपने इष्ट का दर्शन न हो तब तक साधक को बहुत देख-भालकर चलना चाहिये।'

इस प्रकार आपने जैसा हमें भगाया था वैसा ही आनन्द भी दिया। उस भागने में बड़ा ही रहस्य भरा था। वह यह कि जहाँ अपने विचार एवं साधन की अनुकूलता न हो और जिससे अपना मन न मिले वहाँ से स्वयं भाग जाय और अपने इष्ट साधन में लगा रहे। अपने प्रतिपक्षी के अवगुणों को देखे। इस मन को एक मिनट का भी अवकाश न दे, जिससे कि यह परदोष चिन्तन में लग सके।

बेचारे बाबाजी तो हम सबके चले आने पर निजामपुर को ही लौट गये। उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ। हमारे पहुँचने पर वे खूब रोये और स्पष्ट ही अपना दोष स्वीकार कर लिया कि मेरे मन में इस बात का बड़ा ही अभिमान था कि मैं भी तो बाबाजी ही हूँ। इसी से महाराजजी मुझ से डरकर भाग गये।

इसके बाद बाबाजी स्वयं महाराज जी के पास गये और रो-रोकर क्षमा याचना की। तब महाराजजी ने उनका बड़ा सत्कार किया। फिर तो बाबाजी की भी महाराजजी में बड़ी श्रद्धा हो गयी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपकी लीला बड़ी ही विचित्र है। आपने किसीको फुसलाकर, किसी के साथ खेलकर किसी को घोर विपत्ति के समय सहायता देकर, किसीको प्राणदान देकर, किसी को मित्र बनाकर, किसीको उपदेश देकर, किसी को डाँटकर और किसीको उपेक्षा करके परमार्थपथ में प्रवृत्त किया

है। जिसको जैसा अधिकारी देखा उसे उसी प्रकार भगवान की ओर लगा दिया। आपकी ऐसी प्रवृत्ति कोई नहीं होती जो दूसरे के हित के लिये न हो, भले ही वह ऊपर से देखने में कुछ कटु ही जान पड़े। आप सच्चे अर्थ में सबके प्रिय सबके हितकारी हैं।

होशियारपुर यात्रा

सन् १९२१ की बात है। आपने होली के बाद फिर होशियारपुर जाने का विचार प्रकट किया। इस बार मैं भी आपके साथ हो लिया। वहाँ आपका गुरुस्थान श्रीसच्चिदानन्दश्रम तो तहसील प्रेमगढ़ के पास है। किन्तु आप वहाँ से दो मील पूर्व की ओर अनन्ताश्रम के पास एक बगीचे में ठहरे। इस बगीचे के चारों ओर दीवार थी तथा भीतर एक कुआँ, एक कुटिया, जिसके ऊपर चौबारा भी था और एक रसोईघर ये सब स्थान थे। उसके अहाते के भीतर वृक्षों के पत्ते-सड़सड़कर बहुत बड़ा घूरा इकट्ठा हो गया था। सम्भवत: दस-बीस साल से उसमें कोई नहीं ठहरा था। अत: अपने नित्य के कार्यक्रम में आपने दो घण्टे सबेरे और दो घण्टे शाम को इस स्थान की सफाई के लिये भी रखे। इस काम में हम दोनों ही बड़े परिश्रम से जुट गये। आप पल्ला भरते थे और मैं उसे सिर पर उठाकर बहुत दूर डाल आता था।

उस समय गर्मी अधिक होने के कारण आपने नमक और मीठा दोनों ही छोड़े हुए थे। मैं बिना नमक का शाक बनाता था। दूध भी आप बिना मीठे का ही पीते थे। जब सफाई करते-करते हमें ठीक दो महीने बीत गये तब ज्येष्ठ

शुक्ला पूर्णिमा को आप बोले, 'परसों द्वितीया को प्रातः काल जिनौड़ी चलेंगे। यह बात सुनकर मुझे दुःख हुआ, मैंने कहा, महाराज जी! आज ही तो सफाई का काम पूरा हुआ है और यह आश्रम रहने योग्य बना है; किन्तु आप चलने को कह रहे हैं। इसमें से हमने कम से कम दो-सौ गाड़ी कूड़ा निकालकर फेंका है।'

यह सुनकर आप खूब हँसे और कहने लगे, 'अरे पागल! क्या हमने इसकी सफाई इसलिये की है कि हम जन्मभर यहीं रहेंगे। इस भावना से तो हमें संसार में कोई काम नहीं करना चाहिये। हमको तो केवल कर्त्तव्यपालन की दृष्टि से ही काम करना चाहिये 'कर्मण्येवधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' अरे! इसमें हम नहीं रहेंगे तो और कोई रहेगा और वही सुख पायेगा। हमें तो इसका यही प्रत्यक्ष फल मिल गया कि इतने काम रहने पर भी हम तत्परता से इसमें लगे रहे। इससें हमारा काल-यापन भी सुख-पूर्वक हो गया। हम जो अपने ही सुख-सुभीते के लिये सब काम करना चाहते हैं– यही तो सबसे बड़ी स्वार्थपरायणता है। यही तो संसार-बन्धन का हेतु है।'

इस प्रकार आपने उस समय निःस्वार्थ सेवा का बड़ा ही सुन्दर प्रतिपादन किया। उस आश्रम में रहते हुए जो एक उल्लेखनीय घटना हुई थी उसको वर्णन करना मैं भूल गया। अतः यहाँ लिखता हूँ। एक दिन आप उसी कुटिया में बैठे कथा कह रहे थे। उस समय एक सर्प आकर आपके आसन के नीचे बैठ गया। वहाँ कुछ सत्संगी भी थे, किन्तु वह सर्प आपके सिवा और किसी ने नहीं देखा। आप यथापूर्वक कथा बाँचते रहे। जब कथा समाप्त हुई तो सब सत्संगी अपने स्थानों को चले गये और वह सर्प भी आसन के नीचे से निकलकर एक ओर चले जाने लगा। तब आप मुझसे बोले, 'क्या तू इस सर्प को पकड़ सकता है?' मैंने कहा, 'हाँ, अभी पकड़े लेता हूँ।' यह कहकर मैं ज्यों ही उसे पकड़ने को झपटा कि आपने मुझे पकड़कर पीछे हटा दिया और डाँटकर कहा, 'खबरदार ऐसा नहीं करना चाहिये। क्या तुझे इससे भय नहीं मालूम होता?' मैंने कहा, 'बिलकुल नहीं' आपने तो अभी कथा में कहा था कि सर्वत्र अपने इष्ट को ही देखना चाहिये। फिर भय कैसा? आप बोले, 'भाई! रामकृष्ण परमहंस कहा

करते थे कि सभी ईश्वर हैं तथा साँप-बिच्छू भी ईश्वर ही हैं। किन्तु इन्हें तो दूर से ही प्रणाम करो। पता नहीं कि तुम्हारी उनमें ईश्वर भावना कितनी दृढ़ है, और मान लो कि तुम्हारे अन्दर पूर्ण सामर्थ्य है, तो भी उनसे दूर न रहने पर तुम्हारी लोकमान्यता ही तो बढ़ेगी, जो तुम्हारे अध:पतन का हेतु हो सकती है।' अत: साधक जितना ही संसार की दृष्टि से अपने साधन को छिपाकर रखेगा, उतना ही वह परमार्थ की ओर अधिक अग्रसर होगा।'

बस, द्वितीया की हम जिनौड़ी चले और वहाँ स्वामी श्रीपरमानन्दजी की कुटी पर ठहरे। स्वामी जी महाराज का शरीर शान्त हो चुका था। आप बड़े पण्डित और हमारे महाराज जी के बड़े गुरु भाई थे। आपका पुस्तकों का बहुत बड़ा संग्रह था। चार अलमारियाँ से पुस्तकों भरी हुई थीं। उस कुटिया की देख-रेख वहां के कुछ सत्संगी करते थे। श्रीमहाराजजी को देखकर वे लोग बड़े ही प्रसन्न हुए और इनके बहुत कुछ कहने पर भी उन्होंने मुझे भोजन नहीं बनाने दिया। नित्यप्रति बड़ी ही श्रद्धा से वारी-वारी से एक-एक के घर से भिक्षा आने लगी। मैं तो वहाँ की श्रद्धा देखकर दंग रह गया। पुरुषों की अपेक्षा माइयों में बहुत अधिक श्रद्धा भाव देखा गया।

यहाँ सायंकाल में वेदान्त की कथा होने लगी। उधर वेदान्त का ही प्रचार अधिक था। हमारे श्रीमहाराजजी की दृष्टि में तो वेदान्त, भक्ति, कर्म, योग सब एक ही वस्तु की प्राप्ति के विभिन्न साधन हैं। फिर भी वर्तमान काल में आप सर्वसाधारण के लिये नवधा भक्ति और उसमें भी श्रवण तथा कीर्तन भक्ति को विशेष उपयोगी मानते हैं। बस–

'रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं। सन्तत सुनिय रामगुण ग्रामहिं॥
कलियुग योग यज्ञ नहिं ज्ञाना। एक अधार रामगुण गाना॥'

वेदान्त-सिद्धान्त को तो आप बहुत ऊँचे अधिकार की चीज मानते हैं। इस कलिकाल में इसका तो अधिकारी ही दुर्लभ है। परन्तु यहाँ तो साधारण स्त्री पुरुष और नाई आदि निम्न जाति के व्यक्तियों को भी वेदान्त-चर्चा करते देखा।

आप प्रातःकाल वहाँ से दो मील जाकर स्वामी विश्वामित्र की कुटी पर शौच-स्नानादि से निवृत्त होते थे और वहीं प्रातः काल का सत्संग करते थे। फिर ग्यारह बजे कुटी पर लौटकर भोजन करते और उसके पश्चात् विश्राम एवं स्वाध्याय करके तीन बजे से पाँच बजे तक वेदान्त तथा किसी महापुरुष के जीवन-चरित्र की कथा करते थे। तदनन्तर सायंकाल में पहाड़ों में घूमने चले जाते। वहाँ कई भक्तों के साथ तरह-तरह के विनोद करते रहते थे। फिर कुटिया पर लौटकर रात्रि को कीर्तन होता था। कीर्तन वहाँ का भी बड़ा विचित्र था। वेदान्त विचार वाले तो अभेदपरक वाक्यों का ही कीर्तन करते थे। जैसे–

'चिदानन्दरूपः शिवः केवलोऽहम्।
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम्॥'
'मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्दघन।' इत्यादि।

इसी तरह भक्तिपरक कीर्तन भी होते थे। उनमें 'कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम्। राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्' यह कीर्तन बहुत सुन्दर होता था।

इस प्रकार जिनौड़ी का सत्संग भी बहुत अच्छा रहा। वहाँ प्रायः एक मास रहने पर मुझे ज्वर आ गया। सात लंघन हुए। उन दिनों में केवल जल ही पिया। आठवें दिन कुछ दाल का पथ्य लिया। उसी दिन आपने होशियारपुर चलने का विचार कर लिया। कई लोगों ने कहा, 'यहाँ से चौदह मील पहाड़ और जंगल का ऊबड़-खाबड़ मार्ग है। यह आठ दिन का बीमार कैसे चलेगा?' तब आप बोले, 'अच्छा उससे पूछो, वह क्या कहता है।' मुझसे पूछा गया तो मैंने बड़े जोश में कहा, 'श्रीमहाराजजी के पीछे तो मैं सौ कोस भी जा सकता हूँ। मुझे कुछ भी थकान नहीं होगी।'

बस, रात को दो बजे ही वहाँ से चल दिये। रास्ता आपका देखा हुआ था, फिर भी भोले बाबा ठहरे। जंगल में जाकर रास्ता भूल गये और कहीं खड्ड में चले गये। वहाँ कण्टकाकीर्ण झाड़ियों और पत्थरों में भटकने लगे। यह देखकर

मैं खूब हँसने लगा। आप बोले, 'हम तो रास्ता भूल गये हैं और तू हँसता है!' मैंने कहा, मुझे क्या मालूम कि आप रास्ता भूल गये हैं। क्या जाने यही रास्ता हो!' आप बोले, 'क्या तू नहीं भूला?' मैंने कहा, 'नहीं, मैं तो नहीं भूलाह हूँ। मैं तो आपके पीछे हूँ। आप जिधर जा रहे हैं मेरे लिये तो वही ठीक रास्ता है। आपकी आप जानें।' यह सुनकर आप खूब हँसे और बोले, 'अजीब पागल है। सरासर तो जंगल में भटक रहे हैं और इस पर भी कहता है कि हम नहीं भूले हैं।' अन्त में थोड़ा इधर-इधर घूम कर ठीक रास्ते पर आ गये और सूर्योदय से पूर्व ही होशियारपुर पहुँच गये। उन दिनों मुझपर बड़ी मस्ती सवार रहती थी। मुझे तो कुछ भी प्रतीत नहीं हुआ, सुखपूर्वक छलाँगें भरता होशियारपुर पहुँच गया।

इसके एक-दो दिन बाद ही आप इधर को चल पड़े। जलन्धर तूफान में सवार हुए। उस गाड़ी में भीड़ का कुछ ठिकाना नहीं था। जैसे-तैसे महाराज जी को तो बैठा दिया, किन्तु मैं तो भीड़ के कारण खड़ा ही रहा। चारों ओर आदमियों से भिचा होने के कारण मैं हाथ-पैर भी नहीं हिला सकता था। यहाँ तक कि मुझे साँस लेना भी कठिन हो गया था। आखिर नौ दिन का बीमार तो था ही, शरीर ने एकदम जबाब दे दिया। आँखों तले अँधेरा छा गया और मूर्च्छित होकर गिर गया। परन्तु वहाँ गिरने के लिए गुंजाइश कहाँ थी। इसलिये भीड़ में लटका ही रहा। जब आपने यह देखा तो अगले स्टेशन पर गाड़ी से उतर पड़े और मुझे भी उतार लिया। नीचे उतरकर आपने कहा, 'पीछे पैसेंजर गाड़ी आ रही है उसी में चलेंगे। वहाँ कुछ हवा लगने से मैं सावधान हो गया। तब आपने कहा, कुछ खाने को ले आ, भूख लगी है।' किन्तु मेरा हठ था कि रेल में कुछ नहीं खाना चाहिये तथा विदेशी चीनी की मिठाई, हलवाई की पूड़ी और नल के पानी का भी प्रयोग नहीं करना चाहिये। ऐसे नियमों के कारण मैं ठिठकने लगा। तब आपने समझाया कि नियम तो अच्छे हैं। किन्तु किसी भी प्रकार का दुराग्रह ठीक नहीं होता। तुमने कुछ खाया नहीं है, इसी से तुम्हारी यह हालत हुई है। अतः कुछ खा लेने से तबियत ठीक हो जायगी। तुम भूख-प्यास से व्याकुल हो, इसीसे मैंने अपनी भूख का बहाना किया है। नहीं तो, तुम जानते

ही हो कि मैं तो बिना मिर्च-मसाले की मूँग की दाल और लौकी या पालक का शाक खाने वाला हूँ। अत: जैसी परिस्थिति हो उसी के अनुसार अपने युक्ताहार-विहार की व्यवस्था कर लेनी चाहिये। यह सुनकर मैं जो कुछ भी मिला, ले आया। उसमें से कुछ आपने खाया और कुछ मुझे खाने को दिया। इस तरह जब कुछ खाकर मैंने जल पिया तो मेरी हालत ठीक हो गई।

दूसरे दिन बबराला स्टेशन पर उतरकर हम गवाँ आये और फिर उसी प्रकार प्रोग्राम बन गया। प्रात: काल बरोरा में कथा होती, मध्याह्न में गवाँ में भिक्षा तथा दोपहर बाद बगीचे में सत्संग और फिर रात्रि को निजामपुर में कीर्तन होता।

पण्डित छेदालालजी

शिवपुरी के जितने लोग हमारे श्रीमहाराजजी के सम्पर्क में आये हैं उनमें आपके सबसे अधिक कृपाभाजन पण्डित छेदालाल जी ही हैं। ये मेरे कुटुम्बी भाई हैं और मुझसे आठ वर्ष बड़े हैं। इनके पिता पण्डित काशीरामजी मेरे ताऊ थे। यद्यपि मेरे साथ उनका व्यवहार अच्छा नहीं था, तथापि ये मुझसे बचपन से ही बहुत प्रेम करते थे। इसी प्रकार इनकी धर्मपत्नी भी मुझपर स्नेह रखती थी। जब मैं पहली बार श्रीमहाराजजी के दर्शन करके निजामपुर से लौटा तो मुझसे उनका सुयश सुनकर इन्हें उनके दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा हुई। उसके एक महीना बाद ही श्रीमहाराजजी शिवपुरी पधारे। बस पहले दिन दर्शन करते ही इन्होंने प्रणाम किया और सदा के लिये श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। श्रीमहाराजजी का भी तभी से इनके प्रति अनुराग हो गया। आप इन पर मुझसे अधिक विश्वास करते थे इनके स्वभाव में बड़ी ही सरलता, सच्चाई और
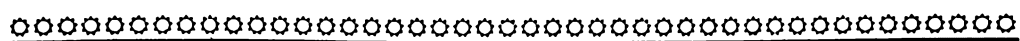
श्रीमहाराज जी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी। भजन तथा सेवा में भी इनकी रुचि मुझसे कहीं अधिक थी। मेरे प्रति इनका हार्दिक स्नेह और वात्सल्य रहा है। मैं जब-जब बीमार पड़ा हूँ उस समय इन्होंने और भाभी जी ने मेरी जो सेवा की है उसका ऋण तो मैं किसी प्रकार नहीं चुका सकता। मेरे साथ इनका बर्ताव सगे भाई से भी अधिक स्नेहपूर्ण रहा है। इसीसे बाहर के लोग तो हमें सहोदर भ्राता ही समझते हैं।

इनके पिताजी का मेरे प्रति कुछ द्वेष तो पहले ही से था। किन्तु जब ये श्रीमहाराज जी की शरण में आकर निरन्तर कीर्तन, भजन और सत्संगादि में रहने लगे तो वह और भी बढ़ गया तथा वे श्रीमहाराजजी को भी बुरा-भला कहने लगे। वे बड़े ही निर्भीक, बलवान वाक्पटु और लठा पांडे ग्रामीण पण्डित थे। सत्तर वर्ष की आयु होने पर भी घोर शीत में नंग घूमते रहते थे। हाँ, श्रीरामचरितमानस का उन्हें अच्छा अभ्यास था, इसीसे श्रीरघुनाथजी के प्रति भी उनका आन्तरिक अनुराग था।

उन दिनों में मेरी स्थिति बड़ी बेढंगी हो गयी थी। मैं सचमुच पागल हो गया था। मुझे चौबीसों घंटे खाने-पीने और सोने का होश नहीं था। घर में स्त्री होते हुए भी उससे मेरा सम्बन्ध नहीं के बराबर था। मैं दिन-रात किसी और ही दुनियाँ में रहता था। इस अवस्था में उस चोर चक्र-चूड़ामणि को कुछ और भी विनोद करने की सूझी। उसने सचमुच ही मेरे धन और स्त्री का हरण कर लिया। किन्तु मुझे तो इससे बड़ी ही शान्ति मिली। जिस दिन मेरा सर्वस्वहरण हुआ उस दिन मेरे हर्ष का पारावार नहीं था। मैं अपने आपे में नहीं समाता था और अपने प्राणप्रियतम की अहैतुकी कृपा का स्मरण करके मुझे बड़ा ही आनन्द हो रहा था। किन्तु ताऊजी को सांसारिक दृष्टि से यह बात बुरी लगी और उन्होंने बस्ती के सब बड़े-बड़े आदमियों को इकट्ठा करके मुझे बुलाकर समझाया। जब मैंने उनको लापरवाही से उत्तर दिया तो उन्होंने मुझे डाँटा। किन्तु मैं उनकी डाँट में नहीं आया। आता कौन, मेरा मन तो उस समय मेरे काबू में नहीं था।

उनकी बात न मानने से मेरे प्रति उनका द्वेष और भी बढ़ गया। वे हम सभी को बुरा-भला कहने लगे और महाराज जी के लिये भी उल्टी-सूधी सुनाने लगे। मैं उनसे बहुत डरता था और प्रायः उनके सामने नहीं जाता था। भाई साहब को भी वे बहुत डांटा करते थे और कहते थे कि तू इसका साथ छोड़ दे। किन्तु ये भी बहुत तेज स्वभाव के व्यक्ति थे और पहले कई बार घर से भाग चुके थे। अब भी जब वे विशेष तंग करते तो यही धमकी देते थे कि मैं घर से चला जाऊँगा। इसलिये वे इनसे डरते थे और प्रायः चुप रहते थे।

जब महाराजजी शिवपुरी पधारे तो सभी लोग उनके दर्शनों को गये। किन्तु ताऊजी नहीं गये और जहाँ-तहाँ उनकी निन्दा करते रहे। मैं तो उनसे उदासीन हो गया था, मानों मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं था। उनका शरीर खूब हृष्ट-पुष्ट था। एकदम लाल-लाल चमकता था। इन्द्रियाँ भी सब पूर्णतया स्वस्थ थी। आँख, कान और दाँत भी पूरा काम करते थे। तथापि रुधिर की अधिकता के कारण, अथवा महापुरुषों का अपराध करने से या उनके किसी पूर्व कर्म के अनुसार उन्हें गलितकुष्ठ हो गया। वे बुद्धिमान भी बहुत थे। अतः अनेकों औषधियाँ और संयमादि भी किये, किन्तु किसी से कोई लाभ नहीं हुआ। धीरे-धीरे रोग बहुत बढ़ गया। इससे वे बहुत दुःखी हुए और आत्मग्लानि के कारण अपने घर में एकान्त में पड़े रहने लगे। किन्तु धन्य है पुत्र छेदालाल! उन्होंने और उनकी पत्नी ने उनकी प्राणपण से सेवा की और उनसे रंचकमात्र भी ग्लानि नहीं रखी। उनके हाथ-पाँव और नाक गल गये थे, शरीर से दुर्गन्ध आती थी, बड़ी ही भयंकर अवस्था थी तथा कोई भी मनुष्य पास नहीं जाता था। किन्तु ये उनके घाव धोते, वस्त्र साफ करते, स्नान कराते, दवाई लगाते, अपने हाथ से उन्हें भोजन कराते और घण्टों पास बैठकर उनकी हवा करते थे। मैंने तो ऐसी सेवा करने वाला कोई अन्य व्यक्ति अपने जीवन में देखा नहीं है। उन्होंने अत्यन्त आत्मग्लानि के कारण कई बार आग्रह किया कि मुझे गंगा-तट पर ले चलो, मैं गंगाजी में डूबकर प्राण त्याग दूँ। परन्तु भाई साहब कैसे मान सकते थे। इन्होंने अपनी सेवा से उन्हें यथा सम्भव प्रसन्न ही रखा। इस हालत में उनका इनके

प्रति अत्यन्त प्रेम हो गया था तथा मेरे और महाराज जी के प्रति भी कोई द्वेष नहीं रहा था। मैं तो डर के कारण उनके पास नहीं गया। इसके सिवा मैं मन्दिर में रहता था तथा साधन भजन के काम में लगे रहने से मुझे अवकाश भी नहीं मिलता था और पहले ही उदासीनता का भाव रहने से उनकी याद भी नहीं आयी। हाँ, एक-दो बार यह सुना अवश्य था कि वे बहुत दुःखी हैं। किन्तु मैं कर भी क्या सकता था; केवल श्रीभगवान् से प्रार्थना अवश्य कर दिया करता था कि वे उनका चित्त शुद्ध करें और उनका कल्याण करें। बस, इस तरह दो तीन साल निकल गये।

एक बार मैंने श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण का आरम्भ किया। पहले दिन का पाठ समाप्त हुआ ही था कि पंडित छेदालाल जी मेरे पास आये और बड़े जोर से रोते हुए पृथ्वी पर गिर गये। मैंने एकदम उठकर उन्हें उठाया तो उन्होंने गद्गद कण्ठ से रोते हुए कहा, 'भाई! मेरे पिता का उद्धार करो। उन्होंने श्रीमहाराजजी की निन्दारूप घोर अपराध किया है। इसी से उनकी यह दुर्दशा हुई है।' मैंने पूछा, 'उनका क्या हाल है?' वे बोले, 'उन्हें घोर गलितकुष्ठ तो था ही, अब कई दिनों से ज्वर भी हो गया है और तीन दिन से अतिसार भी है। उन्हें क्षण-क्षण पर दस्त आता है। बड़ी ही दीन दशा है और उन्होंने रोते हुए कहा है कि उसे मेरे पास बुला लाओ।' उनकी यह बात सुनकर मेरा हृदय टूक-टूक हो गया, तथापि मैंने बड़े धैर्य से अपने को सँभाल कर कहा, 'आप चलें, उनके पास सफाई कर दें, मैं दो-चार सत्संगियों को लेकर वहाँ आता हूँ। उन्हें थोड़ी देर भगवन्नाम सुनायेंगे।'

बस, वे तो चले गये और मैंने एक आदमी को भेजकर अपने साथ कीर्तन करने वालों को बुलाया। उस समय मेरे मन में बड़ा तूफान उठा हुआ था, मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि हाय! मेरे कारण ही उनकी यह दशा हुई। भाई साहब मुझसे सब प्रकार बड़े हैं, फिर भी मेरे प्रति उनकी ऐसी श्रद्धा कि उनके मुख से 'मेरे पिता का उद्धार करो, ये शब्द निकले! इस बात को सोचकर मेरे धैर्य का बाँध टूट गया और मैं फूट-फूटकर रोने लगा, क्योंकि मैं तो निःसन्देह
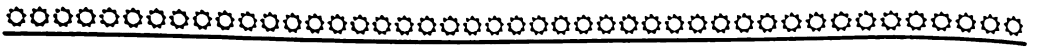
भाई साहब को अपने से श्रेष्ठ समझता था। ताऊजी भी मेरे पिता के ज्येष्ठ भ्राता थे, अतः उनका गौरव भी शास्त्रदृष्टि से मेरे लिये पिताजी से बढ़कर था। इन सब बातों पर विचार करके मुझे बड़ा ही अनुताप हुआ और मेरा ऐसा घोर संकल्प होने लगा कि इस अधम शरीर को त्याग दिया जाय। किन्तु ऐसा विचार आते ही मुझे यह मालूम हुआ मानों मेरे हृदय में विराजमान श्रीमहाराजजी मुझे अत्यन्त प्यार से समझाते हुए कह रहे हैं, 'खबरदार, ऐसा विचार मत करना। तुम अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करो और दृढ़तापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करो। उन्होंने उद्धार करने की बात तुम्हारे इस पाञ्च-भौतिक पुतले से थोड़ा ही कही है। तुम भगवान् पतितपावनता में विश्वास करके उन्हें श्रीहरि का पतिपावन नाम सुनाओ। क्या ऐसा कोई भी पाप है जो एक बार श्रीहरि का नाम लेने से नष्ट न हो जाय?

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरति स्मृतः ।
अनिष्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥

यस्मिन्नयस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने ।
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्रह्नोऽपि लोकोऽल्पकः॥
मुक्तिं चेतसि यत्स्थितोऽयमधियां पुंसां ददात्यव्ययं ।
किं चित्रं तदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते॥

'जासु नाम सुमिरत इक वारा, उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ।
जासु पतितपावन बड़ बाना, गावहिं सुर मुनि सन्त पुराना ॥'

पाई न गति केहि पतितपावन राम भज सुनु शठ मना ।

'विवशहु जासु नाम नर कहहीं, जन्म अनेक रचित अघ दहहीं ।'
'सादर सुमिरन जे नर करहीं, भव वारिधि गोपद इव तरहीं ॥'
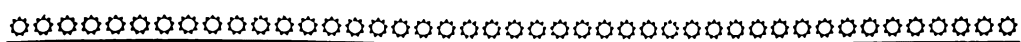
इस प्रकार श्रीमहाराजजी की अन्तः प्रेरणा होने पर मुझे नाम-महिमा के अनेकों वाक्य स्फुरित होने लगे और मुझे अपने अभिन्न-स्वरूप श्रीबजरंगबली का स्मरण हुआ। बस, अब मेरा साहस और बल अनन्त हो गया। मैं सावधान होकर अपने परमार्थबन्धु पण्डित रामप्रसादजी, पुजारी और मिढ़ईलाल आदि तीन-चार आदमियों को साथ लेकर उनके पास गया। मैंने देखा वे रजाई से मुँह ढके पड़े हैं और उनके पास ही भाई साहब खड़े हैं। मैंने पास जाकर उनके कान पर जोर से कहा 'ताऊ जी! मैं आ गया हूँ। मुझे क्या आज्ञा है?' यह सुनकर उन्होंने बड़े वात्सल्य से कहा, कौन? बेटा ललतुवा? तू मेरे पास आ गया? बेटा! मैं तो बड़ा अधम हूँ। मैंने तुम्हारी बहुत निन्दा की है। खैर, तुम्हारी निन्दा का तो मुझे इतना डर नहीं है, मैंने तो साक्षात् श्रीरघुनाथजी के स्वरूप श्रीमहाराजजी को भी बहुत बुरा-भला कहा हैं। हाय! मेरा उद्धार कैसे होगा?' ऐसा कहकर वे फूट-फूटकर रोने लगे।'

यह देखकर मेरा हृदय भर आया। तथापि मैंने जैसे-तैसे अपने को सँभाला और उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, 'ताऊ! घबराने की बात नहीं है। आपने रामायण पढ़ी है, क्या भगवन्नाम महिमा को आप भूल गये। आप उसे स्मरण तो कीजिये। अब आप कहें तो मैं रामायण सुनाऊँ, अथवा कोई और इच्छा हो तो वह सेवा करूँ।' तब उन्होंने रोते हुए कहा, 'बस, बेटा! अब मेरा अन्त का समय है, अतः तू मुझे राम नाम ही सुना दे, 'भाव कुभाव अनख आलस हू। नाम जपत मंगल दिसि दस हू।' और मेरे सब अपराधों को स्वयं क्षमा कर दे और महाराजजी से भी क्षमा करा दे।' इन शब्दों से तो मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। मैं लज्जावश कुछ भी न कह सका। बस, 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का कीर्तन आरम्भ कर दिया। ओहो! क्या कहें, उस समय तो नाम नरेश ने सबके हृदयों में प्रकट होकर अपना दिव्य चमत्कार दिखा दिया। सभी लोग प्रेम विह्वल हो गये। इस प्रकार एक घण्टे तक कीर्तन होता रहा। फिर एक-एक घण्टे के लिये दो-दो आदमियों की ड्यूटी लगाकर और यह कहकर कि जब तक इनके श्वास रहें कीर्तन होता रहे, तथा जब आवश्यकता समझें मुझे बुला लें, मैं चला आया।

बस, सारी रात इसी प्रकार उनके पास नामकीर्तन होता रहा। प्रात:काल चार बजे 'श्रीराम-श्रीराम' कहते हुए उन्होंने शरीर त्याग दिया। परन्तु भाई साहब ने मुझे इसकी कोई सूचना नहीं दी क्योंकि उन्हें यह ध्यान रहता था कि इसे अवकाश नहीं है। दोपहर को प्राय: १२ बजे वे मन्दिर में आये और कुछ प्रसन्न से मालूम हुए। मैंने पूछा, 'कहो ताऊ का क्या हाल है?' वे बोले कि वे तो चल बसे। मैंने कहा, 'आपने मुझे सूचना भी नहीं दी। मैं भी उनकी अन्त्येष्टि क्रिया में सम्मिलित हो जाता।' वे बोले, 'खैर, अब सोचो कि क्या करना चाहिये।

अब, भक्त रामप्रसादजी, मैं और भाई साहब तीनों ही ने बैठकर विचार किया कि कुष्ठी की श्राद्धक्रिया का विधान दूसरे ही प्रकार से है, वह कम से कम एक मास बीतने पर की जाती है। हमें यथा-सम्भव शास्त्रविधि का ही पालन करना चाहिये। इस बीच में अपने को राम-नाम का सहारा तो है ही। फिर यह प्रोग्राम निश्चित हुआ कि हम पाँच-छ: आदमी रात के दो बजे से सबेरे आठ बजे तक कीर्तन करते हैं वह तेरह दिन उन्हीं के निमित्त किया जाय और यह हार्दिक प्रार्थना की जाय कि भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। बस, जब एक महीना बीत गया तब जिस दिन से श्राद्ध आरम्भ हुआ उसी दिन से हम लोगों ने उनके लिये कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। इसमें एक बड़े आश्चर्य की बात हुई कि पहले तो हम लोगों को उस कीर्तन में इतना आनन्द आता था कि छ: घण्टे छ: मिनट की तरह निकल जाते थे और कीर्तन छोड़ने को चित्त ही नहीं होता था, किन्तु जिस दिन से उनके संकल्प से कीर्तन किया उसी दिन से सबका उत्साह गिरने लगा और हमें समय काटना कठिन हो गया। तथापि भय या संकोच के कारण कोई किसी से कुछ कहता नहीं था। आखिर बड़ी कठिनता से वे तेरह दिन कटे। माघ का महीना, घोर शीत और सामान्य से वस्त्र पहनकर शिवमन्दिर के पक्के फर्श पर केवल कुशासन डालकर बैठना तथा मन न लगने पर भी छ: घंटे कीर्तन करना– बड़ी कठिन समस्या हो गयी। मुझे तो उसम समय ऐसा प्रतीत होता था मानो कीर्तन में बैठते ही कोई मेरा गला घोंट रहा है और मेरे सामने एक काला-काला पहाड़-सा

खड़ा है। इससे मैंने अनुमान किया कि ये सब उनके संचित कर्म ही हैं, जो हमारे सामने विघ्न रूप से उपस्थित हुए हैं। किन्तु उन्होंने अन्त समय पर जो– 'भाव कुभाव अनख आलस हू। नाम जपत मंगल दिसि दस हू'। यह चौपाई कही थी, उसीको स्मरण करके धैर्य बँध जाता था।

हम लोगों ने जब से कीर्तन करना आरम्भ किया था तब से ऐसे हतोत्साह हम कभी नहीं हुए। अतः मैंने तो निश्चय कर लिया था कि यदि मुझे इस अनुष्ठान द्वारा उनके उद्धार का कोई प्रत्यक्ष चमत्कार दिखायी न दिया तो मैं अनशन करके प्राण त्याग दूँगा। किन्तु अपने इस निश्चय की बात मैंने किसी को सुनायी नहीं थी। अतः मैं मन ही मन घुटता रहता था। तेरहवें दिन भी वही हालत थी। किन्तु कब प्रातः काल छः बजने का समय हुआ तो एकदम पटपरिवर्तन हुआ। मेरे सामने जो काला पहाड़-सा था वह प्रकाश के रूप में तथा हमारा अनुत्साह प्रेम के रूप में बदल गया। हमारी वाणी गद्‌गद हो गयी तथा गाने का स्वर ऊँचे से ऊँचा एवं मधुर हो गया। बस, एकबार तो हम खूब खुलकर रोये। रोते-रोते हमारा हृदय एकदम प्रफुल्लित हो गया। फिर उस दिव्य प्रकाश में मुझे श्रीमहाराज जी के दर्शन हुए। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा, 'भाई! यह मार्ग ऐसा ही है। इसमें असीम धैर्य की आवश्यकता है। घबराना नहीं चाहिये। शुभ कार्य में अनेकों विघ्न आया करते हैं। फिर एक सामान्य जीव को भगवद्धाम की प्राप्ति होना कोई सहज बात तो नहीं है। देखो, तुमको जो यह काला पहाड़-सा प्रतीत होता था और तुम्हारा गला घुटता-सा जान पड़ता था यह सब उनका संचित कर्म ही था। अब भगवन्नाम के प्रभाव से वह नष्ट हो गया है। जब तक पाप अथवा पुण्यकर्म शेष रहता है तब तक इस मायाबद्ध जीव को भगवत्प्राप्ति नहीं होती। अब तुम आँखें खोलकर देखो, तुम्हारे ताऊ दिव्य विमान पर बैठकर बैकुण्ठ जा रहे हैं।' मैंने आश्चर्यचकित होकर आँखें खोलीं तो मुझे भूमि से कुछ ऊपर आकाश में एक दिव्य प्रकाशमय विमान दिखाई दिया। उस पर मेरे ताऊ चतुर्भुज रूप से विराजमान थे। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म सुशोभित थे, वे पीताम्बर धारण किये थे और साक्षात् विष्णुरूप हो गये थे। उनके प्रकाश से
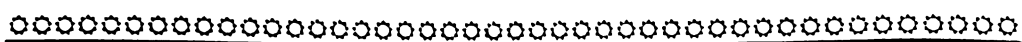
सारी दिशायें देदीप्यमान थीं। उस विमान को जो चार पार्षद उठाये थे उनका स्वरूप और वेष श्रीमहाराजजी के समान ही था। उनका दर्शन करके मैं श्रीभगवान् की अहैतुकी कृपा का अनुभव करते हुए विह्वल हो गया।

जब इस अद्भुत दृश्य को देखकर मैं मूर्च्छित प्राय: हो गया तो विमान पर बैठे हुए मेरे ताऊ ने मेरा नाम लेकर गम्भीर स्वर से पुकारा और कहा, 'बेटा! तुमने मेरा उद्धार कर दिया, इसका मैं क्या बदला दूँ। बस, यही बदला है कि श्रीहरि तुम्हारा कल्याण करें।' वे अत्यन्त कृतज्ञतापूर्ण नेत्रों से मेरी ओर देख रहे थे। बस, वह विमान चला और थोड़ी ही देर में मेरी दृष्टि से ओझल हो गया।

मैं तो हर्षातिरेक से उस समय मूर्च्छित हो गया। और सब लोग प्रेम सें विह्वल होकर कीर्तन करते रहे। मुझे प्राय: दो घण्टे में चेत हुआ। मैं एकदम सावधान होकर उठा। आज इस अनुष्ठान की समाप्ति का दिन था। इसलिये कुछ विशेष तैयारी हुई थी। श्रीभगवान् का सिंहासन बनाया गया था। प्रसाद भी कुछ विशेष बना था तथा गाँव के सभी भद्रपुरुषों को बुलावा दिया गया था अत: सारा मन्दिर स्त्री-पुरुषों से भरा हुआ था। मैंने उठकर भगवान् के सिंहासन के सामने जा साष्टाँग प्रणाम किया। उसी समय पूजन करके भोग लगाया गया तथा आरती हुई।

अब फिर कीर्तन आरम्भ हुआ। मैं अपने काबू नहीं था। मेरी विचित्र अवस्था थी और मैं पागलों की-सी चेष्टायें कर रहा था। सब लोग खूब जोरों से कीर्तन कर रहे थे। आज का कीर्तन क्या था, जादू था। मन्दिर में जितने लोग आये थे, प्राय: सभी पागल हो रहे थे। हरिनाम उनके मुँह से चिपट गया था। नाम का भूत सिर पर चढ़कर सभी को नचा रहा था। जो बड़े पंडित, कुलीन, धनी, मानो और गम्भीर प्रकृति के पुरुष थे वे भी सब थिरक-थिरककर नाच रहे थे। आनन्द और उत्साह का बाजार-सा लगा हुआ था। प्राय: दो घण्टे में कीर्तन समाप्त हुआ। तब प्रसाद वितरण हुआ। उस प्रसाद को सभी लोग बड़ी श्रद्धा से माँग-माँगकर ले रहे थे और अपने को कृतार्थ मानते थे। यह बड़े आश्चर्य का विषय था, क्योंकि श्राद्धान्न को तो लोग प्राय: ग्रहण ही नहीं करते और
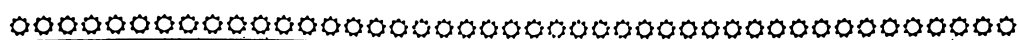
वह भी एक कुष्ठी के श्राद्ध का! हम तो समझते थे कि प्रसाद सम्भवतः कोई लेगा ही नहीं। किन्तु यहाँ तो इसके विल्कुल विपरीत हुआ। उस समय सबको ऐसा विश्वास हो गया था कि आज तो हमें साक्षात् श्रीहरि के अधरामृत से सिंचित महाप्रसाद मिला है। इससे हम कृतार्थ हो गये हैं। अतः जो बुलाये हुए थे और जो नहीं बुलाये गये वे सभी माँग-माँगकर प्रसाद ले रहे थे यही दशा उनके भण्डारे में भी हुई। सब लोगों ने माँग-माँगकर भोजन पाया और बस्ती में यह चर्चा फैल गयी कि पण्डित काशीराम तो बड़े भाग्यशाली निकले। उनका तो उद्धार हो गया। वे तो सीधे बैकुण्ठ चले गये।

आज सारा काम-काज भाई साहब को ही करना था। इसलिये वे इस कीर्तन में सम्मिलित नहीं हो सके। इसका उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे सबके सामने फूट-फूटकर रोने लगे। तब हम सबने भगवान् से प्रार्थना की कि प्रभो! यदि आज का यह सब रहस्य सत्य है तो इसका प्रत्यक्ष अनुभव आज जाग्रत या स्वप्न में इनको भी हो। तथा उनसे कहा कि आज रात को आप प्रार्थना करके सोना। उन्होंने सोते समय श्रीमहाराजजी से हार्दिक प्रार्थना की कि मेरे पिताजी जिस स्थिति में हों मुझे स्पष्ट दिखायी दें। अभी उनकी आँखें झपी ही थीं कि उन्होंने देखा, वे उड़कर किसी दिव्य लोक में पहुँच गये हैं। वहाँ एक बड़ा भारी दिव्य भवन है। उसमें घुसकर उन्होंने देखा कि एक सिंहासन पर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये एक महापुरुष विराजमान हैं। उन्होंने उनको प्रणाम किया। तब वे बड़े जोरों से हँसे और उन्हें गोद में बिठाकर उनका नाम लेकर बोले, 'बेटा! मैं अब बड़ा सुखी हूँ। तुम मेरी चिन्ता मत करना तथा खूब मन लगाकर महाराजजी की सेवा और भजन करना।' तब उन्होंने पहचाना कि ये तो मेरे पिता ही हैं। बस, वे उन्हें बार-बार प्रणाम करने लगे। तब उन्होंने उन्हें अनेकों आशीर्वाद दिये और मेरे विषय में भी कुछ बातें कहीं।

भाई साहब छेदालाल जी बड़े ही सरल और विश्वासी पुरुष हैं। यद्यपि ऊपर से ये कुछ उग्र और रुक्ष प्रकृति से जान पड़ते हैं, परन्तु वास्तव में इनका हृदय बड़ा ही कोमल, उदार और दयापूर्ण है। इनकी सरलता के कारण ही
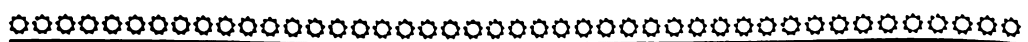
श्रीमहाराजजी इन पर बड़े प्रसन्न रहते थे और सचमुच ही इनके स्वार्थ और परमार्थ का सारा बोझा उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था। यहाँ तक कि महाराज जी ने इनके बड़े लड़के का यज्ञोपवीत बाँध पर स्वयं ही कराया था तथा इनकी बड़ी लड़की के विवाह में आप सारे परिकर सहित बाँध से पधारे थे। अतः इन्हें अपनी गृहस्थी की भी कोई चिन्ता नहीं थी। ये तो निश्चिन्त होकर केवल श्रीमहाराज जी की सेवा में लगे रहते थे। इन्हें जिस समय जो भी काम सौंपा जाता था उसे उसी समय बड़ी ईमानदारी, सच्चाई और तत्परता से करते थे।

इनका चित्त इतना शुद्ध था कि कभी-कभी इन्हें श्रीमहाराजजी का आवेश हो जाता था। उस समय इनमें अन्तर्यामिता एवं सर्वज्ञता आदि दिव्य गुणों का भी विकास हो जाता था। ये ठीक श्रीमहाराजजी की तरह आसन मारकर बैठ जाते थे, उन्हीं की तरह बोलते थे और जो बात आवश्यक होती थी कह जाते थे। यह आवेश कभी-कभी तो तीन चार घण्टे तक रहता था। फिर ये मूर्च्छित होकर एकदम पृथ्वी पर गिर जाते थे। सावधान होने पर इनसे पूछते तो कहते थे कि मुझे कुछ भी पता नहीं है। इन्हें यह आवेश उसी समय होता था जब कोई बड़ी अड़चन उपस्थित होने पर वे श्रीमहाराजजी का चिन्तन करते थे। उसके बाद भी इन्हें कई दिनों तक उसका नशा-सा रहता था।

बाँध बँधने से पहले एकबार ये निजामपुर में थे। उस समय वहाँ के प्रसिद्ध भक्त हेतराम की माँ का देहान्त हो गया। उसकी तेरहवीं के दिन कीर्तन करने के लिये हेतराम ने श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की। तब महाराजजी ने उसे समझाया कि मुझे तो इस समय जाना है, किन्तु मैं अपनी जगह छेदालाल को छोड़े जाता हूँ। तू यही समझना कि मैं ही कीर्तन कर रहा हूँ।

बस, महाराज जी तो चले गये और हेतराम के यहाँ निर्दिष्ट समय पर भाई साहब ने कीर्तन कराया। रात्रि को बारह बजे जब सब लोग कीर्तन समाप्त करके सो गये तब भाई साहब को ऐसा मालूम हुआ कि महाराजजी अम्बकेश्वर से आ गये हैं और गाँव के पश्चिम की ओर दलबल के साथ कीर्तन कर रहे
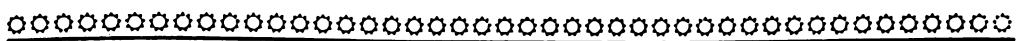
हैं। कीर्तन बड़ा ही दिव्य हो रहा है; उसमें ऐसे-ऐसे बाजे बज रहे हैं, जो कभी नहीं सुने। ये आश्चर्यचकित हो उठे और सारे गाँव में हल्ला मचा दिया कि चलो, महाराजजी कीर्तन कर रहे हैं। एक मिनट में सारा गाँव इकठ्ठा हो गया। सब लोग पश्चिम की ओर दौड़े। वहाँ पहुँचकर ऐसा मालूम हुआ कि पूर्व में कीर्तन हो रहा है। तब उधर पहुँचे। वहाँ ऐसा जान पड़ा कि दक्षिण से आवाज आ रही है, और वहाँ पहुँचे तो ऐसा भान हुआ कि उत्तर में कीर्तन हो रहा है। फिर आकाशमण्डल से कीर्तन की ध्वनि सुनायी दी और अन्त में पुनः पश्चिम की ओर मुरैना गाँव में पहुँचे। मुरैना के लोग आधी रात पर अकस्मात् इतनी भीड़ देखकर डर गये। अन्त में सबने मिलकर एक घंटा वहीं कीर्तन किया। बड़े आनन्द का कीर्तन हुआ। लोगों को अनेकों चमत्कार हुए। अनेकों रूपों में भगवान् के दर्शन हुए। किन्हीं को दिव्यनाद और किन्हीं को दिव्य-कीर्तन सुनाई दिया। किन्हीं को दिव्य मूर्तियों के दर्शन हुए और किन्हीं ने दिव्य-गन्ध का अनुभव किया। वहाँ से गाँव में लौटने पर भी वह सारी रात कीर्तन करते हुए ही बीती। इस प्रकार उस रात्रि को बड़ा ही आनन्द रहा।

एकबार शिवपुरी से गवाँ जाने के लिये ये बबराला स्टेशन पर उतरे और सड़क के रास्ते चल दिये। रास्ते में वर्धमान नाम की एक छोटी नदी पड़ती है। किन्तु वर्षा ऋतु में यह बहुत गहरी हो जाती है। सायंकाल का समय था और ये अकेले ही थे। ये बड़े घबराये कि अब क्या करूँ। नदी पार करने का कोई भी साधन नहीं था। पास ही में एक खेत वाला था। उससे पूछा तो वह बोला कि नदी गहरी होने के कारण आजकल तो यह रास्ता बन्द है। तुम बबराला लौट जाओ। किन्तु इनके मन में तो दृढ़ संकल्प था कि आज ही गवाँ पहुँचकर श्रीमहाराजजी के दर्शन करने हैं। अतः ये घबरा गये। फिर इन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि महाराजजी कह रहे हैं, 'तू डरे मत, इसमें केवल छाती-छाती पानी है।' ऐसा विचार आते ही ये नदी में घुस गये और अर्धबाह्य-सी अवस्था में उसे पार कर गये। उधर पहुँचने पर ही इन्हें होश हुआ और ये सावधान हो उसी समय दौड़कर दो घंटे में गवाँ पहुँच गये। वहाँ श्रीमहाराजजी के दर्शन किये। किन्तु गवाँ के आदमियों

से भी यही मालूम हुआ कि नदी गहरी होने के कारण तीन दिन से रास्ता बन्द है। सभी को इनके इस प्रकार उतरकर पहुँचने पर आश्चर्य हुआ।

एक बार श्रीमहाराजजी अनूप शहर में सेठ गौरीशंकर की धर्मशाला के सामने गंगाजी के किनारे एक चौबारे में रहते थे। उस समय ये शिवपुरी से दर्शनों के लिये गये। ये समझते थे कि महाराज जी गवाँ में हैं; अत: रेल से बबराला स्टेशन पर उतर पड़े। वहाँ किसी से पता चला कि वे तो अनूप शहर में है। तब ये उसी समय रेलवे लाइन के रास्ते राजघाट को चल दिये। किन्तु दर्शनों की प्रबल इच्छा होने के कारण प्राय: पागल हो गये। उन्मत्त की तरह अर्धबाह्य अवस्था में चल रहे थे। सोचते थे कि यदि गवाँ में होते तो आज ही दर्शन कर लेता, रात को नौ बजे तक वहाँ पहुँच ही जाता। किन्तु राजघाट से अनूप शहर का रास्ता तो मेरा देखा हुआ नहीं है। अब तो रात्रि में मुझे राजघाट ही ठहरना पड़ेगा। कल दोपहर तक ही मैं महाराजजी के पास पहुँच सकूँगा।

इस प्रकार सोचते हुए जब ये गंगाजी के पुल पर जा रहे थे तो इनकी व्याकुलता बहुत बढ़ गयी और ये मूर्च्छित-से होकर वहीं बैठ गये। तब इन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीमहाराजजी अनूपशहर की कुटी पर खड़े-खड़े कह रहे हैं, 'छेदालाल! तू पागल है, घबराता क्यों है? शान्ति से धीरे-धीरे आ जाना। ले, यह प्रसाद।' अब इन्होंने आँखें खोलकर देखा तो प्रत्यक्ष भी उसी कुटी पर खड़े दिखाई दिये। इन्होंने देखा कि महाराजजी ने वहीं से प्रसाद फेंका है। वह प्रसाद इनकी मूर्च्छित अवस्था में राजघाट के पुल पर इनके सामने गिरा। उसकी आहट से इनकी मूर्च्छा भंग हो गई तथा इन्होंने वह प्रसाद उठाकर खा लिया। इस अद्भुत प्रसंग से इनकी अकथनीय हालत हो गयी और इनके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा।

आजकल के मस्तिष्क प्रधान व्यक्ति तो सम्भवत: ऐसी बात पर विश्वास नहीं कर सकते, क्योंकि राजघाट से अनूपशहर प्राय: बाहर मील दूर है और बीच में बहुत कुछ व्यवधान भी है। इसे बहुत लोग पंडित जी का मनोराज्य
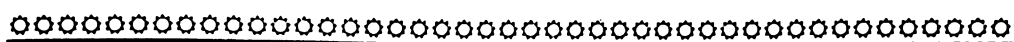
भी कह सकते हैं। किन्तु जिन्होंने प्रत्यक्ष अपने चर्मचक्षुओं से महाराजजी को अनूपशहर की कुटी पर खड़े देखा और उनका फेंका हुआ प्रसाद खाया वे इसे कोरा मनोराज्य कैसे जान सकते हैं। वास्तव में तो महापुरुषों की लीलाओं में ऐसी शंका करना बड़ी भारी भूल है। महात्माओं की शक्ति अचिन्त्य होती है। उसे तर्क की कसौटी पर नहीं कसना चाहिये।

'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योयजयेत्।'

दूसरे दिन राजघाट से चलकर ये भेरिया होते अनूप शहर पहुँचे। तब महाराजजी ने कहा, 'छेदालाल! अब की बार तुम्हें यहाँ आने में बड़ी तकलीफ हुई।' फिर बोले, 'भाई! परमार्थ में कुछ भी आश्चर्य नहीं है! सबसे बड़ा आश्चर्य तो यही है कि यह जीव श्रीहरि का नित्यदास होकर भी अपने स्वरूप को भूलकर माया का दास हो गया है।'

एक बार ये बरोरा गये। वहाँ ज्यों ही इन्होंने श्रीमहाराज जी का दर्शन कर उनके चरणों में दण्डवत की तो महाराज जी ने कहा, 'उठो! किन्तु जब उन्होंने उठकर देखा तो इन्हें मालूम हुआ कि महाराजजी वहाँ नहीं हैं। ये घबराकर मूर्च्छित होगये। फिर आवाज आई, 'सावधान होकर देख।' तब इन्होंने आँखें खोलकर देखा तो सामने एक ब्राह्मण के वेष में श्रीमहावीर जी बैठे दिखायी दिये। वे इनसे बोले, आँखें बन्द करो।' इन्होंने बन्द कर लीं। फिर कहा, 'खोलो' इन्होंने आँख खोली तो देखा कि सामने साक्षात् रघुनाथजी, दक्षिण भाग में श्रीलखनलालजी और वामभाग में जगदम्बा श्रीजनकनन्दिनीजी के सहित विराजमान हैं। ये दर्शन करके इनके आनन्द का पारावार न रहा। ये प्रायः मूर्च्छित हो गये। किन्तु साथ ही अपने श्रीमहाराजजी को न देखकर अत्यन्त दुःखी हुए और फूट-फूटकर रोते हुए पृथ्वी पर लोटने लगे। तभी श्रीमहाराजजी ने इन्हें उठा लिया और कहा कि 'छेदालाल! तुझे क्या हो गया है, तू पागल तो नहीं हो गया। उठ, सावधान हो जा।' तब ये सावधान हुए।
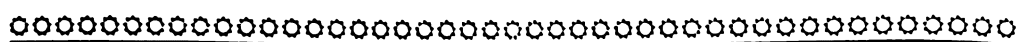
ये तुलसीकृत रामायण का पाठ बहुत करते थे। कभी-कभी तो एक आसन से ही बैठकर ये चौबीस घण्टे में पाठ पूरा कर जाते थे। दो-तीन दिन अथवा नौ दिन में पूरा पाठ तो इनका चलता ही रहता था। एक बार ये नवाह्न पाठ कर रहे थे इन्होंने जिस दिन वह पाठ आरम्भ किया उसी दिन ऐसा प्रतीत हुआ कि सैकड़ो सन्त सिद्धासन से बैठकर इनका पाठ सुन रहे हैं और इनके दायीं ओर श्रीमहावीरजी विराजमान हैं तथा वहीं श्रीमहाराजजी भी बैठे हुए हैं। श्रीरामयणजी के पाठ में इस तरह के चमत्कार इन्हें प्राय: हुआ करते थे। इनके स्वार्थ-परमार्थ सम्बन्धी सब प्रकार के कार्य रामायणजी के द्वारा सध जाते थे। ये विभिन्न कार्यों की सिद्धि के लिये भिन्न-भिन्न सम्पुट लगाकर पाठ किया करते थे।

एक बार बाँध पर गवाँ वाले साहू जानकी प्रसादजी के साथ इनका कुछ झगड़ा हो गया। श्रीमहाराजजी उस समय बाँध पर नहीं थे रात को इनके चित्त में बड़ा दु:ख हुआ और ये श्रीमहाराजजी का ध्यान करके रोने लगे। सोते समय इन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि इनकी कुटी से प्राय: एक फर्लांग की दूरी पर बड़ा दिव्य कीर्तन हो रहा है। ये एकदम चौंककर उठे और वहाँ गये तो देखा कि पृथ्वी से कुछ ऊपर आकाश में अनेकों दिव्यज्योतिर्मयी मूर्तियाँ कीर्तन कर रहीं हैं। ये विचित्र वस्त्राभूषणों से विभूषित हैं तथा अद्‌भुत वाद्यों के साथ बड़ा दिव्य कीर्तन कर रहे हैं। उन्हीं के मध्य में इन्हें घण्टा बजाते हुए श्रीमहाराजजी के भी दर्शन हुए। ऐसा दिव्य कीर्तन सुनकर ये स्तब्ध हो गये। एकदम चित्र-लिखित पुतली की तरह भौंचक्के से होकर देखते-सुनते रहे। जब कुछ देर बाद कीर्तन बन्द हुआ तो महाराजजी ने इन्हें नाम लेकर पुकारा और कहा, 'छेदालाल! क्या तू घबरा गया। इतना छोटा चित्त नहीं करना चाहिये। भाई! यह मार्ग बड़ा ही कठिन है। इसमें पग-पग पर भय है। खैर कोई चिन्ता की बात नहीं। अब आगे सावधान होकर बल और शान्तिपूर्वक काम करना चाहिये। देखो, तुम्हारे घबराने से मुझे चिन्ता हो जाती है, इसलिए तुम सावधान रहा करो। अच्छा, मैं जाता हूँ।' बस, उसी तरह उस कीर्तन-मण्डली सहित महाराजजी अन्तर्धान हो गये। इन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और अपनी कुटी पर लौट आये। फिर वह सारा विघ्न स्वयं ही शान्त हो गया।
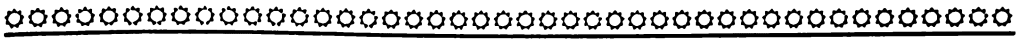
इस प्रकार स्वप्न और जाग्रत दोनों ही अवस्थाओं में इन्हें अनेकों बार दिव्य अनुभव हुए हैं। श्रीमहाराजजी ने भी इन्हें कई बार, बहुत दूर रहते हुए भी, प्रत्यक्ष दर्शन देकर संकट से मुक्त किया है।

एक बार इनका एक पुत्र बीमार हो गया। उसके बचने की कोई आशा नहीं रही। श्रीमहाराजजी उस समय होशियारपुर में थे। एक दिन अकस्मात् वे हाथ में कमण्डलु लिये आये और इनके दरबाजे पर पहुँचकर 'छेदालाल! छेदालाल!' कहकर पुकारा। ये उठकर दौड़े और चरणों में प्रणाम किया। आप सीधे भीतर चले गये और उस मरणासन्न बालक का नाम लेकर पुकारा। उसने उसी समय उठकर श्रीचरणों में प्रणाम किया। आप बोले, 'तू अब कैसा है?' लड़का बोला, 'बहुत अच्छा।' तब आपने कहा, 'इसकी औषधि बन्द करो और यह जो भी माँगे वही खाने को दो। अब यह ठीक हो गया। लाओ, मुझे भी बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को दो। मैं होशियारपुर से दौड़ा आया हूँ।' भाई साहब ने उस समय घर में जो भी खाने को था दिया। फिर आप बोले, 'देखो, यह बात किसी से मत कहना। अब मैं जा रहा हूँ, फिर आऊँगा। इस समय तो तुम लोगों को बहुत घबराते देखकर चला आया था। तब सब घरवालों ने प्रणाम किया। आप दरबाजे तक जाते मालूम हुए, आगे पता नहीं लगा कि कहाँ गये। इसके बहुत दिनों बाद आप होशियारपुर में आये।

पण्डित छेदालालजी की धर्मपत्नी के साथ भी श्रीमहाराजजी की ऐसी लीलायें बहुत होती थीं। एक दिन आपने प्रातः काल चार बजे आकर इनका दरबाजा खटखटाया। इन्होंने किवाड़ खोल दिये। उस समय आप और भाई साहब सम्भवतः बाँध पर थे। किवाड़ खुलने पर आप भीतर गये और कहा, 'मुझे बड़ी भूख लगी है। जल्दी से कुछ खाने को दो।' ये बोलीं, 'आप विराजें, मैं अभी ताजा भोजन बनाये देती हूँ।' आप बोले, 'नहीं जो कुछ रखा है वही दे दो।' तब इन्होंने लाचार होकर जैसा भी रूखा-सूखा बासी भोजन घर में रखा था लाकर आगे रख दिया। उसमें से कुछ तो आपने खाया और कुछ अँगोछे में

बाँध लिया तथा उसे लेकर चल दिये। इसी प्रकार पण्डित रामलाल वहठवालों और पण्डित हरियशजी हरदासपुर वालों के यहाँ कई बार आपने भोजन किया हैं।

उस समय इनकी बड़ी विचित्र अवस्था थीं। ये प्रातः रोती ही रहती थीं। तथा इनका भजन, कीर्तन और पाठ आदि भी निरन्तर चलता रहता था। दो-चार स्त्रियों के साथ मिलकर ये छः-छः घंटे तक कीर्तन करती थीं और उसमें पागल हो जाती थीं। कभी-कभी तो मूर्च्छित भी हो जाती थीं और घण्टों उसी अवस्था में पड़ी रहती थीं। उस समय इन्हें ऐसा अनुभव प्रायः होता था कि श्रीमहाराजजी इनके पास आये हैं और इन्हें गोदी में लेकर बच्चों की तरह प्यार कर रहे हैं। उनके समझाने-बुझाने से ही ये सचेत होती थीं। कभी-कभी इन्हें श्रीमहाराजजी के स्वरूप में दिव्य दर्शन होते थे। इन्हें कभी मुरलीमनोहर श्रीश्यामसुन्दर के रूप में कभी कौशलेन्द्र श्रीराम के रूप में, कभी शचिनन्दन गौरांग के रूप में और कभी अपने ही रूप में दिखायी देते थे। उसमें समय ये देखती कि महाराजजी के सारे शरीर से प्रकाश फूट-फूटकर निकल रहा है, किन्तु उस प्रकाश में तीव्रता नहीं शीतलता है। आँखें उसे देखते-देखते नहीं थकतीं। कभी इनको ऐसा प्रतीत होता कि इनका सारा घर तेजोमयी दिव्य मूर्तियों से भरा है तथा अनेकों सिद्ध पुरुष स्थिर आसन से बैठे हुए है।

एक बार ये प्रातः काल उठकर भजन में बैठी थीं। उसी समय इन्हें ध्यान में गंगा किनारे एक मछली दिखायी दी। वह देखते-देखते एक बहुत बड़ा मत्स्य हो गया। तब उसे देखकर ये घबराई और कहा कि आप कौन हैं। तब उस मत्स्य ने मुँह फाड़ दिया। उसके मुँह में इन्हें एक-एक करके क्रमशः दसों अवतारों के दर्शन हुए। फिर वह मत्स्य अन्तर्धान हो गया और उसके स्थान में श्रीमहाराजजी प्रकट हुए। इसी प्रकार कभी-कभी ध्यानावस्था अथवा स्वप्न में ये दिव्यलोकों में पहुँच जाती थीं और वहाँ का बड़ा विचित्र वर्णन किया करती थीं। वह सब प्रसंग यहाँ विस्तार भय से छोड़ दिया है।

एक बार होली के अवसर पर भावावस्था में ये मेरे पैरों से लिपट गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं। मैंने जैसे-तैसे इन्हें उठाया। किन्तु मेरा हाथ लगते

ही मूर्च्छित हो गयीं। मैं उसी अवस्था में छोड़कर मन्दिर को चला गया। चौबीस घण्टे बाद ठीक उसी समय भाई साहब मेरे पास गये। मैंने जाकर देखा तो उसी प्रकार निश्चेष्ट पड़ी हुई थी। नाड़ी की गति भी बन्द थी और दिल की धड़कन भी नहीं थी। हाँ, शिर के ऊपर अवश्य गर्मी थी। यह दशा देखकर हम निराश हो गये। अब हमारा सहारा तो केवल भगवन्नाम ही था। अतः सब मिलकर जोर-जोर से कीर्तन करने लगे। प्रायः एक घंटे बाद उनके शरीर में रोमाञ्च-सा प्रतीत हुआ। इससे हमें धैर्य बँधा। फिर कुछ देर बाद कम्प हुआ और आँखें भी खुल गयीं। तब जैसे-तैसे कुछ दूध पिलाया। इस प्रकार छब्बीस घंटे में होश हुआ। हमने पूछा, 'क्या हो गया था?' तो कहा कि मुझे कुछ खबर नहीं। मैं तो अपने महाराजजी के साथ खेल रही थी।

एक बार श्रीमहाराजजी पंजाब जिला कांगड़ा धर्मशाला पहाड़ पर थे। उस समय छेदालालजी आपके दर्शनों के लिये शिवपुरी से होशियारपुर गये और वहाँ न मिलने पर पैदल ही धर्मशाला पहुँचे। महाराजजी उस समय इनसे बहुत प्रसन्न थे और इनके साथ तरह-तरह के खेल किया करते थे। एक दिन बाहर टहलने गये और एक झरने के पास बैठ गये। फिर हाथ में दो कागज लेकर कहा, 'छेदालाल मेरे एक हाथ में तो यह लोक है और दूसरे में परलोक। इसमें से तुझे जो चाहिये उठा ले' इन्होंने झट से दोनों कागज उठा लिये और फाड़ कर झरने में बहा दिये। आप बोले, 'अरे पागल! यह तूने क्या किया? तेरे दोनों लोक झरने में बह गये' यह कहकर जोर-जोर से हँसने लगे। इन्होंने रोते हुए चरण पकड़ लिये और कहा, 'मुझे तो केवल आपकी आवश्यकता है।'

इसी प्रकार एक दिन और टहलने गये और बराबर चलते ही रहे। जब प्रायः आठ नौ मील निकल गये तब ध्यान आया और भाई साहब से कहा, 'घड़ी तो देख, क्या बजा है।' इन्होंने घड़ी देखकर कहा कि इतने बजे हैं। तब आप घबराकर बोले, अरे! मैं भूल गया। मैंने तो अमुक समय बाबूजी के पास जाने को कहा था। अब केवल पन्द्रह मिनट ही रह गये हैं। बता, इतनी देर में नौ मील कैसे पहुँचेंगे?' छेदालालजी हँस पड़े और कहा, आपकी लीला आप ही
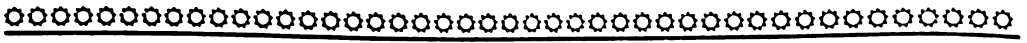
जानें।' तब आप बोले, 'अच्छा तू आँखें खोलना मत।' इस आज्ञा को सुनकर एक बार तो ये डरे कि ऊँचा-नीचा, सम-विषम पहाड़ी रास्ता है, कैसे होगा? परन्तु फिर महाराजजी की अलौकिक शक्ति समझकर कह दिया, 'अच्छा।' बस, आँखें बन्द करते ही इन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई हवा का झोंका इन्हें पीछे से उड़ाये लिए जाता है और ये एक-सी सड़क-पर चल रहे हैं। दस मिनट ही आपने कहा, 'आँखें खोल दे।' तब इन्होंने देखा कि हम बाबूजी की कोठी के पास ही आ गये हैं। आपने कहा, 'घड़ी देख।' इन्होंने घड़ी देखकर समय बताया। तब आप बोले, 'अच्छा हुआ, ठीक समय पर ही आ गये नहीं तो वचन मिथ्या हो जाता।' फिर भाई साहब से कहा, देख सावधान, यह बात किसी से कहना मत।'

भाई साहब छेदालाल और उनकी धर्मपत्नी के साथ श्रीमहाराजजी की ऐसी असंख्य लीलायें हुई हैं। उन्हें कहाँ तक लिखें। संकोच करते-करते भी यह प्रसंग बहुत बढ़ गया। अतः अब इसे यहीं विराम देते हैं।

रघुवर

सन् १९५२ ई० की बात है। श्रीमहाराजजी शिवपुरी में थे और बस्ती वाले क्वारतनय वैश्वों के मन्दिर में ठहरे हुए थे। वहाँ से जब बाहर टहलने के लिए जाते थे तो रास्ते में एक आठ वर्ष का क्षत्रिय बालक मिलता था। उसे आजकल तो 'रघुवीर सिंह' या 'रघुवीरजी' कहते हैं, किन्तु उस समय हम लोग उसे 'रघुवर' ही कहा करते थे। यह बड़ा ही सुशील और सुन्दर बालक था। यहाँ अपनी ननिहाल में रहता था। उस रास्ते से आते-जाते समय वह प्राय: श्रीमहाराजजी को प्रणाम किया करता था। उसने जब पहली बार आपके दर्शन किये तभी उसका चित्त आपकी ओर आकर्षित हो गया। वह इस प्रतीक्षा में रहा करता था कि कब श्रीमहाराजजी इधर से निकलें। उसका आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ने लगा; किन्तु संकोचवश वह दूर से ही प्रणाम करता था। धीरे-धीरे उसे यह चटपटी लगी कि किसी प्रकार एक बार आपका चरणस्पर्श कर लूँ। अत: वह एक दिन हिम्मत करके आगे आया और श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम करके पड़ गया। प्रणाम करते ही उसकी विचित्र अवस्था हो गयी और वह प्राय: मूर्च्छित हो गया। महाराजजी ने उसकी ओर दृष्टि भरकर देखा ओर कहा, उठो, कीर्तन में आया करो।

बस, उसी दिन से वह नित्य प्रात: सायं कीर्तन में और दोनों समय कथा में आने लगा। वह आठ वर्ष का बालक कीर्तन में उन्मत्त हो जाता था और कभी-कभी तो फूट-फूटकर रोने लगता था। उस समय वह श्रीमहाराजजी के सान्त्वना देने पर ही शान्त होता था। इसी तरह कथा में भी सिद्धासन से बैठकर एकदम भावसमाधि में मग्न हो जाता था। पीछे वह कुछ बालोचित सेवा भी करने लगा। किन्तु अभी तक महाराजजी उससे विशेष बोलते नहीं थे। इधर इसकी आपसे बातचीत करने की अभिलाषा प्रबल हो उठी। एकबार अलीगढ़ में बड़े समारोह का उत्सव हुआ। उसमें बहुत-से भक्तिपरिकर के साथ श्रीमहाराजजी भी पधारे और भारतबन्धु प्रेस मदार दरवाजा में बाबू राजेन्द्र बिहारीलाल के यहाँ ठहरे।

इधर शिवपुरी की कीर्तन-मण्डली में रघुवर भी गया था। उसके मन में बड़ी भारी चटपटी लगी हुई थी कि किसी प्रकार महाराजजी मुझसे बोलें। आखिर, एक दिन बहुत घबराकर वह जिस मकान में महाराजजी ठहरे हुए थे उसके बाहर दरवाजे पर साष्टांग दण्डवत् करके पड़ गया। तब आपने स्वयं किवाड़ खोले बड़े प्रेम से हाथ पकड़कर रघुवर को उठाया और पूछा, 'तुम कहाँ रहते हो?' (अभी तक आपने कभी यह भी नहीं पूछा था।) उसने सब बातें बतलाकर प्रार्थना की कि मैं तो सर्वदा आपकी सेवा में ही रहना चाहता हूँ। आपने समझा-बुझाकर आश्वासन दिया और कहा, 'भैया! एकाएकी घरबार छोड़ना ठीक नहीं। अभी तो तुम्हारे पढ़ने का समय है। खूब मन लगाकर पढ़ो तथा अपने माता-पिता की सेवा करो। जो मनुष्य अपने प्रथम कर्तव्य से च्युत होकर मर्कट वैराग्य के कारण सब छोड़-छाड़कर भजन करने की चेष्टा करता है वह उभय-भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए तुम्हें जल्दी नहीं करनी चाहिये। नये साधक को तो अपनी स्थिति का कुछ पता भी नहीं होता, उसे तो चाहिये कि गुरुदेव की शरण होकर सब प्रकार आत्मसमर्पण करके वे जैसी आज्ञा दें वैसा ही करे, उनकी आज्ञा में ही प्रसन्न रहे तथा अपना हठ और दुराग्रह त्याग दे। हाँ ध्रुव-प्रह्लादादि के समान कुछ ऐसी भगवद्-विभूतियाँ होती हैं जो बाल्यावस्था से ही सब कुछ त्यागकर भगवद्‌चरण हो जाती हैं। किन्तु सब कोई उनका अनुकरण नहीं कर सकते।' इस प्रकार आपने उसे बहुत समझाया और अपने हाथ से कुछ प्रसाद भी दिया। उस प्रसाद को पाते ही रघुवर को अत्यन्त शान्ति का अनुभव हुआ, मानो उसके द्वारा शरीर में एक दिव्य शक्ति का संचार हो गया हो। वह उसी दिन से निर्भय होकर कीर्तन और सत्संग में सम्मिलित होने लगा और उसने पढ़ने का भी निश्चय कर लिया।

अलीगढ़ के उत्सव में ही एक दिन समष्टि कीर्तन में रघुवर की विचित्र अवस्था हुई। वह पहले तो उन्मत्त की तरह नृत्य करता रहा और फिर गिरकर मूर्च्छित हो गया। उस मूर्च्छा की अवस्था में उसे दिव्यप्रकाश का अनुभव हुआ। वह प्रकाश अनेकों सूर्यों के समान देदीप्यमान होने पर भी अनेकों चन्द्रमाओं
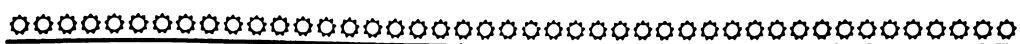
के समान शीतल और स्निग्ध था, मानों साक्षात् चिदानन्दरस का समुद्र ही हो। फिर उसे उसमें अपने प्रियाप्रियतम के दर्शन होने लगे। उस समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी श्रीकिशोरीजी के सखी-परिकर में ही हूँ और मेरा स्त्री-शरीर है। किन्तु उस अवस्था में भी मुझे बार-बार श्रीमहाराजजी के दर्शनों की ही प्रबल इच्छा होती है और मैं फूट-फूटकर रो रहा हूँ। इससे वह प्रिया-प्रियतम ही बदलकर श्रीमहाराजजी हो गये और मैं प्रसन्न होकर श्रीचरणों में लिपट गया। किन्तु थोड़ी ही देर में पुनः प्रिया-प्रियतम ही दिखाई दिये और मैं फिर रोने लगा। इससे पुनः महाराजजी प्रकट हो गये। इस प्रकार मुझे कभी प्रिया-प्रियातम और कभी महाराजजी दर्शन देने लगे। परन्तु मेरी इच्छा केवल श्रीमहाराजजी के दर्शनों की ही थी। अन्त में महाराजजी और प्रिया-प्रियतम साथ-साथ प्रकट हुए और उन्होंने मुझे समझाया कि हम दोनों में कोई भेद नहीं है। ये हमसे भिन्न नहीं और हम इनसे भिन्न नहीं हैं।

इसके पश्चात् वह अपने माता-पिता के पास दिल्ली चला गया और वहाँ पढ़ने लगा। किन्तु वहां भी वह कभी-कभी महाराजजी के विरह में पागल हो जाता था, फूट-फूटकर रोने लगता था और मछली की तरह तड़पता था। उस समय उसे ऐसा प्रतीत होता था कि श्रीमहाराजजी आ गये हैं और उसे गोदी में लेकर प्यार करते हुए खूब बातें कर रहे हैं। इस अवस्था में उसके मन में जो भी सन्देह होते उनका वे उत्तर दे जाते थे तथा उसे क्या करना चाहिये—यह भी साफ-साफ बता जाते थे। कभी-कभी ऐसा भी कहते थे कि मैं तुझे सदा ही देखता रहता हूँ। तब वह कहता कि मुझे रुलाते क्यों हो? तो आप कहते, 'तेरे रोने से मुझे अत्यन्त सुख मिलता है, इसलिये मैं छिपकर देखा करता हूँ और जब तू बहुत व्याकुल हो जाता है तो प्रकट हो जाता हूँ।

'अपनाकर सेवन करे, तीन भाँति गुरुदेव।
पंजा पक्षी कुंजमन, कछुआ दृष्टि जु भेव॥
जो वे बिसरें घरी भी, तो गन्दा हो जाय।
चरनदास यों कहत हैं गुरु को राख रिझाय॥'

इस प्रकार जब-जब रघुवर अधिक व्याकुल होता तभीश्रीमहाराजजी उसे कभी स्वप्न में और कभी प्रत्यक्ष दर्शन देकर समझा देते। कभी-कभी वह पढ़ना-लिखना छोड़कर दिल्ली से भाग जाता और जहाँ कहीं भी महाराजजी होते वहीं पहुँच जाता। तब भी दो-चार दिन रहने के बाद आप समझा-बुझाकर लौटा देते थे। इस तरह केवल महाराजजी के भय से ही वह पढ़ता रहा और उन्हीं की कृपा से प्रति वर्ष पास भी होता रहा। इस प्रकार वह एण्ट्रेंस तक पहुँच गया। उसकी इस प्रगति को देखकर लोग आश्चर्य करते और स्वयं उसे भी आश्चर्य होता था कि वह इस हालत में कैसे पढ़ता रहा।

एक बार वह भिरावटी के उत्सव पर गया। वहाँ कीर्तन में उसकी बड़ी विचित्र अवस्था हुई। वह अत्यन्त विह्वल हो उठा। तब महाराजजी ने उसे शान्त किया और कहा कि तुम 'अब प्रभु कृपा करहु यहि भाँति। सब तजि भजन करहुँ दिन राती।।' यह सम्पुट लगाकर रामायण का पाठ करो। वह इस सम्पुट के साथ श्रीरामचरितमानस का नवाह्नपारायण करने लगा। इससे उसकी घबराहट कम हो गयी और भाव भी स्थायी हो गया।

अब उसके घरवालों ने विवाह का उद्योग किया। उनका विशेष आग्रह होने पर उसने श्रीमहाराजजी से पूछा। तब उनका भी यही संकेत मिला कि विवाह कर लेना चाहिये। इस प्रकार उसका विवाह भी हो गया।

एकबार श्रीमहाराजजी दिल्ली पधारे! वहाँ चार महीने तक बड़े समारोह से कीर्तन, सत्संग तथा उत्सव होते रहे। उसमें एकबार कीर्तन करते-करते रघुवर मूर्च्छित हो गया और बहुत प्रयत्न करने पर भी होश में नहीं आया। बराबर बारह घंटे तक वह सिद्धासन से भाव समाधि में बैठा रहा। उसमें उसे निरन्तर महाराजजी के दर्शन होते रहे तथा उनसे वार्तालाप भी हुआ। उस अवस्था में भी उसे करोड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान एवं अत्यन्त सुशीतल दिव्य प्रकाश का अनुभव हुआ और उसीके मध्य में कलिपावनावतार शचिनन्दन श्रीगौरसुन्दर के दर्शन हुए। उनका प्रांशुकलेवर तप्तकांचन के समान गौरवर्ण था तथा वे दोनों भुजाएँ उठाये 'हरिबोल'
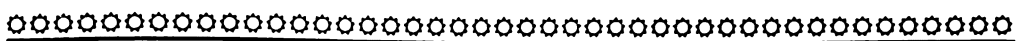
की मधुर ध्वनि से आकाश को गुञ्जायमान कर रहे थे। उनके आस-पास श्रीपाद नित्यानन्द एवं श्रीवास पण्डित आदि उनके प्रिय पार्षद भावावेश में उछल-उछलकर नृत्य करते हुए 'हरिबोल' की मधुर ध्वनि से उनका कीर्तनोत्साह बढ़ा रहे थे। उस समय रघुवर को ऐसा अनुभव हुआ कि वह भी उनका नित्य-पार्षद है और उनके साथ कीर्तन करता हुआ नृत्य कर रहा है। उसकी इस अवस्था को देखकर सब लोग घबरा गये। श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की तो उन्होंने कह दिया कि तुम कोई चिन्ता मत करो। वह स्वयं ही ठीक हो जायगा। फिर लोगों के बार-बार आग्रह करने पर आपने उसके मस्तक पर हाथ रखकर उसका नाम लेकर पुकारा। इससे वह गाढ़ निद्रा में सोते हुए की तरह एकदम सावधान हो गया और श्रीचरणों में लोटने लगा। तब महाराजजी ने उसे फटकारा कि तू वृथा ही दूसरों को कष्ट देता है, सावधान रहा कर।

इसी प्रकार सन् १९२७ में भी जब महाराजजी दिल्ली से जाने लगे तो वह कीर्तन में रोते-रोते मूर्च्छित हो गया तथा उसी अवस्था में मोटर में स्टेशन पर भी पहुँच गया। जब जैसे तैसे महाराजजी ने उसे सावधान किया और अपना पहना हुआ एक बहुत बढ़िया फूलों का हार, जिसमें बहुत-सा कलाबत्तू भी लगा था, उसे पहना दिया। जिस समय आपने उसे समझा-बुझाकर लौटाया उसके हृदय में आग-सी लगी थी। उसने फूलों की प्रसादीसमझकर उसे कलाबत्तू के तारों सहित खा लिया। किन्तु इससे उसे कोई हानि न होकर चित्त में बड़ी शान्ति हुई और साधन में भी उसकी प्रवृत्ति तीव्र हो गयी।

सन् १९२८ के आस-पास बाँध पर उत्सव में उसे पूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी के दर्शन हुए। तभी से उसका चित्त उनकी ओर आकर्षित होने लगा। यह आकर्षण जितना-जितना उनकी ओर बढ़ा उतना ही इधर से कम होने लगा। तब तो वह घबराया और ऐसी भावना करने लगा कि श्रीबाबा भी तो महाराजजी के ही स्वरूप हैं। ये उनसे भिन्न तो हैं नहीं। पूज्य बाबा तो उसे महाराजजी का समझकर ही प्यार करते थे, क्योंकि प्यार का स्वरूप ही है-'दुचन्दा क्यों न चाहूँ मैं मेरे प्यारे का प्यारा है।' किन्तु भाई! यह तो सिद्धों का खेल है। बेचारे साधक के

लिये तो यही घाटी बड़ी ही भयंकर है। गंगा पर गंगादास और यमुना पर यमुनादास अथवा बेपेंदी का लोटा, जिधर चाहा उधर ही लुढ़क गया। यह कोई निष्ठा का स्वरूप नहीं है। गुरु एकही हो सकता है तथा पतिब्रता के पुत्र का पिता और साधक का इष्ट भी एक ही हो सकता है। जो दो में या अनेक में निष्ठा कर सकते है वे या तो सिद्ध पुरुष हैं, जिनको सर्वत्र अपना इष्ट ही दीखता है, 'जिधर देखता हूं उधर तू ही तू हैं' या मायानटी के चक्कर में आये हुए क्षुद्र साधक हैं। तनिक प्राकृत प्रेमी मजनू की बात तो सुनिये—

'कहा अंजली ने मजनू, तुझे अल्लाह बुलाता है।
कहा गर उनको मिलना है तो लैली बनकर आ जाए।।'

वह तो अल्लाह से भी तभी मिलना पसन्द करता है जब वह लैली बनकर आवे। उसकी आँखें तो केवल लैली पर ही लगी हैं। वह दूसरे की ओर कैसे देख सकती हैं? रसमर्मज्ञ रहीम कवि कहते हैं—

'प्रीतम छबि नयनन बसी, पर-छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आपु पथिक फिर जाय।।'

हाँ एक बात अवश्य है कि उत्तम पतिव्रता भी अपने घर के सारे सम्बन्धियों की सेवा करती है। किन्तु उन सबकी सेवा में कारण है एकमात्र अपने पतिदेव की प्रसन्नता। अर्थात् प्रकारान्तर से यह भी पतिसेवा का ही एक अंग है। परन्तु यह बात है बड़ी कठिन। अतः हमारे गोसाईजी तो देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, स्थावर, जंगम सबसे अत्यन्त दीन होकर यही माँगते हैं—

'बसहु राम सिय मानस मोरे।'
'सब कर मांगहुँ एक फल, रामचरन रति होउ।'

'एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।'
एक राम आनन्दघन, चातक तुलसीदास।।'

भाई! मैं तो आपसे शपथ खाकर कहता हूँ कि मेरी निष्ठा तो एक में भी पूरी नहीं हो सकी। उसका प्रमाण यही है कि यदि एक में पूर्णनिष्ठा होती तो सर्वत्र ही पूर्ण हो जाती, क्योंकि यह सब झंझट तो साधन-काल का ही है, साध्य की प्राप्ति होने पर तो सर्वत्र एक इष्ट का ही दर्शन होता है। इसलिये जिनकी दो या दो से भी अधिक में निष्ठा है वे धन्य हैं। उनके विषय में कुछ भी सोचने का मेरा अधिकार नहीं है। मैं तो केवल अपनी बात लिख रहा हूँ और जो कुछ प्रत्यक्ष देखा उसका उल्लेख किये देता हूँ। मेरी इस ढिठाई को पाठक क्षमा करें। अस्तु।

अब शनैः शनैः बाबा में रघुवर का राग बढ़ता गया और महाराजजी की ओर से कम होता गया। अतः आगे चलकर इसका परिणाम यह हुआ कि वह वहाँ भी स्थिर न रह सका और इन दोनों महापुरुषों से उपराम होकर एक-तीसरे के आश्रित हो गया। फिर तो धीरे-धीरे उसका वह सारा भाव न जाने कहाँ चला गया और कर्म-प्रवृत्ति के चक्कर में पड़कर उसकी बहिर्मुखता बहुत बढ़ गयी।

सन् १९३० की बात है। श्रीमहाराजजी तथा बाबा दोनों ही बाँध पर विद्यमान थे। बड़ी धूमधाम से उत्सव हो रहा था। और भी अनेकों सन्त, साधक, कथावाचक, कीर्तनकार और व्याख्याता आये हुए थे। निरन्तर सत्संग की गंगा ही बह रही थी। उसमें रघुवर भी उछल-डूब रहा था। कभी पूज्यबाबा के प्यार से अपने हृदय को प्रफुल्लित करता तो कभी श्रीमहाराजजी के साथ कीर्तन का आनन्द ले लेता था। किन्तु उसके अन्तस्तल में एक जबरदस्त हलचल मची हुई थी। उसमें वह भीतर ही भीतर घुट रहा था, अपनी वह बात किसी से भी प्रकट नहीं करता था।

एक दिन प्रातः काल वह गंगा किनारे बैठा भजन कर रहा था कि एकदम किसी ने उसका गला घोंट दिया। इससे वह सचमुच मरणासन्न हो गया, उसके प्राण छटपटाने लगे और श्वास रुक गया। उसकी सब इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गयीं। अब उसने घबड़ाकर मन ही मन श्रीमहाराजजी का स्मरण किया महाराजजी
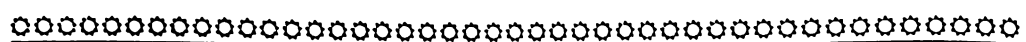
उसके हृदय में प्रकट हो गये और उससे डाँटकर कहा, 'रघुवीर❁! क्यों घबराता है, अब तो मैं आ गया हूँ। किन्तु आज के भय से बचने के लिये तुझे कुछ प्रतिज्ञा करनी होगी।' उसने मन ही मन प्रार्थना की कि यदि आज मेरे प्राण बच जायँ तो मैं आजीवन केवल श्रीमहाराजजी की सेवा में ही रहकर निरन्तर भजन करूँगा। उसके इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर महाराजजी ने उस विघ्नरूप राक्षस को फटकारा, 'अरे दुष्ट! तू इस बालक को छोड़ दे, यह मेरे आश्रित है। तब रघुवर को स्पष्ट दीख पड़ा कि वह विघ्न उसे छोड़कर एक भयंकर राक्षस का रूप धारणकर श्रीमहाराजजी से भिड़ गया है। तथा महाराजजी भी साधुवेष त्यागकर रावण विजयी राघवेन्द्र के रूप में प्रकट हुए हैं और हाथ में धनुषबाण लेकर बारम्बार उस दुष्ट को फटकार रहे हैं। महाराजजी की ऐसी अपार करुणा देखकर रघुवर विह्वल हो गया और मन ही मन 'पातु मां वीर रामः' कहने लगा। बस, महाराजजी ने एक ही वाण में उस दुष्ट का अन्त कर दिया। अब रघुवर को चेत हुआ तो उसने देखा कि वह पृथ्वी पर पड़ा है और महाराजजी उसके पास बैठे कह रहे हैं, 'रघुवीर! तू सावधान हो जा।' बस वह उसी समय उठकर श्रीचरणों में लिपट गया और रोने लगा। तब महाराजजी ने कहा, 'अरे रघुवीर! तू तो मेरे हाथ से निकल गया। अब तू मेरा नहीं रहा। पराया जैसा हो गया। अच्छा, कोई घबराने की बात नहीं है। जो कुछ होता है ठीक ही होता है। इस अल्पशक्ति जीव के अधीन तो कुछ भी नहीं है।

इसी प्रकार एक बार उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तीन वर्ष ब्रह्मचर्य से रहकर भजन करूँगा। किन्तु किसी कारण से उसकी वह प्रतिज्ञा बीच ही में भंग हो गयी। अतः वह दुःखी होकर गंगाजी में छलांग मारकर प्राण त्यागने लगा। किन्तु ज्यों ही वह गंगाजी में छलांग मारकर प्राण त्यागने लगा। किन्तु ज्यों ही वह गंगाजी में छलांग मारकर प्राण त्यागने लगा। किन्तु ज्यों ही वह गंगाजी की गहरी धारा में कूदने को तैयार हुआ उसके मन ही मन यह विचार

❁ अब अधिकांश लोग रघुवर को 'रघुवीर' कहने लगे थे।

आया कि अच्छा, मरते समय महाराजजी का स्मरण तो कर लूँ। बस, उसने मन ही मन महाराजजी से प्रार्थना की और उन्हें प्रणाम किया। फिर वह ज्यों ही कूदने लगा कि महाराजजी ने उसे पीछे से पकड़कर हृदय से लगा लिया और आश्वासन देते हुए कहा, क्यों घबराता है, क्या तुझे गीता के ये वाक्य स्मरण नहीं हैं—

'अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥
'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति॥'
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥'[*]

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

'काल स्वभाव कर्म बरियायी, भलेहु प्रकृतिवश चुकहि भलाई।'
'सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं, दलि दुख दोष विमल यश देहीं'
'लहत न प्रभु चित चूक किये की, करत सुरति सौ बार किये की।'
'जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली, सोई सुकण्ठ पुनिकीन्ह कुचाली'
'सोइ करतूत विभीषण केरी, सपनेहु सो न राम हिय हेरी।'
'ते भरतहिं भेटत सनमाने, राज सभा रघुवीर बखाने'

इस प्रकार बहुत आश्वासन देकर श्रीमहाराजजी ने उसे शान्त किया।

---

[*] कोई अत्यन्त दुराचारी क्यों न हो, यदि अनन्यभाव से वह मुझे भजने लगे तो उसे साधु ही समझना चाहिये, क्योंकि अब तो उसका निश्चय ठीक ही है। वह तत्काल ही धर्मात्मा हो जाता है और नित्य शान्ति को प्राप्त कर लेता है। हे कुन्तिपुत्र! प्रतिज्ञा करो कि मेरा भक्त कभी नाश को प्राप्त नहीं होता।

शिवपुरी की कुछ लीलाएँ

क्रीड़ा-कौतुक

सम्भवतः सम्वत् १९९० की बात है, श्रीमहाराजजी शिवपुरी में विराजमान थे। उस समय बाँध प्रान्त के प्रायः सभी भक्त आये हुए थे। एक सामान्य-सा उत्सव ही था। नियमित कार्यक्रम चल रहा था। सबेरे ८ बजे से ८।। तक समष्टि कीर्तन ८।। से ११ बजे तक रासलीला और फिर मध्याह्नोत्तर २ बजे से ५ बजे तक कथाएँ होती थीं। स्वामी रामधन की रासमण्डली आयी हुई थी। बड़े आनन्द का समारोह था।

यह नित्यप्रति प्रोग्राम समाप्त हो जाने पर आप सायंकाल में कुछ गिने-चुने भक्तों के साथ श्रीरामगंगा की बालुका में कुछ खेल खेला करते थे। ये खेल भी विचित्र ढंग के होते थे। अधिकतर तो आप कबड्डी, आँख मिचौनी, किनमिनकानी, गढ़दौरा या कोड़ा जमालशाही आदि बालोचित खेल ही खेलते थे। किन्तु कभी-कभी कोई आध्यात्मिक भावपूर्ण नया खेल भी खेला जाता था। उनमें एक खेल इस प्रकार था कि एक लम्बी-सी कुण्डली बालू में काढ़ दी जाती थी। उसके बीच में एक आदमी को चादर ओढ़ाकर बैठा देते थे और उसका नाम रख देते थे 'लीलादेवी'। फिर सब लोग कुण्डली से बाहर कीर्तन करते हुए उस लीलादेवी की परिक्रमा करते थे। इससे उसमें कुछ आवेश-सा हो जाता था। तदन्तर महाराजजी उससे कुछ प्रश्न करते थे और वह जैसा उचित समझता था उनका उत्तर देता था। लीलादेवी बनने वाले कुछ चुने हुए लोग ही थे। उनमें भी यदि पण्डित रामलाल लीलादेवी बनते तब अवश्य कुछ विचित्रता आ जाती थी। उन्हें अद्भुत आवेश होता था।

हम जिस समय की चर्चा कर रहे हैं उस समय एक दिन यह लीला हुई और पंडित रामलाल ही लीलादेवी बने। आज बैठते ही उन्हें विचित्र आवेश हुआ। वे पहले तो ताण्डव नृत्य करते रहे। उसमें कभी तो जोर-जोर से रोने लगते और कभी ठहाका मारकर हँस पड़ते। जब हँसते तो हंसते ही चले जाते।

आज उनकी बड़ी विचित्र अवस्था थी। मुँह में अपस्मार(मिरगी) के रोगी की तरह झाग आ रहे थे, आँखें खुली की खुली रह गयीं; अंटी में जो बीस-पच्चीस रुपये थे वे भी बिखर गये जेब में बहुत-सी चीजें भरी थीं; वे भी फैल गयीं तथा उन्होंने कमीज फाड़कर फैंक दी। उस समय उनके शरीर में इतना बल हो गया कि वे किसी के रोके नहीं रुकते थे। सायंकाल की अधियारी फैल गयी, किन्तु वे सावधान ही न हुए। तब श्रीमहाराजजी ने बड़े प्यार से पूछा, 'तुम कौन हो?' वे बोले, 'मैं तुम्हारा महाप्रभु नहीं हूँ, मैं तो उनका त्यागा हुआ एक तुच्छ दास हूँ।' यह कहकर वे श्रीमहाराजजी के पैर पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगे और बोले, 'मैंने महाप्रभुजी के स्तनों का दुग्ध पान किया है, किन्तु अब उन्होंने मुझे त्याग दिया है।'

प्रिय पाठक! जरा विचार तो करें, ये कौन है। श्रीमहाप्रभुजी को श्रीकृष्णलीला का अभिनय करने के पश्चात् श्रीजगदम्बा का आवेश हो गया था। उस समय सभी भक्त बालकों की तरह उछल-उछलकर उनका स्तनपान करने लगे थे। किन्तु रामलालजी को इस प्रसंग का कोई पता नहीं था और न उन्होंने कभी यह लीला देखी या सुनी ही थी। इससे निश्चय होता है कि आज उन्हें जिनका आवेश हुआ वे उनमें से ही कोई भक्त थे।

बस, उसी अवस्था में उन्हें कपड़े पहनाकर जैसे-तैसे ले आये। इस आवेश का नशा उन्हें तीन दिन तक चढ़ा रहा।

गौर लीला

इससे भी पहले एकबार हम सबने मिलकर गौरलीला का अभिनय किया था। उसमें भी बाँध प्रान्त के सभी प्रमुख भक्त सम्मिलित हुए थे। उस समय होली का उत्सव हो रहा था। उस लीला में श्रीमन्महाप्रभुजी का पार्ट तो स्वयं श्रीमहाराजजी ने ही लिया था। मेरा पार्ट था श्रीपाद नित्यानन्दजी का। इसी प्रकार श्रीअद्वैताचार्य रामशंकरजी, श्रीवास पण्डित हरियशजी, श्रीधर लाला राधेश्यामजी

बजाज, तमोली शिवचरण और मुकुन्द पंडित राधेश्यामजी बने। शची माँ कौन बने थे, यह मुझे स्मरण नहीं रहा। हाँ, विष्णु प्रियाजी का पार्ट रामेश्वर ने किया। इसी प्रकार अन्यान्य भक्तों ने भी कई दूसरे पार्टों का अभिनय किया था। श्रीगौरसुन्दर की बाललीलाऐं, बाजार-भ्रमण, श्रीधर से छेड़छाड़ जगाई-मधाई-उद्धार और काजी-उद्धार आदि अनेकों लीलाएँ बड़े आनन्द से हुईं। अभी! वह लीला क्या थी, साक्षात् ज्यों का त्यों हो रहा था। जिस भक्त का जो पार्ट होता था उसमें सचमुच उसी का आवेश हो जाता था।

आप स्वयं ही सबको पार्ट बताते थे और उसका भाव भी समझाते थे। हम लोगों को युक्तहार-विहारपूर्वक रहकर लीला के निमित्त कुछ जप भी करना होता था। जो दोनों समय कीर्तन में सम्मिलित हों और कम से कम सोलह माला महामन्त्र की जपें वे ही लीला में आ सकते थे, सर्वसाधारण नहीं। अतः अपने ही परिकर के इने-गिने लोग दर्शक थे। जो निर्दिष्ट समय तक आ गये सो आ गये। फिर मन्दिर का फाटक बन्द करके पहरा लगा दिया जाता था। उसके बाद कोई नहीं आ सकता था।

लीला आरम्भ होने से पहले कीर्तन होता था। उस समय सबको यही प्रतीत होता था। कि हम इस दुनिया में हैं ही नहीं। हम लोग साक्षात् भगवद्धाम में हैं और भगवान् के ही पार्षद हैं। माया तो किसी प्रकार हमारा स्पर्श ही नहीं कर सकती। उसके बाद लाला राधेश्याम, शिवचरण, मिढ़ईलाल और किशोरी आदि मंगलाचरण करते थे। इन सबके मधुरकण्ठ, गद्गद् वाणी और भावुक हृदय सबको एकदम भगवद्धाम में पहुँचा देते थे। फिर श्रीमहाराजजी स्वयं सूत्रधार का पार्ट करते थे और मैं पारिपार्श्विक होता था। कभी आप गोलोक के कोतवाल का अभिनय करते थे। उस समय हाथ में एक लम्बी-सी लाठी लेकर आते और बड़े ही गम्भीर शब्द से सब जीवों को सावधान करते थे। उसके पश्चात् दिव्य-धाम दिव्य-लीला और सपार्षद श्रीमन्महाप्रभुजी का आवाहन करते थे। उस समय सचमुच ऐसा प्रतीत होता था मानो सभी लोग दिव्य चिन्मय भाव रस के समुद्र में किलोल कर रहे हैं।

धीरे-धीरे श्रीमहाप्रभुजी की नवद्वीप लीलाएँ तो समाप्त हो गयीं। अब उनकी गया-यात्रा का अभिनय आरम्भ। उसमें जो श्रीगौरसुन्दर के भाव परिवर्तन की लीला हुई उसने तो सभी समुपस्थित दर्शकों को प्राय: मूर्च्छित कर दिया। सभी दिव्य भगवत्प्रेम से भर गये। इस प्रकार गया-यात्रा की लीलायें समाप्त हुईं और संन्यास का प्रसंग आरंभ हुआ। उसे देखकर सबके हृदय हिल गये और हमें ऐसी आशंका हुई कि कहीं हमारे कौतुकी सरकार इसे सत्य करके ही न दिखा दें। ऐसा न हो ये सचमुच ही हम सबको त्यागकर चले जायँ। अब तक की लीलाओं से हमारी यह आशंका निश्चय में परिणत हो चुकी थी। वैराग्य तो इनमें स्वाभाविक ही है, फिर हम सबको त्यागना इनके लिये कौन बड़ी बात है। अत: सबका ऐसा विचार हुआ कि अब लीला बन्द कर दी जाय। बस, हमने मिलकर लीला बन्द करने का प्रस्ताव आपके आगे रखा। तब आपने त्यौरी बदलकर कहा, 'क्यों?' मैं बोला, 'हम लोगों को भय है कि आप इस लीला को कहीं सचमुच करके न दिखा दें। इस पर आपने कहा, 'इससे अच्छा क्या हो?' सच करने के लिये ही तो हमारा यह उद्योग है। तुम लोगों का यह विचार बहुत नीचे दरजे के मोह को लेकर ही है। अत: इस विचार को छोड़कर खूब तत्परता से लीला में लग जाना चाहिये।'

बस, संन्यास की लीला आरम्भ हुई। पहले दिन भक्तों के साथ परामर्श, शची माँ की अनुमति और संन्यास के उपोद्‌घातमात्र में आपकी जो विचित्र अवस्था हुई उसीसे हम लोग घबरा गये। किन्तु करें क्या, अपने वश की तो कोई बात थी नहीं। हमारे सबके चित्तों में धड़कन पैदा हो गयी। दूसरे दिन गृहत्याग का प्रसंग हुआ और गौरसुन्दर अपनी सड़सठ वर्ष की बूढ़ी माँ, चौदह वर्ष की बालिका पत्नी तथा नित्यानन्द जी आदि सभी भक्तों को त्यागकर केवल एक वस्त्र से गंगाजी के पार हो कटोआ पहुँचे। वहाँ श्रीकेशवभारती से संन्यास ग्रहण किया तथा श्रीकृष्ण विरह में व्याकुल हो वृन्दावन की ओर दौड़े। इस प्रसंग का महाराजजी ने जो अभिनय किया, हाय रे! उससे सभी भक्त भयभीत होकर प्राय: मूर्च्छित हो गये और फूट-फूटकर रोने लगे।

उस दिन की लीला वहीं समाप्त हो गयी। आपको जैसे-तैसे संभालकर कुटिया में ले गये। वहाँ बड़े प्रयत्न से थोड़ा दूध पिलाकर शयन करा दिया। फिर हम सब भी अपने स्थानों को चले गये। किन्तु सबके चित्तों में कुछ घबराहट अवश्य थी। अत: कुछ लोग जाने की सीढ़ियों पर ही पड़े रहे। परन्तु कुछ तो थके थे और कुछ देवमाया का प्रभाव हुआ, इसलिये सबको निद्रा ने अचेत कर दिया। बस, चतुर चूड़ामणि रात को दो बजे ही किवाड़ खोलकर चले गये। जब चार बजे और कुटी के किवाड़ नहीं खुले तो लोगों ने पास जाकर देखा कि किवाड़ भीतर से खुले हैं और कमण्डलु भी नहीं है। अत: सबको निश्चय हो गया कि जो संशय था वह ठीक होकर रहा।

अब सब लोगों ने मिलकर आपको खोजने का निश्चय किया और कोई एक दिशा में तो दूसरे-दूसरी दिशा में इस प्रकार सभी ओर अनेकों लोग दौड़े। वे बिना अन्न-जल ग्रहण किये बीस-बीस मील तक गये, किन्तु कहीं आपका पता न लगा। आखिर, हार-झकमारकर सभी लौट आये। फिर कई लोगों ने तो ऐसा निश्चय कर लिया कि जब तक महाराजजी नहीं आवेंगे हम अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। इन्हीं में भाईसाहब छेदालाल और उनकी धर्मपत्नी भी थे। बाँध प्रान्त के लोग तो निराश होकर अपने-अपने घरों को चले गये। रहे शिवपुरी वाले, उन सबने मिलकर रामायण के अखण्ड पाठ, हनुमान चालीसा के एक सौ आठ पाठ और अखण्ड-कीर्तन आरम्भ कर दिये। उस समय तो शिवपुरी की ठीक वह अवस्था थी जो श्रीगौरसुन्दर के संन्यास लेने पर नवद्वीप की और भगवान् राम के वनगमन पर श्रीअयोध्याजी की हुई थी।

'राम दरश हित नेम व्रत, लगे करन नर-नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि॥'

इस प्रकार एक-एक क्षण गिनते छ: दिन बीत गये। उन छ: दिनों में लोगों की बड़ी विचित्र अवस्थाएँ हुईं, उन्हें बड़े दिव्य अनुभव हुए और विचित्र स्वप्न दिये। बस, छठे दिन सायंकाल में अकस्मात् ही आप हाथ में कमण्डलु लिये मन्दिर में आकर खड़े हो गये।
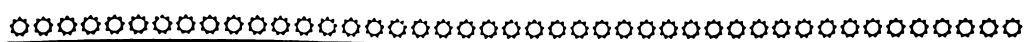
बस, एकदम सर्वत्र कोलाहल मच गया कि श्रीमहाराजजी आ गये। सब लोग तत्काल इकट्ठे हो गये। आपने उसी समय संकीर्तन आरम्भ कर दिया। बड़े जोरों से कीर्तन हुआ। फिर आप बैठे और दो-एक पद हुए। आपने बताया कि यह वृत्ति तो मेरी सदा ही रहती थी कि किसी प्रकार इन लोगों से छूटकर भागूँ। अब लीला का भी निमित्त बन गया। उस दिन लीला के बाद रात्रि में विचार हुआ कि इस अभिनय में सभी लोगों ने अपना पार्ट पूरा-पूरा करने की कोशिश की है, फिर मैं ही क्यों पीछे रहूँ। इसलिये मेरा यही संन्यास है कि अब इस जन्म में अपने किसी भी पूर्वपरिचित व्यक्ति से आँख न मिलाऊँ। ऐसा विचार करके मैं चल दिया और रामगंगा के किनारे-किनारे चला गया। चार दिन मैं लगातार चलता रहा। मुझे रास्ते का भी कुछ पता नहीं था। कभी गंगा के इस पार और कभी उस पार। इन चार दिनों में मैंनें कभी एक घूँट जल भी नहीं पिया। किन्तु जाते-जाते भी मुझे कुछ रुकावट-सी जान पड़ती थी। कभी-कभी तो जहाँ का तहाँ खड़ा रह जाता था। आप लोगों के रोने की आवाज। मुझे प्रत्यक्ष सुनायी देती थी। किन्तु मैं फिर भी चित्त को कड़ा करके चल देता था। इस प्रकार बिना कुछ खाये-पिये चार दिन तक बराबर चलता रहा। आखिर, एक जगह मूर्च्छित होकर गिर गया। उस समय आप लोगों के दुःख की अवस्था मेरे सामने प्रत्यक्ष उपस्थित हो गयी। फिर किसी दैवी शक्ति की प्रेरणा हुई कि तुम्हें लौट जाना चाहिये। तब मैंने किसी पूछा तो उसने बताया बरेली यहाँ से एक सौ दस मील है, और शिवपुरी बरेली से बीस मील है। इस प्रकार कुल एक सौ तीस मील हुआ। इधर से तो मैं दिनभर चलता था और रात को विश्राम कर लेता था, किन्तु जब उधर से चौथे दिन शाम को चला तो एक मिनट के लिये भी कहीं विश्राम नहीं किया। हाँ, कभी-कभी एक दो घूंट जल अवश्य पीता रहा। इस प्रकार चार दिन का रास्ता दो दिन में तय करके यहाँ पहुँचा हूँ।

इस समय आपका शरीर तो एकदम कृश हो रहा था, किन्तु चेहरे का प्रकाश और भी कई गुना बढ़ गया था। फिर कुछ खा-पीकर आपने विश्राम किया। उसके पश्चात् यह निश्चय हुआ कि उत्सव उसी प्रकार जहाँ छोड़ा है
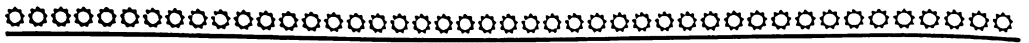
वहीं से फिर आरम्भ कर दिया जाय। बाहर के जो भी दो चार आदमी रह गये हैं वे ही ठीक हैं, और किसी को बुलाने की आवश्यकता नहीं है। शिवपुरी के लोग ही मिल-जुलकर लीला आरम्भ कर दें। भाई यह भी जो कुछ हुआ है लीला ही के अन्तर्गत है। श्रीमन्महाप्रभु जी छः दिन ही में लौटकर आये थे। वे छः दिन तक यदि वैराग्य और प्रेम में पागल रहे तो हम भी छः दिन तक भूखे-प्यासे रहकर चलते रहे वह लीला असली थी तो हमारी नकली ही सही। चलो, ठीक है, सब लोगों को कष्ट तो बहुत हुआ, किन्तु यह भी अच्छा ही हुआ। सभी के तितिक्षा और तप हो गये और इसी बहाने कई प्रकार के अनुष्ठान भी हुए। इसके सिवा सबकी परीक्षा भी हो गयी।

अब, दूसरे ही दिन फिर उत्सव आरम्भ हो गया और बड़े उत्साह से संन्यास से आगे की लीला होने लगी। अब की बार पहले से सौ गुना आनन्द बढ़ गया। उसे क्या लिखें, कुछ कहने सुनने की बात नहीं है, वह तो हृदय का ही धन है। इस प्रकार आनन्द में सन्तरण करते प्रायः एक सप्ताह और बीत गया। इससे पहले महाराजजी बिसौली जाने का वचन दे चुके थे। वहाँ के भक्त साहू विश्वेश्वरदयाल ने आकर प्रार्थना भी की । अतः वहाँ चलने का निश्चय हो गया।

दूसरे दिन शिवपुरी के कुछ भक्त तथा बाहर के भी दो-चार आदमी आपके साथ बिसौली चले। सवारियों का काफी प्रबन्ध होने पर भी आप आनन्द से कूदते-फाँदते, हँसते-खेलते पैदल ही चल रहे थे। उस समय भाई साहब की विचित्र अवस्था थी। वे प्रायः पागल हो गये थे! उन्हें सर्वत्र अपने इष्ट के दर्शन हो रहे थे। अतः उनके सामने जो भी आता उसी को साष्टांग प्रणाम करते थे, किसी को आलिंगन करते थे और कभी चलते-चलते हठात् बैठ जाते थे। उनका बड़े जोर से भत्राप्राणायाम होने लगता था और वे समाधिस्थ हो जाते थे। जब महाराजजी जोर-जोर से आवाज लगाते तब उठकर चलते थे। कभी बड़े जोर से भागते थे, कभी वृक्षों को आलिंगन करते थे, कभी चारों ओर घूमकर साष्टांग दण्डवत् करते थे, कभी जोरों से हँसने लगते थे और कभी फूट-फूटकर
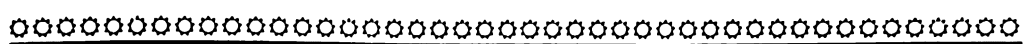
रोने लग जाते थे। इस तरह इनकी बड़ी ही विचित्र अवस्था हो रही थी। महाराजजी इनसे खिलवाड़ करते हुए कहते थे, 'भाई! ग्रीष्म में जो जितना अधिक तपता है, वर्षा में वह उतना ही अधिक शीतल होता है।' श्रीमहाराजजी की अनुपस्थिति के छः दिनों में ये बड़े ही कष्ट में रहे। एक बिन्दुमात्र जल भी ग्रहण नहीं किया। बस, दोनों स्त्री-पुरुष दिन-रात रोते रहे। भला, उन पर भगवान् की दया न होती तो किस पर होती?

विसौली में महाराजजी तीन-चार दिन रहे। पीछे इस्लाम नगर चले गये। वहाँ लाला वहालराय के यहाँ भी तीन-चार दिन बड़े समारोह से उत्सव हुआ। इस प्रकार सर्वत्र आनन्दामृत की वर्षा करते आप बाँध पर पधारे।

मायामुग्ध भगवान्

सम्भवतः सन् १९३२ की बात है, आप शिवपुरी ही में थे। भाद्रपद का महीना था। उस समय हम लोगों से कुछ गलतियाँ हो गयी थीं, इसीलिये आप उदास थे। उन्हीं दिनों लाला राधेश्याम के यहाँ बड़ी धूमधाम से जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जा रहा था। नवमी के दिन श्रीठाकुरजी की सवारी निकलने वाली थी। उसके आगे सब लोगों के कीर्तन करते हुए चलने का निश्चय हो गया था तथा वह सवारी सारी बस्ती में घूमने वाली थी। हम लोगों ने सोचा कि श्रीमहाराजजी को धूप में इतनी दूर घूमने से कष्ट होगा। इसलिये उनसे सवारी के साथ चलने को नहीं कहा। इधर वे इस आशा में कि मुझे कोई बुलाने आवेगा प्रतीक्षा करते रहे और इस प्रतीक्षा में बैठे-बैठे शाम हो गयी।

हम लोग सवारी को बाग में पहुँचाकर लौटे और सीधे श्रीमहाराजजी के पास आये। किन्तु आप न तो हमसे बोले और न रात को कीर्तन में पधारे। एकदम उदास हो गये। यहाँ तक कि रात को दूध भी नहीं पिया। इससे हम सभी घबरा गये; किन्तु आपसे कुछ कहने का किसी को साहस न हुआ। फिर सोचा कल प्रातः काल प्रार्थना करेंगे। किन्तु आप उसी रात को कमण्डलु लेकर

वहाँ से चले गये। उस समय भारी वर्षा हो रही थी और घोर अन्धकार छाया हुआ था। नदी नाले भी सब चढ़े हुए थे। किन्तु आप आधी रात को ही वहाँ से चल पड़े। प्रातः काल चार बजे हमको पता लगा तो सभी लोग व्याकुल होकर जहाँ-तहाँ भागे। सभी लोगों को बड़ा कष्ट हुआ। सभी आपकी खोज में जहा-तहाँ भटकते रहे। कोई चार दिन, कोई छः दिन और कोई आठ दिन तक आपको खोजता रहा।

मुझे उस समय बड़ा दुःख हुआ मन में ऐसे विचार आने लगे कि ऐसे निष्ठुर से सम्बन्ध रखना तो दुःखदायी ही है। भला, हमारे में ऐसी योग्यता कहाँ है, जो इन्हें प्रसन्न कर सकें। बस, अब किसी अपरिचित देश में जाकर अनाहार द्वारा प्राण त्याग दूँगा, किन्तु ऐसे कठोर से इस जीवन में सम्बन्ध नहीं रखूँगा। ऐसा विचार कर मैं किसी से भी कुछ कहे बिना स्टेशन की ओर चल दिया। अपने पास जो थोड़े से रुपये थे वे साथ ले लिये और करेंगी स्टेशन से सीधा चित्रकूट का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया।

चित्रकूट पहुँचने पर मुझे भजनाश्रम में एक एकान्त कोठरी मिल गयी। उसीमें मैं रहने लगा। भजनाश्रम के प्रबन्धक बलदेवदास नाम एक मारवाड़ी वैश्य थे। वे बड़े ही सज्जन थे। मैं आश्रम से ही, जैसी भी रूखी-सूखी रोटी मिलती थी, लेकर खा लेता था। प्रातः काल दो-तीन बजे ही उठकर मन्दाकिनी गंगा में स्नान करता था और आसन-व्यायाम करके पाँच बजे के लगभग कामदगिरि की परिक्रमा के लिये चला जाता था। वहाँ से प्रातः सात बजे लौटकर अपने नित्य कृत्य में लग जाता था। ग्यारह बजे के लगभग भोजन करता था और फिर थोड़ी देर विश्राम करके स्वाध्याय में लग जाता था। तीन-चार बजे कहीं कथा सुनने जाता अथवा जानकीकुण्ड के महात्माओं के दर्शन करता था। कभी उनसे कुछ सत्संग भी होता और फिर सायंकाल में जंगल भ्रमण करके भजनाश्रम लौट आता तथा रात्रि में बलदेवदासजी के साथ कुछ परमार्थ-चर्चा करता।

परन्तु यह सब कुछ करते हुए भी मुझे शान्ति नहीं थी। हृदय में बार-बार श्रीमहाराजजी का स्मरण होते ही बड़ी बेकली हो जाती थी। कभी-कभी तो

एकान्त में घण्टों तक रोया करता था और राते-रोते मूर्च्छित भी हो जाता था। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि महाराजजी मेरे पास बैठे रो रहे हैं और मुझसे क्षमा माँग रहे हैं। किन्तु उस समय मुझमें ऐसी कुटिलता आ गयी थी कि मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि भले ही तितिक्षा करके शरीर को सुखाना पड़े, पर अब आपाके पास नहीं आऊँगा।

कुछ दिनों बाद श्रीबलदेवदासजी के आग्रह से मैनें विनय-पत्रिका की कथा आरम्भ कर दी। उसमें सैकड़ों संत एवं श्रोतागण आने लगे। विनय पत्रिका की कई बड़ी-बड़ी टीकाएँ लाकर चार-पाँच घण्टे विचारता था और मध्याह्नोत्तर चार से छः बजे तक दो घंटे कथा कहता था। मेरा मन उसमें ऐसा लगा कि मन में यह दृढ़ निश्चय होने लगा कि अब आयु के शेष दिन यहीं गुजारने हैं। साथ ही मुझे निरन्तर ऐसा प्रतीत होने लगा कि महाराजजी निरन्तर मेरे साथ रहते हैं और कभी-कभी तो बड़े दुखी हो जाते हैं। किन्तु मैं इन बातों को अपने मन का भ्रम समझकर परवाह नहीं करता था। इस प्रकार प्रायः चालीस दिन बीत गये। मेरा शरीर तो बहुत दुर्बल हो गया था, किन्तु चित्त प्रसन्न था। समय ठीक कट ही जाता था।

अब इधर हमारे सरकार की व्यवस्था सुनिये। आप शिवपुरी से पैदल ही चलकर भागीरथी के उत्तर तट पर पर गढ़मुक्तेश्वर से प्रायः दस मील नीचे भगवानपुर में स्वामी शास्त्रानन्दजी के पास पहुँचे। वहाँ उन्हींके साथ गाँवों से रूखी-सूखी रोटी माँग लेते थे और आम के अचार अथवा मिर्चों से लगाकर खा लेते थे ऊपर से थोड़ा मठा पी लेते थे। चौबीस घंटे में केवल एक बार ही ऐसी दो-तीन रोटी खा लेते थे। फिर एकान्त में बैठे रहते और कुछ देर गंगा किनारे घूम आते। इसके सिवा किसी निश्चत समय पर स्वामी जी के साथ शास्त्र चर्चा भी कर लेते थे। इस प्रकार विरक्ति के साथ कालयापन करके प्रसन्न रहते थे और मन में यह निश्चय कर लिया था कि अब जीवन भर किसी परिचित व्यक्ति से नहीं मिलेंगे। शिवपुरी के लोग तो आपके चले जाने पर आपको ढूंढ़ने गये ही थे और मैं उनमें से किसी से कुछ कहे बिना इधर चला आया था।
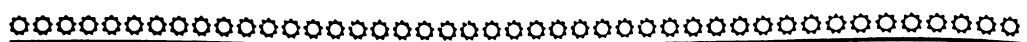
जब वे इधर-उधर खोजकर शिवपुरी पहुँचे और मेरे जाने की बात सुनी तो उन्हें बहुत दु:ख हुआ। उन्हीं में भाई साहब छेदालाल भी थे। वे बहुत दु:खी हुए और यह प्रतिज्ञा करके कि यदि महाराजजी नहीं मिलेंगे तो मैं भी घर नहीं लौटूंगा उन्हें खोजने के लिये चल दिये।

शिवपुरी से चलने पर उन्हें कुछ-कुछ ऐसा पता चला कि वे पश्चिम की ओर ही गये हैं। इसी प्रकार वे पता लगाते पैदल ही भगवानपुर पहुँचे। यह स्थान शिवपुरी से प्राय: सौ मील है। वहाँ श्रीमहाराजजी का दर्शन करके उनके चरणों में पड़कर खूब रोये। महाराजजी ने उन्हें बहुत समझाया तब वे उठे। उन्होंने आपसे मेरे चले जाने की बात कही और कहा कि वह कुछ सामान भी नहीं ले गया है। उसका कुछ भी पता नहीं है कि कहाँ गया है तथा जीवित भी है या नहीं इसमें भी सन्देह है। वह तो बड़ा ही हठी आदमी है। पहले भी कई बार प्राण त्यागने की चेष्टा कर चुका है।

यह सुनकर महाराजजी बड़े दु:खी हुए और बोले, 'भाई! संकल्प तो मैंने भी यही किया था कि अब इस जीवन में किसी से आँख नहीं मिलानी है। किन्तु अब तो मेरा संकल्प शिथिल हो गया। उसके हठ से तो मुझे भी बड़ा भय लगता है। वह बड़ा ही जिद्दी है न जाने कहाँ-कहाँ फिरता होगा।' महाराजजी उस समय बछड़े से बिछुड़ी हुई गौ की तरह विह्वल हो गये और बोले, 'छेदालाल! उसने मुझे बहुत दु:ख दिया है। मैं अधिकतर केवल उसीके कारण भागता हूँ मैं जैसा चाहता हूँ वैसा उसका आचरण न देखकर दु:खी हो जाता हूँ। भाई! आज मैं तुमसे अपने मन का छिपा हुआ पाप कहता हूँ। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस जन्म में किसी को भी शिष्य नहीं बनाऊँगा। किन्तु मेरी वह प्रतिज्ञा भी भंग हो गयी। इसके प्रति मेरी शिष्य भावना हो गयी। इसलिये मेने मन में यह अभिमान हो गया कि मैं बड़ा हूँ और यह छोटा है। इसकी तो सदा से यह चाल रही है कि चार दिन तो ऐसा अनुकूल हो जायगा कि दुनिया में वैसा कोई नहीं हो सकता, किन्तु पाँचवें दिन ऐसी कुचेष्टा करेगा कि वह असह्य हो जायगी। क्या करें, उसके भी तो वश की बात नहीं है। 'स्वभावो दुरतिक्रम:।' किन्तु

मैं क्या करूं? जिसके लिये मैंने घर छोड़ा वह बात तो बनी ही नहीं। उससे भी अधिक राग मेरा आप लोगों में हो गया। मैंने स्वप्न में उसे बहुत दुःखी देखा है। और यह भी देखा है कि वह मुझसे नाराज है। अच्छा, चलो उसे ढूंढ़ने का कोई उपाय करें।'

यह कहकर करुणासागर सरकार वत्सहीना गौ की भाँति मुझे ढूंढ़ने चले। सारा जगत जिन्हें ढूंढ़कर हार गया और फिर जिसको भी मिले उसे अपनी करुणा से ही मिले–'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।' वे ही अन्तर्यामी सर्वज्ञ एक अज्ञ की भाँति मुझ अज्ञ को ढूंढने चले। भाई! मैं तो इसी अभिमान में फूला नहीं समाता कि मुझ अयोग्य पर आपकी इतनी कृपा! मुझ अधम की प्रतिज्ञा के आगे आपने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी। यह तो वही श्रीकृष्ण और श्री भीष्म की-सी बात हुई जहाँ भीष्म ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं–

'आज जो हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ।
तो लाजौं गंगा जननी को शान्तसुत न कहाऊँ।।
पांडव दल सन्मुख हुई धावों सरिता रुधिर बहाऊँ।
इती न करों शपथ मोहिं हरि की क्षत्रिय गतिहिं न पाऊँ।।'

और भगवान् अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर हाथ में रथ का पहिया उठाकर उनकी ओर दौड़ते हैं।

भाई! यदि मैं सचाई से अपने जीवन पर विचार करूँ तो मेरे जीवन का एकक्षण भी ऐसा नहीं जिसमें मैंने श्रीमहाराजजी को सुख दिया हो। जीवनभर उन्हें दुःख ही देता रहा हूँ, और सर्वदा उनकी करुणा का दुरुपयोग ही किया है। मैं तो सदा इसी अभिमान में फूला रहा कि महाराजजी तो मेरे हैं, मुझे किसी का क्या भय? अच्छा, दुष्ट मन! वह समय भी दूर नहीं है जब तू भी भीष्म पितामह की तरह शरशय्या पर पड़ा होगा और घोर विपत्ति के बादल तेरे ऊपर छाये होंगे। उस समय तो उन करुणा धाम सरकार की करुणा का स्मरण ही तेरा पथ-प्रदर्शक होगा। पाठक! मुझे क्षमा करें, जो बीच-बीच में मैं अपनी करुण कथा लिख जाता हूँ। आप तो मुझे यही आशीर्वाद दें कि–

'यह अभिमान जाय जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥'

बस, श्रीमहाराजजी स्वामी शास्त्रानन्दजी से विदा हो भाई साहब के साथ पैदल ही बाँध पर आये। वहाँ आप लोगों से कहते फिरे कि ललिताप्रसाद न जाने कहाँ चला गया है, उसे ढूँढ़ने का क्या उपाय करें। बहट वाले पण्डित रामलाल ज्योतिषी हैं। उनके पास जाकर पूछा कि वह कब आयेगा। वे तो आपके अत्यन्त कृपापात्र थे और आपके रहस्यों को खूब समझते थे। वे समझ गये कि जिससे ये स्वंय ढूँढ़ें वह कहीं भी हो, क्या रह सकता है? अतः आपको समझाने के लिये कह दिया कि वह अमुक दिशा में गया है और जल्दी ही आ जायगा। किन्तु फिर भी आपको शान्ति न हुई। तब आप शिवुपरी को ही चले गये। वहाँ सब लोगों के साथ विचार करने लगे कि क्या करना चाहिये। तब यही निश्चय हुआ कि पाँच दिन 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र का अखण्ड कीर्तन किया जाय, प्रत्येक व्यक्ति हनुमान चालीसा के एक सौ आठ पाठ करे और सभी भगवान् से यह प्रार्थना करें कि वह जल्दी आ जाय।

इधर तो आपकी यह लीला और उधर मेरा चित्त ऐसा लगा कि अब जन्मभर यहीं रहना है। किन्तु अब हर समय ही मुझे श्रीमहाराजजी अपने पास दीखने लगे। तथापि यह जानकर भी कि श्रीमहाराजजी तथा सब लोग दुःखी होंगे, मैंने अपना निश्चय नहीं त्यागा। मैं तो इसी हठ पर तुला रहा कि अब मुझे वहाँ नहीं जाना है। मुझे सोने, जागने, कथा कहने और घूमने के समय ये शब्द स्पष्ट सुनायी देते कि ललिताप्रसाद! जल्दी से दौड़कर आजा। ये शब्द सुनकर मैं विह्वल हो जाता। किन्तु फिर वही बच्चों की-सी हठ की कि मैं तो नहीं जाता। एक बार मैंने स्वप्न में शिवपुरी का अनुष्ठान और वहाँ के लोगों को देखा तथा महाराजजी से भी बात हुई। किन्तु फिर अपनी हठ पर तुला रहा।

अब अखण्ड कीर्तन के पाँच दिन पूरे हो गये तो महाराजजी ने पण्डित रामप्रसादजी से कहा, 'वह तो आया नहीं, अब क्या करना चाहिये।' अब तीन दिन की छुट्टी और दी गयी कि यदि इन तीन दिन में न आवे तो काई कठिन अनुष्ठान किया जाय। इधर मेरे मन में बार-बार उधेड़-बुन होने से मेरा हठ

भी शिथिल पड़ गया और ऐसा विचार होने लगा कि मेरे कारण श्रीमहाराजजी तथा सब लोग दुःखी हैं, इसलिये मुझे चलना चाहिये। इसके सिवा एक मायिक विघ्न मेरे सामने और भी आ गया था। उसके कारण मैं एकदम उखड़ गया और उसी समय बलदेवदासजी से भी बिना कहे वहाँ से चल दिया। किराया मेरे पास था ही, बस, सीधा शिवपुरी पहुँचा।

वहाँ जाकर श्रीमाहाराजजी के चरणों से लिपट गया। उस समय के सुख की बात मैं क्या कहूँ।

'सो सुख जानें मन अरु काना। नहिं रसना पहँ जाइ बखाना।।
प्रभु पहिचान परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।।'

उसी समय श्रीमहाराजजी ने प्रसन्नता में भरकर जो शब्द कहे थे मुझे अच्छी तरह स्मरण हैं, परन्तु यहाँ लिख नहीं सकता। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा है कि संसार में सबसे सुन्दर कौन है? माया मुक्त जीव। और उससे भी सुन्दर कौन है! ''माया-मुग्ध भगवान!।''

उस समय के आपके वे शब्द सुनकर मैं लज्जा के मारे जमीन में गड़ गया और फूट-फूट कर रोने लगा। तभी आप जोर-जोर से हँसने लगे और बोले, 'रामप्रसाद इसे सँभालो। अरे! यह फिर चला जायगा और हम तो इस तरह अनुष्ठान करते-करते पागल हो जायेंगे।' जब आप इस प्रकार विनोद की बातें करने लगे तो मैं भी रोना भूलकर हँसने लगा। फिर खूब जोरों से उत्सव का रंग जमा और आप बहुत दिनों तक वहीं रहे। उसके बाद कहाँ गये—यह इस समय स्मरण नहीं है।

उन्हीं दिनों एक दिन गंगा स्नान करते समय खेल में कई भक्तों को आपने मंत्र प्रदान किया और सबसे अलग-अलग प्रतिज्ञाएँ भी करायीं। इस प्रकार यद्यपि आप किसी को भी शिष्य नहीं बनाते थे तो भी खेल में सब कुछ कर लेते थे।
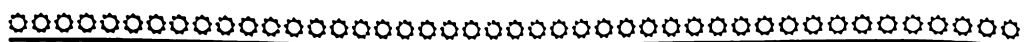
भाव के भूखे भगवान्

संवत् १९९० की बात है, आप शिवपुरी में बस्ती वाले मन्दिर में विराजमान थे। इस मन्दिर के पुजारी पण्डित रामप्रसादजी ही थे। इनसे आपका बड़ा निः संकोच भाव था तथा कभी-कभी इनके साथ बालकों की तरह अनेकों खिलवाड़ भी करते थे। पण्डित रामप्रसादजी अपनी आयु के पिछले अठारह वर्षों में मन्दिर में ही रहे और वहाँ स्वयं ही अपना भोजन बनाते रहे। आँखों से न दीखने पर भी ये दाल, शाक, खिचड़ी और चावल आदि तो प्रायः ठीक ही बना लेते थे। हाँ, रोटियाँ उतनी अच्छी नहीं बना पाते थे। वे मोटी होती थीं और कहीं-कहीं से जल भी जाती थीं। फिर भी ऐसी बहुत बुरी नहीं होती थीं। श्रीमहाराजजी इनसे आग्रहपूर्वक कहा करते थे, 'रामप्रसादजी, तुम हमें अपने हाथ की रोटी नहीं खिलाते?' तब बेचारे लज्जित होकर कहते, 'महाराजजी! मैं जन्माध भाग्यहीन पुरुष अपने हाथ की रोटी आपको क्या खिलाऊँ? वह तो मुझे भी अच्छी नहीं लगती। जैसे-तैसे अपना पेट भर लेता हूँ।' किन्तु हमारे कौतुकी सरकार एक दिन तो हठ पकड़ गए और बोले, 'रामप्रसादजी, तुम तो बहुत बढ़िया अमृतमय भोजन बनाते हो। तुम बड़े कृपण हो, मुझे खिलाना नहीं चाहते। अच्छा, मैं कल तुम्हारी रोटी छीनकर खा लूंगा।'

आखिर, इन्होंने लज्जित होकर स्वीकार कर लिया। किन्तु सारी रात रोते रहे, क्योंकि इनकी तो आपमें साक्षात् श्रीरघुनाथजी की भावना थी। अतः सारी रात जगदम्बा जगज्जननी जानकीजी से प्रार्थना करते रहे कि माता तुम मेरी लज्जा रखोगी। फिर प्रातः काल भोजन की व्यवस्था में लग गये। मुझसे उन्होंने जो पूछा उसमें जैसा मेरा विचार हुआ बता दिया। उन्होंने कहा, 'और काम तो मैं कर लूँगा, किन्तु दाल में घी तुम्हीं मिलाना, क्योंकि वह काम मुझसे ठीक नहीं होगा।'

रामप्रसादजी ने मूंग की दाल में लौकी और पालक डालकर मन्दी-मन्दी आँच से प्रायः दो घंटे में उसे पकाया। कुछ चावल बनाये और चार-पाँच

मोटी-मोटी रोटियाँ सेककर रखीं। बस, दाल में छोंक देने के समय उन्होंने मुझे बुलाया। मैं उस समय उत्सव के काम में इतना व्यग्र था कि मुझे खाने-पीने का भी अवकाश नहीं मिलता था। मैं जल्दी से उनके चौके में गया और पूछा, 'रामप्रसादजी घी कहाँ हैं?' उन्होंने संकेत से बताया कि ऊपर वाले ताख में रखा है। मैंने जल्दी से उठकर उनमें से एक मिट्टी का पात्र उठा लिया और उसमें जो आधा पाव के लगभग वस्तु थी उसे गरम करके उसमें जीरा डालकर दाल छोड़ दी और मिला-मिलूकर थाली में परोस उसे झट से ऊपर कुटिया में महाराजजी के सामने रख आया। वहाँ भाई साहब छेदालालजी थे, उन्होंने भोजन कराया। भोजन करते समय आप ग्रास-ग्रास पर भोजन की प्रशंसा करते रहे और खाते-खाते नशे से में हो गये। भोजन प्राय: तीन-चार आदमियों का था और रामप्रसादजी ने सभी रोटियां परोस दी थीं, जिससे आप उनमें से अच्छा-अच्छा अंश तोड़कर खा लें, किन्तु आपने उनमें से एक टुकड़ा भी नहीं छोड़ा। सारा दाल, भात, शाक और रोटियाँ खाकर भी अतृप्त ही रह गए और बोले, छेदालाल! और भी हो तो थोड़ा ले आ! कुटिया में और भी दो तीन जगह से आया हुआ भोजन रखा था, किन्तु उसे आपने छुआ भी नहीं।

उधर तो आप भोजन कर रहे थे और इधर भक्त रामप्रसादजी आपकी भक्तवत्सलता और करुणा का विचार करके रो रहे थे। जब भाई साहब ऊपर से थाली लाये और सब हाल कहा तो इनके आनन्द का पारावार न रहा। ये उठकर चौके में गये। वहाँ अकस्मात् इनका हाथ घी के बरतन पर पड़ा। तुरन्त ही इन्होंने जोर से मुझे पुकारा। मैं गया तो बोले, क्या तुमने श्रीमहाराजजी की दाल में घी नहीं डाला?' मैंने कहा, 'नहीं, मैंने तो दाल अधिक होने के कारण पात्र का सारा ही घी उसमें डाल दिया था। बोले, 'अरे भाई! तुमने कहाँ से डाल दिया, घी तो यह सारे का सारा ही पड़ा है।' मैंने जाकर उनके हाथ में वह पात्र दे दिया जिसमें से घी डाला था। उसे देखकर वे खड़े से ही गिर पड़े और फूट-फूटकर रोने लगे। यह देखकर मैं घबरा गया कि न जाने मुझसे क्या भूल हो गयी। जब वे सावधान हुए तो बोले, 'उसमें तो दो-तीन छटांक बाजारू

तेल था, जो दीपक जलाने के काम आता था। तुमने उसे ही डाल दिया और घी सब ज्यों का त्यों रखा है। उसी समय आप घबराकर ऊपर गये और महाराजजी से क्षमा प्रार्थना करने लगे, किन्तु वे इनके भोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। तब इन्होंने कहा कि महाराजजी! दाल में तो घी की जगह खराब तेल पड़ गया यह सुनकर वे बड़े चकित हुए और बोले, रामप्रसादजी! ऐसी स्वादिष्ट दाल तो मैंने कभी नहीं खायी।' आप सचमुच ही थाली साफ करके सारी दाल खा गये थे। फिर बोले, 'भाई! मुझे तो कुछ भी पता नहीं चला। मुझे तो आज का भोजन अमृत के तुल्य प्रतीत हुआ। यदि अधिक होता तो मैं और भी खा लेता। देखो, इतना अधिक खाने पर भी शरीर हल्का है। आलस्य लेश भी नहीं है, यह भोजन की अच्छाई का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह सुनकर सभी लोग रामप्रसादजी के भाव और भाग्य की सराहना करने लगे तथा आपकी भाव ग्राहकता को देखकर मुग्ध हो गये। सच है- 'भावग्राही जनार्दनः।' भक्त रामप्रसादजी जब तक जीवित रहे समय-समय पर इस बात को स्मरण करके रोने लगते थे।

इसी प्रकार शिवपुरी में आपकी और अनेकों अनूठी लीलायें हुई हैं। उन्हें कहाँ तक लिखें?

भिरावटी की बातें

पहले श्रीमहाराजजी की लीलाओं का क्षेत्र प्रायः बरोरा, निजामपुर और गवाँ में ही केन्द्रित रहा था। फिर आप आस-पास के दूसरे गाँवों में भी पधारने लगे। इन नये स्थानों में भिरावटी और शिवपुरी मुख्य थे। भिरावटी निजामपुर से तीन कोश पूर्व की ओर धनी पुरुषों की बस्ती है। यहाँ के अहीर जमींदार अच्छे सम्पन्न लोग हैं। किन्तु आरम्भ में आपका आना-जाना वहाँ के पण्डित मुकुन्दरामजी तथा एक दूसरे पण्डितजी के यहाँ होता था। उस समय के आपके सत्संगियों में एक महाशय लक्ष्मी-नारायण भी थे। उनके पीछे बाबू भगवद्दत्तजी हुए और इनके भी बाद बाँध बँध जाने पर छबिकृष्ण, बहादुर सिंह,

चौधरी यशवन्त सिंह और उनके पुत्र कुँवर रणवीर सिंह का आना-जाना आरम्भ हुआ। तथा इनके साथ ही उम्मर सिंह के पुत्र देवेन्द्र सिंह, वीरेन्द्र सिंह एवं धीरेन्द्र सिंह, महेन्द्रपाल सिंह और उनके भाई अजयपाल सिंह तथा लोचन सिंह आदि कई महानुभाव आपके भक्त हो गये।

पण्डित मुकुन्दरामजी अच्छे सुबोध विद्वान् थे। श्रीमद्भागवत तो उन्हें प्रायः कण्ठस्थ ही थी। वे स्वभाव से ही विरक्त, सन्तोषी, जितेन्द्रिय और आदर्श ब्राह्मण थे। इनका स्वभाव बड़ा कोमल, विनयी, दयालु और परोपकारी था। आप यद्यपि निरंतर श्रीमद्भागवत का पाठ किया करते थे तथापि आपकी अनन्य निष्ठा श्रीरघुनाथजी में थी। श्रीतुलसीकृत रामचरितमानस का नवाह्न पारायण भी आप प्रायः करते रहते थे। श्रीमहाराजजी में भी आपका प्रगाढ़ प्रेम था। इनके दर्शनों के लिये आप प्रायः बरोरा आया करते थे । कभी-कभी जब श्रीमहाराजजी भिरावटी पधारते थे तो आप अत्यन्त प्रेमपूर्वक अनेकों भगवच्चरित्र सुनाते और गद्गद हो जाते थे। सच पूछा जाय तो भिरावटी में जो कुछ सत्संग हुआ और श्रीमहाराजजी के प्रति वहाँ के लोगों की श्रद्धा हुई उसका मूलकारण तो पण्डित मुकुन्दरामजी ही थे। उनके पीछे वहाँ जो बड़े-बड़े समारोह के उत्सव और सत्संग हुए हैं तथा अनेकों भक्तों को पारमार्थिक लाभ मिला है उसका श्रेय पण्डित जी को ही है।

मेरे सामने की ही बात है, वे बाँध बँधने पर छबिकृष्ण, बहादुर सिंह, महेन्द्रपाल सिंह और अजयपाल सिंह को श्रीमहाराजजी के पास ले गये थे। वे इनके कुल-पुरोहित थे। आपने इन पितृहीन बालकों को ले जाकर बड़ी सरलता से गद्गद कण्ठ होकर कहा, 'बालको! श्रीचरणों में प्रणाम करो और अपने स्वार्थ एवं परमार्थ की सिद्धि के लिये इन चरणों को सर्वदा के लिये पकड़ लो। खबरदार! कभी और किसी भी अवस्था में इन चरणों को मत छोड़ना। सदा प्राणपण से इनकी आज्ञा का पालन करना।' फिर महाराजजी से भी कहा, स्वामीजी! इन अबोध बालकों को अपनाओ। इन्हें अपने चरणों का आश्रय प्रदान करो। इनके

परमार्थ साधन का बोझा मेरे सिर पर है। मुझे इनकी चिन्ता रहती है, क्योंकि मैं तो नितान्त अयोग्य हूँ। अतः कृपा करके आप इस बोझे को सँभालें। आप सब प्रकार समर्थ हैं। मैं तो आपको साक्षात् रघुनाथजी ही समझता हूं।' यह कहकर आपने स्वयं अपने हाथ से बच्चों को श्रीचरणों में डाल दिया। पण्डितजी के इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीमहाराजजी ने कहा, 'अच्छा!' बस, उस समुद्रवत् गम्भीर हृदय से ज्यों ही 'अच्छा' यह शब्द निकला कि पण्डितजी गद्गद हो गये और हर्षातिरेक से उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। वाह पुरोहितजी! आपने तो आज इन बालकों को कृतार्थ कर दिया। सन्त-सद्गुरु के चरणों का स्वयं लाभ लेकर अपने निराश्रित यजमान-बालकों को भी उनकी प्राप्ति करा दी। वाह कृपालु भक्त! 'रामभक्त परहित निरत, पर दुःख दुःखी दयालु।'

महाराजजी ने बालकों से विनोद करते हुए कहा, 'बालको! पंडितजी तो स्वयं समर्थ हैं। देखो, तुम इन्हें पकड़े रहना। श्रीरघुनाथजी स्वयं ही कृपा करेंगे।' और बार-बार कहा, 'उठो।' तब सब बालक उठे और महाराजजी ने स्वयं अपने हाथ से उन्हें प्रसाद दिया। फिर वे सब भिरावटी चले गये, किन्तु सदा के लिये अपने मन को श्रीचरणों में अर्पण कर गये। बस, उस दिन से आज तक बराबर इनका भाव बढ़ता ही गया है।

इन बालकों में छबिकृष्ण ब्राह्मण था तथा और सब जमींदारों के पुत्र थे। छविकृष्ण बड़े ही मधुर और विनीत स्वभाव का नवयुवक है। वह इस समय श्रीमहाराजजी के प्रधान परिकरों में है। श्रीरघुनाथजी में उसका अनन्य प्रेम है। लीलानुकरण करने में भी वह बहुत कुशल है। बाँध के भक्तजन जो मनोरंजन के लिये उपदेशप्रद लीला प्रसंगों का अनुकरण किया करते हैं, उनमें छविकृष्ण प्रधानरूप से पार्ट लेता है। जब कभी हम लोग आपास में मिलकर रामलीला का अभिनय करते हैं तो उसमें छविकृष्ण हनुमानजी का पार्ट करता है। इसके व्यवहार से प्रायः सभी लोग प्रसन्न रहते हैं।

बहादुर सिंह छविकृष्ण का अभिन्न मित्र है। ये दोनों प्रायः साथ-साथ ही श्रीमहाराजजी के पास आते हैं। बहादुर सिंह बड़ा गम्भीर, शान्त, सरल और

व्यवहार कुशल व्यक्ति है। श्रीरघुनाथजी में इसकी भी बड़ी अनन्य निष्ठा है। इसकी श्रद्धा का पता लगाना कोई सहज बात नहीं है। छविकृष्ण की तरह यह भी सर्वप्रिय है। इसका एकमात्र कारण यह है कि यह कभी किसी का दोष न तो देखता है, न कहता है और न सुनता ही है। इसके सिवा यह सर्वदा सबकी तन, मन, धन से सेवा करने को तैयार रहता है। यह अपने प्रेम से, श्रद्धा से, भाव से, सेवा से, प्रार्थना से, दण्डवत् से सदा ही श्रीमहाराजजी को प्रसन्न रखता है। श्रीसरकार ने स्वयं श्रीमुख से कहा है कि गुण या तो बाबू हीरालाल में देखे या फिर बहादुरसिंह में। इसने कई बार भिरावटी में उत्सव कराये हैं, जिनमें अपनी शक्ति से अधिक खर्च किया है। यहाँ तक कि अपनी माता और स्त्री के आभूषण बेचकर भी लगा दिये हैं। इसके सिवा कई बार तो कर्जा लेकर भी लगाया है। सचमुच उस समय भगवान् ही इसकी लाज रखते हैं। बाँध के उत्सवों में भी यह अन्धाधुन्ध खर्च करता है। यह यथा नाम तथा गुण है। नाम का बहादुर, उत्सव कराने में बहादुर, प्रार्थना और दण्डवत् करने में बहादुर, अदोषदर्शिता और सर्वप्रियता में बहादुर, खर्च करने में बहादुर और यहाँ तक कि सोने में भी बहादुर है। इस पर जब कभी महाराजजी अप्रसन्न होते हैं तब केवल प्रातः काल प्रभाती कीर्तन में न जाने के कारण। कभी-कभी तो इसे आदमी भेजकर भी बुलाते हैं। और कभी इसके लिये कुछ दण्ड भी देते हैं। इसका और छविकृष्ण का पूज्य श्रीउड़िया बाबा में साक्षात् शंकरजी का और महाराजजी में साक्षात् रघुनाथजी का भाव है। तथा श्री श्री माँ आनन्दमयी को ये साक्षात् जगदम्बा मानते हैं।

महेन्द्रपाल सिंह और अजयपाल सिंह तो दोनों भाई-भाई थे। ये भी बाँध के उत्सवादि में तन, मन, धन से सेवा करते थे। अब इनके शरीर शान्त हो चुके हैं। चौधरी यशवन्त सिंह और रणवीर सिंह का भी श्रीमहाराजजी के चरणों में बड़ा गम्भीर प्रेम था। रणवीरसिंह सब प्रकार श्रीमहाराजजी की सेवा करने में तत्पर रहता था। खेद है कि बहुत छोटी आयु में ही उसका देहावसान हो गया।

कुँवर उम्मरसिंह के तीन पुत्रों में सबसे बड़े देवेन्द्रसिंहजी थे। ये बड़े सुन्दर, सुशील और उदार प्रकृति के थे। इनका सौन्दर्य-लावण्य तो अद्‌भुत ही था। इनके नेत्र सचमुच खिले हुए कमल के समान अत्यन्त आकर्षक थे। इनके पिता कट्टर आर्यसमाजी थे और उन्होंने इन्हें संस्कृत व्याकरण की भी शिक्षा दिलायी थी। वे इन्हें बाल्यावस्था में ही छोड़कर परलोकवासी हुए। अत: स्वतन्त्र हो जाने के कारण ये कुसंग में पड़कर बिगड़ गये। कुछ विषयी पुरुषों के चक्कर में आकर इन्हें मद्यपान का व्यसन पड़ गया। एक बार हमारे कौतुकी सरकार सखी भाव में रहने वाले बंगाली महात्मा स्वामी कृष्णानन्दजी के साथ उनके आश्रम श्रीगौरांग दरिद्रालय' वृन्दावन के लिये चन्दा कराने के प्रयोजन से कई जगह घूमते हुए भिरावटी भी पहुँचे। वहाँ अपने पूर्व-परिचित सत्संगी महाशय लक्ष्मीनारायणजी तथा पण्डित मुकुन्दरामजी को लेकर सभी रईसों के पास गये। उस समय तक आपकी विशेष प्रसिद्धि नहीं हुई थी, तो भी आपके तेजस्वी स्वरूप से प्रभावित होकर सभी लोगों ने श्रद्धापूर्वक इस कार्य में सहयोग दिया।

जब सब लोगों से चन्दा हो चुका तब आपने लक्ष्मीनारायण से पूछा, 'क्यों भाई अब और तो कोई बाकी नहीं रहा?' इस पर महायशजी ने कहा, 'हाँ, एक घर बाकी है, परन्तु वहाँ जाना ठीक नहीं।' महाराजजी बोले, 'क्यों?' महाराजजी! वे तो शराबी-कवाबी लोग हैं।' आप बोले, 'कोई चिंता नहीं, सभी तो भगवान्‌ की सन्तान हैं। चलो, चलें। इसमें हमारा तो कोई स्वार्थ है नहीं, फिर परमार्थ में लज्जा क्या?' फिर जैसी आपकी इच्छा।' ऐसा कहकर सब लोग चले और कुंवर देवेन्द्र सिंह के मकान पर पहुँचे। इन्हें देखते ही सब लोग खड़े हो गये और बड़े अदब से झुककर प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर बोले, 'आइये, विराजिये। बड़ी कृपा की जो हमें कृतार्थ किया। कहिये, क्या आज्ञा है?' आप हँसकर बोले, 'मैं बैठूँगा तो नहीं, क्योंकि जल्दी जाना है। केवल खड़े-खड़े ही सुनो। मैं इन स्वामीजी के लिये कुछ माँगने आया हूँ। यदि तुम्हारी स्वाभाविक इच्छा हो तो कुछ दो।' देवेन्द्र सिंह जी बोले, 'धन्य हमारे भाग्य जो आप जैसे महात्मा हमारे-जैसे पतितों के घर पधारे। आप जो भी आज्ञा करें
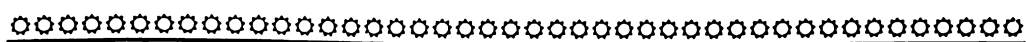
मैं उसका पालन करूँगा।' आप बोले, 'नहीं, जो तुम्हारी इच्छा हो दे दो।' उन्होंने तुरन्त अपनी अंटी में से पच्चीस रुपये निकालकर दिये और बड़ी नम्रता से कहा, 'यह तो रख लीजिये और जो भी आप आज्ञा करें मैं अभी घर से ला दूँ।' उनकी श्रद्धा और नम्रता देखकर श्रीमहाराजजी दंग रह गये और बोले, भाई! तुमने तो यहाँ सबसे अधिक दे दिया। इतना काफी है।' उनके अलौकिक नेत्रों को देखकर श्रीमहाराजजी को महाप्रभुजी के नेत्रों का स्मरण हो आया। यह बात आगे प्रकट होगी।

इसके बाद आपका इनसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा। उस बेचारे को भी मायादेवी ने ऐसा नचाया कि नस-नस ढीली कर दी। बस, दिन-रात प्याले पर प्याले चलते रहते थे। आखिर मानव-शरीर ही तो था और वह भी अत्यन्त सुकुमार, सब अस्त-व्यस्त हो गया। अन्त में विवश होकर डाक्टर और वैद्यों का सहारा लेना पड़ा। किन्तु वे बेचारे भी क्या करते? उसका कलेजा जल गया और सारे शरीर का रक्त सूख गया था। अब उसे भयानक राजयक्ष्मा हो गयी थी और सिविल सर्जन ने भी असाध्य कहकर छोड़ दिया था। किन्तु उसे अब भी शराब के बिना चैन नहीं था।

इधर हमारे कौतुकी सरकार यश-सौरभ दिग्-दिगन्त में व्याप्त हो चुका था। बाँध बंधने पर तो आपका नाम सारे भारत में विख्यात हो गया था। बाँध के कार्य में कई बार बड़े-बड़े चन्दे हुए। उनमें आपने इन लोगों को भी नहीं छोड़ा। किन्तु अब इनके घर में इनकी माता का प्राधान्य था। वह बेचारा तो मृत्यु शय्या पर पड़ा था। वह फिर कभी आपके साम्हने नहीं आया, किन्तु इनकी योग्यता के अनुसार आप इनसे भी कुछ न कुछ लेते ही रहे। इस प्रकार किसी न किसी तरह सम्बन्ध बना ही रहा।

बाँध सम्वत् १९८० में बँधा था। उसके प्रायः दस वर्ष पश्चात् एक बार भिरावटी में बहादुरसिंह के यहाँ कुछ सामान्य सा उत्सव हो रहा था। श्रीस्वामी कृष्णानन्दजी महाराज भी वहीं थे। उस समय कुंवर देवेन्द्रसिंह बिलकुल मरणासन्न हो चुके थे। तब यह सुनकर कि श्रीहरिबाबाजी यहीं हैं उनकी इच्छा हुई कि

एक बार मरते समय उनके दर्शन तो कर लूं। उन्होंने अपनी माता से कहा, 'माँ? मुझे हरिबाबाजी के दर्शन तो करा दो।' माँ ने कहा, 'बेटा! तुम्हारा उनसे कोई घनिष्ट सम्बन्ध तो है नहीं, फिर वे कैसे आवेंगे?, वे बोले, 'माँ! सुना है, वे बड़े दयालु और पतित पावन हैं। हाँ, एक बार मैंने उनके दर्शन भी किये हैं। अच्छा, तुम बुलाकर तो देखो। मेरा अब बिलकुल अन्त का समय है। मुझे विश्वास है कि वे अवश्य ही दर्शन देंगे।'

बस, उनकी माता ने अपने कारिन्दों को महाराजजी के पास भेजा। वह बहादुरसिंह से मिलकर उनके साथ श्रीमहाराजजी के पास आया। आप उस समय सत्संग में बैठे थे। प्रातः ९ बजे का समय था। बहादुरसिंह ने वहीं जाकर बड़ी नम्रता से प्रणाम करके निवेदन किया, 'महाराजजी कुंवर देवेन्द्रसिंह मरणासन्न हैं। वे एकबार आपका दर्शन करना चाहते हैं।' तब आपने कह दिया, 'अच्छा।' इतने ही से बहादुरसिंह को विश्वास हो गया कि अवश्य जायेंगे। आप उसी प्रकार शान्तिपूर्वक सत्संग में बैठे रहे। बीच में कई बार आदमी आया, किन्तु आपसे बार-बार कहने की किसी की हिम्मत न हुई। देवेन्द्रसिंह ने जब सुना कि श्रीमहाराजजी ने आना स्वीकार कर लिया है तो उनकी दर्शनाकांक्षा इतनी प्रबल हुई कि वे बार-बार दरवाजे की ओर देखने लगे। वे शय्या पर चित्त पड़े थे। उनमें करवट लेने की शक्ति नहीं थी। शरीर में अस्थि मात्र रह गयी थीं। हाँ, नेत्र तो और भी बड़े-बड़े और स्वच्छ प्रतीत होते थे। इधर जब ग्यारह बजे उत्सव समाप्त हुआ तो बहादुर सिंह ने फिर प्रार्थना की। आप बोले, हाँ, मैं दो बजे जाऊंगा।' भोजन के पश्चात् विश्राम करके जब आप उठे तो स्वामी कृष्णानन्दजी को बुलाया और उनसे कहा, 'चलिये स्वामीजी! देवेन्द्र के पास जाना है। क्या आपको उसका स्मरण है? यह वही लड़का है जिसने एक बार आपको पच्चीस रुपये दिये थे तथा जिसके नेत्रों की आपने प्रशंसा की थी। अब वह बेचारा मरणासन्न है। हमें बुलाता है, चलो, देख आवें।'

इस प्रकार स्वामीजी को साथ लेकर आप चले। पीछे-पीछे हम दस-बीस आदमी भी हो लिये। वहाँ उसके पास दो कुर्सियाँ पड़ी थीं। उन्हीं पर आप दोनों

बैठ गये। हम सब खड़े रहे। देवेन्द्र ने पड़े-पड़े ही नेत्र भरकर देखा और हाथ जोड़े। उसके कमल सरीखे बड़े-बड़े नेत्रों से पानी छलकने लगा और आँसुओं की झड़ी-सी लग गयी। उसने अनिमेष नेत्रों से आपके दर्शन किये। आप भी चुपचाप उसकी ओर देखते रहे। इस तरह जब आधा घण्टा हो गया तो आपने उसकी छाती पर हाथ रखा ओर बड़े मधुर शब्दों में कहा, 'देवेन्द्र? तू कैसा है?' उसने कहा, 'अब बहुत अच्छा हूँ।' फिर बोले, तू क्या चाहता है?' वो बोला, 'कुछ नहीं।' आप बोले, 'तू अच्छा होना चाहता है?' उसने कहा, 'नहीं।' तब क्या चाहता है?' वह बोला, 'बस, आप थोड़ी देर बैठे रहें। मैं और थोड़ी देर आपको अच्छी तरह देख लूँ।' फिर आप चुपचाप बैठे रहे और वह अपलक नेत्रों से टकटकी लगाकर आपकी ओर देखता रहा। उसके नेत्रों के कोने से बराबर आँसुओं की धारा बह रही थी। घर वालों को जो अभी थोड़ी देर पहले धाड़ मारकर रो रहे थे विश्वास हो गया कि अब देवेन्द्र अच्छा हो जायगा। गाँव के अच्छे-अच्छे सैकड़ों स्त्री-पुरुषों से घर भरा हुआ था। सभी चुपचाप थे।

इसी समय मेरे मन में ऐसी तरंग उठी कि मैंने, श्रीराम जय राम जय जय राम' की ध्वनि से कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। श्रीमहाराजजी तथा स्वामी कृष्णानन्दजी भी ताली बजाने लगे। बस, कीर्तन की तुमुल ध्वनि से आकाश गूंज उठा। भाई! इस समय मुझे जो अनुभव हुआ वह यद्यपि हृदय की छिपी हुई बात है, किन्तु प्रसंग के महत्त्व की दृष्टि से उसे आपके सामने प्रकट करना आवश्यक है, इसलिये लिख रहा हूँ। कीर्तन करते-करते मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि देवेन्द्र के सिरहाने वाली खिड़की से निकलकर दो भयंकर मूर्तियाँ आयीं। उनके हाथों में बड़े तीखे शस्त्र थे और उनकी बड़ी-बड़ी दाढ़े थी। उन्होंने वहाँ श्रीमहाराजजी को बैठे देखा तो वे डर गये, और उनमें से एक बोला, 'यहाँ से भागो, नहीं तो पीटेंगे।' दूसरा बोला, नहीं, भाई! वे तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, समदर्शी हैं, वे कुछ नहीं कहेंगे। तुम अपना काम करो।' मैं आँखें बन्द किये ही यह सब दृश्य देख रहा था और सैकड़ों नर-नारियों द्वारा कीर्तन की तुमुल ध्वनि से आकाश गूंज रहा था। इस समय मुझे भी अपना पुराना भूत चढ़ा। मैंने आवेश

में आकर उन्हें फटकारा, मूर्खों! तुम हरिनाम की महिमा नहीं जानते? और मेरे श्रीमहाराजजी की उपस्थिति में भी यहाँ चले आये। खबरदार, निकल जाओ यहाँ से।' ऐसी भावना करते ही वे भाग गये और उसी समय चार भगवत्पार्षद् एक दिव्य विमान लिये वहां उपस्थित हुए। देवेन्द्र के शरीर से दिव्य प्रकाशमय जीवात्मा निकला। उसने श्रीमहाराजजी को प्रणाम किया और उनकी ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखता हुआ वह 'श्रीराम जय राम जय जय राम' कहता उस विमान पर बैठकर दिव्य लोक को चला गया। उस समय मुझे तो मालूम होता था मानो सारे ब्रह्माण्ड में कीर्तन की ध्वनि भरपूर हो रही है।

यह सब तो हुआ अन्तर्जग में। अब बाह्य जगत् में देखिये। देवेन्द्र उसी प्रकार हाथ जोड़े अधीर नेत्रों से आँसू बहाता अपने पतित पावन भगवान् को हृदय में बसाये हुए था। इसी समय नेत्रों के मार्ग से ही उसका पवित्र जीवात्मा सदा के लिये दिव्य धाम को चला गया। मैंने नेत्र खोलकर देखा तो उसकी आँखें पथरा गयी थीं। किन्तु उसी तरह प्रसन्न था। मैंने सोचा कि अभी और भी कीर्तन होता रहे तो अच्छा हो। अथवा यों समझिये कि उस समय कीर्तन ही ऐसा दिव्य हो रहा था कि उसे छोड़ना असम्भव था। घर वाले तो कोई भी इस रहस्य को नहीं समझ पाये। कीर्तन की ध्वनि और भी बढ़ी और सिंह गर्जन से आधे घंटे और भी कीर्तन होता रहा। सब भक्त भगवान् की अहैतुकी की कृपा का अनुभव करके भिन्न-भिन्न भावों से भावित हो रहे थे। बस, महाराजजी एकाएक उठे और चल दिये। उसी समय सबको होश आया। उन्होंने देखा कि देवेन्द्र भी सदा के लिये इस दुःखमय संसार को छोड़कर आनन्दधाम में चला गया है। अब रह गया पांच भौतिक पुतला, उसे लेकर सब अपने-अपने सम्बन्ध और भाव के अनुसार विलाप करने लगे तथा उसकी अन्त्येष्टि क्रिया में प्रवृत्त हो गये।

श्रीमहाराजजी वहाँ से उठकर सीधे बाँध की ओर चल दिये क्योंकि वहीं से यहाँ आये थे। आज आपकी चाल में बड़ी मस्ती थी। आप आनन्द में विभोर सहजावस्था में झूमते हुए बड़ी तेजी से चल रहे थे। मैं भी आपके पीछे-पीछे पागल तथा मदोन्मत्त की तरह अर्धबाह्य दशा में कूद-फाँद करता चल रहा था।

मेरे हृदय अनेकों भाव तरंगें अपना रंग जमा रही थीं। देवेन्द्र का वह दृश्य मेरी आँखों के आगे खले रहा था। तथा उसके साथ ही भगवान् की पतित-पावनता भी मेरे हृदय को द्रवीभूत कर रही थी। मेरा मन यह जानने को बड़ा ही उत्सुक था कि आज अकारण ही यह दृश्य कैसे उपस्थित हो गया। मैं बार-बार श्रीमहाराजजी से पूछना चाहता था, किन्तु चलते-चलते पूछने की हिम्मत न हुई। हम बड़ी तेजी से चलकर छः कोस दूर बाँध पर डेढ़ घंटे में पहुँच गये और वहाँ एकान्त में पीली कोठी की छत पर जा बैठे। उस समय वहाँ मैं और श्रीमहाराजजी ही थे। बड़ा ही सुन्दर दृश्य था। सामने स्वच्छ बालुका के बीच श्रीगंगाजी थिरक रही थीं तथा पूर्णिमा की उज्जवल चाँदनी छिटकी हुई थी। यह सम्भवतः मार्गशीर्ष-पूर्णिमा की रात्रि थी।

वहाँ पहुँचकर श्रीमहाराजजी आनन्द में विभोर नेत्र मूँदकर ध्यानावस्थित हो गये। किन्तु मेरे मन में तो पूछने की चटपटी लगी थी। आखिर, मेरा संकल्प जानकर आपने नेत्र खोल दिये। मैं पागल की तरह चरणों में लोट गया। आप बोले, 'क्या कुछ कहना चाहता है?' मैंने कहा, 'हाँ।' तब बोले, 'कह, क्या कहना चाहता है?' मैंने कहा, 'महाराजजी! आज की देवेन्द्र की घटना देखकर मैं पागल हो गया हूँ। मेरा हृदय उथल-पुथल हो रहा है। ऐसी ऋषि-मुनि-दुर्लभ मृत्यु एक महान् पतित शराबी-कवाबी को प्राप्त हुई—इसका क्या कारण है? अजामिल का वृत्रान्त मैंने सुना है। किन्तु वह तो पूर्वजीवन में बड़ा तपस्वी और सदाचारी ब्राह्मण था। किसी कारणवश उसका पतन हो गया फिर भी उसने जब महापुरुषों के समागम और संकल्प से 'नारायण' नाम उच्चारण किया तो केवल यमदूतों के पाश से ही मुक्ति हुई। पीछे श्रीभगवान् का भजन करने पर ही उसे भगवद्धाम प्राप्त हुआ। किन्तु यह तो अजामिल से भी बढ़ गया। हमारे देखते-देखते इसने तो क्या इसके पिता ने भी ऐसा कोई शुभ कर्म नहीं किया कि जिसके परिणाम में इसे अन्तकाल में आपके श्रीचरणों में ऐसी भक्ति हो और यह अनायास ही संसार-सागर से पार होकर भगवद्धाम प्राप्त कर सके। मैंने तो जो कुछ देखा है, आपके सामने स्पष्ट कह दिया। आप मेरे इस संशय को निवृत्त करने की कृपा करें।

यह सुनकर आप खूब खिलखिलाकर हँसे। फिर बोले, 'भैया! जो कुछ भी होता है सब न्याय संगत ही होता है। भगवान् की दृष्टि में अन्धाधुन्ध कुछ नहीं होता। भाई! इसी को धूनी का कंडा❁ कहते हैं। तब आपने २५) चंदा प्राप्त करने की पूर्व घटना सुनायी। उस घटना के समय मैं साथ नहीं था और न मैंने इससे पहले वह सुनी ही थी। आप बोले, उसके रूप-लावण्य को देखकर मुझे सहसा उसमें गौर-सुन्दर की भावना हो गयी थी। उसके नेत्र तो मेरे हृदय से कभी नहीं निकलते थे। इसके सिवा उसकी असीम उदारता का भी मेरे चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। जहाँ से एक पैसा मिलने की आशा नहीं थी वहाँ वह २५) देकर भी लज्जित-सा होकर अपना सर्वस्व देने के लिये मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा था। बस, उसी समय मेरे ध्यान में आया कि मैं इसे क्या दूँ। उस समय तो 'अच्छा' यह कहकर मैंने अपने मन को रोक लिया और यह सोचा कि समय आने पर देखा जायगा। सो अब समय आने पर जो कुछ होना था हो गया। अतः जो कुछ भी हुआ है ठीक ही हुआ है और न्यायसंगत ही है।

धन्य, पतितपावन भगवान्! आपने तो सचमुच अपनी प्रतिज्ञा चरितार्थ करके दिखला दी–

'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥'

अब हम भिरावटी के प्रधान भक्त महाशय लक्ष्मीनारायणजी का कुछ परिचय देकर यह प्रसंग समाप्त करेंगे। आप बड़े विचरशील और शान्त रसनिष्ठ

❁ धूनी का कंडा ऊपर से राख से दबा रहने पर भी प्रज्वलित रहता है। उसी प्रकार देवेन्द्र ऊपर से अत्यन्त दुर्व्यसनी दीखने-पर भी वास्तव में कोई ऐसी साधन सम्पत्ति रखता था, जिससे उसे अन्तकाल में ऐसी सद्बुद्धि प्राप्त हुई—ऐसा यहाँ श्रीमहाराजजी का आशय है।
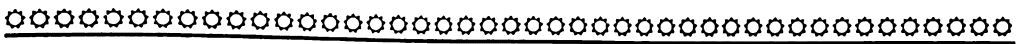
सज्जन थे तथा संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत की श्रीधरी टीका का, उसमें विशेषतः एकादश स्कन्ध का आप नियमपूर्वक स्वाध्याय किया करते थे। आपको अच्छे-अच्छे महात्माओं की निरन्तर खोज रहती थी। जहाँ किसी उच्चकोटि के संत का पता लगता वहाँ जाकर कुछ दिन सत्संग का आनन्द लेते और यथासम्भव अनुनय-विनय करके उन्हें भिरावटी में भी ले आते। इस तरह उनके कारण गाँव के रईसों तथा अन्य व्यक्तियों को भी सन्तसमागम का लाभ मिलता रहता था। ये यहाँ के जमीदारों के कोई सम्बन्धी थे। इनकी अपनी स्थिति तो सामान्य ही थी। किन्तु अपने प्रभाव से ये यहाँ के रईसों से कोई न कोई पारमार्थिक सेवा कराते ही रहते थे। यहाँ तक कि ये उनसे लड़-झगड़कर भी तरह-तरह के सत्कर्मों में उनका खर्च कराते रहते थे। यहाँ के सबसे बड़े रईस थे कुँवर यशवन्त सिंह। ये तीस हजार रुपया सालाना के मालगुजार थे। वैसे भी बड़े सज्जन और सहिष्णु स्वभाव के थे। किन्तु कृपण बहुत थे। इनसे महाशयजी का खूब झगड़ा चलता था। ये लड़-झगड़ उनसे हजारों रुपये परमार्थ में लगवा देते थे। जब कभी वे इनका कहना न मानते तो ये रूँठ जाते थे और उनके यहाँ जाना बन्द कर देते थे। तब कुँवर साहब इन्हें बुलाते और यदि बुलाने पर भी ये न आते तो स्वयं जाकर इन्हें मनाते थे। इस तरह का इनका झगड़ा चलता ही रहता था। यों कुँवर साहब इनका हृदय से आदर करते थे और इनके पीछे कहा करते थे कि महाशयजी बड़े अच्छे हैं, जो हमसे लड़-झगड़कर कुछ करवा ही लेते हैं।

ये नियमित रूप से स्वाध्याय, सत्संग एवं भजन में तत्पर रहते थे। शरीर से कुछ स्थूल होने पर भी चलने-फिरने में किसी से पीछे रहने वाले नहीं थे। आलस्य तो इन्हें नाम को भी नहीं था। जब महाराजजी बरोरा में रहते थे । तो ये सबेरे ३ बजे उठकर शौच स्नानादि से निवृत्त हो ठीक सूर्योदय पर बरोरा पहुँच जाते थे तथा दस-ग्यारह बजे सत्संग समाप्त होने पर भिरावटी वापिस आकर भोजन करते थे। उस समय अपने साथ बाबू भगवद्दत्त आदि कुछ और सत्संगियों को भी ले जाते थे। इन्होंने श्रीमहाराजजी से श्रीमद्भागवत एकादश

स्कन्ध, गीता तथा कुछ अन्य संस्कृत-ग्रन्थ अध्ययन किये थे। ये बड़ी गम्भीर प्रकृति के शान्त भक्त थे। इनके हृदय का भाव सहसा प्रकट नहीं होता था। कभी-कभी विवशता में ही प्रकट हो जाता था। एक दिन अकस्मात श्रीमहाराजजी इनके घर पधारे और इनके दरवाजे पर आवाज दी। ये यह सुनकर कि 'महाराजजी आये हैं' पागल से हो गये। जैसे बैठे थे वैसे ही उठकर भागे और दरवाजे पर आकर ज्यों ही साष्टांग प्रणाम किया कि एकदम विह्वल हो गये। हर्षातिरेक से इन्हें अश्रु, कम्प, पुलक आदि होने लगे। ये पृथ्वी पर लोटते-लोटते मूर्च्छित प्राय हो गये। उस समय इन्हें जैसे-तैसे मैंने उठाया। फिर ये श्रीमहाराजजी को भीतर ले गये। श्रीचरणों को धोया और विधिवत् पूजा की। फिर अत्यन्त भावपूर्वक गद्‌गद कण्ठ से ये चौपाइयाँ पढ़ीं-

'प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयेउ पुनीत आज मम गेहू।।
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दमनू।।'

भाई! ये चौपाइयाँ तो हमने अपने जीवन में अनेकों बार पढ़ी और सुनी हैं। किन्तु आज तो महाशयजी ने इनमें ऐसा जादू भर दिया कि वहाँ उस समय जो सैकड़ों स्त्री-पुरुष थे वे सभी प्रेम से भरकर रोने लगे। महाशयजी की तो विचित्र दशा थी। वे सुतीक्ष्ण की भाँति विह्वल होकर कभी तो वेद स्तुति का पाठ करते और कभी ब्रह्मस्तुति* बोलने लगते। कभी नाचते, कभी हँसते और कभी काँपने लगते। इधर हमारे कौतुकी सरकार ध्यानावस्थित हुए चौकी पर बैठे थे। जब बहुत देर हो गयी तो आपने आँखें खोलीं और कहा, 'लक्ष्मीनारायण! तू क्या पागल हो गया है। अरे! मुझे तो भूख लगी है, जल्दी से कुछ खाने को दे।'

इन शब्दों से महाशयजी होश में आये। भोजन तैयार था। उन्होंने जल्दी से एकान्त में बैठाकर आपको भोजन कराया। पीछे मुख शुद्धि लेकर आप बाहर जंगल में एक मन्दिर में चले गये और महाशयजी से कहा 'तुम भोजन कर

---

* श्रीमद्‌भागवत दशम स्कन्ध की प्रसिद्ध स्तुतियां।

आओ। तत्पश्चात् कुछ देर आपने आराम किया। फिर सब सत्संगी आ गये और कुछ स्वाध्याय-सत्संग होने लगा। शाम को आप बरोरा चले गए।

महाशय लक्ष्मीनारायणजी का प्रेम इसी तरह सदा एकरस रहा। वे महीनों तक बाँध, अनूपशहर, बरोरा, निजामपुर और भीखमपुर आदि स्थानों में, जहाँ भी श्रीमहाराजजी होते वहीं रहकर सत्संग करते थे। उन्होंने कई बार सब लोगों को प्रेरणा करके भिरावटी में भी उत्सव कराये तथा श्रीमहाराजजी को वहाँ रोककर सत्संग का आनन्द लिया। उन्होंने बाँध में भी तन, मन, धन से खूब सेवा की। इस प्रकार ये महाराजजी के प्रत्येक कार्य में सदा ही बड़े प्रेम और उत्साह से सम्मिलित होते रहे। अन्त में भोग समाप्त होने पर ये बीमार पड़े और थोड़े ही दिनों में मरणासन्न हो गये। यह बात संभवतः संवत् १९९० की होगी। उस समय श्रीमहाराजजी गवाँ में ढाकबाली कुटी में रहते थे। महाशयजी का प्रेम इतना निष्काम था कि इस अवस्था में भी वे महाराजजी को सूचना नहीं देना चाहते थे। कई सत्संगियों ने पूछा कि क्या श्रीमहाराजजी को बुला दें, तो आपने कहा, 'नहीं, उनको कष्ट देने का मुझे क्या अधिकार है?'

आखिर जब उनका अन्त समय ही देखा तो उनकी स्त्री ने ही एक आदमी गवाँ भेज दिया। उसने जिस समय आकर यह कहा कि महाशयजी का अन्त समय है, उसी समय आप उठ खड़े हुए और महाशय सुखराम गिरिजी को साथ लेकर पैदल ही चल पड़े। तथा प्रायः डेढ़ घंटे में ही भिरावटी पहुँच गये। वहां सीधे महाशयजी के घर पहुँचे तो देखा कि ये तो अब चलना ही चाहते है। किन्तु वे थे सचेत। अकस्मात् महाराजजी को सामने देखकर वे चकित हो गये और रोने लगे। उन्होंने उठने की चेष्टा की, किन्तु उठ न सके। अतः पड़े-पड़े ही हाथ जोड़े रहे। तथा एकटक दृष्टि से श्रीमहाराजजी की ओर देखते हुए आँसुओं की झड़ी लगा दी। महाराजजी समीप में ही कुर्सी पर बैठ गये और 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' उच्चारण करने लगे। और भी बहुत लोग वहाँ एकत्रित हो गये थे। सबने
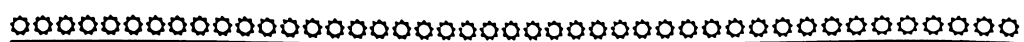
मिलकर खूब कीर्तन किया। महाराजजी भी नामोच्चारण करते रहे। फिर थोड़ी देर को चुप होकर श्रीमहाराजजी ने पूछा, 'लक्ष्मीनारायण! क्या इच्छा है, संकोच त्यागकर कहो।' तब महाशयजी ने धीमे स्वर में यह श्लोक पढ़ा—

'कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु रक्षः पिशाचमनुजेष्वपि यत्र यत्र।
जास्य मे केशव त्वत्प्रादात्त्वय्येव भक्ति रचलाव्यभिचारिणी च॥'

और फिर बोले—

चहों न सुगति सुमति सम्पति कछु रिधि सिधि विपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग तोर पद बढौ अनु दिन अधिकाई॥'
कुटिल करम लै जाई मोहि जहँ जहँ अपनी बरियाई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाड़िये कमठ अंड की नाईं॥
यह विनती रघुवीर गुंसाई॥

बस, इतना कहा और संकेत किया कि मुझे पृथ्वी पर ले लो। उसी समय उन्हें पृथ्वी पर लिटाया गया। फिर उन्होंने चरणामृत लेने के लिये श्रीचरणों की ओर संकेत किया। तब किसी भक्त ने श्रीचरणों का अगूंठा धोकर चरणामृत तथा तुलसी-पत्र मुख में दिया। बस वे मुख से 'श्रीराम श्रीराम' उच्चारण करते और नेत्रों से श्रीमहाराजजी का दर्शन करा के सदा के लिये मौन होकर अपने इष्टदेव की नित्यलीला में प्रवेश कर गये।
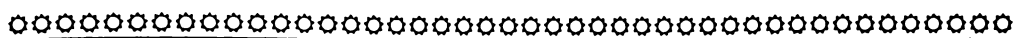
रामेश्वर की बीमारी

श्रीमहाराजजी सन् १९१७ में गवाँ पधारे थे। उस समय आप माधूकरी भिक्षा किया करते थे। किसी का विशेष आग्रह होने पर सप्ताह में एक दिन एक घर में भी भोजन कर लेते थे। दो-तीन वर्ष बाद जब विशेष परिचय बढ़ गया तो आप सब लोगों के आग्रह से सात दिन सात घरों में भिक्षा करने लगे। तब सप्ताह में एक दिन आप लाला कुन्दनलाल के यहां उनके मन्दिर में बैठकर भोजन किया करते थे। उस समय उनके बड़े पुत्र लाला किशोरीलाल का लड़का रामेश्वर प्राय: दस बारह वर्ष का होगा। वह स्वभाव का बड़ा ही चंचल, बुद्धिमान् और तर्कशील था। उसके छोटे चाचा लाला बाबूलालजी पक्के आर्य समाजी थे। इसे अधिकतर उन्हीं का सम्पर्क रहता था। इसलिये इसके चित्त पर भी उन्हीं विचारों की छाप पड़ रही थी। इस समय यहाँ चंदौसी के हाईस्कूल में पढ़ता था। वहाँ भी उसका मेल-जोल अधिकतर नये विचार के विद्यार्थियों से था। इस प्रकार यह बुद्धिमान् बालक बुद्धिवाद के ही वातावरण में पल रहा था।

जब श्रीमहाराजजी मन्दिर में भोजन करने जाते तब यह उनसे बहुत तर्क-वितर्क करता था। कभी ठाकुरजी की ओर अंगुली उठाकर कहता कि यह तो धातु की मूर्ति है, इसे भगवान् क्यों कहते हैं? इसकी पूजा करने से क्या लाभ है? कभी कहता, 'आपने कपड़े क्यों रंगे हैं? क्या आपने ईश्वर को देखा है? भला रामनाम रटने से क्या होता है? किसी भले आदमी का नाम बार-बार पुकारो तो क्या वह नाराज नहीं होगा?' इसी प्रकार के वह और भी अनेकों तर्क-वितर्क करता था, किन्तु भोजन बड़े प्रेम से करता था। दस-बारह वर्ष की आयु में उसकी ऐसी प्रतिभा देखकर निश्चय होता था कि यह कोई होनहार बालक है। धीरे-धीरे महाराजजी का भी उससे कुछ प्रेम हो गया। वह अवकाश के समय कभी-कभी बगीचे में भी चला जाता था। वहाँ श्रीमहाराजजी जो स्वाध्याय करते थे उसमें भी अनेकों तर्क-वितर्क करता था। महाराजजी इसे बालकों की तरह समझा देते थे और कभी-कभी डाँट भी देते थे। किन्तु भीतर से उससे प्रसन्न ही होते थे।

इस तरह यह छेड़छाड़ तीन-चार साल तक चलती रही। आखिर, वह बीमार पड़ गया। लाला कुन्दनलाल का यह प्रथम पौत्र था, इसलिये उनका इस पर बहुत स्नेह था। यहाँ तक कि चँदौसी में इस अकेले बालक के लिये उन्होंने एक रसोइया और एक कहार रख छोड़े थे तथा इसे यथेच्छ खर्च करने की छूट थी। इस प्रकार अत्यन्त लाड़-प्यार में पलने से बहुत ही आरामतलब होने के कारण यह स्वाभाविक ही ढीला-ढाला हो गया था। ऊपर खूब हृष्ट-पुष्ट दिखाई देने पर भी इसका दिल बहुत कमजोर था; दिमाग अच्छा था। इसको बीमारी भी बड़ी भयंकर हुई, जैसी कि अमीरों के बच्चों को प्रायः हुआ करती है। इसे अपस्मार (मिरगी) के-से दौरे होते थे। सामान्यतया इसे हिस्टीरिया कहते हैं। दौरे के समय इसके हृदय की धड़कन इतीन बढ़ जाती थी कि इसे चार अच्छे तगड़े आदमी भी काबू में नहीं कर सकते थे।

इसकी चिकित्सा के लिये लाल कुन्दनलाल ने बहुत अधिक प्रयत्न किया। यहाँ तक कि लखनऊ और कलकत्ते से भी अच्छे-अच्छे डाक्टर बुलवाये। जिस वैद्य या डाक्टर की भी प्रशंसा इन्होंने सुनी उसीको बुलाकर चिकित्सा करायी। किन्तु रोग बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की रामेश्वर की चिकित्सा में इनके प्रायः बीस हजार रुपये खर्च हो गए। इसकी परिचर्या में चार नौकर हर समय मौजूद रहते थे। लाला बाबूलालजी को स्वयं भी आयुर्वेद का अच्छा ज्ञान था। वे सब काम-काज छोड़कर हर समय इसकी देख-भाल करते रहते थे। यह सभी को बहुत प्यारा था। इसलिये सारा ही परिवार इसके लिये हर समय आतुर रहता था। अन्त में डाक्टरों ने कह दिया कि इसका अच्छा होना कठिन ही है और अच्छा हो भी गया तो इसकी टांगें काम नहीं देंगी, क्योंकि चौदह महीने से वे सीधी ही रहती थी। घुटने खड़े ही नहीं होते थे। वह स्वयं न तो टांगे सिकोड़ सकता था और न फैला सकता था। उनमें रक्त-संचार भी प्रायः बन्द हो गया था।

अब लाला कुन्दनलाल डाक्टर और वैद्यों से निराश हो गये। अतः उन्हें कोई दैवी उपाय करने की सूझ पड़ी। ये बड़े बुद्धिमान पुरुष थे और साधु-सेवा

के लिए तो दूर-दूर प्रसिद्ध थे। श्रीमहाराजजी में भी इनकी बड़ी श्रद्धा थी और इन्हें सिद्ध पुरुष मानते थे। इधर बहुत दिनों से महाराजजी ने उस बालक को देखा भी नहीं था, इसलिये कभी-कभी इनके मन में उसका स्मरण हो जाता था। परन्तु संकोचवश किसी से कुछ पूछते नहीं थे। एकदिन जब ये भिक्षा के लिये मन्दिर में गए तो कुन्दनलालजी इनके चरणों में गिर गये और बोले, 'महाराज! मेरा एक पौत्र है। उसका नाम रामेश्वर है। वह चौदह महीने से बीमार है। मैंने उसकी चिकित्सा के लिए सारे उपाय कर लिये, अपनी शक्ति से अधिक खर्चा भी किया; किन्तु उसे आराम नहीं हुआ। आपकी यदि रुचि हो तो एक बार उसे देख लें और उसके आरोग्य के लिए कोई अनुष्ठान निश्चित कर दें।' महाराजजी ने कहा, 'क्या वही बालक है जो मुझसे बहुत प्रश्न किया करता था?' लालाजी बोले, 'हाँ महाराज! वही है।' तब महाराजजी बोले, 'अच्छा चलो, देखें तो सही।' यह कहकर आप रामेश्वर के पास गए।

रामेश्वर एक चारपाई पर चित्त लेटा हुआ था। आपको देखकर उसने हाथ जोड़कर नमस्ते किया। आप उसके पास ही कुर्सी पर बैठ गए। उसका चेहरा प्रसन्न था, किन्तु शरीर में मांस की बहुत कमी थी। कमर के नीचे टांगें तो बिलकुल सूख गयी थीं आप बहुत देर तक उसकी ओर देखते रहे। फिर बोले, क्यों, रामेश्वर! तू अच्छा होना चाहता है?' उसने बड़ी ही लापरवाही से उत्तर दिया, 'किसी के चाहने से क्या होता है?' जो होना है वही होगा।' उसका यह उत्तर सुनकर आप दंग रह गए। सोलह वर्ष का बालक और चौदह महीने का बीमार! प्रायः मरणासन्न अवस्था! किन्तु उत्तर ऐसा लापरवाही का! ऐसा तो बड़े-बड़े महात्मा भी ऐसे संकट के समय नहीं कहेंगे। उसकी ऐसी निष्कामता देखकर आपका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और उसी समय यह संकल्प हो गया कि यह तो अवश्य अच्छा हो जाना चाहिए। बस, आपके संकल्प के साथ ही वह तो मानो अच्छा हो ही गया। अब तो उसे व्यावहारिक रूप देने में ही कुछ समय लगना था। लालाजी ने पूछा, 'महाराजजी! हमें क्या करना चाहिए?' तब आपने कहा, मैं इस पर विचार करूँगा।'

यह कहकर आप चले आए और उसी दिन शाम को जब निजामपुर गए तो जंगल में अकेले मुझको ही सब बातें बताकर बोले, 'यह लड़का बहुत होनहार जान पड़ता है। मुझे तो यह पहले ही बहुत प्यारा लगता था। किन्तु आज तो उसकी बात सुनकर मैं चकित रह गया। इसलिये मेरा तो यह हार्दिक संकल्प है कि यह अच्छा हो जाय। किन्तु बंगाली स्वामी कृष्णानन्दजी आजकल गवाँ में ही ठहरे हुए हैं। कल उनके साथ विचार करेंगे कि क्या उपाय किया जाय।' यह सुनकर मुझे निश्चय हो गया कि अब तो वह अवश्य अच्छा हो जायगा। वास्तव में तो इनका संकल्प ही सब कुछ है, अब केवल कुछ लीला करनी शेष है, सो कर लेंगे।

दूसरे दिन स्वामी कृष्णानन्दजी को लेकर आप उसके पास गये। तब भी आपने उससे यही पूछा, 'रामेश्वर! तेरे अच्छे होने का कुछ उपाय करें? इस पर उसने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया, 'मैं आपको क्यों कष्ट दूँ? यह तो मेरे कर्मों का भोग है।' यह सुनकर स्वामी कृष्णानन्दजी भी दंग रह गए।

सचमुच, ईश्वर और महापुरुषों से कोई लाभ उठाना चाहे तो निष्काम बने। सकामी पुरुष की तो कोई दुनियादार भी कद्र नहीं करता। रामतीर्थजी कहते हैं–

'भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने की, तो बेकरार आने को है॥'

बस, आपने उसी समय लाला कुन्दनलाल को बुलाकर विचार किया और स्वामीजी से पूछा कि क्या करना चाहिए। तब बंगाली स्वामी ने कहा, 'स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही की प्राप्ति के लिये इस कलिकाल में तो एकमात्र भगवन्नाम ही साधन है। इसलिये मेरे विचार से तो इस निमित्त से कुछ दिनों तक अखण्ड कीर्तन होना चाहिये।' उस पर श्रीमहाराजजी ने पाँच दिन का अखण्ड कीर्तन करने का निश्चय किया।

लाला कुन्दनलाल ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसी समय बाबू हीरालालजी ने मुझे निजामपुर से बुलाया और सारा प्रबंध ठीक हो गया। निजामपुर

के भक्त कीर्तन करने को बुलाये गए। इनका निजामपुर से बाहर कीर्तन करने का शायद यह पहला ही अवसर था। कीर्तन का आयोजन लाला जानकी प्रसाद की कोठी पर किया गया और वहीं रामेश्वर को भी रक्खा गया। भोजन का प्रबंध बाबू हीरालाल के अट्टे पर हुआ। कीर्तन में इनके सारे परिवार को सम्मिलित होने की महाराजजी की आज्ञा हुई तथा लाला बाबूलाल के जिम्मे ड्यूटी बदलने का काम रक्खा गया। श्रीमहाराजजी प्रातः, सायं तथा एकबार दिन में और एकबार रात में इस प्रकार चार बार एक-एक घंटे बड़ी धूम से कीर्तन करते थे। सम्भवतः बीस-बीस आदमियों की चार मण्डलियाँ थीं, जिनमें से एक मण्डली का मुखिया मैं था, दूसरी के पण्डित हरियशजी और शेष दो के मुखिया निजामपुर के दो भक्त थे। मण्डलियों को बुलाना, उनकी देख-भाल करना तथा हटाना और उन्हें भोजन कराना मेरे जिम्मे था तथा भोजन बनाने का काम बाबू हीरालालजी को सौंपा गया था।

जिस दिन कीर्तन आरम्भ हुआ उसी दिन रामेश्वर को दौरा पड़ा। उस समय श्रीमहाराजजी भी वहाँ मौजूद थे। इन्होंने ज्यों ही हाथ रखा कि दौरा शान्त हो गया। इससे उन लोगों का विश्वास और भी बढ़ गया। इस प्रकार जो दौरा दिन में दो-दो तीन-तीन घण्टे के अन्तर पर पड़ा करता था वह दिन में एक या दो बार ही पड़ने लगा। वह भी श्रीमहाराजजी के हाथ रखते ही शान्त हो जाता था। तीन दिन कीर्तन हो जाने पर उसे दौरा पड़ना बिलकुल बन्द हो गया। किन्तु चौथे दिन लाला बाबूलाल ने ड्यूटी बदलने में कुछ गड़बड़ कर दी। वे तान दुपट्टा सो गये और घर वाले भी कीर्तन में कम सम्मिलित हुए। इससे महाराजजी के चित्त को कुछ खेद हुआ। अतः चौथे दिन रामेश्वर को बड़े जोर का दौरा पड़ा। उस समय तो लाल बाबूलाल के छक्के छूट गये। चार आदमी उसको पकड़ रहे थे, किन्तु वह चारों को बड़े जोरों से फेंक देता था। तब बाग में महाराजजी के पास आदमी गया। किन्तु वे नहीं आये, कह दिया कि बाबूलाल जाने, मैं कुछ नहीं जानता।

तब तो घर के सभी लोग घबरा गये। वह उस समय सचमुच मछली की तरह तड़प रहा था। अब लाला कुन्दनलाल बाबूजी, जानकीप्रसाद और बाबूलाल आदि को साथ लेकर बाग में गए। वहाँ वे बहुत रोये और सभी ने क्षमा माँगी। तब महाराजजी ने कहा, 'भाई! जब तुम्हारी श्रद्धा भगवन्नाम में नहीं है तो हमें क्या जरूरत है जो मरें। बालूलाल ने चौथे ही दिन ड्यूटी बदलने का काम छोड़ दिया तथा एक लालजी को छोड़कर और कोई नियमित रूप से कीर्तन में नहीं आता।' यह सुनकर सब लोग बहुत गिड़गिड़ाये और लाला कुन्दनलालजी ने बहुत प्रार्थना की। तब आप बोले, 'खैर अब वह बात तो नहीं रही कि पाँच दिन में ही अच्छा हो जाय, क्योंकि मेरा संकल्प शिथिल पड़ गया। किन्तु यदि तुम सब लोग दृढ़ संकल्प करोगे और पूर्णतया सावधान रहोगे तो कुछ दिनों में आराम हो सकता है। किन्तु यह याद रखो कि जब ढील करोगे तभी काम बिगड़ जायगा। इसलिये सब सावधान रहना, कोई भी अपने काम में ढील न करे।' सबने नत-मस्तक होकर आपकी आज्ञा स्वीकार की।

तब आप गये और रामेश्वर के हृदय पर हाथ रखा। बस वह शान्त हो गया। वहां से लौटते समय बंगाली स्वामीजी साथ थे और पीछे-पीछे मैं भी था। स्वामी जी ने कहा, 'क्या सचमुच आपका संकल्प शिथिल हो गया था?' आप बोले, 'नहीं, स्वामीजी! यह बात नहीं है। ये लोग दुनियादार हैं, धनी-मानी हैं, इन्हें सहज में विश्वास नहीं होता। इनको तो रुपये का बल है। जिस काम में इनका अधिक रुपया खर्च हो उसीमें इनकी श्रद्धा होती है। गरीब आदमी का विश्वास सरल होता है। वह झट से किसी भी वैद्य या साधु की बात में विश्वास कर लेता है, अतः उसे लाभ भी तत्काल हो जाता है। किन्तु अमीर आदमी सहसा किसी की बात में विश्वास नहीं करता, इसी से बीमार होने पर हजारों रुपया खर्च करके सैकड़ों डाक्टर और वैद्यों का निशाना बनता है। किन्तु इससे सिवाय खराबी के कोई और परिणाम नहीं निकलता। इसलिए अब मैंने यह विचार किया है कि इनको खूब कसना चाहिए, जिसमें इनका तन, मन, धन सभी लगे। तभी ये भगवन्नाम में विश्वास करेंगे और यदि सहज ही में इनका
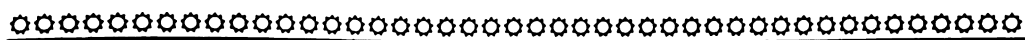
लड़का अच्छा हो गया तो ये समझेगे कि यह तो बहुत मामूली बात थी। सो अब तो सम्भव है पाँच दिन के बजाय पाँच महीने भी लग जायँ।

इधर ये सभी लोग डर गए और बड़ी सावधानी से काम करने लगे। जिस समय महाराजजी कीर्तन में पधारते, घर के सभी स्त्री पुरुष तुरन्त आ जाते थे और बड़े प्रेम से कीर्तन करते थे। इसके सिवा कीर्तन करने वालों के साथ भी बड़े सत्कार का व्यवहार करने लगे। अपने आसामियों के साथ भी इन्होंने कड़ा व्यवहार करना छोड़ दिया तथा साधुमात्र में इनकी श्रद्धा बढ़ गयी। अब कभी-कभी तीन-चार दिन में दौरा पड़ता था, सो श्रीमहाराजजी के आने पर बन्द हो जाता था। अथवा कभी-कभी आप केवल तुलसीदल ही भेज देते। उसे मुंह में रखते ही ठीक हो जाता था। बीच-बीच में यदि किसी का कोई प्रमाद देखते तो महाराजजी उसे सचेत कर देते थे। इस तरह कीर्तन होते-होते प्राय: तीन महीने हो गए।

संकीर्तन का चमत्कार

अब वर्षा ऋतु आरम्भ हो गयी थी। इसलिए वहाँ रहना तो कठिन था, क्योंकि गंगाजी में हर साल बड़ी भयानक बाढ़ आती थी, जिससे प्रायः तिहाई गंगाजी महाबा नदी में टूट पड़ती और चालीस कोश तक प्रायः सात सौ गाँवों को जलमग्न करती कछला के पास मुख्य धारा में मिलती थी। अतः अब रामेश्वर को अनूपशहर ले जाने का निश्चय हुआ।

बीच-बीच में आप हम लोगों से एकान्त में कहा करते थे, 'याद रखो, यदि रामेश्वर अच्छा न हुआ तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। इसलिये अब जो कुछ भी संकल्प हो गया है उसे पूरा करना ही चाहिये, चाहे वह अच्छा है या बुरा। यदि तुम सत्यस्वरूप परमात्मा से मिलना चाहते हो तो अपनी कायिक, वाचिक और मानसिक प्रत्येक क्रिया को सदा ही बड़ी सावधानी से सत्य की कसौटी पर कसते रहो। हर समय सत्य का पालन करो। तुमने मन से जो भी संकल्प किया है उसे प्राण की भी बाजी लगाकर पूरा करो। इसी तरह तुमने शरीर से भी जिस काम को पूरा करने का निश्चय किया है उसे अवश्य पूरा करो। भाई! मेरा तो यह संकल्प हो गया है कि रामेश्वर अच्छा हो जाय, इसलिए वह अवश्य अच्छा हो जाना चाहिए। नहीं तो रामेश्वर के बदले मुझे प्राण परित्याग करने पड़ेंगे। यह काम बिना आप लोगों की सहायता के नहीं हो सकता। अतः आप सब लोग मेरी सहायता करें। तभी यह काम पूरा हो सकेगा। आप सब भगवान् से प्रार्थना करें कि वे रामेश्वर को स्वास्थ्य प्रदान करें। भला विचार तो करो, जो ईश्वर संकल्प मात्र से अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना करता है उसके लिए एक रामेश्वर को स्वस्थ कर देना कौन बड़ी बात है। बस, हम लोगों का एक संकल्प होना चाहिए। जिस दिन हमारा एक संकल्प हो जायगा उसी दिन रामेश्वर चंगा हो जायगा।'

अस्तु, अब सब लोग रामेश्वर को लेकर अनूपशहर आ गए। उसे शहर से बाहर लाला बाबू की कोठी में रखा और उसीके बगीचे में एक कुटी में

श्रीमहाराजजी रहे। एक दिन स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी बातों-बातों ही में बहुत बढ़कर बोलने लगे। उस समय सम्भवतः उनके मन में ऐसा विचार आ गया था कि रामेश्वर को तो हमने ही स्वस्थ किया है। उधर बाबूलालजी से कुछ गलती हो गयी और रामेश्वर ने भी पड़े-पड़े ही एक नौकर के बेंत मार दी। इन बातों का श्रीमहाराजजी को पता लग गया। इससे उनके चित्त में खेद हुआ। बस वहाँ था क्या, केवल आपके संकल्प ही का तो खेल था। रामेश्वर को शाम के समय ही बड़ा भयानक दौरा पड़ गया। उस समय लाला बाबूलाल तथा और भी चार-पाँच आदमी उसे पकड़े हुए थे, किन्तु जब उसे जोश आता था वह सभी को फेंक देता था। तब तो सब लोग बड़े व्याकुल हुए। श्रीमहाराजजी इस समय गंगा किनारे रेती में बैठे हुए थे और वहीं स्वामी कृष्णानन्दजी भी थे। उनके सिवा हम लोगों में भी दो-चार आदमी बैठे हुए थे। उसी समय एक आदमी दौरा हुआ आया और बोला, 'महाराजजी! रामेश्वर को बड़े जोरों का दौड़ा पड़ा है, लालाजी आपको बुला रहे हैं।' महाराजजी ने साफ-साफ कह दिया, 'भाई! मैं वैद्य या जादूगर थोड़ा ही हूँ। मुझे तो एक श्रीहरिनाम का सहारा है। उसमें उन लोगों की श्रद्धा नहीं है। बाबूलाल अनेकों तर्क-वितर्क करता रहता है तथा रामेश्वर स्वयं नास्तिक और घोर रजोगुणी है। कल ही एक नौकर को उसने बेंत से पीटा है। ऐसे लोगों के पास जाने को मेरा चित्त नहीं चाहता। और मैं जाकर करूँ भी क्या? बाबूलाल तो मुझ से सभी बातों में श्रेष्ठ है।'

यह सुनकर वह बेचारा चला गया और जाकर साफ-साफ कह दिया कि वे नहीं आयेंगे। बाबूलालजी ने अनेकों उपाय किये, किन्तु दौरा नहीं रुका। तब वे निराश हो गए। आखिर, लालाजी स्वयं दौड़े आये और महाराजजी के पैरों में पड़कर उन्होंने बहुत प्रार्थना की। आपने इन्हें भी फटकारा और कहा, 'लालाजी! आपने जन्म भर सत्संग किया है। किन्तु अभी तक आपका मोह दूर नहीं हुआ। आप जिस रामेश्वर को अच्छा करना चाहते हैं वह तो घोर नास्तिक और रजोगुणी है। ऐसे व्यक्ति के जीने से क्या लाभ?' तब लालाजी ने गिड़गिड़ा कर कहा, 'महाराजजी! आप ठीक ही कहते हैं। मेरा अवश्य इस लड़के में मोह है। किन्तु मेरा विश्वास है कि आप इस पर अवश्य कृपा करेंगे।'

लालाजी की यह बात सुनकर आप प्रसन्न हो गए और बोले, 'लालाजी! आप स्वामीजी को ले जाइये। मेरी अपेक्षा ये कहीं अधिक बुद्धिमान् हैं। अब बेचारे लालाजी कुछ नहीं बोल सके। और 'जैसी आपकी इच्छा' ऐसा कहकर स्वामी कृष्णानन्दजी को साथ लेकर चले गए। वहाँ जाकर स्वामीजी ने रामेश्वर पर हाथ रखा और बहुतेरे मन्त्र भी पढ़े, किन्तु उसका दौरा नहीं रुका।

तब लालाजी ने बाबूलाल से कहा, 'भाई! तुझसे ही महाराजजी नाराज हैं, तू ही उनको लिवाकर ला।' वे बेचारे गए और बहुत प्रार्थना की। तब महाराजजी उनके साथ गये और वहाँ जाकर रामेश्वर को नाम लेकर पुकारा। सुनते ही रामेश्वर सावधान हो गया। फिर आपने उसे डांटते हुए कहा, 'तू यहा बात अच्छी तरह समझ ले कि जब तक तू हरिनाम में विश्वास नहीं करेगा तब तक अच्छा नहीं होगा। इसके सिवा तेरा स्वभाव बहुत रजोगुणी है। तू नौकरों को बेंत से पीटता है और चार-चार नौकर तेरी सेवा में रहते हैं। अपने आप तू करवट भी नहीं बदल सकता। यह सब तुझे छोड़ना होगा। बस, आज से तेरे पास केवल एक आदमी रहेगा। तुझे कोई रोग नहीं है, तूने व्यर्थ ही अपने को निर्बल समझ लिया है। संसार में जो कुछ भी सुख-दुःख हैं, अपने संकल्प ही के अधीन हैं। तू अपना संकल्प दृढ़ कर ले कि मुझे कोई रोग नहीं है। बस, तेरा सारा रोग अभी दूर हो जायगा। जब तक तू ऐसा दृढ़ संकल्प नहीं करेगा तब तक अच्छा भी नहीं हो सकता। मेरे पास कोई जादू, टोना, मन्त्र, यन्त्र या सिद्धि नहीं है, मुझे तो केवल श्रीहरिनाम का ही सहारा है। सो यदि तू इसी समय हरिनाम में विश्वास कर ले तो अभी हरिण की तरह चौकड़ी भर सकता है। श्रीहरिनाम तो केवल विश्वास का धन है। वह तो निर्बलों का बल है, असहायों का सहारा है और निर्धनों का धन है। परन्तु करें क्या? तुम लोगों को कितना ही कहें, तुम्हें तो अपने पैसे पर ही विश्वास है। तभी तो हजरत ईसा ने कहा– 'सुई नाके में ऊँट निकल सकता है, परन्तु कोई भी धनी मेरे पिता के पास नहीं जा सकता।' किन्तु याद रखो जब तक कोई भी मायिक सहारा रहेगा तब तक भगवान् का सहारा मिलना असम्भव है। भगवान् के यहाँ तो कुछ भी देर नहीं है। वे तो

हर समय पुत्र वत्सला माँ की तरह गोद पसारे बैठे हैं। किन्तु हम तो उधर ताकते ही नहीं, फिर हमें उनका संरक्षण प्राप्त कैसे हो?'

यह बातें सुनकर रामेश्वर रोने लगा। तब आपने उसे ढाँढस बँधाया।

उस समय आज-कल की भाँति गाँव-गाँव में कीर्तन करने वाले नहीं थे। तब तो केवल निजामपुर के लोग ही कीर्तन कर सकते थे। सो गवाँ तो निजामपुर के समीप था। वहाँ से तो वे लोग दौड़-भागकर अपने घर का भी कामकाज देख सकते थे। अब अनूप शहर में रहने से उन्हें बड़ी अड़चन पड़ गयी। बेचारे गरीब किसान, वर्षा का समय और खेती का काम। अब दूसरे लोग कैसे अनूप शहर जाय? जो अनूपशहर में फँस गए सो फँस गए। ये लोग तो तभी घर जा सकते थे जब दूसरी पार्टी इनके स्थान पर आवे। अतः महाराजजी ने मुझे दूसरे लोगों को लाने के लिए निजामपुर भेजा। इस समय अनूपशहर से गंगाजी के इस पार आना तो साक्षात् मृत्यु का ही सामना करना था। गंगाजी में पूरी बाढ़ आ रही थी और सारे खादर प्रान्त में जल ही जल भरा था। अतः मैं राजघाट गया और वहाँ से रेल द्वारा बबराला आकर फिर कहीं सूखे रास्ते में और कहीं पानी में चलकर गवाँ पहुँचा। मुझे इतना पानी तो जीवन में कभी नहीं खूंदना पड़ा। गवाँ से सवेरे निजामपुर पहुँचा। वहाँ बहुत कुछ कह-सुनकर कुछ आदमियों को तैयार किया और उन्हें धनारी स्टेशन से रेल में बिठाकर राजघाट होते हुए अनूपशहर ले गया। उनके पहुँचने पर पहले लोगों को छुट्टी मिल सकी।

अब कीर्तन करते-करते हम लोगों का नाक में दम आ गया। कई बार हमारे मनों में बड़ा दुःख हुआ कि महाराजजी ने किस आफत में फँसा दिये। इधर हर पन्द्रहवें दिन नये आदमी लेने के लिये निजामपुर जाना पड़ता और रईसों के नौकरों की बदमाशियों को भी सहना पड़ता था। इस पर भी श्रीमहाराजजी का रूँठना कि मैं अभी प्राण परित्याग करता हूँ। भाई! हम लोगों के तो प्राण संकट में पड़ गये। कभी-कभी तो कीर्तन में इतना भारी रुदन होता कि हाहाकार मच जाता। बेचारे लालाजी और बाबूजी ने भी अपने तन, मन, धन की बाजी लगा रखी थी।
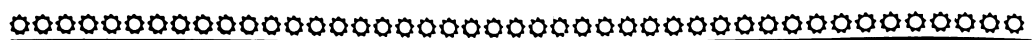
किन्तु अभी तक रामेश्वर ज्यों का त्यों था। उनका दौरा पड़ना तो बन्द हो गया था। किन्तु उसे कुछ नियम बताये हुए थे। उनमें प्रधान नियम यह था कि किसी से कड़वा न बोले, क्रोध न करे और किसी भी नौकर को न तो गाली दे और न पीटे। वह बार-बार इसी नियम में फेल हो जाता था। और जहाँ उसे क्रोध आया कि दौरा पड़ जाता।

इस प्रकार की विषम परिस्थिति में हम लोगों के छक्के छूट गये। मैं तो इतना घबराया कि भागने तक को तैयार हो गया। तब महाराजजी ने एक दिन मुझे एकान्त में बुलाकर बहुत समझाया और डाँटकर कहा, 'देखो, जो संकल्प एकबार कर लिया है उसे पूरा करो या उसी में प्राण दे दो। यदि तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे तो मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि अनशन करके प्राण त्याग दूँगा।' यह सुनकर मैं बहुत रोया। तब आपने समझाया, 'भाई! ईश्वर से निष्काम होकर मोक्ष पा लेना तो सहज है, किन्तु किसी सकाम संकल्प की पूर्ति होना बहुत कठिन है। उसमें भी मिलकर कुछ करना और भी कठिन है, क्योंकि सब लोग जैसा चाहिए वैसा मिल नहीं पाते, और जब तक सबका संकल्प एक न हो तब तक किसी भी काम की पूर्ति होनी असम्भव है। यदि हममें से किसी एक का भी संकल्प तीव्र हो तो शेष सबका अपने-आप ही मिल जायगा। सो मुझे तो एक तुम पर ही भरोसा है। यदि तुम चाहो तो रामेश्वर अच्छा हो सकता है। किन्तु इसके लिये सचमुच प्राणों की बाजी लगानी होगी। यह काम इतना सहज नहीं है, जितना हम समझ रहे हैं।'

श्रीमहाराजजी की इन गूढ़ और रहस्यमयी बातों को सुनकर मैं घबरा गया और रोते-रोते विकल हो गया। बस, उसी समय मेरे शरीर में किसी भूत का आवेश हुआ, यह भूत प्रायः प्रत्येक संकट के समय मेरे शरीर में प्रवेश करता था। उस समय मुझे प्रतीत होने लगता था कि संसार में 'असम्भव' शब्द ही असम्भव है। और कुछ भी असम्भव नहीं है। बस, मैंने उसी समय महाराजजी को प्रणाम करके यह प्रतिज्ञा की कि यदि अमुक समय तक रामेश्वर अच्छा न हुआ तो मैं अवश्य अपने प्राण को त्याग दूँगा।
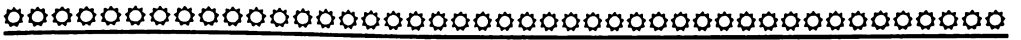
उस समय मुझे बहुत ही जोश आ गया था। श्रीमहाराजजी ने जैसे-तैसे मुझे संभाला और कहा कि यह बात किसी को प्रकट मत करना। सो मैंने आज ही लेखनी द्वारा यह प्रकट की है। पाठक, मुझे क्षमा करें। यदि इस समय भी इस बात को छिपा लेता तो सत्य विचलित हो जाता। अस्तु। इस घटना से मुझे विश्वास हो गया कि महाराजजी मुझे निमित्त बनाकर अब इस कार्य को पूरा करना चाहते हैं।

उधर आपने और सबको भी सँभालना आरम्भ कर दिया। एक-एक करके सारे ही सत्संगी और कीर्तन वालों को ठीक किया। किसी को प्रेम से, किसी को युक्ति से और किसी को डरा-धमकाकर। इस प्रकार जिसे जैसा पात्र समझा उस पर उसी शस्त्र का प्रयोग किया। फिर आपने लालाजी के सब घरवालों को बुलाया और उनसे कहा, लालाजी! अब हम लोग सभी घबरा गये हैं। इसलिये आप लोगों को भी सावधान हो जाना चाहिए। नहीं तो अब रामेश्वर से पहले ही न जाने कितने मृतकों की क्रिया आपको करनी पड़ेगी।' यह सुनकर लालाजी घबरा गये और बोले, महाराज! मैंने आपको तथा आपके सब साथियों को बड़ा ही कष्ट दिया। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। आपने मेरे कारण बड़ा ही कष्ट उठाया है। इस पर भी यदि रामेश्वर अच्छा नहीं हुआ तो इसमें मेरा क्या दोष है? सम्भव है, संसार में उसका भोग इतना ही हो। अब आपको अधिक कष्ट देने की मेरी इच्छा नहीं है।' यह कहकर लालाजी रो पड़े और बोले, महाराजजी! मेरे हृदय में तो अब भी पूरा विश्वास है कि यदि आप चाहें तो एक रामेश्वर क्या ऐसे लाखों मुर्दों में जान पड़ सकती है। यदि ऐसा सामर्थ्य होते हुए भी आप किसी कारण से घबरा गये हैं तो वह रामेश्वर के और मेरे भाग्य का ही दोष है।'

लालाजी की उस समय की प्रेम, करुणा, मर्यादा और श्रद्धा-विश्वास की बातें सुनकर महाराजजी भीतर से बड़े ही प्रसन्न हुए। किन्तु ऊपर से बोले, 'अच्छा, लालाजी! अब के एकबार और भी हम लोग अपने प्राणों की बाजी लगाकर प्रयत्न करें। उसे पूरा करना तो भगवान् के आधीन है। देखिये अब की

बार जैसा मैं कहूँ वैसा ही आप करें। रामेश्वर का मोह बिलकुल छोड़ दें।' लालाजी ने कहा, 'जैसी आज्ञा।' तब महाराजजी बोले, 'कल से सारे नौकर उसके पास से हटा दिये जायँ तथा घरवाला भी कोई उसके पास न जाय और न कोई उसकी खबर ले। वह चाहे कितना ही रोवे-पीटे आप उसकी कोई परवाह न करें।' लालाजी ने कहा, 'बहुत अच्छा।'

इससे कई दिन पहले स्थान परिवर्तन कर दिया गया था। अब लाला बाबू की कोठी छोड़कर सेठ गौरीशंकर की धर्मशाला में आ गये थे। उसी के पीछे सिकन्दराबाद वालों की धर्मशाला में रामेश्वर को रक्खा गया था। तब श्रीमहाराजजी गंगातट पर एक एकान्त कुटी के चौबारे में रहते थे।

श्रीमहाराजजी ने जब यह बात रामेश्वर से जाकर कही तो वह उसी समय रो पड़ा और इतना रोया कि रोते-रोते मूर्च्छित हो गया। जब सावधान हुआ तो आपने उसे बहुत समझाया कि तेरी सेवा तो हम लोग अच्छी तरह करेंगे। किन्तु वह सब नौकरों को एक साथ न हटाकर धीरे-धीरे हटाया जाय। अतः एक-एक करके तीन-चार दिन में सब नौकर और घरवालों को बन्द कर दिया। अब रामेश्वर की सारी सेवा का भार मुझको ही सौंपा गया! बारी-बारी से सब और लोग भी मेरी सहायता करते थे। मैं स्वयं उठाकर उसे शौच स्नानादि कराता किन्तु धीरे-धीरे हम उसे स्वयं कुछ काम करने के लिये विवश करने लगे। वह भी लाचार होकर कुछ काम करने लगा। अब हुकूमत करने के लिये नौकर तो थे नहीं, फिर बेचारा करता भी क्या? हम लोगों में तो वह कुछ श्रद्धा और श्रेष्ठता का भाव रखता था, इसलिये कुछ कहने-सुनने का साहस नहीं कर सकता था।

अब हम उसे कीर्तन में ले जाकर आराम-कुर्सी पर बिठाने लगे। पलंग पर भी पहले वह चारों ओर आठ-दस तकिये लगाता था, सो अब केवल दो तकिये सिरहाने लगाने को रह गये। इस प्रकार धीरे-धीरे हम उसकी रईसी की बू निकालने लगे। महाराजजी भी बहुत से कथा प्रसंग सुनाकर उसे हिम्मत बँधाते थे। धर्मशाला का फाटक हर समय बन्द रहता था। उसके घर का कोई

आदमी उसके पास नहीं आ सकता था। इस तरह निरन्तर हम लोगों के बीच में रहकर वह हममें ही मिल-जुल गया।

हमारे समाज में सबसे बड़े और योग्य बाबू हीरालाल थे। सचमुच उन्हीं के लिये श्रीमहाराजजी पंजाब प्रान्त में जन्म लेकर इस देश में आये और यहाँ अनेकों जीवों को भगवन्नाम प्रदान करके संसार के उद्धार का बीज वपन किया। बाबूजी के विषय में श्रीमहाराजजी ने मुझसे स्वयं कहा था कि अच्युत मुनिजी मुझसे कहते थे कि जिस अवस्था की प्राप्ति मुझे भी नहीं हुई वह हीरा को प्राप्त है। इससे विदित होता है कि इन्हें निर्विकल्प समाधि प्राप्त थी। श्रीमहाराजजी ने बताया कि हीरालाल योग, ज्ञान, भक्ति और कर्म चारों में ही पूर्ण है। इस जन्म में अत्यन्त नम्रता और दीनता के कारण इनके गुणों का प्राकट्य नहीं हुआ है। अब इसके बाद ये स्वेच्छा से फिर जन्म ग्रहण करेंगे। उस समय ये बड़ी उदारता से अनेकों जीवों का इस संसार-समुद्र से उद्धार करेंगे। अस्तु। एक दिन आपने रामेश्वर के पास बैठे हुए बाबू हीरालाल से कहा, 'बाबूजी! रामेश्वर को तुम अपना उत्तराधिकारी (दत्तकपुत्र) मान लो।' यह सुनकर वे बड़े संकोच से बोले, 'यह तो मेरा बाप है।' अर्थात् आपका कृपा-पात्र होने से यह तो मुझसे भी श्रेष्ठ है। तब महाराजजी ने जरा गम्भीरता से कहा, 'नहीं, कृपणता क्यों करते हो, तुम्हारे पास जो कुछ आध्यात्मिक सम्पत्ति है, इसे सौंप दो।'

यह सुनकर बाबूजी चुप हो गये। किन्तु उस दिन श्रीमहाराजजी की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने सचमुच ही मन से उसे अपना दत्तक पुत्र मान लिया। पीछे रामेश्वर को स्वप्न या ध्यान की अवस्था में यह बात अनुभव भी हो गयी कि मैं बाबूजी की बहुत बड़ी आध्यात्मिक सम्पत्ति का मालिक हूँ।

कीर्तन होते हुए प्रायः पाँच महीने बीत चुके थे। किन्तु अभी तक रामेश्वर उसी हालत में पड़ा था। प्रायः उन्नीस महीने से उसने पृथ्वी पर पाँव नहीं रखा था। अब सब भक्तजन दुःखी हो गये और सचमुच ही दीन होकर आर्तभाव से भगवान् को पुकारने लगे। एक दिन प्रायः सौ आदमी कीर्तन कर रहे थे।
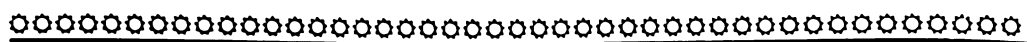
वे सभी हाहाकार करके रुदन करने लगे। उनके करुणक्रन्दन से सारे शहर में हलचल मच गयी। लोगों ने समझा जो लड़का बीमार था वह मर गया। सैकड़ों स्त्री-पुरुष धर्मशाला के फाटक-पर इकट्ठे हो गये। किन्तु फाटक तो बन्द था। बाहर किसी ने समझा दिये, इससे सब लौट गये।

अजी! कुछ भी हो। उस समय उस संकल्प को लेकर कीर्तन तो ऐसा बढ़िया होता था कि सभी एकाग्रचित्त हो जाते थे। सभी के मन में बड़ा भारी आतंक बैठा हुआ था कि यदि रामेश्वर अच्छा न हुआ तो महाराजजी अवश्य प्राण त्याग देंगे और उनके पीछे उनके कुछ अन्तरंग भक्त भी अवश्य उनका अनुसरण करेंगे। कीर्तन में अनूपशहर के भी श्रीरामशंकर मेहता, बलदेव शंकर, भागवती, सागर और रामप्रसाद आदि कुछ सम्मिलित होते थे। तथा सभी अन्तरंग भक्तों का विश्वास था कि रामेश्वर अवश्य अच्छा हो जायगा। एक दिन सब लोगों ने मिलकर श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की, 'महाराजजी! अब तो प्रायः पाँच महीने बीत चुके हैं। सभी लोग तंग आ गये हैं। अतः अब तो कृपा करके इस लीला को संवरण कीजिये। यह प्रार्थना सुनकर आप मुस्करा गये और उत्तर कुछ नहीं दिया। तब सबनें समझा कि अब यह जल्दी अच्छा हो जायगा।

एक दिन दोपहर के समय कीर्तन हो रहा था। उस समय सभी बड़े भावावेश में थे। निजामपुर के निकट भक्त खूबीराम को आज बड़ा आवेश आया हुआ था। उसे शरीर का होश नहीं था और उसका चेहरा लाल हो रहा था। श्रीमहाराजजी उस समय घंटा बजाते हुए बीच में चक्र की तरह घूम रहे थे और हम लोग मण्डलाकार यथा स्थान कीर्तन करते हुए आनन्द में विभोर थे। उसी समय पागलभक्त खूबीराम को न जाने क्या सूझ पड़ी। वह मंडल में नृत्य करता-करता एकदम झपटकर रामेश्वर के पास पहुँचा। और वहाँ जाकर उससे बोला, 'हमारे भगवान् तो कीर्तन नृत्य कर रहे हैं और तू आराम कुर्सी पर पड़ा है। तू बड़ा भारी रईस का बच्चा है। इसी तरह उससे और भी न जाने क्या-क्या भला-बुरा कहा और उसका हाथ पकड़कर उसे मुर्दे की तरह कीर्तन में घसीट लाया उसने बहुतेरा हाहाकार किया, किन्तु वहाँ उसकी सुनता कौन?

जब कीर्तन करते हुए खूबीराम उधर झपटा था तो मेरा ध्यान भी उस ओर चला गया था। मैंने वह सब काण्ड अच्छी तरह देखा। किन्तु उस समय कीर्तन का दिव्य रंग और खूबीराम की विचित्र मस्ती देखकर इसमें कुछ भगवान की ही इच्छा है' ऐसा समझकर चुप रह गया। बस, खूबीराम ने रामेश्वर को कीर्तन के बीच में लाकर दो चपत लगाये और खड़ा कर दिया। खड़े होने पर उसके पाँव लड़खड़ाये और ऐसा प्रतीत हुआ कि वह अभी गिर जायगा। उस समय मेरे मन में तो ऐसा संकल्प हुआ कि भगवान् इसकी निर्बलता मुझे दे दें और मेरा बल इसे प्रदान करें। इतने ही में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि एक बिजली-सी श्रीमहाराजजी की ओर से आकर रामेश्वर में समा गयी और वह उसी समय कठपुतली की तरह उर्ध्वबाहु होकर नृत्य करने लगा। वह एकदम उन्मत्त हो गया और उछल-उछलकर नाचने लगा। कभी वह हिरन-सी चौकड़ी भरता था, कभी गेंद की तरह ऊपर को उछलता था तथा उसका शरीर इतना हल्का जान पड़ता था मानो एक कागज का पुतला हवा में उड़ रहा हो। उसके नेत्र खुले के खुले रह गये और पुतलियाँ स्थिर हो गयीं।

रामेश्वर की ऐसी विलक्षण अवस्था को देखकर भक्तों के आनन्द का पार न रहा। वे पाँच महीने से जिसके लिए प्राणों की बाजी लगाकर निरन्तर परिश्रम कर रहे थे वह रामेश्वर आज शारीरिक रोग से ही नहीं, भवरोग से भी मुक्त हो गया। अब तो वह अमूल्य भगवत्प्रेम से भरकर सबके सामने सिंह गर्जन से कीर्तन करता अद्भुत ताण्डव नृत्य करने लगा। भगवत्कृपा का यह विचित्र चमत्कार देखकर सभी के हृदय करुणा और अद्भुत रस से मुग्ध हो गये। कीर्तन का रंग भी सौ गुना बढ़ गया। भक्तजन एकदम पागल हो गये। हर्षातिरेक से सभी के नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की वर्षा होने लगी। सबके शरीर पुलकायमान हो गये। उस समय कोई कांप रहा था, तो कोई किसी को आलिंगन कर रहा था, तो कोई किसी के चरणों में लोट रहा था। भाई! आज तो अद्भुत रंग जमा।

किन्तु हमारे कौतुकी सरकार तो उसी प्रकार अपनी शान्त और गम्भीर मुद्रा से ठीक समय पर कीर्तन करके अपनी कुटिया पर चले गये। उन्होंने तो

रामेश्वर की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥'

'सुख हरषहिं जड़ दुख विलखाहीं। दुहुँ सम धीर धरहिं मन माहीं॥'

अखण्ड कीर्तन तो हो ही रहा था। पार्टी भी बदल गयी और महाराजजी के साथ कीर्तन करने वाले सब भक्त यथा-स्थान चले गये। किन्तु रामेश्वर का आवेश और भी बढ़ गया। वह आज सचमुच हनुमानजी की तरह उछल-उछलकर नृत्य कर रहा था और भगवत्कृपा की असीम शक्ति का परिचय दे रहा था। सचमुच आज 'पंगुलंङ्घयते गिरिम्' इस वाक्य की सार्थकता सिद्ध हो गयी। आज उसकी ठीक वही अवस्था थी जैसा कि श्रीमद्‌भागवत में कहा है—

**'वाग्गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं हसत्यभीक्ष्णं रुदति क्वचिच्च।
विलज्ज्य उद्‌गायति नृत्यते च मद्‌भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥'**❂

अथवा—

**'एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागी द्रुतिचित्त उच्चैः।
हंसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥'**✲

वह नवानुरागिणी गोपबाला की भाँति, जिसे आज ही अपने प्राण प्रियतम के प्रथम मिलने से दिव्योन्माद हो गया है, अपने शरीर की सुधबुध भूल गया था। लोकलाज और कुलकान उससे विदा हो गयी थी और वह अपने प्राण प्रियतम का नाम लेकर प्रिय मिलन का सुख अनुभव कर रहा था। जो उन्नीस महीने

❂ जिसकी वाणी गद्‌गद है, चित्तद्रवीभूत हो गया है, जो बार-बार हँसता और कभी रोने लगता है तथा जो लज्जा त्यागकर उच्च स्वर से गाने और नाचने लगता है, ऐसा मेरी भक्ति से युक्त पुरुष संसार को पवित्र कर देता है।

✲ ऐसा भगवत्प्रेम में परिनिष्ठत पुरुष अपने प्यारे के नाम-कीर्तन से अनुराग का उन्मेष हो जाने के कारण द्रवित चित्त होकर कभी जोर-जोर से हँसने लगता है, कभी रोता है, कभी पुकारता है, कभी गाने लगता है और कभी उन्मादकी-सी अवस्था में लोक दृष्टि को छोड़कर नाचने लगता है।

मृत्यु शय्या पर पड़ा मौत की घड़ियाँ गिन रहा था और जिसके लिये घरवाले तन, मन, धन सब कुछ न्यौछावन करके भी कुछ नहीं कर सके, वही रामेश्वर आज ताण्डव नृत्य करके हमारे कौतुकी सरकार की विचित्र शक्ति का परिचय दे रहा था। अथवा यों कहो कि श्रीहरिनाम की यशः पताका को संसार में फहरा रहा था। आज सचमुच उसमें असीम बल था, क्योंकि वास्तव में श्रीभगवन्नाम से बढ़कर संसार में और कोई बल नहीं है और उसने उसी महाबल को आज अपना लिया था–

'प्रबलं बलवद्भ्योऽपि दुर्बलानां परं बलम्।
सम्बलं भवपान्थानां हरेर्नामैव केवलम्॥'

जब उसे निरन्तर नृत्य करते-करते तीन घन्टे हो गये तो हम घबरा गए। मैंने जाकर श्रीमहाराजजी से कहा तो उन्होंने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, सँभालने वाले तो भगवान् हैं, बाकी तुम उसकी देख-रेख रखना।'

अब उसको दो-दो तीन-तीन आदमी पकड़ने लगे। तब भी रुकता नहीं था। अन्त में हिरन की चौकड़ी भरता बाहर को भागा और बालक की तरह हँसता फाटक खोलकर घाट की पचपन सीढ़ियों पर बड़ी तेजी से फुटबाल की तरह कूदता-फाँदता एक सेंकड में ही नीचे उतर गया। मैं तो उसके साथ उतर भी नहीं सका। नीचे जाकर गंगा-किनारे वह समाधि लगाकर सिद्धासन से बैठ गया। उसके नीचे ही गंगाजी की बहुत गहरी धारा बह रही थी। अतः डर यह हुआ कि कहीं यह पागल गंगाजी में न कूद पड़े। इस डर से ज्यों ही मैंने उसे पकड़ा कि वह तेजी से भागा और एक श्वास में ही उन पचपन सीढ़ियों को पार करके ऊपर जा पहुँचा। मैं जब तक ऊपर चढ़ा कि वह उसी तरह तेजी से फिर नीचे उतर गया। अब मेरी तो आफत आ गयी। आखिर मैंने झपटकर उसे एक बार पकड़ लिया और बलात्कार से धर्मशाला में ले आया। वह मुझसे प्रेम करता था और कुछ डरता भी था और किसी की तो उसे कोई परवाह नहीं थी। धर्मशाला में आकर वह फिर कीर्तन में नृत्य करने लगा। कभी-कभी तो उसका नृत्य और कीर्तन बड़ा ही मधुर होता था।

अब, सायंकाल हुआ। श्रीमहाराजजी की परिक्रमा करने लगा। बस, फिर वही नृत्य। इस प्रकार रात के बारह बज गए। दोपहर के बारह बजे उसका नृत्य आरम्भ हुआ था और रात के बारह बज गए, किन्तु न तो उसने विश्राम किया और न मुझे विश्राम करने दिया। आखिर, मैं तो घबरा गया और महाराजजी के पास जाकर रोया और कहा कि उसकी देखरेख रखना मेरे वश की बात तो नहीं है, आप ही उसे संभालिये। उसने पचास फेरे तो घाट की पचपन सीढ़ियाँ उतरकर गंगाजी के किये हैं।

तब महाराजजी बोले, 'हिम्मत मत हारो, तुम्हारे सिवा और कोई उसे नहीं सँभाल सकता। अब वह ठीक हो जायगा। तुम उसे बलात्कार से पकड़कर चारपाई पर सुला दो।' मैंने आकर उसे पकड़ा और जबरदस्ती चारपाई पर लिटा दिया। किन्तु वह फिर उठकर भाग गया। वह कभी बालक की तरह हँसता था, कभी रोता था, कभी मचलकर पृथ्वी पर लोट जाता था तथा कभी मधुर नृत्य करता तो कभी ताण्डव नृत्य करने लगता था। कभी सिंह गर्जन से 'हरि' बोल और कभी किसी अन्य ध्वनि का कीर्तन करने लगता था। कभी सिद्धासन से बैठकर समाधि लगाता तो उसका श्वास एकदम बन्द हो जाता था। कभी उसमें अष्ट सात्त्विक विकारों में से एक या तीन एक साथ ही प्रकट हो जाते थे। कभी दिव्योन्माद में वह विचित्र प्रलाप करने लगता था। कभी उसमें किसी भक्त का आवेश हो जाता और वह उसके भावानुसार मधुर, वात्सल्य, सख्य या किसी अन्य भाव से भावित होकर वैसी ही चेष्टाएँ करने लगता था। उस समय उसमें अन्तर्यामिता एवं सर्वज्ञता आदि दिव्य गुणों का भी प्राकट्य हो जाता था। उसकी ऐसी विलक्षण अवस्था देखकर सेठ गौरीशंकरजी, पंडित रामशंकर मेहता और बौहरे घासीरामजी आदि उच्च-कोटि के साधक और भक्तजन भी भगवान् की विलक्षण करुणा का अनुभव करके मुग्ध हो गए।

आखिर, रात के दो बजे मैंने उसे बलात्कार से पकड़ कर चारपाई पर लिटा लिया और माँ जैसे बच्चे को चिपटा लेती है उसी प्रकार उसे पकड़कर मैं भी लेट गया। परन्तु अब भी भय था कि वह निकलकर भाग न जाय। कभी-कभी वह जोर करता भी था। किन्तु फिर उसे निद्रा आ गयी और मैं भी
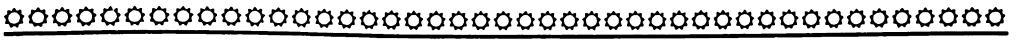
सो गया। फिर मैं तो चार बजे घंटी बजने पर उठ बैठा, किन्तु वह सोता ही रहा। जहाँ तक मुझे स्मरण है वह आठ घंटे तक गाढ़ निद्रा में सोता रहा। पीछे उठने पर उसको यह बात भूल ही गयी कि मैं कभी बीमार रहा था। साथ ही उसे इस बात का भी कोई स्मरण नहीं रहा कि मैं चौदह घंटे तक नृत्य-कीर्तनादि करता रहा था। वह एक स्वस्थ बालक की तरह चारपाई से उठा और शौच चला गया। उसके शरीर में थकान का लेश भी नहीं था। बालक की तरह दौड़कर ही चलता भी था। हाँ, टांगे अभी ज्यों की त्यों पतली ही थी। परन्तु उनमें बल और स्फूर्ति की कमी नहीं थी।

ऊपर लिखा जा चुका है कि बड़े बड़े डाक्टरों ने कह दिया था कि प्रथम तो इसका अच्छा होना ही कठिन है और अच्छा हो भी गया तो इसकी टाँगें तो काम नहीं देंगी, क्योंकि उनमें रक्त संचार होना बन्द हो गया है। किन्तु आज वे ही टाँगें लोहे की शलाका-जैसी हो गयी हैं। यह है भगवत्कृपा तथा महत्कृपा का अचिन्त्य प्रभाव। यह हमको अपनी सीमित मानव-दृष्टि से एक आश्चर्य-सा प्रतीत होता है, परन्तु श्रीभगवान् की अचिन्त्य शक्ति के सामने इसमें क्या आश्चर्य है? वह तो किसी भी काम को करने, न करने अथवा अन्यथा करने में सर्वथा समर्थ हैं। भला जिनके संकल्पमात्र से एकक्षण में ही अनन्त ब्रह्माण्डों के उत्पत्ति, स्थिति और संहार हो जाते हैं, उनकी कृपा से एक रामेश्वर में शक्ति संचार होना कौन बड़ी बात है?

'यस्मिन्नयस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने ,
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिं चेतसि यत्स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्ययं ।
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते ॥'❁

❁ **जिनमें चित्त लगाने वाला पुरुष नरक में नहीं जाता, जिनके चिन्तन में स्वर्ग भी विघ्नरूप है, जिनमें मन और बुद्धि को लगाने वाले की दृष्टि में ब्रह्मलोक भी अतितुच्छ है, जो चित्त में स्थित होने पर निर्मल चित्त पुरुषों को अविनाशिनी मुक्ति प्रदान करते हैं, उन्हीं श्रीअच्युत का कीर्तन करने पर यदि पाप नष्ट हो जायँ तो इसमें आश्चर्य क्या है?**

'भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम्॥'*

अब रामेश्वर पूर्ण स्वस्थ की तरह स्नानादि करके श्रीमहाराजजी के पास गया और श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम करके विह्वल हो गया। तब श्रीमहाराजजी ने उसे उठाकर समझाया, 'भाई! भगवान् ने तुझे यह नया जन्म दिया है। अब तू भगवान् की करुणा को भूलना मत। देख, सावधान रहना, यह भगवान् की माया बड़ी ही प्रबल है।

'शिव विरञ्चि को मोहई, को है वपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान्॥'

इसके पश्चात् आपस में विचार करके श्रीमहाराजजी ने संकीर्तन बन्द कर दिया। सब लोग अपने-अपने घरों को चले गये तथा महराजजी ने लाला कुन्दनलाल को भी गवाँ जाने की आज्ञा दे दी। उन्होंने आप से भी गवाँ पधारने के लिये प्रार्थना की। किन्तु आपने कहा कि अब मेरी इच्छा कुछ दिन एकान्त वास करने की है। इसलिए मैं होशियारपुर जाऊँगा। यह सुनकर रामेश्वर बहुत रोया। तब आपने उसे बहुत कुछ समझाया। किन्तु उसने मेरी ओर संकेत करके कहा कि या तो आप गवाँ चलें, या इन्हें मेरे साथ भेज दें, नहीं तो मैं भी कहीं अन्यत्र अकेला ही चला जाऊँगा। तब आपने मेरी इच्छा न होने पर भी मुझे गवाँ जाने की आज्ञा दी और कहा कि इसे व्यायाम और आसन सिखाना तथा कुछ भगवत्कथा, कीर्तन, सत्संग और स्वाध्याय भी करते रहना, जिससे इसका जीवन ठीक साँचे में ढल जाय इस समय इसका चित्त पिघले हुए काँच के समान है। उसमें चाहे जैसा रंग भरा जा सकता है। इसलिये युक्ताहार-विहार पूर्वक अपना सारा प्रोग्राम बड़ी सावधानी से निर्वाह करना।

---

* 'राम राम' इस प्रकार की गर्जना करना संसार के बीज (अज्ञान) को भून देने वाला है, सुख-सम्पत्ति को प्राप्त कराने वाला है और यमदूतों को भयभीत कर देने वाला है।

मैंने श्रीमहाराजजी की आज्ञा शिरोधार्य की। तब रामेश्वर भी गवाँ जाने को तैयार हो गया। बस, हम सब गवाँ चले गये और श्रीमहाराजजी ने होशियारपुर प्रस्थान किया।

प्रेम का चुम्बक

श्रीमहाराजजी से अलग होने पर रामेश्वर मछली की तरह तड़पने लगा। उसको बड़ा भारी विरह हुआ। उसकी ऐसी दशा देखकर मैं घबरा जाता था कि न जाने किस समय यह क्या उपद्रव कर बैठे। उस समय उसमें माधुर्य भी इतना था कि मेरा चित्त भी मुग्ध हो गया – मेरे शुष्क हृदय में भी प्रेम का संचार हो गया। मैंने तो गृहस्थाश्रम में अपने कुटुम्ब के साथ भी कभी इतना प्रेम नहीं किया। मेरा स्वभाव तो बचपन से ही शुष्क और नीरस था। किन्तु उस समय रामेश्वर के साथ मेरा इतना प्रगाढ़ प्रेम हो गया कि उसके बिना मुझे एकक्षण भी नहीं सुहाता था। किन्तु फिर भी उसका मेरे प्रति जितना प्रेम था उसका तो मेरे में चतुर्थांश भी नहीं था। भाई! वह तो उस समय पागल हो रहा था। हमारी सोकर उठने के समय से रात्रि को शयन करने तक सारी क्रियायें साथ-साथ ही होती थीं।

हम लोग मन्दिर वाले मकान में एकान्त में रहते थे। बड़े आनन्द से हमारा काल व्यतीत होता था। वह मेरे साथ मेरी ही तरह सारी क्रियायें करने लगा। आसन, व्यायाम और दो तीन मील टहलना भी आरम्भ कर दिया। हमारा भोजन भी साथ ही होता था। रामेश्वर जिद्दी बहुत था। हम भोजन करने बैठे हैं और कोई बढ़िया चीज है तो उसे मेरे सामने अन्धाधुन्ध परसवा देता और

यदि न खाओ तो स्वयं भोजन करना छोड़ देता। यदि कहीं से कोई बढ़िया मिठाई आती तो मेरे सामने बहुत अधिक रख देता और फिर जिद्द यह कि सब खाओ। मेरा स्वभाव मीठा बहुत कम खाने का है। मैं न खाता तो इसी बात पर अनशन कर देता। बड़ी मुश्किल से मानता। इस तरह का प्रेम-कलह उसका सदा ही चलता रहता था।

जिस समय हम कीर्तन करते उस समय तो नित्य ही रामेश्वर की विलक्षण अवस्था हो जाती थी। उसे प्रायः आवेश हो जाता था। उसका हृदय सचमुच गले हुए काँच के समान था। उसमें जो भी संकल्प आता तद्रूप ही वह हो जाता थ। भोजन के पश्चात् प्रायः दो घण्टे मैं कुछ कथा भी कहता था। उसमें यदि ध्रुव का व्याख्यान आता तो रामेश्वर को तत्काल ध्रुव का आवेश हो जाता। उस समय वह सचमुच ध्रुव की सी ही बातें और चेष्टायें करने लगता। पूछने पर अपने माता-पिता के नाम भी सुनीति और उत्तानपाद ही बताता और उसी प्रकार प्राण रोककर समाधिस्थ हो जाता। फिर दो तीन घण्टे तक उसी अवस्था में स्थित रहता और पीछे पूछने पर बड़ी बिलक्षण बातें बताता। इसी प्रकार कभी प्रह्लाद का आख्यान होता तो इसे प्रह्लाद का आवेश हो जाता और उसी प्रकार की सब चेष्टायें करने लगता। प्रह्लाद की ही तरह कभी असुर बालकों को भगवद्भक्ति का उपदेश करता, कभी माता कयाधू को सम्बोधन करके विलक्षण बात-चीत करता और कभी पिता हिरण्यकशिपु को भगवद्भक्ति की महिमा सुनाने लगता। कभी श्रीभगवान् का चिन्तन करते हुए आनन्द में मग्न हो जाता और कभी नामकीर्तन करते हुए अष्टसात्त्विक भावों का उद्रेक होने पर प्रेमावेश से मूर्च्छित हो जाता।

क्या कहें, उस समय तो उसके द्वारा श्रीमहाराजजी की अद्भुत कृपा का प्राकट्य देखकर मैं आश्चर्य-चकित हो जाता था। वह दृश्य आज भी मेरे हृदय पर अंकित है, किन्तु कहने या लिखने में नहीं आता। श्रीमहाराजजी का विरह उसको निरन्तर ही तपाता रहता था। कभी-कभी तो सोते-सोते उठकर एकदम रोने लगता और अनेक प्रकार से धीरज बँधाने पर भी मूर्च्छित हो जाता।

फिर कई घण्टे उसी अवस्था में पड़ा रहता और अनेकों उपाय करने पर सावधान होता। कभी भोजन करते-करते उसकी यही अवस्था हो जाती अथवा ध्यानावस्थित होकर बैठ जाता। फिर जब समाधि खुलती तो ऐसी चेष्टाएँ करता मानों श्रीमहाराजजी इसके सामने ही बैठे हैं और यह उन्हें भोजन करा रहा है। यह एक-एक ग्रास लेकर उनके मुँह में देने की-सी चेष्टा करता। तब सारा भोजन तो नीचे गिरता जाता, किन्तु यह खिल-खिलाकर हँसता रहता। जब होश आता तो लज्जित-सा हो जाता। इसी तरह कभी चलते-फिरते ही हठात् श्रीमहाराजजी का आवेश हो जाता। उस समय यह ठीक उन्हीं की तरह चलने और बोलने लगता, उन्हीं की तरह बैठ जाता और उन्हीं की तरह मेरा नाम लेकर 'ललिताप्रसाद! अमुक बात ऐसी है, अमुक वैसी है,' इत्यादि बहुत-सी आवश्यक बातें बताने लगता। मुझे उस समय बिल्कुल यही अनुभव होता था कि साक्षात् महाराजजी ही इस प्रकार रामेश्वर के द्वारा मुझे रामेश्वर के और मेरे सम्बन्ध की बातें बता रहे हैं।

रामेश्वर को प्राय: चौबीसों घंटे विरहोन्माद बना रहता था। इसीलिये मैं उसके चित्त को बहलाये रहता था। जो रामेश्वर पहले महाचंचल उद्धत, तर्कशील और आर्यसमाजी विचारों का बहिर्मुख बालक था, आज वही श्रीसन्त सद्‌गुरु की कृपा दृष्टि पड़ने से अत्यन्त शान्त, गम्भीर, विनम्र, विश्वासी और भगवद्‌भक्त बन गया है। उसका जीवन एकदम पलट गया है। उसका हृदय एकदम विषय शून्य था, इसलिये वह जो भी बात सुनता या सोचता था उसका मूर्तिमान भाव जाग्रत होने से तद्रूप हो जाता था। उसकी तन्मयता इतनी बढ़ी कि वह एकदम भाव में पागल रहने लगा।

मेरे प्रति भी उसका इतना प्रेम बढ़ा कि मेरे शुष्क हृदय को वह असह्य हो गया। मेरे हृदय की तो स्वाभाविक गठन ऐसी थी कि मुझे किसी भी व्यक्ति के प्रति विशेष आकर्षण नहीं हुआ। यदि सच पूछो तो प्रेम करना मुझे रामेश्वर ने सिखाया। अथवा यों कहो कि मुझे जितना प्रेम रामेश्वर से हुआ उतना और किसी व्यक्ति से नहीं हुआ।

हमारे श्रीमहाराजजी का यह सहज स्वभाव था कि संसार की प्रवृत्ति उन्हें कभी नहीं सुहाती थी। वे संसार की बातें न तो कभी करते हैं और न सुनते ही हैं। यहाँ तक कि कभी किसी से कुशल प्रश्न करना भी उन्हें अखरता है। उन्हें तो पारमार्थिकी प्रवृत्ति भी अधिक होने पर असह्य हो उठती है। बड़े-बड़े उत्सवों के बाद वे एक बार अवश्य ही उपराम हो जाते हैं। साल में एक बार तो वे एक-दो महीने के लिये अवश्य किसी अपरिचित देश में चले जाते हैं। अब तक शायद एक-दो बार ही वे बहुत दृढ़ संकल्प करके हम लोगों के साथ निरन्तर एक साल रह सके हैं। नहीं तो, जहाँ दो-चार महीने विशेष सत्संगादि हुआ कि भागे। किसी संकल्प में बँधकर एक स्थान पर रहने अथवा उत्सवों में रहने के समय भी वे वास्तव में सबसे पृथक् ही रहते हैं। उनकी रहनी ही ऐसी विलक्षण है कि बड़े-बड़े सत्संगी, संयमी, विरक्त और योगी भी देखकर चकित रह जाते हैं। आप कभी किसी की ओर आँख उठाकर नहीं देखते। हजारों आदमियों में बैठने, कथा-कीर्तन करने, मिट्टी डालने और अनेकों प्रकार के मोटे से मोटे काम करने पर भी आप कभी किसी से परिचय नहीं करते। एक बार राजघाट के सम्मानित सन्त स्वामी शंकरानन्दजी गवाँ में आये और प्राय: आठ-दस दिन रहे। वे नित्य ही आपकी कथा में आते थे और एक दिन तो आपने उन्हें अपना आसन निकालकर भी दिया था। किन्तु जब वे चले गये तो किसी से उनका नाम सुनकर पूछा कि वे कहाँ हैं। हम लोगों ने बताया कि वे तो आठ-दस दिन तक नित्य ही आपकी कथा में आते थे। तब आपने बड़ा आश्चर्य माना, उनका सत्कार न करने का पश्चात्ताप भी किया और कहा, मैंने उन्हें पहचाना नहीं, मैंने तो केवल इतना समझा था कि कोई महात्मा आये हैं, उन्हें आसन दे देना चाहिये।'

एक बार मैं शिवपुरी से आकर गवाँ के बगीचे में दो घंटे तक आपके सामने बैठा रहा। आप स्वाध्याय कर रहे थे, किन्तु मेरी ओर देखा ही नहीं और बोले, 'आप कहाँ से आये हैं?' मुझे हँसी आ गयी। तब आपने आँख उठाकर देखा ओर मुझे पहचाना। बाँध तथा कीर्तन के कारण आपका सम्बन्ध लाखों

मनुष्यों से हुआ है, किन्तु आप तो एक शहर या एक गाँव में केवल दो-चार आदमियों को ही जानते हैं। जान-पहचान या कुशल-प्रश्न करना तो आपके स्वभाव में ही नहीं है। पत्र-व्यवहार भी आप नहीं के बराबर ही करते हैं। कभी-साल दो साल में किसी आदरणीय सन्त या महात्मा को भले ही उसके पत्र के उत्तर में कुछ लिख दें। नहीं तो, किसी पत्र का उत्तर देना बहुत जरूरी समझा तो हम में से ही किसी को आज्ञा कर देते हैं।

अपने इसी स्वभाव के अनुसार इस बार भी आप कम से कम एक साल हम लोगों से अलग रहने का संकल्प करके गये थे। किन्तु इस पागल रामेश्वर के प्रेम ने आपको भी बेचैन कर दिया। प्रेम के राज्य में दूरी नहीं है, धैर्य नहीं है तथा अलग रहना भी नहीं बनता।

'खूंरगे लैली से निकला, फस्त मजनूं की जो ली।
इश्क में तासीर है, पर जज्वा कामिल चाहिये॥'

हृत्तन्त्री तार खटकते ही, अपने प्रेमी के पास पहुँच जाता है। सच्चा प्रेम संसार में दुर्लभ है। हम लोग तो मोह को ही प्रेम का नाम देकर प्रेम जैसे पवित्र पदार्थ को कलंकित करते हैं। मोह तो नीच स्वार्थ है, अतः वह घोर अन्धकार के समान है और प्रेम निर्मल भास्कर है। अतः यह तो किसी विरले भाग्यवान को ही प्राप्त होता है। प्रेम में त्याग ही त्याग है, ग्रहण नहीं है। प्रेम में स्वार्थ की गन्ध नहीं है। जहाँ स्वार्थ का आभास भी आया कि प्रेमदेव विदा हुए। भगवान् स्वयं ही अपने किसी कृपापात्र को प्रेम प्रदान करके उसके ऋणी हो जाते हैं। यह कैसी अनौखी बात है कि दाता ही ऋणी हो जाय। अतः प्रेम-जैसी विलक्षण और दिव्य वस्तु इस संसार में कोई नहीं है।

इसी न्याय से जिस प्रकार इधर रामेश्वर श्रीमहाराजजी की याद में तड़पता था उसी प्रकार महाराजजी को भी रामेश्वर की याद ने बेचैन कर दिया था। अपने चित्त को बहुत सँभालने पर भी आप अधिक नहीं रुक सके और भक्तवत्सल भगवान् भक्त के लिये अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर एक महीने में ही लौट आये।

यहाँ अनूपशहर में आकर आपने किसी आदमी के द्वारा गवाँ में सूचना दे दी। सुनते ही रामेश्वर पागल होकर दौड़ा। बस, श्रीमहाराजजी गवाँ में आ गये और अपना वही पुराना प्रोग्राम आरम्भ कर दिया। प्रातः काल बरोरा में कथा स्वाध्याय तथा वन भ्रमण और सायंकाल को गवाँ में आना! रामेश्वर सारे दिन आपकी प्रतीक्षा में बैठा रोता रहता। जब सायंकाल में आते तब आपको भोजन कराकर स्वयं भोजन करता। कभी-कभी तो रोते-रोते मूर्च्छित हो जाता। तब अनेक उपायों से श्रीमहाराजजी ही शान्त करते।

'भाई! प्रेम के पागल कैसे होते हैं—यह बात पहले तो सुनी ही थी। नेत्रों से तो सबसे पहले रामेश्वर को ही देखा। आपने होशियारपुर से आकर बतलाया कि मुझे रामेश्वर का स्मरण आने से बड़ा दुःख होता था। इसका रोना मुझे स्पष्ट सुनायी देता था और कभी-कभी तो विवश होकर मेरे नेत्रों से भी घण्टों अश्रुपात होता रहता था। इसी कारण मुझे जल्दी आना पड़ा। नहीं तो, एक साल तक मेरा आने का विचार नहीं था।'

रामेश्वर के चित्त में बड़ी व्याकुलता रहती थी। वह निरन्तर चौबीसों घंटे श्रीमहाराजजी के ही पास रहता था। किन्तु मर्यादापुरुषोत्तम श्रीमहाराजजी ऐसा कैसे कर सकते थे। इसलिए आपने मन में ऐसा विचार किया कि कोई ऐसा खेल होना चाहिए, जिसमें रामेश्वर भी लग जाय और मेरा भी इस प्रान्त में कुछ अधिक रहना हो जाय; तथा जिसमें सारे जगत् का मंगल और जनताजनार्दन की सेवा भी हो। आपका यह संकल्प ही श्रीगंगाजी के बाँध के रूप में मूर्त्तिमान हुआ, जो आपकी चिरकालव्यापिनी धवल कीर्त्ति का स्तम्भ है। आगे इसी प्रसंग का संक्षिप्त विवरण लिखा जाता है।

उस समय के कुछ भक्त

यहाँ तक प्रसंगवश कुछ भक्तों का परिचय तो दिया जा चुका है। किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे महानुभाव भी थे जिनका मुख्य प्रसंग से सम्बन्ध न होने के कारण अभी तक नामोल्लेख भी नहीं हुआ अथवा केवल उल्लेखमात्र ही हुआ है। किन्तु वे थे श्रीमहाराजजी के परिकर के उज्ज्वलतम रत्न। अत: आगे संक्षेप में उनका परिचय दिया जाता है।

पण्डित श्रीरामजी

पण्डित श्रीरामजी गवाँ के रहने वाले एक मारवाड़ी ब्राह्मण थे। इनका बाबू हीरालालजी से बड़ा घनिष्ठ प्रेम था। इन्होंने संस्कृत व्याकरण और हिन्दी साहित्य का अच्छा अनुशीलन किया था। श्रीमद्भागवत का इन्हें अभ्यास था तथा हिन्दी में ये कविता भी करते थे। श्रीमद्भागवत का तो साप्ताहिक या मासिक पारायण चलता ही रहता था। इनमें त्याग की मात्रा अच्छी थी। कभी किसी प्रकार का प्रतिग्रह ये नहीं लेते थे। गाँव में एक छोटी-सी कपड़े की दुकान कर रखी थी, उसीसे निर्वाह करते थे। इनमें आहार-विहार का संयम सत्यपरायणता, न्यायनिष्ठा आदि अनेकों गुण थे, गृहस्थ होते हुए भी ये ब्रह्मचर्य से रहते थे तथा श्रीभगवान् में भी इनका प्रगाढ़ प्रेम था। इनकी धर्मपत्नी भी एक सर्वगुण सम्पन्न सुशिक्षित देवी थी। किन्तु उसे एक भद्रमहिला की तरह कुछ ठाट-वाट से रहना पसन्द था, धन की भी उसे अधिक अभिलाषा थी। जबकि पण्डितजी साक्षात् सुदामाजी की तरह अत्यन्त सन्तोषी ओर निस्पृह ब्राह्मण थे। इसलिए इन पति-पत्नी में प्राय: मतभेद ही रहता था।

पण्डितजी की सत्संग साधुसेवा में भी बड़ी निष्ठा थी। इसके लिये इन्हें जिस चीज की आवश्यकता होती थी बाबू हीरालालजी के यहाँ से ले जाते थे। गवाँ में जो भी साधु रहते थे उनकी देख-भाल बाबूजी की ओर से ये ही करते थे। बाबूजी इनकी आवश्यकता का भी बहुत ध्यान रखते थे। परन्तु ये

कभी अपने लिये उनसे कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते थे। आप रात्रि में केवल तीन घंटे सोते थे। प्रात: काल दो बजे ही उठकर बैठ जाते थे ओर सबेरे तक ध्यानाभ्यास करते थे। इसके पश्चात् नित्यकर्म से निवृत्त हो ठाकुरसेवा और स्वाध्याय करते थे। फिर कुछ खा-पीकर दस बजे के लगभग दुकान पर जाते थे। वहाँ भी बराबर कोई पुस्तक देखते रहते थे। ग्राहक आया तो उसे सौदा दे दिया और फिर स्वाध्याय में लग गये। ग्राहक से ये विशेष बातचीत नहीं करते थे। बस, एक ही दाम बोलते थे। फिर वह चाहे ले, चाहे चला जाय। लोग इनके स्वभाव को जान गये थे। इसलिये वे भी इनसे विशेष झंझट नहीं करते थे।

इनसे इस प्रकार के व्यवहार से इनका साधन तो उत्तरोत्तर बढ़ता गया, किन्तु व्यवसाय में शिथिलता आती गयी। अन्त में आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गयी। बाबूजी ने कई बार आग्रह किया कि हजार पाँच सौ रुपये लेकर अपना काम सुधार लें। परन्तु इन्होंने कभी स्वीकार न किया। इन बातों से भी इन्हें चिढ़ थी और ये कभी-कभी बाबूजी से बिगड़ भी जाते थे। इसलिये फिर उन्होंने आग्रह करना छोड़ दिया। हाँ, कभी-कभी इनसे छिपाकर वे इनके घर कुछ घी या दूसरा सामान भेज देते थे, जिसे इनकी स्त्री बाल-बच्चों के ही काम में लाती थी, क्योंकि यदि इन्हें किसी प्रकार यह बात मालूम हो जाती तो ये उस सामान को वापिस कर देते थे। श्रीमहाराजजी के सत्संग में ये नित्य जाते थे और निश्चित समय से पाँच-चार मिनट पहले ही पहुँचते थे। इनकी इन बातों से श्रीमहाराजजी इनसे बहुत प्रसन्न थे।

उस समय श्रीमहाराजजी रामनवमी या कृष्णजन्माष्टमी आदि विशेष अवसरों पर कुछ उत्सव किया करते थे। वे उत्सव आज-कल की तरह विराट नहीं होते थे। उनमें इने-गिने व्यक्ति ही सम्मिलित होते थे। उन अवसरों पर बाबू हीरालालजी तो उर्दू की कविता सुनाते थे और पण्डितजी व्रज-भाषा की। कभी-कभी कोई लीलानुकरण भी होता था। उसमें भी पण्डितजी का पार्ट रहता था।

एक बार रामनवमी के अवसर पर रामलीला करने का विचार हुआ। उसमें बहुत मना करने पर भी रामजी का पार्ट तो श्रीमहाराजजी को दिया गया और कौशल्याजी का पण्डितजी को। वन-गमन की लीला हुई। दशरथजी के यहाँ से श्रीरामजी माता कौशल्या के भवन में पधारे। कौशल्याजी ने रामजी को गोद में ले लिया और कुशल प्रश्न के बाद कुछ भोजन करने को कहा। उसी समय श्रीरघुनाथजी ने प्रसन्नवदन से कह दिया कि माँ, पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है। बस, वन गमन का समाचार सुनते ही श्रीकौशल्याजी की बड़ी विचित्र अवस्था हो गयी। जब से रामजी को गोद में लिया था तब से मानो पण्डित श्रीराम तो रहे ही नहीं, उनके स्थान में साक्षात् श्रीकौशल्याजी ही आ गयी थीं। रामजी माँ का गला पकड़कर चिपट गए। उस समय का दृश्य ही विलक्षण था। मानो साक्षात् वात्सल्य रस की मूर्ति अम्बा कौशल्या की गोद में उनके दुग्धपोष्य शिशु राम ही हों। बस, जैसे ही रामजी ने सब समाचार सुनाकर वनगमन की आज्ञा माँगी कि श्रीकौशल्याजी 'बड़भागी वन अवध अभागी। जो रघुवंश तिलक तुम त्यागी' ऐसा कहकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर गयी। उन्हें एकदम गाढ़ मूर्च्छा हो गई। फिर जल के छींटा देने पर जब कुछ सावधान हुई तो उस समय उन्होंने जो प्रलाप आरम्भ किया वह बड़ा ही अलौकिक था। वैसा भाव तो श्रीवाल्मीकि, अध्यात्म या तुलसीकृत रामायणों में भी नहीं मिलता। उस समय उनकी जो कण्ठ की मधुरिमा और भावों की अभिव्यक्ति थी उससे सभी श्रोताओं के हृदय उथल-पुथल हो रहे थे। वह वैष्णव शास्त्रों में वर्णित दिव्योन्माद, प्रेमोन्माद अथवा मूर्तिमान वात्सल्यरस ही तो नहीं था? वह क्या था? क्या कहें हृदय ही जानता है। शब्दों में उसे वर्णन करने की शक्ति नहीं है। वहाँ जितने आदमी थे सभी उस भाव में डूब गये। उन्हें यही प्रतीत हुआ कि हम अयोध्या में श्रीकौशल्याजी के भवन में हैं, श्रीरघुनाथजी वन को जा रहे हैं और कौशल्याजी प्रलाप कर रही हैं। बस, हम सब भी रोते-रोते मूर्च्छित प्राय हो गये। जब प्राय: तीन-चार घण्टे हो गये और हमें चेत हुआ तो देखा कि श्रीमहाराजजी पण्डित श्रीरामको सावधान कर रहे हैं।

किन्तु जब वे इन्हें सम्बोधन करके कहते कि श्रीराम! सावधान हो तो वे और भी जोरों से विलाप करने लगते–'हाय! मेरा श्रीराम तो वन को जा रहा है।' फिर सखी समझकर किसी का गला पकड़कर रोने लगते–'हाय! मेरा श्रीराम मुझ अभागिनी को छोड़कर कहाँ चला गया।' इस तरह वे तरह-तरह से प्रलाप कर रहे थे। उनका यह प्रलाप बड़ा ही विचित्र था। उन्होंने ऐसा एक भी शब्द नहीं कहा जिसमें महाराज दशरथ, कैकेई या मंथरा पर कोई आक्षेप हो; सारा दोष अपने भाग्य का ही बतलाया। बार-बार अपने को ही धिक्कारा और यही कहा कि मेरा ऐसा भाग्य नहीं था जो तुम्हारा लालन-पालन करती। उस लीला के रामजी ये शब्द सुनते ही विकल हो जाते थे और पृथ्वी पर लोटने लगते थे। बस, इसी तरह वह सारी रात बीत गयी, पर पण्डितजी को चेत न हुआ। उन्हें चौबीस घंटे तक इसी तरह भाव-समाधि रही। फिर अर्धबाह्य अवस्था में उन्हें थोड़ा दूध पिलाया गया। इससे जब चेत हुआ तो बड़े संकुचित हुए। किन्तु इस भाव की मस्ती उन्हें एक सप्ताह तक रही। इसी तरह और भी एक दो बार उनकी ऐसी ही अवस्था हुई। इसलिए फिर उन्होंने लीला में अभिनय करना छोड़ दिया। इसके कुछ वर्ष बाद ही आप हमें छोड़कर गोलोक सिधार गये।

सेठ रामशंकरजी मेहता

अनूपशहर में गुजरात के नागर ब्राह्मणों का एक सुप्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवार है। ये लोग जगद्विख्यात भक्तराज श्रीनरसी मेहता के सजातीय हैं। अनूप शहर में इनका व्यापार और जमींदारी का व्यवसाय है। अत: ब्राह्मण होने पर भी ये 'सेठ' कहे जाते हैं। सेठ श्रीरामशंकरजी इसी परिवार के उज्ज्वल रत्न थे। अपने वंश परम्परागत आचार तथा ठाकुर-सेवा में ये बचपन से ही तत्पर रहते थे। गंगातट होने के कारण इन्हें अनकों विरक्त सन्तों का भी समागम प्राप्त होता रहता था। इस प्रकार बाल्यावस्था से ही इनका जीवन बड़े सात्विक वातावरण में व्यतीत हुआ था।

शहर से पश्चिम की ओर प्राय: एक फर्लांग पर इनका एक बाग है। उसमें तीन-चार कुटियाँ भी बनी हुई हैं। उन दिनों यह बाग गंगातट पर विचरने वाले विरक्त महात्माओं का निश्चित पड़ाव ही था। इस परिवार की ओर से उनकी यथोचित सेवा की जाती थी। रामशंकरजी को वंश परम्परा के अनुसार वल्लभकुल की वैष्णवी दीक्षा प्राप्त हुई थी तथा इन्होंने अंग्रेजी ओर संस्कृत का भी सामान्य ज्ञान प्राप्त किया था। पीछे इन्हें श्रीअच्युतमुनिजी महाराज के दर्शन हुए और उनसे ये अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। हमारे बाबू हीरालालजी, खुरजा के सेठ गौरीशंकरजी और अनूपशहर के पण्डित श्रीलालजी याज्ञिक इनके साथ ही वेदान्त का अध्ययन करते थे। इससे इनकी रुचि कर्मकाण्ड और उपासना से हटकर वेदान्त में हो गयी। पीछे हमारे चरितनायक भी इसके साथ ही अच्युतमुनिजी के विद्यार्थी हो गये। उसी समय ये इनके दिव्य गुणों पर मुग्ध हो गये और समय-समय पर इनके सत्संग से लाभ उठाने लगे।

एक बार श्रीमहाराजजी अनूपशहर में लाला बाबू के बगीचे में ठहरे हुए थे। उन दिनों यहाँ के तहसीलदार थे चौधरी रामस्वरूप। वे अच्छे विचारशील, साधुसेवी और सत्संगप्रिय सज्जन थे। यहाँ के पुलिस इन्सपैक्टर चौबे सोहनलाल जी भी बड़े भक्त और प्रसिद्ध सत्संगी थी। सेठ रामशंकरजी की प्रेरणा से उन दिनों तहसील में महाराजजी का सत्संग हुआ करता था। उसमें इन महानुभावों के अतिरिक्त बरेली से श्रीरामकुमारजी दरोगा और पण्डित छेदालालजी बी० ए० तथा लखनऊ से पण्डित रघुनन्दनप्रसाद भी पधारे थे। अनूपशहर के सेठ बदरीशंकर, बल्देवशंकर, लाला प्यारेलाल, प्रोफेसर दुर्गाचरण तथा और भी अनेकों सज्जन इस सत्संग में सम्मिलित होते थे। इस सत्संग का सेठ रामशंकरजी पर बड़ा ही अद्‌भुत प्रभाव पड़ा और इन्होंने श्रीमहाराजजी के मुख से श्रीमन्महाप्रभुजी का चरित्र श्रवण करके अपना अद्वैत वेदान्त का आग्रह छोड़ दिया। तब से इन्होंने नवधा भक्ति में श्रवण, कीर्तन और स्मरण को ही अपना मुख्य साधन बनाया। इस प्रकार इस विचित्र सत्संग ने इनके जीवन-प्रवाह को वेदान्त की ओर से भक्ति की ओर मोड़ दिया। तब से ये श्रीमहाराजजी का अधिक से अधिक सत्संग

करने लगे तथा बाँध के काम में भी इन्होंने पूर्ण सहयोग दिया। इनके साथियों में बौहरे घासीरामजी बड़े योग्य पुरुष थे। वे बड़े ही भावुक और व्रजरस मर्मज्ञ भक्त थे। उनका भी श्रीचरणों में बहुत अनुराग हो गया।

हमारे रामशंकरजी को इस बात की बड़ी धुन लगी रहती थी कि किसी प्रकार सत्संग होता रहे। अतः ये बड़े यत्न से अनेकों सन्त और महापुरुषों को अनूपशहर में ले जाते थे। उस समय इनके मित्र सेठ गौरीशंकर, बौहरे घासीराम, पण्डित बद्रीप्रसाद, सेठ वृद्धिचन्द्र पोद्दार आदि अनेकों सत्संग प्रेमी जहाँ-तहाँ से आ जाते थे। बस, खूब सत्संग जमता था। गंगातट पर विचरने वाले प्रायः सभी महात्माओं से इनका घनिष्ठ सम्पर्क रहता था। हमारे श्रीमहाराजजी भी प्रतिवर्ष महीनों इनके बाग में रहकर सत्संग एवं कथा-कीर्तन किया करते थे। पूज्य भोलाबाबाजी तो आठ-दस वर्ष निरन्तर इनके बाग में ही रहे थे। पूज्य श्री उड़िया बाबा जी भी प्रायः प्रतिवर्ष कुछ महीने अवश्य यहाँ व्यतीत करते थे। इस प्रकार इनके कारण अनूपशहर की जनता को निरन्तर साधु-समागम का अवसर प्राप्त होता रहता था।

किन्तु विधाता का विधान बड़ा ही विचित्र है। उससे किसी का भी वश नहीं चलता। संवत् १९९२ में आपको सामान्य-सा ज्वर हुआ और उसीके कारण आप मरणासन्न हो गये। उस समय श्रीउड़ियाबाबाजी आपके बगीचे में ठहरे हुए थे। अतः आप यथाशक्ति बीमारी की हालत में भी उनके सत्संग में जाते रहे। अन्त में जब बहुत दुर्बल हो गये तो प्राण परित्याग के केवल दो-चार दिन पहले ही जाने से रुके। तब बाबा आपके पास हो आते थे। मैं भी उन दिनों में वहीं था। एक दिन प्रातःकाल आप बोले कि आज मेरा शरीर नहीं रहेगा। प्रायः दस बजे वस्त्र बदलकर आप नीचे कुशासन पर बैठे और विधिवत गोदान किया तथा अपने वल्लभ सम्प्रदाय की पद्धति से ठाकुर-सेवा करके तुलसी मिश्रित चरणामृत लिया। फिर हम लोगों से कहा, 'भाई! मुझे मेरा प्यारा हरिनाम सुनाओ और मेरे शव के साथ जब तक चिता भस्म न हो जाय, निरन्तर कीर्तन करते रहना। यद्यपि हमारे कुल की रीति के अनुसार शव के साथ हमारे कुटुम्बियों
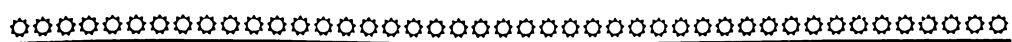
के अतिरिक्त कोई और पुरुष नहीं जाता, तथापि मेरी तो हार्दिक प्रार्थना है कि वैष्णवमात्र कृपा करके मुझे हरिनाम सुनाते रहें।' यह कहकर आप गोबर से लिपी हुई भूमि पर कुशासन बिछवाकर लेट गये और आनन्दपूर्वक अपना प्यारा कृष्णनाम लेते गोपीभाव से भावित हो इस अनित्य शरीर को त्यागकर श्रीश्यामाश्याम के नित्य परिकर में सम्मिलित हो गये। आपकी शवयात्रा में कीर्तन करते हम लोग भी गये। उस समय हम लोग अत्यन्त भावविभोर होकर कीर्तन कर रहे थे, हमारे हृदय में बड़ा ही अद्‌भुत भाव था। अत: मुझे तो चिता में अग्नि लगने के समय ऐसा प्रतीत हुआ कि उस आग की ज्वाला बहुत ऊपर तक बढ़ गई है और उसमें एक दिव्य-ज्योति निकलकर आकाश में लीन हो गयी है।

इस प्रकार आपका देहावसान भी बड़े ही अलौकिक ढंग से हुआ। सचमुच आपका जीवन बड़ा ही पवित्र था। उनके अन्त के साथ एक प्रकार से अनूप शहर के सत्संग का तो अन्त सा ही हो गया। ठीक है–

साधू आवें जगत में, परमारथ के हेत।
आप तरें तारें जगत, मँडैं भजन के खेत॥

भोलेजी

भोलेजी बरोरा के रहने वाले एक अहीर थे। ये अत्यन्त सरल प्रकृति के, सच्चे और साधुसेवी सज्जन थे। पीछे बहुत दिनों तक ये श्रीमहाराजजी की रसोई की सेवा करते रहे। बाँध के उत्सवों पर भी ये बहुत सेवा करते थे। ये सामान्य हिन्दी पढ़े-लिखे थे। पर पहले ही से लाला कुन्दनलाल के यहाँ नौकरी करते थे और बाबू हीरालालजी से भी इनका बहुत प्रेम था। इसलिए इन्हें साधु सेवा का अवसर प्राय: मिलता रहता था। अत: इन्हें श्रीअच्युतमुनि, बंगाली बाबा एवं हीरादासजी आदि सभी गंगातटवासी महात्मा जानते थे। इनके घर में अपनी थोड़ी-सी जमीन से कुछ जीविका हो जाती थी और कुछ वैश्य लोगों की नौकरी से मिल जाता था। इसीसे अपना निर्वाह करते थे। फिर बहुत समय तक ये निरन्तर
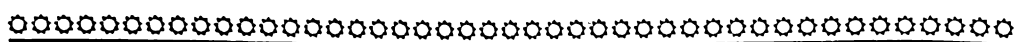
श्रीमहाराजजी की सेवा में भी रहे। किन्तु पीछे कुछ कारणों से श्रीमहाराजजी ने इन्हें घर भेज दिया। तब ये खेती का काम करके अपना निर्वाह करने लगे साधुसेवा ओर भजन में तो इनकी सदा ही प्रवृत्ति रहती थी। जब कोई विशेष उत्सव होता था तब ये स्वयं ही आ जाते थे अथवा श्रीमहाराजजी ही इन्हें बुला लेते थे। उस समय वे बड़ी सेवा करते थे।

अन्त में इन्हें खाँसी का रोग हुआ और वह राजयक्ष्मा में परिणत हो गया। तब सं० २००१ के आषाढ़ मास में ये वृन्दावन आ गये। श्रीमहाराजजी ने इनके निमित्त बड़े-बड़े अनुष्ठान कराये, स्वयं भी इन्हें बहुत सी कथाएँ सुनायीं तथा बड़े-बड़े वर भी दिये। उन सबका परिणाम यह हुआ कि ये मरने-जीने की चिन्ता छोड़कर निर्भय हो गए तथा सर्वथा मरणासन्न होने पर भी अच्छे-चंगे होकर घर चले गए। उसी साल जब बाँध पर उत्सव हुआ तो वहाँ रहकर इन्होंने खूब सत्संग का आनन्द लूटा। उत्सव के बाद घर चले गए और सम्भवत: ज्येष्ठ मास में बड़ी शान्ति में भगवन्नामस्मरण करते हुए वैकुण्ठ पधारे। ये वास्तव में बड़े भाग्यशाली थे। श्रीमहाराजजी की इन पर बड़ी कृपा थी और ये उनके अन्तरंग भक्तों में से थे।

हुसेनवख्श बढ़ई

जिस समय बरोरा में हुलासीजी की प्रेम-लीलाएँ हो रही थीं वहाँ उनके एक सत्संगी और छिपे हुए मुसलमान भक्त थे। इनका नाम था हुसेनवख्श। ये बढ़ई का काम करते थे। न जाने किस अदृष्टवश इन्होंने मुसलमान घर में जन्म लिया था। श्रीमहाराजजी का पहलीबार दर्शन करते ही इनके हृदय में श्रीकृष्ण लीला की स्फूर्ति हो गई। और ये उसी दिन से घर का सब कामकाज अपने दोनों लड़कों को सौंपकर निरन्तर एकान्त में रहने लगे। इनके सामने स्वत: ही अपने पूर्वजन्मों की बहुत-सी घटनाएँ आ जाती थीं। एक बार मैंने पूछा तो इन्होंने बतलाया कि ये श्रीश्यामसुन्दर के नित्य लीलापरिकरों में से कोई थे। इनसे खेल में कोई गुरुतर अपराध बन गया था, जिसके कारण इन्हें गरीब मुसलमान के
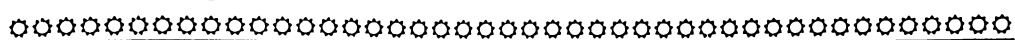
घर जन्म लेना पड़ा। श्रीमहाराजजी का प्रथम दर्शन होते ही उनके हृदय का पर्दा हट गया और इन्हें अपनी नित्य लीला का दर्शन होने लगा। तब से ये निरन्तर एकान्त में बैठे रहते थे और समय पर घर के लोगों के आग्रह से रोटी खा लेते थे। रात्रि में भी ये केवल दो घण्टे विश्राम करते थे।

मुझ से इनका बहुत प्रेम था मैंने बड़े आग्रह से कई बार पूछा तो इन्होंने बतलाया कि मुझे बाल्यावस्था में तो अपने पूर्वजन्म की स्मृति थी। किन्तु बड़ा होने पर मैं वह सब भूल गया हूँ। अब उसकी केवल छाया-सी याद रही है। किन्तु उस समय एक बला तो मेरे पीछे लग गयी थी। वह यह कि मेरे सामने जो भी आदमी आता था उसके भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीन जन्मों का नक्शा मेरे आगे खिंच जाता था। और सिनेमा के से चित्र मेरे सामने नाचने लगते थे। ऐसा होने से मैं घबरा गया और मैंने भगवान् से प्रार्थना की कि मुझे इस बला से बचाओ, नहीं तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे। इसी से मैं घर के एक कोने में छिपा मुँह से राम-राम कहता रहता था। इसी विचार से मैं हर एक महात्मा के पास भी जाता था। किन्तु सामने जाते ही उसके हृदय के संस्कार मेरे सामने आते तो मेरी अश्रद्धा हो जाती थी। इसलिए निराश होकर मैंने महात्माओं के पास जाना छोड़ दिया और छिपकर अपने घर में बैठ गया। किन्तु इससे भी बड़े-बड़े चमत्कार होते रहे। मैं कभी किसी दिव्यलोक में चला जाता कभी मुझे किसी दिव्य प्राणी के दर्शन होते और कभी किसी ग्राम या देश में कोई विपत्ति आने वाली होती तो मुझे मालूम हो ज़ाती। एक दिन मैंने श्रीमहाराजजी का नाम सुना तो इनके दर्शनों को गया। वहाँ ज्यों ही प्रणाम करके बैठा कि अपनी पूर्वस्मृति जाग्रत हो गयी और प्राण प्यारे श्रीकृष्ण की लीलाओं की स्फूर्ति होने लगी तब मैंने अपना ध्यान इनकी ओर दौड़ाया कि देखें, ये क्या वस्तु हैं। परन्तु मुझे तो यही प्रतीत हुआ कि ये एक अनन्त महासागर हैं। इनका कोई भी पार नहीं है। जब बहुत ध्यान करने पर भी मैं इनकी थाह न पा सका तो इनके चरणों में लोट गया। इन्होंने उठाकर मुझे हृदय से लगाया। बस, मैं तो तभी कृतकृत्य हो गया। तब, मैंने इनसे अपनी सब व्यथा कही। उस पर इन्होंने कहा, 'अच्छा'
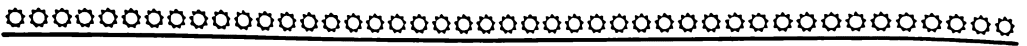
अब नहीं होगा। जब तुम किसी के हृदय का हाल जानना चाहोगे तभी जान सकोगे। बिना इच्छा किये अब कोई संस्कार तुम्हारे सामने नहीं आयेगा। इसके बाद ऐसा ही हुआ।

ये नित्य ही श्रीमहाराजजी के सत्संग में आते थे और पूछने पर श्रीकृष्णलीला के बड़े-बड़े अनुभव सुनाते थे। श्रीमहाराजजी को भी इनसे बहुत प्रेम हो गया था और इस बात की बिलकुल ग्लानि नहीं थी कि यह मुसलमान हैं। किन्तु ये बड़े ही विनम्र, संकोची लज्जाशील थे। इन्होंने प्रार्थना की कि मेरे अन्त समय पर आप मेरे सामने रहें। सो इस बात की सूचना मिलते ही आप वहाँ पहुँचे और ये आपकी ओर एकटक दृष्टि से देखते प्रसन्नतापूर्वक भगवन्नाम लेते हुए नित्यधाम में जाकर नित्यपरिकर में सम्मिलित हो गए।

बागवान गंगासहाय

श्रीमहाराजजी जिन दिनों गवाँ में लाला किशोरीलाल की बगीची में रहते थे उन दिनों उस बाग में दो बागवान थे। एक तो सम्भल का रहने वाला गंगासहाय माली और दूसरा जहानपुर का अहीर थानसिंह। गंगासहाय पहले ही से सत्संगी था, किन्तु आपके संसर्ग में आने से उसका यह शौक और भी बढ़ गया था। वह बगीचे का कामकाज करते हुए भी निरन्तर श्रीसूरदास, तुलसीदास एवं कबीर आदि भक्त कवियों के पद गाता रहता था तथा रात्रि में भी केवल तीन घंटे सोकर शेष समय में महामन्त्र की चौसठ मालाएँ करके एक लक्ष भगवन्नाम जपता था इसके सिवा दिन में समय निकालकर श्रीमहाराजजी की कथा भी सुनता था।

वह बहुत ही शान्त, विनम्र और मधुर प्रकृति का पुरुष था। उसे श्रीप्रिया-प्रीतम के दर्शनों की लालसा इतनी बढ़ी कि वह दिन-रात व्याकुल रहने लगा। कभी-कभी वह इसके लिये श्रीमहाराजजी से प्रार्थना भी किया करता था। कथा के समय वह बड़े प्रेम से एक फूलों का हार और एक बढ़िया गुलदस्ता बनाकर लाता था। हार श्रीमहाराजजी को पहनाकर गुलदस्ता सामने रख देता
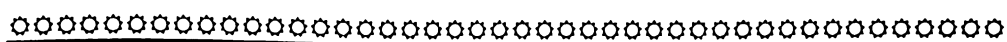
था और प्रणाम करके एक ओर बैठकर बड़े मनोयोग से कथा सुनता था। कथा में जब जैसा प्रसंग आता उसीके अनुरूप उसका हृदय हो जाता था। जब करुणा का प्रसंग आता तो वह रोते-रोते व्याकुल हो जाता था और जब हर्ष का प्रसंग होता तो अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठता था। इस प्रकार कुछ काल बीतने पर उसे श्रीमहाराजजी की कृपा से प्रिया-प्रीतम की झाँकी भी हुई। यों वह बड़ी गम्भीर प्रकृति का पुरुष था, सहसा अपना भाव प्रकट नहीं होने देता था। श्रीमहाराजजी उसे बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। उसको बड़ा तीव्र वैराग्य था। किन्तु श्रीमहाराजजी के मुख से वह बार-बार सुनता था कि साधु होने की अपेक्षा अपनी मेहनत का टुकड़ा खाकर भजन करने से भगवान् जल्दी कृपा करते हैं; इसलिए उसने साधु होने का विचार कभी नहीं किया। वह संयमी भी बहुत था। इसलिये उसका स्वास्थ्य ऐसा अच्छा था कि साठ वर्ष की आयु में भी हमने उसे युवावस्था की तरह ही काम करते देखा था। उस समय भी वह उसी प्रकार एक लक्ष भगवन्नाम जपता था और पहले ही की तरह सारे काम भी करता था।

बागवान थानसिंह

दूसरा बागवान थानसिंह एक गरीब अहीर का लड़का था। यह गवाँ से प्राय: दो कोश दूर लाला कुन्दनलाल की जमींदारी के गाँव जहानपुर का रहने वाला था। उसके पिता पर लालाजी का बहुत कर्जा हो गया था। अत: उसका जो 2) मासिक वेतन था वह तो कर्जे में कट जाता था। उसे तो पेट भरने के लिये नित्यप्रति केवल तीन पाव आटा, थोड़ा नमक और सप्ताह में कभी-कभी थोड़ा मठा या दाल-शाक मिलता था। अधिकतर तो वह तीन पाव आटे में नमक डालकर छ: टिक्कड़ बनाता था। उनमें से चार दोपहर को खा लेता और दो शाम के लिये रख देता था। उन्हीं में से कभी-कभी एक या आधा टिक्कड़ किसी साधु को भी दे देता था।

यही टिक्कड़ वह कभी-कभी श्रीमहाराजजी को खिलाता था। कभी तो महाराजजी उससे माँगकर भी उसका टिक्कड़ खाते थे और उसके साथ विनोद
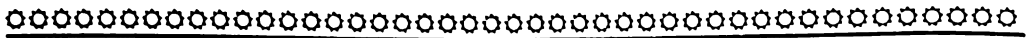
भी करते थे। एक दिन आपने उससे पूछा, 'थन्ना! क्या तूने कभी रामजी देखे हैं?' वह बोला, 'हाँ, महाराज! मैंने रामलीला में सिंहासन पर देखे हैं।' पूछा 'कहाँ, कहाँ?' बोला, 'महाराज! हमारे गवाँ में हर साल रामलीला होती है। वहाँ मैं रोज देखने जाता हूँ। और चार माला बनाकर ले जाता हूँ। सो रामजी, लक्ष्मणजी, सीताजी और हनुमानजी को एक-एक पहना आता हूँ। महाराज मुझे रामजी बड़े अच्छे लगते हैं।' महाराजजी ने पूछा, 'अच्छा थन्ना क्या तूने रामलीला के बिना भी रामजी देखे हैं?' बोला, 'नहीं महाराज! मेरा ऐसा भाग्य कहाँ? भला, रामजी तो राजाधिराज हैं, मुझ गरीब को वे कैसे दर्शन देंगे।' तब महाराजजी ने कहा, 'नहीं, भाई! वह बात नहीं है। वे तो गरीब परवर हैं, दीनबन्धु हैं, पतितपावन हैं और प्रेम के अधीन हैं। उन्हें जो कोई भी प्रेम से पुकारता है उसीके पास वे दौड़े आते हैं। थन्ना? क्या तूने रामलीला में शबरी की लीला देखी?' थन्ना—'हाँ बाबा! वह तो मैंने देखी है। वह तो भीलनी थी। और बाबा! गीध की लीला भी मैंने देखी है।' 'तब क्या थन्ना! रामजी मुझे दर्शन नहीं दे सकते? तू विश्वास कर कि अवश्य दे सकते हैं।'

यह सुनकर थन्ना बहुत गिड़गिड़ाकर बोला, 'नहीं बाबा! मैं तो बहुत नीच हूँ। मुझे रामजी के दर्शन कैसे हो सकते हैं?' यह कहकर उसने महाराजजी के चरण पकड़ लिये और रोने लगा। बस, फिर क्या था? दीनबन्धु का हृदय पिघल गया, करुणादेवी जाग उठी। आपने उसे उठाया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। थन्ना को उसी समय ऐसा मालूम होने लगा मानो मेरे अन्दर बिजली-सी चमक रही है और एक प्रकार की आनन्द की लहरें-सी चल ही हैं।

फिर आपने थन्ना को गोस्वामी तुलसीदासजी का जीवन-चरित सुनाया और कहा कि श्रीहनुमानजी की कृपा के बिना रामजी के दर्शन नहीं हो सकते। थन्ना ने पूछा, 'बाबा! हनुमानजी कैसे प्रसन्न हों?' आप बोले, हनुमानचालीसा का पाठ करने से।' थन्ना बोला, 'बाबा! मैं हिन्दी के अक्षर तो जानता हूँ। क्या आप मुझे हनुमान चालीसा पढ़ा देंगे?' आपने कहा, हाँ, 'मैं तुझे कण्ठ करा दूँगा।' बस, आपने कहीं से उसके लिये हनुमान-चालीसा मँगा दिया और दो
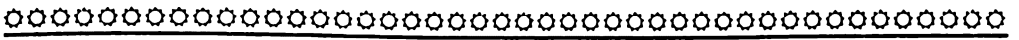
चार दिन में उसे उसका अभ्यास भी करा दिया। वह उसका पाठ नियमपूर्वक करने लगा। उसका सरल विश्वास, शुद्ध हृदय और अत्यन्त दीन नम्र स्वभाव तथा साथ ही सत्गुरुदेव की कृपा। फिर भला क्या देर थी? उसका मन शान्त हो गया और उसे कभी-कभी स्वप्न में श्रीरघुनाथजी के दर्शन होने लगे। श्रीमहाराजजी के कहने से वह महामन्त्र की सोलह मालाएँ भी जपने लगा। इस प्रकार वह दिन भर तो बगीचे में काम करता, चटनी के साथ रूखी-सूखी रोटी खाता, उसमें से भी कभी श्रीमहाराजजी को भी खिला देता और रात को श्रीहनुमान चालीसा का पाठ करता, रामदर्शन की लालसा में भगवन्नाम लेता सो जाता। इससे उसे स्वप्न में प्राय: नित्य ही कोई दिव्य-दर्शन अवश्य हो जाता। कभी रामजी का, कभी हनुमानजी का, कभी श्रीमहाराजजी का और कभी किसी अन्य दिव्य पुरुष का। जब महाराजजी बाहर से आते तो वह बड़े चाव से उन्हें अपना स्वप्न सुनाता। वे बड़े प्रसन्न होते और उसे कोई न कोई नवीन बात बता देते। वह उसे बड़ी श्रद्धा और विश्वास से मान लेता।

एक दिन श्रीमहाराजजी ने कहा, तू ऐसी भावना कर कि मैं महावीर हूँ। मैं रामजी का दास हूँ। माया कभी मेरे निकट नहीं आ सकती।' यह सुनते ही उसने ऐसी धारणा कर ली और उसी दिन से उसमें यह भाव जाग्रत रहने लगा। इससे वह बड़ा मस्त रहता। इस भावना के प्रभाव से उसकी सारी मायिक वृत्तियाँ सर्वथा नष्ट हो गयीं और समस्त दैवी गुणों का उसके हृदय में विकास हो गया। इससे उसको अनेक प्रकार के चमत्कार होने लगे। कभी वह देखता कि अनेकों देवी-देवता आये हैं और उसकी परिक्रमा एवं दण्डवत् कर रहे हैं। इससे चकित होकर वह भी उनको प्रणाम करता। कभी उसे ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होता कि मैं अलग हूँ और यह शरीर अलग है। उस समय उसके हृदय में एक अद्भुत आनन्द की तरंगें उठती रहतीं। कभी वह स्थूल शरीर से तो सोया या बैठा होता, किन्तु सूक्ष्म शरीर से दिव्यलोकों में घूमता और सर्वत्र उसका आदर होता।

एक दिन उसने किसी दिव्य प्राणी से पूछा कि मेरी ऐसी अवस्था होने का क्या कारण है? तो उन्होंने समझाया कि यह सब सन्त सद्गुरु की अहैतुकी
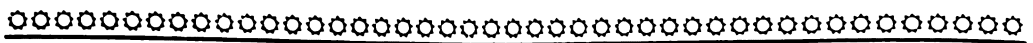
कृपा का परिणाम है। तेरे चित्त में जो उनके प्रति अनन्य श्रद्धा और प्रेम है, उसके कारण श्रीगुरुदेव की कृपा से तेरा चित्त उनसे मिलकर एक हो गया है। बस, उनके चित्त से अभिन्न हो जाने के कारण उनका अनुभव ही तेरे चित्त में ज्यों का त्यों उतर आया है। भाई! तुम्हारा जीवन धन्य है। तुम कृतकृत्य हो। तुमको सुर-मुनि दुर्लभ अवस्था प्राप्त हुई है। इसे सँभालकर रखना। इसका सँभालना यही है कि तुम्हारे हृदय में कभी स्वतन्त्रता या अभिमान का भाव न आने पावे। तुम सदा ही उनके अधीन रहना; फिर तो वे स्वयं संभाल लेंगे।

थन्ना सब बातें सरल हृदय से ज्यों की त्यों श्रीमहाराजजी को सुना देता था। आप सुनकर बड़े प्रसन्न होते और उससे कह देते, 'खबरदार! ये बातें और किसी से कभी मत कहना।' उसकी ऐसी विचित्र स्थिति देखकर सब लोग उसका आदर करने लगे। सब उससे प्रेम करने लगे और सभी की यह इच्छा होने लगी कि इसकी जो भी सेवा की जाय थोड़ी है। इस प्रकार तरह-तरह के प्रलोभनों ने उस पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। किन्तु उसमें एक यही बात बहुत बढ़िया थी कि वह अपनी सब बातें श्रीमहाराजजी से स्पष्ट कह देता था। अत: यह बात भी उसने स्पष्ट ही कह दी। तब महाराजजी ने उससे बड़े कड़े शब्दों में कहा, 'खबरदार, जो कभी किसी से बात की या कभी किसी से कुछ स्वीकार किया। अरे! परमार्थ के साधन में ये ही तो बड़े से बड़े विघ्न हैं। जो इन विघ्नों से बच गया उसका मार्ग तो सुगमता से तय हो जाता है और जो इनमें अटक जाता है वह तो परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। बेटा! तुम इन प्रलोभनों की ओर भूलकर भी मत देखना। अपनी यही भावना दृढ़ रखना कि मैं श्रीरामजी का दास हूँ। मैं महावीर हूँ। माया मेरा क्या कर सकती है? भाग्यवश अपनी मेहनत मशक्कत से तुम्हें जो कुछ रूखा-सूखा टुकड़ा मिलता है वही अमृत है। मैं तुमसे शपथ खाकर कहता हूँ कि कभी-कभी तुम्हारी सूखी नोन डाली रोटी का टुकड़ा खकर मुझे जो आनन्द मिलता है वह मैं वाणी से वर्णन नहीं कर सकता। देख, स्वामी रामतीर्थ ने क्या कहा है—
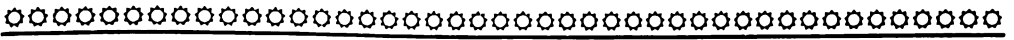
भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने की तो बेकरार आने को है॥'

बस, श्रीमहाराजजी के शब्द उसके हृदय में घर कर गये और वह सदा के लिये सचेत हो गया। इस प्रकार 'सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ सन्तोष सदाई।' इस श्रीगोस्वामीजी के महावाक्य का पालन करने से ही थानसिंह सब प्रकार के विघ्नों से बच गया और उसकी स्थिति दिनों दिन बढ़ती गयी।

एक दिन हमारे परम कौतुकी सरकार सायंकाल में बहुत दूर तक भ्रमण करके आये और बाग में आते ही 'थन्ना, थन्ना कहकर पुकारा। वह दौड़ा आया और आपको प्रणाम किया। आप बोले, 'थन्ना! आज मुझे बड़ी भूख लगी है। मेरे प्राण निकल रहे हैं। ला, कुछ हो तो खाने को दे।' यह सुनकर थन्ना बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, 'हाँ, हाँ, बाबा! दिन की रोटियाँ रखी हैं। किन्तु नहीं, मैं अभी दो नोन डाली रोटी गरम-गरम बनाये देता हूँ।' आप बोले, 'नहीं, मुझे तो उन्हीं से एक रोटी दे दो।'

यह सुनकर वह दोनों रोटियाँ उठा लाया। आपने कहा, 'भइया! एक मुझे दे और एक तू खा ले।' वह बड़े प्रेम से बोला, 'नहीं, बाबा! मुझे भूख नहीं है। और पीछे लगेगी तो मैं और बना लूँगा।' इस प्रकार बड़े आग्रह से उसने वे दोनों रोटियाँ आपको खिला दीं। आप कहा करते हैं, 'उन बेझड़की नमकीन रोटियों में मुझे जो स्वाद मिला वह कभी जन्मभर बड़े-बड़े भोजनों में नहीं मिला।' मैंने उससे हँसकर कहा, 'थन्ना! तू बड़ा भाग्यवान् है, जो ऐसा अमृत भोजन करता है।' रोटी खाकर मैं कुटिया पर चला गया। मेरे मन मेरे में बड़ा ख्याल आया कि यह गरीब आदमी कितना उदार है कि दोनों रोटियाँ मुझे खिलाकर आप भूखा रह गया। शीतकाल की इतनी बड़ी रात्रि! भला, भूखे कैसे कटेगी? रात्रि को दस बजे लाला किशोरीलाल के यहाँ से दूध लेकर पण्डित श्रीरामजी आये। मैं अपनी कुटिया में बैठा था। मैंने उनसे कहा, 'पण्डितजी! यह दूध तुम थन्ना बागवान को पिला दो। वह सामने वाली कुटी में सोया हुआ है। मैंने तो

उसकी रोटियाँ खा ली हैं, वह भूखा होगा।' श्रीरामजी दूध लेकर थन्ना की कुटी पर गये और पुकारकर कहा, 'थानसिंह यह दूध पी ले, महाराजजी ने भेजा है।' वह भीतर ही से बोला, 'पण्डितजी, मुझे भूख नहीं है, दूसरे मेरी छाती से चिपकर भगवान सोये हैं, मैं कैसे उठूँ। पण्डितजी, तुम महाराजजी को मेरे पास बुला लाओ।' यह सुनकर पण्डितजी चकित रह गए। उन्होंने जोर-जोर मुझे पुकारा। पण्डितजी की आवाज सुनकर मैं वहाँ गया और पूछा, 'क्या बात है?' पण्डितजी बोले, 'अपने थन्ना से पूछो, वह क्या कहता है।' मैंने कहा, 'थन्ना! क्या बात है?' वह बोला, 'बाबा! भीतर आओ। मैं तुम्हें भगवान् के दर्शन कराऊँ।' उसके इन शब्दों में जो विश्वास था उसके कारण इनका बहुत प्रभाव पड़ा और मैं भीतर गया। कुटिया में घोर अन्धकार था और थन्ना रजाई ओढ़े खाट पर सोया हुआ था। मैंने पूछा, 'थन्ना! तेरे भगवान् कहाँ हैं? हमें तो नहीं दीखते, वह बोला, 'बाबा! भगवान् मेरी छाती पर सोये हुए हैं। आगे आकर हाथ बढ़ाओ।' मैंने हाथ बढ़ाया और उसने मेरा हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखा तो देखा कि एक कुत्ते का पिल्ला उसकी छाती से चिपकर सोया हुआ है। वह बोला, 'बाबा! भगवान् ये हैं।' मैं सुनकर बड़ा चकित हुआ, कुछ हँसी भी आ गई और बोला, 'अरे थन्ना! यह तो पिल्ला है।' वह बोला, 'नहीं बाबा! ये तो साक्षात् भगवान् हैं।' बस, उसने दूध लेकर उसी पिल्ले को पिला दिया।'

इस प्रकार श्रीमहाराजजी ने हमें यह प्रसंग स्वयं ही सुनाया था। और कहा था कि भाई! साक्षात् चतुर्भुज भगवान् होते तो शायद ही मेरी श्रद्धा होती। किन्तु कुत्ते के पिल्ले में साक्षात् भगवद्दर्शन बहुत बड़ी बात है।

पीछे भी थन्ना की अवस्था उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। उसको कभी-कभी हनुमानजी का आवेश होता था। उस समय उसमें इतना बल बढ़ जाता था कि दस-बीस आदमी भी नहीं रोक पाते थे। उसका मुँह लाल हो जाता था। उसमें अन्तर्यामिता, सर्वज्ञता आदि दैवीगुण प्रकट हो जाते थे। उसकी मस्ती यहाँ तक बढ़ गयी कि कामकाज करते हुए भी उसे निरन्तर यही भाव रहता था कि मैं
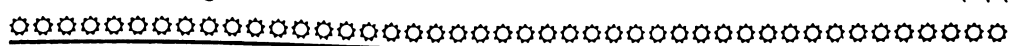
इस शरीर का साक्षी हूँ। और इससे अलग हूँ। उसके मुख से जो बात निकल जाती थी वह सत्य हो जाती थी। फिर कभी वह संसार के प्रलोभन में नहीं फँसा। हाँ साधु होने की बात तो बार-बार उसके मन में आती रहती थी। किन्तु महाराजजी उसे रोकते रहते थे कि देख, थन्ना! इसी तरह मेहनत का टुकड़ा खाने में जो आनन्द है वह साधु होकर भिक्षा का अन्न खाने में नहीं है। तथापि उसकी साधु होने की प्रबल वासना ने उसे अन्त में विवश कर दिया और वह आगे चलकर सम्भल में रामानन्द सम्प्रदाय का एक महन्त बना।

केसरदेवी

इनका जन्म ईसापुर गाँव में हुआ था और दुवारी में ये विवाही थी। इन्हें सामान्य हिन्दी का अभ्यास था। किन्तु बचपन से ही कुछ स्वतन्त्र विचारों की थीं। इसलिए अपने पतिदेव से इनका कुछ वैमनस्य रहता था। युवावस्था में तो ये स्वतन्त्र होकर बिचरने लगी थीं। इन्हें गाने-बजाने का बहुत शौक था। इनका गला भी बहुत मीठा और ऊँचा था। जिस समय ये हारमोनियम और तबला पर खञ्जरी लेकर भजन गाती थीं उस समय लोगों की भीड़ लग जाती थी। धीरे-धीरे ये इतनी स्वतन्त्र हो गयीं कि बड़े-बड़े मेलों, बाजारों और गाँवों में जाकर भजन गाने लगीं। इनके साथ स्वतन्त्र विचारों की दो-चार स्त्रियाँ और भी मिल गयी थीं। इससे इनकी एक भजन मण्डली-सी बन गई।

पीछे निजामपुर के जमींदारों के सम्बन्धी ठाकुर सुम्मेरसिंह का इनके प्रति विशेष प्रेम हो गया। वे इनके भजन बड़े आदर और प्रेम से सुनते थे। इनके कहने पर उन्होंनें निजामपुर में इनके लिये एक कच्चा मकान बना दिया और ये वहीं रहकर भजन करने लगीं। इन्हें जो कोई भी आग्रह करके बुलाता उसीके घर जाकर ये भजन-कीर्तन कर आती थीं। अपने घर तो नित्य ही एक बार भजन गाने का रंग जमता था। भजन गाते समय इनका कण्ठ गद्‌गद हो जाता था और कभी-कभी तो ये फूट-फूटकर रोने लगती थीं।
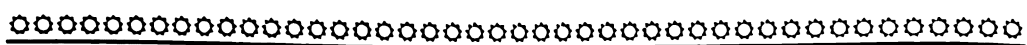
इन्हें भगवद्भजन का शौक तो पहले ही से था। वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। गवाँ और भिरावटी के बड़े-बड़े रईसों की स्त्रियों पर इनका अच्छा प्रभाव था। ठाकुर सुम्मेरसिंह की लड़की जानकी कुंवरि तो इनकी शिष्या थी। निजामपुर में उन्हीं की जमींदारी थी। उन्होंने इन्हें कुछ जमीन भी दे रखी थी। उसमें ये खेती कराती थीं और सवारी भी रखती थीं। इस प्रकार इनका रहन-सहन कुछ ठाट-बाट का था। इसलिए कुछ लोग इनसे विरोध मानते थे और इन्हें अनेक प्रकार के लाञ्छन भी लगाते थे। परन्तु ये बड़ी निर्भीक और वीर महिला थीं। मेरी तो इनमें बड़ी श्रद्धा थी और ये भी मुझसे बहुत प्रेम करती थीं। इन्हें बचपन से ही साधुसंग और साधुसेवा का व्यसन था। अत: किसी न किसी साधु-महात्मा के पास आने-जाने का इनका सम्बन्ध बना ही रहता था।

किसी रमते-राम साधु से इन्हें राधास्वामी सम्प्रदाय का सन्त-मतानुसारी साधन मिला था। अत: ये भ्रकुटि में ध्यान किया करती थीं। उसमें इन्हें बड़ी सफलता मिली थी। उसीके कारण इन्हें बड़ी एकाग्रता होती थी और बड़े-बड़े चमत्कार भी होते थे। ध्यान में कभी सूर्य, कभी चन्द्रमा और कभी बिजली की-सी चमक के तथा अनेकों दिव्य मूर्तियों के दर्शन होते थे। कभी-कभी अनाहद नाद भी सुनायी देता था। ये ध्यान में दो-तीन घंटे तक बैठी रहती थीं।

जब निजामपुर में कीर्तन आरम्भ हुआ तो इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। ये नित्य ही श्रीमहाराजजी के दर्शनों को जाती थीं। कभी बरोरा में और कभी गवाँ में जाकर उनकी कथा सुनती थीं। कीर्तन में इनका इतना प्रेम था कि साठ वर्ष की आयु में भी श्रीमहाराजजी के संकीर्तन में सब स्त्रियों से आगे छ: घंटे तक खड़ी रहती थीं। अपने घर में भी ये स्त्रियों की मण्डली के साथ बाजे-गाजे से कीर्तन करती थीं और पैरों में नूपुर बाँधकर नृत्य करते-करते पागल हो जाती थीं। इस प्रकार इनका जीवन बड़ा ही पवित्र बन गया था। श्रीमहाराजजी इनसे माता के समान प्रेम करते थे। जिस प्रकार श्रीश्यामसुन्दर अपनी मैया यशोदा से और गौरसुन्दर शची माँ से झगड़ा करते थे उसी प्रकार महाराजजी इनसे झगड़ते थे और इनसे माँग-माँगकर खाते थे। जब कभी महाराजजी बाहर जाने

लगते तो व्याकुल होकर रोते-रोते प्रायः मूर्च्छित हो जाती थीं तथा महाराजजी से जल्दी ही लौट आने का वचन ले लेती थीं। बड़ी गढ़ी वाली रानी रामदेवी का तो इनसे अत्यन्त प्रेम था और इन्हींके कारण वे श्रीमहाराजजी की शरणापन्न हुई थीं। उनके श्रीमहाराजजी के सेवा-सम्बन्धी सब कार्य इन्हींके द्वारा होते थे। श्रीमहाराजजी इनसे बहुत प्रसन्न थे और कभी-कभी तो यहाँ तक कह देते थे कि केशर का जीवन मुझसे भी श्रेष्ठ है। पहले तो इनकी श्रद्धा विलन्दबाबा❀, बेलबाबा तथा राधास्वामी सम्प्रदाय आदि कई स्थानों में बँटी हुई थी किन्तु जब से श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए तब से तो इन्होंने अपनी श्रद्धा को सब ओर से समेटकर केवल इन्हींके चरणों में बाँध दिया। जब कभी और जहाँ कहीं उत्सव होता उसमें ये तन मन धन से सम्मिलित होती थीं। तथा बाँध बँधने पर तो ये निरन्तर वहीं रहने लगीं।

अब इनकी आयु प्रायः अस्सी वर्ष की हो गयी थी। फिर भी इनमें पुरुषार्थ काफी था। इन्होंने अपना पहला घर-बार और ठाट-बाट बाँध बँध जाने पर छिन्न-भिन्न कर दिया था तथा जमीन और महिला मण्डली से भी कोई सम्बन्ध नहीं था। अब तो अधिकतर श्रीमहाराजजी के पास अथवा जहाँ भी सत्संग भजन का सुभीता हो वहीं रहती थीं। वृद्धावस्था के कारण शरीर कुछ रोगी भी रहने लगा था। संवत् २००१ के वर्षाकाल में भिरावटी में एक बहुत बड़ा उत्सव हुआ। उसमें रामलीला, रासलीला और अखण्ड कीर्तन का खूब समारोह रहा। घर-घर कीर्तन हुआ। बड़े-बड़े कथा वाचकों की सुन्दर कथाएँ और विद्वानों के प्रवचन आदि हुए। तथा श्री १००८ श्रीउड़िया बाबाजी महाराज और श्री श्री माँ आनन्दमयी आदि महापुरुष अपने-अपने भक्त मण्डल सहित पधारे। तथा और भी अनेकों गुप्त सन्त भक्तों ने उत्सव की शोभा बढ़ायी। उस अपूर्व उत्सव के प्रत्येक प्रोग्राम में ये सम्मिलित होती रहीं। उसके बाद कुछ बीमार होकर ईसापुर चली आयीं।

❀ यह अनूपशहर के पास खन्दाना गाँव में एक ब्राह्मण की लड़की थी। इसमें कुछ सिद्धियाँ बतायी जाती हैं।

यह गाँव श्रीमहाराजजी के नव वृन्दावन की सीमा के अन्तर्गत है, जो चिरकाल तक श्रीमहाराजजी का लीला क्षेत्र रहा है, जिसमें अनेक प्रकार की दिव्य लीलाएँ हुई हैं और अनेकों भक्तों को श्रीभगवान् के दर्शन तथा तरह-तरह के दिव्य चमत्कार हुए हैं। अतः यह साक्षात् नित्य वृन्दावन के समान ही परम पवित्र है। इसमें वर्षों तक श्रीभगवन्नाम कीर्तन हुआ है, जिसे श्रीकृष्णदास गोस्वामी ने साक्षात् श्रीश्यामसुन्दर के महारास के सदृश ही बताया है– 'व्रजेर ये महारास सेइ कीर्तन-विलास'। इस भूमिका प्रत्येक कण भगवन्नाम से विभूषित है। अपने इष्टदेव के इस इष्टधाम में इष्ट को हृदय में रख इष्टनाम का उच्चारण करते हुए ही वे सदा के लिए नित्यधाम में प्रवेश कर गयीं।

गोदीरामजी

निजामपुर के भक्त गोदीरामजी बड़ी सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। आज तक मैंने ऐसा सीधा और भोला आदमी कहीं नहीं देखा। ये कोई उच्चकोटि के योगभ्रष्ट पुरुष ही थे। इनका भाव बड़ा ही विचित्र था। लौकिक दृष्टि से बड़े ही गरीब और अकिञ्चन आदमी थे। अपनी थोड़ी-सी जमीन में खेती करने से भाग्यवश जो भी अनाज पैदा हो जाता था उसीसे अपना निर्वाह कर लेते थे। इनके पास पूरा हल-बैल भी नहीं था। इनका पैदा किया हुआ अन्न कभी एक साल के लिये भी पूरा नहीं होता था। इसलिए कई बार इन्हें दस-बीस रुपया कर्जा भी करना पड़ता था। इस प्रकार ये बहुत मोटा-झोटा खाकर जैसे-तैसे अपना निर्वाह करते थे।

जिस समय निजामपुर में कीर्तन आरम्भ हुआ, इनकी अवस्था प्रायः साठ वर्ष की हो चुकी थी। इनका शरीर भी पतला-दुबला ही था। किन्तु शिर बहुत बड़ा और माथा चोड़ा एवं उभरा हुआ था। इनके तालु के बाल गिर गये थे। अतः इनका माथा ऐसा चमकता था कि धूप के सामने आने पर तो उस पर दृष्टि ठहरती ही नहीं थी। ये हर समय प्रसन्न रहते थे। लोग इन्हें देखकर

आश्चर्य करते थे कि ये इतने प्रसन्न क्यों रहते हैं, लौकिक दृष्टि से तो इनके पास प्रसन्नता की कोई सामग्री है नहीं।

इसके सिवा इनका कण्ठ भी ऐसा मीठा और सुरीला था कि सुनकर कोयल भी लज्जित हो जाय। भोलेपन का यह हाल था कि अपने जीवन में दस-बारह वर्ष तक कीर्तन करने पर भी इन्हें पूरा महामन्त्र याद नहीं था। लोग इनसे हँसी में पूछा करते थे कि भगतजी! जरा महामन्त्र तो सुनाओ। किन्तु ये बेचारे कभी उसे ठीक-ठीक सुनाने में सफल नहीं हो पाते थे। फिर भी बड़ी मस्ती दिन-रात कोयल की तरह भगवन्नाम कूकते रहते थे। रात में ये केवल दो घण्टे सोते थे। बस, रात के एक-दो बजे से ही इनका कीर्तन आरम्भ हो जाता था। उसका कोई हिसाब या कायदा नहीं था। केवल पागल-सा प्रलाप ही होता था। कभी कोई मन्त्र उच्चारण करने लगे तो घण्टों तक उसे ही बोलते रहे। कभी 'राम' बोलते तो कभी 'सीताराम'। 'गोपीवल्लभ' बोलना होता तो घण्टों तक 'गोपिकावल्लभ' की धुन लगा देते। कभी शिवजी का ध्यान आ जाता तो 'शम्भु गिरजा भोलानाथ' की धुन लग जाती। इस तरह कई प्रकार के कीर्तन करके फिर स्वयं अपनी रचना द्वारा पद कीर्तन करते थे। वह रचना तो बड़ी विचित्र होती थी, मानो भोलेबाबा शंकरजी के शावर मन्त्र ही हों। 'अनमिल आखर मन्त्र न जापू प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।।'

किन्तु कीर्तन करते समय कोई भक्तजी का दर्शन करे। अहा! कैसा अद्भुत आवेश! कैसा आश्चर्यमय भाव! कैसी विचित्र अवस्था! मानो साक्षात् सुतीक्ष्णजी ही हों। अथवा रामप्रेम में पगली शबरी ही हो। क्या कहूँ, क्या लिखूँ? मैंने तो अपने इन नयनों से वे अवस्थायें देखी हैं। पर मैं तो भाई! कोरा का कोरा ही रह गया। अब इस शुष्क हृदय से जड़ लेखनी द्वारा उनका क्या वर्णन करूँ। कई भक्तजन तो रात में छिपकर उनका कीर्तन सुनते थे। वे जिस समय जो भी नाम या पद उच्चारण करते थे वही मानो मूर्तिमान होकर उनके सामने खड़ा हो जाता था कभी वे श्यामसुन्दर के साथ खेलते हैं तो कभी बालक की तरह फूट-फूटकर रोने लगते हैं और कभी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं।
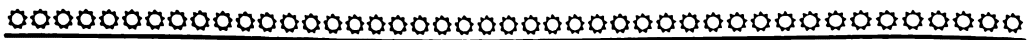
कभी कदलीवृक्ष के समान थर-थर काँपने लगते हैं, उस समय उनका दाँत से दाँत बजने लगता है। कभी शरीर के रोमकूपों से फव्वारे की तरह प्रस्वेद झरने लगता है और कभी पृथ्वी पर लोटते-लोटते पागलों की तरह प्रलाप करने लगते हैं। उस समय ऐसा मालूम होता है मानो श्यामसुन्दर इनके समीप ही हैं इन्हें मना रहे हैं तथा कभी ऐसा प्रतीत होता कि ये ही उन्हें मना रहे हैं। इसी तरह एक अद्‌भुत आनन्द में उनकी सारी रात व्यतीत हो जाती।

कभी जब महाराजजी बड़े आग्रह से पूछते थे तो आप एकान्त में बड़े संकोच से उन्हें अपना रहस्य सुनाया करते थे। उस समय आरम्भ में तो आप प्राय: यही कहते थे कि 'नानी के आगे ननिहाल की बातें! अजी! उस रूप में भी लीला करने वाले तो आप ही हैं। फिर आपकी बातें आपको क्या बताऊँ?' आखिर विवश होकर श्रीमहाराजजी को कहना पड़ता—'अच्छा' मैं ही सही, पर मैं पूछता हूँ, इसलिए तुम्हें बताना पड़ेगा।' तब आप बताना आरम्भ करते और कहते-कहते पागल हो जाते। कभी-कभी मुझ पर भी कृपा करके कुछ बता देते थे।

समष्टि संकीर्तन में इनकी ऐसी विचित्र चेष्टाएँ होती थीं कि कई बार श्रीमहाराजजी तथा दूसरे लोगों को भी हंसी आ जाती थी। कभी-कभी श्रीमहाराजजी इनके साथ खिलवाड़ भी किया करते थे। एक दिन आपने इनसे पूछा, गोदीराम! तू क्या माल उड़ाता है जो इस प्रकार प्रसन्न रहता है, और तेरा माथा शीशे की तरह दमकता है।' ये बालक की तरह बोले, 'महाराज! मैं तो वही बेझर की रोटी चटनी से खाता हूँ। कभी-कभी कुछ दाल-शाक होता है तो बना लेता हूँ। और कभी कहीं से कुछ मठा भी मिल जाता है। किन्तु महाराजजी! आपसे सच कहता हूँ कि जब मैं भोजन करता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो छप्पन प्रकार के भोग खा रहा हूँ। बस, रोटी खाकर फिर मुझे कोई और चीज खाने की रुचि नहीं होती। मुझे ऐसा मालूम होता है मानो मैंने घी के पीपे पी लिये हों। चटनी से रोटी खाने पर तो अधिक प्यास भी नहीं लगती। बस, आपकी बड़ी ही कृपा है।'
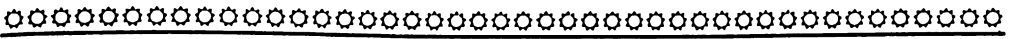
कभी-कभी गोदीराम यह भी कहा करते थे कि कीर्तन करते समय मुझे बड़ी सुगन्ध आती है और चमकती हुई-सी तेजोमयी मूर्तियों के दर्शन होते हैं। जब मैं स्नान करके सूर्य भगवान् को अर्घ्य देता हूँ तो बड़ी देर तक उनके सामने खड़ा रह जाता हूँ। मुझे सूर्य मण्डल में कोई सोने के रंग का देवता दिखाई देता है। कभी-कभी वह आकर मेरे शरीर में समा जाता है। उस समय मुझे बड़ा आनन्द आता है।

बाबू हीरालालजी इनसे बड़ा प्रेम करते थे और सर्वदा यह चाहते थे कि इनकी कुछ सेवा करें। किन्तु ये कभी कुछ स्वीकार नहीं करते थे। कभी-कभी पेंठ में वे इन्हें पकड़ लेते थे और कुछ खाने का बहुत आग्रह करते थे। उस समय एक-दो बार भले ही खाया हो। अधिकतर तो ये भाग ही जाते थे। एक दिन इनका कुर्ता फटा देखकर बाबूजी ने इन्हें नया कुर्ता पहना दिया ये बढ़िया कुर्ता पहनकर श्रीमहाराजजी के पास आये। किन्तु आज वे इनसे बोले तक नहीं। ये घबरा गए। सोचने लगे कि क्या कारण है जो आज महाराजजी नहीं बोले। महाराजजी ने किसी से कहलबा दिया कि गोदीराम से कहो, यहाँ से चला जाय। आज मुझे यह अच्छा नहीं लगता। जब गोदीराम से ऐसा कहा गया तो उनकी समझ में आया कि इस कुर्ते के कारण महाराजजी अप्रसन्न हैं। इन्होंने तुरन्त कुर्ता फेंक दिया और आपके चरणों में गिरकर खूब रोये। तब महाराजजी बोले, 'आज तूने बढ़िया कुर्ता कहाँ से पहना?' ये बोले, 'मुझे जबरदस्ती बाबूजी ने दे दिया। अब आप अपराध क्षमा करो। बस; अब मैं किसी से कोई चीज हीं लूँगा और यह कुर्ता भी वापिस कर दूँगा।' तब आप बोले, नहीं, अब कुर्ता वापिस करने मत जाना। इससे उनका चित्त दुःखी होगा। किन्तु कभी उनके पास मत जाना। देखो, तुम्हारी गरीबी से ही भगवान् तुम पर प्रसन्न हैं। भगवान् तो गरीब परवर हैं, दीनबन्धु हैं, पतितपावन हैं। बड़े-बड़े राजे-महाराजे अपना राज-पाट छोड़कर इसी गरीबी को धारण करके वन-वन भटकते फिरते हैं। किन्तु जब तक उनके भीतर से अमीरी की बू बिलकुल नहीं हट जाती तब तक उन्हें भगवान् का दर्शन नहीं होता। देखो, सावधान! यह गरीबी तुमको भगवान् ने बड़ी कृपा करके

दी है। इसे हाथ से मत जाने देना। भजन के मार्ग में कनक और कामिनी—ये ही दो घाटी बड़ी दुर्गम हैं।

'व्यास कनक अरु कामिनी, ये लम्बी तलवार।
निकसे हैं हरिभजन को, बीचहिं लीने मार॥
व्यास कनक अरु कामिनी, ये हैं कड़वी बेल।
बैरी मारै दाउ दै ये मारें हँस खेल॥'

तुम्हें अपने भाग्यवश जैसा भी रूखा-सूखा टुकड़ा और फटा-पुराना कपड़ा मिला है उसीमें मस्त रहो। किसी चीज की कभी स्वप्न में भी इच्छा मत करो। नहीं तो, भगवान् तुम्हारे हृदय में नहीं रह सकेंगे।

'मन लाग्यो सुख भोग में, तरह चहै संसार।
नारायण कैसे बनै, दिवस रैन को प्यार॥'

तब वहाँ बैठे हुए एक अमीर भक्त ने पूछा, 'तो क्या महाराजजी! अमीरों को भगवत्प्राप्ति नहीं होगी?' तब आपने कहा, 'नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है कि सब गरीबों को भगवत्प्राप्ति हो ही जाय और अमीरों को नहीं ही हो। इतिहास में दोनों ही तरह के उदाहरण देखे जाते हैं। राजा जनक तो अमीर ही थे। अतः ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती कि साधु होकर अथवा गृहस्थ रहकर, अमीर होकर या गरीब रहकर, गुणी होकर या गुणहीन रहकर तथा विद्वान होकर अथवा मूर्ख रहकर ही भगवान् की प्राप्ति हो ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। वहाँ तो हृदय के भाव की ही प्रधानता है। 'भावग्राही जनार्दनः।' तुम कुछ बनने की इच्छा मत करो। प्रारब्धवश जहाँ और जिस स्थान पर हो अपने कर्तव्य का ठीक पालन करते हुए श्रीसद्गुरुदेव के चरणों का आश्रय लेकर भगवच्चिन्तन में लग जाओ। न कुछ त्यागो, न ग्रहण करो। जो कुछ होगा आप ही हो जायगा तुम तो केवल सर्वभाव से भगवान् के हो जाओ, तथा निरन्तर यह भावना रखो कि मैं भगवान् का हूँ और भगवान् मेरे हैं।'

इसके पश्चात् गोदीराम किसी भी प्रलोभन में नहीं फँसे। ये कीर्तन करते थे, इससे इनके भतीजे जोरा की बहू की इनमें कुछ अश्रद्धा हो गई थी। तभी

उसको साँप ने काटा और उसकी बड़ी दुर्दशा हुई। चेत होने पर उसने इनसे अपना अपराध क्षमा कराया। तब उसका कष्ट दूर हुआ। इसी प्रकार बाँध पर, जब वह बनाया जा रहा था, किसी व्यक्ति ने इनमें अश्रद्धा की। वह तुरन्त पागल हो गया। जब वह मेरे पास आया तो मैंने कहा, 'तुमने किसी का अपराध किया है।' तब उसने सब बातें बतायीं और फिर गोदीराम से क्षमायाचना करने पर वह ठीक हो गया। इसके पश्चात् उसका भजन निरन्तर बढ़ता ही गया।

अन्त में जब गोदीराम की आयु प्रायः पचहत्तर वर्ष की हुई तो उन्हें सामान्य-सा ज्वर हुआ। वे बराबर चलते-फिरते और राम-नाम उच्चारण करते रहे। जब वे मरणासन्न हुए तो सब लोग इकट्ठे होकर उनके घर गए और खूब जोरों से कीर्तन किया। उसी समय राम-नाम उच्चारण करते वे इस दुःखमय संसार को त्यागकर प्रभु की चिदानन्दमयी गोद में सो गए।

दरियाबसिंह

यह वरसेर का रहने वाला जाति का अहीर था। उर्दू-फारसी अच्छी जानता था। श्रीमहाराजजी को बढ़िया-बढ़िया शेरैं और गजलें सुनाया करता था। जिस समय यह कीर्तन में मस्ती से नृत्य करता था, ऐसा मालूम होता था मानो यह इस दुनिया का आदमी नहीं है। इसे आवेश बहुत होते थे। कभी श्रीराधिकाजी का, कभी श्यामसुन्दर का, कभी महाराजजी का और कभी किसी देवता का। इसका कारण यही जान पड़ता है कि इसका अन्तः करण दर्पण की तरह स्वच्छ था। अतः यह जब जिसकी चर्चा सुनता अथवा जिस रूप का चिन्तन करता उसी से तद्रूप हो जाता था। ध्यानावस्था में यह सूक्ष्म शरीर से लोकान्तरों में भी हो जाता था तथा इसे बार राम-कृष्णादि भगवत्स्वरूपों के दर्शन भी होते थे। यह बड़ा सरल और गम्भीर आदमी था। अपने अनुभव यह या तो श्रीमहाराजजी को सुनाता था या कभी मुझसे कोई बात कह देता था। दुनियादार लोग तो इसे पागल समझते थे और इसकी दिल्लगी उड़ाया करते थे। किन्तु श्रीमहाराजजी

का इस पर बड़ा ही स्नेह था। उनकी कृपा से इसके स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही ऐसे बने कि क्या कहें?

एक बार यह श्रीमहाराजजी के पास था। यह उनके जंगल के खेलों का प्रधान साथी था। इसने उनसे घर जाने के लिए आज्ञा माँगी। किन्तु आपने मना कर दिया। तब इसने विवश होकर कहा, 'महाराजजी! मुझ पर साढ़े चार हजार रुपया कर्जा है। मैं घर जाकर उसका कुछ प्रबन्ध करना चाहता हूँ। नहीं तो अमुक तारीख पर मेरी जो थोड़ी-सी जायदाद है वह नीलाम हो जायगी। फिर मेरे बालकों के निर्वाह के लिए कुछ नहीं रहेगा।' किन्तु आपने डाँटकर कहा, 'चुप रह, नहीं जा सकता' यह बेचारा चुप हो गया।

किन्तु उसी समय आपने यह संकल्प किया कि यदि कल तक स्वभाव से ही इस रुपये का कोई प्रबन्ध हो जाय तो इसे यह रुपया दे देंगे। अपना यह विचार आपने किसी से प्रकट नहीं किया दूसरे दिन सबेरे ही एक भक्त ने तीन हजार रुपये की थैली लाकर आपको भेंट की। आपने पूछा, 'क्या लाया है?' वह बोला, 'तीन हजार रुपया है इसे आप जहाँ उचित समझें लगा दें।' आप बोले, 'इस रुपये के विषय में जैसा तेरा संकल्प हो उसी काम में लगा दिया जाय।' वह बोला, 'महाराजजी! मेरा कोई संकल्प नहीं है, आप जैसा उचित समझें वैसा करें।' तब आपने कहा, 'मेरे मन में तो कल से यह संकल्प है कि यह रुपया इस दरियाबसिंह को दे दिया जाय, क्योंकि कर्जे के कारण इसकी जायदाद नीलाम हो रही है। सो यदि तुम्हारी स्वाभाविक श्रद्धा हो तो ऐसा करो।' यह सुनकर उसने बड़ी प्रसन्नता से कहा, 'बहुत अच्छी बात है।'

तब आपने मुझे बुलाकर सारी बात कहीं, क्योंकि वह मेरे ही सम्पर्क का आदमी था और उस पर जिनका सबसे अधिक रुपया था वे पण्डित लेखराजजी भी शिवपुरी के ही थे। आप बोले, 'यह दरयाबसिंह तो बावला आदमी है। तू इस रुपये को ले जा और इसका भुगतान करवा दे।' मैंने कहा, 'महाराजजी! कर्जा तो साढ़े चार हजार रुपया है और यह कुल तीन हजार ही है। आप बोले,

'उन लोगों को समझा-बुझाकर बाकी रुपया छुड़वा देना। तू चला जा, वे सब लोग मान लेंगे।'

तब मैं रुपया लेकर शिवपुरी गया और उन लोगों से सब बात कही। उन्होंने कहा, 'जैसे आप कहें हम तैयार हैं।' बस, तीन हजार में ही सबका फैसला हो गया।

इस प्रसंग में एक बड़े रहस्य की बात छिपी हुई है। वह यह कि एक बार शिवपुरी में उत्सव हुआ था। तब दरियाबसिंह ने सौ रुपये लेखराजजी से कर्ज लेकर श्रीमहाराजजी को दिये थे। आपने बहुत मना भी किया, परन्तु यह नहीं माना। पीछे आपको पता लगा कि यह रुपया उसने कर्ज करके दिया है। तब आपको और भी पश्चात्ताप हुआ। किन्तु सोचा कि अब लौटाने से दुःख होगा। अच्छा, फिर किसी मौके पर देखा जायगा। दैववश वह मौका इस समय आ गया और सौ रुपये के बदले उसके पूरे कर्जे का भुगतान करना पड़ा। महापुरुष में ऐसी ही अद्भुत उदारता होती है।

यह दरियाबसिंह सम्वत् २००२ विक्रमी के श्रावण या भादों मास में प्रायः एक महीना बीमार रहा। उस समय यह घर पर ही था। इसके दो पुत्र शिवध्यानसिंह और रामगुलामसिंह भी इसके पास ही थे। इनमें छोटा गुल्लू उसके अनुरूप ही है। दोनों पुत्रों ने बार-बार पूछा कि क्या श्रीमहाराजजी को बुला दें। किन्तु इसने यही कहा कि अब मेरी जीने की इच्छा नहीं है। और श्रीमहाराजजी परमार्थतः मुझसे पृथक् नहीं हैं। अतः लोक दिखावे के लिये उन्हें बुलाकर कष्ट देने की क्या आवश्यकता है। अब तो इस स्थूल देह को त्यागकर दिव्य देह से निरन्तर उन्हीं की सन्निधि में रहूँगा। तुम लोग भी यदि मुझे भगवन्नाम सुना सको तो मेरे पास रहना, नहीं तो मरते समय मेरे पास से हट जाना मुझे तो भगवान् बुला रहे हैं। मैं तो उनकी दिव्य चिन्मयी गोद में ही सदा निर्भय होकर शयन करूँगा।

बस अन्त समय तक वह भगवन्नाम ही लेता रहा और अपने छोटे पुत्र गुल्लू से यह कहता कि सामने श्रीमहाराजजी खड़े हुए मुझे बुला रहे हैं, वह

सदा के लिये इस संसार से चला गया।' पीछे गुल्लू ने बड़े ही भक्तिभाव और नम्रता से श्रीमहाराजजी को एक पत्र लिखा था कि पिताजी को तो आपने अपने धाम श्रीवृन्दावन में बुला लिया, अब आप मुझ अनाथ बालक का भी ध्यान रखें। उसका पत्र पढ़कर श्रीमहाराजजी गद्‌गद हो गये और उसी समय मुझे बुलाकर कहा कि दरयाबसिंह का शरीर शान्त हो गया है। उसके चौबीस घण्टे का अखण्ड कीर्तन और जितना भी हो सके उतना प्रसाद वितरण करना चाहिए। उस समय आपने दरयाबसिंह की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी।

पतितोद्धार के कुछ प्रसंग

पूज्य श्रीमहाराजजी के द्वारा भक्त और सत्संगियों का ही कल्याण नहीं हुआ, आपके शरणागत होने पर अनेकों पतितों का भी उद्धार हुआ है। ऐसे प्रसंग प्राय: अदृश्य जगत् से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये हर किसी को उनका पता नहीं लग सकता। अत: ऐसे कितने जीवों का आपके द्वारा कल्याण हुआ है—यह तो श्रीभगवान् ही जानें, हम तो केवल कुछ ऐसे प्रसंगों का उल्लेख करते हैं, जिनका किसी भी नाते अपने से भी सम्बन्ध था और इसलिये जो किसी प्रकार अपने भी अनुभव में आ सके।

एक प्रेत का उद्धार

पण्डित जयशंकरजी के एक चाचा श्रीमहाराजजी के बरोरा पधारने से पहले ही मर चुके थे। एक दिन पण्डितजी ने उन्हें स्वप्न में देखा तो पूछा कि चाचा! आपका तो देहान्त हो गया, बताइये आजकल आप कहाँ हैं? ऐसा कहते ही उनका बड़ा भयानक रूप हो गया। अत्यन्त लम्बा शरीर, बड़ी-बड़ी पिंगल जटाएँ और भयंकर दाढ़ों वाला मुँह। इन्हें देखते ही वह मुँह फाड़कर खाने के

लिए दौड़ा। ये घबरा गये और 'राम' नाम उच्चारण करने लगे। इससे इन्हें कुछ ढाँढस हुआ और पूछा कि बताओ, आपकी क्या गति हुई? तब वे बोले, 'भाई! मैं भयंकर प्रेत हो गया हूँ और अत्यन्त दुखी हूँ। मुझे न खाने को मिलता है न पीने को। केवल विष्ठा और मूत्र खाने को ही मेरा अधिकार है। सो भी इतना बड़ा शरीर और मुँह सुई के छिद्र के बराबर! इससे मेरी बड़ी दुर्दशा है। मैंने आशा की थी कि तुम मेरी कुछ सहायता करोगे। किन्तु तुमने तो कुछ भी नहीं किया।' ऐसा कहकर वे फूट-फूटकर रोने लगे।

बस, उनकी आँखें खुल गयीं ओर भय के कारण उन्हें निद्रा न आयी। चाचा का भयंकर रूप और दुर्दशा जागने पर भी उनके हृदय पर अंकित रही। दूसरे दिन ये सब बातें महाराजजी को सुनाकर जयशंकरजी फूट-फूटकर रोने लगे और उनके चरण पकड़कर बोले, 'महाराज! मेरे चाचा की रक्षा करो।' महाराजजी बड़ी शान्त और गम्भीर मुद्रा से सुन रहे थे। आपने जयशंकरजी को आश्वासन दिया और बोले, 'भाई! मैंने भी एक-दो बार किसी भयंकर मूर्ति को रात में प्रणाम करते देखा है। मैंने तो यही जाना था कि यह कोई प्रेत है। परन्तु तुम डरोगे ऐसा सोचकर तुमसे नहीं कहा। अब तुम्हारे स्वप्न से निश्चय हो गया कि वह प्रेत ही था। सो, कोई चिन्ता की बात नहीं। आज ही हम सब इकट्ठे होकर उसके निमित्त कुछ कीर्तन करें तो मेरा विश्वास है कि उसका उद्धार हो सकता है।' भाई! भगवन्नाम में पाप नाश करने की जितनी शक्ति है, उतना पाप तो पापी पुरुषकर भी नहीं सकता।

'नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरे।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥'

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं –

'चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहिं आनउ पाऊ॥
नाम कल्पतरु काल कराला। सुमिरत सकल शमन भव जाला॥
अपर अजामिल गज गणिकाऊ। भये मुक्त हरिनाम प्रभाऊ॥
कहों कहाँ लगि राम बढ़ाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई॥'
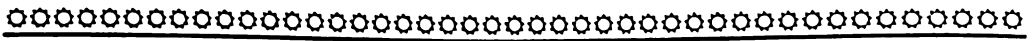
ऐसा कहकर आपने मुझे आज्ञा दी कि आज शाम को हम और निजामपुर के सब भक्त मिलकर इनके चाचा के निमित्त कीर्तन करेंगे। तुम सबको सूचित कर दो। और नित्यानन्द से कहा, 'तुम कुछ प्रसाद का प्रबन्ध कर लो। तथा यहाँ की सफाई करके कीर्तन की जगह लीपकर वन्दनवार लगा दो।' उस समय के कीर्तनों में यद्यपि आजकल की तरह घंटा, झाँझ, नगाड़े, तबला और मृदंग आदि नहीं थे और न विशेष दल-बल ही था, तथापि जीता-जागता भाव अवश्य था। उस समय कीर्तन में प्रत्यक्ष जादू था। वह भूत की तरह शिरों पर चढ़कर कठपुतलियों की तरह नचाता था। उसने स्वयं ही कृपा करके हम लोगों को अपना चस्का लगाने के लिये अपना वास्तविक रूप हमारे सामने प्रकट किया था। जिस प्रकार हलवाई थोड़ी-सी बानगी चखाकर ग्राहक को अपनी मिठाई में आकर्षित करता है, उसी प्रकार नाम-नरेश ने अपनी पतितपावनता का हमें प्रत्यक्ष परिचय दिया था।

अस्तु। मायंकाल में थोड़ी-सी तैयारी करके निजामपुर के ग्रामीण भक्त और हम सबके सहित मण्डल बनाकर श्रीमहाराजजी खड़े हुए। पहले श्रीहरि को प्रणाम किया, और फिर कुछ प्रार्थनात्मक श्लोक कहे, जिनके प्रभाव से हमारे सबके हृदय भाव तथा नाम महिमा से भर गए। इसके पश्चात् आपने यह भी कहा कि हम सब भाई के नाते उनके कल्याण के लिये श्रीहरि से प्रार्थना करें कि वे उन्हें शान्ति प्रदान करें और प्रेत योनि से छुड़ाकर श्रीचरणों की प्राप्ति करायें। तदनन्तर दीर्घस्वर से ओंकार का उच्चारण कर सिंहगर्जन से 'राम' नाम का घोष किया।

'भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम् ।।❖

बस, फिर 'रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम' इस ध्वनि का कीर्तन आरम्भ हुआ। आरम्भ होते ही आनन्द की एक ऐसी लहर उठी कि

❖ **'राम राम' ऐसी गर्जना संसार के बीजों को भून डालने वाली है, सुख और सम्पत्तियों की प्राप्ति कराने वाली है और यमदूतों को भयभीत कर देने वाली है।**

ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सारे संसार का पाप-ताप सदा के लिये बह गया है और सभी परमानन्द सागर में गोते लगा रहे हैं। उस समय कीर्तन में प्रायः सौ आदमी होंगे। वे सभी प्रेम में मतवाले हो गये और सबके सब ही रुदन करते हुए गद्गद कण्ठ से कीर्तन करने लगे। सबका ताल-स्वर भी ऐसा मिला हुआ था मानो सबके कण्ठ से अकेले श्रीमहाराजजी ही कीर्तन कर रहे हों। अजी! क्या कहें उस समय की बात! ऐसा प्रतीत होता था मानो जड़-चेतन, स्थावर-जंगम सारा जगत् निरन्तर श्रीभगवन्नाम उच्चारण कर रहा है। रोने के बाद सभी लोग खिलखिलाकर हँसे और आनन्द में विभोर होकर बालकों की तरह पृथ्वी पर लोटने लगे। फिर उठकर सभी नृत्य करने लगे। इस प्रकार प्रायः डेढ़ घण्टे कीर्तन हुआ। इसके पश्चात् विराम होने पर सभी प्रणाम करके बैठ गए। फिर निजामपुर के किसी बालक ने पद गाया और प्रसाद वितरण हुआ तथा सब लोग यथास्थान चले गये।

इसके पश्चात् उसी रात्रि जयशंकरजी को फिर स्वप्न हुआ। उन्होंनें देखा कि उनके चाचा एक सुन्दर विमान पर बैठ कर शंख-चक्र गदा-पद्मधारी चतुर्भुज रूप से बैकुण्ठ को जा रहे हैं और उन्हें धन्यवाद देते हुए हृदय से लगाकर आशीर्वाद दे रहे हैं तथा कहते हैं 'बेटा! तुम्हारे कारण आज मेरा उद्धार हुआ। आज यदि मैं तुम्हारा चाचा न होता तो अनन्त कल्पों तक भी इस प्रेतयोनि से मेरा छुटकारा न होता। श्रीमहाराजजी के चरणों में मेरा कोटि-कोटि प्रणाम निवेदन करना। अब मैं बैकुण्ठ जा रहा हूँ। यह कहकर वे विमान में बैठकर बैकुण्ठ चले गए। उस तेजोमय विमान को चार चतुर्भुज मूर्ति विष्णुपार्षद उठाये हुए थे।

दूसरे दिन जब महाराजजी बरोरा गये तब जयशंकरजी ने सारा वृत्तान्त सुनाया और उनकी ओर से महाराजजी को अनेकों प्रणाम किये। उस समय जयशंकरजी प्रेमोन्मत्त-से हो रहे थे।

सीताराम का उद्धार

सीताराम भी इन्हीं पण्डित जयशंकर और नित्यानन्द का चचेरा भाई था। इसका देहावसान होने के कुछ दिनों बाद नित्यानन्दजी ने स्वप्न में देखा कि गंगाजी में बड़ी भारी बाढ़ आयी हुई है, जिसके कारण जंगल और आस-पास के गाँवों में जल भर गया है। उसी अथाह और अपार जल में सीताराम तैर रहा है। तथा तैरते-तैरते जब थककर डूबने लगा है तब उसने नित्यानन्द को पुकार कर कहा है, भाई! मुझे बचा।' नित्यानन्द ज्यों ही उसे बचाने गया है त्यों ही वह डूब गया है और फिर तुरन्त एक ब्याही गाय की बछिया होकर उसी जल में तैरने लगा है। नित्यानन्द ने झपटकर बछिया को उठा लिया है। उसके माथे पर एक सफेद टीका है। वह बछिया कहती है, 'मैं सीताराम हूँ और ईसापुर में अमुक मनुष्य के यहाँ बछिया होकर जन्मा हूँ। तुम मेरी रक्षा करना, महाराजजी से मेरा प्रणाम कहना और मुझे उनके दर्शन कराना। बस, उसी से मेरा उद्धार हो जायगा।'

दूसरे दिन नित्यानन्दजी ने वह स्वप्न श्रीमहाराजजी को सुनाया। महाराजजी बोले, 'आज का प्रोग्राम समाप्त होने पर ईसापुर चलेंगे।' कथा समाप्त होने पर सब लोग ईसापुर गये। वहाँ जाकर उसी अहीर के घर पहुँचे तो देखा कि ठीक वैसी ही बछिया एक दिन पहले उसके पैदा हुई है। श्रीमहाराजजी ने सबके साथ मिलकर कीर्तन किया और उस बछिया को स्पर्श करके चले आये। इसके दो दिन बाद ही वह बछिया मर गयी। फिर नित्यानन्दजी को स्वप्न हुआ कि सीताराम उस पशुयोनि से छूटकर भगवद्धाम को चला गया है।

इन घटनाओं के कारण दो ही महीनों में कीर्तन की इतनी वृद्धि हुई कि सारा निजामपुर पागल हो गया। श्रीगौरावतार के समय नवद्वीप की जो अवस्था हुई थी ठीक वही स्थिति उस समय निजामपुर की हो गयी। स्त्रियाँ चक्की चलाते, गोबर थापते, झाडू लगाते, बरतन मांजते, रोटी बनाते और बच्चों को खिलाते-पिलाते समय भी निरन्तर हरिनाम गान करती रहती थीं। बच्चा माँ की गोद में
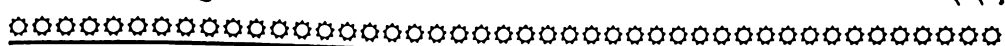
दूध पी रहा है और उसकी माँ हरिनाम उच्चारण कर रही है; बस, वह भी दूध पीना छोड़कर ताली बजाने लगता। बालक रास्ते में चल रहे हैं और ताली बजाकर कीर्तन करते जाते हैं। छोटे से लेकर बड़े तक सभी का स्वर-ताल ठीक मिल जाता था। बच्चे दल के दल मिलकर कीर्तन करते थे, उन्हें खेल नहीं सुहाता था।

लेखराज का उद्धार

जिन दिनों निजामपुर में कीर्तन का प्रबल प्रवाह चल रहा था, वहाँ दो-चार व्यक्ति उसकी निन्दा करने वाले भी थे। किसी का बाप विरोधी था तो किसी की माँ और किसी का बेटा—यह देवासुर-संग्राम भी सदा से ही चला आया है। यह भी भगवल्लीला का सहायक ही है। यदि छः रसों में कड़वा या तीखा रस न होता तो मधुर रस की क्या महिमा होती? यदि घाम न होती तो छाया का सुख भी कौन जानता? इसी प्रकार इस छोटे-से गाँव में भी दो-चार आदमी इस दिव्य और अमानवीय लीला के विरोधी थे। कोई-कोई मेरी निन्दा करते थे कि इसने हमारे गुरुओं की परम्परा का नाम डुबो दिया। दिन-रात पागल की तरह 'हरि-हरि' करता रहता है। इसे न अपने मान का ख्याल है, न प्रतिष्ठा का। यह घूरे और गलियों में जमीन पर लोटता है तथा पागल की तरह रोता-चिल्लाता है। इसे न खाने का होश है न पीने का। हमारे गुरुजी तो बड़े ठाट-बाट से पलंग पर बैठे रहते थे। एक-एक दिन बारी-बारी से हमारे यहाँ भोजन करते थे। हर रोज हम लोगों को रामायण की कथा सुनाते थे और चलते समय बड़े सत्कार से भेंट लेकर विदा होते थे। यह तो दिन-रात स्वयं पागल रहता है और सारे गाँव को पागल बनाये हुए हैं, दिन-रात स्वयं नाचता और दूसरों को भी नचाता है। घर में बेचारी स्त्री को अकेली छोड़कर आया है और अब जाने का नाम नहीं लेता। भला, शिवपुरी के लोग हमें क्या कहेंगे? दिन-रात हरिबाबा के संग घूमता है। भाई! हमें तो दया आती है। आखिर, हमारे गुरुजी का ही तो लड़का है।

इस प्रकार की बातें करने वालों में प्रधान थे लेखराज। इस समय इनकी अवस्था प्राय: अस्सी साल की थी। ये बिना पढ़े-लिखे, बड़े ही हेकड़ लठा पांडे थे। किन्तु इनका बड़ा लड़का लालसिंह बड़ा विनयी और नम्र भक्त था। यह बेचारा मन ही मन रोया करता था, लुक छिपकर कीर्तन में आता था। और भगवान् से प्रार्थना किया करता था कि प्रभो! मेरे पिता की बुद्धि शुद्ध करो। आपकी निन्दा करके तो ये नरक के ही भागी होंगे। महाराजजी गांव में आते तो लेखराज जंगल में चला जाता था और मन में आ जाती तो उन्हें कुछ खरी-खोटी भी सुना देता था।

दैवयोग से एकबार वह बीमार पड़ा और दिनों-दिन गिरता ही गया। आखिर, उसके कण्ठ में कफ घिर आया और उसे बड़ा ही कष्ट हुआ। उसे सचमुच नरक की यातनायें मूर्त्तिमती होकर दिखाई देने लगीं और वह बार-बार चिल्लाने लगा, 'हाय! इसने मेरे भाला भोंक दिया। अरे! इसने मेरी आँखें फोड़ दीं। ओह! यह मुझे तलवार से काट रहा है। अरे लालसिंह! देख, यह कुत्ता मुझे काटने के लिय आ रहा है। बिच्छू मुझे डंक मार रहे हैं। यह साँप मुझे डस रहा है। अरे! कोई मुझे बचाओ।' जब वह इस प्रकार प्रलाप करने लगा तो उसका भक्त पुत्र लालसिंह अपने कुटुम्बी भाई मुकुन्दराम के पास जाकर रोया और फिर वे दोनों मिलकर मेरे पास आये। लालसिंह अपने पिता का हाल सुनाकर मेरे पाँव पकड़कर रोने लगा। मैंने कहा, 'भाई! घबराने की कोई बात नहीं; आओ, सब मिलकर चलें और उन्हें कीर्तन सुनावें। ऐसा कोई भी पाप या दु:ख नहीं है, जो भगवन्नाम सुनने पर शेष रहे।' उन दिनों मैं हर समय यह छन्द गुनगुनाता रहता था–

'पाई न गति केहि पतितपावन राम भज सुनु शठ मना,
गणिका अजामिल गृध्र व्याध गजादि खल तारे घना।
आभीर यवन किरात खल स्वपचादि अति अघरूप जे,
कहि नाम वारेक तेपि पावन होत राम नमामि ते।।'

बस, हम सब इसी छन्द का कीर्तन करते चले और दो-तीन आदमी दौड़कर अन्य कीर्तन वालों को भी बुला लाये। उसके घर का सारा आँगन कीर्तन वालों से भर गया। मैंने जाकर उसकी जो दुःख की अवस्था देखी उससे मेरा हृदय टूक-टूक हो गया। 'हमने रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम' यह कीर्तन आरम्भ कर दिया। बस, थोड़ी ही देर में मानो कीर्तन की ज्वाला भभक उठी। उसमें लेखराज का सारा पाप तापरूप कूड़ा भस्म होने लाग। मुझे स्पष्ट ही यमदूत दिखाई पड़े। वे क्रोध में आकर हम लोगों की ओर आये। इध र हमें भी यह अभिमान था कि हम रामदूत हैं, ये क्षुद्र यमदूत हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं? उन्होंने मुझसे स्पष्ट ही कहा कि यह तो कीर्तन का विरोधी है, तुम उसका पक्ष क्यों लेते हो? मैंने कहा, 'बस, तुम यहाँ से चले जाओ। नहीं तो याद रखो–

'दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमान शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥'

'न मे समा रावणकोटयोऽधमा रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।

मैं कौशल नरेश पुण्यकर्मा भगवान् राम का दास, शत्रु की सेनाओं का संहार करने वाला, पवननन्दन हनुमान हूँ। करोड़ों अधम रावण भी मेरी बराबरी नहीं कर सकते, क्योंकि मैं श्रीराम का दास हूँ, मेरे पराक्रम का कोई पारावार नहीं है।

मेरे इस प्रकार फटकारने पर वे यमदूत भाग गये और वह बूढ़ा सचेत होकर बैठ गया। उसका सब संकट दूर हो गया और उसे नाम नरेश की महिमा का भी अनुभव हुआ। इससे उसकी नाम में हार्दिक रुचि हो गयी। जो अभी थोड़ी देर पहले मृत्युशय्या पर पड़ा न जाने क्या-क्या प्रलाप कर रहा था, वही अब नाम के प्रताप से पवित्र ओर निष्पाप हो गया। उसका हृदय भक्तिभाव से गद्गद हो गया। वह अपने पूर्वकृत्यों का स्मरण करके रोने और पश्चात्ताप करने लगा। उसमें शय्या से उतरने की शक्ति नहीं थी, फिर भी वह उतर पड़ा और

अपने आँगन में लोटने लगा। उसने एक-एक करके सभी भक्तों के चरणों की धूलि मस्तक पर धारण की। फिर हम सब भगवान् की पतित-पावनता का जयघोष करते वहाँ से चले आये।

वह बूढ़ा पीछे कई वर्षों तक जीवित रहा। वह बड़े भक्ति-भाव से थिरक-थिरककर कीर्तन करता। और उसका अन्तःकरण प्रेम से भर गया था। पीछे वह अनायास ही चलते-फिरते एक दिन भगवन्नाम लेता भगवद्धाम को चला गया।

भगवन्ता की बहू का उद्धार

निजामपुर के मेवाराम अहीर का लड़का था भगवन्ता का। उसकी स्त्री का अभी द्विरागमन (गौना) ही हुआ था। प्रारब्धवश वह बीमार पड़ गयी और दो-चार दिन में उसकी अवस्था बिगड़ गयी। जब उसे पृथ्वी पर ले लिया गया तो किसी ने मुझसे कहा कि गुरुजी! भगवन्ता की बहू मरणासन्न है। क्या वहाँ कीर्तन करेंगे? मैंने कहा, 'हम तो कीर्तन के लिये हर समय कमर कसे तैयार रहते हैं; जल्दी चलो।'

बस, सब लोग इकट्ठे होकर उसके आँगन में पहुँचे और 'श्रीराम जयराम जय जय राम' इस मन्त्र का कीर्तन करने लगे। किन्तु आज के कीर्तन में कुछ विघ्न-सा प्रतीत होने लगा। सबके कण्ठ रुक से गये और मुख से नाम निकलना कठिन हो गया। आज का कीर्तन हमें बोझ-सा मालूम हो रहा था। इससे मेरा चित्त व्याकुल हो उठा। मैंने श्रीमहाराजजी का स्मरण किया और पृथ्वी पर लोटकर साष्टाँग प्रणाम किया। तब मेरे हृदय में स्फूर्ति हुई कि इसका हम लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं हुआ है। यह नई ही इस गाँव में आयी है। इसी से इसके लिए हमारा भाव ठीक नहीं बन रहा है। इसी समय मुझे अपने अभिन्न कलेवर विपत्ति विदारण, असुर संहारण मारुतिनन्दन का स्मरण हुआ और मैंने गरज कर कहा—

'ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
हाँक सुनत दशकंध के भये बन्धन ढीले॥'

बस, श्रीहनुमानजी मेरे हृदय में आ विराजे और मैं सिंह गर्जन से बार-बार उस मरणासन्न व्यक्ति के कान में 'श्रीराम जय राम जय जय राम' यह मन्त्र सुनाने लगा। इस मन्त्र का प्रथम बार श्रवण कराने पर उसने आँखें खोल दीं, दूसरी बार में वह उठकर बैठ गयी और तीसरी बार में स्वयं यह मन्त्र उच्चारण करने लगी।

यह देखकर सभी लोग बड़े आश्चर्यचकित हुए। उसने कुछ कहने का संकेत किया, तो सब लोग कीर्तन बन्द करके उसकी बात सुनने लगे। उसने धीरे-से कहा, 'मुझे यमदूतों ने पकड़ा हुआ था। वे बड़े ही भयंकर थे और मुझे बाँधकर लिये जाते थे। मैं बहुत घबराई हुई थी कि किसी ने बड़े जोर से मेरे कानों में 'राम' कहा। उसी समय वे दूत मुझसे बोले, 'तू जल्दी चल, नहीं तो हम तुझे पीटेंगे।' मैंने घबराकर 'श्रीराम जय राम जय जय राम' इस मन्त्र का उच्चारण किया। बस, मेरे देखते हुए एक अत्यन्त विशालकाय वानराकार व्यक्ति हाथ में मुद्गर सा लिये वहाँ आया। उसके आते ही वे यमदूत भाग गये। उसने कहा, 'तू डरे मत, अब सीधी राम के धाम को चली जा।' अब मेरे सामने विमान तैयार है। मैं श्री रामजी के पास जा रही हूँ।' यह कहकर वह मुखसे 'श्रीराम जय राम जय जय राम' उच्चारण करती लेट गयी और अनायास ही इस अनित्य शरीर को त्यागकर परमधाम चली गयी।

आज यह नवीन घटना देखकर सभी भक्त प्रेम से पागल हो गये और जोर-जोर से कीर्तन करने लगे तथा कीर्तन करते हुए ही उसके शव को ले चले। वहाँ से गंगाजी प्रायः चार कोश थीं। वहाँ तक खूब धूम-धाम से कीर्तन हुआ। फिर अन्त्येष्टि क्रिया से निवृत्त होकर गाँव की ओर चले तो सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। आपस में कहने लगे कि इसका तो कीर्तन से कोई सम्बन्ध भी नहीं था। वह तो अभी नयी ही गाँव आयी थी और श्रीमहाराजजी को भी

नहीं जानती थी। केवल भगवन्ता और गाँव के नाते ही इस पर श्रीभगवान् की कृपा हो गयी। वास्तव में श्रीभगवन्नाम की ऐसी ही महिमा है। ऐसी ही अनेकों घटनाओं के कारण अब हमें यमराज का तो कुछ भी भय नहीं रहा है—

शमन दमन रावण राजा रावणदमन राम ।
शमन भवन न हय गमन जे लय रामेर नाम ॥'

कुछ अद्‌भुत प्रसंग

यों तो श्रीमहाराजजी के जीवन में इतने अद्‌भुत प्रसंग आये हैं कि उन्हें एक शीर्षक या एक ग्रन्थ के क्षुद्र कलेवर में संगृहीत करना नितान्त असम्भव है। आपका तो सारा चरित्र ही विचित्रताओं से परिपूर्ण है। फिर भी उनमें से कुछ घटनाएँ, जो मुख्य प्रसंग में छूट जाती हैं और इस समय स्मृतिपथ में आ रही हैं यहाँ संकलित करता हूँ। ये घटनाएँ विभिन्न समय में विभिन्न स्थानों पर घटी हैं, इनका आपस में कोई क्रमिक सम्बन्ध नहीं है।

खूबीराम की पुत्री को जीवनदान

एक दिन श्रीमहाराजजी ने मुझसे कहा कि 'आज सायंकाल में गवाँ के भट्‌टा के पास जंगल में कीर्तन करेंगे, तुम निजामपुर के सब आदमियों को लेकर आ जाना और मैं गवाँ के सत्संगियों को लेकर वहाँ पहुँचूँगा।' अतः मैं प्रातःकाल बरोरा का कथा स्वाध्याय का प्रोग्राम पूरा होने पर दोपहर को निजामपुर पहुँचा तथा सब लोगों से कहा कि आज शाम को ६ बजे गवाँ पहुँचना है।

बस, सब लोग ठीक ५ बजे चलने के लिये तैयार हो गये। उसी समय खूबीराम की लड़की जावित्री, जो बहुत दिनों से बीमार थी, मरणासन्न हो गयी।

तब खूबीराम ने कहा कि थोड़ा कीर्तन इसके निमित्त करके चलेंगे अतः सब लोग उसकी कल्याण कामना से कीर्तन करने लगे। किन्तु केवल आधा घंटा कीर्तन किया होगा कि वह बालिका सचेत होकर बैठ गयी। जब तो वह पृथ्वी पर दक्षिण को पाँव किये नितान्त मूर्च्छित अवस्था में पड़ी थी। उसके कण्ठ में कफ बोल रहा था और उसके इने-गिने अन्तिम श्वास ही शेष थे।

उसने आँखें खोलकर इधर-उधर देखा और फिर मेरी ओर देखकर कहा, 'गुरुजी! आपको महाराजजी बुला रहे हैं। बहुत जल्दी जाओ, वे बड़े नाराज हो रहे हैं। उन्होंने आपसे सब आदमी लेकर ठीक छः बजे पहुँचने को कहा था।' यह बात सुनकर सब लोग आश्चर्य में डूब गए। तब मैंने उससे कहा, 'जावित्री! तू तो कल से बेहोश पड़ी है, तुझे हम लोगों के जाने की बात कैसे मालूम हुई?' वह बोली, 'मैं तो अभी महाराजजी के पास से आयी हूँ। वे सब आदमियों को लिये भट्टे पर खड़े हैं।' मैंने पूछा, 'तुम अभी मर रही थी, फिर अच्छी कैसे हो गयी?' वह बोली, 'हाँ मुझे लेने के लिये रामजी के घर से रथ आया था। किन्तु उसी समय कहीं से दौड़कर महाराजजी आ गये और उन्होंने रथ वालों से कहा कि तुम जाओ यह अभी नहीं जायगी। सो रथ तो चला गया और मैं महाराजजी के पीछे-पीछे दौड़कर चली आयी। जब हम भट्टे पर पहुँचे तो उन्होंने घूमकर मेरी ओर देखा और कहा, 'जावित्री! तू यहाँ क्यों आ गयी? जा, जल्दी लौट जा और तुरन्त अपने गुरुजी को भेज दे। छः तो बहुत देर के बज गये। कहना वे बहुत नाराज हो रहे हैं। सब आदमी दौड़ कर जाओ।' बस, मैं उसी समय दौड़कर यहाँ आ गयी।

यह अलौकिक घटना देखकर हम आश्चर्य में भर गये और समय का व्यतिक्रम होने से भयभीत होकर घोड़ों की तरह दौड़े। फिर भी वहाँ पहुँचते-पहुँचते ७ बज गये। वहाँ पहुँचने पर देखा कि श्रीमहाराजजी खड़े-खड़े हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। देखते ही मुझे फटकारने लगे और बोले, 'तुम अभी मेरे सामने से चले जाओ। तुम से कितनी बार कहा है कि समय ही ईश्वर

है। जो समय की लापरवाही करता है उसके स्वार्थ और परमार्थ दोनों बिगड़ जाते हैं। यदि तुमने किसी को समय दिया है तो फिर चाहे आँधी चले, जल वरसे अथवा किसी तरह का कोई भी विघ्न सामने आवे, तुम्हें वहाँ ठीक समय पर ही पहुँचना चाहिये। प्रथम तो जिसका दृढ़ संकल्प होता है उसे कोई विघ्न आता ही नहीं। और यदि दैवात् आ जाय तो उल्टा सहायक ही होता है। तुम दिन-रात रामायण में हनुमानजी का चरित पढ़ते हो और निरन्तर अभिमान भी करते हो कि मैं हनुमान हूँ। किन्तु देखो, लंका जाते हुए उनके मार्ग में कितने विघ्न आये। तथापि उनके दृढ़ संकल्प के सामने नतमस्तक होकर चले गये। यही नहीं, उल्टे वे ही सीताजी की खोज में उनके सहायक हुए। भाई! कोई भी मनुष्य केवल मन में ख्याल कर लेने से अथवा जोश में आकर 'हूँ हूँ' करने से महावीर नहीं हो जाता। जब तक महावीरजी की तरह का आचरण नहीं होता, तब तक मुख से कहो अथवा मत कहो, उसकी कोई कीमत नहीं। कीमत तो आचरण की ही है। जिस किसी ने जो कुछ पाया है आचरण के द्वारा ही पाया है। 'कर्मण्येकं वचस्येकं मनस्येकं महात्मनाम्।'

इस समय मैं तो आँखें बन्द किये खड़ा-खड़ा भय से काँप रहा था। उसी समय एक संत ने गिड़-गिड़ाकर कहा, 'आज क्षमा किया जाय, फिर ऐसा नहीं करेंगे।' यह सुनकर आप हँस पड़े। तब जान में जान आई। फिर बोले, 'अच्छा, इससे यह तो पूछो कि जब ६ बजे का समय दिया था तो ७ बजे क्यों आया है? इसके समय पर न आने का क्या कारण है?' मैं इसका क्या उत्तर देता। मैं तो आपकी अपार कृपा का अनुभव करके रो रहा था। इतने में उसी हेंकड़ भक्त खूबीराम ने आगे बढ़कर सारी घटना सुना दी। किन्तु वह घटना सुनने पर भी आपने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'चाहे कोई भी कारण हो, समय का पूरा ध्यान रखना चाहिये। और यदि नितान्त विवशता हो तो समय से पहले सूचना भेज देनी चाहिये कि अमुक कारणवश मैं नहीं आ सकूँगा। अच्छा आओ, मण्डल बाँधो, अब कीर्तन करें।'

जब कभी कोई ऐसी बात सामने आती कि जिसमें आपका ऐश्वर्य प्रकट हो, तो उसे आप अनसुनी-सी करके टाल दिया करते थे। यह आपका स्वभाव ही था। इसलिए हम लोग तो कभी ऐसी कोई बात कह ही नहीं सकते थे। हाँ, या तो कोई नया आदमी कह देता था, या खूबीराम जैसा हेंकड़ भक्त कह सकता था।

बस, फिर कीर्तन आरम्भ हुआ। अहा! आज का कीर्तन क्या था, साक्षात् महारास ही था। पूर्णिमा की रात्रि थी– सम्भ्वत: शरदपूर्णिमा ही थी। राधेकृष्ण जय कुञ्जबिहारी। मुरलीधर गोवर्धनधारी' का कीर्तन आरम्भ हुआ। उस समय मानो साक्षात् अमृत की वर्षा होने लगी। सबके सब पागल हो गये। बस, विच-विच गोपी, विच-विच माधव का दृश्य सामने उपस्थित हो गया। बाह्य जगत् का तो लोप ही हो गया। सब आनन्द में थिरक-थिरककर नृत्य कर रहे थे। अहा! वह क्या आनन्द था, हृदय ही जानता है; वाणी उसे क्या कहे? किसी को शरीर की सुधि नहीं थी, सभी आनन्द में विभोर थे। वाह गुरुदेव! आपकी अपार दया है। आज तो आप जैसे गरजे वैसे ही बरसे हैं। आपका यह गर्जन मुबारक हो।

'काँच भांडे सों रहै, ज्यों कुम्हार को नेह।
भीतर सों रक्षा करै, ऊपर चोटें देय॥'

स्वामी राम कहते हैं–

'अरे दुनियाँ के वाशिन्दो! डरो मत नींद को छोड़ो।
यह शीरीं रूह तो मिश्री है, भौहें नाहक चढ़ाता है॥
यह सलवट डालना चेहरे पर, गंगाजी से सीखा है।
है अन्दर से महाशीतल, यह ऊपर से डराता है॥

अजी! मैं तो आपकी इस अपार दया के कारण ही बिगड़ कर कर्त्तव्य से गिर गया। किन्तु फिर भी यही भीख माँगता हूँ कि वह करुणा सदा बनी रहे, क्योंकि अब उसके सिवा इसका कोई अवलम्ब भी तो नहीं है.

आज आनन्द ही आनन्द में सन्तरण करते रात के १२ बज गये। सब लोग आनन्द में भरे कीर्तन समाप्त करके प्रणाम कर बैठ गये। फिर बरेली वाले पं० रामकुमारजी दरोगा का, जो साधु हो गये थे, पद गान हुआ। वह स्वर्गीय गानकी की स्वर-लहरी सबके हृदयों के मर्मस्थल को भेदकर पार हो गयी। परम संगीतज्ञ दरोगाजी ने युगल सरकार के रास-विलास के पद सुनाकर सभी को मस्त कर दिया। उनके भी नेत्रों में आसुओं की धारा बह रही थी। हमारे महाराजजी भी नेत्र बन्द किये स्थिर आसन से अपनी सहजावस्था में विराजमान थे। इसी समय किसी ने कहा, 'महाराजजी! अब दो बज गये हैं। तब आप मन्द स्वर में बोले,' अच्छा तो, अब समाप्त करो और अपने-अपने घर जाओ।' फिर अपने ही हाथ से सबको प्रसाद बाँटा। बस, सब लोग प्रसन्नता से जय-जयकार करते और महाराजजी की असीम शक्ति और अपार करुणा का बखान करते अपने-अपने घर चले गये। खूबीराम की लड़की इसके बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई और कई वर्षों तक जीवित रही।

बरोरा की एक घटना

निजामपुर में तो रात्रि के समय नित्य ही कीर्तन होता था, किन्तु कभी-कभी दिन के समय बरोरा में भी पण्डित अंगनलाल के घर श्रीहरिनाम संकीर्तन का अच्छा रंग जमता था। पण्डित अंगनलालजी का श्रीमहाराजजी के प्रति बड़ा विलक्षण प्रेम था। इसलिये उनके यहाँ तो आप झगड़कर छीन-छीनकर उनकी चीजें खाया करते थे। इसी तरह वे भी आपको कभी-कभी पकड़-धकड़कर भोजन कराते और जबरदस्ती कीर्तन कराते थे।

इधर पण्डित जयशंकरजी के एक बड़े भाई थे पण्डित श्रीरामजी। उनका स्वभाव बड़ा उग्र था। वे बड़े ही क्रोधी थे तथा सुल्फा, गाँजा, भंग आदि भी पीते थे। श्रीमहाराजजी के प्रति भी उनकी कोई गहरी श्रद्धा नहीं थी। तथापि वे कभी-कभी हम लोगों के साथ मिल जाते थे और कभी-कभी कुछ ऊट-पटाँग

शब्द बोलकर श्रीमहाराजजी को मर्माहत भी कर देते थे। हमारे महाराजजी का हृदय तो माखन के समान अत्यन्त कोमल था उसमें तो थोड़ा सा भी कटुवाक्य वाण की तरह चुभ जाता था और उन्हें बेचैन कर डालता था।

एक दिन हम लोग नित्य की तरह घूमने के लिये चले। उस समय पण्डित श्रीराम भी हमारे साथ हो लिये। हम सब पण्डित अंगनलालजी के घर पहुँचे और उनसे लड़-झगड़कर छीना-झपटी करने लगे। श्रीरामजी इस प्रेमपूर्ण कलह के रहस्य से अपरिचित थे। उन्हें यह सब अच्छा न लगा और उन्होंने श्रीमहाराजजी एवं अंगनलालजी को कुछ कटुवाक्य कहे। मैं कुछ पीछे रह गया था इसलिये उन वाक्यों को नहीं सुना। उनके शब्दों से अंगनलालजी को चोट पहुँची और वे उदास हो गये। उन्हें उदास देखकर महाराजजी बड़े मर्माहत हुए और वहाँ से चल दिये। बाहर आने पर श्रीराम ने कुछ आक्षेप-सा करते हुए कहा, 'क्यों, स्वामीजी! क्या आज यहाँ कीर्तन नहीं होगा?'

इन शब्दों को सुनते ही श्रीमहाराजजी वाणविद्ध पक्षी की तरह एकदम धड़ाम से पृथ्वी पर गिर गये और गिरते ही मूर्च्छित हो गये। वहाँ सैकड़ों मनुष्य उपस्थित थे, किन्तु उन्हें यह पता न चला कि आपको क्या हो गया है। केवल एक-दो व्यक्तियों को ही इस बात का पता था। आपकी ऐसी स्थिति देखकर सभी घबरा गये और यह निश्चय न कर सके कि अब उन्हें क्या करना चाहिए। मैंने देखा तो आपकी नाड़ी की गति बंद थी। हाँ दशमद्वार (ब्रह्मरन्ध्र) में अवश्य विशेष गर्मी थी। जब प्रायः एक घंटा ऐसी दशा में निकल गया तब तो श्रीराम के भी छक्के छूट गये। किन्तु अब भी वे कुछ ऊटपटाँग शब्द ही बोल रहे थे। मुझे यह सहन न हुआ, और मैंने फटकारते हुए कहा, 'तुम्हारे ही शब्दों से मर्माहत होकर महाराजजी मूर्छित हुए हैं, और तुम अब भी बाज नहीं आते हो।' तब सब आदमियों को इनकी बातों का पता लगा और सभी इनके विरुद्ध बोलने लगे। अब तो ये घबरा गये और चीख मारकर रोने लगे। इनके साथ और सब भी रोने लगे तथा सभी अपने को अपराधी स्वीकार करते हुए क्षमा प्रार्थना करने लगे तब मेरे मन में आया कि हमारे कीर्तनानन्द प्रभु को केवल कीर्तन
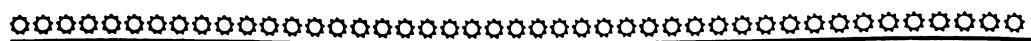
ही सचेत कर सकता है, अतः मैंने सब लोगों से कहा, 'भाइयों! आओ हम सब मिलकर कीर्तन करें और हृदय से अपने अपराधों के लिए क्षमा प्रार्थना करें। मेरा विश्वास है कि इससे श्रीमहाराजजी अवश्य सचेत हो जायेंगे। नहीं तो, निश्चय जानिये; इनके साथ हम सबको भी अपने प्राण गँवाने होंगे।'

यह सुनकर सब लोग बड़े प्रेम से महामन्त्र का कीर्तन करने लगे। भाई! दुःखी हृदय ही श्रीहरि को अच्छी तरह पुकार सकता है, अतः कीर्तन करके सभी लोग अत्यन्त विकल हो गये और धाड़ मारकर रोने लगे। बस; रोना आरम्भ होते ही हमारे कौतुकी सरकार एकदम सचेत हो गये और ऊर्ध्वबाहू हो नृत्य करने लगे। बस, क्या पूछियेगा, उस दिन का अद्भुत नृत्य तो देखते ही बनता था। आपके प्रफुल्ल नेत्र बहुत देर तक खुले के खुले ही चक्र के समान घूमते हुए मानो सब पर अमृत की वर्षा कर रहे थे। फिर दोनों हाथ ऊपर उठाकर केवल पंजों के बल उछल उछलकर नृत्य करने लगे, मानो सबको अभय प्रदान कर रहे हों' उस समय भक्तों के आनन्द का भी पारावार नहीं था। सभी लोग गगनभेदी तुमुलध्वनि से नामघोष कर रहे थे। सभी नेत्रों से आँसुओं की वर्षा-सी हो रही थी। किसी को कम्प, किसी को पुलक तथा किसी को स्वेद आदि विकारों की स्फूर्ति हो रही थी। कोई किसी को आलिंगन करता था, कोई चुम्बन करता था, कोई दण्डवत् करने लगता था, तथा कोई पृथ्वी पर लोट-पोट हो रहा था। अजी! और तो क्या, आज तो पण्डित श्रीराम का कठोर हृदय भी पिघल गया था। वे भी कीर्तन में पागल हो रहे थे। वाह रे कौतुकी! तेरे अद्भुत खेल, कोई बेचारा क्या जाने। तेरी अनोखी लीलाओं के रहस्य को तो वही जान सकता है, जिसको तू स्वयं जना दे। और वह भी जानकर क्या करे? तेरी तो नित्य नयी कला, नित्य नया खेल और नित्य नया दाँव-पेंच है। बस, तेरे भेदों को जानने की चेष्टा करना ही कोरा पागलपन है। हम तो हिम्मत हारकर तेरे चरणों में बार-बार प्रणाम करते हैं और चाहते हैं कि तेरी माया में भूलकर कभी तेरे चरणों से दूर न हों, सदा तेरी पदच्छाया में रहकर ही तेरा नामगान करते रहें तथा हमें सदा ही तेरे भक्तों का सत्संग एवं दर्शन प्राप्त होता रहे।

अन्त में कीर्तन का विराम हुआ और सब लोग प्रणामकर यथास्थान चले गये।

श्रीमहाराजजी स्वभाव से ही बड़े शान्त और गम्भीर प्रकृति के हैं। यथा सम्भव आप कभी अपनी कोई अवस्था प्रकट नहीं होने देते। यदि कोई नितान्त विवशता हो जाय अथवा कोई विशेष अधिकारी ही सामने आ जाय तो भले ही आपकी कोई अवस्था प्रकट हो जाय। उस समय भी आप उसे तुरन्त संवरण कर लेते हैं। उन दिनों आप प्रेम पिपासा से सन्तप्त से रहा करते थे और यही कहा करते थे कि मेरा जनम तो व्यर्थ ही चला गया। मैंने तो साधु होकर अपना जीवन बर्बाद ही किया है! मुझे न तो श्रीकृष्ण के दर्शन हुए और न उनमें अनुराग ही हुआ। इस जन्म में मुझ से कोई भजन-साधन भी नहीं बन सका। मेरा जीवन तो केवल दम्भ से भरा हुआ है। मेरी सारी चेष्टाएँ केवल लोक दिखावे के लिये ही हैं। सच पूछो तो मैं आप लोगों को मुँह दिखाने योग्य भी नहीं हूँ। यदि पृथ्वी फट जाय तो मैं इसमें समा जाऊँ। साधु होकर मेरे हाथ तो कुछ भी नहीं लगा। केवल चार दिन 'महाराज, महाराज' कहला लिया। मैंने तो यह सोचकर आप लोगों का सहारा लिया था कि साधनहीन, शक्तिहीन, बुद्धिहीन और बलहीन होने पर भी मैं आप लोगों के साथ से अनायास ही संसार-सागर को तर जाऊँगा, सो अब आप सब ने भी मुझे त्याग दिया। अब मैं क्या करूँ? मन में आता है अब जीवन भर अज्ञातवास करके आप लोगों को मुँह न दिखाऊँगा। इस प्रकार जब आप कहने लगते हैं ऐसा मालूम होता है कि मानो इनके हृदय में महान् शोकाग्नि प्रज्वलित हो रही है। आप प्रायः कहा करते थे, 'कभी मेरे मन में यह अभिमान था कि मैं सारे विश्व को भगवत्प्रेम से भर दूँगा। किन्तु मैं तो आजतक एक जीवन को भी प्रेम प्रदान नहीं कर सका।'

इस प्रकार की मर्म भेदी कथाएँ आपकी प्रायः हुआ करती थीं। वास्तव में इनके अन्दर क्या रहस्य था, सो तो वे ही जानें। मेरी तुच्छ बुद्धि में तो यही आता है कि आपका विश्व प्रेम से भरा हुआ हृदय प्राणिमात्र के दुःख से दुःखी था। आप सबको अपना आत्मा ही देखते थे तथा आपकी प्रत्येक चेष्टा, यहाँ

तक कि श्वास-प्रश्वास भी दूसरों के लिये ही थे। आप केवल यही चाहते थे कि हम सब आसुरी वृत्तियों को त्यागकर और दैवी गुणों से पूर्ण होकर निरन्तर भगवत्प्रेम में डूबे रहें तथा दूसरों को भी उसमें डुबो दें। किन्तु हम लोग ऐसे अभागे निकले कि उनके हृदय के इस भाव को समझते हुए भी उसके अनुसार अपना जीवन न बना सके। सो हमें अपनी शक्ति से तो ऐसा होना सम्भव नहीं दीखता, किन्तु आपकी कृपा से पूर्ण आशा है कि एक न एक दिन हम अवश्य पूर्ण प्रेम प्राप्त कर सकेंगे और संसार की भी यत्किञ्चित सेवा कर सकेंगे।

यह तो हुआ आपका सामान्य भाव। किन्तु कभी-कभी इसके सर्वथा विपरीत भी देखा गया है। एक दिन आप अपनी मस्ती में नव वृन्दावन में विचर रहे थे। पीछे-पीछे हम लोग भी थे। उस दिन की मस्ती भी अजीब थी। आपके चेहरे-से प्रकाश फूटकर निकल रहा था। इसी समय खुदमस्ती के आवेश में आप बोले, 'जयशंकर! क्या तू मेरे स्वरूप को जानना चाहता है? अरे! तू पागल है भला, तू मेरे स्वरूप को क्या जानेगा? यह तो तेरा वृथा अभिमान है। एक वह गवाँ में बैठा है। बड़ा योगी है! बड़ा ज्ञानी है! बड़ा पण्डित है! बड़ा भक्त है! अरे हीरा! तू चाहे कुछ भी बनजा, पर मेरे वास्तविक स्वरूप को तू क्या जान सकता है? मेरे स्वरूप को तो वही जान सकता है? जिसे मैं स्वयं जना दूँ।' यह कहकर खूब हँसे और फिर बोले, 'अरे! एक शिवपुरी ललतवा है। वह भी यह अभिमान करता है कि मैं तुम्हें अच्छी तह जानता हूँ। अरे मूर्ख! तू मेरे स्वरूप को क्या जान सकता है? तू ईश्वर को भले ही जान ले, परन्तु मेरे स्वरूप को नहीं जान सकता तेरा तो इसीमें कल्याण है कि तू सर्वथा नतमस्तक होकर सर्वतोभावेन मेरे अनुकूल रहते हुए सदा के लिये मुझे आत्मसमर्पण कर दे। उसके बाद फिर कभी सिर मत उठाना। देख, सावधान, कभी ऐसा अभिमान मत करना कि मैंने आत्म समर्पण किया है।' यह कहकर आप ठठाका मारकर खूब हँसे और बोले, अरे भाई! तुम तो अबोध बालक की तरह सदा मेरी गोद में खेलते रहो। बस, इसी में तुम्हारा कर्तव्य पूरा हो जाता है। आगे क्या करना होगा, सो मैं जानूँ।'

नवद्वीप का प्रसंग

एक बार सन् १९२८ में आपने नवद्वीप की यात्रा की। उस समय भोलेजी आपके साथ थे। वे सुनाते थे कि वहाँ एक दिन आपको भयानक ज्वर हो गया। उसमें आप बाहर जंगल में एक वृक्ष के नीचे सामान्य-सा वस्त्र बिछाये सात दिन तक पड़े रहे। उन दिनों में आपने स्नान, भोजन, जलपान, शौच, लघुशंका आदि कोई क्रिया नहीं की और न किसी से एक शब्द भी बोले। बीमार पड़ते ही भोलेजी से भी कह दिया मुझे बुलाना नहीं। बस, ये भी पास बैठे भगवन्नाम, गोपाल सहस्रनाम अथवा गीता का पाठ सुनाते रहे और जैसे-तैसे दौड़-भागकर अपनी नित्य क्रिया करते रहे।

आठवें दिन बड़े उत्साह में उठे और बोले, 'भोलेजी! अभी चलो, अमुक स्थान पर चलना है।' भोलेजी ने जल्दी से सामान सँभाला और पीछे-पीछे हो लिये। आप बड़ी तेजी से चले और अठारह-बीस मील तक बराबर चलते ही रहे। वहाँ पहुँचकर बोले, 'मुझे बड़ी भूख लगी है, जितनी जल्दी हो सके रोटी बना लो।' भोलेजी जब सामान लेने के लिये जाने लगे तो आपने कहा, 'सामान कुछ अधिक ही लाना, क्योंकि मुझे बहुत भूख लगी है।' भोलेजी डेढ़ सेर आटा और उसीके अनुसार दाल-घी आदि सब सामन ले आये और रसोई बनानी आरम्भ कर दी। सामान देखकर आप बोले, 'भोलेजी! सामान तो तुम कम लाये हो।' उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु पुराने सेवक थे, आपके रहस्य को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए बोले, 'अच्छा महाराजजी! और लिये आता हूँ।' आप बोले, 'अच्छा अभी ठहरों, पीछे देखा जायगा।' इतने में आप स्नान करने चले गये। वहाँ एक अन्न-क्षेत्र था। उसमें से प्राय: एक सेर दाल-चावल ले आये और भोलेजी को देकर बोले, 'लो, यह खिचड़ी भी बना लो।' भोलेजी ने कहीं से बरतन लाकर उसे भी बना लिया।

अब, आप भोजन करने के लिये बैठे। भोलेजी ने तुलसीपत्र छोड़कर भोजन परोसा। आपने थोड़ी देर तो ध्यान किया, फिर भोजन करने लगे। धीरे-धीरे सारी रोटी, दाल और खिचड़ी खा गये। फिर खूब हँसे और बोले, 'भोले तू
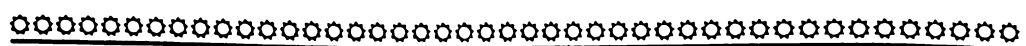
तो भूखा ही रह गया।' तब बेचारे भोलेजी ने बाजार से कुछ लेकर खाया। आप कुछ देर वहीं विश्राम करके स्वाध्याय में लग गये। पीछे बातों-बातों में कहा कि आज मैंने अपना पूरा सात दिन का अन्न खा लिया है। फिर अपनी माताजी की चर्चा करते हुए बोले, 'मेरी माताजी बड़ी विचारशीला और पढ़ी-लिखी थीं। मैंने जब उनसे अपना साधु होने का विचार प्रकट किया तो पहले तो वे खूब रोईं किन्तु मेरे अधिक आग्रह करने पर उन्होंने प्रसन्नता से अनुमति दे दी। हाँ, मुझसे एक प्रतिज्ञा करा ली कि तुम कहीं भी रहो, मेरे मरते समय मुझे अवश्य दर्शन देना। मैंने ऐसा करने के लिये उन्हें वचन दिया और यह भी कहा कि मैं तुम्हारे लिये भी भजन करूँगा। सो इस बीमारी में मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि मेरी माता का शरीर पूरा हो गया है।'

आपके इस कथन से यह अनुमान किया गया कि उन सात दिनों में आप सूक्ष्म शरीर में माताजी के पास गये थे। उनका शरीर पूरा होने पर लौटे और अपना सात दिन का अन्न ग्रहण किया। पीछे पत्र द्वारा होशियारपुर से जो सूचना मिली उसके अनुसार भी माताजी का देवलोक उन्हीं दिनों में हुआ था और उन दिनों में आप उनके पास उपस्थित भी बताये गये थे।

उसी यात्रा में आपने कलकत्ता जाकर स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी बंगाली से बंगला भाषा पढ़ी और वहाँ से लौटने पर शिवपुरी पधारकर केवल पन्द्रह दिनों में ही मुझे तथा अन्य कई सत्संगियों को उसका अभ्यास करा दिया।

अनशन के समय सेवा

एकबार आपने भेरिया में नौ दिन का अनशन किया। इन दिनों अन्न ही नहीं, आपने एक बूंद जल भी ग्रहण नहीं किया। किन्तु किसीको भी इसका पता न चला। मौन रहने के कारण आपने किसी से कोई चर्चा तो की नहीं, और आपकी दैनिक क्रियाएँ सब यथावत् चलती रहीं, इसलिए और किसी को ऐसा कोई अनुमान भी नहीं हुआ। आप सदा की ही तरह नियत शौच स्नान व्यायाम, भ्रमण तथा स्वाध्याय आदि करते रहे। उस समय ज्येष्ठ मास था, फिर भी आपने जल ग्रहण नहीं किया।
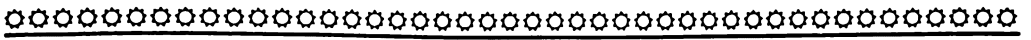
सुप्रसिद्ध विरक्त प्रज्ञाचक्षु बाबा लक्ष्मणदासजी उन दिनों भेरिया में ही रहते थे। उनकी सब प्रकार की सेवा भी आप ही करते थे। इस उपवास के समय भी वह अक्षुण्ण रूप से पूर्ववत् चलती रही। उनकी कुटिया बुहारना, उनके लिए गंगाजल का घड़ा भरकर लाना, दोपहर को एक मील दूर गाँव से जाकर भिक्षा लाना, उन्हें भोजन कराना तथा उनके बरतन और वस्त्र धोना इत्यादि सभी प्रकार की सेवा आप बराबर करते रहे। केवल भिक्षा लाने के लिए जाते समय आप मुँह में जल भर लेते थे जिससे कि घाम के कारण अधिक उष्णता न बढ़े।

पीछे आपने बताया कि उस समय आपका संकल्प अनशन के बाद गंगाजी में अपना देहत्याग करने का था। किन्तु किसी दिव्य शक्ति की प्रेरणा से आप ऐसा न कर सके। आप कहते थे कि जब शरीर त्यागने का समय आया तो मुझे इतना शीत लगा कि उसके कारण मैं जल में प्रवेश न कर सका।

शराबियों के लिये अनशन

एक बार भिरावटी में आपने कुछ शराबियों को निमित्त बनाकर अनशन कर दिया। उससे और सबने तो घबराकर शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली, किन्तु चौधरी तारासिंह पर मदिरा महारानी का इतना प्रभाव था कि वे छोड़ने का साहस न कर सके। इधर इस कायरता के कारण श्रीमहाराजजी के सामने आने की भी उनमें हिम्मत नहीं थी। अतः वे भागकर कहीं अन्यत्र चले गये। आपका वह अनशन नौ दिन तक चलता रहा। उस समय भिरावटी में बड़ा भारी उत्सव हो रहा था। माघ का महीना था। पं० राधाचरण की रासमण्डली आयी हुई थी तथा अनेकों सन्त, विद्वान् और कथावाचक भी पधारे थे। आपके उपवास में स्वामी कृष्णानन्दजी बंगाली, मैं तथा और भी बीस-पच्चीस आदमी सम्मिलित थे। तथापि सब प्रोग्राम यथावत् रीति से चलता रहा। हम भी चौबीसों घण्टों के प्रोग्रामों में सम्मिलित होते रहे। आप तो उन दिनों और भी ऊँचे स्वर से कीर्तन का सिंहनाद करते थे।

आखिर, इतने लोगों को उपवास करने पर बड़ा कोलाहल मचा और सब लोगों ने मिलकर जब चौधरी तारासिंह पर दबाव डाला तो वे बोले, 'मुझे

तो बाबा के सामने जाने में डर लगता है। इसलिये जैसा उचित समझें आप लोग ही मुझसे प्रतिज्ञापत्र लिखा लें।' अतः फिर ऐसा ही किया गया।

नवें दिन सभी ने आपसे अनशन छोड़ने के लिए प्रार्थना की और रात्रि को कीर्तन समाप्त होने पर स्वयं रासबिहारी ने आपको एक गिलास दूध देते हुए आपका हाथ पकड़ कर कहा, 'अब हठ छोड़कर यह दूध पी लो।' तब आपने अनशन छोड़ दिया। रासबिहारी में आपकी हम लोगों के समान भावना नहीं होती। आप तो उन्हें साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर ही मानते हैं। रास के आरम्भ में आप स्वयं उन्हें माला धारण कराते हैं तथा सम्पूर्ण जनता के सामने साष्टांग प्रणाम करते हैं। फिर रास की समाप्ति तक खड़े रहकर गर्मियों में बड़ा पंखा झलते हैं और शीतकाल में चँवर डुलाते हैं। यह सब करते हुए भी आप उनके चेहरे की ओर कभी आँख उठाकर नहीं देखते तथा शृंगारकाल को छोड़कर और कभी उनसे बात नहीं करते। शृंगार, वस्त्र और भोजनादि से भी आप उनकी यथेष्ट सेवा करते हैं। आपकी ऐसी अद्‌भुत निष्ठा देखकर बड़े-बड़े रसिक, भावुक और वैष्णव लोग भी मुक्तकण्ठ से आपकी प्रशंसा करते हैं।

इस प्रकार आपका वह अनशन समाप्त हुआ। फिर नौ ही दिन सबको पूरा संयम कराया गया। इसके बाद तो हमारे शरीरों का कल्प हो ही गया, मानों नये शरीर ही मिले हों। नयी जागृति, नया बल, नयी स्फूर्ति और नया उत्साह भर जाने पर फिर बड़े जोरों से उत्सव हुआ। उस समय राधाचरण की मण्डली का रास दस महीने तक होता रहा।

गंगास्नान

एक बार किसी विशेष पर्व पर आप सब भक्तपरिकर के सहित गंगास्नान के लिये गये। उस समय आपको कुछ कौतुक करने की सूझी। वहाँ गंगाजी की दो धाराएँ थी। एक धारा पार करने पर बीच में बड़ी स्वच्छ बालू थी और उसके आगे प्रधान धारा थी। मेला सब इसी पार था। आपने कहा, 'चलो, बीच के टापू में चलकर कुछ खेल करें।' तब किसी ने कहा, 'महाराजजी इस धरा में जल अधिक है। अतः छोटे-छोटे बालक और जो तैरना नहीं जानते वे इसे
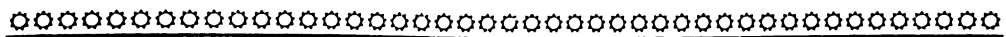
कैसे पार करेंगे?' आप बोले, 'नहीं' अधिक जल कहीं नहीं है, आओ मेरे पीछे चले आओ।' बस, सब लोग आपके पीछे-पीछे चल दिये।

इस टोली में सबसे लम्बे श्रीमहाराजजी ही थे। किन्तु आश्चर्य यह था कि जल आपके भी छाती तक था और छोटे से छोटे आदमी के भी छाती तक ही था। यहाँ तक कि हेतराम के भतीजे गोपीराम के भी, जो उस समय केवल आठ वर्ष का बालक ही था, छाती तक ही जल था। महाराजजी बीच के टापू पर पहुँचकर जोर-जोर से कह रहे थे, 'डरो मत, चले आओ, केवल छाती-छाती जल है।' उस समय बूढ़े, बालक, जवान सभी के छाती तक ही जल हो गया।

इसी मण्डली में एक टीकाराम नाम का आदमी था। वह कीर्तनका कुछ विरोधी था और कुछ ठिंगना भी था। उसने सोचा कि महाराजजी तो सबसे लम्बे हैं; जब उन्हीं की छाती तक जल है तो मैं तो डूब जाऊँगा। इसलिये वह जल में नहीं घुसा। किनारे पर खड़ा-खड़ा यह सब लीला देखता रहा। किन्तु जब आठ वर्ष का बालक गोपीराम भी पार उतर गया तो उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई और वह दिल कड़ा करके गंगाजी में घुस गया। जब बीच धारा में पहुँचा तो सचमुच ही वह गोते खाने लगा। जब उसे तीन-चार गोते लग गये तो किसी ने पुकारा कि अरे! टीकाराम डूबा, उसे बचाओ। तब किसी ने दौड़कर उसे निकाला। वह प्रायः मूर्च्छित हो गया था और उसके पेट में पानी भी भर गया था। उसे उल्टा करके घुमाया तब उसके पेट का पानी निकला और वह होश में आया। अब उसने जाना कि यह सब श्रीमहाराजजी की लीला थी। मैंने उनकी बात में अविश्वास किया था और श्रीहरिनाम में मेरी अश्रद्धा थी, इसी से मैं डूब गया। ऐसा विचार आने पर वह श्रीचरणों में लोट गया। तब श्रीमहाराजजी बोले, भाई! श्रीरामनाम में विश्वास रखने से तो जीव भवसागर से पार हो जाते हैं, फिर यह तो एक छोटा-सा नाला ही था; इसको पार करना कौन बड़ी बात थी?'

दिव्यभाव

एक बार आप गवाँ में नदी के किनारे अवधूतजी की कुटी के पास बालुका में बैठ गये और 'मैं महेश, मैं महेश' ऐसा बार-बार कहने लगे। तब

सब लोगों ने भगवान् शंकर के पार्थिव विग्रह की भावना से आपके शरीर पर बालू चढ़ा दी। आप उससे गले तक ढक गये। उस समय आप ध्यानावस्थित बैठे थे। इसी अवस्था में आपके चेहरे से प्रकाश निकलने लगा और आप 'बं बं बं' उच्चारण करते 'वरं ब्रूहि' (वर माँगो) कहने लगे। तब वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने तरह-तरह के वर माँगें तथा उन्हें अनेंक प्रकार के चमत्कार और दिव्य-दर्शन भी हुए। किसी को आपके जटाकलाप में श्रीगंगाजी का प्रवाह, गले में मुण्डमाला तथा सर्पों के आभूषण दिखायी दिये। किसी को षोडशवर्षीय किशोर रूप शंकर के दर्शन हुए और किसी को सिंहवाहिनी भगवती दुर्गा की झाँकी हुई। बस, इसी अवस्था में आप उठकर नदी में कूद पड़े। वहाँ पानी गहरा था और एक नाका भी रहता था। अत: आपके पीछे ही मैं और भाई साहब छेदालाल भी कूद पड़े। किन्तु आश्चर्य कि जल केवल छाती-छाती रह गया और हम सब उसे पार करके गंगास्नान के लिये चले गए।

दूरदर्शन

एक बार भाई साहब छेदालाल बाबू हीरालालजी के साथ श्रीमहाराजजी के दर्शनों के लिये गवाँ से अनूपशहर होकर भेरिया गए। रास्ते में गंगाकिनारे मस्तराम की समाधि के पास बाबा उग्रानन्द ठहरे हुए थे। बाबूजी ने कहा, 'चलो, स्वामीजी के दर्शन करते चलें।' तब वहाँ दर्शन करके ये भेरिया पहुँचे। पहुँचते ही श्रीमहाराजजी ने कहा, 'छेदालाल! कैसे आया?' इन्होंने कहा, 'आपके दर्शन के लिये' तब आप कुछ रूखे शब्दों में बोले, मेरा दर्शन काहे का? महात्माओं के दर्शनों को आया था, सोचा, चलो वहाँ भी होते चलें।' यह सुनकर ये बड़े लज्जित हुए। फिर आपने कथा में कहा, 'मनुष्य अपने लक्ष्य को दृष्टि में रखकर सीधा तीर की तरह चला जाय। न दायें देखे, न बायें। यदि इधर-उधर दृष्टि जाती है तो समझो कि निष्ठा स्थिर नहीं है।' इसी प्रकार आप कथा में बहुत-सी अप्रत्यक्ष बातें कह दिया करते थे।

स्वास्थ्यदान

निजामपुर से एक कोस पश्चिम की ओर मुटैना नाम का एक गाँव है। यहां चिरञ्जीलाल नाम के एक सीधे-सादे ग्रामीण पण्डित आपके अत्यन्त प्रेमी भक्त थे। एक दिन आप वहाँ पहुँचे तो मालूम हुआ कि चिरञ्जीलाल बहुत बीमार हैं और उनमें अब उठने बैठने की शक्ति नहीं है। आप पूछते-पूछते उनके घर गये और चिरञ्जीलाल को आवाज दी। घर पर उस समय कोई नहीं था। चिरञ्जीलाल का एक भाई, जो उनके पास रहता था इस समय बाहर गया हुआ था। अतः चिरञ्जीलाल ने कराहते हुए कहा, 'कौन है? अन्दर चले आओ।' तब आप भीतर गये और खूब हँसकर बोले, 'तु मुझे रोटी नहीं खिलायेगा?' बेचारा गिड़गिड़ाकर बोला, महाराज! आप विराजें, मैं अभी किसी के यहाँ से रोटी मंगवाता हूँ।' तब आपने मनाकर दिया और पूछा, 'तुझे क्या हो गया है?' वह बोला, महाराज! मैं तो बहुत दिनों से बीमार हूँ। वैद्य लोग तो मुझे पुराना बुखार बताते हैं।' तब आप बोले, 'अच्छा, तू मुझे कुछ दे तो मैं तुझे अभी अच्छा कर दूँ। वह बोला, आप विराजें। मेरा भाई अभी आता होगा। आप जो कुछ कहेंगे वही मैं दूँगा।' आपने कहा, 'नहीं, मैं तो अभी लूँगा और तेरे ही हाथ से लूँगा।'

वह रोने लगा और बोला, 'महाराजजी! मेरी शक्ति तो करवट बदलने की भी नहीं है। मैं किस तरह उठकर कुटिया खोलूँ?' आप बोले, 'नहीं, तू अभी उठकर मुझे पैसा दे तो अभी इसी समय अच्छा हो जायगा।' चिरञ्जीलाल आपको अच्छी तरह जानता था। और समझता था कि यह सब इनका खेल है; नहीं तो, ये एक पैसे या एक लाख रुपये का भी क्या करेंगे? अतः वह जैसे-तैसे उठा और अपनी कुटिया खोलकर उसमें जो भी दस-बीस रुपये पड़े थे सभी आपको देने लगा। किन्तु आप बोले, 'मैं तो केवल एक पैसा लूँगा।'तब उसने गाँठ खोली तो उसमें से एक पैसा निकलकर नीचे गिर गया। आपने वही उठा लिया और यह कहते चल दिये कि ले, इस पैसे के साथ ही मैं तेरे रोग को भी मुट्ठी में दबाकर लिये जाता हूँ। अब तू जो इच्छा हो वह खाना और कोई दवा मत करना।'
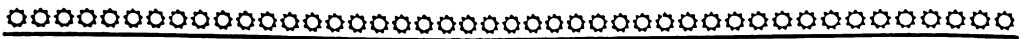
बाहर जाकर आपने वह पैसा किसी भिखारी को दे दिया और चिरञ्जीलाल उसी दिन से चंगा होने लगा।

ऐसी ही घटना पण्डित जयशंकर के भाई नित्यानन्द की भी है। वे आपको नित्य स्नान कराया करते थे तथा आपकी और सब सेवाएँ भी वे करते थे। एक दिन आप प्रात: काल बरोरा पहुँचे तो स्नान कराने के लिये उनका चचेरा भाई मितबल उठा। आपने पूछा, नित्यानन्द कहाँ है?' मितबल ने कहा कि उसे तो कल से ऐसा बुखार चढ़ा है कि होश ही नहीं है। तब आप नित्यानन्द के पास गये और देखा कि बुखार के कारण वह बेहोश पड़ा है। आपने उसका हाथ पकड़कर झकझोरा और कहा, 'नित्यानन्द! उठ, आज तू आलसियों की तरह कैसे सोया हुआ है? जल्दी उठकर मुझे स्नान करा।' तब उसने आँखें खोली और कहा, 'महाराजजी! मुझे तो बड़ा बुखार चढ़ा है, मैं तो इस समय उठ भी नहीं सकता।'

तब आपने डाँटकर कहा, 'अरे! तू व्यर्थ झूठ बोलता है। तुझे तो बिलकुल बुखार नहीं है। जल्दी उठ, वैसे ही बहाना बनाता है।' यह कहकर उसे जबरदस्ती हाथ पकड़कर उठाया और चारपाई से नीचे खड़ा कर दिया। बस, वह तो सचमुच ही छलाँग मारने लगा और कुएँ पर जाकर आपको स्नान कराया माघ का महीना था। और दिन तो प्राय: बीस डोल से ही स्नान करते थे, किन्तु आज तो कोई गिनती ही नहीं थी। नित्यानन्द महावीर की तरह डोल भर रहा था और आप उड़ेलते जाते थे। इस प्रकार प्राय: सौ डोल से स्नान किया।

पीछे आपने नित्यानन्द के भाई से कहा कि तुलसीपत्र, अजवायन, सोंफ, नमक, और काली मिर्च का काढ़ा बनाकर नित्यानन्द को पिला दो। किन्तु जब काढ़ा तैयार हो जाय तो मुझे दिखला देना! वे दवा बनाकर आपके पास लाये। तब आपने हाथ में लेकर थोड़ी देर कुछ उच्चारण किया और फिर नित्यानन्द से कहा, अरे नित्यानन्द! बुखार तो तुझे आया और दवा मैं पिये लेता हूँ।' ऐसा कहकर वह दवा आपने पी ली और नित्यानन्द चंगा हो गया।

इस प्रकार रोगहरण की तो आपकी अनेकों लीलाएँ हैं। उन्हें कहाँ तक लिखें।

ज्वर पर विजय

सन् १९२० के लगभग इस प्रान्त में ज्वर का बहुत प्रकोप हुआ था। उसे इन्फ्लुएञ्जा या युद्धज्वर कहते थे। उसके कारण मृत्युएँ भी बहुत हुई थीं। यहाँ तक कि लाशों की अधिकता के कारण गंगाजी का जल भी दूषित हो गया था। उसी समय गवाँ वाली कुटी में आपको भी यह ज्वर हो गया ज्वर इतना भयानक था कि आप अचेत हो गये। उस समय देश में इस ज्वर का आतंक प्लेग से भी बढ़कर था। यह प्राय: १०६ डिग्री तक रहता था औ कभी-कभी तो इससे अधिक बढ़ जाता था। इसकी तेजी में ही रोगी के हृदय की गति रुक जाती थी।

इस ज्वर के विषय में सब बातें आपने सुन रखी थीं। आप रात्रि के समय अकेले ही कुटिया में पड़े हुए थे। आपने सोचा कि अब तो बिलकुल अन्त का समय है, इसलिए कुछ भगवन्नाम ही उच्चारण करें यह विचारकर आप मन ही मन महामन्त्र का उच्चारण करने लग। आपमें इस समय यद्यपि उठने-बैठने की बिलकुल शक्ति नहीं थी, तथापि भगवन्नाम स्मरण से एक प्रकार की स्फूर्ति और बल का अनुभव होने लगा। अत: आप जोर-जोर से कीर्तन करने लगे। बस, उसी समय आपमें रोमांच आदि सात्विक भावों का उदय हुआ और यह बात भूल ही गयी कि कभी ज्वर हुआ था।

अब सवेरे के तीन बज चुके थे। आप उठे और दौड़कर सीधे बरोरा पहुँचे। वहाँ जाकर खूब स्नान किया और नित्यप्रति नियमानुसार कथा एवं स्वाध्याय आदि किये।

प्रार्थना स्वीकृति

एकबार श्रीमहाराजजी अनूपशहर में थे। वहीं पर पण्डित छेदालालजी भी थे, किन्तु इनका परिवार शिवपुरी में था। उस समय इनकी स्त्री गर्भवती थी तथा घर पर अकेली होने के कारण वे घबरा रही थी। ये थे लापरवाह आदमी, इन्हें इस बात का कोई स्मरण भी नहीं था। किन्तु एक दिन सायंकाल में अकस्मात् श्रीमहाराजजी ने इन्हें बुलाया और कहा, छेदालाल! तू घर को नहीं गया?' ये

बोले, 'मैंने कब कहा था घर जाने को?' आप बोले, 'अरे! तेरे घर कुछ कामकाज होगा, तू अभी घर चला जा। पीछे फिर जल्दी आ जाना।' ये सुनते ही डिबाई चले गये और उसी दिन की रात की गाड़ी से चलकर दूसरे दिन शिवपुरी पहुँचे तो देखा कि इनकी स्त्री बड़े कष्ट में है। तथा उसने मन ही मन श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की थी कि इन्हें जल्दी घर भेज दें। बस, अन्तर्यामी ने सुन ली और इन्हें भेज दिया।

उसी दिन रात को इनके पुत्र उत्पन्न हुआ और कुछ दिनों में वे स्वस्थ हो गयी। इन सब कामों से निवृत्त होकर ये फिर अनूपशहर चले गए।

दान-लीला

एक बार जन्माष्टमी के उत्सव पर भाई साहब और मैं दोनों ही गवाँ जाने के लिये करेंगी स्टेशन से बबराला के लिये गाड़ी में बैठे। चँदौसी पहुँचने पर मालूम हुआ कि वर्षा की अधिकता से लाइन कट जाने के कारण गाड़ी यहाँ से आगे नहीं जायगी। यह सुनकर हम बहुत घबराये शाम का समय, घोर वर्षा हो रही है, भादों की अन्धियारी है और हमें कल अवश्य गवाँ पहुँचना है। चँदौसी से गवाँ प्राय: तीस मील है। हम सोचने लगे कि अब क्या करें। अन्त में यही निश्चय हुआ कि एक दिन मरना तो है ही चलो इससे अच्छी मौत और कहाँ मिलेगी। या तो कल श्रीमहाराजजी के दर्शन करेंगे या मर कर दूसरे जन्म में उनके चरणों को प्राप्त कर लेंगे।

ऐसा निश्चय कर हम दोनों रेलवे लाइन के रास्ते ही चल दिये। घोर अंधकार और वर्षा पड़ रही थी। किन्तु हमें तो चलने में बड़ा ही आनन्द प्रतीत होता था। जहाँ-कहीं कोई पुलिया आ जाती वहाँ बैठ-बैठकर धीरे-धीरे पार हो जाते और फिर चल पड़ते। धनारी के पास वर्धसार और महावा नदी के पानी ने लाइन को तोड़ दिया था और वहाँ कुण्डे भी पड़ गये थे, जो अब तक भी मौजूद हैं। वहाँ पहुँचकर बड़ी कठिनता पड़ी। आखिर दिन निकल आया हमने लाइन छोड़कर दूसरा रास्ता पकड़ा। जहाँ भी नदी की थाह मिली वहीं उसे पार
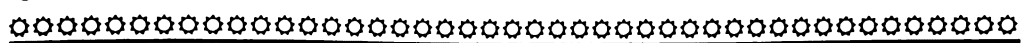
किया। इस प्रकार बहुत जगह पानी कूंदते, कीच में चलते और वर्षा में भीगते यद्यपि ऊपर से तो तंग हो गए, किन्तु श्रीमहाराजजी की कृपासे सारी रात चलकर दूसरे दिन दोपहर को ही गवाँ पहुँच गये।

श्रीमहाराजजी के पास पहुँचकर हमने जैसे ही उन्हें दण्डवत् की कि वे बड़े प्रसन्न होकर बोले, 'अरे भाई! तुम लोग ऐसी हालत में कैसे आ गये। सुना है, रेलवे लाइन टूट गयी है।' हमने कहा, 'हम दोनों रात को नौ बजे चंदौसी से चले हैं और तबसे बराबर चलते हुए यहाँ पहुँचे हैं।' यह सुनकर आप बड़े प्रसन्न हुए और बोले, भाई! यह मार्ग इतना ही कठिन है।' जो इसकी कठिनाइयों से नहीं घबराता उसकी भगवान् सहायता करते हैं। जीव को तो बस अपना बालोचित पुरुषार्थ आरम्भकर देना चाहिये-हिम्मते मर्दा मद्दे खुदा'। अच्छा, तुम लोग आ गये, बहुत अच्छा हुआ।' फिर उसी समय उत्सव का निश्चय हुआ। इससे तो हमारी थकान ऐसी दूर हुई कि हमें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो हमारे शरीर दिव्य चिन्मय ही बन गये हैं और इतने हलके हैं कि हवा में उड़ सकते हैं।

उसी के साथ श्रीकृष्ण की दानलीला करने का भी निश्चय हुआ उसमें श्रीकृष्ण का पार्ट तो आपका ही था, श्रीजी सम्भवतः पण्डित श्रीरामजी बने, मेरा पार्ट था मुख्या गोपी और मधुमंगल का तथा पं॰ जौहरीलाल एवं दूसरे कुछ लोग श्रीकृष्ण के सखा एवं श्रीजी की सखियाँ बने। लीला के आरम्भ में जब श्रीमहाराजजी गोलोक के कोतवाल बनकर आये और उन्होनें सब जीवों को सावधान करते हुए गोलोक-धाम और श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन किया तो हम लोगों में एक प्रकार का आवेश-सा हो गया और जिसका जो पार्ट था वह तद्रूप ही बन गया। उन लीलाओं में बाहर का वेष-भूषा कुछ नहीं थी, केवल भाव का ही प्राधान्य था। उन लीलाओं का मैं क्या वर्णन करूँ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता था कि मेरा और सारे संसार के जीवों का गोपीभाव ही वास्तविक स्वरूप है, अर्थात् जीवमात्र गोपी है, पुरुष तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं। तथा जीव का परम पुरुषार्थ यही है कि अपने इस स्वरूप को समझकर वह अपने प्राण-प्रियतम श्रीकृष्ण के स्वरूप को भी समझ सके।

उस समय श्रीकृष्ण की दानलीला क्या है– इस रहस्य का भी मेरे हृदय में ठीक-ठीक स्फुरण हुआ। उसको अब यथावत् लिखना तो कठिन है, हाँ, केवल अपने बालचापल्य से उसकी छायामात्र लिखने का प्रयास करता हूँ।

अपने जन्म-जन्मान्तर के पुण्य उदय होने पर श्रीहरि और गुरुदेव की कृपा से ही जीव भक्तिमार्ग में प्रवेश करता है, तभी श्रीकृष्ण में उसका अनुराग होता है–

'जनमान्तरसहस्रेषु तपोध्यानसमाधिभिः।
नराणां क्षीणापापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते॥'

आरम्भ में वह श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन इस नवधा भक्ति का अभ्यास करता है। फिर उसकी वैधी भक्ति रागानुगा में परिणत होकर प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। तब उस गोपीभाव-विशिष्ट जीव के अहंकार, लज्जा, घृणा, भय आदि दोष और रूप, यौवन, जाति, विद्या आदि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिमान रूप सर्वस्व को वह बाँके बिहारी हर लेता है। जीव का इनमें चिरकाल से दृढ़ अभिनिवेश है, इसलिये यह सहसा इन्हें त्यागने में समर्थ नहीं होता। इसीसे वह चोरजारशिखामणि अपनी अनेकों नाट्यकलाओं द्वारा बलात्कार से इसका सर्वस्व हरण करके सदा के लिये आत्मसात् कर लेता है। बस, इस छीना-झपटी का नाम ही 'दान-लीला' है।

इस लीला का अभिनय करते हुए आपने त्रिभंगललित गति से वंशी बजाने का-सा नाट्य किया। उस समय आपका दिव्य-चिन्मय विग्रह पहले तो एकदम प्रकाश का पुञ्ज हो गया, किन्तु फिर नीलमेघ, नीलमणि अथवा नीलकमल के समान श्यामसुन्दर हो गया। यह देखकर मैं तो अपने-आप में नहीं रहा। पहले तो एकदम जड़वत् स्तब्ध रह गया, फिर मुझे हर्षातिरेक से रोमांच हुआ और नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी। यहाँ तक कि मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि इस आनन्द के वेग से मेरा हृदय फट जायगा, मैं इसे धारण नहीं कर सकूँगा। बस, थोड़ी ही देर में मैं मूर्च्छित हो गया। तब श्रीमहाराजजी ने मुझे उठाकर हृदय से लगा लिया। इससे मानो आपने मुझ में शक्ति संचार कर दिया और मैं थोड़ी ही देर में सावधान हो गया।

इस समय जैसी मेरी अवस्था थी वैसी ही सबकी हो गयी तब मुझे याद आया कि श्रीमहाराजजी जो अपने गुरु महाराज का यह वाक्य कहा करते थे कि हमारे हृदय में जो आनन्द का समुद्र निरन्तर लहर मार रहा है, उसकी यदि एक बूँद भी तुम्हें प्रदान कर दें तो तुम्हारा हृदय फट जायगा'– वह बात ठीक ही है। मेरा तो ऐसा विचार है कि जितने भी साधन, भजन, संयम, नियम और ध्यानादि हैं वे सब उस आनन्द को धारण करने की सामर्थ्य प्राप्त कराने के लिये ही हैं। किन्तु ऐसा कोई साधन भी श्रीगुरुदेव की कृपा के बिना नहीं हो सकता। बेचारा जीव तो अपने बल से एक तिनका भी नहीं उठा सकता। फिर भला, उस दिव्य भाव को अपने बल से कैसे प्राप्त कर सकता है? वह तो एकमात्र गुरुकृपा से ही प्राप्त सकता है–

'कृपा होय गुरुदेव की , देखत करें निहाल।
औरै गति पलटै तबै, कागा होत मराल॥
मैं मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगाओ बान।
प्रेम खेत घायल गिरै, तन मन बीधे प्रान॥

जीवन दान

सम्वत् १९८१ में श्रीमहाराजजी ने श्रीधाम वृन्दावन की यात्रा की। उस समय आपके साथ अधिकतर शिवपुरी के ही भक्तवृन्द थे। उनमें मेरे विद्यागुरु और यज्ञोपवीत गुरु पण्डित श्रीकृष्णदत्तजी ज्योतिषी भी थे। हम सब लोग श्रीगौरांग दरिद्रालय गोपीनाथ बाजार में स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी बंगाली के यहाँ ठहरे हुए थे। एक दिन प्रातः काल ही हम यमुना-स्नान को गये। भाद्रपद का महीना था। अतः श्रीयमुनाजी खूब चढ़ी हुई थीं। हमारे साथ शिवपुरी का मदनलाल शास्त्री भी, जो उस समय बालक ही था, स्नान करने गया। वह यमुनाजी में डूब गया। सब लोग देखते के देखते ही रह गये। वहाँ अथाह जल था और भँवर भी पड़ रही थी। इसलिये किसी तैराक की भी डुबकी लगाने की हिम्मत नहीं पड़ी। तब हमारे गुरुजी, जो शरीर से निर्बल होने पर भी बहुत अच्छे तैराक थे, अपनी जान हथेली पर रखकर कूद पड़े उस कुण्डे में गोता लगाकर प्रायः दस मिनट

में मदनलाल की लाश ऊपर ले आये। देरी अधिक लगने से हम लोग तो पण्डितजी की ओर से भी निराश होने लगे थे। किन्तु उन्होंने बड़ा साहस करके उस मृतप्राय बालक को किनारे पर डाला।

हमने मदनलाल को देखा तो उसमें जीवन का कोई चिह्न नहीं था। नाड़ी की गति एकदम बन्द थी तथा हृदय की धड़कन का भी कोई पता नहीं लगता था। हाँ, तालू में अवश्य कुछ गर्मी थी। बस, दो-तीन आदमी उसे गौरांग दरिद्रालय में उठा लाये। वहाँ श्रीमहाराजजी से सब हाल कहा। तब आप स्वामी कृष्णानन्दजी और आश्रम के बंगाली डाक्टरों को लेकर आये। आपने डाकटर से पूछा, 'क्या हाल है?' तो वह बोला, 'यह तो मर चुका, केवल सिर में ही कुछ गर्मी है, सो थोड़ी देर में वह भी निकल जायगी।'

यह सुनकर आपने डाक्टर को डाँटकर कहा, 'नहीं डाक्टर! यह दिव्यधाम है, यहाँ इस प्रकार कोई नहीं मर सकता। यह तो श्रीजी की आनन्दमयी गोद में सोया हुआ है। देखो, अभी जाग पड़ेगा। तुमसे जो कुछ बन पड़े इसकी सेवा करो।' यह सुनकर आप हम सबके साथ जोर-जोर से 'श्रीकृष्णगोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव' इस मन्त्र का कीर्तन करने लगे। डाक्टरों ने भी आपकी आज्ञानुसार उसके शरीर में कुछ इंजैक्शन लगाये और गुदा में डूश लगाकर सारा पानी बाहर निकाल दिया। इसके सिवा और भी कई उपचार किये। किन्तु कोई परिणाम न हुआ। तब आपने धीरे से उसके पास बैठकर उसके कान में बहुत जोर से 'हरिः बोल' उच्चारण किया और कहा, 'उठो, अब बहुत सो लिये।' बस, सिर पर हाथ रखते ही उसके शरीर में चेतना दौड़ गयी और उसने आँख खोल दीं।

इस अद्भुत व्यापार को देखकर सभी लोग आनन्द से जयघोष करने लगे। तब महाराजजी ने उससे पूछा, 'मदन! तू अब कैसा है? उसने उठकर श्रीचरणों में प्रणाम किया और कहा, 'मैं अच्छा हूँ।' तब आपने उसे दूध पिलाने को कहा और स्वयं अपने हाथों से देकर दूध भेजा। दूध पीते ही वह पूर्णतया सावधान हो गया। पीछे तीन दिन तक उसे कुछ कमजोरी रही, फिर वह ठीक
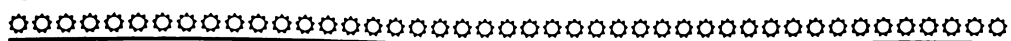
हो गया। उससे उस समय की उसकी हालत पूछी गयी तो उसने बताया कि मैं तो किसी अन्य लोक में चला गया था। अब श्रीमहाराजजी की कीर्तन-ध्वनि और मेरा नाम लेकर पुकारने की आवाज सुनकर लौट आया हूँ। इस प्रकार श्रीमहाराजजी ने इसे पुनः जीवनदान दिया।

प्रेतबाधा की निवृत्ति

संवत् १९८० में बाँध बना था। उसके बाद उसी साल ज्येष्ठ मास में उसका बहुत बड़ा उत्सव हुआ। उसमें लड्डू-कचौड़ी का प्रायः दस हजार आदमियों का भोजन हुआ था। वह भण्डारा सिराला गाँव की बगिया में हुआ था। उस समय बगिया में प्रायः बीस हजार आदमियों की भीड़ थी। उस भीड़ में बहुत लोगों के आग्रह से आपने हाथी पर चढ़कर दर्शन दिये थे। उस समय खादर के लोगों की आपमें बड़ी भारी श्रद्धा थी। चारों ओर से भेंट के रुपये की वर्षा-सी होने लगी। हम लोगों ने हजारों रुपया हाथी पर लिया, सैकड़ों हाथीवानों को मिला और सैकड़ों पृथ्वी पर गिर गया। किन्तु इतनी भीड़ में आपने केवल दो ही चीजें ली थीं—एक तो एक गरीब ब्राह्मण की सुपारी और दूसरी एक युवक बाबू की चिट्ठी ये दोनों चीज लेकर आपने जेब में रख लीं। फिर कुटिया में आकर आज्ञा दी कि अभी (दिन के चार बजे) गुन्नौर जाकर कल प्रातःकाल कलकत्ते पहुँचना है।

मैंने प्रार्थना की कि मुझे यहीं छोड़ दीजिये, क्योंकि सारे उत्सव का सामान संभालना है। किन्तु आपने डाँटकर कहा, 'नहीं अवश्य चलना है। बस, दोपहर को विश्राम करके ठीक चार बजे सवारियाँ जुड़वाकर चले और शाम को आठ बजे के लगभग गुन्नौर पहुँच गए। वहाँ गवाँ वाले लाला चन्द्रसेन के कोल्हू के कारखाने में ठहर गये। तभी आप बोले, 'कहीं एकान्त में कुएँ पर चलो, मैं अभी शौच से निवृत्त होकर आता हूँ।' मैं भोलेजी के साथ रस्सी और बाल्टी लेकर सरकारी अस्पताल के कुएँ पर, जो इस समय बिल्कुल सूना ही जान पड़ता था, चला गया।

आपने शौच से आकर हाथ धोये और स्नान किया। फिर मुझसे कहा, 'कोई एकान्त स्थान देख जहाँ थोड़ी देर बैठें।' मैंने जाकर देखा तो उसी अस्पताल की छत एकान्त जान पड़ी। मैं कमण्डलु भरकर आगे चला और आप पीछे-पीछे। कुएँ से वह छत प्रायः आधा फर्लांग होगी। किन्तु बीच में ही एक आदमी अकस्मात् आपके चरणों में गिरा और खूब ज़ोर-जोर से रोने लगा। आप चुपचाप खड़े रहे। फिर वह बोला, 'महाराजजी! यह जिंद मुझे कई वर्षों से लगा है और मेरा कलेजा चाट रहा है। मुझे यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है। यह अनेकों रूप धारण कर लेता है। मैं आपका नाम सुनकर इसीके कारण बाँध पर गया था और मेले की भीड़ में मैंने आपको एक चिट्ठी भी दी थी। किन्तु उसी समय मुझे इसका आवेश हो गया और यह मुझे यहाँ पकड़ लाया। आप तो बड़े ही गरीब परवर हैं, जो मेरी पुकार सुनकर यहीं दौड़े आये। अब मुझे विश्वास है कि मेरा दुःख दूर हो जायगा। यदि आज आप यहाँ न पधारते तो कल मैं अलीगढ़ चला जाता और मुझे आपके दर्शन न होते।'

उसकी प्रार्थना के शब्द बड़े ही मार्मिक थे। उन्हें सुनकर मेरा भी हृदय भर आया। किन्तु आप अभी तक चुपचाप ही खड़े रहे। बस, प्रार्थना करते-करते ही उसे आवेश हो गया। वह बड़े जोर से चीखने लगा, श्रीमहाराजजी को अनेकों गालियाँ सुनाने लगा और बार-बार रोने-चिल्लाने लगा। वह बोला, 'हाय रे! इस साधु के शरीर से तो आग निकलती है। अरे मैं जला! अरे मैं जला! अरे, मुझे कोई बचाओ! हाय रे! इसने मुझसे मेरा शिकार छीन लिया। इसीलिये तो मैं अपने शिकार को बाँध से भगाकर लाया था। मगर इसने तो इतनी दूर आकर भी मुझे पकड़ लिया।' यह कहकर वह हाथी की तरह जोर-जोर से चिंघारने लगा और अपने सहायकों के नाम लेकर पुकारने लगा-'अमुक पीराने की पीर! चलो, फज़्रअली! चलो, मुनीरखा! चलो। अरे! तुम दूर क्यों खड़े हो? अरे! आकर मुझे बचाओ। मैं इस साधु की आग से जला जाता हूँ।' इस तरह वह अनेक प्रकार का अनर्गल भाषण करने लगा।

उसकी अनुचित बातें सुनकर मुझे भी अपने बजरंगबली का स्मरण हो आया। और मैं एकदम जोश में आकर उस पर टूटने ही वाला था कि श्रीमहाराजजी

ने बड़े जोर से उसकें मुँह पर एक तमाचा मारा। उसकी आवाज सुनकर मेरी आँखें खुल गयीं। मैंने देखा कि महाराजजी उसका हाथ पकड़े हुए हैं। आपने दूसरी बार उसके एक तमाचा और मारा और कहा, 'चुप हो, नहीं तो और पिटेगा।' बस, वह सीधा हो गया और गिड़गिड़ाकर बोला, 'अच्छा लो, मैं जाता हूँ। मुझे पानी तो पिला दो।' तब श्रीमहाराजजी ने कमण्डलु लेकर उसे पानी पिलाया। वह सारा कमण्डलु पीकर भी प्यासा ही रहा। मैं दूसरी बार कमण्डलु भरकर लाया और वह उसे भी पी गया। इस प्रकार छः सात सेर पानी पीकर वह सदा के लिये उस युवक को छोड़ गया। इसके बाद बाबू ब्रजबिहारीलाल होश में आये और प्रार्थना करने लगे कि आपने मुझे बचा लिया।

उनकी प्रार्थना शान्ति पूर्वक सुनकर आपने दो-चार शब्दों में उन्हें सान्त्वना दी। इसके पश्चात् आप अपने आसन पर चले आये, वे अपने घर चले गये। वह जिंद उन्हें पीछे भी कभी-कभी दिखायी देता था, पर दूर से ही बात करता था। वे श्रीमहाराजजी का बताया हुआ मन्त्र जपते हुए उसकी उपेक्षा कर देते थे। इससे वह चला जाता था और कुछ दिनों बाद तो वह सदा के लिए हट गया।

बाबू ब्रजबिहारीलाल डाकखाने में नौकर थे। इनकी कई जगह बदली हुई थी। किन्तु ये समय-समय पर बराबर श्रीमहाराजजी से मिलते रहे। श्रीमहाराजजी के चरणों में इनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। एक बार इन्होंने बड़े आग्रह से कहा कि अब मैं नौकरी नहीं करूँगा। तब आपने यह कहकर समझा दिया कि तू जब और जहाँ भी मुझे स्मरण करेगा वहीं तुझे मेरे दर्शन हो जायेंगे। उस दिन से वैसा ही हुआ। उन्होंने अपने घर में एक अलग कोठरी केवल भजन करने के लिये अनेकों चित्रों से सजा रखी थी। उसी में अपने सेवा ठाकुर श्रीगोपालजी भी एक सिंहासन पर पधरा रखे थे। बाबूजी श्रीगोपालजी की बड़े भाव से सेवा करते थे। सुना कि कभी-कभी श्रीगोपालजी स्वप्न अथवा जाग्रत में उनसे बोला भी करते थे और कभी-कभी तो मैं अमुक चीज खाऊँगा' ऐसा आग्रह भी करते थे। बाबू ब्रजबिहारीलाल का स्वभाव बड़ा ही शान्त और

सरल है। देखने में तो ये बावले से जान पड़ते थे। परन्तु व्यवहार में बराबर उन्नति करते रहे। आरम्भ में प्राय: ३०) मासिक पर क्लर्क हुए थे, परन्तु उन्नति करते-करते जिले के प्रधान पोस्टमास्टर हो गये थे और ३००) मासिक पाने लगे थे।

इनकी भजनकुटी में श्रीगोपालजी के सिंहासन के बराबर एक चौकी पर बढ़िया-सा आसन बिछा रहता था। उसके सामने ही एक साधारण आसन पर ये स्वयं बैठते थे। ये जब चाहते थे तभी श्रीमहाराजजी इनकी प्रार्थना से उस चौकी पर आ विराजते थे। उस समय कभी तो आप ध्यानवस्थित ही बैठे रहते और कभी उन्हें कुछ पूछना होता तो खूब बातचीत भी करते थे। कभी-कभी तो बाबूजी प्रत्यक्षवत् श्रीमहाराजजी को भोजन भी कराते थे। बाबू ब्रजबिहारीलाल का आपके प्रति ठीक वही भाव था जो एकलव्य का द्रोणाचार्य के प्रति था। श्रीमहाराजजी यों तो निरन्तर ही इन्हें ध्यान में दीखते थे, किन्तु जब ये चाहते तब प्रत्यक्ष भी इनके सामने प्रकट हो जाते और इनसे ठीक इसी प्रकार बात करते थे जैसे माँ अपने बच्चे से।

पीछे इन्होनें श्रीवृन्दावन में गोविन्ददेवजी के पुराने मन्दिर के पास मकान भी बनवा लिया। ठसमें एक ओर ठाकुरजी का मन्दिर और दूसरी ओर इनके रहने का मकान है। ठस मकान में एकबार श्रीमहाराजजी, पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा और हम लोगों को ले जाकर इन्होंने कीर्तनोत्सव किया था तथा बड़ी श्रद्धा से सौ-दो सौ आदमियों को भोजन भी कराया था। उससमय श्रीमहाराजजी ने स्वयं अपने हाथ से इनके गोपालजी की स्थापना की थी। बड़ा ही आनन्द रहा। श्रीमहाराजजी से हम लोग आजतक कभी मुँह खोलकर बात नहीं कर सके। परन्तु ये उन्हें पत्र में स्पष्ट 'गुरुदेव' कहकर ही सम्बोधन करते रहते हैं। इस प्रकार स्पष्टतया 'गुरुदेव' कहने और लिखने का सौभाग्य तो इन्हें और बरेली वाले डाक्टर माधोरामजी को ही प्राप्त हुआ है। और किसी भी आदमी का ऐसा साहस नहीं है। जो आपके लिये 'गुरुदेव' शब्द का प्रयोग कर सके।

इसी प्रकार इस जीवन में हमने आपसे सम्बन्ध रखने वाले और भी अनेकों अद्भुत प्रसंगों को इन आँखों से देखा है। परन्तु इस छोटी-सी पुस्तक में इतना स्थान कहाँ है जो उन सबका वर्णन किया जाय। बहुत संकोच करने पर भी यह प्रकरण बहुत बढ़ गया है। अत: अब इसे यहीं समाप्त करते हैं।

कुछ अटपटी लीलाएँ

उन दिनों आप एक अजीब नशे-से में रहते थे। उसमें कभी-कभी बड़ी अटपटी लीलाएँ होती थीं। किन्तु उनमें भी आपका भगवत्प्रेम और दीनवत्सलता का भाव अक्षुण्ण रहता था। तथा उनके द्वारा भी आपने कई लोगों को भगवत्प्रेम प्रदान किया और भगवद्दर्शन कराये। अत: अब ऐसी कुछ घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

जौहरीलाल से विवाद

एक बार आप गवाँ से उन्मत्त की तरह दौड़े आ रहे थे। इसी स्थिति में आप पण्डित जौहरीलाल के आगे होकर निकल गये। जौहरीलालजी ने दूसरे दिन भी इसी प्रकार आते देखा तो जल्दी से सामने आ अपने दोनों हाथ फैलाकर रोक लिया। आप बोले, 'क्यों रोकता है?' उन्होने कहा, 'अच्छे रोकता हूँ।' आप 'क्या रोक सकता है?' जौहरीलाल 'हाँ अवश्य रोक सकता हूँ।' बोले— 'किस प्रकार?' जौहरीलाल—'जिस प्रकार भी आप रुक सकें।' आप बोले, 'क्या हरिनाम सुना सकता है?' जौहरीलाल ने कहा, 'हाँ, सुना सकता हूँ।'

बस, उसी समय दो-चार आदमी इकट्ठे होकर ताली बजाते हुए आपके साथ 'हरि हरि' उच्चारण करने लगे। और आप उनके बीच में दोनों भुजाएँ उठाकर नृत्य करने लगे। इतने ही में एक बहुत बड़ी घटा उठी। जौहरीलाल उधर देखने लगे। तब आप उसी समय कीर्तन बन्द करके बोले, 'तू तो माया का

हो गया। तेरा ध्यान कीर्तन छोड़कर घटा की ओर चला गया। वह तो मेरी माया थी।' (सचमुच ही वह घटा उसी समय आकाश में विलीन हो गयी।) तब जौहरीलाल ने कहा, मैंने तो आपका चमत्कार देखा है।'

यह सुनकर आप भागे और बाहर जाकर गिर गये। तब हम सब लोग आपको घेर कर कीर्तन करते रहे। आप प्रायः तीन घंटे मृतक की तरह निश्चेष्ट रहे। पीछे अकस्मात् खड़े हो गये और हम लोगों को बालकों की तरह बड़े प्यार से पुचकारकर गवाँ की ओर चले गए।

छिद्दू को प्रेमदान

एक दिन जयशंकरजी के यहाँ से आप सड़क-सड़क गवाँ की ओर जा रहे थे। तभी मार्ग में दो-चार आदमियों के साथ कीर्तन करने लगे। वहाँ बरोरा का एक छिद्दू ब्राह्मण खड़ा-खड़ा हँसने लगा। आपने कीर्तन बन्द करके उससे कहा, तुम भी हरि बोलो।' वह बोला, 'मैं नहीं बोलूँग।' आपने बार-बार आग्रह किया, तो भी उसने आपकी बात नहीं मानी। तब आप उसके पैरों पर गिरकर प्रार्थना करने लगे। इससे वह घबराया और वहाँ से भागा। किन्तु थोड़ी दूर पर मूर्च्छित होकर गिर गया। तब आप उसकी परिक्रमा करते हुए कीर्तन करने लगे। जब उसे होश हुआ तो वह 'हरि-हरि' बोलता नृत्य करने लगा और कीर्तनानन्द में पागल हो गया। अब श्रीमहाराजजी उसे छोड़कर गवाँ की ओर भागे। तब वह भी कीर्तन करता आपके पीछे दौड़ा। यह देखकर सब लोग हँसने लगे।

इसके बाद तो वह श्रीमहाराजजी का अनन्य भक्त हो गया और बड़े प्रेम से कीर्तन करने लगा। एक दिन तो वह कीर्तन के आवेश में बबूल के काँटों की बाड़ में लोटता रहा। किन्तु आश्चर्य कि उसके नंगे शरीर में एक भी काँटा नहीं लगा। यह सब श्रीमहाराजजी तथा पतित पावन भगवन्नाम की ही महिमा थी।

युगलदर्शन

एक बार भक्तवर हुलासी और पण्डित जौहरीलाल का विचार श्रीवृन्दावन जाने का हुआ। तब आपने कहा कि वहाँ जाकर क्या करोगे, हम तुम्हें यहीं

श्रीराधाकृष्ण के दर्शन करा देंगे। फिर कुछ संयम-नियम बतलाकर आपने एकमन्त्र बताया और कहा कि इसका ब्रह्मचर्य पूर्वक जप करने से तुम्हें युगल सरकार के दर्शन हो जायेंगे।

बस, दोनों भक्त आपके आदेशानुसार जप करने लगे। इससे जौहरीलाल को तो जन्माष्टमी के दिन प्रातःकाल नदी पर स्नान करते समय एक दिव्य विमान पर भगवान् के दर्शन हुए। उस विमान के आगे-पीछे सारस पक्षी बोलते जा रहे थे। इस अद्भुत चमत्कार को देखकर पण्डितजी विह्वल हो गये। जब जयशंकरजी के घर पर ये दोनों महाराजजी को मिले तो उन्होंने पूछा कि क्या तुम्हें श्रीश्यामसुन्दर के दर्शन हुए? तब जौहरीलाल ने तो अपनी घटना सुना दी। किन्तु हुलासी रोकर आपके चरणों से लिपट गया और बोला कि मुझे तो अभी दर्शन नहीं हुए। आने समझा बुझाकर कहा, 'चलो, जंगल में चलें।' तब तीनों ही अपने नववृन्दावन में गये और एक अति सुन्दर वटवृक्ष पर चढ़कर भजन गाने लगे। बारी-बारी से तीनों ही गाते, कीर्तन करते और कुछ खेल भी करते थे। इस तरह बहुत देर तक करते रहे। फिर नीचे उतरे और एक कुञ्ज में चले गये। वहाँ हुलासी से पूछा तुझे दर्शन हुए या नहीं? वह बोला,'अभी नहीं हुए।' तब आपने कहा, 'आँखें बन्द करलो।' फिर थोड़ी ही देर में कहा, 'खोल दो।'

उस समय जौहरीलाल को तो मालूम हुआ कि श्रीमहाराजजी अपने संन्यासी वेष में ही वंशी वादन की-सी मुद्रा किये त्रिभंगललित गति से खड़े हैं। किन्तु हुलासी को श्रीमहाराजजी के दिव्य-मंगल विग्रह में साक्षात् युगल सरकार के दर्शन हुए। उसने देखा कि श्रीश्यामसुन्दर त्रिभंगललित मुद्रा से वंशी बजा रहे हैं, उनकी कान्ति से सारा वृन्दावन प्रकाशमान हो रहा है, तथा उनके वामभाग में श्रीवृषभानुनन्दिनी विराजमान हैं।

बस हुलासी के नेत्रों मे तो एकदम दिव्य वृन्दावन का दिव्याति-दिव्य अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्य प्रकट हो गया। वह तो उस दिव्य-दर्शन को पाकर कृत्कृत्य हो गया तथा मूर्च्छित होकर श्रीचरणों में गिर गया। पीछे दिव्य वंशी नाद की ध्वनि सुनकर उसे चेत हुआ। तब वह उठकर पागलों की तरह नृत्य करने लगा। इस तरह बहुत देर तक वह विह्वल अवस्था में कभी गाता, कभी

कीर्तन करता और कभी परिक्रमा करने लगता था। उसे बन के प्रत्येक वृक्ष, लता और कुञ्ज में उसी रूप की झाँकी होने लगी। अतः वह पागल की तरह प्रत्येक वृक्ष को आलिंगन करता घूमने लगा। फिर जैसे-तैसे श्रीमहाराजजी ने उसे सावधान किया। किन्तु जौहरीलालजी को तो बराबर आपका वह संन्यासी रूप ही दीखता रहा। सच है-

'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥'

बरोरा में अवन्तिका

एक बार जौहरीलालजी ने अवन्तिका❀ जाने का विचार प्रकट किया। तब आपने उन्हें रोकते हुए कहा, 'वहाँ जाकर क्या करोगे? हम तुम्हें देवी और मेला के दर्शन यहीं करा देंगे।' बस, दिन भर तो जंगल में घूमते रहे। न स्वयं कुछ खाया और न दूसरों को खाने दिया। सायंकाल में आकर घर के पास अंगोछा बिछाकर बैठ गये। तब सारा मेला अवन्तिका से लौटकर वहीं आ गया। उस दिन आप गवाँ भी नहीं गये थे। अतः वहाँ के भी बहुत-से लोग कोई सवारी में कोई पैदल वहीं आ गये। थोड़ी ही देर में बहुत से गैस के हंडे और लालटेनें भी जल गयीं तथा खाने का भी बहुत-सा सामान इकट्ठा हो गया। अवन्तिका से लौटने वाले बहुत-सा प्रसाद भी लाये थे। तथा उनमें से बहुतों के पास तो खिलौने भी थे। इस प्रकार पूरा मेला लग गया।

फिर वहाँ खूब कीर्तन का रंग जमा और पदगायन भी हुआ। तदनन्तर महाशय सुखराम गिरी, निजामपुर के भोले भक्त गोदीराम और बरोरा के अहीर वासुदेव के व्याख्यान हुए। इस तरह खूब क्रीड़ा-कौतुक हुए। महाराजजी खूब खिलवाड़ में पड़ गये, खूब हँसे, अपने हाथ से प्रसाद बाँटा और स्वयं भी खाया। फिर जौहरीलाल से बोले, 'भाई! तू खूब प्रसाद खा ले और बाँध पर भी ले, जा, क्योंकि तू हमारा न्यौता हुआ ब्राह्मण है।' इस प्रकार रात के बारह बजे तक

❀ यह अवन्तिका देवी अनूपशहर से प्रायः ५ मील उत्तर की ओर गंगातट पर है। यहाँ नवरात्र में बड़ा मेला लगता है।

खूब धूमधाम रही। आपने जौहरीलाल से पूछा, 'क्यों भाई तेरा मेला हुआ या नहीं?' उन्होंने कहा, 'खूब हो गया।'

भैंस की खोज

एक दिन अवकाश के समय आपने विचार किया कि आज भोलेजी के पास चलकर गन्ने खाते हैं। भोलेजी उस समय लाला कुन्दनलाल के यहाँ नौकरी करते थे और गवाँ से प्राय: दस मील लालपुर गवाँ में ईख का गुड़ बनवा रहे थे। आपने कभी वहाँ आने का उन्हें वचन दे दिया था। अत: मुझे और पण्डित जौहरीलाल को साथ लेकर आप लालपुर पहुँचे और भोलेजी को ढूंढते-ढूंढते कोल्हू पर ही जा पहुँचे। भोलेजी देखते ही आपकी भक्तवत्सलता से गद्गद हो गये और आपको साष्टांग प्रणाम किया। आप बोले, 'भोलेजी! हम तो गन्ने खायेंगे।' भोलेजी बढ़िया गन्ने ले आये और हम तीनों ने ही खूब गन्ने खाये तथा गरम-गरम तैयार होने पर थोड़ा-सा गुड़ भी खाया। रात को भोलेजी ने कहीं से रोटी और दूध मँगवाये। तब जैसी जिसकी रुचि थी कुछ खा-पीकर सो गये।

प्रात: काल उठकर वहाँ से भिरावटी को चले। साथ में कुछ दूर भोलेजी भी गये। वहाँ से प्राय: एक मील पर एक झील का पुल था। वहाँ पहुँचे तो उधर से एक ग्रामीण आदमी बड़ा व्यग्र और घबराया हुआ-सा आता मिला पहले तो वह दण्डवत् करके चला गया। फिर थोड़ी दूर जाकर पीछे लौटा और महाराजजी के चरण पकड़कर रोने लगा वह अत्यन्त व्याकुलता से मछली की तरह तड़प रहा था। तब महाराजजी ने हँसते हुए पूछा, 'क्यों भाई! तुझे क्या दु:ख है?' वह बोला, 'मुझे तो मार डाला।' आपने पूछा, किसने?' बोला, 'ईश्वर ने।' आप बड़े हँसे कि भाई! तेरे धन्य भाग्य हैं जो तुझे ईश्वर ने मार डाला। इससे अधिक और क्या सौभाग्य हो सकता है?

यह सुनकर वह फूट-फूटकर रोने लगा। तब आपने बड़े प्यार से पूछा, 'भाई! साफ-साफ बता, क्या बात है?' उसने कहा, 'बाबा! मैंने घर का बहुत-सा सामान बेचकर एक भैंस ली थी। वह आजकल में ही बियाने वाली थी। किन्तु आज रात में ही उसे चोर ले गये। उसी की खोज करता मैं यहाँ आया हूँ। आप महात्मा

हैं कृपा करके बता दें कि मेरी भैंस कहाँ मिलेगी।' तब आपने जौहरीलाल से कहा, 'भाई! तू बड़ा भारी ज्योतिषी है। बता, इसकी भैंस किधर गयी।' जौहरीलाल ने सम्भल की ओर बतायी। तभी आपने भी सम्भल की ओर हाथ उठा दिया कि तू भागा चला जा रास्ते में ही तेरी भैंस मिल जायगी।⊛ किन्तु वह इतने से शान्त न हुआ और बोला, 'नहीं बाबा! मेरे साथ चलकर मेरी भैंस ढुँढवा दो।'

तब आपके मन में तो आ गयी कि इसके साथ चलकर इसकी भैंस ढुँढवा दें। किन्तु जौहरीलाल ने यह समझकर कि साथ में मुझे भी भटकना पड़ेगा, टाल बता दी। इससे आप भी ढीले पड़ गये और उसे समझा-बुझाकर सम्भल की ओर चलता कर दिया। जब वह चला गया तो आपने विचार किया कि वास्तव में तो हमारा धर्म यही था कि उस गरीब के साथ जाकर उसकी भैंस ढुँढवाते किन्तु इस जौहरीलाल ने आलस्य किया। खैर, अब उसके किये हमें भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये वे उसकी सहायता करें। ऐसा विचारकर उसी पुल पर खड़े हो क्रमशः एक-एक ने प्रार्थना की। सबसे पीछे आपका नम्बर आया। आप प्रार्थना कर ही रहे थे कि वह आदमी फिर लौट आया। और घबराकर पैरों पर गिर पड़ा। तब आपने आँखें खोलीं और उससे कहा, 'क्यों भाई! तू कैसे लौट आया?' वह गिड़गिड़ाकर बोला, बाबा! मैं। बड़ा गरीब आदमी हूँ। मेरा इस दुनियाँ में कोई नहीं है। मैं आपकी शरण हूँ आप मेरी रक्षा करो। बाबा! आप मेरे भगवान् हैं, मुझ पर दया करो।'

उसकी दीनतापूर्ण प्रार्थना सुनकर आपने फिर हमारे साथ विचार किया कि अब क्या करना चाहिये। तब मैंने और भोलेजी ने तो उसके साथ चलकर भैंस ढुँढ़वाने की ही सलाह दी, किन्तु जौहरीलाल ने फिर भी कुछ आनाकानी की। तब महाराजजी ने इन्हें डाँटकर कहा, 'क्या तू पागल हो गया है? तूने जन्मभर रामायण पढ़ी है। क्या तुझे याद नहीं कि-

शरणागत कहँ जे तजें, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पामर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि ।।

⊛ उसकी भैंस उस समय वास्तव में ही सम्भल की ओर रास्ते में थी-यह बात आगे की घटनाओं से व्यक्त हो जायगी।

उस समय जौहरीलाल का हठ बहुत अनुचित था। इसीसे उन पर डाँट भी पड़ी और उसीसे सचमुच उनकी बुद्धि विपरीत हो गयी। उन्हें एक प्रकार का पागलपन-सा हो गया। पर वे डरके मारे चुपचाप पीछे-पीछे हो लिये।

अब हम लोग फिर लालपुर लौटे। वहाँ जाकर दो-चार समझदार आदमियों को बुलाया। गुरेठा के एक पढ़े लिखे आदमी थे, वे भी आ गये। बस, चार-चार आदमियों की चार-पाँच टोलियाँ बनाकर चारों ओर को भेज दीं। और आप चार आदमियों को साथ लेकर सम्भल की ओर चले। हमारे साथ लालपुर का मुकद्दम चोखे अहीर भी था। वह बड़ा होशियार था। खोजते-खोजते हम रसूलपुर पहुँचे। यह सम्भल से दो कोश इधर गूजरों की बस्ती थी। वह सारा गाँव पक्का चोर था। यहाँ पृथ्वी के नीचे तयखानों में हजारों चुराये हुए पशु रहते थे। यहाँ तक तो भैंस का पता लगता रहा किन्तु इससे आगे कोई पता नहीं लगा। तब यही हुआ कि भैंस इसी गाँव में है। परन्तु यहाँ से भैंस निकालना कोई सहज काम नहीं। यहाँ के आदमी पक्के चोर, डाकू और लड़ाकू थे। तथापि श्रीमहाराजजी ने कहा, 'नहीं भाई! हम भी छः आदमी हैं। देखो, लंका को तो छः वानरों ने ही पीपल के पत्ते की तरह हिला दिया था।

'पीपल परण सम धरणि लंका कंप षट् कीशन करा।'

तुम घबराओ मत। यदि तुम्हें निश्चय है कि भैंस इसी गाँव में है तो हम एक-एक घर ढूँढ़कर उसे निकालेंगे।' किन्तु हमारे साथ जो लालपुर का मुकद्दम चोखे अहीर था वह बड़ा चलता पुर्जा था। उसने न जाने किस कारण (सम्भल है, वह चोरों के साथ मिल गया हो, अथवा कोई और कारण हो) इस बात को टाल दिया। वह बोला, 'नहीं, महाराज! भैंस यहाँ नहीं है। आज सिरसी-महमूदपुर की पैंठ लगती है। भैंस निश्चय वहीं गयी होगी। वह जगह यहाँ से चार-पाँच मील है। पक्की सड़क है, ताँगे भी चलते हैं। अतः वहाँ किसी को अवश्य जाना चाहिए।' तब यही तय हुआ कि तुम्हीं दोनों आदमी (चोखे और भैंस वाला) ही वहाँ जाओ। उस समय एक रुपया मेरे पास था और चार आने जौहरीलाल के पास। वह सवा रुपया हमने उसे दिया और वे दोनों वहाँ चले गए।

हम लोग सम्मल के काइन हाउस और कसाईखाने आदि स्थानों को दूढ़ते रहे। जब दिन भर घोड़ों की तरह दौड़ते-दौड़ते थक गए तब सोचने लगे कि कहाँ ठहरें। महाराजजी ने कहा, 'यहाँ थन्ना बागवान् साधू होकर किसी वैष्णव के स्थान की गौशाला में रहता है। वहीं चलकर ठहरें।' तब हम लोग पूछते-पूछते रात को आठ बजे थन्ना के पास पहुँचे। वह तो अब बड़ा भारी जटा-जूटधारी रामानन्दी साधू बन गया था और उसका नाम था 'रामसेवकदास'। जब वह मिला तो महाराजजी को देखते ही आनन्द से गद्‌गद हो गया और उनके श्रीचरणों से लिपट गया।

महाराजजी ने कहा, भाई! हमको बड़ी भूख लगी है, जल्दी से रोटी खिला।' तब उसने बड़ी शीघ्रता से आलू का शाक और खीर बनाकर रोटियां बनायीं और हम सबको भोजन करने के लिए बैठाया। परन्तु चित्त भ्रम के कारण जौहरीलाल को खीर में कीड़े आलुओं में चीटियां और पानी में सैकड़ों मक्खियाँ दिखायी दीं। अत: उसने सब बर्तन उठाकर कुएँ में डाल दिये। इसी प्रकार वह और भी अनेकों कुचेष्टाएँ करने लगा। तब महाराजजी ने उसे बहुत समझा-बुझाकर कुछ खिलाया। भोजन करके हम लोग सो गये और प्रात:काल उठकर वहाँ से चल दिये। जौहरीलाल की हालत बहुत बिगड़ गयी। उसे जैसे-तैसे गवाँ तक लाये।

उस दिन रात को आकर देखा तो महाशय सुखरामगिरि की गाय उल्झी पड़ी थी। उसके बच्चे के दो पाँव तो निकल आये थे, किन्तु बाकी बच्चा भीतर उलझ गया था। वह चौबीस घंटे से जोर लगाते-लगाते मरणासन्न हो गयी थी। तब महाराजजी ने उसके निमित्त यह कीर्तन किया-'ईश्वर फकत तू ही है सबको दु:ख से बचाने वाला।' बस, एक घंटे कीर्तन हुआ था कि वह सुखपूर्वक बिया गयी और उसके प्राण बच गये। दूसरे दिन जौहरीलाल बरोरा चले गये और सचमुच ही पागल हो गये। पता नहीं उनका क्या पाप उदय हुआ। वे एक कम्बल लपेटे दिन-रात घर पड़े रहते थे। कोई खिला देता था तो खा लेते थे और वहीं पड़े-पड़े मल-मूत्र त्याग देते थे। वे तो पूरे अघोरी बन गये।

अब, भैंस की बात सुनिये। जब हम लोग इधर चले आये तो उसी रात को वह भैंस वाला और चोखे सिरसी-महमूदपुर से लौटकर सम्भल आये।

सबेरा होने पर चोखे तो अपने गाँव को चला गया। परन्तु उस बेचारे को तो आग लगी लगी हुई थी। वह किसी दूसरी दिशा में ढूँढ़ने चला गया। फिर चार-पाँच दिन पीछे थककर और निराश होकर उसी रसूलपुर गाँव में, जिसमें श्रीमहाराजजी ने ढूँढ़ने का विचार किया था, आकर सो गया। रात को चार बजे उसे किसी ने जगाया और कहा, 'उठ तेरी भैंस गाँव के बाहर एक कपास के खेत में चर रही है और उसके साथ उसका कटरा भी है। वह बेचारा भड़भड़ा कर उठा तो देखा कि महाराजजी हाथ में कण्डलु लिये उसके आगे-आगे चल रहे हैं। जब वह कपास के खेत में पहुँचा तो ये आँखों से ओझल हो गये। थोड़े ही आगे बढ़ने पर उसे भैंस मिल गयी और उसके साथ चार-पाँच दिन का कटरा भी था वह उसकी बाँधी हुई रस्सी में बँधी थी। बस, वह तो मुर्दे से जिन्दा हो गया 'मृतक शरीर प्राण जनु भेटे।' और बार-बार श्रीमहाराजजी को स्मरण करता चुपचाप अपनी भैंस लेकर अपने गाँव को चला गया।

वहाँ उसने पहले-पहले दूध दुहकर उसकी खीर बनायी तो उसे एक कोरी हाँडी में भरकर और कहीं से पाँच रुपये उधार लेकर बरोरा में महाराजजी के पास आया तथा वह खीर और रुपये आपके सामने रखे। महाराजजी ने चकित होकर पूछा, 'यह क्या बात है? तब उसने सब बातें बतलायीं। उन्हें सुनकर आपने कहा, 'भाई! तेरी भैंस तो भगवान् ने ही ढूँढ़ी है। मेरा तो तुझे धोखा हुआ है। खैर, तू गरीब आदमी है, हम लोग तो साधु हैं। ये रुपये तो तू ले जा, इन्हें हम क्या करेंगे। हाँ तेरी खीर हम सब बाँटकर खा लेंगे। ऐसा कहकर रुपये आपने लौटा दिये और खीर हम सबको बाँट दी। बोले, दीनबन्धु भगवान् की जय।

'स्वारथ स्वारथ जानि कै, सबको सब कोइ देय।
दीनबन्धु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेय॥'

जौहरीलाल का संस्कार

पण्डित जौहरीलाल को विचित्र पागलपन हुआ। वे ज्येष्ठ वैशाख की घोर गर्मी में भी कम्बल लपेटे घर में पड़े रहते थे। कोई कुछ खिला देता तो खा लेते नहीं तो कई-कई दिन साफ निकल जाते थे। किन्तु पीछे हमने उनसे

पूछा तो उन्होंने बताया कि उस अवस्था में भी मेरे चित्त में परम शान्ति थी और भगवच्चिन्तन बना रहता था। खैर, कुछ भी हो, बाहर से तो उनकी बड़ी ही भयंकर अवस्था दीख पड़ती थी। इसके चार-पाँच महीने बाद श्रीमहाराजजी होशियारपुर गये। तब आप कह गये थे कि यह अच्छा हो जायगा। उसके कुछ ही दिन पीछे वे स्वयं ही ठीक हो जायगा। जब कुछ समय पश्चात् महाराजजी होशियारपुर से लौटे और ये उनके दर्शनों के लिये भेरिया गये, तब नाव से गंगाजी पार करते समय पैसा पास न होने के कारण इन्होंने अपना तौलिया नाव वाले को दे दिया। महाराजजी के पास पहुँचकर इन्होंने एक तौलिया माँगा। तब उन्होंने इन्हें अपना रंगा हुआ तौलिया दे दिया। उसे संन्यास दीक्षा का संकेत समझकर ये तभी से गेरुआ वस्त्र पहनने लगे। किन्तु गेरुआ वस्त्र पहनकर इनकी शारीरिक और मानसिक परिस्थिति बहुत गिर गयी। ये भी अपने को उसका अनधिकारी समझते थे और उसे अपनी गलती मानते थे।

पीछे एकबार शिवपुरी में उत्सव हुआ। उसमें जौहरीलाल भी गये। वहाँ श्रीमहाराजजी ने इनके गेरुआ वस्त्र उतरवाकर स्वयं ही सफेद वस्त्र पहनवा दिये और कहा कि किसी को भी अनधिकार चेष्टा नहीं करनी चाहिये। तब से ये बिलकुल ठीक हो गये और स्वयं बनाकर भोजन करने लगे। पीछे भी अपनी पुरानी जीविका पण्डिताई और दुकानदारी से ही निर्वाह करते रहे। इससे इनकी मनोवृत्ति फिर अच्छी हो गयी और भजन में भी रुचि बढ़ गयी। ये स्वभाव से ही बड़े सन्तोषी ओर निःस्पृह थे। इन्हें चापलूसी बिलकुल पसन्द नहीं थी। इसलिये अमीरों और अभिमानियों से इनकी नहीं पटती थी। यह तो गरीबों से ही अपना सब व्यवहार चलाते थे। श्रीमहाराजजी के प्रति अन्त तक इनकी प्रगाढ़ श्रद्धा रही। परन्तु शरीर निर्बल होने के कारण यह विशेष दौड़ धूप नहीं कर सकते थे। इसलिये महाराजजी से प्रायः पृथक ही रहते थे ओर समय-समय पर मिल आते थे।

बाँध का श्रीगणेश

रामेश्वर के स्वास्थ्य की घटना से पाँच-सात वर्ष पहले एक साल वर्षा ऋतु में आप इस प्रान्त में थे। उस समय गंगाजी की बाढ़ से खादर में अनेकों गाँव और खेत बह गये थे। इस प्रान्त की ऐसी दुर्दशा देखकर आपके हृदय में असह्य वेदना हुई, क्योंकि–

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। परदुःख द्रवैं सुसंत पुनीता॥

यह घटना सम्भवतः सन् १९१७ की है। उस समय निजामपुर में जो कीर्तन होता था उसमें भावावेश होने पर अनेकों दिव्य अमानवीय लीलाएँ हो जाती थीं। तभी एक बार खूबीराम ने शिवजी का आवेश होने पर कहा था कि सेतुबन्ध की लीला करो। इस पर आपने कहा कि सेतु अभी कुछ देर में बाँधेंगे। उसके दो-तीन वर्ष बाद आपने फिर खादर की दुर्दशा अपने नेत्रों से देखी। उन्हीं दिनों आप निजामपुर के भोले भक्त गोदीराम के साथ गंगास्नान करने गये। तब आपने उससे कहा, 'गोदीराम! गंगाजी ने तो सब लोगों को बहुत दुःखी कर दिया है। तू गंगाजी से प्रार्थना कर कि अब इस ओर जाने से रुक जाय।' भक्त गोदीराम ने हाथ जोड़कर अपनी भोली ग्रामीण भाषा में प्रार्थना की–'गंगा मैया! महाराजजी कहें हैं कि अब तू खादर पै प्रसन्न हो जा और वहाँ जाने से रुक जा।' तब आप हँसकर बोले, 'गोदीराम! बस कर, गंगामैया कहती है कि मैं तो रुक जाऊँगा, किन्तु आप जो लीला करना चाहते हैं वह नहीं होगी। इसीलिये अब बाँध की लीला करेंगे।' इस पर गोदीराम ने कहा, हाँ, महाराज! लीला अवश्य होनी चाहिये।' इन सब बातों से पता चलता है कि बाँध बनाने का संकल्प तो आपके हृदय में पहले ही से था। अब रामेश्वर के प्रेम से विवश होकर आपने उसे कार्यरूप में परिणत करने का निश्चय किया।

इसके पश्चात् आप किसी कारण से अनूपशहर गये खुरजा के सेठ गौरीशंकर गोयनका उन दिनों वहीं ठहरे हुए थे। तब एकदिन सेठ रामशंकर मेहता, सेठ गौरीशंकर बौहरे, घासीराम और भगवती आदि भक्तों के साथ आप इस

विषय में विचार करने लगे। पहले तो आपने रामेश्वर के प्रेम की बात कही और फिर बोले, 'मैं सोचता हूँ कि ऐसा करने से उसका भी चित्त लग जायगा, मेरा भी कुछ दिनों वहाँ रहना हो जायगा और जनताजनार्दन की भी कुछ सेवा हो जायगी। अतः यदि आप लोग मुझे अनुमति दें तो मैं बाँध के लिये उद्योग करूँ, क्योंकि जब गंगाजी चढ़ती हैं और उनका एक-तिहाई भाग महवा नदी में चला जाता है तो कछला तक पैंतालीस मील के आस-पास सात सौ गाँवों को क्षति पहुँचती है। मैंने एक साल अपनी आँखों से वहाँ की दुर्दशा देखी है। बाढ़ के कारण उनके घर और खेत बह जाते हैं, वे पेड़ों पर चढ़कर अपने प्राण बचाते हैं और सात-सात दिन तक बिना अन्न केवल जल पीकर ही रहते हैं। उनमें से सैकड़ों आदमी तो छप्परों पर बैठे-बैठे ही धार में बह जाते हैं। उनकी उस समय की दुर्दशा तो अवर्णनीय है। मैंने जो दृश्य अपनी आँखों से देखा है उसे स्मरण करके तो मेरा हृदय फटता है। इसलिए मैं सोचता हूँ कि इस शरीर से यदि उनकी कुछ सेवा हो जाय तो अच्छा ही है। तब उन लोगों ने इस काम को बहुत बड़ा समझकर ऐसा सन्देह प्रकट किया कि पता नहीं, यह काम पूरा हो सकेगा या नहीं। इस पर आपने विश्वास पूर्वक कहा, 'नहीं, 'असम्भव' शब्द ही असम्भव है। बाकी, संसार में और कोई काम असम्भव नहीं है। भगवान् का आश्रय लेकर मनुष्य जिस काम को भी करना चाहे वह अवश्य पूरा हो जायगा। 'राम ते अधिक रामकर दासा' श्रीमहावीरजी ने केवल इसी विश्वास पर कि मैं राम का दास हूँ लंका जैसे अजेय दुर्ग को भी एक क्षण में भस्म कर दिया था। फिर आप सिंहगर्जन से इसी वाक्य को उच्चारण करने लगे –

'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणेन महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।।
दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमान् शत्रुसंन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः।।'

फिर बोले, 'इसी बल पर बालितनय वीर अंगद ने रावण की सभा में अपना पाँव रोप दिया था और कहा –

'जो शठ सकहिं चरण मम टारी। फिरहिं राम सीता मैं हारी॥'

'न मे समा रावणकोटयोऽधमा रामस्य दासोऽहमपारबिक्रमः।'

दूसरी बात यह है कि हमारा तो केवल कर्म करने में अधिकार है। फल तो श्रीभगवान् के हाथ में है।' तब आपका विशेष उत्साह देखकर सबने आपके विचार का समर्थन किया और कहा कि यह काम अवश्य कीजिये। इसमें देरी नहीं होनी चाहिए। शुभस्य शीघ्रम्।'

सन् १९२२ ई० का पौष मास था। आप अनूपशहर से आकर रात को लाला किशोरीलाल के बगीचे की कुटिया में ठहरे। इधर, मैं भी निजामपुर से आ गया था। आप रात को चार बजे ही उठकर बोले, 'तुम जरा सावधानी से अपने बल का स्मरण करो। अब बड़ा भारी काम सामने है। अपने को महावीर समझकर अनन्त बल धारण करो। मुझे तुम पर ही भरोसा है। मेरा जीवन-मरण तुम्हारे अधीन है। तुम मेरा दाहिना हाथ हो। यदि तुमने किसी समय थोड़ी भी ढील की तो मुझे जीता नहीं पाओगे।' इत्यादि कितनी ही बातें मुझसे कह डालीं जिन्हें लिखने में मुझे बहुत संकोच होता है। यह सब सुनकर मैं तो रो पड़ा और चरणों से लिपट गया। तब आपने उठाकर मुझे आश्वासन दिया और कहा, 'मैंने कल अनूपशहर में गंगाजी का बाँध बनाने का निश्चय किया है। उसको आज ही प्रारम्भ करना है। तुम और रामेश्वर दो ही मेरे प्रधान सहायक हो। बड़ी सावधानी से प्रेमपूर्वक व्यवहार करते हुए सारा काम तुम लोगों को संभालना होगा। यह बहुत बड़ा काम है। इसमें अनेकों विघ्न भी आयेंगे। पर भगद्विश्वास से उन पर विजय प्राप्त करके यह काम करना होगा। बाँध का प्रत्येक कार्य भगवान् का नाम लेकर ही करना चाहिये, क्योंकि भगवन्नाम से सारे ही विघ्न दूर होकर कार्य निर्विघ्न समाप्त होता है। बस, तुम अभी निजामपुर चले जाओ। वहाँ घंटा बजाकर पहले सब लोगों को इकट्ठे कर लेना और फिर खूब कीर्तन करके उन्हें बड़े जोश और विश्वास के शब्दों में समझाना तथा सभी को कस्सी और पल्ला लेकर दस बजे से पहले ही गंगा किनारे सिलारे के पास पहुँचने के लिये कहना। खबरदार, देर न होने पावे। मैं गवाँ में जाकर सब रईसों को

इकट्ठा करके कमेटी करता हूँ और अभी चन्दा लिखता हूँ। पीछे सब आदमियों को लेकर मैं भी सिलारा घाट पर पहुँचूँगा। बस, अब पाँच मिनट श्रीभगवान् का नाम लेकर अपने-अपने काम में लगें।'

इसके बाद पाँच-सात मिनट 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का कीर्तन किया। फिर आपके श्रीचरणों में प्रणाम करके मैं तो निजामपुर को चल दिया। भाई! उस समय की अपनी हालत मैं क्या कहूँ। न जाने श्रीमहाराजजी ने मेरे अन्दर क्या शक्तिसञ्चार कर दिया कि मैं तो बगीचे से निकलते ही 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का कीर्तन करता छलांगें मारने लगा। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मेरे में अनन्त बल है। मैं साक्षात् महावीर हूँ। मैं संकल्प मात्र से अनन्त सृष्टियों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय कर सकता हूँ। मुझे कोई भी कार्य दुर्घट या असम्भव प्रतीत नहीं होता था। मुझे ऐसा प्रतीत होता कि बाँध तो श्रीमहाराजजी के संकल्प करते ही बँध गया। हम लोग तो केवल निमित्त मात्र हैं। उनका हम पर विशुद्ध वात्सल्य प्रेम है। अतः केवल लीला के लिये ही वे इस कार्य के सम्पादन में हमें सम्मिलित करना चाहते हैं।

बस, मैं कुछ मिनटों में ही निजामपुर पहुँच गया। वहाँ ज्यों ही घंटा बजाया कि सब लोग इकट्ठे हो गये। थोड़ी देर हमने 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का कीर्तन किया। फिर बड़े जोश से श्रीमहाराजजी का सन्देश सुनाकर उन्हें अपना कर्तव्य समझाया और कहा कि सब लोग अभी अपने-अपने कस्सी और पल्ला लेकर सिलारे घाट को चल पड़ो। हमें वहाँ दस बजे से पहले ही पहुँच जाना है।' यह सुनते ही, वे लोग तो मानो पहले ही तैयार थे, तुरन्त अपने-अपने कस्सी, पल्ला और दो-दो रोटियाँ लेकर चल पड़े। रास्ते में बराबर वही 'श्रीराम जय राम जय जय राम' की ध्वनि चलती रही।

इधर श्रीमहाराजजी उसी समय, जिस मकान में रामेश्वर रहता था, पहुँचे और उसे जगाकर कुछ शब्दों द्वारा उसके भीतर भी शक्ति-सञ्चार किया। इसके पश्चात् लाला कुन्दनलाल, बाबू हीरालाल, लाला किशोरीलाल, जानकी प्रसाद, मुरारीलाल, बाबूलाल, चन्द्रसेन नन्दूजी, कुँवर इन्द्रसिंहजी, पण्डित श्रीरामजी और

महाशय सुखरामगिरिजी आदि सब लोगों को इकट्ठा किया। जब सब आ गये तो आपने अपना विचार प्रकट किया। उसे सुनकर सभी बड़े आश्चर्य में भर गये। उनमें जो आपके अचिन्त्य प्रभाव को समझते थे वे तो जीवों के प्रति आपकी अपार करुणा देखकर मुग्ध हो गये, और जो आपको कोरे बाबाजी ही समझते थे वे कुछ माथा सिकोड़कर अपनी बुद्धि के चक्कर में भटकने लगे। उनमें लाला मुरारीलाल, जो अपनी बुद्धिमत्ता में वकीलों के कान काटते थे, बोले, 'महाराजजी! आपका विचार तो बहुत उत्तम है। किन्तु आपने उसकी कठिनाई पर विचार नहीं किया। मेरे विचार से तो इतने थोड़े समय में बाँध तैयार होना असम्भव है। पौष मास तो अब प्राय: समाप्त हो चुका है, अत: ज्येष्ठ के दशहरा तक केवल पाँच महीने हैं। उसके पीछे तो बाढ़ आने का समय आ जाता है। अत: इतने थोड़े समय में बाँध बँध जाना, मेरे विचार से तो किसी प्रकार सम्भव नहीं है। हम आठ वर्षों से बराबर देखते हैं कि नहरवाले सरवे तो करते रहते हैं, किन्तु इस काम को हाथ में नहीं लेते। एक दिन नहर का इन्जीनियर मुझे मिला था। वह कहता था कि इतने थोड़े समय में इतना बड़ा मिट्टी और कंकड़ का काम हम नहीं कर सकते, क्योंकि यहाँ रेलवे लाइन तो है नहीं। इसलिये इधर गंगाजी का बाँध बनाना हमारी शक्ति के बाहर है। और यदि हम रेलवे लाइन बनाने का प्रयत्न करें तो खादर की ऊँची-नीची भूमि में उसका भी जल्दी तैयार होना सम्भव नहीं है। यदि सात महीनों में किसी प्रकार लाइन बन भी गयी तो उसके बाद बाढ़ आने पर सब काम चौपट हो जायगा। इस प्रकार जब नहर वाले और गवर्मेण्ट ही इस काम को नहीं कर सकते तो आप इसे अपने साधुशाही ढंगसे कैसे कर सकेंगे। यह बात मेरी समझ में तो नहीं आती। अत: मैं तो इसे असम्भव ही समझता हूँ।'

तब श्रीमहाराजजी ने बड़े गम्भीर और कड़े शब्दों में कहा, 'बस, तुम अपना विचार अपने पास रखो। ईश्वर की सृष्टि में तो 'असम्भव शब्द ही असम्भव है। और कुछ असम्भव नहीं है।' ये शब्द नैपोलियन ने कहे थे। वह तो केवल भौतिक दृष्टि ही रखता था। भला, जिनकी माया अघटनघटनापटीयसी है उन

श्रीभगवान् का आश्रय लेने पर भी कोई काम असम्भव हो सकता है? जिसने उनका सहारा लिया है उसके लिये तो सभी कुछ सम्भव है।'

वे फिर कुछ बोलना चाहते थे, किन्तु लाला कुन्दनलाल ने उन्हें डाँट दिया। इससे वे चुप हो गये। तब आपने कहा, पहले पाँच मिनट श्रीहरिनाम उच्चारण कर लें। उसके बाद चन्दे का काम अभी करना है ललिताप्रसाद मदद लेने के लिये निजामपुर गया हुआ है। बस, आज ही १० बजे चलकर बाँध का मुहूर्त कर देना है।' फिर आपने पाँच मिनट 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का कीर्तन किया तदन्तर बड़े तुले हुए शब्दों में कहा, 'बाँध को साक्षात् भगवान् का स्वरूप जानकर उसकी सेवा तन-मन-धन से करना हमारा परमधर्म है। इस संसार में हमारी जो कुछ सत्ता या स्थिति है वह श्रीभगवान् का ही प्रसाद है। अतः इसे भगवान् को अर्पण करने में हमें तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिये। बल्कि 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' इस भावना से ही जनता- जनार्दन की सेवा करनी चाहिये। ऐसा करना तो मानो हमारा कर्तव्य ही है।'

इस प्रकार दो-चार शब्द कहकर आपने चन्दा करना आरम्भ किया। सबसे पहले आप जानकी प्रसादजी से बोले, 'तू क्या देना चाहता है?' यह बड़ी बीर-वृत्तिका पुरुषरत्न था और श्रीमहाराजजी में अनन्य श्रद्धा रखता था। बाबू हीरालालजी का भी इस पर अत्यन्त स्नेह और अनुग्रह था। अतः यह श्रीमहाराजजी के स्वरूप को अच्छी तरह जानता था। वह गद्‌गद होकर बोला, 'जो भी आप आज्ञा करें।' महाराजजी ने कहा, 'नहीं, जो भी तुम्हारी स्वाभाविक श्रद्धा हो।' तब उसने यह समझकर कि लालाजी एक हजार लिखायेंगे, मैं इनसे दुगुना लिखा दूँ, दो हजार देने को कहा। महाराजजी ने ने कहा, नहीं, तीन हजार दो।' उसने कहा, 'बहुत अच्छा।' तब लालाजी को भी तीन हजार ही लिखना पड़ा। इसी प्रकार कुँवर इन्द्रसिंह एवं शिवराजसिंह आदि बड़े-बड़े आदमियों पर तो तीन-तीन हजार ही रखा गया बाबूजी पर दो हजार, उनसे छोटो पर एक-एक हजार और उनसे भी छोटो पर पाँच-पाँच सौ रुपये रखे गये। इस प्रकार उसी समय गवाँ में बीस हजार रुपये का चन्दा हो गया। महाराजजी ने तभी रामेश्वर को खजांची बनाकर बाबू हीरालालजी की देखरेख में बहीखाते का काम सौंप दिया।

इस प्रकार चन्दे का काम जल्दी से समाप्त कर आप सब आदमियों को साथ ले बाँध का मुहूर्त करने के लिये सिलारा घाट की ओर चले और वहाँ ठीक दस बजे पहुँच गये। उधर, मैं पौने दस बजे ही निजामपुर के सब लोगों को लेकर पहुँच चुका था। घाट पर पहुँचकर आपने पहले तो कीर्तन किया, फिर साष्टाँग प्रणाम करके गणेश पूजन किया। तदनन्तर स्वस्तिवाचन पूर्वक कुछ मंगल पाठ हुए और सबसे पहले आपने ही पाँच पल्ला भरकर मिट्टी डाली तथा बाँध की लाइन लगाई। फिर सभी ने भगवन्नाम लेते हुए पाँच-पाँच पल्ला मिट्टी डाली। इसके पश्चात् निजामपुर भक्तों ने तीन चार घंटे बड़े परिश्रम से काम किया। उससे छुट्टी मिलने पर उन्होंने गंगातट जाकर स्नान किया तथा अपनी रोटी खायी। फिर सब लोग अपने गाँव को चले गये।

मैंने दो-चार आदमियों से एक फूस की झोंपड़ी बनवा ली थी। उसमें भोलेजी, रामफल और भाईसिंह के साथ मेरे लिये वहीं रहने का निश्चय किया। रात्रि को आपने फिर कमेटी की और इस विषय पर विचार किया कि किस प्रकार यह काम जल्दी हो सकता है। तब यही निश्चय हुआ कि गाँवों से मदद बुलायी जाय और ऐसे ठेकेदारों को नियुक्त किया जाय जिन्होंने पहले नहर में काम किया हो। अतः चार आदमी ठेकेदारों को बुलाने के लिये नियुक्त किये गये और दो-दो आदमी चार गाँवों से मदद लाने के लिये। इनके सिवा चौधरी रूपरामजी, खुशीरामजी, जानकीप्रसादजी तथा कुन्दनलालजी आदि कई रईसों ने अपनी अवैतनिक सेवा अर्पित की। उन्हें भी यथायोग्य कार्य सौंपे गये। इस समय दो ही काम मुख्य थे—चन्दा करना और बाँध बँधवाना, सो चन्दे का काम तो महाराजजी ने अपने जिम्मे रखा और बाँध का काम मुझे सौंपा। किन्तु दो-चार दिन बाद ही जब काम बढ़ गया तो लाला कुन्दनलालजी, चौधरी रूपरामजी, और खुशीराम जी चन्दे के काम में महाराजजी के साथ हो गये तथा बाँध का काम कराने वालों में मुख्यतया बाबू हीरालालजी, जानकीप्रसादजी, कुन्दनगिरिजी, गोविन्द सहायजी, चण्डीप्रसादजी, पण्डित हरियशजी, पं० छेदालालजी, रामेश्वरजी रहे।

इसके पश्चात् एक आदमी बाबू रघुपतिसहाय रिटायर्ड इंजीनियर को बुलाने के लिये मथुरा भेजा गया। इनके सिवा बाबू रोशनलाल सब ओवरसीयर
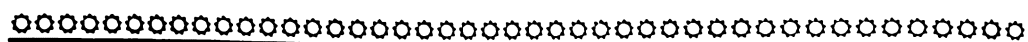
छाता, बाबू हरिचरणलाल रिटायर्ड ओवरसियर बुगरासी और बाबू रघुवीरशरणजी को भी बुलाया गया। ठेकेदार लोग भी कुछ तो दूसरे दिन और कुछ तीसरे दिन आ गये। तब कमेटी ने मिलकर उनके मिट्टी के भाव तय किये और उनसे कहा कि चाहे जितना रुपया लो, किन्तु काम बहुत जल्दी करो। जीवपुर से दीपपुर तक चार मील का मुख्य बाँध था। उसमें भी बीच-बीच ममें नाले थे। तथा उसके बीच में धर्मपुर से मोहलनपुर तक के एक मील के टुकड़े का तो बहुत ही बड़ा काम था। उसीमें वह नाला था जिससे कि एक तिहाई गंगाजी निकलकर सारे खादर को नष्ट करती थी। यह काम तो बहुत ही कठिन था।

इधर नित्य प्रति चार-पाँच गाँवों की मदद में प्राय: एक हजार आदमी आने लगे। बस, सारे बाँध की लाइन लगाकर किसी को एक फर्लांग, किसी को दो फर्लांग इस तरह चारों मील यथा योग्य रीति से सब ठेकेदारों को बाँट दिये। उन्होंने अपने औजार कस्सी, पल्ला आदि लाकर दस-दस बीस-बीस कोस से मजदूरों को इकट्ठा किया और बड़ी तेजी से कार्य आरम्भ कर दिया। आप जैसा जिसका काम देखते थे वैसा उसको रुपया दे देते थे। केवल एक नाममात्र की रसीद लिखा ली जाती थी। बही में नियमानुसार सब खाते पड़ गये। इस कार्य के लिये खजान्ची रामेश्वरप्रसाद के अतिरिक्त और भी दो-चार मुहर्रिर रखे गये कामवालों को रुपया दिलाना और सब काम की निगरानी करना मेरे जिम्मे था। इस प्रकार खूब जोरों से काम आरम्भ हो गया।

जब मदद आती थीं तो महाराजजी स्वयं घंटा बजाकर उनके साथ कीर्तन करते थे और उन्हें कुछ उपदेश भी देते थे। उसका सार प्राय: यही होता 'बाँध साक्षात् भगवान् का स्वरूप समझो। इसका प्रत्येक काम करते हुए निरन्तर भगवन्नाम उच्चारण करते रहो। जो कोई भी बाँध की सेवा करेगा उसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त होंगे।' सचमुच उस समय तो आप साक्षात् कल्पतरु ही बन गये थे और बात-बात में स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा करते थे कि त्रिविध तापों से जले हुए व्यक्तियों आओ, इस बाँधरूपी कल्पवृक्ष की दिव्य और मधुर छाया में। इहलौकिक और पारलौकिक सुखों को चाहने वालों आओ, तन, मन, धन से बाँध की सेवा करो। तुम्हारी सब मनोकामनाएँ पूरी
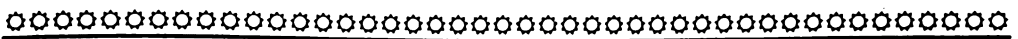
होंगी।' उस समय बाँध क्या था उसके द्वारा तो सचमुच भगवान् की गिरिराज लीला प्रकट हो गयी थी। वहां जो कोई जिस संकल्प से भी आता था उसका वही काम तत्काल पूर्ण हो जाता था।

इस बात की प्रसिद्धि बिजली की तरह दूर-दूर तक फैल गयी।अतः पण्डित-मूर्ख, धनी-निर्धन, आस्तिक-नास्तिक, स्वधर्मी-विधर्मी सब प्रकार के हजारों नर-नारी नित्य प्रति आकर बाँध की सेवा करने लगे। यह सारा विस्तार केवल एक सप्ताह में ही हो गया। अब तक तो गवाँ के चन्दे से ही काम हो रहा था। जब सब काम नियमानुसार होने लगा तो आप बोले, 'मैं अब चन्दे का काम आरम्भ करता हूँ। तुम लोग यहाँ का काम सँभालो। देखो, तुम्हें रुपये के लिए कभी सोचना नहीं पड़ेगा। रुपया जितना भी चाहोगे उतना ही, आ जायगा। हाँ यह अवश्य है कि विशेष जमा भी नहीं होगा, किन्तु साथ ही कमी भी नहीं पड़ेगी। तुम खूब खुला खर्च करो, किन्तु वह आवश्यक हो, व्यर्थ एक पैसा भी खर्च न किया जाय। यह बाँध साक्षात् अन्तर्यामी भगवान् ही है। यदि तुम इस काम में किसी प्रकार का कपट, चोरी या व्यभिचार आदि कुकर्म करोगे तो याद रखो इस सर्वज्ञ से कुछ भी छिपा नहीं रहेगा और उसके लिये तुम्हें अवश्य दण्ड भोगना होगा। और यदि तुम इसे भगवत् सेवा समझकर सचाई के साथ प्राणपण से इस काम में लगे रहोगे तो तुम्हारे दोनों लोक अनायास ही बन जायेंगे। इसके द्वारा आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी चारों प्रकार के भक्तों को अपने-अपने ध्येय की प्राप्ति होगी तथा संसार के बड़े से बड़े संकट भी बाँध पर मिट्टी डालने से दूर हो जायेंगें। भाइयो! आप लोगो के सौभाग्य से ही भगवान् ने आपको ऐसा अवसर दिया है। देखो, यह मिट्टी का काम तो रामनवमी तक ही समाप्त हो जाना चाहिए। और उसी दिन कंकड़ का काम आरम्भ कर दिया जाय, मैं तो समय को ही ईश्वर समझता हूँ। जो पुरुष समय की परवाह नहीं करता उसे ईश्वर नहीं मिल सकता। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि यदि रामनवमी तक मिट्टी का काम समाप्त न हुआ तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा कंकड़ की तलाश भी अभी से करके उसे इकट्ठा करना आरम्भ कर दो मैं इस काम को बहुत कठिन समझता हूँ। इसलिये इसे बाबू हीरालाल

ही ठीक कर सकेंगे। उनकी सब प्रकार की सहायता ललिताप्रसाद को करनी चाहिए। मदद बुलाने का काम भी बराबर चलता रहे ठेकेदार भी और बढ़ाये जाएँ। तथा सबके काम सयम निश्चित कर दिया जाय, जिससे कि वे उस समय तक अपना काम अवश्य पूरा कर दें। जो ठेकेदार निश्चत समय पर अपना काम अच्छी तरह पूरा कर दे उसे इनाम दिया जाय, और जिसका काम निश्चत समय पर पूरा न हो अथवा अच्छा न हो उस पर जुर्माना किया जाय। इसी तरह अवैतनिक काम करने वालों में भी अच्छा काम करने वालों को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष जो भी वे चाहेंगे मिलेगा, अन्यथा वे दण्ड के भागी होंगे। इसलिए आप लोग, निद्रा, आहार, प्रमाद, आलस्य, राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि सभी विकारों को जीतकर तन, मन, प्राण से अपनी पूरी शक्ति लगाकर अपने बड़ों की आज्ञा अनुसार अपनी-अपनी सेवा पूर्ण करें। भाई! मैं तो उसीको पूर्ण योगी समझता हूँ जो समयानुसार प्राप्त हुए कर्त्तव्य को, वह छोटा हो चाहे बड़ा पूरी तरह चित्त लगाकर पूर्ण करता है। साथ ही, इस बात का भी पूरा ध्यान रखें कि चाहे कितनी भी हानि या लाभ हो अपने चित्त को क्षुब्ध न होने दें, क्योंकि शान्त-चित्त सबसे बड़ी और मूल्यवान् वस्तु है। उसके सामने संसार के हानि-लाभ का कोई मूल्य नहीं है। इसके सिवा हम सब एक ही भगवान् की सन्तान होने से आपस में भाई-भाई ही हैं। हम सभी बराबर हैं। हमें किसी को भी अपने से छोटा समझकर उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। हाँ, किसी की कोई त्रुटि दिखायी दे तो अपनी कर्त्तव्य बुद्धि से भाई के नाते प्रेमपूर्वक उसे समझा दें। यों तो सभी विकार त्याज्य हैं, किन्तु उनमें भी सबसे बुरा तो क्रोध ही है। इसलिए इसे बड़ी सावधानी से जीतना चाहिये। इसे जीतने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि जिस समय क्रोध आवे मौन हो जाय। चाहे कितना भी काम बिगड़े बोले ही नहीं। जब क्रोध शान्त हो जाय तब प्रेम से उस बात को समझा दे। इस कार्यक्षेत्र में दूसरा महान् शत्रु है आलस्य 'आलस्यो हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः? आलस्य के अधीन होने पर मनुष्य कर्त्तव्यच्युत हो जाता है। इसे जीतने का सरल उपाय यही है कि भोजन में बहुत संयम रखा जाय। भोजन अत्यन्त सात्विक हो और उसे भी आवश्यकता से अधिक एक ग्रास भी न खाया जाय। एक ग्रास भी अधिक खाना

गोवध के समान समझे। पेट हल्का रहने से मन भी हल्का रहेगा और आलस्य नहीं आयेगा। समय का भी पूरा ध्यान रखा जाय। जो काम जिस समय करना हो उसे ठीक उसी समय किया जाय। समय ही ईश्वर है ऐसा समझकर उसकी अवहेलना न की जाय। कीर्तन के समय भी पूरा उत्साह रहना चाहिए। भावहीन कोई भी क्रिया फलवती नहीं होती। साथ ही इस बात का पूरा ध्यान रखा जाय कि बाँध का प्रत्येक कार्य भगवन्नाम लेकर ही आरम्भ हो और कार्य करते समय भी नामोच्चारण होता रहे। यह बात हमें अच्छी तरह याद रखनी चाहिए कि बाँध साक्षात् भगवान् ही हैं। इसकी सेवा से हमारे स्वार्थ और परमार्थ दोनों बन सकते हैं। अत: हम जितनी भी सचाई और तत्परता से बाँध भगवान् की सेवा करेंगे उतने ही तेजीसे परमार्थ में अग्रसर होंगे।'

इस प्रकार सबको समझा-बुझाकर और सबके कार्यों का यथा-योग्य विभाग कर आप चन्दा एकत्रित करने के लिये चल दिये।

बाँध के लिये चन्दा

आपने जब चन्दे के लिये प्रस्थान किया तो आपकी सेवा के लिये तो भोलेजी साथ रहे और चन्दा करने में सहायक रूप से लाला कुन्दनलाल, चौधरी रूपराम और खुशीरामजी रहे। आप जो भी काम करते हैं उसमें अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं। यह तो आपका स्वभाव ही है। अत: सबेरे ठीक चार बजे स्नानादि कृत्यों से निवृत्त हो किसी गाँव में पहुँच जाते और घंटा बजाकर सब लोगों को एकत्रित कर लेते। फिर खूबसिंह-गर्जन के साथ कीर्तन करते। उसके बाद कुछ उपदेश करके बाँध का रहस्य समझाते और स्पष्ट कह देते कि हम इतनी देर तुम्हारे गाँव में ठहरेंगे इससे अधिक नहीं। इसलिए सब लोग इसी बीच अपना चन्दा दे दो। फिर एक-एक आदमी से पूछकर उसका चन्दा

लिख जाता। उनमें भी गाँव के प्रतिष्ठित आदमियों का चन्दा पहले लिखा जाता। फिर वे ही दूसरे लोगों से चन्दा लिखाते और उसे वसूल भी करते।

चन्दा सभी लोग बड़े उत्साह से लिखाते थे। उस समय तो खादर में सचमुच रामराज्य की स्थापना हो गयी थी। श्रीगोस्वामीजी के शब्दों में 'सब उदार सब पर उपकारी' हो गये थे। इस प्रकार ठीक निर्दिष्ट समय पर ही उस गाँव का चन्दा हो जाता था। यदि किसी कारणवश कुछ शेष रह जाता तो वहीं के किसी प्रतिष्ठित आदमी को यह कार्य सौंपकर आप दूसरे गाँव में चले जाते थे। आपके पधारने की सूचना होने पर तो वहाँ सब लोग पहले ही तैयार मिलते थे और यदि पूर्व सूचना के बिना ही आप पहुँच जाते तो तुरन्त इकट्ठे हो जाते थे। वहाँ भी उसी प्रकार पहले कीर्तन करके चन्दे का काम किया जाता था। इस तरह घूमते हुए जहाँ भी दोपहर हो जाती वहीं भोलेजी आपके लिये भोजन बना लेते। उन दिनों आप लौकी या पालक पड़ी हुई मूँग की दाल तथा जौ चना और गेहूँ के आटे की रोटी खाते थे। दाल में नमक और मसाला भी बहुत कम डाला जाता था। आपके साथियों के लिये गाँव में किसी के घर भोजन बन जाता था। भोजन के लिये एक घण्टे की छुट्टी रहती थी। उसमें भी गाँव वालों को कुछ काम बताते रहते थे। भोजन करके आप पन्द्रह मिनट बायीं करवट से लेटते और फिर काम पर खड़े हो जाते थे।

चन्दा आप एक स्थान पर ही बैठकर नहीं करते थे। आवश्यकता होने पर जहाँ-तहाँ जाते भी थे। यदि कोई आदमी बाहर खेत पर है तो आप वहीं उसके पास पहुँचते थे। कहीं-कहीं तो बड़ा खिलवाड़ भी करते थे। यदि कोई गरीब आदमी आठ आने देना चाहता तो उससे एक रुपया देने के लिए बड़ा झगड़ा करते थे और लेकर ही मानते थे। इसके विपरीत कहीं बड़े से बड़े धनी आदमी की भी उपेक्षा कर देते थे। सबसे पहले जब अनूपशहर में बाँध का विचार हुआ तो सेठ गौरीशंकरजी से पूछा था कि तुम कितना चन्दा दोगे। उन्होंने कहा, 'जो आप आज्ञा करें।' आपने कहा, 'नहीं, जो तुम्हारी स्वाभाविक रुचि हो।' इस पर बहुत झगड़ा हुआ। अन्त में यह तय हुआ कि मैं तो जो आप आज्ञा करें वही देने को तैयार हूँ किन्तु यदि आप मेरे द्वारा ही कहलाना

चाहते हैं तो मेरा विचार ऐसा है कि आप कलकत्ते जाने का तो विचार रखते ही हैं। वहाँ जाने पर ताऊजी (सेठ तुलारामजी) जो उचित समझें दे दें। कमेटी समाप्त होने पर उनके मित्र सेठ रामशंकर मेहता ने उनसे पूछा, 'तुम्हारी जो आज्ञा हो वही मैं दूँगा' यह बात सचाई से कही थी या केवल व्यवहार के लिये?' गौरीशंकरजी ने कहा, 'मैंने तो सच्चाई से ही ऐसा कहा था।' रामशंकरजी बोले, 'यदि उन्होंने एक लाख कह दिया तब?' इस पर उन्होंने कहा, 'बड़े ही सौभाग्य की बात है। आप कृपा करके मुझे अब भी आज्ञा दिला दें। बाँध में एक से लेकर दस लाख तक जितना भी खर्च हो मुझसे ले लिया जाय। और उसका काम आप करा दें।' यह बात रामशंकरजी ने श्रीमहाराजजी से कही। तब आपने तीखे स्वर में कहा, 'मुझे किसी के हाथ अपने को बेचना थोड़ा ही है। मुझे तो एक खेल करना है। इसके सिवा एक धनी का पैसा लगने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि बहुत-से गरीबों का पैसा लगे। गरीबों का पैसा नेक कमाई का होता है। अमीर चाहे कितना ही व्यवहार-कुशल हो उसकी कमाई कभी शुद्ध नहीं रह सकती।'

इसी तरह चन्दा करने में आप बड़ी लीलाएँ किया करते थे। प्रातः काल ही संकल्प कर लेते कि आज एक हजार रुपया चन्दा करना है। बस, रात के बारह बजे तक उसे अवश्य पूरा कर लेते। फिर एक बजे सोकर तीन बजे उठ बैठते। और उसी समय दो घण्टे में शौच, स्नान, व्यायाम आदि सब क्रियाओं से निवृत्त हो पाँच बजे से काम में लग जाते। उन छः महीनों में निद्रा तो आपको बिलकुल नहीं आयी। दो घंटे तो केवल विश्राम कर लेते थे। उसमें कभी-कभी तो एक ही घंटा मिलता था। आपका शरीर बहुत कृश हो गया था। किन्तु बल, स्फूर्ति और मुख का तेज पहले से कहीं अधिक बढ़ा हुआ था।

उन दिनों प्रत्येक ग्राम में दो-चार अद्भुत घटनाएँ भी अवश्य हो जाती थीं। कोई रोगी, सन्तान की इच्छा वाला अथवा और किसी कामना वाला आपके पास आता तो आप उसे सीधा बाँध पर मेरे पास भेज देते और कह देते कि बाँध को साक्षात् भगवान् समझकर सेवा करना। वहाँ ललिता प्रसाद से पूछ लेना;
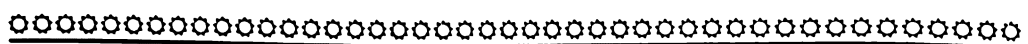
वह जो काम करने को कहे वही करने लगना। इस प्रकार दस-बीस सकामी पुरुष नित्य ही बाँध पर आते थे। किन्तु आश्चर्य यह था कि कैसा बीमार हो, वहा जहाँ बाँध पर आया, उसकी मिट्टी में लोटा और उसे सिर पर लगाया कि उसका रोग दूर हुआ। बाँध उस समय साक्षात् कल्पतरु बन गया था। बल्कि कल्पतरु भी उसकी ठीक उपमा नहीं है, क्योंकि वह तो केवल अर्थ और काम ही दे सकता है, किन्तु बाँध के द्वारा तो अनेकों जीव हमारे देखते-देखते भगवद्धाम को चले गये।

एक दिन आप एक चन्दा कर रहे थे। वहाँ और सब आदमी तो खड़े थे, किन्तु एक आदमी ऐसा था जिसका धड़ छः वर्ष की आयु में ही वायु रोग से बेकार हो गया था। तब से वह पड़ा ही रहता था, उठ बैठ नहीं सकता था। इस समय उसकी आयु चालीस वर्ष के लगभग थी। आप उसके पास जा पहुँचे और बोले, 'क्यों पड़ा है? उठकर चन्दा ला।' वह बोला, 'महाराज! मुझसे उठा नहीं जाता।' तब आपने उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे बलात्कार से खड़ाकर दिया और उसे नचाते हुए आप भी नाचने लगे। यह देखकर सब लोग आश्चर्य में भर गये और आप हँसने लगे कि तू झूठ-मूट ही कहता था कि मुझसे उठा नहीं जाता। जा, दौड़कर चन्दा ले आ। उसकी मुर्दा टाँगों में बिजली सी दौड़ गयी। वह दौड़कर घर गया और जो कुछ उसके पास था सब लाकर आपको दे दिया। तब आपने कहा, 'तू बाँध पर जा। वहाँ ललिता प्रसाद जो भी सेवा बतावे वही करना। कम से कम एक महीना तो वहाँ अवश्य सेवा करना।' वह बाँध पर मेरे पास आया और उसने एक महीना बड़े प्रेम से सेवा की।

इसी प्रकार सैकड़ों गलित कुष्ठ वाले बाँध पर आये। वे वहाँ की मिट्टी में लोटते और बाँध पर मिट्टी डालते। हमने अपनी आँखों से देखा कि उनके सारे घाव सूख गये और उनके नयी अँगुलियाँ निकल आयीं। इसी प्रकार जन्मबन्ध्याओं के पुत्र हुए, जो अब तक जीवित हैं। अनेकों ऐसे रोगी, जिन्हें वैद्य और डाक्टरों ने जबाव दे दिया था, बात ही बात में स्वस्थ हो गये। इस प्रकार जिसने जो भी चाहा उसे वही मिला। इसलिये उस समय जनता में बड़ा ही उत्साह और कुतूहल बढ़ा। आपके प्रति लोगों को बड़ी श्रद्धा हो गयी। सब

लोग कहने लगे, 'भाई! हरिबाबा तो साक्षत् भगवान् हैं। वे तो जीवों पर करुणा करने ही इस धराधाम में अवतीर्ण हुए हैं।'

उन दिनों आपकी सिद्धियों की सर्वत्र धूम मची हुई थी। आपने जिससे जो शब्द कह दिया वह तत्काल सिद्ध हो गया। बड़े से बड़े विषयी भी आपके सम्मुख होते ही भगवान् के भक्त हो गये। बड़े से बड़े लोभी भी हाथ जोड़कर सामने खड़े हो जाते थे कि महाराज जो आज्ञा करें वही चन्दा हम देने को तैयार हैं। बड़े से बड़े नास्तिक भी आपके सामने नतमस्तक होकर भगवन्नाम लेने लगते थे, तथा बड़े से बड़े क्रोधी भी आपके सामने आते ही शान्त हो जाते थे। जो लोग परोक्ष में आपके कार्य की टीका-टिप्पणी करते थे वे भी सामने आने पर पश्चात्ताप करने लगते थे तथा श्रीचरणों में पड़कर क्षमा प्रार्थना करते थे; क्योंकि आप तो मर्यादा, मधुरता और विनय की साक्षात् मूर्ति ही थे।

श्रीगौरसुन्दर के–

'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरिः॥

इस वाक्य की आप साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे।

चन्दा करते समय भी आपकी दृष्टि गरीबों पर ही अधिक रहती थी। एक दिन सहसवान की तहसील में चन्दा कर रहे थे। उस दिन वहाँ सारी तहसील के पटवारी मौजूद थे तथा उसी दिन सब नौकरों को भी वेतन मिला था। वहाँ सबकी सम्मति से यह तय हुआ कि तहसीलदार से लेकर चपरासी तक सभी कर्मचारी अपना एक-एक महीने का वेतन चन्दे में दें। इस प्रकार वकील, मुखत्यार और मुहर्रिर भी अपनी एक-एक महीने की आमदनी दें। इस प्रकार एक घंटे में ही हजारों रुपया चन्दा हो गया। जो भी उधर से वेतन लेकर आता इधर भेंट कर जाता। बड़ी भारी भीड़ लगी हुई थी। बड़े-बड़े हाकिम और कर्मचारियों का जमघट-सा लगा हुआ था। उसी समय एक ओर से कुछ गरीब घसेरे आये। वे दो-दो चार-चार आने की घास बेचकर आये थे। वे इस दृश्य को देखने लगे और उनके मन भी इच्छा हुई कि हम भी महाराजजी की कुछ सेवा करें।

किन्तु अपनी गरीबी को सोचकर कुछ करने का साहस नहीं होता था। सभी बड़े संकोच में पड़े हुए थे।

किन्तु उनकी यह हार्दिक इच्छा उन दीनों की दीन पुकार दीनबन्धु अन्तर्यामी से छिपी न रह सकी। आप एकदम अपने आसपास के लोगों से यह कहकर कि जरा ठहरो, मैं अभी आता हूँ झट उनके पास जा पहुँचे और बोले, 'भाइयो! तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम क्या चाहते हो? तुम्हारे पास कुछ है तो लाओ।' वे सब प्रफुल्लित हो गये और उनमें से एक ने बहुत लजाते हुए कहा, 'बाबा! हम सब तो घसेरे हैं, बड़े ही गरीब आदमी हैं। दो-चार आने की घास बेचकर अपनी गुजर करते हैं। हम आपको क्या दे सकते हैं? हाँ, मन में ऐसी इच्छा अवश्य है कि हम भी आपकी कुछ सेवा करें। पर हमारी यह तुच्छ भेंट क्या आप स्वीकार करेंगे?' आपने तुरन्त अपने कुरते का आँचल फैला दिया और बोले, तुम संकोच छोड़कर जिसकी जो इच्छा हो दे दो।' बस, करुणासागर की यह अपार करुणा देखकर वे प्रसन्न हो गये और जो भी जिसके पास था वह सब आपके आँचल में डाल दिया। तथा सभी चरणों में गिर गये। तब आपने कहा, 'उठो, कीर्तन करो।' फिर उनके मध्य में आपने दस मिनट कीर्तन किया। तथा सबको आश्वासन देकर फिर उसी जगह पहुँच गये।

उन गरीबों के हर्ष का पार न रहा। वे खुशी में फूले नहीं समाते थे। वहाँ जो लोग उपस्थित थे वे इस दृश्य देखकर दंग रह गये। आपने भी लोगों के बीच में जाकर एक घंटे तक इसी विषय पर व्याख्यान दिया कि ये पैसे गरीबों की पसीना-निचोड़ कमाई के हैं। ये ही बाँध को मजबूत करेंगे और ये ही धनियों के अत्याचारपूर्वक कमाये हुए धन के दोष को दूर करेंगे। वास्तव में, आज न पैसों को लेकर मैं अपने को कृतार्थ मानता हूँ। ये पैसे नहीं हैं, ये तो कुवेर भण्डार से भी अधिक मूल्यवान् हैं। ये पैसे तो इन्द्रादिक देवताओं को भी दुर्लभ हैं। इस प्रकार आप गद्गद होकर गरीबों की नेक कमाई की प्रशंसा कर रहे थे और सब लोग मुग्ध होकर सुन रहे थे। वे यह देखकर और भी आश्चर्यचकित थे कि आप तो कभी पैसा छूते ही नहीं थे, सो आज चमारों के पैसे अपने कुर्ते की झोली में माँगकर लाये। आपने लाखों रुपया बाँध के

लिये चन्दा किया और पीछे लाखों ही उत्सवों में खर्च किया, किन्तु अपने हाथ से कभी पैसा नहीं छुआ। सो आज तो आप स्वयं ही इन गरीबों से पैसे मांगकर लाये हैं। आपकी ऐसी अनेकों अद्‌भुत लीलाएँ हैं, उन्हें कहाँ तक लिखें?

एक दिन आप उस्मानपुर नामक गाँव में पहुँचे। उसमें केवल मुसलमान लोग ही रहते थे। जब इस गाँव के आस-पास चन्दा हो रहा था तब ये भी बड़े उत्साह से तैयारी कर रहे थे। किसी समय ये लोग अच्छे सम्पन्न थे, किन्तु अब कालगति से इनके पास कुछ भी नहीं रहा था। इन्होंने तहसील में जाकर बड़े प्रयत्न से तकाबी (कर्जा) ली। उसमें इन्होंने सारे गाँव से प्राय: एक हजार रुपया मिला। इन्होंने निश्चय किया कि यह सारा रुपया श्रीमहाराजजी को भेंटकर दिया जाय। हमारा बड़ा ही भाग्य है जो वे हमारे घरों को अपने चरणों से पवित्र करें और हमारी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें। उन लोगों ने अपने घरों को लीप-पोत कर खूब साफ किया तथा गाँव की सफाई करके सर्वत्र बन्दनवार बाँध दिये। उनमें से दो-चार मुख्य आदमी दूसरे गाँव में जाकर आपको प्रार्थना करके गाँव में ले आये। यद्यपि आपके साथियों का विचार, इस ग्राम से विशेष चन्दे की आशा न होने के कारण, यहाँ आने का नहीं था। किन्तु जब इन्होंने आग्रह किया तो सबको आना ही पड़ा।

इन्होंने बाजेवालों को भी बुला लिया था। अत: खूब बाजे-गाजे से महाराजजी का स्वागत किया। फिर और सबको तो चौपाल पर बैठा दिया, तथा उस गाँव में जो दो-चार हिन्दू थे उन्हें उनकी सेवा में छोड़ दिया और अकेले श्रीमहाराजजी को अपने घरों में ले गये। वहाँ उनकी स्त्रियों ने, जो और सबसे पर्दा करती थीं, आपके सामने नि:संकोच आकर आपके चरणस्पर्श किये और घर में जो कुछ रुपये थे आपको भेंट कर दिये। उन सबके मुँह पर ये ही शब्द थे कि आप तो साक्षात् खुदा या पैगम्बर साहब ही हैं। हम गरीबों पर रहम करके ही हमारे घरों में पधारे हैं। इसी तरह उन्होंने घर-घर में श्रीमहाराजजी को घुमाया। महाराजजी उनके दिलों की और बाहरी सफाई देखकर बड़े प्रसन्न हुए और बड़े प्रेम से उनसे बातचीत करते रहे। इस प्रकार एक घंटे में सारे गाँव का चन्दा हो गया।

अन्त में श्रीमहाराजजी ने उनकी चौपाल पर आकर 'तेरी जात-पाक हूँ' का कीर्तन किया और फिर वहाँ से दूसरे गाँव को चले गये। आपने उनके प्रेम और उत्साह की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसी प्रकार गुन्नौर के मुसलमान रईस चौधरियों ने भी आपका बड़ा सत्कार किया। उन्होंने अपने यहाँ के सब मुसलमानों से चन्दा दिलवाया तथा चौधरी जाफरअली और मुश्ताकअली तो अपना हाथी लेकर गुन्नौर के आस-पास के गाँवों में कई दिनों तक आपके साथ रहे। उन्होंने चन्दा कराने में खूब परिश्रम किया। उनमें भी चौधरी जाफरअली तो आपसे बहुत प्रेम करते थे। वे कभी-कभी आपसे मिलने भी आते थे और कुछ परमार्थ-सम्बन्धी प्रश्न भी किया करते थे। श्रीमहाराजजी उन्हें बड़े प्रेम से उत्तर देते थे। आपके हृदय में कभी किसी सम्प्रदाय-विशेष का आग्रह नहीं रहा और न किसी सम्प्रदाय या मतभेद के कारण किसी पुरुष से घृणा ही हुई। अत: आप सभी से बड़े प्रेम से मिलते थे।

किन्तु आपका कार्यक्रम सदा ही इतना ठोस रहता है कि किसी से विशेष बातचीत करने का आपको अवकाश ही नहीं मिलता। यदि आपसे कोई मिलने की इच्छा प्रकट करता है तो प्राय: आप यही कह देते हैं कि कथा, कीर्तन या सत्संग में ही मिल लें। यदि कोई परमार्थ-चर्चा करनी है तब तो सत्संग में मैं उसके सामने हूँ ही और वहाँ कथा-कीर्तन भी करता ही हूँ और यदि कोई व्यावहारिक काम है तो इस विषय में मैं विशेष जानता नहीं हूँ, अत: क्षमा चाहता हूँ। यदि कोई बहुत आवश्यक बात होती है तो आप कथा-कीर्तन में आते-जाते समय चलते-चलते या खड़े होकर सुन लेते हैं और बहुत थोड़े-से शब्दों में उसका उत्तर दे देते हैं। इस प्रकार हजारों मनुष्यों के बीच में रहकर उनसे बड़े-बड़े काम कराते हुए भी आप जल-कमलवत् सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं।

आपकी काम करने की शैली भी बड़ी विचित्र है। जिस समय बाँध का काम चल रहा था बड़े से बड़ा क्रियाकुशल पुरुष भी आपके सामने चकरा जाता था। चन्दा लेने में आपकी नीति निराली ही थी। कहीं तो गरीबों से चार-चार आना लेने के लिए घंटों झगड़ते रहते और कहीं बड़े से बड़े आदमी की उपेक्षा कर देते थे। आप जब चन्दे के लिए उझियानी गये तो वहाँ के प्रसिद्ध व्यापारी
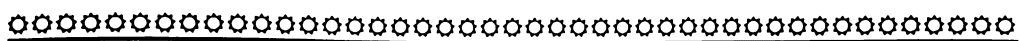
भदावर साहब से भी मिलने का विचार किया। ये कहीं बाहर से आकर वहाँ रहने लगे थे तथा करोड़ों की सम्पत्ति के मालिक और बड़े व्यापारी माने जाते थे। इन पर पाश्चात्य सभ्यता का रंग चढ़ा हुआ था, इनकी शिक्षा-दीक्षा भी विलायत में हुई थी तथा बड़े ही नियमनिष्ठ और राजसी ठाठ के आदमी थे। दरवाजे पर हर समय सशस्त्र पहरा लगा रहता था यदि इनसे किसी को मिलना होता तो पहले सूचना देकर समय नियुक्त करना होता था।

किन्तु आप जब उझियानी पहुँचे तो लालाजी से बोले, भदाबर साहब के यहाँ सूचना करा दो कि हरिबाबा आ रहे हैं।' लालाजी ने डरते हुए कहा, 'महाराज! इस प्रकार तो उनसे मिलना नहीं हो सकेगा। उन्हें तो पहले सूचना देकर समय निश्चित करना होगा। तभी वे मिल सकेंगे।' इस पर आपने कुछ तीखे स्वर में कहा, 'नहीं कल दूसरी जगह का प्रोग्राम है। यहाँ से तो आज ही निवृत्त होना है। तब लालाजी ने डरकर उनके पास एक आदमी भेज दिया। वह भीतर पहुँचा ही था कि दल-बल के साथ आप भी कोठी में चले गये। वे हड़बड़ाकर उठे और आपका स्वागत किया। तब आपने कहा, 'मैं आपकी आज्ञा लिये बिना ही चला आया हूँ। इसका आपको कुछ ख्याल तो नहीं है? मैं तो यही सोचकर चला आया कि साधुओं की तो कहीं भी रोक-टोक नहीं होती।' वे लज्जित होकर बोले, ठीक है, आपकी क्या रोक-टोक।'

फिर उन्होंने पूछा, 'कहिये, आपने कैसे कृपा की?' आपने थोड़े शब्दों में बात बतला दी। उन्होंने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'आपका स्वागत करना तो मेरा कर्त्तव्य है। किन्तु बाँध क्या वस्तु है इसका मुझे परिचय नहीं है। तथा क्षमा कीजिये, आपसे भी मैं परिचित नहीं हूँ। ऐसी स्थिति में क्या उत्तर दूँ। और जब तक किसी परिस्थिति को अच्छी तरह समझ न लिया जाय तब तक कोई काम करना मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है।' तब आपने प्राय: एक घंटे तक उन्हें सब परिस्थिति समझायी तब वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले, 'मैंने आपका बहुत समय ले लिया। कृपया क्षमा करें। मैं आपके उद्देश्य को समझा नहीं था, इसी से आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा। अब आप मुझे जो भी आज्ञा करें मैं पालन करने को तैयार हूँ।' बस, आप उठकर चल दिये और बोले, 'आपने एक साधु के सामने अपनी

गलती स्वीकार कर ली, अपना सिद्धान्त बदल लिया—यही मुझे सब कुछ मिल गया। अब हम आपके सिद्धान्त के विरुद्ध आपसे चन्दा नहीं लेंगे।'

इस पर भदावर साहब ने चरणों में गिरकर बहुत प्रार्थना की और कहा, 'मेरी भूल क्षमा की जाय। अब मुझे जो आज्ञा हो, मैं पालन करने को तैयार हूँ।' तब उनका अधिक आग्रह देखकर आपने कहा, अच्छा, आपकी जो इच्छा हो, दे दीजिये।' किन्तु उनका तो यही हठ था कि आपकी जो आज्ञा हो वही दूँ।' अतः आपने कह दिया, 'अच्छा पाँच सौ रुपये दे दो।' वे सुनकर बड़े मर्माहत हुए और बोले, 'महाराज! यह तो एक प्रकार से मेरा अपमान है। मैं तो यह प्रार्थना करता हूँ कि बाँध में जितना भी रुपया खर्च हो वह सब मेरी ओर से ही हो जाय। आप तो वहाँ बैठकर उसका काम करा लें।' आप बोले, 'बस, अब आप कुछ न कहें। मैंने जो कुछ कहा है उससे अधिक एक पैसा भी नहीं लिया जा सकता। हाँ, पहले आप अपनी ओर से यह प्रस्ताव रखते तो उस पर विचार किया जाता। मेरे सामने तो पहले भी ऐसा एक अवसर आ चुका है, किन्तु ऐसा करने की तो मेरी हार्दिक इच्छा नहीं है।'

यह कहकर आप वहाँ से उठकर चल दिये। उनसे केवल पाँच सौ रुपया ही लिया गया। यह देखकर सब लोग दंग रह गये और आपस में कहने लगे कि इनकी लीला को समझना तो हमारी बुद्धि का काम नहीं है। कहीं तो चार आने के लिए मीलों भागें और झगड़ा करें और जहाँ मिलता हो वहाँ इस प्रकार ठुकरा दें। और लोग तो इस प्रकार आपस में कानाफूसी करके ही रह गये, किन्तु लालाजी तो हिम्मत करके पूछ ही बैठे, 'क्यों महाराजजी! यह आपकी क्या लीला है कि चन्दे के लिये आप इतना कष्ट उठाते हैं और हम सबको परेशान करते हैं। किन्तु जहाँ मिलता है वहाँ लेते नहीं हैं। यह बात हमारी समझ में नहीं आती, कृपया समझा दीजिये।' लालाजी की बात सुनकर आप जरा तीखे स्वर में बोले, 'लालाजी! आप तो पैसे के कीड़े हैं। इसलिये आपको पैसा ही पैसा सूझता है। भाई! मैं जो कुछ लेता हूँ, उसके बदले में इन्हें भी तो कुछ देना पड़ेगा ही। मुझे इसके बदले में कोई बड़ी वस्तु देनी होगी। सो उस दिव्य परमार्थ सुख में जितना भी जिसका भाग है उतना ही उसका तन, मन, धन

बाँध भगवान् की सेवा लग सकेगा। यह कोई अन्धाधुन्ध व्यापार थोड़ा ही है कि जो चाहो हर किसी से लेते जाओ। इसमें जिसका जितना भाग है उतना ही वह दे सकता है। अधिक न तो वह दे सकेगा और न मैं ले सकूँगा। देखो, अब कभी ऐसी बात मत करना। तुम तो खाली देखते जाओ पुरुषोत्तम की अद्भुत लीला को कि वह किस रूप में क्या लीला करता है। गुरु नानकदेव ने अपने साथी भाई मर्दाना से कहा था, 'देख मर्दाना कर्तार दे रंगा।'

उस समय आपके अनेकों चमत्कार स्वभाव से ही सर्वत्र होते थे। आप एक दिन लहरा झुकैरा गाँव में चन्दा करने लगे। वहाँ के लोगों ने आपके साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया चन्दा देने से भी साफ इन्कार कर दिया। आप चुपचाप वहाँ से चल दिये। किन्तु दूसरे दिन सामान्य से बादल उठे और उस गाँव पर इतने ओले पड़े कि उसकी सारी फसल नष्ट हो गई। वहाँ की एक गरीब मालिन ने बड़ी श्रद्धा से आपको चार आने दिये थे। बस, उसी का खेत बचा। ये ओले केवल उसी गाँव की सीमा तक पड़े, उसके पास के दूसरे गाँव में तो अच्छी वर्षा हुई, जिससे उसकी फसल को लाभ ही हुआ। यह देखकर लहरा के लोगों को अपनी करनी पर बड़ा पश्चाताप हुआ। उन्होनें यह सब श्रीमहाराजजी की अवज्ञा का ही दुष्परिणाम समझा। इससे वे बहुत भयभीत भी हुए। श्रीगोस्वामीजी महाराज ने कहा है–

'साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल की हानी॥'

अतः वे सब मिलकर दूसरे गाँव में श्रीमहाराजजी के पास गये और बहुत प्रार्थना की कि हमारा अपराध क्षमा किया जाय तथा चलकर हमारे गाँव से भी चन्दा कर लिया जाय।

श्रीमहाराजजी ने उनकी हानि के लिये बहुत खेद प्रकट किया और बड़े प्रेम से उन्हें समझाया कि मेरे मन में तो ऐसा कोई ख्याल ही नहीं हुआ। यह कष्ट तो आप लोगों को दैवी इच्छा से मिला है। होनहार ऐसी ही थी, उसमें किसी का क्या चारा है। हाँ, आप लोगों का व्यवहार तो वास्तव में अच्छा नहीं था। साधु को परमात्मा का स्वरूप समझकर सर्वदा ही उसका सत्कार करना चाहिये।

यदि वन सके तो उसकी सेवा करें और न बन सके तो केवल एक लोटा जल ही अर्पण कर दें। यदि इतना भी न बन पड़े तो दो मीठी बातों से ही उसका चित्त प्रसन्न कर दें। जिस गृहस्थ के द्वार से अतिथि निराश होकर चला जाता है उसका सर्वस्व लेकर वह अपना पाप छोड़ जाता है। इसलिये अपने घर पर आये हुए अतिथि का सत्कार करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। फिर यदि वह साधु हो तब तो उसे साक्षात् नारायण का स्वरूप समझकर तन, मन, प्राण से उसकी सेवा करनी चाहिये। तुमने चन्दा करने के लिये कहा, सो अब तो तुम सभी को बहुत हानि उठानी पड़ी है। इसलिये क्या चन्दा करें, फिर कभी देखा जायगा।

किन्तु उन लोगों ने चन्दे के लिये बहुत आग्रह किया। तब आपने सबके साथ विचार करके उनके गाँव में जाने का दिन नियुक्त कर दिया। पीछे दूसरे गाँवों में घूमते हुए आप लहरा गये। वहाँ उन लोगों ने आपका खूब सत्कार किया और यथाशक्ति चन्दा भी दिया। आपने सबके साथ मिलकर खूब कीर्तन किया और उन्हें समझाया कि भाई! घर आये साधु का कभी तिरस्कार मत करना। और यह कभी मत सोचना कि मैं कभी तुम्हारा अहित चाह सकता हूँ। ऐसा ख्याल तो मेरे मन में स्वप्न में भी नहीं आ सकता। मैं सर्वदा सबका भला ही चाहता हूँ। यह जो कुछ कष्ट तुम्हें उठाना पड़ा है, तुम्हारे कर्मों का ही फल है। किसी व्यक्ति विशेष को सुख-दुःख देने वाला मानना तो मूर्खता ही है। मैंने अमुक काम किया—यह भी वृथा अभिमान ही है। सारा संसार कर्मसूत्र में बँधा हुआ ही सुख-दुःख भोगता रहता है।

'सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रे ग्रथितो हि लोकः॥'

इस प्रकार आपने बड़े उत्साह से चाव से चन्दा किया। और जहाँ गये वहीं से काफी रुपया एकत्रित किया। ऐसा कोई ग्राम या व्यक्ति नहीं था जो आपके सामने आ जाय और फिर सीधा न हो। वास्तव में आपके स्वरूप और वाणी में आकर्षण ही ऐसा था। यह भी लोगों पर आपकी अहैतुकी कृपा ही थी। इसी बहाने उन्हें बाँध भगवान् की सेवा का सुअवसर मिला और आपके श्रीचरणों से उनके गृह पवित्र हुए।

बाँध की रचना

उस समय उस प्रान्त में सचमुच सत्ययुग-सा ही व्यवहार हो गया था। इससे पहले तो यह प्रान्त बहुत ही भयंकर था। यहाँ अहीर जाति ही अधिक है। ये लोग महाराज यदु की ही सन्तान है, किन्तु दासी से उत्पन्न हुए हैं। अतः ये यदुवंशी क्षत्रियों में निम्न कोटि के समझे जाते हैं। पहले इन लोगों का व्यवहार विशेष विश्वसनीय नहीं था। किन्तु उन दिनों में तो मामूली नौकर हजारों रूपया यों ही थैलियों में भरकर बैल गाड़ियों से ले आते थे। बाँध पर भी एक मामूली फूस की झोंपड़ी थी। उसीमें एक सन्दूक में सब रूपया पड़ा रहता था। ठेकेदारों को भी सदा कागज पर नाममात्र की रसीद लिखाकर हजारों रूपया दे दिया जाता था। इस क्रम से ठेकेदारों को एक-एक दिन में दस-बीस हजार तक रुपया बाँट दिया जाता था। इसी तरह वहाँ सभी काम बड़े उत्साह विश्वास और पारस्परिक सहयोग से हो रहा था।

बाँध के निर्माण में प्रधान इञ्जिनीयर थे बाबू रघुपतिराय। उन्होंने चार मील लम्बे मुख्य बाँध में छोटे-बड़े सतरह क्रॉस बाँध बनाने की योजना बनायी। उनमें से कोई-कोई तो चार-पाँच फर्लांग तक लम्बे थे और दो तो सात-सात फर्लांग लम्बे बनाये गये थे। ये मुख्य बाँध से गंगाजी की ओर जाते थे जिससे बाढ़ के समय उनके कारण गंगाजी की धारा का प्रवाह दूसरी ओर को रहे और मुख्य बाँध पर विशेष जोर न पड़े मुख्य बाँध और इन क्रॉस बाँधों की ऊँचाई कहीं-कहीं तो सात-आठ गज तक है तथा चौड़ाई भी किसी-किसी स्थान पर पच्चीस-तीस गज तक रखी गई है। क्रॉस बाँधों का काम तो मुख्य बाँध से भी बढ़कर था। इनमें गंगाजी की ओर बहुत ही लम्बी चौड़ी कंकड़ की ठोकरें बनायी गयी थी। इसके अतिरिक्त दीपपुर से राजघाट के पुल तक चौदह मील लम्बा गौण बाँध बनाना था, जो अधिक से अधिक मुख्य बाँध से आँधी ऊँचाई और मोटाई का है। इस तरह चार मील लम्बा मुख्य बाँध, छः मील लम्बे क्रॉस बाँध और चौदह मील लम्बा गौण बाँध ये सब मिलकर चौबीस मील लम्बा बाँध बनाना था और इसका मिट्टी का सारा काम चैत्र शुक्ला नवमी को

अवश्य पूरा हो जाना चाहिये था। अत: सब काम बड़े जोर से चल रहा था। इस समय प्राय: दस हजार मजदूर तो ठेकेदारों के थे। उनके अतिरिक्त हजारों अवैतनिक कार्यकर्ता थे तथा उनके काम कराने वाले सवेतन और अवैतनिक कर्मचारी भी सैकड़ों की संख्या में थे। इनके लिए एक बहुत बड़ा भोजन भण्डार भी चलता था, जिसमें प्राय: एक हजार आदमियों का भोजन बनाया जाता था। उसके अतिरिक्त रईसों के भी दस-बीस चौके चलते थे।

मेरी ड्यूटी इन सभी कामों की देखभाल करने की थी। किन्तु पैदल चलकर यह सारा काम देखना तो असम्भव ही था अत: सवारियों का प्रबन्ध किया गया। दो घोड़ी बड़ी और दो छोटी तथा दो जोट बहुत बड़े बैलों की और दो साधारण बैलों की बाँध पर रखी गई। इनमें बैलों की एक बड़ी जोट तो श्रीमहाराजजी की सवारी में जोती जाती थी। शेष सवारियाँ हम लोगों के काम आती थीं। इनके अतिरिक्त सामान ढोने के लिये एक ऊँट और कुछ बैलगाड़ियाँ और भी रखी गईं। ये सब सवारियाँ तो हर समय बाँध पर ही रहती थीं। आवश्यकता पड़ने पर इनके अतिरिक्त रईसों की और भी सवारियाँ आ जाती थीं। मैं तो अधिकतर घोड़ों से या पैदल चलकर ही अपना काम देखता था। इसी समय बाबू हीरालालजी और मैंने गंगाजी के उस पार जाकर कल्याणपुर-मंगलपुर में कंकड़ तलाश किया। वहाँ से किसानो से तय करके उनके खोदने वाले और ढोने वाली गाड़ियों का भी प्रबन्ध किया। फिर बाबूजी कंकड़ भेजने के लिये वहीं रह गए और मैं बाँध पर चला आया वहाँ से ताहरपुर (पेटपालबाबा की कुटी) तक तो यह कंकड़ गाड़ियों में आता था और ताहरपुर से नावें इसे भरकर बाँध तक पहुँचाती थीं। इस प्रकार कंकड़ भी खूब जोरों से आने लगा। इधर भिरावटी के रास्ते में सेनुआ से भी कंकड़ आने लगा। इस कंकड़ के लिये भी हमें नित्यप्रति आठ-दस हजार रूपये की आवश्यकता होती थी, सो भिरावटी से और श्रीमहाराजजी के पास से निरन्तर रुपया आता रहता था। गवाँ की तरह भिरावटी के रईसों से भी प्राय: बीस हजार का चन्दा हो गया था।

किन्तु इस ग्रामीण चन्दे से इस काम में पूरा पड़ना कठिन था। अतः आपने बाँध पर आकर कलकत्ता जाने का निश्चय किया। वहाँ जाने पर तीन-चार दिन तो काम आरम्भ होने में लग गए। किन्तु फिर एक ही दिन में पच्चीस हजार का चन्दा हुआ। तथापि वहाँ का घोर रजोगुण और लोगों की चाल-ढाल देखकर आपका चित्त घबरा गया और आपने उसी दिन लौटने का निश्चय कर लिया। वहाँ के लोगों ने बहुत कहा कि अभी तो काम आरम्भ हुआ है। अब तो यहाँ लाखों रुपये का चन्दा हो सकता है। किन्तु आप बोले, 'मैं तो यहाँ एक मिनट भी नहीं ठहर सकता। जहाँ भगवन्नाम नहीं, नम्रता और दीनता नहीं, वहाँ कुबेर का भण्डार मिले तो भी किस काम का?' बस, आप उसी दिन वहाँ से चल पड़े और वापिस आते हुए हाथरस, अलीगढ़ एवं खुरजा आदि शहरों में चन्दा किया। यहाँ के लोगों ने बड़े भाव से कीर्तन भी किया और चन्दा भी दिया। इस प्रकार प्रायः पन्द्रह दिन में एक लाख रुपया बाहर से आ गया।

अब आपने बाँध पर आकर सब काम देखा और बड़ी धूमधाम से होली का उत्सव भी किया। फिर एक बड़ी कमेटी की। उसमें सब बातों पर विचार किया गया। तब आप बोले, 'मेरे विचार से तो मिट्टी का काम अभी बहुत बाकी है। यह इस गति से पूरा नहीं होगा, इसको और भी तेजी से बढ़ाओ। तथा कंकड़ का काम भी जितना अधिक से अधिक हो सके बढ़ाओ। देखो, रामनवमी के एक दिन पहले मिट्टी का सब काम समाप्त हो जाना चाहिए। मेरे शब्दों को पत्थर की लकीर समझना। सूर्य और चन्द्रमा भले ही अपने मार्ग से टल जाय, पर मेरे वचन नहीं टल सकते। यदि चैत्र शुक्ला अष्टमी तक मिट्टी का सारा काम पूरा न हुआ तो मैं अवश्य अपने प्राण त्याग दूँगा। इस बात को स्मरण रखते हुए यह काम और भी तेजी से बढ़ाओ। खर्च की कोई चिन्ता मत करो, उसकी जिम्मेवारी मेरी है।'

इस प्रकार सब काम का ठीक प्रबन्ध करके आप जो गाँव रह गए थे उनसे चन्दा इकट्ठा करने के लिये चले गए। इधर बाँध का काम हम लोगों ने और भी जोर से आरम्भ कर दिया। जिन ठेकेदारों के काम में शिथिलता थी
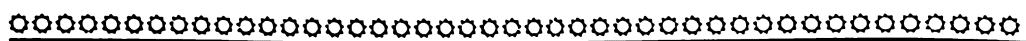
उन्हें सब प्रकार की सहायता दी गयी अथवा उनके उतने ही काम का भुगतान करके वह काम दूसरे ठेकेदारों को सौंप दिया गया।

हमारे बाँध के कार्यकर्ताओं में सबसे वड़े तो थे बाबू हीरालाल जी। वे तो इस समय कंकड़ के काम में उलझे हुए थे। अब यहाँ जो कार्यकर्ता थे उनमें साहूजानकीप्रसाद बड़े ही योग्य पुरुष थे। इनकी श्रीमहाराजजी में अपूर्व श्रद्धा थी, ये उन्हें साक्षात् भगवान् ही मानते थे। उनके इशारे पर ये हर समय अपना तन, मन, धन, न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। ये थे भी बड़े रौब-दौब के जोशीले आदमी। वैश्य होकर भी इनका स्वभाव क्षत्रियों का-सा इनकी चित्तवृत्ति और गुरुनिष्ठा महाराष्ट्र-केसरी वीररत्न शिवाजी की-सी ही थी। यों तो ये लाला कुन्दनलाल के छोटे भाई के पुत्र थे, किन्तु इनका प्रभाव लालाजी से भी बढ़ा-चढ़ा था। इनके एक मित्र थे बाबू कुन्दनगिरिजी गुसाईं। ये भी बड़े विलक्षण पुरुष थे। ये अंग्रेजी पढ़े लिखे बड़े ही मनस्वी और कार्यकुशल व्यक्ति थे। इनमें स्पष्टवादिता का विशेष गुण था। इसीसे श्रीमहाराजजी इनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। ये या तो किसी काम को हाथ में लेते नहीं थे या ले लिया तो प्राणों की बाजी लगाकर उसे पूरा करते थे।

अस्तु! श्रीमहाराजजी तो चन्दा करने चले गये और हम लोग अपनी पूरी शक्ति लगाकर काम में जुट गए। धीरे-धीरे चैत्र शुक्ला अष्टमी भी आ गयी हमने देखा कि अब तो मिट्टी का सारा काम पूरा हो गया है। परन्तु बात ऐसी नहीं थी। एक क्रॉस बाँध पर ठेकेदार की कुछ असावधानी से थोड़ा-सा काम रह गया था। हमारा उस पर ध्यान नहीं गया। श्रीमहाराजजी ठीक अष्टमी के दोपहर को बाँध पर आ गए। हम लोगों ने जाकर प्रणाम किया तो आपने पूछा, 'क्या मिट्टी का सब काम पूरा हो गया?' हम सबने कहा, 'हाँ हो गया।' आप बोले, आज चार बजे चलकर मैं स्वयं देखूँगा।'

हम लोग चले आये और आप अपनी नित्य क्रिया में लग गए। भोजन और विश्राम करने के पश्चात् दो से चार बजे तक कुछ स्वाध्याय किया और आगे क्या करना है यह निर्णय करने के लिये कमेटी की। फिर ठीक चार बजे

काम देखने के लिये चले। हम सब लोग भी साथ हो लिए। आप सीधे उसी क्रॉस बाँधकर पहुँचे जहाँ कुछ काम शेष रह गया था। वहाँ लोग बड़ी तेजी से काम कर रहे थे। उन्हीं के साथ आप भी उसी काम में लग गए। देखकर हम लोगों के कलेजे काँप गए। वहाँ काम इतना बाकी था कि उस चाल से आठ दिन में पूरा हो सकता था। शाम तक सब लोग बड़ी तेजी से उस काम में लगे रहे। किन्तु वह पूरा न हुआ तव मैंने कहा, 'आप चलिये, सायंकाल के कीर्तन का समय हो गया है तथा कलके प्रोग्राम पर भी कुछ विचार करना है।' आप बोले, 'तुम जाओ, कीर्तन करो। मेरा उत्सव और कीर्तन तो हो गया। मैंने तो पहले ही कह दिया था कि यदि अष्टमी तक मिट्टी का काम पूरा न हुआ तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। सो काम पूरा हुआ नहीं। इसलिए अब मैं तो बिना अन्न-जल के इसी काम को करता-करता अपने प्राण छोड़ दूँगा।' मैंने कहा, 'और सब काम तो ठीक है। केवल यह थोड़ा-सा काम ठेकेदार की गलती से रह गया है। सो कल ठीक करा देंगे।' तब आपने तीखे स्वर में कहा, 'भाई! मुझे तंग मत करो। तुम सब जाओ, मैं नहीं जाऊँगा। और अब मौन हूँ। इससे पीछे किसी से नहीं बोलूँगा।

बस, यह बात सुनकर सबके होश उड़ गए। सब घबरा गये। मैं वहाँ से चला और जानकीप्रसाद आदि सभी कार्यकर्ताओं को इकट्ठे करके बोला कि क्या विचार है? तब सबने कहा, जैसे आप कहें।' मैंने कहा, 'भाई! हिम्मते मर्दा मद्दे खुदा। तुम सब महाराजजी का स्मरण करके कमर कसकर तैयार हो जाओ बात ही क्या है? अभी दो चार हजार आदमी आ जायँ तो रात भर में इतनी मिट्टी पड़ सकती है। आप दो चार आदमी घोड़ियोंपर चढ़कर अभी बड़ी तेजी गुन्नौर तक दौड़ जाओ और सब गाँवों में बिजलीकी तरह यह संवाद फैला दो कि यदि आज यह काम पूरा न हुआ तो महाराजजी अपने प्राण त्याग देंगे और उनके पीछे न जाने क्या-क्या उपद्रव हो। अतः रईस, गरीब बड़े-बालक, स्त्री-पुरुष सभी अपने- अपने फावड़े और पल्ले लेकर मिट्टी डालने चलो।'

यह सुनकर चौधरी रूपराम अपनी घोड़ी पर और जानकीप्रसाद अपनी घोड़ी पर तथा जिसने भी सुना वही अपनी-अपनी घोड़ी पर चढ़कर गाँवों में

दौड़कर गये। इधर, मैं भी ठेकेदारों की मददें और बाँध के सब कर्मचारियों को लेकर उसी जगह जा भिड़ा। बस, फिर क्या था, काम की आँधी-सी आ गयी। उधर गवाँ तथा आसपास के गाँवों के बड़े-बड़े रईस भी अपने-अपने स्त्री-बच्चों के साथ दौड़े और उसी काम में जुट गये। इस प्रकार जिस गाँव में भी खबर पड़ी वही बाँध पर लौट पड़ा। यहाँ तक कि उन गाँवों में बीमार और बूढ़ों के सिवा और कोई नहीं रहा। सभी बाँध पर पहुँच गये। उस दिन की सी भीड़ तो बाँध पर कभी नहीं देखी गयी। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ मानो स्वर्ग से सारे देवता ही बाँध पर चले आये हैं। भीड़ का कुछ भी ठिकाना नहीं था। फिर भी किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं थी। बस, श्रीहरिनाम की तुमुल ध्वनि से आकाश गूँज रहा था। बड़ा ही अद्‌भुत दृश्य था।

अब क्या देर लगनी थी? रात के दस बजे ही सारा काम पूरा हो गया। इतने लोगों के सामने वह काम ही क्या था। वहाँ तो सचमुच मिट्‌टी का एक पहाड़-सा खड़ा हो गया। जितनी मिट्‌टी पड़नी थी, उससे कहीं अधिक पड़ गयी। तब महाराजजी स्वयं उठे और बोले, 'बस, भाई! शाबास। अब काम बन्द करो।' किन्तु फिर भी काम बन्द नहीं हुआ।' तब मैंने कहा, 'आप चलें। बस, काम अपने आप ही बन्द हो जायगा।' आपने थोड़ी देर बड़े जोर से कीर्तन किया और चल दिये। वहाँ से आकर अगले दिन का प्रोग्राम बनाया और स्नान तथा भोजन करके सो गये।

किन्तु वहाँ तो सैकड़ों ही गैस के हंडे जल गये और रातभर अन्धाधुन्ध मिट्‌टी पड़ती रही जानकीप्रसाद तो सचमुच पागल हो गये। उन्होंने यह घोर संकल्प कर लिया कि अब मिट्‌टी डालते-डालते ही प्राणों को त्याग दूँगा। प्रात:काल श्रीमहाराजजी से यह बात कही गयी। तब वे स्वयं गए और जानकीप्रसाद को बुलाया, उन्हें तो तन मन का कोई होश नहीं था। मैं स्वयं पकड़कर लाया। उस समय वे पागल की तरह प्रलाप करने लगे—क्या तुमको पता नहीं है काम अभी पूरा नहीं हुआ। अत: महाराजजी अपने प्राण त्याग देंगे?' मैं जैसे-तैसे उन्हें महाराजजी के पास लाया। वहाँ वे मूर्च्छित होकर
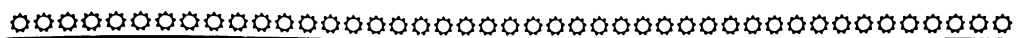
श्रीचरणों में गिर पड़े। तब महाराजजी ने उन्हें स्वयं उठाया और होश होने पर कहा, 'जानकीप्रसाद! अब इस काम को छोड़ दो और उत्सव का काम करो। तब उन्होंने वह काम छोड़ा और अपनी नित्य क्रिया से निवृत्त हो उत्सव के काम में लग गये।

उस समय बाँध के सेवकों में अतिमानुषिक संयम तथा कायिक वाचिक मानसिक बल था। सभी में अनन्त आध्यात्मिक शक्ति काम कर रही थी। श्रीमहाराजजी ने सभी में ऐसा शक्ति संचार किया था कि किसी को दिन-रात का पता नहीं था। उन दिनों बाँध के बच्चे को भी देखकर बड़े-बड़े संयमी और साधन-सम्पन्न पुरुष चकित रह जाते थे। लीला नामक एक पन्द्रह वर्ष के लड़के की बात है—वह बेचारा गरीब लड़का कहीं बाहर से आया था। और भोजन-बस्त्र का सहारा पाकर बाँध पर रहने लगा। एक दिन श्रीमहाराजजी ने उसे किसी काम से अनूपशहर भेजा। सम्भवतः वैशाख का महीना था। वह प्रायः नौ बजे बाँध से चला। चलते समय यह समझकर कि यह बालक है, कहीं खेलता न रह जाय, माहराजजी ने कह दिया कि तू अनूपशहर जाकर यह काम करके ही अन्न जल ग्रहण करना। बस, वह बिजली की तरह दौड़ा और उस तेज दोपहरी में छः मील चलकर अनूपशहर पहुँचा। वहाँ सेठ गौरीशंकर और रामशंकरजी से महाराजजी का सन्देह कहा और तुरन्त वापिस चल दिया। उन लोगों ने बहुत कहा कि लीला! अब बहुत धूप हो गयी है, तू कुछ खा पी ले। थोड़ी देर आराम करके ठंडक होने पर चले जाना। किन्तु लीला ने गम्भीरता से उत्तर दिया, जब तक यह खबर श्रीमहाराजजी को नहीं सुना दूँगा जब तक तो मैं जल भी नहीं पीऊँगा, विश्राम करना कैसा।' यह कहकर वह भागा और सीधे बाँध पर पहुँचकर श्रीमहाराजजी को वह समाचार सुनाया। इसके बाद उसने जलपान किया। यह बात देखकर उन लोगों ने बड़ा आश्चर्य माना और जब उनका बाँध पर आना हुआ तब महाराजजी से इसकी चर्चा की। महाराजजी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। पीछे कई बार आप इस बात की चर्चा किया करते थे। इस प्रकार सभा में उनकी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार

आप की शक्ति ही काम कर रही थी। सभी बड़ी तत्परता और सावधानी से अपने-अपने काम में लगे हुए थे तथा सभी के हृदयों में आपकी सर्वज्ञता और अन्तर्यामिताका आतंक छाया हुआ था।

अस्तु! आज रामनवमी थी। आज ही आपको कंकड़ का मुहुर्त करना था। अतः प्रातःकाल ही प्रभाती कीर्तन कर फिर आठ से नौ बजे तक आपने समष्टि कीर्तन किया। उसी समय आप कंकड़ का मुहूर्त करने के लिये चल दिये। साथ में अधिक भीड़ होने के कारण आप कंकड़ वाले क्रॉसबाँध से अगले क्रॉस पर पहुँच गये। मालूम होने पर आपने नाराज होकर मेरे मुँह पर एक चपत लगाया और फिर उसी क्रॉस पर आकर कीर्तन करके अपने हाथ से एक कंकड़ लगाया। किन्तु जब वह ठोकर बनने लगी तो बाबू रघुपतिराय इञ्जीनियर ने मना करने पर भी हठपूर्वक वह मूहूर्त वाला कंकड़ वहाँ से हटाकर दूसरी जगह लगा दिया। जब हम लोगों ने यह बात सुनी तो हमें बड़ा खेद हुआ। किन्तु हमने यही सोचा कि दैवेच्छा बलवान् है। वह बात बाँध के चिरस्थायी रहने में अवश्य बाधक होगी। किन्तु अब किया क्या जा सकता था।

रामनवमी का उत्सव भी बड़ी धूमधाम से हुआ। उसमें प्रायः दस हजार आदमी एकत्रित हुए थे। सर्वहरिनाम कीर्तन से आकाश गुञ्जायमान हो रहा था। सभी जगह 'श्रीहरि भगवान् की जय' श्रीहरिबाबा की जय गूँज रही थी। प्रायः ढाई बजे आप हाथी पर सवार होकर उस भीड़ में गये। तीन-चार हाथी थे। हम लोग भी उन्हीं पर बैठे हुए थे। उस समय वहाँ की जनता का अपूर्व प्रेम था। वह अपने प्राण पर्यन्त न्यौछावर करने को तैयार थी। रुपये की तो वर्षा सी हो रही थी। हम तीन-चार आदमी सँभाल रहे थे। फिर भी हजारों रूपया जमीन पर गिर गया और सैकड़ों महावतों को मिला। हमने भी सँभालकर हजारों रुपया बाँध के कोश में जमा किया।

इसके बाद आप गुन्नौर गये और बाबू ब्रजबिहारीलाल की प्रेतबाधा निवृत्त की। यह प्रसंग 'कुछ अद्भुत प्रसंग' शीर्षक में आ गया है। इसलिए यहाँ पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं है।

इसके कुछ ही दिन पश्चात् हम लोगों में आपस में कुछ झगड़ा हो गया। जहाँ बहुत से बरतन इकट्ठे हो जाते हैं वहाँ उनमें खटका होना भी स्वाभाविक होता है। इसी प्रकार का हम लोगों का झगड़ा था। उस वैमनस्य में प्रमुख विरोधी थे साहू जानकीप्रसाद और मैं। हम दोनों ही बड़े अभिमानी और क्रोधी स्वभाव के मनुष्य थे। वे तो थे इस प्रान्त के एक प्रभावशाली रईस और मैं कूदता था श्रीमहाराजजी के बल पर। इसके सिवा जिसे सारा खादर प्रान्त 'गुरुजी' कहे उसके अभिमान का क्या ठिकाना। अतः हम दोनों अहंकारियों में परस्पर तनातनी हो गयी और वह धीरे-धीरे बहुत बढ़ गयी। जानकीप्रसाद के पक्ष में सारी रईस पार्टी थी और गरीब लोग सब मेरे पक्ष में थे। झगड़े की बात को विशेष लिखना शोभा नहीं देता। हमारी तो बालकों की सी लड़ाई थी, जो एक क्षण में लड़े और दूसरे में एक हो गये।

जब झगड़ा बहुत बढ़ गया तो हमारे बाबूजी और रामेश्वरप्रसाद ने उसे निबटाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह सफल न हो सके। तब मैंने जाकर सारा हाल श्रीमहाराजजी से कहा। महाराजजी ने मुझे बहुत फटकारा। इससे मेरा चित्त बहुत दुखी हुआ और मैं रोने लगा। फिर बोला,'एकमात्र आपका ही तो मुझे सहारा था, सो यदि आप भी मुझे ही फटकारते हैं तो मैं बाँध की सेवा से वंचित ही रहूँगा और कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा।' यह कहकर मैं चलने लगा तो आपने मुझे समझाया और कहा कि अभी तू बाँध पर ही चल, मैं भी जल्दी ही आता हूँ। मैंने कहा, 'मैं अकेला तो बाँध पर नहीं जाऊँगा, आपके साथ ही चलूँगा।' तब आप दूसरे दिन बाँध पर आये और गुप्त रूप से दो चार विश्वासपात्र लोगों से पूछताछ की। उससे आपको निश्चय हो गया कि वास्तव में बात बहुत साधारण- सी है। उसे जानकी प्रसाद ने बहुत बढ़ा दिया है। तब आप चुपचाप मुझे साथ लेकर शिवपुरी चले आये और वहाँ बड़े आनन्द से संकीर्तनोत्सव होने लगा।

उधर सारे बाँध प्रान्त में खलबली पड़ गई। सब लोग जानकीप्रसाद को ही दोषी बताने लगे और कहने लगे कि इसीने गुरुजी से लड़ाई करके

महाराजजी को भगा दिया है। इस लांछन से जानकीप्रसाद को बड़ी मार्मिक वेदना हुई, क्योंकि वह भी तो श्रीमहाराजजी का अनन्यशरण था। वैसा विश्वासी भक्त तो उस प्रान्त भर में कोई नहीं था। वह तो सचमुच उस समय उस प्रान्त का शिवाजी ही था। उसकी गुरुभक्ति साक्षात् शिवाजी के ही समान थी। श्रीमहाराजजी के इशारे पर वह अपना सर्वस्व त्याग सकता था। अत: उसे अपने किये पर बहुत पश्चाताप हुआ। अत: उसने खाना-पीना छोड़ दिया और निरन्तर रोता रहा। तब लालाजी ने सब लोगों को इकट्ठा किया और आपस में सलाह कर लालाजी, बाबूजी के बड़े भाई लाला चन्द्रसेनजी, चौधरी रूपरामजी और जानकीप्रसादजी आदि कुछ प्रमुख लोग मिलकर शिवपुरी गये। वहाँ जाकर जानकीप्रसाद मेरे पैरों में पड़ गया। मैंने उठाकर उसे हृदय से लगा लिया और हम दोनों खूब-खूब रोये। वास्तव में जानकी प्रसादजी के साथ मेरा बहुत प्रेम था। किन्तु इस कमप्रवृत्ति की महिमा ही ऐसी है कि इसने हमारे दिलों में भेद खड़ा कर दिया। फिर भी भगवदिच्छा से जो कुछ होता है वह ठीक ही है, जो देखने में बहुत बड़ा बिगाड़ जान पड़ता है वह भी परिणाम में कुछ न कुछ बनाने वाला ही होता है।

फिर ये सब लोग मुझे आगे करके श्रीमहाराजजी के पास गये। वहाँ सभी ने श्रीचरणों में प्रणाम किया और जानकीप्रसाद तो बहुत रोया तब महाराजजी बहुत हँसे और बोले, 'भाई! मुझसे तो तुम्हारा कोई झगड़ा है नहीं। ललिताप्रसाद और जानकीप्रसाद का झगड़ा है। सो ये दोनों आपस में राजी हो जाय तो सब ठीक ही है।' मैंने कहा,'महाराजजी! जानकीप्रसाद बहुत दुखी हो गये हैं, इसलिये मेरे चित्त में अब कोई ख्याल नहीं है।'

तब आप बोले,'भाई! लड़ना कोई बुरी बात नहीं है, किन्तु वह वैसा ही होना चाहिए जैसे बालक खेलते-खेलते आपस में लड़ पड़ते हैं और थोड़ी देर में फिर एक-दूसरे से हिल-मिल जाते हैं। भला, ऐसी लड़ाई किस काम की कि एक-दूसरे की जान के ग्राहक बन जायँ। मैंने सोचा कि ये दोनों ही जोशीले आदमी हैं। समझाने से तो मानेंगे नहीं। इसलिये मैं यहाँ चला आया। आखिर, जानकीप्रसाद को यह तो सोचना चाहिए था कि उस प्रान्त में इसका

कौन था। इसको तो एकमात्र मेरा ही बल था। दूसरे यह ब्राह्मण और साधू है तथा उस प्रान्त में विदेशी भी है। ये सब बातें सोचकर ही मैं इसके साथ यहाँ चला आया। यदि मैं भी इसका साथ छोड़ देता तब तो यह जन्मभर के लिये मुझसे अलग हो जाता और दुनिया यह कहती कि मैंने अमीरों का ही साथ दिया। इसलिये हम सभी को एक-दूसरे का लिहाज रखना चाहिये और कभी आपस में कुछ खटपट हो भी जाय तो भाई-भाई की तरह फिर मिल जाना चाहिए। खैर, जो हुआ सो हुआ। अब आपस में पहले से भी अधिक प्रेम रखो।'

तब सब लोगों ने आपसे बाँध पर चलने के लिये प्रार्थना की आप बोले, 'इसका उत्तर मैं सोचकर दूँगा।' पीछे आपने अकेले में हम सब को बुलाया और मुझसे कहा कि ये सब लोग बाँध पर चलने को कहते हैं, क्या करना चाहिए? मैंने कहा, 'जैसा आप उचित समझें।' आप बोले, अब तू झगड़ा तो नहीं करेगा?' ऐसी ही कुछ और बातें करके आपने शिवपुरीवालों को सन्तुष्ट किया और फिर बाँध का काम जरूरी समझकर वहाँ को प्रस्थान किया। जब तक बाँध पर चलने का निश्चय नहीं हुआ तब तक लाला चन्द्रसेन ने तो भोजन भी नहीं किया।

बाँध पर पहुँचकर ज्येष्ठ के दशहरा तक आपने सतरह क्राँस बाँधों की ठोकरों को कंकड़ लगाकर पूरा कर दिया। इसके पश्चात् बरसात में नाले पर पूर्व की ओर पटरी बनायी। इस नाले में बीस वर्ष से बराबर ही गंगाजी की धारा बहती थी। अतः पूर्व की ओर निरन्तर जल चूते रहने से बाँध के पास बड़ा दलदल हो गया था, जिसमें कहीं-कहीं तो कमर तक आदमी धँस जाता था पटरी बनने से उधर चलना-फिरना निरापद हो गया तथा दलदल को भी मिट्टी डालकर सुखा दिया गया।

इस प्रकार जब आषाढ़ मास में गंगाजी खूब जोरों से चढ़ी और बाँध के भीतर सर्वत्र जल ही जल दिखाई देने लगा तब मुरारीलाल आदि मस्तिष्क प्रधान व्यक्तियों को भी विश्वास हो गया कि हाँ, बाँध के काम में सफलता हो गयी। फिर तो वे लोग भी काम में लग गये, जो पहले भौहें नचा-नचाकर कहते थे कि हमारे विचार से तो इतनी जल्दी बाँध बन नहीं सकता। इतने थोड़े
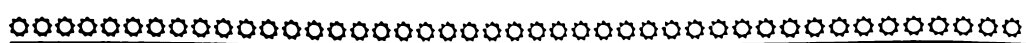
समय में तो यह काम होना सर्वथा असम्भव है। उस पटरी के काम में तो मैंने ला. गुलाबराय, मुरारीलाल और कुँवर इन्द्रसिंह आदि बुद्धि प्रधान व्यक्तियों को भी घुटनों तक दलदल में सने हुए कुलियों की तरह महाराजजी के साथ काम करते देखा है। काम के साथ-साथ आपका नामघोष और जनता का जयघोष भी निरन्तर चलता था।

वास्तव में भगवत्प्राप्त महापुरुषों का प्रभाव मानव की प्राकृत बुद्धि कुछ भी नहीं समझ सकती। यह बुद्धि तो इस स्थूल शरीर के अंगावयव, उनकी क्रिया प्रतिक्रिया और अनुकूलता प्रतिकूलताओं को समझने में भी असमर्थ है। इससे आगे तो समष्टि स्थूल जगत् है, उसके तत्व और रहस्य को हृदयंगम करना तो और भी कठिन है। आज भौतिक विज्ञान के मध्याह्नकाल में भी न जाने कितने वैज्ञानिक रहस्य अभी मानव मस्तिष्क की पहुँच से परे पड़े हुए हैं। इससे भी बहुत आगे कर्मविपाक के सूक्ष्म रहस्यों का विज्ञान है। इस प्रकार जो लोग इस प्रकृति चक्र के रहस्य को ही नहीं समझ सकते वे उन महापुरुषों की लीलाओं को कैसे जान सकते हैं जो माया के राज्य से ऊपर उठकर त्रिगुणातीत, स्थितप्रज्ञ या ब्रह्मबित् आदि नामों से परिचित परमपद पर प्रतिष्ठित हो चुके हैं। उनकी लीलाएँ सर्वथा अचिन्त्य होती हैं, बुद्धि की शक्ति वहाँ कुण्ठित हो जाती हैं, अत: उनके विषय में तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिये।

'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।'

हमें तो नतमस्तक होकर उन महापुरुषों के श्रीचरणों में सब प्रकार आत्म-समर्पण ही कर देना चाहिये। तभी उनकी लीला का कुछ मर्म हृदयंगम हो सकता है। सन्त श्रीचरणदासजी कहते हैं -

जाति वरन कुल आश्रम, मान बड़ाई खोय।
जब सद्गुरु के पग लगै, साँचा शिष है सोय ।।'

जो इस प्रकार सन्त सद्गुरु या श्रीभगवान् के चरणों में आत्म-समर्पण कर देते हैं वे ही सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। रसिक भक्त श्रीव्यासजी कहते हैं-

'काहु के बल भजन को, काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुँवरि के, सोवत पाँव पसार॥'

अत: जो जीव भगवत्शरण हो जाता है, वही कृतकृत्य है, उसी का जीवन सफल है और वही मुक्ति का अधिकारी है। श्रीमद्भागवत में कहा है-

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवते यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥'

अस्तु। इस प्रकार वर्षा आरम्भ होने से पहले ही बाँध का सारा आवश्यक कार्य समाप्त हो गया। किन्तु यह बाँध का बाँधना तो एक निमित्तमात्र था। अवश्य इससे जनता-जनार्दन की भी बहुत बड़ी सेवा हुई। परन्तु आपका प्रधान उद्देश्य तो इसके द्वारा सर्वसाधारण में भगवन्नाम का प्रचार करना ही था। आप जिस गाँव में भी जाते थे सबसे पहले वहाँ लोगों के साथ कीर्तन ही करते थे और उन्हें उपदेश देते थे कि दोनों समय सब लोग मिलकर एक-एक घण्टा कीर्तन किया करो। इस तरह गाँव-गाँव में कीर्तन का खूब प्रचार हुआ। सब लोग नियम से कीर्तन करने लगे। इसके सिवा अपना-अपना काम-काज करते हुए भी भगवन्नाम लेने लगे। इस प्रकार गाँव शहर, जंगल सभी जगह हरिनाम की धूम मच गयी।

बस, उस समय गंगाजी की बाढ़ तो बँधने रोक दी, किन्तु उसके साथ नामकीर्तन की एक ऐसी विचित्र बाढ़ आयी कि जिसमें लोगों के पाप, ताप तथा ऐहिक और पारलौकिक चिन्ता रूपी सारा कूड़ा-करट बह गया। सर्वत्र एक प्रेम की नदी उमड़ चली। वह चालीस कोस लम्बा और बीस कोस चौड़ा सारा खादर प्रान्त साक्षात् नवद्वीप ही बन गया। अथवा जिस प्रकार श्रीश्यामसुन्दर ने इन्द्र के कोप से पीड़ित व्रजधाम को गिरिराज उठाकर बचाया था उसी प्रकार श्रीमहाराजजी ने बाँध बनाकर खादर प्रान्त को सुखी कर दिया और वहाँ के निवासियों को नाम कीर्तनरूप नौका पर चढ़ाकर इस घोर भवसागर से पार उतार दिया। वहाँ के सभी लोग श्रीहरिनाम के अचिन्त्य प्रभाव को अनुभव करके आनन्दसागर में निमज्जन करने लगे। यह बात सभी के
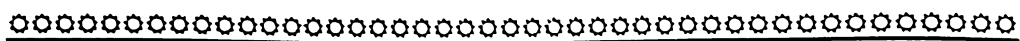
अनुभव में आ गयी कि बाँधरूपी कल्पतरु की छाया में रहकर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों ही पदार्थों की प्राप्ति अत्यन्त सुगम है। अतः सब लोगों ने अन्य सब आश्रयों को त्यागकर सरल चित्त से श्रीहरिनाम और बाँध भगवान् की ही शरण ली। इससे सकाम पुरुषों की कामनाएँ पूर्ण हो जाती थीं और जो भगवत्प्रेम के लिये बाँध की सेवा करते थे उन्हें विशुद्ध प्रेम की प्राप्ति होती थी। इस प्रकार बाँध सभी के लिये सचमुच वांछाकल्पतरु बन गया था।

बाँध रचना के बाद

बाँध का मिट्टी का काम तो चैत्र शुक्ला अष्टमी को समाप्त हो गया था उसके बाद ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तक कंकड़ों द्वारा सतरह ठोकरों के मुँह बनाये गए। इनमें कुछ ठोकरें तो छोटी थीं, किन्तु प्रायः दस बहुत बड़ी थीं। कंकड़ों का मुख्य काम तो ज्येष्ठ के दशहरा तक समाप्त हो गया, किन्तु थोड़ा-थोड़ा काम तो बरसात भर चलता रहा। आश्विन में दशहरा से शरत्पूर्णिमा तक आपने बाँध का उत्सव किया। इन उत्सवों में प्रधानतया चार प्रोग्राम रहते हैं।

१. अखण्ड कीर्तन - आरम्भ के उत्सवों में चौबीस घण्टे का अखण्ड कीर्तन रहता था, फिर तीन दिन का, उसके पश्चात् सात दिन का और फिर क्रमशः बढ़कर दो सप्ताह या एक मास का अखण्ड कीर्तन रहने लगा। इन अखण्ड कीर्तनों में कीर्तन-मण्डल में कम से कम ग्यारह आदमी हर समय महामन्त्र का कीर्तन करते रहते हैं। इनके सिवा प्रातः सायं और मध्याह्नकाल में एक-एक घण्टे बड़ी धूमधाम से स्वयं श्रीमहाराजजी समष्टि कीर्तन कराते हैं।

२. रासलीला - इसका समय प्रायः ८ बजे से ११ बजे तक रहता है। रासलीला तो ब्रजवासियों की मण्डलियों द्वारा जगह जगह होती है। किन्तु

जो भाव और रस की निष्पत्ति आपकी सन्निधि में होने वाली लीलाओं में होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसका प्रधान कारण यही है कि स्वयं बड़े भाव और श्रद्धा से लीलादर्शन करते हैं। सबसे पहले जब आप रासमण्डप में पधारते हैं तो ठाकुरजी को साष्टांग दण्डवत् करके स्वयं ही स्वरूपों को मालाएँ धारण कराते हैं। और फिर जितनी देर लीला होती है निरन्तर खड़े रहकर श्रीठाकुरजी पर शीतकाल में चँवर और गर्मियों में पंखा डुलाते हैं। स्वरूपों में आपका साक्षात् भगवद्भाव रहता है। उनके सामने निरन्तर नीची ही दृष्टि रखते हैं, कभी आँख उठाकर नहीं देखते। वास्तव में यह रासलीला बड़ा ही गहन विषय है। इसे देखने का हर किसी को अधिकार नहीं है। जो लोग श्रीराधाकृष्ण को सामान्य स्त्री-पुरुष मानते हैं वे तो इस लीला को देखकर अपने लिये नरक का ही द्वार खोलते हैं। वास्तव में गोपी किसी स्त्री का नाम नहीं है और कृष्ण किसी पुरुष को नहीं कहते। जब तक मन में स्त्री-पुरुष का भेद बना हुआ है तब तक जीव इस दिव्यचिन्मयी भगवल्लीला के दर्शन या चिन्तन का अधिकारी नहीं हो सकता। जो जीव अपने गो-इन्द्रियग्राम द्वारा निरन्तर भगवद्रस का पान करता है वही गोपी है और उनके इन्द्रियग्राम को आकर्षित करने वाले विशुद्ध चिन्मय श्रीभगवान् ही 'कृष्ण' हैं। गोपीभाव प्रेम का चरम उत्कर्ष है और जिसे यह पवित्र भाव प्राप्त है वही इस चिन्मय रस स्वरूपा रासलीला के दर्शन का अधिकारी है।

३. कथा एवं प्रवचन - रास और मध्याह्न कीर्तन के पश्चात् भोजन और विश्राम के लिये अवकाश रहता है और फिर दो बजे से पाँच बजे तक शीतकाल में तथा तीन से छः तक ग्रीष्मकाल में कथा एवं प्रवचन का प्रोग्राम रहता है। इस समय आज-कल के कथक्कड़ या वावदूकों के लोकरंजनकारी लच्छेदार कथा-व्याख्यान नहीं होते, बल्कि आपके यहाँ तो सर्वथा उच्चकोटि के विद्वान्, सन्त और साधकों के ही प्रवचन होते हैं। उनमें शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म मीमाँसा की जाती है अथवा भगवान् की दिव्य एवं मधुर लीलाओं का या महापुरुषों के उदार एवं आदर्श चरित्रों का वर्णन किया

जाता है। इनके बीच-बीच में भक्त एवं प्रेमी गायकों द्वारा सुन्दर-सुन्दर पदों का गान अथवा बाहर से आयी हुई मण्डलियों द्वारा पदकीर्तन भी होते रहते हैं।

४. भक्तलीलायें - कथा एवं प्रवचन के पश्चात् कुछ अवकाश रहता है। उसमें सब लोग अपने सायंकृत्य से निवृत होते हैं। फिर प्रय: एक घण्टे समष्टि कीर्तन होता है और उसके बाद रात्रि में एक या डेढ़ घण्टा भक्तलीलाओं का अभिनय किया जाता है। इनमें आप ही के परिकर के कुछ भक्तजन किसी उपदेशप्रद कथाप्रसंग का अपने ग्रामीण ढंग से अभिनय करते हैं। इसका प्रधान उद्देश्य कुछ मनोरंजन और सर्वसाधारण के लिये व्यावहारिक उपदेश देना होता है। इन लीलाओं में अधिकतर भगवन्नाम, सन्तसेवा या श्रद्धा विश्वास का माहात्म्य ही प्रदर्शित किया जाता है।

ये उत्सव समयानुसार तो कई बार हुए ही हैं, किन्तु बाँध बन जाने के बाद होली के अवसर पर तो प्राय: प्रत्येक-वर्ष ही श्रीमन्महाप्रभुजी की जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक होते रहे हैं कभी-कभी तो शिवरात्रि से राम नवमी तक निरन्तर ही न्यूनाधिकरूप में यही उत्सव का प्रोग्राम चलता रहा है।

अस्तु! इस बार का उत्सव समाप्त होते ही आपका चित्त भीड़-भाड़ से उपराम हो गया और आपने नवद्वीप जाने का निश्चय किया। ऐसा प्राय: प्रत्येक उत्सव के पश्चात् होता है। फिर तो आप दो-चार महीने के लिये अवश्य ही एकान्त सेवन करते हैं। कभी भगवदाज्ञा❀ से भले ही किसी कार्य में प्रवृत्त हो जायँ। इस बार आप अकेले ही नवद्वीप जाना चाहते थे, किन्तु फिर हम लोगों के विशेष प्रार्थना करने पर आपने भोलेजी को साथ ले लिया।

❀ यह भगवदाज्ञा की बात भी बड़ी रहस्यपूर्ण है। भीतर से आपको किसी प्रकार की भगवदाज्ञा होती हो सो तो आप ही जानें। प्रत्यक्ष में तो यही होता है कि जिस समय जो जो विकल्प आपके सामने होते हैं उन्हें अलग-अलग कागजों पर लिखकर उनकी गोलियांसी बनाकर भगवद्विग्रह के सामने रख देते हैं। फिर कीर्तन भजन के द्वारा उनमें से एक गोली उठवा लेते हैं। उसमें जो बात लिखी होती है उसी को भगवदाज्ञा मानते हैं।
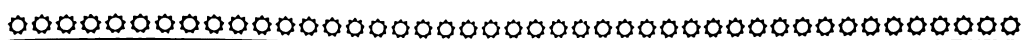
आपके नवद्वीप को प्रस्थान करने पर मैंने लाला कुन्दनलाल के साथ जाकर पिछला चन्दा बसूल किया और बाबू हीरालालजी, पण्डित हरियशजी, रामेश्वरप्रसाद, भाईसिंह और पण्डित छेदालालजी ने बाँध की मरम्मत करायी। आरम्भ में बाँध केवल बालू ही बालू का था केवल नाले पर ही मिट्टी डाली गई थी। पीछे कहीं छः फुट और कहीं आठ फुट नीचे से पुरानी मिट्टी निकाल कर उसके ऊपर तथा इधर-उधर डाली गयी। फिर उस पर पानी छिड़कर उसे कूट-कूट कर पक्का किया गया तथा दूर-दूर से दूब घास लाकर उसकी खूँटियाँ लगायी गयीं, जिससे घास जम जाने पर बाँध और भी मजबूत हो जाय। जहाँ-जहाँ पानी का विशेष जोर रहने की सम्भावना थी वहाँ बरसात के पहले ही खूंटे गाड़कर झाऊ के बीड़े लगा दिये जाते थे तथा बरसात भर हजारों आदमी मरम्मत करते रहते थे। इसके सिवा सारे बाँध पर इधर-उधर सेंठे के झुण्ड लगाये गये तथा दूसरे साल बाबूजी ने परिश्रम से सारे बाँध पर शीशम, नीम तथा दूसरे प्रकार के वृक्ष लगाये। बाबूजी का तो बाँध के प्रति बहुत ही ऊँचा भाव था। वे तो जिस क्रॉस बाँध पर श्रीमहाराजजी की कुटी थी उस पर कभी जूता पहनकर भी नहीं चलते थे। बांध के पैसे को वे इतना सँभाल कर खर्च करते थे कि उसके हिसाब में कभी एक पैसे की भी चूक नहीं पड़ती थी। उन्होंने अपने ही पास से हजार दो हजार रुपये लगाकर एक सिरौली के वैश्य मक्खनलाल से बाँध पर दुकान खुलवा दी थी, जिससे वहाँ आने-जाने वालों को उचित मूल्य पर ठीक सामान मिल जाये। आपके अपने भण्डार का काम भी उसी दुकान से चलता था। बाँध पर हजारों रुपये का सामान था। उसकी रक्षा भी आप प्राणपण से करते थे। हम लोग तो इस काम में सदा अधूरे ही रहे।

इधर, श्रीमहाराजजी के नवद्वीप चले जाने पर रामेश्वर की विरह-व्यथा इतनी बढ़ी कि वह मछली की तरह तड़पने लगा। उसे न तो भोजन ही रुचता था और न नींद ही आती थी। मैं निरन्तर उसकी सँभाल रखता था किन्तु जब मैं भी चंदा करने चला गया तब तो वह निरन्तर ही रोता रहता था। कभी-कभी
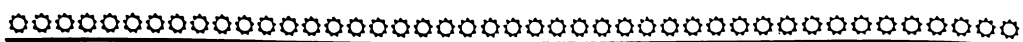
तो रोते-रोते मूर्च्छित हो जाता था और कभी तन्मयता को प्राप्त होकर श्रीमहाराजजी के आवेश में ठीक उन्हीं की तरह आसन लगाकर बैठ जाता तथा उन्हीं की तरह बोलने लगता था। उस अवस्था में वह हम लोगों के नाम उसी प्रकार लेने लगता था जैसे कि श्रीमहाराजजी लेते थे तथा हम लोगों के चित्तों के अनेकों संकल्पों के भी यथोचित उत्तर देता था। यही नहीं जिसके लिये जैसा आवश्यक होता था वैसा आदेश भी कर देता था। उस समय हम लोगों को रंचकमात्र भी सन्देह नहीं होता था कि ये श्रीमहाराजजी नहीं है। हम उन आज्ञाओं का यथावत् पालन करते थे तथा और भी जो आवश्यक होता था पूछ लेते थे। उन सब बातों का हमें ठीक उत्तर मिल जाता था। उसी अवस्था में आप रामेश्वर के सम्बन्ध की भी बहुत-सी आवश्यक बातें बता जाते थे 'यह पागल जैसा है। इसका चित्त बहुत कोमल है। इसका कोई वश नहीं है। इसे सँभालकर रखना। मुझे इसकी बहुत चिन्ता रहती है। मैं तो इसे निरन्तर देखता रहता हूँ। किन्तु यह मुझे नहीं देख पाता। इसीसे दुःखी हो जाता है। इत्यादि।

एक दिन माघ के महीने में महाराजजी के विरह में रोता हुआ रामेश्वर नंगे शरीर से ही गंगा किनारे चला गया और न जाने कहाँ-कहाँ डोलता रहा। पीछे प्राय: चार बजे लौटकर आया। उस समय वह आवेश में था। आते ही पूछा,'यहाँ कौन-कौन हैं?' तब भाईसिंह ने उससे पूछा,'मुझे जानता है, मैं कौन हूँ।' उसने कहा,'तू भाईसिंह है और मुझे तो तू जानता ही क्या है?' फिर आवेश में ही सबके नाम लेकर पुकारा। हम सब दौड़कर आये। तब बड़ी शान्ति और गम्भीरता से सबको समझाते हुए कहा,'भाई! इस समय घोर कलियुग है। 'कलहं कलिलक्षणम्'-कलह ही कलियुग का लक्षण है। इसलिये सबको बड़े प्रेम से मिलकर रहना चाहिये। यह ललिताप्रसाद अब रामेश्वर से बहुत उपराम हो गया है। इसलिये यह काम छोड़कर भागना चाहता है। भाई! मायिक विघ्नों से डरकर भगवत्सेवा से वंचित रहना तो बड़ी भारी भूल है। ऐसा करने से मनुष्य अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाता है। हाँ, तुम्हारे आपस के सम्बन्ध में जो कुछ मायिक अंश आ गया है उसे बड़ी हिम्मत करके निकाल

देना चाहिये।❀ क्या नाक में फुन्सी होने से नाक को ही कटवा देते हैं। चेष्टा तो फुन्सी को ही ठीक करने की की जाती है। इस समय तुम्हारे यहाँ से जाने पर सब लोग उदास हो जायँगे और बाँध के काम में भी बाधा पड़ेगी। इसलिये बड़े धैर्य से अपने-आपको सँभालकर तत्परता से काम में लगे रहना चाहिये। इसका क्या, यह तो पागल है। दूसरे वे समझ है, बालक है, इसलिये इसकी बात का ध्यान नहीं करना चाहिये।'

बस, मुझे नतमस्तक होकर आपकी आज्ञा माननी पड़ी। और मैंने फिर बाँध का काम आरम्भ कर दिया; नहीं तो मैं कहीं चुपचाप भाग जाने की बात सोच रहा था। आवेश के द्वारा कही हुई बात का तो प्रत्यक्ष की अपेक्षा भी अधिक प्रभाव पड़ता था। उस समय किसी को भी उसमें कुछ दखल देने का साहस नहीं होता था।

कुछ दिन पश्चात् रामेश्वर ने नवद्वीप जाने का विचार किया। बहुत रोकने पर भी वह न रुका। तब मैंने खर्चा देकर निजामपुर के श्रीराम को साथ कर दिया। किन्तु उसे वहाँ कहीं श्रीमहाराजजी के दर्शन न हुए। वह पन्द्रह दिन तक नवद्वीप तथा दूसरे कुछ स्थानों में घूमकर लौट आया। वहाँ से लौटने पर एक दिन अकस्मात् सुना कि श्रीमहाराजजी अनूपशहर आ गये हैं। बस, वह उसी समय पागल की तरह दौड़ा। अनूपशहर पहुँचने पर उसने सुना कि बाहर जंगल में घूमने गये हैं। वह उसी ओर भागा। उसे बहुत दूर जंगल में महाराजजी मिले। वह जाते ही लिपट गया और प्रेम का अद्भुत प्रभाव कि दोनों ही मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये। जब बहुत देर में होश हुआ तो उठकर निवास स्थान पर आये और दूसरे दिन बाँध पर चले आये।

❀ **इस समय रामेश्वर के प्रति मेरी कुछ आसक्ति-सी हो गयी थी, इसलिए मैं उससे पीछा छुड़ाने के लिये भागना चाहता था। —लेखक**

विघ्नों के बादल

ऐसा कोई शुभकर्म नहीं होता जिसमें कोई विघ्न उपस्थित न हो और ऐसी कोई प्रवृत्ति नहीं होती जिसे विरोधका सामना न करना पड़े। किन्तु इन विघ्न-विरोधों से उदारचेता महापुरुषों की कीर्तिकौमुदी और भी अधिक उज्ज्वल हो जाती है। शरद ऋतु के बादल आते हैं और चले जाते हैं; उनके कारण क्या प्रभाकर के प्रखर प्रताप में कोई अन्तर आता है? इसी प्रकार महापुरुषों के उदार कर्मोंको विरोधके क्षुद्र बादल किसी प्रकार क्षति नहीं पहुँचा सकते।

बाँध हमारे श्रीमहाराजजी की सुयश-पताका है। इसे उखाड़ने के लिए भी एक बार विरोधका बवण्डर उठा। किन्तु उससे तो वह और भी लहर उठी। सन् १९९२ में बाँध तैयार हुआ। उसके दूसरे वर्ष वैशाखमास में रेलवे और नहरके अधिकारियोंने गवर्नमेन्ट को रिपोर्ट भेजी कि जीवपुर से राजघाट तक बीस मील लंबा जो बाँध श्रीहरिबाबाजी ने बाँधा है उससे बाढ़ के समय रेलवे और नहरको क्षति पहुँचनेकी सम्भावना है। अतः इसको या तो दो-चार जगह से कटवा दिया जाय या इसकी ऊँचाई कम कर दी जाय। इस पर भारतसरकार की स्वीकृति आ गयी और इसकी जाँच करने के लिए ट्रेफिक मैनेजर, चीफ इञ्जिनियर, बरेली डिविजन के कमिश्नर और जिला बदायूँके कलक्टर आदि कुछ अफसर आये। उनके साथ कुछ पुलिस भी थी। बाँध पर बड़े-बड़े डेरे लग गये। वहाँके रईसोंने उनका यथोचित सत्कार किया।

किन्तु श्रीमहाराजजी तो इसके एक दिन पहले ही स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी एम.ए. को अपना प्रतिनिधि बनाकर चंदा करने के लिए चले गये और सबसे कह गये कि मुझे किसीके कहने पर भी मत बुलाना। स्वभावसे जैसी कुछ भगवदिच्छा हो वही ठीक है। इधर सारे देहातमें हल्ला मच गया कि अंग्रेज लोग बाँध तोड़नेके लिए आ रहे हैं। इतनी बातसे ग्रामीण लोगोंमें उत्तेजना बढ़ गयी और उनमें तरह-तरहकी चर्चा होने लगी। वे बड़े जोश में भरकर कहने लगे कि जबतक हमारे दममें दम है तब तक तो हम कालको भी बाँध से हाथ

नहीं लगाने देंगे। बस, जिस दिन ये लोग बाँध पर पहुँचे उसी दिन गाँव-गाँवसे यूथ के यूथ पुरुष लाठियाँलेकर इकट्‌ठे हो गये और वहाँ प्राय: दसहजार लठैतोंकी भीड़ जमा हो गयी।

जिस समय वे लोग बाँध पर घूम रहे थे। जनताने बड़ा कोलाहल किया कि मारो, पकड़ो, इन दुष्टोंको। ये हमारा बाँध तोड़नेके लिए आये हैं। गवारोंकी हूँ; कौन किसको समझावे? तब अंग्रेज हाकिमोंने हिन्दुस्तानी अफसरों से पूछा कि ये सब क्या चाहते हैं। उन्होंने सारी परिस्थिति समझायी तब तो वे बहुत घबराये और उन्होंने अंग्रेजी में स्वामी कृष्णानन्दजी से कहा कि आप इन्हें समझा दीजिए। हम बाँध तोड़ने के लिए नहीं केवल देखने के लिए आये हैं। आप किसी प्रकार का हल्ला-गुल्ला न करें। इस पर स्वामीजी ने समझाकर सब लोगों को शान्त कर दिया। कहते हैं, मोहलनपुर की एक बुढ़ियाने तो कलक्टर साहब का घोड़ा पकड़ लिया था और उन्हें बीसियों गालियाँ सुनायी थीं। तब तहसीलदार के द्वारा कलक्टर साहब ने उसे समझाकर शान्त किया।

इस प्रकार बाँध पर इधर-उधर घूमकर सब लोग एक पण्डाल में विचार करने के लिए बैठे। उनके आस-पास सारी ग्रामीण जनता भी बैठ गयी। उस कमीशन में गवर्नमेण्टके प्रधान प्रतिनिधि कमिश्नर साहब ही थे। उन्होंने रेलवे और नहर के कर्मचारियों को फटकारते हुए कहा, 'बाँधके द्वारा रेलवे या नहर को कोई हानि पहुँचेगी—ऐसा सोचना तो गलती है। वास्तव में यह काम तो आपको या हम लोगोंको ही करना चाहिए था। सो ऐसा न करके यदि एक साधु ने यह लोकोपकारी कार्य कर डाला तो इसका विरोध करना तो हमारी भूल ही है। मेरे विचारसे तो इसके द्वारा सब प्रकार लाभ ही होगा। इसके कारण गुन्नौर और सहसवान की दो तहसीलें बाढ़से सर्वथा सुरक्षित हो गयी हैं। अत: वहाँ की सारी जनता सुखी हो जायगी और इस प्रान्तमें पैदावार अच्छी होनेसे मालगुजारी में वृद्धि होगी। अत: मेरे विचार से तो आप लोगों को बाँध के विरुद्ध किसी प्रकार की आपत्ति नहीं करनी चाहिए और श्रीहरिबाबाजी के

उत्साह एवं साहसकी प्रशंसा करते हुए यथाशक्ति उनकी सहायता करनी चाहिए।' फिर जनताकी और अभिमुख होकर आपने श्रीमहाराजजी की प्रशंसा करते हुए उन्हें धन्यवाद दिया तथा उनके प्रति जनताकी जो श्रद्धा थी उसकी प्रशंसा करते हुए आश्वासन दिया कि हम तुम्हारे बाँधको तोड़ेंगे नहीं, वरन् उसकी रक्षा करेंगे। इसके पश्चात् कलक्टर, ट्रेफिक मैनेजर और चीफ इंजीनियर ने भी अपने-अपने भाषणों द्वारा कमिश्नर साहब के विचारोंका अनमोदन किया।

इसके पश्चात् उन्होंने स्वामी कृष्णानन्दजी से प्रार्थना की कि आप हमें श्रीहरिबाबाजीके दर्शन करायें तथा उनका कुछ इतिहास भी बतानेकी कृपा करें। इसके सिवा उन्होंने स्वामीजी से वहाँकी जनताको भी शान्त करने का अनुरोध किया। जनता के जोशको देखकर वे लोग सचमुच घबरा गये थे। तब श्रीस्वामीजी ने खड़े होकर मुक्तकण्ठसे महाराजजीकी महिमा का वर्णन किया। उसे सुनकर वे लोग मुग्ध हो गये। फिर आपने बतलाया कि साधु लोग तो उन्हींसे मिलते हैं जो संसारसे ऊबकर परमात्माकी शरणमें जाना चाहते हैं। मैं भी केवल उनकी आज्ञासे ही आप लोगों का स्वागत करना अपना कर्तव्य समझकर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। इसके सिवा आपने श्रीमहाराजजी की कुछ अलौकिक शक्तियों का भी वर्णन किया, फिर बाँधका मूलकारण और स्वरूप समझाया तथा जनताका महाराजजीके प्रति कितना प्रेम है—यह भी बतलाया। अन्तमें कुछ कड़े शब्दों में रेलवे तथा नहरके कर्मचारियोंकी समालोचना करते हुए आपने अपना भाषण समाप्त किया। आपका भाषण बड़े ही ओज, साहस और योग्यता से पूर्ण था उसे सुनकर सभी लोग मुग्ध हो गये। इस प्रकार एक घण्टे तक अंग्रेजी में भाषण देकर फिर आपने हिन्दी भाषा में जनताको समझाया तथा उनके साहस और उत्साहकी प्रशंसाकी।

स्वामीजी के भाषणका समागत सभ्यों पर अच्छा प्रभाव पड़ा तथा कमिश्नर साहबने महाराजजी एवं स्वामीजीकी प्रशंसा करते हुए अपनी प्रसन्नता प्रकट की। फिर उन्होंने स्वामीजी से जानेके लिए आज्ञा माँगी और

परस्पर अभिवादनादि के पश्चात् सभा विसर्जित हुई। जनता ने आकाशव्यापिनी तुमुलध्वनि से 'श्रीहरिबाबाजी का जय' का घोष किया सबका विषाद निवृत्त हो गया सर्वत्र प्रसन्नता छा गयी।

इसके पश्चात् श्रीमहाराजजी चन्दाका काम करके लौटे। तब स्वामीजीने संक्षेपमें आपको सब हाल सुनाया। आपने पटरी तथा बाँधकी दोनों ओर से खूब मरम्मत की और कंकड़की ठोकरोंको भी पुष्ट किया। अब बाँध सब प्रकार सुदृढ़ हो गया। तब आपने पंजाब को प्रस्थान किया। मुझे शिवपुरी जाना था। किन्तु रामेश्वर एक मिनट के लिए भी मुझे नहीं छोड़ता था। इसलिए वह भी मेरे साथ ही गया। बाँधपर लाला कुन्दनलाल जी तथा और भी दस-बीस आदमी रहे।

सन् १९२४ की बात है। वर्षाऋतु बीतजाने पर आश्विन में अकस्मात् बड़ी भारी वर्षा हुई। आठ दिनतक मूसलाधाार पानी पड़ता रहा। उसी वर्षामें बाँधपर पहुँचने के लिए हमलोग राधेश्यामके हाथी पर चढ़कर विशारतगंज स्टेशन गये। कुछ बरेलीका भी काम था। वहाँ उसे पूराकर दूसरे दिन सवेरेकी गाड़ीपर बैठने के लिए टिकट लेकर गये तो हमोर पहुँचने से पहले ही गाड़ी छूट गयी। किन्तु हम ज्योंही लौटकर पुलपर चढ़े कि गाड़ी गंगातटसे लौटती दिखायी दी। दैवयोगसे उसी समय रामगंगामें इतनी बाढ़ आ गयी थी कि रेलवे लाइनपर दो-दो फुट पानी हो गया और गाड़ी बड़ी कठिनता से स्टेशन तक लौट कर आयी। हम लोग स्टेशनमास्टरके पास गये तो उन्होंने बताया कि मुरादाबाद और बदायूँ होकर जो लाइनें गंगा पार जाती हैं वे भी टूट गयी हैं। तब मैंने पूछा, 'क्या हम लोग किसी भी मार्गसे बाँधपर पहुँच सकते हैं?, उन्होंने देख-भालकर बताया कि हाँ, आप लोग कानपुर होकर अलीगढ़ और डिवाई होते हुए अनूपशहर जाइये। वहाँसे नौकाद्वारा बाँधपर पहुँच सकते हैं। यह लाइन अभी तक सुरक्षित है।

बस, हम लोगों ने अब एक-एक रुपयाके बजाय आठ-आठ रुपये का टिकट लिया और बड़ी लाइन द्वारा कानपुर में गंगाजी को पार किया। किन्तु

जैसे ही हमारी गाड़ी उस पार पहुँची कि वह पुल भी टूट गया। उस समय सारी ही नदियों में बड़ी भीषण बाढ़ आयी हुई थी। हम लोग जैसे-तैसे घूम फिरकर अनूपशहर पहुँचे तो देखा कि आधे शहर में पानी भरा है और प्राय: आठ दिन से नौकाओंका यातायात बिल्कुल बन्द है। वहाँ से गंगाजी की ओर देखनेपर जल-प्रलय का-सा दृश्य दिखाई देता था।

हम लोगों ने समझा कि हमारा बाँध तो इस भीषण बाढ़ में बताशे की तरह घुल गया होगा। भला एक सालका बँधा हुआ बालूका बांध इसके सामने क्या ठहर सकता है? नवें दिन नौकाएँ उस पार को गयीं और उस ओर के जो लोग इधर घिर गये थे उन्हें पार किया। उन्हीं के द्वारा हमने बाँध पर लाला कुन्दनलाल को सूचना दी कि बाँध की नावों में से एक नाव हमारे लिऐ अनूपशहर भेज दें, बाँध पर अपनी दो नौकाएँ थीं। लाला जी ने सूचना मिलते ही मल्लाहों का प्रबन्ध कर एक नाव दूसरे ही दिन भेज दी। उसमें बैठकर हम लोग सारे दिन में बाँध पर पहुँचे। वहाँ का दृश्य बड़ा ही विचित्र था। बाँध के दोनों ओर पानी भरा हुआ था और उसके बीच में एक बाँकी-टेढ़ी रेखा के समान बाँध दिखायी देता था। उस समय पानी बहुत उतर चुका था। तथापि उसका चिन्ह तो बना ही हुआ था।

वहाँ पहुँचने पर लाला जी ने बताया कि महाराज! क्या कहें, हमें तो ऐसा कष्ट जीवन भर नहीं देखना पड़ा। हम तो जीवन से निराश हो चुके थे और अपना आवश्यक सामान एक नाव में भरकर उसी में बैठे थे। आठ दिन हम नौका में ही रहे। बाँध के दोनों ओर ठीक किनारों तक पानी भरा हुआ था। उधर हमारे बाँध के ऊपर जो नहरवालों का बाँध था वह टूट गया। अत: बाँध तक नदी में जल भर गया और गवाँ का रास्ता बन्द हो गया। इधर गंगा जी ठीक किनारे तक भरी हुई थीं। जब हिलोरें आती थीं तो बाँध का ऊपरी भाग आधा भीग जाता था यदि दो अंगुल भी पानी और बढ़ जाता तो ऊपर से निकलकर बाँध को काट देता और सारा खेल खत्म हो जाता। किन्तु प्रकृति देवी ने पहले ही सब प्रबन्ध ठीक कर दिया और नहर वालों का बाँध तोड़कर

फालतू पानी दूसरी ओर निकाल दिया। इसीसे यह बाँध बच गया और इसके सामने के गाँव भी सुरक्षित रहे, नहीं तो इनमें से किसी गाँव का नाम निशान भी न रहता। यह तो सचमुच वैसी ही लीला हो गयी जैसे श्रीश्यामसुन्दर ने गिरिराज को धारण करके इन्द्रके कोप से ब्रज की रक्षा की थी। यदि आज यह बाँध रूप गिरिराज न उठा होता तो हमारे खादररूपी नववृन्दावन का कहीं पता भी न लगता।

अब सब लोगों को आपकी दूरदर्शिता का पता लगा कि पन्द्रह वर्ष से इस प्रान्त में विचरते रहने पर भी इसी वर्ष आपने बाँध क्यों बाँधा। इससे आपके प्रति लोगों की और भी सौ गुनी श्रद्धा हो गयी तथा सभी नामकीर्तन में निमग्न हो गये। लालाजी तो आपकी इस अद्‌भुत लीला पर बड़े ही मुग्ध हुए। इसके बाद हम लोगों ने मिलकर बाँध की मरम्मत की।

बाबूजी का महाप्रस्थान

बाध की रचना सन् १९२३ के आश्विन मास में पूर्ण हुई। अभी उसका कुछ काम चल ही रहा था कि आगामी फाल्गुन मास में बाबू हीरालालजी हम लोगोंको सदा के लिए छोड़कर ब्रह्मलीन हो गये।

श्रीमहाराजजी के प्रति बाबूजी का जो अलौकिक भाव था उसका उल्लेख यद्यपि कई बार किया जा चुका है, किन्तु वार-वार लिखनेपर भी क्या एक जड़ लेखनी और भावहीन मानवहृदय किसी दिव्य अलौकिक भावका ठीक-ठीक वर्णनकर सकते हैं? इसलिए कई बार लिखने पर भी वह बात अधूरीसी जँचती है। श्रीमहाराजजी में तो उनका अद्‌भुत भाव था ही, वे तो उनसे सम्बन्ध रखने वाले कूकर को भी पूज्य समझते थे। एक समय की बात है, निजामपुर के भक्त गोदीराम के भतीजे जोरावर की बहू को सांप ने काट खाया। वह बड़े दुष्ट स्वभाव की थी और अपने सम्बन्धियों को कीर्तनादि करने से भी रोकती थी, तथापि श्रीमहाराज के भक्त से सम्बन्ध रखने के

कारण बाबूजी ने उसकी अपनी पुत्री के समान सेवा की। वायगियों की मूर्खता से उसकी सारी बाँह सूज गयी और उसे अत्यन्त पीड़ा हुई। तब मैंने सम्भल के एक होशियार जर्राह से उनकी चिकित्सा करायी उसने उसकी बाँह का सारा दूषित मांस काट दिया। तब कहीं उसे चैन पड़ा। इसके बाद वह जर्राह मरहम पट्टी करने के लिये गवाँ से आता रहा। किन्तु अन्त में बाबूजी का विचार हुआ कि उसे गवाँ में ही ले आवें। बस, उसे एक बढ़िया रब्बा में खूब गुदागुदा करके आप गवां ले आये और अपनी निजी पुत्री की भाँति बड़े प्रेम और लगने से स्वयं ही उसकी सारी सेवा की। आप स्वयं ही उसे नहलाते थे, स्वयं उसका सिर धोते थे, स्वयं ही भोजन बनाकर खिलाते थे और स्वयं ही फलादि काट कर देते थे। मैंने कई बार ये सब काम नौकरों से कराने को भी कहा, किन्तु आपने यही उत्तर दिया कि यह सौभाग्य मुझसे क्यों छीनते हो। यह सुअवसर मेरी परीक्षा के लिये ही श्रीमहाराज ने मुझे दिया है। मुझे तो इस रूप में निरन्तर उन्हीं के दर्शन होते है। इस प्रकार प्राय: छ: महीने उसकी सेवा की और निरोग होने पर उसे एक रईस की बेटी की तरह आपने विदा किया। भला, एक गरीब अहीर की लड़की में एक ऐसे साधन सम्बन्न रईस की पूज्य बुद्धि होनी सामान्य बात है।

इसी प्रकार भाईसिंह के साथ भी आप एक अजीव कौतुक कर बैठे। कल्याणपुर में कंकड़ का काम करते समय भाईसिंह आपके साथ रहता था। यह बेचारा गरीब आदमी जाति का अहीर और आयु में बहुत छोटा था। विद्या, बुद्धि, स्वार्थ-परमार्थ सभी में आपसे बहुत नीचा था। किन्तु इस नाते से कि यह श्रीमहाराजजी का सेवक है आप उसमें इतना भाव रखते थे कि एक दिन हम कई लोग पास-पास बैठे भोजन कर रहे थे कि अकस्मात् बाबूजी ने भाईसिंह की थाली में से उसका उच्छिष्ट लेकर खा लिया। यह बेचारा बड़ा लज्जित हुआ। किन्तु आपकी तो उसमें वैष्णव बुद्धि थी और वैष्णवों का उच्छिष्ट खाना विषयी पुरुषों की चित्तशुद्धि का साधन बताया गया है-

'विषयाविष्टमूर्खाणां चित्तसंस्कारमौषधम्।
विश्रम्भेण गुरोर्सेवा वैष्णवोच्छिष्टभोजनम्॥'❀

अतः आपने उसकी जाति आदि का कोई विचार नहीं किया।

कल्याणपुर में रहते-रहते ही बाबूजी बीमार हुए और लिखने-पढ़ने में भी असमर्थ हो गये। तब भाईसिंह ने ही वह काम सँभाला। आप रोग की अवस्था में भी वह सारा काम पूरा करके और भाईसिंह को अच्छी तरह समझाकर बाँध पर आये। धन्य बाबूजी! इस घोर कलिकाल में आप-जैसा स्वामिभक्त क्या फिर भी उत्पन्न हो सकता है?

अब आपकी अवस्था इतनी गाढ़ हो गयी थी कि इस धराधाम पर उन्हें रखने की उनके प्रभु की इच्छा नहीं रही। यवनभक्त हरिदास ने जिस प्रकार स्वेच्छा से श्रीगौरसुन्दर के सामने देहत्याग किया था उसी प्रकार हमारे बाबूजी भी श्रीमहाराजजी के सामने ही अपनी मानवलीला संवरण करना चाहते थे। अतः उनका वह दिव्य अलौकिक भाव ही अब रोगों के रूप में परिणत हो गया और वे मरणासन्न हो गये। किन्तु अब भी उन्हें इतना संकोच था कि यद्यपि श्रीमहाराजजी बाँध पर ही थे, तथापि आप उन्हें अपनी कुटिया तक आने का कष्ट नहीं देना चाहते थे। जब कोई पूछता तो यही कह देते थे कि नहीं, उन्हें कष्ट देने का मुझे क्या अधिकार है। अन्त में जब उनकी अवस्था एकदम गिर गयी तो रामेश्वर दौड़कर महाराजजी के पास गया और उनसे बोला, 'बाबूजी का बिलकुल अन्तिम समय है। एक बार आप चलें।'

बाबूजी उस समय मूर्च्छित प्रायः हो गये थे और न जाने किस कारण उनके मुख से कुछ शब्द निकल रहा था। वे बड़े जोर से कराह रहे थे। उसी समय पश्चिम से बड़ी जोर की आँधी उठी। उसने बाँध की झोपड़ियों में सब छप्पर उथल-पुथल कर दिये, किन्तु जिस छप्पर के नीचे बाबूजी ये वह हिला

❀ **जिन मूर्खों का चित्त विषय में आसक्त है, उनके चित्त की शुद्धि के लिये विश्वास पूर्वक गुरु की सेवा और वैष्णवों का उच्छिष्ट खाना औषधरूप में है।**

तक नहीं। उस आँधी में एक भक्त ने सफेद घोड़ों पर चढ़े हुए दो दिव्य पुरुष बाबूजी की कुटी की ओर आते देखे। जब महाराजजी बाबूजी के पास पहुँचे तब वे प्राय: मूर्च्छित हो चुके थे। महाराजजी ने बड़े जोर से उनके कान में कहा, 'हीरालाल! तुम अपने स्वरूप को स्मरण करो।' ये शब्द कान में पड़ते ही बाबूजी की सारी बैचेनी शान्त हो गयी। उन्होंने आँखे खोलकर श्रीमहाराजजी की ओर देखा और फिर देखते ही रहे। उसी समय उन्हें भूमि पर ले लिया गया। श्रीमहाराजजी ने उनके किसी घरवाले को नहीं आने दिया और बड़े जोर से कीर्तन आरम्भ कर दिया। बस, कीर्तन होते-होते ही उनका दिव्य चिन्मय आत्मा अपने स्वरूप में लीन हो गया। इस प्रकार बाँध भगवान् की सेवा करते-करते उन्होंने अपना तन, मन, धन उन्हीं पर न्यौछावर कर दिया। अपना सारा धन वे पहले ही बाँध में लगा चुके थे। मरने के बाद भी महाराजजी ने उनके पास घर के किसी आदमी को नहीं आने दिया। हाँ, एक रामेश्वर को अवश्य आज्ञा दे दी थी। अत: कतिपय-प्रमुख भक्तों के साथ स्वयं आपने ही उनकी सब क्रिया की।

कीर्तन की तुमुलध्वनि से आकाश गूँज रहा था। श्रीमहाराजजी के साथ सब भक्तों ने मिलकर उनका शव गंगातट पर पहुँचाया। वहाँ स्वयं आपने ही उन्हें गंगास्नान कराया और फिर चिता पर लाकर रखा। उस समय अन्तिम दर्शन के लिये उनका मुँह खोल दिया गया था। इस समय महाराजजी बड़े आवेश में थे। आपने सिंहनाद करते हुए हरिध्वनि की और फिर बाबूजी के गुणों का वर्णन करने लगे, यह भक्त का दिव्यमंगल विग्रह है। इसको स्पर्श करके तो भगवान् भी अपने को धन्य मानते हैं। ये एक दिव्यसंत हैं। इनके दिव्य दर्शन करके आज आप लोग अपना जन्म सफल करें। आज इस प्रान्त का प्रेम सूर्य अस्त हो गया, आज उदारता आदि गुणों का अक्षय भण्डार इस संसार से चला गया। भक्त का शरीर दिव्य एवं चिन्मय होता है। उसे जो पार्थिव मानते हैं वे भक्तद्रोही हैं।
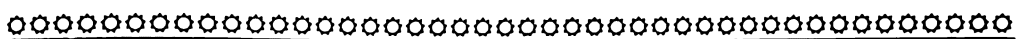
'साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलति तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥'❀

तीर्थो को भी तीर्थ बनाने वाले संतजन ही होते हैं। ये हीरालालजी राख से ढके हुए अंगारे की भाँति भक्ति, ज्ञान, योग और कर्म चारों ही साधना में निष्णात एक उच्चकोटि के संत थे। मैं तो अपने हृदय में इन्हें अपना संरक्षक समझता था। ये मेरे बन्धु, सखा, पिता, माता, पुत्र, सेवक, स्वामी, गुरु और शिष्य सभी कुछ थे। वे परमार्थ में भी मेरे सहायक थे। इस प्रान्त में भी मैं केवल उन्हीं के कारण आया था। इस रामेश्वर के अच्छे होने और इस देश में कीर्तन का प्रचार होने में भी वे ही प्रधान कारण थे। बाँध भी केवल उन्हीं के संकल्प से बँधा था। आज से तो मैं भी निराश्रय हो गया। अब भी उनके जो संकल्प शेष हैं उन्हीं से मैं बंधा हुआ हूँ। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ और यथा सम्भव अवश्व पूरा करूँगा।'

इस प्रकार उस दिन तो प्रायः एक घण्टे तक महाराजजी ने मुक्तकण्ठ से भक्त की महिमा का गान किया। उस समय आपके अलौकिक बचनामृत का पानकर हजारों मनुष्य कठपुतली की तरह स्तब्ध रह गये। उन सभी के नेत्रों से निरन्तर आँसुओं की वर्षा हो रही थी। रामेश्वर तो प्रायः मूर्च्छित हो गया था। आज आपका भक्तवात्सल्य देखकर बहुत से लोग सदा के लिये आपके हाथ बिक गये। और बहुत से इस बात के लियें बड़ा पश्चात्ताप करने लगे कि हाय! बाबूजी जैसे पुरुष रत्न इतने समय तक हमारे साथ रहे, किन्तु फिर भी हम उनकी महिमा कुछ न समझ सके। कोई अपने और उनके सम्बन्ध की बातें सोच-सोचकर रोने लगे कि हाय! उन्होंने तो हमें बार-बार सचेत किया, पर हम परमार्थ से अचेत ही रहे। वे हमें समय-समय पर अनेक प्रकार से पारमार्थिक कार्यों में उत्साहित करते थे, किन्तु हमने उनकी बात पर कोई ध्यान ही नहीं दिया!

❀ साधुओं का दर्शन पुण्यमय होता है, साधु तीर्थ स्वरूप होते हैं। इनमें भी तीर्थ तो कालान्तर में फल देता है, किन्तु साधुओं का संग तो तत्काल फल देनेवाला है।
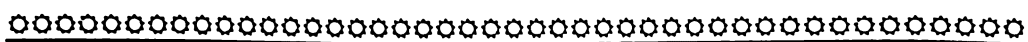
अपने वक्तव्य में महाराजजी ने बड़े जोर से यह बात कही कि इनका कर्त्तव्य तो पूर्ण हो गया। इनके लिये तो अब कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। हाँ अपना कर्त्तव्य समझकर जिसकी जो भी इच्छा हो करो। उनका तो नाम लेकर भी मनुष्य संसार-सागर से पार हो जायेगा।

फिर श्रीमहाराजजी की आज्ञा से पाँच भक्तों ने मिलकर उनकी चिता में आग लगाई। आपने कीर्तन करते हुए चिता की पाँच-सात परिक्रमाएँ कीं और सबने उन्हें साष्टाँग प्रणाम किया। तत्पश्चात् सब लोग कीर्तन करते लौट आये। दुर्भाग्यवश मैं किसी कार्य से उस समय भिरावटी गया हुआ था। इसलिये उस दृश्य का दर्शन करने से वञ्चित रहा। किन्तु आज इस चरित्र को लिखते-लिखते मैं मध्याह्न में सो गया तो वह सारा दृश्य ज्यों का त्यों मेरे मानस नेत्रों के सामने आ गया। आज उस समय के बहुत से लोग जीवत नही हैं। किन्तु मुझे सभी के दर्शन हुए। उसी प्रकार मैंने महाराजजी का सारा व्याख्यान भी सुना उसी का छायामात्र मैं पहले लिख चुका था। इसलिये फिर नहीं लिखा।

बाबूजी की गुणगाथा का कहाँ तक गान करें। आप दिव्य सात्विक गुणों के भण्डार तथा-

'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेव कीर्तनीयः सदा हरिः॥'

इस श्लोक के भावों की जीती-जागती प्रतिमा थे। शास्त्रोक्त स्थितप्रज्ञ या उत्तम भक्तों के सभी गुण आप में कूट-कूटकर भरे थे। आपका स्वभाव अत्यन्त संकोची, बिनम्र दयालु और उदार था अपने हाथ से लाखों रुपया पैदा करके उसे कौड़ियों के समान लुटा दिया। आपको सचमुच परमार्थ और साधु सेवा का रहस्य अच्छी तरह ज्ञात था। आप गुप्तदान बहुत करते थे। आपके द्वारा बहुत से सद्गृहस्थों की बड़ी युक्ति से सेवा होती रहती थी। किसी के घर चुपचाप एक बोरी गेहूँ डलवा दिये और नौकरों से कह दिया कि मत

बताना। इसी तरह किसी के घर वस्त्र और किसी के यहाँ घी भेज देते, किसी का विवाह करा देते। किसी का ऋण चुका देते। इस प्रकार बिना किसी के कहे अपनी बुद्धि से ही दूसरों की आवश्यकता पूर्त्ति करते रहते थे।

एक बार कोई कथावाचक पण्डित अपनी कन्या के विवाह के लिये अर्थप्राप्ति की इच्छा से गवाँ में आये। लालाजी से कहकर बाबूजी ने उनकी कथा आरम्भ कर दी। एक दिन बातों ही बातों में आपने पण्डितजी से पूछ लिया कि आपकी कन्या का विवाह कितने रुपये में हो जायगा। उन्होंने सरलता से बता दिया कि कम से कम पाँच सौ चाहिये। आपने लालाजी से कहा कि यदि आप सौ रुपये चढ़ावें तो इनके लिये पाँच सौ रुपये हो सकते हैं। इस पर उन्होंने बिगड़कर कहा,' तू तो पागल हो गया है। भाई! हम तो गृहस्थी हैं। जो हमारी श्रद्धा होगी चढ़ावेंगे। तेरी तू जाने।' बस, चढ़ावे के दिन लालाजी ने पच्चीस रुपये चढ़ाये। तब आपने बाध्य होकर बीस चढ़ाये। इस प्रकार कुल चढ़ावे में दो सौ रुपये आये। पण्डितजी बड़े निराश हुए। उन्हें तो पाँच सौ से अधिक की आशा थी। किन्तु, करते क्या, चुपचाप वहाँ से घर चले आये। आपने तुरन्त तीन सौ रुपये डाकद्वारा उनके घर भेज दिये। घर पहुँचने पर उन्हें वे रुपये मिले। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसी प्रकार एक बार मैं गवाँ से वृन्दावन श्रीमहाराजजी के पास जा रहा था। आपने मुझसे बिना पूछे एक कपड़े की गाँठ में पच्चीस रुपये बाँध कर मेरी खुर्जी (थैले) में डाल दिये। वृन्दावन पहुँचने पर रुपये देखकर मैं चकित हो गया। मैंने श्रीमहाराजजी से कहा। तब वे बोले,' यह हीरालाल का काम है। वह ऐसा ही किया करता है।' मुझे श्रीमहाराजजी ने इनसे कुछ भी लेने के लिये बिल्कुल मना कर रखा था। इसी से उन्होंने इस प्रकार मुझे रुपये दिये।

वे प्रायः इसी प्रकार सबकी सेवा करते थे। उस समय गंगातट पर बड़े-बड़े विरक्त निवास करते थे। वे सभी की सेवा बड़े भाव और श्रद्धा से करते थे। उनकी श्रद्धा और सेवा देखकर प्रत्येक महात्मा यही समझते थे कि हीरालाल का मुझसे अधिक प्रेम है। इसी प्रकार वे महाराजजी से सम्बन्ध रखने

वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्राणपण से अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिये तैयार रहते थे। समय-समय पर श्रीमहाराजजी ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अत: ऐसे छिपे हुए संत की महिमा मैं क्या वर्णन करूँ ? किन्तु मन में ऐसा चाव अवश्य है कि जन्मभर मैं तो उन्हीं के गुण गाता रहूँ।

'मोरे मन प्रभु अस विश्वासा । राम से अधिक रामकर दासा ।
राम सिन्धु धन सज्जन धीरा । चन्दनतरु हरि सन्त समीरा ॥'

मेरा तो यह विश्वास है कि जिस प्रकार प्रह्लाद के लिये भगवान् का नृसिंह अवतार और अद्वैताचार्य के कारण गौरावतार हुआ था, उसी प्रकार हमारे महाराजजी बाबू हीरालाल के लिये ही इस धराधाम में अवतीर्ण हुए हैं और उन्हीं के कारण श्रीमहाराजजी के द्वारा असंख्य जीवों का उद्धार हो रहा है। ऐसे महाभागवत संत के विषय में जो कुछ भी लिखा जाय थोड़ा ही है।

मुख्य बाँध का विवरण

यद्यपि जीवपुर से राजघाट तक बाँध की पूरी लम्बाई प्राय: बीस मील है, परन्तु मोहलपुर के पास जो उसका एक मील लंबा मुख्य भाग है उसकी रचना तो बड़ी ही अनूठी है। अब हम लोगोंके मन्द भाग्यसे यद्यपि उसका कुछ अंश श्रीगंगाजी की गोद में लीन हो गया है, तथापि जो कुछ शेष है वह भी एक दिव्य भूमि है। इस एक मील लंबे मुख्य बाँध में तीन क्रॉस बन्ध है, जो श्रीगंगाजीकी ओर बहुत दूरतक चले गये हैं। इन बांध और क्रॉस बंधों पर दोनों ओर बड़े-बड़े वृक्षों की पंक्तियाँ बड़ी ही सुहावनी जान पड़ती है। बाँध के वृक्ष दस सालमें इतने बड़े हो गये थे कि पचास वर्षके से जान पड़ते थे। तीन क्रॉस बाँधों में जो सबसे दक्षिणकी ओर है उसकी ठोकर पर हम लोगों ने पीली कुटी नामक, एक कोठी बनायी थी। अब वह ठोकर और कुटी गंगाजी की गोद में समा गयी है। इसकी शोभा बड़ी ही अलौकिक थी। उसके चारों ओर आठ फुट ऊँची चारदीवारी थी तथा बाँध की ओर फाटक था।

इसके सिवा एक छोटा दरवाजा गंगाजी ओर और एक उत्तरकी ओर था। इसके बीच में विचित्र फुलवाड़ी और बिल्वादि वृक्षोंकी हरियाली थी। कोठी में तीन बड़े-बड़े कमरे, उनके तीन ओर टीन के बरामदे और दक्षिणकी ओर जीना था। उसके दक्षिणमें एक बहुत ही रमणीक और एकान्त कुटी थी, जिसमें उत्सवों के समय पूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी विराजते थे। इसी प्रकार कोठीके उत्तर की ओर एक बहुत बड़ी कच्ची फूसकी कुटी थी। उत्सवके समय कोठीके आसपास चारदीवारी के भीतर फुलवाड़ीमें बाबाके विरक्त भक्तों के लिए फूसकी छोटी-छोटी दस-बारह कुटी और भी बना दी जाती थी।

इस प्रकार पीली कुटी की शोभा बड़ी ही विचित्र थी। वह दृश्य जिसने एक बार देखा है वही जाने। उसके सामने गंगाजीकी ओर एक बहुत बड़ा कचा चबूतरा था। पहले उत्सवोंके समय सत्संगका पण्डाल वहीं बना करता था। वह क्रॉस बन्ध, जिसकी ठोकर पर पीलीकुटी बनी हुई थी, प्राय: दो फर्लांग लंबा था। उसकी और बाँध की सन्धिपर प्राय: सौ फुट लंबा-चौड़ा कीर्तन मन्दिर है। यह लोहे तथा टीनका बना हुआ है। इसमें पूर्वकी ओर तीन कमरे हैं, जिसमें से बीच के कमरे में एक चार फुट लंबा बहुत ही सुन्दर श्रीमन्महाप्रभुजीका चित्रमय विग्रह विराजमान है। यह मन्दिर बहुत ही सुन्दर और सुदृढ़ है। इसके दक्षिण की ओर भी बहुत दूरतक वृक्षावली की अपूर्व शोभा है। पीली कुटीसे कीर्तन मन्दिर तकके क्रॉस बाँधपर जो दोनों ओर वृक्षावली जगायी गयी है उसकी शोभा तो देखते ही बनती है। कीर्तनमन्दिर से उत्तर की ओर प्राय: चार फर्लांग लंबे बाँधपर लगभग पचास कुटियाँ बनी हुई हैं। उनमें मन्दिर के पास की पाँच कुटियाँ तो कीर्तनवालों और नक्कारचियों के लिए हैं। उनके बाद दो कुटियाँ चौ. खुशीरामजी भाषमपुरवालों की हैं। फिर बड़ी गढ़ीवाली ठाकुरानी साहिबा की रसोई कुटी और उनके तीन पक्के कमरे हैं। उनके सामने बाँध के नीचे भी एक बगीचा और तीन कमरे हैं। उनके पक्के कमरे से सटी हुई मेरी कुटी है, उसके आगे कुछ सहन और रसोईघर है। उसके पश्चात् कुछ सहन और फिर बाबू कुन्दनगिरिजी की कुटी है। तदनन्तर

रामेश्वरप्रसाद का बड़ा भण्डार है, जिसमें दो कुटियाँ और बीच में सहन हैं। उसके पीछेकी ओर सहन और एक पक्की कुटी कोठारके लिए है। फिर रामेश्वरप्रसादके रहनेकी दो बड़ी-बड़ी कुटियाँ हैं। उनका कुल बाड़ा प्रायः दो सौ फुट लम्बा और पचास फुट चौड़ा है। उसके पश्चात् एक ही लाइन में बड़ी-बड़ी प्रायः दस कुटियाँ हैं, जिन्हें 'कैम्प' कहा जाता है। उनके सामने बाँधके नीचे छः कुटियाँ हैं, जिनमें एक पक्की कुटी ठाकुर भोलासिंह की है और अन्य सबमें माइयाँ रहती हैं। कैम्पके आगे बीच के क्रॉस बाँधकी सन्धि का चौक है। उसमें एक ओर दो बड़े-बड़े भण्डार और एक कोठार है। उत्सवके समय बाँध का प्रधान भोजनालय इन्हीं भण्डारों में रहता है तथा चौकके ऊपर शामियाना लगाकर सत्संग एवं लीलाभिनय आदि होते हैं।

यहाँ से पश्चिम की ओर जो क्रॉस बाँध चलता है यह सात फर्लांग बनाया गया है। किन्तु अब केवल दो फर्लांग के लगभग है, शेष सब गंगाजी काट ले गयीं। इस पर प्रायः एक फर्लांग तक कई कुटियाँ बनी है, इसलिए इसे कैम्पवाला क्रॉस बाँध कहते हैं। इस पर सबसे पहले तो निरञ्जनकी बहुत बढ़िया कुटी है। उसके पीछे महेन्द्रपालसिंह रईस भिरावटीका एक बड़ा कैम्प है, जिसमें दो चौक और चार कुटियाँ हैं। उसके बाद रासवालों का रसोईघर और फिर कुछ चौक देकर उनके रहने के लिए दो बड़ी-बड़ी कुटियाँ है। उसके पश्चात् कुछ दूरीपर लेडीडाक्टर वेदी की एक बढ़िया कुटी है। इसके बाद इस क्रॉस बाँधपर कोई कुटी नहीं है। इसकी ठोकर बड़ी मजबूत बनायी गयी थी। उसमें प्रायः एक लाख रुपये का कंकड़ लगा था। किन्तु आज उसका कोई चिह्न भी अवशिष्ट नहीं है।

अब फिर मुख्य बाँध पर आ जाइये। चौक पर जो बड़ा भण्डार है, उसके आगे दो कुटियाँ छोटी गढ़ीवाली ठाकुरानी इन्द्रकुँवरिजी की है। फिर उनके तीन पक्के कमरे हैं, जिनके बीच में सहन भी है, इन कमरों के पीछे गंगाजी की ओर उनका रसोईघर है। इसके पश्चात् बहादुरसिंह भिरावटी वालों की रसोई की कुटी, फिर पण्डित छविकृष्ण की कुटी और उसके आगे
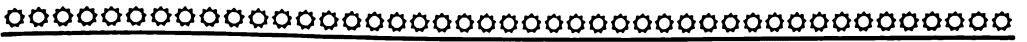
बहादुरसिंह एवं उनकी माताजी की दो कुटियाँ हैं। उनके बाद चार कुटियाँ कुँवर रणवीरसिंह भिरावटी वालोंकी हैं। फिर तीसरे क्रॉस बाँध की सन्धिपर जो बहुत बड़ा चौक है उस पर एक अत्यन्त सुन्दर पक्का सत्संग भवन बना हुआ है। इसकी बनावट भी कीर्तन मन्दिरके समान ही है। किन्तु ऊपरसे वह बंगले की तरह फूस से छाया जाता है ठंडा रखनेके लिए। यहाँ से पश्चिमकी ओर जो क्रॉस बाँध जाता है उसकी लम्बाई किसी समय दो फर्लांग के लगभग थी और उसकी ठोकर पर श्रीमहाराजजीकी कुटी थी तथा वही उनका रसोईघर स्नानगृह और उनके सेवक दातारामकी कुटी भी थी। उसके बीच में एक बहुत बड़ा शीशमका वृक्ष था। जिसके नीचे आप कथा कहा करते थे तथा उसके कुछ इधर आकर पण्डित सुन्दरलालजीकी कुटी थी। किन्तु अब ये सब श्रीगंगाजी के गर्भ में लीन हो गयी हैं। इस बाँधपर दोनों ओर जो नीम और शीशमके वृक्षोंकी पंक्तियाँ लगी हुई हैं। वे बड़ी ही रमणीक हैं। अब पहली कुटिया तो नष्ट हो गयी, किन्तु दूसरी नयी कुटिया बना दी गयी है।

उत्सवों के समय इन तीनों क्रॉस बाँधोंपर विरक्त महात्मा एवं विद्वानों के लिए बांसकी टट्टीयाँ लगाकर सिरकी और फूसकी सुन्दर-सुन्दर कुटिया बना दी जाती है। तथा इनके बीच में जो बड़े-बड़े दो मैदान हैं उनमें फूसके बड़े-बड़े कैम्प और अनेक डेरे एवं रावटी आदि खड़े हो जाते हैं। किन्तु वर्षाकाल में इन मैदानोंमें गंगाजी भर जाती हैं। उस समय का दृश्य भी देखने योग्य होता है।

बाँधकी शोभा क्या कहें? मैंने तो ऐसी सफाई और सुन्दरता कहीं नहीं देखी। उत्सवों के समय यह एक मील लम्बा बाँध प्रायः पूरा लीपा जाता है। और इसके कुछ अंशका तो नित्य ही परिष्कृत होते हैं। मैं भारतवर्ष के प्रायः सभी तीर्थों में घूमा हूँ, किन्तु ऐसा पवित्र और रमणीक आश्रम तो मैंने कहीं नहीं देखा। यहाँ तो स्वच्छता, पवित्रता और आध्यात्मिकता रूपी त्रिवेणी का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। जिस बाँध का प्रत्येक कण अनन्त भगवन्नामोंमें विभूषित है, उसकी महिमा का वर्णन मैं क्या लिख सकता हूँ। अजी ! वह

तो द्वारकाजी की तरह श्रीभागीरथीके वक्ष:स्थल पर साक्षात् दिव्यधाम ही प्रकट हो गया था। किन्तु इस घोर कलिकाल के अभागे जीव उसका ठीक-ठीक स्वरूप नहीं समझ सके। अत: उस दिव्य धाम पर भी हम लोगों ने अनेकों कायिक, वाचिक और मानसिक अपराध किये। इसीसे उन अत्याचारों को सहन न करके वह शनै: शनै: अपने दिव्यलोकको जा रहा है। और सम्भव है कि कुछ दिनोमें उसका कोई चिन्ह शेष न रहे। अथवा यह भी हो सकता है कि वह फिर और भी विशेष रूपमें प्रकट हो। किन्तु इस समय तो वह दिनोंदिन द्वारकाकी भाँति प्रलय की ओर ही जा रहा है।

देखें, भविष्यमें भगवदिच्छा किस रूपमें प्रकट होती है।

उत्सव-खण्ड

बाँध के उत्सव

यों तो श्रीमहाराजजी के द्वारा उत्सवों का क्रम बहुत पहलेसे चलता रहा है। परन्तु जबसे बाँध बना तबसे तो उनका स्वरूप बहुत ही विशद और व्यापक हो गया है। पहले उत्सवों में केवल भावकी प्रधानता थी तथा उनमें सम्मिलित होने वाले भी आपके गिने-चुने सत्संगी ही थे। किन्तु पीछे उनमे बहुत-सी बाह्य सामग्रीका समावेश तथा अनेकों सामयिक सन्त एवं विद्वानोंका सहयोग हो जाने से वे सर्वसाधारणके लिये भी आकर्षक हो गये। आज हम लोगो में जो पहलासा भाव नहीं देखा जाता यह सब तो कलिमहाराज का प्रताप और महामाया की महिमा ही है। श्रीमहाराजजी ने तो हमें भावपोषण की अधिकाधिक सामग्री ही प्रस्तुत की है। इन उत्सवों के कारण ही आज सर्वत्र भगवन्नाम का प्रचार देखा जाता है। जिन लोगोंने कीर्तनका कभी नाम भी नहीं सुना था, आज वे भी अपने-अपने अधिकार के अनुसार उसकी माधुरी का आस्वादन करके भजन में लग गये हैं। आज समय की गति के साथ यद्यपि संसार से श्रद्धा, विश्वास, सरलता और सहृदयता आदि सद्‌गुणों का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है; तब भी श्रीहरिनामसंकीर्तनरूपी अमृत उन श्रद्धादिशून्य नीरस हृदयों को भी समय-समयपर सरस बनाता रहता है। आज के कलिपदाहत प्राणियों के उद्धारका एकमात्र साधन यह भगवन्नाम कीर्तन ही है।

श्रीमहाराजजी को इस समयके प्रधानतम संकीर्तनाचार्यों में कहा जा सकता है। उनके द्वारा जितना नामप्रचार इस समय हुआ है उतना बहुत कम महापुरुष के द्वारा हो पाया है संकीर्तन की अपनी निराली शैली है। अधिकतर लोग मधुर कीर्तन की रुचि रखते हैं, परन्तु उनमें स्वरताल आदिपर विशेष दृष्टि रहने के कारण कीर्तनकार अपने तन-मनको भूलकर भाव में विभोर नहीं हो पाता। हमारे श्रीमहाराजजी भी ताल-स्वरका पूरा ध्यान रखते हैं, किन्तु इससे भी अधिक उनकी दृष्टि भावकी पुष्टिपर रहती है। वे तन, मन, वचन

तीनों ही को संकीर्तनमय कर देते हैं। कीर्तनकारको अपना तन, मन, प्राण सभी संकीर्तनमें लगा देना होता है। उसे उस समय और कुछ सोचने का अवकाश नहीं रहता। अत: आगे हम संक्षेप में श्रीमहाराजजीकी संकीर्तनपद्धति और उनकी समयानुसार कीर्तन-ध्वनियाँ देते हैं।

मण्डप में पधारने पर सबसे पहले आप तथा समस्त भक्तजन साष्टांग दण्डवत् करते हैं। उसके बाद दीर्घस्वर में ओंकार का और फिर 'राम' नाम का उच्चारण किया जाता है। उसके अनन्तर ध्वनि आरम्भ की जाती है। ध्वनि पहले अत्यन्त मन्दस्वरमें आरम्भ की जाती है और फिर बढ़ते-बढ़ते इतनी चढ़ती है कि कोई नवागत व्यक्ति तो यह समझ ही नहीं सकता कि किस ध्वनिका कीर्तन किया जा रहा है। ध्वनि सब लोग साथ-साथ ही बोलते हैं। ऐसा नहीं होता कि पहले पार्टीका नेता बोले और उसके पश्चात् सब लोग उसका साथ दें।

आप मण्डल के बीच में घण्टा लेकर खड़े होते हैं। जब स्वर कुछ चढ़ जाता है तो उसी के अनुसार आप घण्टा बजाते हैं और घण्टेके साथ ही हारमोनियम, तबला, खरताल, झाँझ एवं करतालियों की ध्वनि होने लगती है। कभी-कभी उत्सवोंके समय तो एक साथ ही सात-सात घण्टे बजाये जाते हैं तथा बीच-बीच में शंख ध्वनि भी होती रहती है। मण्डल में पहले तो आप घण्टा बजाते हुए चक्राकार नृत्य करते हैं। फिर आप तो एक ओर खड़े होकर घण्टा बजाते रहते हैं तथा दूसरे मुख्य-मुख्य भक्त प्रेमसे विभोर होकर नृत्य करने लगते हैं। इस समय कीर्तनकार भगवद्भाव से भावित होकर अपने आपको भूल जाते हैं। किन्तु इतनी तल्लीनता होनेपर भी स्वर-ताल में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि हजारों आदमी कीर्तन करें तब भी ऐसा मालूम होता है मानो अकेले श्रीमहाराजजी ही बोल रहे हों। इस प्रकार जिस समय सबका स्वर-ताल एक होकर आकाशव्यापिनी तुमुलध्वनि उठती है उस समय तो मानों रस की अपार नदी ही उमड़ चलती है। उस समय के आनन्दका वर्णन करना तो लेखनकी शक्ति के बाहर है। वह तो जिन भाग्यशालियों ने स्वयं सम्मिलित होकर अनुभव किया है, वे ही जानते हैं।

'सोई सुख लवलेस, जिन वारेक सपनेहु लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति॥

फिर क्रमशः स्वर को उतारते हुए 'हरिबोल' एवं 'निताई गौर हरिबोल' बोलकर कीर्तन का विराम होता है और सब लोग साष्टांग प्रणाम कर यथास्थान चले जाते हैं।

कीर्तन के लिए आपकी कुछ चुनी हुई ध्वनियाँ हैं। उनमें प्रातः काल तो अदल-बदलकर प्रायः नीचे लिखी ध्वनियों का कीर्तन किया जाता है—

१. **राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे।**
राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम राधे राधे॥

२. **राधे गोविन्द राधे गोविन्द गोविन्द गोविन्द राधे राधे।**
श्रीवृन्दावने कुसुमकानने भ्रमरा हरिगुन गावे॥
(किंवा) भ्रमरी राधागुन गावे।
कोई सखि ऊठत कोई मुख पूछत कोई सखि वेष बनावे।
कोई घघरी परिकक्षे कलशी करि यमुनातीरे धीरे जावे॥
वृषभानुनन्दिनी रमणीर शिरोमणि कान्हू मनमोहनि राधे।
श्याम शिरे शिखि पक्ष विराजे राई शिरे वेणी राजे॥
श्याम गले वनमाल विराजे राई गले मोती साजे।
पीताम्बर परि नील पट्टधारिणी घन सौदामिनि राजे॥
रातुल चरणे मणिमय नूपुर रुनुझुनु रुनुझुनु बाजे।
एक पलंगपर दोउ जन बैठिली दोउ मुख सुन्दर राजे॥
(किंवा) दोउ कुसुमेरी साजे॥
श्रीकृष्णदास भने मधुर श्रीवृन्दावने युगल किशोर विराजे।
राधे गोविन्द राधे गोविन्द राधे गोविन्द राधे॥

३. जय जय राधे गोविन्द राधे।

४. निताई गौरांग निताई गौरांग निताई गौरांग गदाधर।
जय शचिनन्दन जगजीवतारन कलिकलुनाशन अवतार॥
जय हड़ाईनन्दन पद्मावतीजीवन पतिपावन अवतार।
निताई गौरांग निताई गौरांग निताई गौरांग गदाधर॥

५. जय श्रीसीतानाथ श्रीअच्युततात। निताई गौर आनि छोड़हूहुंकार।

६. जय जय निताई गौरांग गदाधर।

७. सुमिर श्रीगौरचन्द्र नागर बनवारी।
नागर बनवारी गौरा नागरी बनवारी॥

८. चाचर चिकुर वदन सुन्दर। ललाटे तिलक नासिका उज्ज्वल॥
नदियाइन्दु करुणासिन्धु भक्तवात्सल्यकारी॥१॥
अरुण अधेरे मधुर हाँसि। नयने श्रवत अमियराशि॥
कोटि भानु कोटि शशि मुखशोभा बलिहारी॥२॥
कहत दीन कृष्णदास। गौरचरण करत आश॥
प्रेमदाता निताई चाँद पतितपावनकारी॥३॥

९. नदिया इन्दो ! करुणासिन्धो?

१०. प्रेमदाता निताई चाँद।

११. श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभो नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द॥

१२. रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

१३. हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ इत्यादि।

मध्याह्न के समय अखण्ड कीर्तन के अवसर पर तो जिस महामंत्र का कीर्तन चालू होता है उसीका आप भी कीर्तन करते हैं और यदि अखण्ड
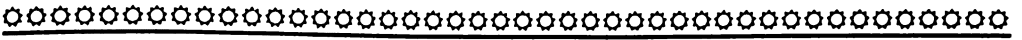
कीर्तन नहीं होता तो केवल 'हरिबोल' इस ध्वनिका ही कीर्तन किया जाता है।

सायंकालमें नीचे लिखी ध्वनियों में से किसी कीर्तन किया जाता है–

१. रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीताराम।

२. जय राम हरे सुखधाम हरे। जय जय रघुनायक श्याम हरे।।
जय कृष्ण हरे गोपाल हरे। जय जय प्रभु दीनदयाल हरे।।

३. राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्।।

४. अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।।

५. श्रीराम नारायण वासुदेव गोविन्द वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण।।
श्रीकेशवानन्त नृसिंह विष्णो माँ त्राहि संसारभुजंगदष्टम्।।

६. सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यऽम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।
नारायणि नमोऽस्तुते।।

७. श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण राधे गोविन्द।।

८. जय शचिनन्दन गौर गुणाकर।
प्रेम परशमणि भावरससागर।।

९. जय गौर हरे जय गौर हरे जय जय शचिनन्दन गौर हरे।।

संकीर्तन में भाव को प्रधानता देने के कारण ही आपने संगीत शास्त्र का अच्छी तरह अभ्यास कर लेने पर भी उसकी उपेक्षा कर दी थी। यों तो आपको गानविद्या से बहुत प्रेम रहा है, इसी से कभी-कभी उत्सवों में संगीत-सम्मेलन और कवि सम्मेलनों का भी आयोजन किया जाता है तथा समय-समय पर उच्चकोटि के गायक भी आपके दरबार में अपनी कला का

प्रदर्शन करते रहते हैं। यही नहीं आपने स्वयं भी चार-पाँच साल तक परिश्रम करके हारमोनियम एवं तबला आदि बाजों को अच्छी तरह सीखा और हम लोगों को सिखाया है। किन्तु अब यह व्यसन छोड़ दिया है। उसका एकमात्र कारण यही था कि जिस समय आप गायन का अभ्यास करते थे उस समय जोर-जोर से कीर्तन करना बन्द कर दिया था, क्योंकि उसमें स्वर साधन करना होता था और हजारो आदमियों के साथ सिंहगर्जन से कीर्तन करना आवाज को खराब करता था। किन्तु यह बात हम लोगों को अखरने लगीं, था हमारे श्रीउड़ियाबाबाजी को भी नहीं रुची। इसके सिवा आपका जीवन सर्वस्व भी धूमधाम कीर्तन ही रहा है, उसमें संकोच करना आपको किसी प्रकार रुचिकर नहीं था। अतः सब कुछ सीख-साखकर भी आपने उसका अभ्यास छोड़ दिया और अपना बढ़िया हारमोनियम एवं तबला रासवालों को दे दिया।

संकीर्तन के सिवा उत्सवों में रासलीला, कथा-प्रवचन एवं भक्त-लीला का भी प्रोग्राम रहता है। इनका विवरण गत प्रसंग में दिया जा चुका है। इन उत्सवों में स्थानीय तथा बाहर के हजारों भक्त एकत्रित होते हैं। सभी अपने-अपने अधिकार के अनुसार भावरस का आस्वादन करते हैं तथा न्यूनाधिक रूप में सभी को कुछ विचित्र अनुभव होते हैं। उस समय तो वहाँ निरन्तर ही ज्ञान एवं भक्तिरस की गंगा प्रवाहित होने लगती है।

बाँध बनने के बाद सबसे पहला उत्सव सन् १९२३ में आश्विन मास में हुआ। उसके बाद सन् १९२४ में फाल्गुन में हमारे बाबूजी का महाप्रस्थान हुआ। अब तक श्रीमहाराजजी फूस की कुटी में ही रहते थे। सन् १९२४ के आश्विन मास में गंगाजी की बाढ़ आयी। उसके बाद सन् १९२५ में हमने पीली कोठी बनायी तथा बाढ़ के कारण बाँध को जहाँ-तहाँ जो क्षति पहुँची थी उसकी मरम्मत की। फिर सन् १९२६ का होली का उत्सव शिवपुरी में हुआ। वहाँ बांध प्रान्त के भी बहुत से भक्त एकत्रित हुए थे, इस समय श्रीमहाराजजी सम्भवतः पंजाब में थे। इस उत्सव पर ही सबसे पहले शिवपुरी में नगर कीर्तन हुआ। उसमें कई भक्तों में भावावेश में श्रीमहाराजजी के प्रत्यक्ष

दर्शन हुए तथा और भी कई विचित्र अनुभव हुए। यह उत्सव बड़ा ही आनन्दपूर्वक हुआ।

उसी समय रामेश्वर ने गवाँ में भी उत्सव किया। उसमें सेठ गोरीशंकरजी, रामशंकरजी तथा और भी कई महानुभाव पधारे थे। रामेश्वर उस समय प्रेम से पागल हो रहा था, उसने दिव्य धामों के पते पर चिट्ठियाँ लिखकर डाक में डाली थी तथा गवाँ में नगर कीर्तन किया था। उसमें रामेश्वर भावावेश से उन्मत्त हो रहा था। उसके नेत्र खुले हुए थे, पुतलियाँ स्थिर थीं तथा वह ऊर्ध्वबाहु होकर निरन्तर नृत्य कर रहा था। वह गलियों में लोटता था, कभी रोता था और कभी हँसता था। उसके शरीर में कम्प रोमांच था वह सभी को पकड़-पकड़कर आलिंगन करता था। उस समय उसकी ऐसी अवस्था थी कि वह जिसे भी आलिंगन करता था वही आनन्द में मग्न हो जाता था। उसने सेठ गौरीशंकर जी को आलिंगन किया और वे अत्यन्त गम्भीर होने पर भी प्रेम से पागल हो गये उनके शरीर में सात्विक विकार उत्पन्न हो गये और वे भी ऊर्ध्वबाहु होकर नृत्य करने लगे। उसी दिन से उनका रामेश्वर से बहुत घनिष्ठ प्रेम हो गया। और भी बहुत से भक्तों को उस उत्सव में श्रीमहाराजजी एवं अन्य दिव्य प्राणी कीर्तन में नृत्य करते दीख पड़े। इस प्रकार गवां और शिवपुरी दोनों ही स्थानों के उत्सवों में श्रीमहाराज जी ने अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय दिया। उन उत्सवों का सभी लोगों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। शिवपुरी के उत्सव में तो जब भण्डारे के दिन भोग लगाया गया तब सचमुच ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्रीमहाराजजी श्रीमन्महाप्रभुजी के भक्त परिकर के सहित पधारकर भोग लगा रहे हैं। उस प्रसाद को जिसने भी ग्रहण किया वही प्रेम से पागल हो गया।

इसके बाद सन् १९२६ का होली का उत्सव बाँध पर हुआ तथा सन् १९२७ का शिवपुरी में। उसमें संयास पर्यन्त श्रीमन्महाप्रभुजी की लीलाएँ हुई थीं। उनमें महाप्रभुजी का पार्ट करते हुए संन्यास-लीला के दिन आप सचमुच ही केवल कमण्डलु लेकर रामगंगा के किनारे-किनारे बहुत दूर चले गये थे
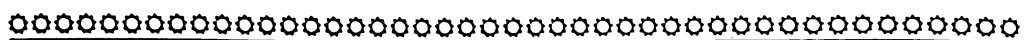
और फिर छठे दिन लौटकर आये थे। यह प्रसंग 'शिवपुरी की कुछ लीलाएँ' शीर्षक प्रकरण में दिया जा चुका है, इसलिये यहाँ पुन: इसका विस्तार नहीं किया जाता।

इस उत्सव के पश्चात् आप कुछ दिनों के लिये बिसौली गये और फिर शिवपुरी ही लौट आये। इसी समय आपने जौहरीलाल के गेरुआ वस्त्र उतरवाकर उन्हें श्वेत वस्त्र धारण कराये थे। यह प्रसंग भी पहले 'कुछ अटपटी लीलाएँ' प्रकरण में आ चुका है। जौहरीलाल के वस्त्र बदलवाते समय आपने सबसे उन्हें आशीर्वाद दिलाया था और स्वयं भी बड़ा खेल किया। उन्हें नीचे लिटाकर अपने चरणों से खूब कूटा। इससे वे उसी समय निर्मल हो गये और उनका सारा रोग जाता रहा फिर जौहरीलाल को गंगातट पर ले जाकर उनके सब पाप संकल्प कराकर ले लिये और उन्हें त्रिविध तापों से मुक्त होने का आशीर्वाद दिया।

इसके पश्चात् सन् १९२६ में ही भाईसिंह निजामपुरवाले के पुत्र उत्पन्न हुआ। तब उसके मन में यह संकल्प हुआ कि महाराजजी यहाँ आकर उत्सव करें। उसी रात्रि में उसे स्वप्न हुआ कि वह महाराजजी से प्रार्थना कर रहा है और उसे उत्सव की स्वीकृति दे दी है। उसके कुछ ही दिन पश्चात् श्रीमहाराजजी स्वयं ही निजामपुर आ गये और भाईसिंह के यहाँ उत्सव किया।

सन् १९२८ में श्रीमहाराजजी ने नाम-प्रचार के लिये मुझे शिवपुरी से बाँध प्रान्त में भेजा। वहाँ भिरावटी के महाशय लक्ष्मीनारायणजी, बाबू भगवद्त्तजी, भाईसिंह और पण्डित हरियशजी ने भी इस कार्य में मुझे सहयोग दिया। इस प्रकार उस ओर के ग्रामों में खूब जोर से नाम प्रचार का कार्य हुआ। इसके पश्चात् माघमास में आप भी बाँध पर पधारे और फाल्गुन में होली का उत्सव हुआ। यह उत्सव बड़ा ही विचित्र हुआ था। इस समय गुरुपूर्णिमा तक आप बाँध पर ही रहे। पीछे वर्षा में कहीं अन्यत्र चले गये और शीतकाल में पुन: बाँध पर ही लौट आये।

सन् १९२९ में भी होली का उत्सव बाँध पर ही हुआ। इसमें पन्द्रह दिनों का अखण्ड कीर्तन रहा और बौहरे ब्रजलालजी की मण्डली ने रासलीला की। अभी तक कीर्तन-मन्दिर नहीं बना था। अतः कीर्तनचक्र पर शामियाना लगाकर तो कीर्तन होता था और पीलीकोठी के पश्चिमी बरांडे में रासलीला होती थी। उन दिनों लीला में आपका बड़ा ही भाव था। रासमण्डली कीर्तनवालों की कुटी में ठहरी हुई थी। वहीं से शृंगार करके स्वरूपों को एक सिंहासन में रासमण्डल तक ले जाया जाता था और आप उनके आगे उल्टे पाँव कीर्तन करते हुए चलते थे। क्या कहें एक दिन तो आपका साक्षात् यही भाव जान पड़ता था मानो अपने सखीपरिकर के सहित श्रीकिशोरीजी श्यामसुन्दर को लेकर रासनिकुंज में पधार रही हैं। आप उस समय भाव में विभोर थे और उसकी छाया हम लोगों पर भी पड़ रही थी। रासमण्डल में पहुँचने पर जिस समय महाराजजी ने प्रिया, प्रियतम और सखीपरिकर को साष्टांग प्रणाम किया उस समय आपके सभी अंग भाव शावल्य से गद्गद हो गये। फिर जब पुष्पमाला धारण कराने को हाथ बढ़ाया तो सभी श्रीअंग काँपने लगे और सारा शरीर भाव से विवश हो गया। तब श्रीप्रिया-प्रियतम ने स्वयं ही अपने हाथों से लेकर मालाएँ धारण कीं। उस समय का दृश्य बड़ा ही अद्भुत था। सारे ही दर्शक आनन्द से विभोर हो रहे थे। किसी को भी तन-मन की सुधि नहीं थी। आप समुद्रबत् गम्भीर होने पर भी आज भावपरवश होकर प्रायः मूर्च्छित हो रहे थे। तब श्रीरासबिहारी और श्रीकिशोरीजी ने हँसते हुए आपको हाथ पकड़कर सम्भाला और आपने सचेत होकर अपना भाव संवरण किया।

वह दृश्य क्या कभी जीवन में भुलाया जा सकता है? उस समय लीलानुकरण क्या था मानो साक्षात् दिव्य लीला का ही आविर्भाव हो गया था तथा सभी लोग आनन्द में मग्न थे उस उत्सव के पन्द्रह दिन बात की बात में निकल गये। नित्य उसी प्रकार रासबिहारी को सिंहासन में बिठाकर कीर्तन करते हुए रासमण्डल में ले जाना, वहाँ स्वयं उन्हें पुष्पमाला धारण कराना और लीला की समाप्ति पर्यन्त पीछे खड़े रहकर निरन्तर पंखा या चँवर डुलाना। बस

आपका तो यह नियम जीवन पर्यन्त अटल रहा। उसमें तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ, वरन् वृद्धि ही हुई।

सन् १९३० में हम लोगों ने कीर्तन-मन्दिर बनवाया। उसी फाल्गुन मास में उसकी प्रतिष्ठा हुई और एक महीने तक उत्सव रहा, इस उत्सव में श्रीलाडिलीशरणजी की मण्डली के रास हुए तथा पं. श्रीमधुसूदन भट्ट की रासपंचाध्यायी की कथा हुई। आपकी कथन-शैली बड़ी ही विचित्र थी। भाई! क्या कहें उस अद्भुत आनन्द को। जैसी लीला वैसी ही कथा। वह मालूम होता था कि श्रीगंगातट पर साक्षात् श्रीशुकदेवजी ही कथामृत का पान करा रहे हैं। उस समय सभी श्रोता भिन्न-भिन्न रसों का आस्वादन करके मुग्ध होकर चित्र की तरह स्तब्ध बैठे रहते थे। आपकी प्रवचनशैली इतनी विलक्षण थी कि बड़े से बड़े विद्वान् भी चकित रह जाते थे तथा रसज्ञजन कथामृत की माधुरी से मुग्ध होकर पंकजपरागोन्मत्त भ्रमर की भाँति मतवाले-से हो जाते थे। एक बड़ी विचित्रता यह थी कि आपके प्रवचन से बड़े से बड़े विद्वान् और सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी समान रूप से आनन्द मिलता था। यह कथा क्या थी, साक्षात् अमृत का झरना ही था।

श्रीभट्टजी महाराज कोरे कथावाचक ही नहीं थे। वे बड़े ही संयमी और शुद्ध जीविका से निर्वाह करने वाले थे। श्रीप्रिया प्रियतम की उपासना उनकी एकान्त निष्ठा थी। उनका स्वभाव बड़ा ही शान्त, विनम्र और मधुर था। उनमें दैवी सम्पद् के प्राय: सभी गुण पाये जाते थे। हमारे श्रीमहाराजजी के प्रति उनकी गाढ़ श्रद्धा थी उसी प्रकार श्रीमहाराजजी भी उनका हृदय से आदर करते थे। हम सब लोगों के प्रति उनका बड़ा वात्सल्य स्नेह था जिस समय वे शुद्ध व्रज भाषा में सख्य, वात्सल्य एवं मधुर आदि भावों का वर्णन करते थे उस समय उनकी साक्षात् मूर्ति ही बन जाते थे। वात्सल्य का वर्णन करते समय वे श्रीयशोदा मैया की कोई सखी जान पड़ते थे और माधुर्य का निरूपण करने लगते तो साक्षात् श्रीकिशोरीजी के परिकर की गोपी प्रतीत होते थे। इसी प्रकार अन्य भावों का वर्णन करते समय भी वे उस-उस भाव में तन्मय हो जाते थे।
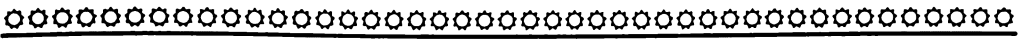
इस वर्ष रासलीला का भी बड़ा ही अपूर्व आनन्द रहा। एक दिन उद्धव-लीला में तो ऐसी अद्‌भुत भावतरंग उठी कि उसने लीला के पात्र और दर्शक सभी को वेसुध कर दिया। जिस समय श्यामसुन्दर ने उद्धव से ब्रजवासियों को सुनाने के लिये अपना सन्देह कहा वे सचमुच ही भावाविष्ट होकर रोने लगे। यही दशा अपना-अपना पार्ट करते समय उद्धवजी, नन्दबाबा, यशोदामैया और गोपियों की भी हुई। दर्शकों में भी दो-चार व्यक्तियों को छोड़कर ऐसा कोई नहीं बचा जो रोते-रोते अधीर न हो गया हो। आखिर बीच में ही लीला बन्द करनी पड़ी। किन्तु उस समय सभी स्वरूप भावावेश से इतने विवश हो रहे थे कि वे ठीक ठीक आरती भी नहीं कर सके।

इस प्रकार वह उत्सव बड़े ही आनन्द का हुआ। इसी वर्ष जनवरी में बाँध प्रान्त के गाँव-गाँव में उत्सव हुए। वह भी एक विचित्र छठा थी। उसका क्रम इस प्रकार था कि पहले पण्डित हरियशजी के साथ चार-पाँच आदमी जाकर गाँव की सफाई करते थे तथा उस सारे गाँव को बन्दनवार, पताका, झण्डी और कलश आदि से सजाया जाता था। फिर उसी गाँव के आदमियों की चार पार्टियाँ बनाकर वहाँ बड़ी धूमधाम से नगाड़ा झाँझ आदि बाजों के साथ चैबीस घण्टे का अखण्ड कीर्तन कराया जाता था। तथा गाँव के सब लोग मिलकर किसी एक स्थान पर भगवन्नाम लेते हुए बड़ी सावधानी और पवित्रता से भगवान् को भोग लगाने की भावना से भोजन बनाते थे। अखण्ड कीर्तन समाप्त होने से दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्रीमहाराज जी परिकर सहित वहाँ पहुँच जाते थे। उन दिनों आप रात्रि को ठीक दो बजे उठते तथा शौच, स्नान, आसन एवं व्यायाम आदि से निवृत्त हो चार से पाँच बजे तक अपना प्रभाती कीर्तन करते और फिर दौड़ते हुए उस ग्राम में पहुँच जाते थे। ये ग्राम एक से लेकर छः कोश तक की दूरी पर थे। परन्तु आप प्रायः आठ बजे वहाँ अवश्य पहुँच जाते थे। वहाँ सबसे पहले आप मण्डप में जाकर हवन करते थे। यह हवन आपका एक प्रकार का खेल ही था। उसका मुख्य तात्पर्य तो चित्त को एकाग्र करके भगवान् को स्मरण करता ही था। उसमें विधि-विधान का

आडम्बर कुछ भी नहीं था। वह तो केवल आपका एक खेल अथवा उपासना का ही अंग था। उसे आरम्भ करते समय पहले तो दो-चार वार प्रणय का उच्चारण करते और फिर राम-नाम उच्चारण करके गुरु-वन्दना के मन्त्रों द्वारा आहुतियाँ देते थे। वे मन्त्र इस प्रकार थे। इनमें से प्रत्येक के पीछे 'स्वाहा' बोलकर आहुति दी जाती थी-

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥१॥

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥२॥

ॐ ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥३॥

ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥४॥

ॐ विशुद्धानन्दबोधाय शिष्यसन्तापहारिणे।
सच्चिदानन्दरूपाय रासाय गुरवे नमः॥५॥

ॐ श्रीगुरवे नमः॥६॥

ॐ नारायणाय नमः॥७॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥८॥

ॐ नमः शिवाय॥९॥

फिर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुतियाँ देते थे-

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥१०॥

ॐ रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥११॥

ॐ सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।१२।।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।१३।।

ॐ विश्वम्भराय गौराय चैतन्याय महात्मने।
शचिपुत्राय मित्राय लक्ष्मीशायं नमो नमः।।१४।।

ॐ ब्रह्मार्पणं बृह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मं व तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना।।१५।।

ॐ सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्द्दुःखमाप्नुयात्।।१६।।

उपर्युक्त सात मन्त्रों से प्रत्येक के द्वारा पाँच-पाँच अथवा जैसी उस समय रुचि होती न्यून या अधिक आहुतियाँ देते थे। इनके अतिरिक्त यदि उस समय कोई और मन्त्र ध्यान में आ जाता तो उसे भी इनमें सम्मिलित कर लेते थे। फिर सबके अन्त में नीचे लिखे मन्त्र से पूर्णाहूति दी जाती थी—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।। स्वाहा।।

तदनन्तर नीचे लिखे मन्त्र से शान्तिपाठ किया जाता था—

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषध यः शान्तिर्वनस्पयतः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि शांति सुशान्तिर्भवतु।।

अन्त में निम्नलिखित श्लोकों द्वारा सबके साथ मिलकर अत्यन्त एकाग्रता और भाव से गद्‌गद् होकर प्रार्थना करते थे—

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नमः।।१।।

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने।
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तु ते॥२॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥३॥

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥४॥

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः
वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न बिदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥५॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥६॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदाहं
तीर्थास्पदं शिवविरंचिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥७॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥८॥

यः पृथ्वीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः
सञ्जातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः।
निश्चक्रं हतराक्षसा पृथुरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे॥९॥

हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष॥१०॥

हे कृष्ण विष्णो मधुकैटभारे भक्तानुकम्पिन् भगवन् मुरारे।
त्रायस्व मां केशव लोकनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति॥११॥

श्रीराम नारायण वासुदेव गोविन्द वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण।
श्रीकेशवानन्त नृसिंह विष्णो मां त्राहि संसारभुजंगदष्टम्॥१२॥

अथवा कभी कोई श्रीरामजी से सम्बन्ध रखने वाला उत्सव हुआ तो नीचे लिखे श्लोक बोलते थे -

लोकाभिरामं रणरंगधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करूणाकरं तं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये॥१३॥

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम रणकर्कश राम राम।
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम॥१४॥

श्रीरामचंद्रचरणौ मनसा स्मरामि श्रीरामचंद्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्रीरामचंद्रचरणौ शिरसा नमामि श्रीरामचंद्रचरणौ शरणं प्रपद्ये॥१५॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥१६॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥१७॥

और यदि श्रीकृष्णपरक उत्सव होता तो निम्नलिखित श्लोक बोलते थे-

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कंकणम्।
सर्वांगे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावलिः
गोपस्त्री परिवेष्टितो विजयते गोपालचूड़ामणिः॥१८॥

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं वर्हावतं सप्रियम् ।
श्रीवत्सांकमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृतम् ।
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्यांगभूषं भजे।।१९।।

राधाकृष्णमहं वन्दे रससरूपौ रसायनौ।
वृन्दावननिकुंजेषु नित्यलीलासमाश्रितौ।।२०।।

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविंदनेत्रात्
कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।।२१।।

और यदि श्रीमन्महाप्रभु से सम्बन्धित उत्सव होता तो नीचे लिखे श्लोक बोलते -

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।२२।।

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुस्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं गाढं लीयते चित्तभृंगः।।२३।।

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयाऽवतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरो द्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फरतु वः शचिनन्दनः।।२४।।

विश्वम्भराय गौराय चैतन्याय महात्मने।
शचीपुत्राय मिश्राय लक्ष्मीशाय नमो नमः।।२५।।

इसके पश्चात् सब लोग निरन्तर अनेक प्रकार के बाजों के साथ अत्यन्त आनन्दविभोर होकर समष्टिकीर्तन करते थे। एक घण्टा कीर्तन करके सब लोग बैठ जाते और फिर पदकीर्तन होता अथवा कोई विशेष गायक हुआ

तो उसके द्वारा पदगान होता। फिर भोजन तैयार होने पर आप भण्डार में जाकर सब भोजन में तुलसीदल छोड़कर भगवान् को भोग लगाते और कुछ श्लोकों द्वारा उनकी स्तुति करते। तदनन्तर पहले साधु-ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता और फिर सब भक्तजन भोजन करते।

श्रीमहाराजजी के लिए तो दाताराम प्रात:काल से ही आकर एक अलग चूल्हे पर बिना मिर्च-मसाले की मूँग की दाल तथा लौकी-पालक आदि में से कोई सुपाच्य शाक बना लेता था। आपके लिये रोटी भी गेहूँ, चना और जौके मिले हुए आटे की बनाई जाती थी। आप तो एकान्त में बैठकर अपना यही भोजन करते थे। फिर एकान्त में ही थोड़ी देर विश्राम करते और उसके पश्चात् दो-तीन बजे बाँध को चल देते थे। यदि गाँव बाँध के समीप होता तो वहाँ दो घण्टे और भी सत्संग होता रहता। आपके विदा हो जाने पर गांव में जो प्रसाद अतिथि सत्कार से बच जाता था उसे सब ग्रामवासी आपस में यथायोग्य बँटवारा करके ले लते थे।

इस प्रकार उत्सव होने से उस प्रान्त के प्रत्येक गाँव में नयी जागृति, नवीन उत्साह और नूतन प्रेम उत्पन्न होकर परस्पर स्नेह बढ़ जाता था और साक्षात् सत्ययुग का सा समय प्रतीत होने लगता था। पण्डित हरियशजी अपने सहयोगियों के सहित उसी दिन दूसरे गाँव में चले जाते और वहाँ भी इसी प्रकार उत्सव का क्रम चलता। इस प्रकार उस प्रान्त के गाँव गाँव में एक आनन्द की तरंग-सी उठने लगी और सभी गाँव एक-दूसरे से अधिक तैयारी करने लगे।
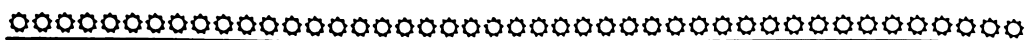
भटवारा और प्रयाग में

खुरजा से प्राय: चार मील दूर भटवारा नाम का एक गाँव है। यहाँ के रईस लाला बाबूलालजी उन दिनों श्रीमहाराजजी में बड़ी श्रद्धा रखते थे। बाँध का चन्दा करते समय खुरजा-अलीगढ़ आदि स्थानों में वे भी श्रीमहाराजजी के साथ रहे थे। सन् १९३० के बाँध के उत्सव के बाद उन्होंने अपने गाँव में उत्सव करने का विचार किया और उसके लिये श्रीमहाराजजी से विशेष आग्रह किया। उनकी आन्तरिक इच्छा देखकर आपने वहाँ पधारना स्वीकार कर लिया। तब आप शिवपुरी और बाँध के प्राय: दो सौ भक्तों के सहित वहाँ पधारे। उस उत्सव में ही लाला बाबूलाल ने एक यज्ञ की भी योजना की थी। उत्सव और यज्ञ के प्रधान व्यवस्थापक थे श्रीभगवान् स्वामी। उनके विशेष उत्साह और श्रीमहाराजजी की उपस्थिति के कारण वह उत्सव बड़े समारोह से हुआ। लाला बाबूलालजी ने समागत अतिथियों का बड़ी श्रद्धा से आशातीत सत्कार किया। उनके आतिथ्य सत्कार से सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए और कीर्तन, भजन एवं सत्संग में भी बड़ा आनन्द मिला।

पाठकों को सम्भवत: यह सत्कार की बात कुछ अनावश्यक सी जान पड़ेगी। हो सकता है, वे इसे परमार्थविरुद्ध समझें। परन्तु मैं उनसे क्षमा चाहते हुए यह निवेदन करना आवश्यक समझता हूँ कि यह उत्सव एवं यज्ञों का प्रधान अंग है। सत्कार करना अथवा सत्कृत होने की इच्छा रखना अवश्य साधक के लिये विघ्नरूप है, परन्तु दूसरों का सत्कार करना तो प्रत्येक साधक का भी प्रधान कर्त्तव्य है। फिर जो उत्सवादि की योजना करके बाहर के भक्त एवं विद्वानों को आमंत्रित करते हैं उनके लिये तो इस पर विशेष ध्यान रखना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। हमने बाँध के बड़े-बड़े उत्सवों में तथा अन्यत्र भी कई बार देखा है कि जहाँ जनता-जनार्दन की सेवा का उचित प्रबन्ध रहता है वहीं कीर्तन, भजन और सत्संग का भी विशेष रस रहा है और जहाँ प्रबन्धों की शिथिलता से भोजनादि की व्यवस्था ठीक नहीं रही वहाँ परमार्थचर्चा में भी उतनी ही ढील रही है। हमारे साहू जानकी प्रसाद तथा कुछ

अन्य भक्तों की तो ऐसी निष्ठा थी कि वे श्रीमहाराजजी की अपेक्षा भी उनके भक्तपरिकर की और उनमें भी विशेषतः गरीब भक्तों की सेवा का अधिक ध्यान रखते थे। वे कहा करते थे कि भाई! हम श्रीमहाराजजी की सेवा क्या कर सकते हैं। वे तो सर्वशक्तिमान् और सर्वसमर्थ हैं। उनकी सेवा करने में तो सारी सृष्टि जड़-चेतन स्थावर-जंगम सभी प्राणी अपना सौभाग्य समझते हैं। हमें तो यदि श्रीमहाराजजी से सम्बन्ध रखने वाले कूकर की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो जाए तो भी हम कृतकृत्य हो जायें। वे जैसा कहते थे वैसा ही उनका आचरण था। श्रीमहाराजजी से सम्बन्ध रखेन वाला कोई गरीब से गरीब आदमी पहुँच जाता तो उसकी भी वे प्राणपण से सेवा करते थे। वे भक्तों की सेवा को भगवान् की सेवा से बढ़कर मानते थे। यह बात उन्होंने अपने परमार्थगुरु बाबू हीरालाल से सीखी थी। वे उनके विशेष कृपापात्र थे और इस गुण के कारण श्रीमहाराजजी भी उन पर बहुत प्रसन्न रहते थे।

इसके विपरीत हमारे भक्तपरिकर में कुछ ऐसे लोग भी थे जो श्रीमहाराजजी के प्रति तो अनन्य निष्ठा रखते थे तथा उनके इंगितमात्र पर अपना तन, मन, धन न्यौछावर करने को तत्पर रहते थे, किन्तु उनके सिवा किसी दूसरे व्यक्ति को एक गिलास जल देना भी उन्हें भारी जान पड़ता था। इसलिये जब कभी उनके हाथ में प्रबन्ध रहा, तब जनताजनार्दन की यथेष्ट सेवा नहीं हो सकी। अतः उन उत्सवों में वेढंगें तरीके से दूना खर्च होने पर भी न तो श्रीमहाराजजी ही प्रसन्न रहे और न सत्संग का ही विशेष सुख मिला। प्रभु तो सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरणों में स्थित हैं; उन सर्वभूतनिवास वासुदेव की उपेक्षा करके भला किस प्रकार उनकी कृपा प्राप्त की जा सकती है? जो व्यक्ति सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर का तिरस्कार करके किसी एक ही देश या व्यक्ति में उनकी आराधना करता है वह तो धोखे ही में है। अतः उत्सव या यज्ञादिका यह प्रधान अंग है कि उसमें सम्मिलित होने वाले प्रत्येक व्यक्ति का भोजनादि से यथेष्ट सत्कार किया जाय। इस दृष्टि से भटवारे का उत्सव सब प्रकार सफल रहा। उसमें व्यवस्थापकों की निष्कपट सेवा से सभी समागत सज्जन पूर्णतया सन्तुष्ट रहे।

इन्हीं दिनों कल्याणसम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार बम्बई से अपना सब कारोबार छोड़कर शान्तिमय जीवन व्यतीत करने के संकल्प से गोरखपुर जाने के लिये दिल्ली आये हुए थे। उन्होंने वहाँ अपने कुछ मित्रों से श्रीमहाराजजी की विशेष प्रशंसा सुनी। अत: आपके दर्शनों के लिये भटवारा जाने के विचार से आप खुरजा पधारे और जंकशन स्टेशन के पास सेठ महालीराम लक्ष्मणदास की धर्मशाला में ठहरे। इधर जब श्रीमहाराजजी को उनके खुरजा पधारने की सूचना मिली तो अपने अमानी और मानप्रद स्वभाव के अनुसार आप स्वयं ही कुछ लोगों के साथ खुरजा जंकशन को चले। आपके साथ कई सवारियाँ थीं, परन्तु आपने उनमें बैठना स्वीकार नहीं किया। पैदल ही आठ मील चलकर स्टेशन पर पहुँचे। साथियों में जो लोग इतनी दूर चलने में असमर्थ थे उन्होंने उन सवारियों का उपयोग किया। खुरजा के भक्त केदारनाथजी तो गृहस्थ संत ही थे। श्रीमहाराजजी के चरणों में उनकी बड़ी श्रद्धा थी। स्टेशन जाते हुए श्रीमहाराज स्वयं उनके घर गये और 'चलो, हनुमानप्रसादजी आये हैं, उनसे मिल आवें' ऐसा कहकर उन्हें भी साथ ले गये। श्रीमहाराजजी की ऐसी निर्मानिता और सरलता देखकर पोद्दार जी अत्यन्त गद्गद् हो गये। उन्होंने थोड़ी देर अपने भावी जीवन-क्रम के विषय में बातचीत की। उसके बाद आप उसी समय रेल द्वारा सम्भवत: बाँध की ओर चले आये और पोद्दार जी दिल्ली लौट गये।

इसके पश्चात् माघ मास में आप प्रयाग पधारे। इस वर्ष कुम्भ पर्व होने के कारण वहाँ देश-देशान्तर की बहुत जनता एकत्रित हुई थीं। मैं आपके साथ था तथा हमारे साथ ही श्रीमधुसूदनजी भट्ट भी वहाँ पधारे थे। हम लोग वहाँ श्रीगंगाजी के उस पार झूसी से प्राय: एक मील नीचे की ओर खुरजा वाले श्रीगौरीशंकरजी गोयनका के कैम्प में ठहरे थे। वहाँ जुकाम के कारण एक दिन आपको ज्वर हो गया। अत: आप एकान्त कुटी में पड़े हुए थे। उसी समय आपको खोजता हुआ एक व्यक्ति वहाँ आया और सीधा आपके पास पहुँचा। आप देखते ही समझ गये कि यह सम्भवत: वही पुरुष है, जिसकी चिट्ठी बाँध पर आयी थी। वह बड़ा ही तेजस्वी और निर्भीक जान पड़ता था।

उसने आते ही आपसे पूछा, 'क्यों स्वामीजी! कैसे पड़े हो?' आप बोले, 'मुझे ज्वर हो गया है।' तब उसने जोर देकर कहा, 'नहीं, आपको ज्वर कभी नहीं हो सकता, आपका शरीर तो भगवान् का मन्दिर है।' बस ऐसा विचार करते ही आपकी पीड़ा दूर हो गयी।

उस आदमी के चले जाने पर आपने कहा, 'मुझे यह आदमी बहुत अच्छा लगा। वास्तव में संसार में जितना भी सुख-दुःख है सब अपनी भावना से ही है। अतः हमें मन को पवित्र करके सर्वदा शुभ संकल्प और शुभ भावनाओं द्वारा उसे बलवान् बनाना चाहिये।'

इस कुम्भ पर ही हमें वर्धाके श्रीपरांजपेजी मिले। आप बड़े तेजस्वी और वयोवृद्ध सज्जन थे। इस समय आपकी आयु प्रायः पचहत्तर साल की थी, किन्तु शरीर बड़ा हृस्ट-पुस्ट और तेजीयान् था आप संस्कृत और अंग्रेजी के अच्छे पण्डित थे। श्रीमहाराजजी आपके आने पर शान्तिपूर्वक सिद्धासन से बैठ गये और इन्होंने पत्र पुष्पादि से आपका विधिवत् पूजन किया। यह अद्भुत दृश्य देखकर हम बड़े चकित हुए। आपको तो हमने सामान्य साधुओं के प्रणामादि करने पर भी बहुत सकुचाते देखा, आज क्या कारण है जो ऐसे सम्भावित पुरुष से आप चुपचाप पूजन करा रहे हैं। हमने एकान्त में इन नवागत महानुभावों से परिचय पूछा तो मालूम हुआ आप वर्धाके हनुमानगढ़ी स्थान के महन्त श्रीपरांजपेजी महाराज हैं। आपका श्रीमहाराजजी के प्रति बड़ा गम्भीर भाव था। आप ही से हमें उस प्रसंग का विशेष विवरण मालूम हुआ जिसने श्रीमहाराजजी को वेदान्तनिष्टा से भक्ति की ओर प्रवृत्त किया था। उस प्रसंग को सुनाते-सुनाते श्रीपरांजपेजी गद्गद् हो गये थे। आपने श्रीमहाराजजी से पुनः कभी वर्धा पधारने के लिये प्रार्थना की। किन्तु आपने कोई निश्चित उत्तर न देकर उन्हें बड़े प्रेम और आदर से विदा कर दिया।

इसी समय हमें भारत के सुप्रसिद्ध गायनाचार्य साक्षात् नारदजी के अवतार श्रीविष्णुदिगम्बरजी के भी दर्शन हुए उनका रामनाम तथा **'रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीता राम॥'** इस ध्वनि का कीर्तन बड़ा ही

दिव्य होता था। वे भी भातर की एक विलक्षण विभूति ही थे। कुछ दिनों प्रयाग में रहकर श्रीमहाराजजी भट्टजी को साथ लेकर सेठ गौरीशंकर के साथ काशी गये वहाँ सेठजी ने श्रीभट्टजी के द्वारा रासपंचाध्यायी की कथा बड़े समारोह से करायी। उस कथा में उन्होने काशी के सभी बड़े-बड़े विद्वानों को आमन्त्रित किया। वहाँ श्रीभट्टजी का प्रवचन ऐसा अलौकिक, दिव्य, भावमय एवं विद्वत्तापूर्ण हुआ कि सभी विद्वान् आपकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे और सभी ने उस कथा मृत का पान करके दिव्य व्रजसुख का आस्वादन किया।

इस प्रकार कुछ दिनों तक काशी में व्रजरस का वितरण कर आप बाँध की ओर चले आये और भट्टजी महाराज श्रीवृन्दावन चले गये।

दिल्ली का उत्सव

दिल्ली की 'नवलप्रेमसभा' वहाँ के कीर्तन-प्रेमियों की एक सुसंगठित संस्था है। उसके मंत्री हैं पं. ज्योतिप्रसादजी। मंत्री क्या, आपको तो उसका प्राण कहा जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। आप ही के विशेष उत्साह और प्रोत्साहन से यह संस्था भगवन्नाम का प्रचार और आस्वादन कराने में प्रवृत्त है। सन् १९३१ में इस सभा ने एक उत्सव का आयोजन किया। उसमें भक्त परिकर के सहित श्रीमहाराजजी को आमन्त्रित किया गया। वास्तव में तो वह उत्सव आप ही के लिये किया गया था। अतः उसकी सब योजना भी आप ही के आदेशानुसार की गयी थी।

उस उत्सव में आस-पास के कई स्थानों की कीर्तन मण्डलियाँ एकत्रित हुई थीं। आपने शिवपुरी की मण्डली को लाने के लिये मुझे भेजा। उस मण्डली का एक प्रमुख रत्न था शिवचरण वह जाति का वैश्य था और शिवपुरी के मन्दिर के पड़ोस में ही उत्तर की ओर उसका मकान था। वह गाने, रोने तथा कीर्तन और लीलानुकरण करने आदि सभी क्रियाओं में बड़ा कुशल

था। जिस समय वह अकेले अथवा राधेश्याम के साथ मिलकर, पद गाता था उस समय उसे अपने शरीर की भी सुधि नहीं रहती थी। उसे सुनने वाले भी मन्त्रमुग्ध से रह जाते थे। इस समय उसकी ज्ञाना नाम की एक तीन-चार वर्ष की लड़की बहुत बीमार थी इसलिए वह दिल्ली जाना नहीं चाहता था। और उसके न जाने से मण्डली अधूरी रह जाती थी। इसलिये मैंने चलने के लिये उस पर बहुत जोर दिया और झूठ-मूठ ही कह दिया कि यह तो अच्छी हो गयी। भगवदिच्छा से उसी रात को स्वप्न में अथवा प्रत्यक्ष प्रकट होकर श्रीमहाराजजी ने उसकी स्त्री से कहा, 'ले, यह दवाई अपनी लड़की को खिला दे, वह अच्छी हो जायगी और शिवचरणलाल को दिल्ली जाने दे।' उसने सचमुच ही वह दवा ज्ञाना को खिलायी और वह सचेत होकर बैठ गयी। उसने सब बातें शिवचरणलाल को सुनायीं और उसे दिल्ली जाने की अनुमति दे दी। पहले वही उसे जाने से रोक रही थी। बस, शिवचरणलाल हमारे साथ दिल्ली चला आया।

दिल्ली में उस समय बड़ा अद्भुत समारोह हुआ। वहाँ बड़े-बड़े सन्त, महात्मा, गायक, कीर्तनकार, विद्वान् और कथावाचक एकत्रित हुए। रासमण्डली ने श्रीश्यामसुन्दर की रसमयी ललित लीलाएँ भी दिखलायीं। उन दिनों 'नवल प्रेम सभा' के प्रधान थे सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पं. हरिनारायणजी शास्त्री। वे वयोवृद्ध और उद्भट विद्वान् होने पर भी बालक की तरह सरल एवं भगवद्विश्वासी थे। यों तो उनकी साधु एवं ब्राह्मण मात्र में श्रद्धा थी परन्तु श्रीमहाराजजी के प्रति तो उनका बड़ा ही गम्भीर भाव था। वे उत्सव के प्रायः प्रत्येक प्रोग्राम में सम्मिलित होते थे। श्रीमहाराजजी की कथा में तो वे अवश्य ही सम्मिलित होते थे तथा कीर्तन के समय भी निरन्तर खड़े रहकर आँसुओं की वर्षा करते रहते थे। कभी-कभी उनका व्याख्यान भी होता था। वह इतना सरल, भावयुक्त और विद्वत्तापूर्ण होता था कि सभी प्रकार की जनता उससे मुग्ध हो जाती थी।

आप कई दिनों से श्रीमहाराजजी को मेरा व्याख्यान कराने के लिये विवश कर रहे थे। आपके आग्रह करने पर पहले तो महाराजजी यह कहकर
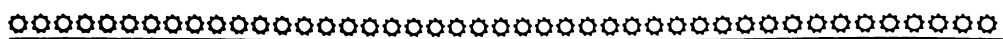
टालते रहे कि यह व्याख्यान देना क्या जाने। यह तो कुछ पढ़ा-लिखा भी नहीं है, पागल-सा है। किन्तु जब उन्होंने बहुत जोर दिया तो एक दिन मुझे खड़ाकर दिया। उस समय वहाँ दिल्ली के सौ-दौ सौ विद्वान् और प्राय: दस सहस्र जनता एकत्रित थी। मैं प्राय: एक घण्टे तक पागल-सा प्रलाप करता रहा। पता नहीं, उस समय क्या-क्या कह गया।

उस उत्सव में भारत के सुप्रसिद्ध व्याख्यानविशारद कविरत्न पण्डित अखिलानन्दजी, स्वनामधन्य महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा तथा और भी अनेकों विद्वानों के ओजस्वी एवं सारगर्भित भाषण होते थे। उनके सिवा प्रोफेसर रामानन्दजी, स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी बंगाली, श्रीविन्दुशरणजी और उनके भाई श्रीअवधशरणजी आदि बड़े-बड़े गायनाचार्य भी पधारे थे। वे सुमधुर पदगान के द्वारा मानो जनता के कर्णकुहरों में अमृत की ही वर्षा कर रहे थे महापुरुषों में हमारे श्रीमहाराजजी के सिवा भक्ति आश्रम रेवाड़ी के संस्थापक पूज्य स्वामी परमानन्दजी एवं भगवानपुर के स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी महाराज भी पधारे थे।

उस उत्सव में बड़े ही चमत्कारिक कीर्तन होते थे। श्रीमहाराजजी दो-दो घण्टे तक निरन्तर घण्टा बजाकर कीर्तन करते थे। नगाड़े, ढोलक, खोल, दो-तीन तबले, तीन-चार हारमोनियम, सैकड़ों जोड़ी झाँझ और करतालों की रौल के साथ हजारों भक्तों के कण्ठों से श्रीहरिनाम का घोष हो रहा था। उस पर अनेकों घण्टों की टंकार तो साक्षात् वंशीनाद का ही काम करती थी। उस आकाशव्यापिनी तुमुल कीर्तनध्वनि को सुनकर भक्तजन सहसा पागल हो जाते थे और थिरक-थिरककर नृत्य करते थे। उनमें से सैकड़ों भाव से विह्वल होकर रुदन करते थे, सैकड़ों हँसने लगते थे और सैकड़ों ही पृथ्वी पर लोट-पोट हो जाते थे। कोई किसी को आलिंगन करता था तो कोई किसी के चरणों की धूलि लेकर मस्तक पर चढ़ाता था। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो यह संकीर्तन साक्षात् अमृत का सागर है और सब भक्तजन उसमें मछली की तरह सन्तरण करते हुए उस अमृत को पी-पीकर मतवाले हो रहे हैं।

श्रीमहाराजजी कभी तो घण्टा बजाते हुए मण्डल के बीच में चक्र की तरह घूमते थे और कभी एकदम प्रफुल्लित एवं खुले हुए नेत्रों से करुणापूर्वक निहारने लगते थे। उस समय ऐसा जान पढ़ता था मानो आप यह संकेत कर रहे हैं कि जब मैं तुम्हारे बीच में उपस्थित हूँ तो तुम्हें क्या भय है। कभी आप कूद-कूदकर नृत्य करने लगते थे, किन्तु उस समय भी घण्टा ठीक ताल की गति के अनुसार बजता रहता था। घण्टा बजाते-बजाते आप त्रिभंग होकर एकदम झुक जाते थे। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि सबको पागल बनाकर भी आप पूर्णतया सावधान रहते थे।

इस अपूर्व समारोह तथा रत्नसमुच्चय में एक देदीप्यमान रत्न थे हमारे श्रीभट्टजी महाराज। आपके श्रीरासपंचाध्यायी के प्रवचन ने दिल्ली की समस्त जनता को मन्त्रमुग्ध-सा कर रखा था। श्रोताओं में विद्वत्समाज आपकी विद्वत्ता से चमत्कृत था, साहित्यप्रेमी आपकी काव्यमयी भाषामाधुरी से मुग्ध थे और भावुक भक्त अद्‌भुत भावमाधुर्य का आस्वादन करके उन्मत्त-से हो रहे थे। आप जिस समय जिस भाव का वर्णन करते थे वही मानो मूर्तिमान होकर खड़ा हो जाता था। सख्य, वात्सल्य, माधुर्य, दास्य एवं कारुण्य आदि सभी रस उनकी वाणी पर नृत्य करते से जान पड़ते थे। जब जिस रस का प्रसंग होता वही उनकी वाणी से प्रवचन रूप में प्रत्यक्ष होकर श्रोताओं के हृदयप्रांगण में नृत्य करने लगता था। आपकी वाणी में बड़ा ओज था आपका प्रत्येक शब्द प्रेमरस में पगा होता था। वे आजकल के से कोरे कथक्कड़ नहीं थे। वे तो प्रिया-प्रियतम के नित्य विहार में निरन्तर निमज्जन करने वाले उनके नित्य परिकर ही थे। सचमुच, ऐसी दिव्य विभूतियाँ संसार में बहुत कम प्रकट होती हैं। हम लोगों के समक्ष इस दिव्य कथामृत के वितरण का सम्भवतः यह चौथा अवसर था। खेद है कि यही अन्तिम सिद्ध हुआ। इसके पश्चात् हम इस दिव्य कथासुधा से वंचित रह गये।

एक दिन भोजन के पश्चात् जब सत्संग हो रहा था, सम्भवतः भट्टजी की कथा के ही समय, बड़ी भयानक आँधी आयी। उसके कारण

उत्सव का सारा पण्डाल अस्त-व्यस्त हो गया। परन्तु श्रीमहाराजजी जहाँ के तहाँ ही बैठे रहे और जोर-जोर से 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का कीर्तन करते रहते। उधर आँधी के झोंके पर झोंके और इधर कीर्तन की आकाशव्यापिनी ध्वनि............बस, एक प्रकार से राम-रावण संग्राम छिड़ गया। सब लोग चारों ओर से शामियाने के खम्भों को पकड़े हुए थे(किन्तु जब आँधी का झोंका आया तो खम्भे उन आदमियों के सहित उखड़ कर दूर जा पड़े। बस, जिस खम्भे के नीचे श्रीमहाराजजी थे वही बच रहा। अस्तु कीर्तन पहले ही की तरह खूब जोरों से होता रहा।

यह दृश्य प्राय: दो घण्टे तक रहा। पानी भी बरसा। किन्तु अन्त में सब शान्त हो गया। तत्काल ही हाथों-हाथ मण्डप सँभाल दिया गया और सब लोगों के यथास्थान बैठ जोन पर कथा होने लगी।

आज की आँधी अवश्य किसी भावी उपद्रव की सूचना देने वाली थी। भट्टजी महाराज को कथा समाप्त होते ही कुछ घबराहट-सी जान पड़ी और वे मोटर द्वारा अपने निवास स्थान पर चले गये। वहीं उन्हें रक्तपत्तिका दौरा हुआ और रुधिर के कई वमन हुए। इससे आपका शरीर बहुत शिथिल पड़ गया। तब आपने पं. ज्योतिप्रसाद से कहकर श्रीमहाराजजी को बुलाया। आप प्रोग्राम समाप्त करके वहाँ पहुँचे तो देखा कि भट्टजी तो मृत्यु के द्वार पर पहुँच चुके हैं और धीरे-धीरे श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण कर रहे हैं। महाराजजी के पहुँचने पर आपने आँखें खोलीं और कहा, 'आप मुझे वृन्दावन पहुँचा दें।' श्रीमहाराजजी ने कहा, 'क्या घरबार और पुत्रों की याद आती हैं' वे बोले,'मेरी तो केवल यही भावना है कि यह शरीर श्रीधाम में ही छूटे।' महाराजजी ने पूछा, 'आप क्या चाहते हैं?' भट्टजी बोले, 'श्रीवृन्दावन पहुँचकर अत्यन्त सावधानी से श्रीकृष्ण-नाम का मेरे मुख से उच्चारण होता रहे, मेरे प्राणप्रियतम युगलसरकार की मधुर मूर्ति का ध्यान मेरे हृदय में बना रहे और इस स्थूल शरीर को त्याग कर मैं सदा के लिये उनके नित्य परिकर में सम्मिलित हो जाऊँ।' आप बोले,'यह तो आपका जन्मसिद्ध अधिकार ही है, इसमें कुछ

कहने सुनने की बात नही है। हमारी इच्छा तो यह है कि आप अभी कुछ दिन और इस धराधामपर रहकर हमें कथामृत पान करायें। यदि आप चाहें तो ऐसा भी हो सकता है।

इस पर भट्टजी ने बड़ी नम्रता से कहा, 'मैं जानता हूँ कि आपके संकल्पमात्र से सब कुछ हो सकता है। किन्तु अब मेरे प्रियाप्रियतम की ऐसी ही इच्छा है। अतः आप प्रसन्नता पूर्वक मुझे विदा करें। इतनी कृपा अवश्य हो कि मैं सुखपूर्वक श्रीधाम में पहुँच जाऊँ। कृपया मेरा जो अपराध हो आप क्षमा करें।' तब आपने यह कहकर कि जैसी आपकी इच्छा, उसी समय ज्योतिप्रसादजी के द्वारा किसी की बढ़िया मोटर मँगवायी और अत्यन्त सत्कार पूर्वक उन्हें विदा किया।

श्रीभट्टजी महाराज सुखपूर्वक वृन्दावन पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने शान्तिपूर्वक कई स्त्रोत-पाठ किये तथा किसी के द्वारा श्रीरासपंचाध्यायी का पाठ भी सुना। फिर पृथ्वी पर श्री यमुनाजी की बालुका बिछाकर उस पर कुशा बिछाये गये। उन पर आप शान्तिपूर्वक अपना इष्ट मंत्र जपते अनायास ही इस स्थूल देह को त्याग कर भावदेह के द्वारा सदा के लिये श्रीश्यामसुन्दर के नित्य लीलापरिकर में प्रविष्ट हो गये।

कृष्ण चरण दृढ़ प्रीति करि, भट्ट कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठतें, गिरत न जानत नाग॥

उनके वृन्दावन चले जोन पर श्रीमहाराजजी ने कहा कि जब आँधी आयी थी तभी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि यह किसी महापुरुष की मृत्यु का लक्षण है। मुझे उसमें दिव्य पार्षद प्रत्यक्ष दीख पड़े थे। वास्तव में तो वही उनकी मृत्यु का ठीक समय था। यह तो उनकी श्रीवृन्दावन में देह-त्याग करने की दृढ़ भावना का ही परिणाम था कि वे इतनी देर और जीवित रहे। अवश्य ही वे कोई उच्च्च कोटि के भगवत्पार्षद ही थे हम लोगों पर कृपा करके ही वे इतने दिनों के लिये इस धराधाम पर आये थे।

इस प्रकार इस उत्सव में जहाँ हमने अनेकों महापुरुषों के वचनामृत और श्रीहरिनामामृत का पान करके दिव्य अलौकिक सुख का अनुभव किया वहाँ श्रीभट्‌टजी जैसे भगवत्प्राण महापुरुष का दु:सह वियोग-दु:ख भी सहन किया। कुछ दिन इस सुख-दु:ख के झूले में झूलकर उत्सव समाप्त होने पर हम लोग बाँध पर लौट आये।

सन् १९३२ की बंगयात्रा

दिल्ली का उत्सव समाप्त हो जाने पर श्रीमहाराजजी ने बंगाल की यात्रा करने का विचार किया। आप तो अकेले ही जाना चाहते थे। किन्तु जब मैंने अधिक आग्रह किया तो मुझे साथ ले जाना स्वीकार कर लिया।

आज चैतन्यचरितामृत से श्रीमन्महाप्रभुजी की लीलाओं को सुनते हुए अपने छोटे हरिदास की कथा का उल्लेख किया। इन हरिदासजी को वृद्धा माधवीदासी से चावल माँगकर लाने के अपराध से ही श्रीमन्महाप्रभुजी ने त्याग दिया था। इसके साथ ही आपने उस प्रसंग का भी उल्लेख किया जिसमें स्वयं श्रीमहाप्रभुजी ने एक विधवा ब्राह्मणी के सुन्दर बालक से भाषण करने पर अपने परम निरपेक्ष भक्त दामोदर पण्डित के द्वारा वाग्दण्ड स्वीकार किया था और प्रसन्न होकर उन्हें शची माँ और श्रीविष्णुप्रियाजी के रक्षावेक्षण के लिये नवद्वीप भेज दिया था। उनके इस निर्भीक व्यवहार से वे इतने प्रसन्न हुए कि बार-बार उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे थे, पण्डित! तुम्हारे समान तो मेरा हितकारी त्रिलोकी में कोई नहीं है।' इस प्रसंग पर श्रीमहाराजजी ने बहुत कुछ कहा। आप बोले, 'हम सिद्धों की बात कुछ नहीं कहते। वे चाहे कुछ भी करें। किन्तु उन्हें भी यदि लोकसंग्रह करना है तो साधक बनकर निरन्तर मर्यादा और
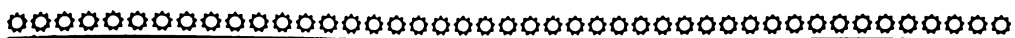
वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करनी पड़ेगी। नहीं तो संसार में बड़ी गड़बड़ी मच जायेगी। इस विषय में स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं -

'न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेष् किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥' (गीता ३/२२/२४)

'इसलिये जो भी ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी होकर स्त्री से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है अथवा उससे बातचीत करता है उसका स्वयं ही पतन होता है और वह दूसरों का भी पतन करता है। अतः साधकों, आचार्यों तथा लोकहित में तत्पर रहने वालों को तो अत्यन्त सावधान रहना चाहिये। क्योंकि उन पर सारे संसार के हिताहित का उत्तरदायित्व रहता है। उनको तो अपनी कायिक, वाचिक और मानसिक प्रत्येक चेष्टा अत्यन्त धर्म पूर्वक ही करनी चाहिए।'

इस प्रान्त में आपका बहुत बड़ा प्रभाव था। आप जिस काम को हाथ में लेते थे उसके लिये लाखों रुपयों की वर्षा-सी होने लगती थी। रुपये के लिये आपने कभी कुछ विचारा ही नहीं; किन्तु कभी हाथ से पैसा नहीं छुआ। आपने बाँध जैसा महान् कार्य किया, जिसमें प्रायः दस लाख रुपया व्यय हुआ। और वह बात की बात में ही पूरा हो गया। किन्तु अपने शारीरिक व्यवहार के लिये व्यय करने में आपको सदा ही संकोच रहा है। आप तो सदा गरीबों को ही पसंद करते हैं और गरीबों से ही सर्वदा आपका प्रेम रहा है। अमीरी और अमीरों से तो आपको घृणा ही रही है। जो लोग आपकी परिस्थिति को नहीं समझते वे ही आपके विषय में तर्क-वितर्क करते हैं। स्थिति समझ लेने पर तो उन्हें लज्जित ही होना पड़ेगा। आपके पास खुला ऐश्वर्य होने पर भी वह कभी आपके हृदय को स्पर्श नहीं करता। आपने केवल अपने इनेगिने अत्यन्त अंतरंग भक्त और सेवकों को छोड़कर स्त्री तो क्या, किसी पुरुष से भी कभी

मुँह खोलकर बात नहीं की। बड़े-बड़े घरों की रानी तथा सेठानी आपसे सदा प्रेम करती रही है और उन्होंने आप पर अपने तन मन धन सभी न्यौछावर कर दिये हैं, किन्तु आपने कभी उनसे मुँह खोलकर बात नहीं की और व्यवहार में भी उनकी उपेक्षा ही करते रहे हैं।

अन्तःकृपा और वाह्यकठोरता यह आपका मज्जागत स्वभाव रहा है। आप स्पष्ट ही कहा करते हैं कि बड़े-बड़े महात्मा और सिद्ध पुरुरू जो संसारी जीवों पर कृपा करके उनके भोजन, वस्त्र और सुख-दुख की बात पूछते रहते हैं, इससे साधक बिगड़ जाते है। इससे उनका वास्तविक हित नहीं होता। उनका वास्तवविक हित तो उनके प्रति व्यवहार में उपेक्षा और कड़ाई रखने से ही होता है। इसलिये दूसरों का पैसा लेकर उसे अपने लिये खर्च करने में आपको बड़ा संकोच होता था।

'मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ कारने, मोहि न आवत लाज॥'

आप जब बाँध, वृन्दावन या शिवपुरी आदि स्थानों में रहते हैं तो व्यवहार का भार हम लोगों पर छोड़कर आप तो निश्चिन्त हो निरन्तर भजन, कीर्तन और सत्संगादि में ही लगे रहते हैं। व्यवहार में क्या हो रहा है, इसका आपको कुछ पता नहीं रहता। तो भी उसकी त्रुटियाँ आपकी दृष्टि से ओझल नहीं रहतीं और आप उनके लिये हमें सावधान भी करते रहते हैं। इस प्रकार आपके जीवन की प्रत्येक चेष्टा हमारे लिये अत्यन्त उपदेश पूर्ण होती है।

अस्तु! अब आप मुझे साथ लेकर बंगयात्रा को चले। मेरे स्वभाव में स्वतन्त्रता, पैसा अधिक खर्च करना और आपको सुखपूर्वक जीवनयापन करते देखना इत्यादि कई प्रबल दोष थे, जिनके कारण आप समय-समय पर मुझे डांटते रहते थे। मैं इतना ढीठ हो गया था कि कभी-कभी तो जबाब भी दे देता था। आपके मना करने पर भी मैं यात्रा के लिये काफी खर्चा लेकर चला था और चाहता था कि खूब खुला खर्च किया जाय, जिससे आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो और मैं भी सुखपूर्वक रहूँ। किन्तु यह बात महाराजजी को सदा

अखरती थी। वे चाहते थे कि जिस प्रकार गरीब-से-गरीब आदमी अपना निर्वाह करते हैं उसी प्रकार हम भी करें।

हम काशी, गया, वैद्यनाथ और कलकत्ता होते हुए नवद्वीप पहुँचे। वहाँ कई दिन रहकर एक दिन गंगाजी के उस पार कटवाको, जहाँ श्रीमन्महाप्रभुजी के सन्यास-गुरु श्रीकेशव भारती की समाधि है, पैदल ही चले। वैसे तो नवद्वीप से कटवाको पक्की सड़क जाती है और ताँगे आदि भी खूब चलते हैं; किन्तु आपने पैदल चलना ही पसन्द किया। कटवा वहाँ से प्राय: चौदह मील था और हमारे पास सामान भी बहुत था। मैंने कहा,'कम से कम एक कुली तो अवश्य कर लेना चाहिये।' किन्तु आपने नहीं करने दिया। मुझे पैदल चलना तो कुछ बात नहीं थी, किन्तु बोझा लेकर चलने का अभ्यास नहीं था। तथापि मेरे बार-बार आग्रह करने पर भी आपने कुली नहीं करने दिया और कहा,'इतना सामान क्यों रखते हो?' मैंने तुमसे बार-बार मना किया था। अच्छा, अभी सारा सामान गरीबों को बाँट दो।' परन्तु मैंने कुछ न सुना, क्योंकि मेरी दृष्टि में वह सामान अधिक नहीं था। आप बोले, 'अच्छा यह बड़ा बिस्तरा तो मुझे दे दे, इसे मैं ले चलूँगा। तेरे अन्दर तो अमीरी आ गयी है। तू तो आरामतलब हो गया है।' मैंने कहा, 'इस रुपये को क्या हम चबायेंगे।' यह खर्च के लिये ही तो है।' तब भी आपने न माना।

मैंने बिस्तरा आपको नहीं दिया और सारा सामान अपने सिर पर ही उठाकर चौदह मील चलकर कटवा पहुँचे। परन्तु इसमें मुझे कुछ भी कष्ट प्रतीत न हुआ। प्रत्युत बड़े हर्ष और आनन्द का अनुभव हुआ। वहाँ पहुँचकर मैं चरण पकड़कर खूब रोया। तब आप बोले, 'भाई! तप, तितिक्षा और त्याग का जीवन ही वास्तविक जीवन है। नहीं तो यह मनुष्य पशु से भी गिरा हुआ है। अपनी आवश्यकताओं को जितना कम कर दोगे, परिणाम में उतना ही तुम्हें सुख मिलेगा। देखो, यह मन तो बड़ा ही धोखेबाज है। सदा ही आरामतलबी और ऐन्द्रियिक सुखों को चाहता रहता है। इसलिये इसकी चालबाजियों से बचे रहकर सदा ही अपने मन, इन्द्रिय और शरीर को खींचे रहो! इसका सबसे
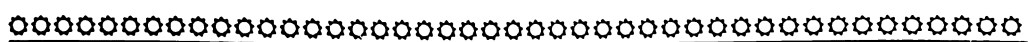
प्रबल शत्रु आलस्य है। उसे कभी पास न आने दो। चलते, फिरते, सोते, जागते, खाते, पीते सदा सावधान रहो। किन्तु इतना अधिक भी मत खींचों कि शरीर सहन न कर सके। इस कलिकाल में तो गीतोक्त युक्ताहार-विहार ही मेरे विचार से परम योग है किन्तु इसका रहस्य भी किसी समर्थ गुरु के अनन्यशरण होने पर ही समझ में आवेगा; नहीं तो मनीराम इसमें भी अनेकों युक्तियाँ निकाल लेंगे।'

श्रीमहाराजजी को हमने कभी ढीले-ढाले काम करते नहीं देखा। आपकी अवस्था ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी है। त्यों-त्यों आपके तप, त्याग और तितिक्षा में भी वृद्धि ही हुई है। आपको कभी ढीले होकर बैठते नहीं देखा गया। एकान्त में तो आप प्राय: खड़े होकर स्वाध्याय करते हैं और यदि उसमें भी आलस्य प्रतीत होता है तो पंजों के बल खड़े हो जाते हैं। कीर्तन में भी जब बैठते हैं तो पंजों के बल घुटने टेककर ही बैठते हैं। हमसे तो उस तरह थोड़ी देर भी नहीं बैठा जा सकता। कथा में पहले तो आप सर्वदा सिद्धासन से बैठा करते थे। किन्तु वृद्धावस्था में अत्यन्त खिंचे हुए वीरासन से बैठने लगे हैं। आपका मत है कि चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय मेरुदण्ड को सीधा ही रखना चाहिये, इसे कभी झुकने नहीं देना चाहिये। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भी कहा है -

'समं कायशिरो ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम्।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥'

अत: आप हर समय शरीर को खींचे रहते हैं। बाँध से पहले तो आपका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा था। किन्तु बाँध में अकथनीय और अमानुषिक परिश्रम करने के कारण उसमें कुछ शिथिलता आ गयी थी। शरीर में मांस की बहुत कमी हो गयी थी, किन्तु आपके चेहरे का प्रकाश पहले से भी अधिक देदीप्यमान हो गया था। आपके कार्यकौशल और स्फूर्ति में भी कोई कमी नहीं आयी। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि पहले जहाँ छ: घण्टे कीर्तन करके भी नहीं थकते थे, अब वृद्धावस्था में एक घण्टे से अधिक कीर्तन

करना कठिन होता है। किन्तु जितना भी करते हैं ठीक उसी प्रकार सिंहगर्जन से और पूरा बल लगाकर करते हैं।

अस्तु! नवद्वीप से आप पुनः कलकत्ता लौट आये और वहाँ से जगन्नाथजी पधारे। वहाँ सम्भवतः एक महीना ठहरे। उस जगह भी अधिक खर्च करने के कारण कई बार मुझ पर नाराज हुए और बार-बार मुझसे अलग होने को कहते रहे। किन्तु मैं न माना।

जगन्नाथपुरी से हम वैद्यनाथ धाम आये और श्रीबालानन्द ब्रह्मचारी के स्थान में ठहरे। उनके प्रधान शिष्य श्रीपूर्णानन्दजी ब्रह्मचारी ने आपको बड़े ही सत्कार से ठहराया किन्तु आप मुझसे चुपचाप बोले, 'भैया! यह तो रजोगुणी स्थान है। यहाँ तो हर समय बड़ी भीड़-भाड़ रहती है। बड़े-बड़े अमीर स्त्री-पुरुष निरन्तर ही आते रहते हैं। इसके सिवा यहाँ इस आश्रम के नियमों के अधीन भी रहना होगा। इसलिये तू बाहर जाकर दूसरा स्थान देख।' आज्ञा पाते ही मैं बाहर गया तो मुझे आश्रम के सामने ही सड़क के उस पार एक सुन्दर बगीचा दीख पड़ा। मैं उसमें चला गया। वह प्रायः बीस बीघा जमीन में बड़ा ही सुन्दर और रमणीक फल-फूलों से लदा हुआ एकान्त बाग था। उसमें दूर-दूर पर तीन कोठियाँ बनी हुई थीं। उनमें से सामने की बड़ी कोठी में बाग के मालिक श्रीजवाहरलाल जालान रहते थे। वे बड़े ही उत्साही, उदार, भजनानन्दी और साधुसेवी सज्जन थे। उन्होंने अपनी आधी सम्पत्ति अपने दत्तक पुत्र को देकर शेष दस लाख रुपया बैंक में जमा करा दिया था। उसका सूद वह पारमार्थिक कर्मों में खर्च करते थे और व्यवहार की सब खटपट छोड़कर वैद्यनाथ धाम में ही निवास करते थे।

मैंने बागवान् से पूछा कि मालिक कौन है? उसने मुझे कोठी के सामने कुर्सी पर बैठे हुए बूढ़े लाला जवाहरलालजी की ओर संकेत करके बताया कि वे ही मालिक हैं। मैं सीधा उनके पास गया और बोला, 'एक महात्मा एकान्त में रहना चाहते हैं, क्या आपके बगीचे में उनको स्थान मिल सकता है?' उन्होंने पूछा, 'कौन महात्मा हैं, वहाँ रहते हैं? मुझे नाम बताने के
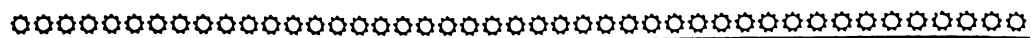
लिये महाराजजी ने मनाकर दिया था, अतः ऐसे ही कुछ गोल-मोल परिचय दे दिया। तब वे बड़ी उत्सुकता से बोले, 'वे कहाँ हैं, मुझे बताओ।' बस, वे मेरे साथ सड़क पर चले आये। महाराजजी को देखते ही उन्होंने प्रणाम किया और बोले,' आइये, पधारिये यह बगीचा तो आपका ही है। इसे पवित्र करके हमें कृतार्थ कीजिये।' महाराजजी उनके साथ ही लिये और मुझसे कहा कि महन्तजी से नम्रतापूर्वक कह देना कि आपके सामने ही एकान्त स्थान मिल गया है। इसलिये वहाँ जा रहे हैं। समय-समय पर दर्शन करते रहेंगे। मैंने ऐसा ही कह दिया और सामान उठा लाया। सेठजी ने तीनों कोठियाँ दिखा दीं और कहा कि आप जिसे पसन्द करें उसीमें रहें। आपने सबसे छोटी पश्चिमवाली पूर्वाभिमुख कुटी पसन्द की।

वैद्यनाथ धामका जलवायु बड़ा ही सुन्दर था। आप वहाँ खूब भोजन करने लगे और आपका बाँध का थका हुआ शरीर पुनः स्वस्थ होने लगा। उस बगीचे में पपीता और लीची के वृक्ष बहुत थे। आपको पपीता बहुत पसन्द था। अतः उसके पके फल और कच्चे फल का शाक अधिकतर खाते रहते थे जवाहरलालजी से नया ही परिचय था, इसलिये उनसे कुछ भी सामान लेने में आपको बड़ा संकोच होता था, किन्तु फिर उनका हार्दिक आग्रह देखकर आपने उनकी सेवा स्वीकार कर ली और वे सब प्रकार आपका ध्यान रखने लगे। वहाँ की सड़कें बड़ी सुन्दर और लम्बी चौड़ी थीं। आस-पास नीचे-नीचे पहाड़ तथा दूर-दूर पर कोठियाँ दिखायी देती थीं। इसलिए वहाँ का दृश्य बड़ा रमणीक दिखायी देता था। आप पाँच-सात या दस मील तक घूमने चले जाते थे। भोजन आपके लिए मैं ही बनाता था। अतः वहाँ आपका स्वास्थ्य बहुत ही बढ़िया हो गया था।

एक दिन आप बोले, 'आज मैं एक बड़े ही अपूर्व महापुरुष के दर्शन कर आया हूँ। उनको अधिकांश बंगाली तो साक्षात् श्रीमहाप्रभुजी का अवतार बताते हैं। वे देखने में बड़े ही सुन्दर हैं। उनका बहुत बड़ा सम्प्रदाय है और सारे भारत वर्ष में प्रायः सत्तर आश्रम हैं। उनके हजारों बी. ए. एम. ए. तथा
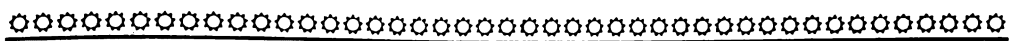
बड़े-बड़े आदमी शिष्य हैं। आज कल जिस स्थान में वे ठहरे हुए हैं वह एक बहुत बड़ा नवीन आश्रम ही बन गया है। उसमें ऊपर तो वे स्वयं रहते हैं और नीचे उनके भक्त प्राय:पचास स्त्री-पुरुष हैं उनका वैष्णव-शास्त्रों के अनुसार ही अष्टयाम होता है तथा ठीक तन्त्रोक्त पूजापद्धति के अनुसार षोडशोपचार पूजन, आरती एवं भोग लगाया जाता है। उनके सम्प्रदाय का नाम अरुणाचल मिशन है। यह मैं उनके जीवन तथा पूजापद्धति की कुछ पुस्तकें भी लाया हूँ। ये सब अंग्रेजी या बंगला में ही हैं, मैंने कुछ बंगला पुस्तकें देखीं, क्योंकि मैं आपसे कुछ बंगला भाषा पढ़ चुका था। वे तो श्रीमन्महाप्रभुजी के चरित्र से भी बढ़कर थीं। किसी-किसी पुस्तक में कविता में भी उनकी लीलाओं का वर्णन किया गया था।

भाई! अपने नास्तिक मन की बात तो मैं कहता हूँ। मुझे तो उनमें नाममात्र भी श्रद्धा नहीं हुई। हाँ कुतुहलवश उनको देखने की इच्छा अवश्य हुई, सो दूसरे दिन ही स्वाभाविक ऐसा संयोगबन गया, श्रीमहाराजजी ने उनके लिये कुछ फल लेकर जाने को कहा। तब मैं बोला,' मैं ही आपके साथ फल ले चलूँगा। वहाँ से लौटकर भोजन बना लूँगा।'

बस, प्रात:काल ही मैं फल लेकर श्रीमहाराजजी के साथ चला। वहाँ से करीब तीन मील चलकर उनके आश्रम में पहुँचे। वह तो उस समय की प्राय: एक लाख रुपये की तैयारी की कोठी थी। बीच में एक बड़ा भारी कीर्तन-हॉल और उसके चारों ओर बहुत बढ़िया दो मंजिला मकान था। हम ऊपर चले गये। वहाँ आप तो चुपचाप उनके सामने सिद्धासन लगाकर बैठ गये। किन्तु मेरा तो बन्दर-सा चंचल स्वभाव था मैं इधर-उधर देखने लगा। वे वास्तव में बड़े ही सुन्दर और अत्यन्त गौरवर्ण थे। उनके कंघा किये हुए लम्बे-लम्बे काले और चिकने केश बड़े ही सुशोभित जान पड़ते थे। उनकी आयु प्राय: चालीस वर्ष की थी और वे बढ़िया-सी रेशमी धोती और रेशमी डुपट्टा ओढ़े हुए थे उनके सामने एक तश्तरी में बढ़िया सोने के वर्क लगे हुए पान रक्खे हुए थे। तथा दो-चार सोने की डिब्बियों में सुपारी, इलायची और

तम्बाकू आदि सामग्रियाँ थीं। सामने एक बहुत बढ़िया चाँदी का हुक्का था, जिसमें सोने के तारों से मढ़ी एक लम्बी-सी नली लगी हुई थी। वे हुक्का गुड़गुड़ाते हुए अमीरों की तरह मसनद के सहारे पड़े हुए थे।

मैं तो उनका ठाठ-बाट देखकर दंग रह गया। कम से कम आठ दस शीशे की अल्मारियों में तो उनके रेशमी और ऊनी वस्त्र तथा जूते ही रखे हुए थे। इस प्रकार एक बड़े-से-बड़े महाराज या सम्राट-सा उनका ठाट-बाट था। बस, मैं तो उन्हें दण्डवत् करके चला आया। किन्तु आप तो नित्य की तरह ठीक नौ बजे से बारह बजे तक नेत्र बन्द किये सिद्धासन से उनके सामने बैठे रहे और उसके बाद निवास स्थान पर लौटे। एक दिन आपने मुझसे पूछा कि तेरी उनमें कैसी श्रद्धा हुई। तब मैंने साफ कह दिया कि मैं तो उनका ठाट-बाट देखकर दंग रह गया। तब आपने आश्चर्यचकित होकर पूछा, 'हैं! कैसा ठाट-बाट?' इस पर मैंने आपको सब बातें बतलायीं। फिर आप बोले, 'भाई! मैने तो कभी नेत्रभर कर उनका चेहरा नहीं देखा। हाँ, हुक्का पीने की आवाज तो अवश्य मेरे कानों में पड़ती थी किन्तु मैनें उनका हुक्का अच्छी तरह नहीं देखा। किन्तु बाहरी वेष-भूषा या ठाट-बाट से भीतरी स्थिति का पता लगाना कठिन है। बड़े-से-बड़े विरक्त वेष में भी अत्यन्त बहिर्मुख लोग देखे जाते हैं तथा बड़े-बड़े शाही ऐश्वर्यों में भी महापुरुष रहते हैं।

क्वचिच्छिष्टः क्वचिद्भ्रष्टः क्वचिद् भूतपिशाचवत्।
नानारूपधरो योगी विचचार महीतले॥

इसलिये बाहरी वेष देखकर किसी साधु को साधु या असाधु कहना बड़ी भारी गलती है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जहाँ अपनी श्रद्धा हो वहाँ सत्संग एवं सेवा करे और अश्रद्धा हो वहाँ उपेक्षा कर दे। किन्तु किसी के विषय में बुरा भाव रखना तो पाप ही है।'

इसी प्रकार आप मुझे बहुत समझाते रहे। किसी भी व्यक्ति में दोष-दृष्टि करना अथवा किसी के दोष सुनना तो सदा से ही आपको असह्य रहा है। आप तो प्रत्येक व्यक्ति में उसके केवल गुण ही देखते हैं। यह आपका
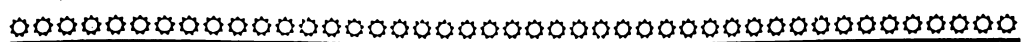
सहजसिद्ध गुण है। आप तो नाममात्र के साधु अथवा भक्त में भी हार्दिक श्रद्धा रखकर उसकी यथासाध्य सेवा ही करते हैं। आपका दिव्य चिन्मय विग्रह तो केवल दिव्य गुणों का ही भण्डार है। वह तो मानो दिव्य धामका एक ऐसा सुस्वादु फल है, जिसमें छिलका या गुठली कुछ नहीं है, भीतर-बाहर केवल रस ही रस है। अस्तु, आप तो एक महीने तक ठीक उसी प्रकार नित्य ठाकुर दयानन्दजी के पास जाते रहे और नित्यप्रति तीन घण्टे तक उनके सामने ध्यानावस्थित होकर बैठते रहे।

फिर एक दिन आप वहाँ से आकर बोले, 'भाई! मुझे तो वहाँ बैठने से कोई विशेष बात प्रतीत नहीं हुई।' मैंने पूछा, 'आप वहाँ क्या बात देखना चाहते थे?' तब आप बोले, 'मेरी दृष्टि में तो महापुरुष का एक मात्र लक्षण यही है कि जिसके सहवास, सत्संग, भाषण या सान्निध्य से स्वाभाविक ही अपने इष्ट की स्फूर्ति पहले से शतगुण होकर जाग्रत हो उठे। हाँ, यह अवश्य है कि उनके पास जाकर अपने चित्त को संस्कारों से खाली कर देना चाहिये। सो मैंने तो बहुत प्रयत्न किया। मुझे ऐसी कोई बात प्रतीत नहीं हुई। कई ऐसे महापुरुष होते हैं कि जिनके पूर्व पुण्य अथवा संस्कारों के कारण आरम्भिक अवस्था में ही कुछ विशेष चमत्कारों का विकास, भगवत्तत्त्व का प्रकाश अथवा सिद्धियों की धूम मच जाती है। किन्तु इस प्रकार लोक में प्रसिद्धि पाकर उनको केवल ऐहिक सुख अथवा प्रतिष्ठा ही प्राप्त होते हैं। पूर्वपुण्यों के कारण आरम्भ में उन्हें जो वैराग्य या उपरति की अनुभूति हुई थी वह भी लुप्त होकर वे आध्यात्मिक दृष्टि से कोरे ही रह जाते हैं किन्तु यह सब होने पर भी उनका अध:पतन नहीं हो सकता। भगवत्कृपा से उनका फिर भी कभी उत्थान होगा और वे सदा के लिये कृतकृत्य हो जायेंगे। तथापि अपना हित चाहने वाले साधक को तो उनसे सावधान ही रहना चाहिये और वह सावधानी यही है कि उनसे उदासीन हो जाय।

उसके दो-चार दिन पीछे ही वहाँ से चलकर हम गया आये। वहाँ भी एक पहाड़ी पर स्वामी ब्रह्मानन्द नाम के एक महात्मा का बड़ा ठाट-बाट देखा। किन्तु वे स्वयं तो एक लगोटी लगाये पत्थर की एक नंगी शिला पर मस्त पड़े

हुए थे, मानो साक्षात् भगवान् दत्तात्रेय ही हों। उनकी कोठी भी प्रायः एक लाख रुपये की तैयारी की थी तथा उसमें प्रायः पचास हजार का समान भी था। वे बड़े विद्वान् और भीतर से विरक्त ब्रह्मनिष्ठ संत थे। उनकी स्थिति और बातचीत से पीछे श्रीमहाराजजी ने स्वयं ऐसा बताया था।

मेरी बीमारी

गया से चलकर हम काशी आये। वहाँ आते ही मुझे भयंकर ज्वर हो गया। उसका कारण यही जान पड़ता है कि निरन्तर सहवास के कारण मुझसे कई प्रकार के कायिक, वाचिक और मानसिक अपराध होते रहते थे। आप कहा करते थे समर्थ गुरु के पास भी निरन्तर रहना अच्छा नहीं है, क्योंकि जीव का स्वभाव तो प्रमादी ही है। आपने ज्वर आने से पहले ही मुझसे कहा था कि अब तू कुछ दिनों के लिये मुझसे अलग हो जा। किन्तु हठवश मैंने नहीं माना। उसी का परिणाम यह हुआ कि मुझे १०६ डिग्री ज्वर हो गया, जिसने मुझे पागल-सा बना दिया।

काशी में मणिकर्णिका घाट के पास ही गंगातट पर श्रीगौरीशंकर गोयन का एक स्थान था। वहाँ उनके घनिष्ठ मित्र श्री नित्यानन्द पांडे (जज साहब) रहते थे। उनके सामने ही श्रीमहाराजजी मेरे पास आ बैठे और कुछ छेड़छाड़ करने लगे। मैं तो वैसे ही पागल हो रहा था। न जाने, क्या बकने लगा। कभी हँसता और कभी न जाने कया-क्या भला-बुरा महाराजजी से कहने लगता। उस समय मुझे प्रत्यक्ष ऐसा अनुभव होता था कि मैं मधुमंगल हूँ और श्रीमहाराजजी श्यामसुन्दर हैं। उस दिव्यभाव और ज्वर के वेग में संकोच बिल्कुल जाता रहा। कभी मैं महाराजजी से लिपट जाता और उनकी

अनेक प्रकार से स्तुति करने लगता तथा कभी उनके अनेकों दोष निकालता। यहाँ तक कि कभी-कभी तो ऊटपटाँग गालियाँ भी बकने लगता था।

इस तरह का प्रलाप मुझे प्राय: दो घण्टे रहा। फिर जजसाहब ने मुझे होमियोपैथिक दवाई दी। उससे तथा श्रीमहाराजजी के संकल्प से तीन दिन में ही मेरा ज्वर छूट गया। चौथे दिन महाराजजी ने मुझे समझा-बुझाकर इधर भेज दिया। वहाँ से सेठ गौरीशंकरजी के मित्र लाला कन्हैयालालजी खुरजा को आ रहे थे। उन्हीं के साथ मैं भी चला आया। मैं रेल में तो ठीक रहा; किन्तु ज्यों ही राजघाट स्टेशन पर उतरा कि तुझे फिर भयंकर ज्वर हो गया। मैं एकान्त में रहने के विचार से भेरिया जाना चाहता था। अत: मैंने एक बैलगाड़ी किराये पर की। ज्येष्ठ का महीना था और सवेरे के प्राय: दस बज चुके थे। ज्वर भी मुझे बहुत जोर से चढ़ा हुआ था। अत: प्यास के कारण मेरे प्राण सूखने लगे। गाड़ीवान् जाति का मुसलमान था और मुझमें जल लाने की शक्ति नहीं थी। अत: बड़ा कष्ट हुआ। जैसे-तैसे एक गाँव में पहुँचने पर मैंने एक हिन्दू से जल मँगवाकर अपनी तृष्णा शान्त की। किन्तु थोड़ी देर में ही मेरा गला फिर सूखने लगा। आखिर भेरिया से एक कोश इधर एक प्याऊ पर उतर पड़ा और गाड़ी वापिस कर दी। फिर ज्वर उतरने पर एक ग्वालिया पर बिस्तर रखवाकर पैदल ही भेरिया पहुँचा।

वहाँ के व्यवस्थापक ज्वालासिंहजी ने मुझे एकान्त में एक कुटी बता दी। यहाँ मेरे ज्वर ने बड़ा उग्ररूप धारण किया। मुझे मोतीझला हो गया और मैं केवल उबला हुआ जल पीकर लंघन करने लगा। यह देखकर ज्वालासिंह ने गाँव के एक आदमी को भेजकर रामेश्वर को बुला लिया। उसके साथ बाबूजी का नौकर सीताराम भी आ गया। रामेश्वर ने मुझे अनूपशहर ले जाने का बहुत हठ किया, किन्तु मैं चलने को राजी न हुआ। मेरे मन में यह निश्चय हो गया कि अब शरीर नहीं बचेगा। ज्वर के साथ मुझे पतले दस्त भी होते थे किन्तु उस समय मुझे मृत्यु से कोई भय नहीं जान पड़ता था, प्रत्युत उसका आलिंगन करने के लिये मैं उत्सुक-सा था।

उस समय मेरा चित्त बहुत एकाग्र था। मैं ज्वर के भयंकर वेग में आँख बन्द किये पड़ा रहता था। किसी से बोलने तक की मेरी इच्छा नहीं होती थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि श्रीमहाराजजी निरन्तर मेरे पास बैठे रहते हैं। उस समय मुझे योग की कठिन-से-कठिन अवस्थाओं का अनुभव होता था। बड़ी ही शान्ति, बड़ी ही एकाग्रता और बड़ा ही आनन्द प्रतीत हो रहा था। यहाँ तक कि जब रामेश्वर चिकित्सा की दृष्टि से मुझे अनूपशहर चलने को विवश करता था तो बड़ा दुःख होता था। मुझको अनूपशहर जाकर जीवित रहने की अपेक्षा यहाँ मरना अच्छा जान पड़ता था। मैं अपनी हठ पर तुला रहा और उसे निराश होकर गवाँ लौटना पड़ा।

अब मुझे प्रायः अठारह लंघन हो गये थे। रामेश्वर फिर आ गया और शिवपुरी से भाई साहब छेदालाल तथा दो-चार निजामपुर के भक्त भी आ गये। इन सबने मेरी हालत खराब देखकर एक नौका किराये पर की और उसमें छाया का ठीक प्रबन्ध कर एक खाट बिछा दी मैंने बहुत निषेध किया। फिर भी वे मुझे उठा ले गये। आखिर, भगवदिच्छा समझकर मैं भी चुप हो गया। किन्तु मुझे यह आशंका अवश्य रही कि अनूपशहर में मेरे चित्त की यह स्थिति न रह सकेगी। हुआ भी वही। नाव पर अच्छे ये अच्छा प्रबन्ध होने पर भी मेरा शारीरिक और मानसिक दुःख दस गुना बढ़ गया। चित्त की एकाग्रता एकदम नष्ट हो गयी। मैं जल से निकाली हुई मछली की भाँति विकल हो गया।

'सुख के माथे सिल पड़ो, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की जो छिन-छिन नाम जपाय॥
कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई॥'

पर करता क्या। अब तो मैं उनके ही हाथों में था।

अनूपशहर पहुँचने पर मुझे सेठ गौरीशंकरजी की धर्मशाला में उन्हीं के एक निजी कमरे में उतारा गया। उसी दिन राजवैद्य पं. रेवतीबल्लभजी उनके छोटे भाई पं. कृष्णबल्लभजी (लल्लूजी) और डॉ. रामचरणलाल सरकारी अस्पताल वाले आये। मेरी श्रद्धा श्रीलल्लूजी में थी। इसलिए उन्हीं की

चिकित्सा आरम्भ हुई। किन्तु अनेकों रासायनिक औषधियाँ देने पर भी ज्वर टस से मस न हुआ। बल्कि एक और व्याधि उत्पन्न हो गई। वह यह कि मेरे सारे शरीर में खुजली उभर आई। बड़ी ही भयंकर पीड़ा थी। प्राणान्त कष्ट था। रामेश्वर गवाँ से अपने चाचा लां. बाबूलालजी को लिवा लाया। उन्होंने मुझे देखकर कहा कि खुजली की दवा तो मैं गवाँ से भेज दूँगा। यह कहकर वे चले गये और वहाँ से एक बोतल तेल में कुछ क्षारीय द्रव्य मिलाकर भेज दिये उसको लगाने वाला था निजामपुर का भाईसिंह। उसके सिवा मेरे पास तीन-चार वार आदमी और भी रह्ते थे।

जब खुजली का दौरा होता था तो उठने की शक्ति न होने पर भी मैं बैठ जाता था और खुजाते-खुजाते सारे शरीर को लहूलुहान कर डालता था। उससे कभी-कभी तो मुझे मूर्च्छा भी आ जाती थी। जब भाईसिंह दवा लगाता था तो उसमें नमक होने के कारण पहले तो कुछ दाह होता था किन्तु शान्ति हो जाती थी। इस प्रकार दवाई लगाते-लगाते बोतल में तेल तो समाप्त हो गया नीचे केवल छार रह गया। बस एक दिन खुजली उठने पर भाईसिंह ने वह छार ही मेरे उधड़े हुए शरीर पर लगा दिया उसी समय सारे शरीर में आग सी लग गई और मैं घबरा गया। मुझे जीवन भर ऐसा कष्ट नहीं हुआ। मोती झला १०६ डिग्री ज्वर और प्रायः तीन लंघन, उस पर यह असह्य दाह! बाप रे बाप! मै तो दुःख के कारण मूर्च्छित हो गया। मैंने समझ लिया अब मैं मर ही जाऊँगा। इसी समय मेरे चित्त में ऐसा संकल्प हुआ कि यदि कोई मुझे उठाकर श्रीगंगाजी में फेंक दे तो मेरा यह असह्य दाह शान्त हो जाय। ऐसा विचार करते-करते मैं अचेत हो गया।

इस वेहोशी में मुझे एक बड़े जोर का अर्राटा-सा सुनाई पड़ा और ऐसा जान पड़ा जैसे कोकई पहाड़ी झरना बड़े जोरों से गिरता है। मेरी आँखें खुल गईं और मैने धर्मशाला के बड़े फाटक से अपनी ओर आती हुई पृथ्वी से चार फुट ऊँची और चार फुट मोटी गंगाजी की स्वच्छ और सुभ्र धारा प्रत्यक्ष देखी। यह अद्‌भुत चरित्र देखकर मैं चकित हो गया। वह धारा सीधी मेरे सिर की ओर आकर मेरे सारे शरीर को डुबोकर सर्र से मेरे पैरों की ओर

निकल गई। बस मुझे एकदम शान्ति हो गई। मेरी सारी जलन शान्त होकर मेरा सारा रोग दूर हो गया।

जिस समय यह धारा मेरे पास आई थी, मुझे उसमें से यह गम्भीर वाणी भी सुनाई दी थी कि बेटा! तूने मुझे स्मरण किया था, सो मैं आ गई। अब तेरा सारा रोग जाता रहेगा। श्रीभागीरथी की इस अपार करुणा को देखकर मैं विह्वल हो गया और बहुत देर तक आनन्द से मूर्च्छित हुआ पड़ा रहा। पीछे सावधान हुआ तो मुझे कुछ ठण्ड सी लगने लगी। उस समय मेरे पास कोई आदमी नहीं था। मैंने देखा कि मेरे सारे वस्त्र भीग गये हैं। मैंने धीरे से भाईसाहब छेदालालजी को बुलाया। वे मेरे पास आये और बड़े आश्चर्य से बोले, 'हैं! यह पानी तेरे ऊपर किसने डाल दिया?' मैंने कहा पीछे बताऊँगा। पहले मेरे कपड़े और चारपाई बदल दो। उन्होंने दूसरी चारपाई बिछाकर उसपर मुझे सुला दिया और मेरे कपड़ों को निचोड़कर धूप में सुखा दिया।

भाई साहब के बार-बार आग्रह करने पर मैंने उन्हें सारी बात सुना दी। इस बात को सुनकर भावाविष्ट हो रोने लगे। मेरा सारा रोग शान्त हो गया। उसके एक या दो दिन बाद ही पैंतीस लंघन में मुझे पथ्य दे दिया और उसके चार-पाँच दिन बाद रामेश्वर मुझे गवाँ ले गया। वहाँ लाला बाबूलालजी की देखरेख में मेरे पथ्य का ठीक प्रबन्ध हो गया। उस समय तो मेरी क्षुधा ऐसी बढ़ी कि मैं दंग रह गया। मैं बीमार क्या रहा, मानो मेरा कायाकल्प ही हो गया। उस बीमारी में सात दिन पथ्य लेने पर मेरा वजन ११२ पौण्ड था और उसके दो-तीन मास बाद मैं पूर्ववत् १५६ पौण्ड का हो गया था। मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल पहला सा ही हो गया। बीच में बाँध पर अतिरिक्त परिश्रम के कारण उसमें जो कमी हुई थी वह इस बीमारी के बाद पूरी हो गयी और मेरा शरीर पहले से भी अच्छा हो गया। तब मेरी समझ में यह रहस्य आया कि महाराजजी ने अत्यन्त कठोर होकर मुझे काशी से क्यों भेज दिया था। बीच-बीच में आपकी कठोरता का स्मरण होने से मुझे बड़ा दुःख होता; किन्तु पीछे मुझे निश्चय हो गया कि आपकी वह कठोरता भी अपार करुणा ही थी।

होशियारपुर का उत्सव

श्रीमहाराजजी काशी से घूमते-फिरते होशियारपुर पहुँच गये। वह सन् १९३२ के अन्त की बात है। उस सयम बड़े दिनों की छुट्टियों में वहाँ के भक्तों के विशेष आग्रह से आपने एक उत्सव करना स्वीकार कर लिया। मैं भी स्वस्थ होकर वहीं पहुँच गया था। आपने मुझे आज्ञा दी कि तू शिवपुरी तथा बाँध प्रान्त के प्रमुख भक्तों को लिवा ला। कम से कम सौ व्यक्ति तो आने ही चाहिये। वे सब अपने-अपने किराये का प्रबन्ध स्वयं कर लें और जो ऐसा करने में असमर्थ हों उनका प्रबन्ध किसी प्रकार तू कर देना। यहाँ के किसी व्यक्ति से पैसा भी नहीं लेना चाहिये।

मैं यहाँ आया और सबको सूचना दे दी। अत: सब लोग बड़े उत्साह से निश्चित तिथि पर होशियारपुर पहुँच गये। वहाँ पहले बड़े समारोह से चौबीस घण्टे का अखण्ड कीर्तन हुआ। उसमें वहाँ के लोगों ने भी बड़े उत्साह से भाग लिया। उनमें भी पुरूषों की अपेक्षा माइयों का विशेष प्रेम और उत्साह देखा गया। वे तो बराबर सैकड़ों की संख्या में एकत्रित रही। उनमें मुहल्ला बहादुरपुर की माइयों की एक मण्डली थी। वे सभी अच्छी पढ़ी-लिखी और सत्संग प्रिय थीं। उनमें जो प्रधान थीं वे तो अच्छी पण्डिता तथा साधन सम्पन्न भक्तिमती देवी थीं। हमने अखण्ड कीर्तन में कई बार उनकी विचित्र अवस्था देखी। वे भगवन्नाम लेती-लेती एकदम विह्वल हो गयीं और चिरविरहिणी पतिपरायणा पत्नी की भाँति बिलख-बिलखकर रोने लगीं। उनके मुख से बार-बार ये ही शब्द निकलते थे-हा प्राणनाथ! हा प्राणप्रियतम! हा श्यामसुन्दर! हा मुरलीमनोहर! आप मुझे कब दर्शन देंगे? नाथ! मेरे अपराधों को क्षमा करके एक बार मुझे दर्शन दीजिये।' इस प्रकार प्रलाप करती वे मछली की तरह तड़पती थीं और मूर्च्छित हो जाती थीं। उस समय वहाँ जो हजारों स्त्री-पुरूष उपस्थित थे वे सभी उनकी इस दशा को देखकर मर्माहत हो जाते थे। इनके विषय में एक घटना विशेष उल्लेखनीय है, उसका विवरण आगे लिखूँगा।

अखण्ड कीर्तन के बाद तीन दिन का उत्सव का प्रोग्राम भी बड़ा प्रभावशाली रहा। किन्तु उस प्रान्त में वेदान्त का विशेष प्रचार होने के कारण कुछ प्रमुख सत्संगियों ने भी इस भक्तिप्रधान उत्सव का विशेष आदर नही किया। वहाँ के एक दो सन्त और महान्तों को भी भक्ति की बातें अच्छी नहीं लगीं। यहाँ तक कि उन लोगों के हृदय में कुछ विरोधी संस्कार उभरने लगे। आखिर वह आग प्रकट भी हो ही गयी। एक दिन एक महानुभाव ज्ञान के आवेश में उछल पड़े और श्रीमहाराजजी की ओर संकेत करके कुछ अनर्गल भाषण करने लगे। उस भाषण का तात्पर्य यह था कि अच्छे से अच्छे साधकों को भी लोकेषणा नहीं छोड़ती, अत: मान प्रतिष्ठा के लिये वे ऐसे ही आडम्बर रच लेते हैं। हमारे कौतुकी सरकार तो उनके सामने एक सामान्य साधक की तरह बड़े विनम्र भाव से रहते थे। किन्तु आज जब उनके सामने आपका यह स्वाभाविक उत्कर्ष प्रकट हुआ तो उनका भक्ति-शून्य हृदय ईर्ष्या नल से जल उठा और वे एक दम भभक उठे। उनकी इस कुचेष्टा का उत्तर वहीं के रहने वाले एक दीन नापित ने दे दिया। हम लोगों से उसका कोई परिचय नहीं था; किन्तु उसके भावुक हृदय को वे बातें सह्य न हुई। अत: वह एक दम आवेश में भर गया, उसका चेहरा लाल हो गया और वह फूट-फूटकर रोने लगा। फिर जैसा भी उसके मुँह से निकला उन्हें फटकारते हुए कहने लगा,'तुम संतवेश में छिपे हुए कालनेमि की तरह भगवान, भक्ति और भक्तों के विरोधी हो, सो यदि तुम कालनेमि हो तो मैं भी बजरंगबली हूँ और अभी तुम्हारा संहार किये देता हूँ।' यह कहकर वह उनके ऊपर टूट पड़ा। तब उपस्थित लोगों ने उसे रोका और वे संत उसी समय वहाँ से खिसक गये। तथा वह भी आवेशवश मूर्च्छित हो गया। जब उसे चेत हुआ तो वह अपनी अनाधिकार चेष्टा के लिये बहुत पश्चात्ताप करने लगा और बोला कि न जाने कौन भूत मेरे शरीर में आकर इस प्रकार बकवाद कर गया। वास्तव में, वह तो एक भोला-भोला सरल भक्त ही था।

इसके बाद एक दूसरे ज्ञानी महानुभाव बिगड़ उठे। वे भी जोश में आकर खूब उछलने-कूदने लगे और अपने प्रवचन में ज्ञान की बड़ाई और

भक्ति की निन्दा करने लगे। यह तो उन्हीं व्यक्तियों में से थे जिनके विशेष आग्रह से श्रीमहाराजजी ने उत्सव किया था। उनकी यह अनुमति उत्तेजना सभी उपस्थित महानुभावों को बुरी लगी। हमारे बाँध के प्रमुख भक्त पण्डित हरियशजी तो एकदम बिगड़ उठे और साठ वर्ष के बूढ़े होने पर भी जवान पहलवान की तरह-

'हरि हर निन्द सुने जो काना। होय पाप गोघात समाना।।
काटिय तासु जीभ जो बसाई। श्रवण मूँदि नतु चलिय पराई।।

ऐसा कहते हुए हुँकार करके उन महानुभाव पर टूट पड़े। यद्यपि वे पण्डितजी से अधिक तगड़े थे, तो भी इन्होंने सिंह की तरह झपटकर उन्हें पछाड़ दिया और उनकी छाती पर चढ़ गये। श्रीमहाराजजी ने उसी समय उठकर पण्डित को पकड़ा और ये आपके चरण पकड़कर रोते-रोते मूर्च्छित हो गये।

उसी समय वहाँ एक और पागल भी जोश में भर गया। वह लक्ष्मणजी के आवेश में सिंह की तरह गरजने लगा। उसे भी अपने इष्ट श्रीराम की निन्दा असह्य हो गयी और वह बार-बार गरजकर ये चौपाइयाँ बोलने लगा-

'जो राउर अनुशासन पाऊँ। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ।।
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी।।
तोरों छत्रकदण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करों प्रभुपदशपथ, पुनि न धरों धनु हाथ।।'

जब श्रीमहाराजजी ने इस पागल को भी भर्रे में आया हुआ देखा तो आप घबरा गये और समझे कि यहाँ इस समय बाँध प्रान्त के प्राय: डेढ़ सौ आदमी हैं। यदि ये सभी बिगड़ उठे तो एक प्रकार का देवासुर संग्राम ही छिड़ जायगा। अत: आपने मेघ गम्भीर वाणी से उस पागल का नाम लेकर पुकारा और कहा,' अरे तू क्या करता है? खबरदार! सावधान हो जा! बस, वह बेचारा सरकार की आज्ञा पाते ही चुपचाप बैठ गया।

अब आपने स्वयं खड़े होकर ज्ञान और भक्ति का समन्वय समझाया तथा प्राचीन शास्त्र और आचार्यों के प्रमाण देते हुए कहा कि मेरे विचार से

तो ज्ञानियों और भक्तों का यह विचार वृथा ही है। हाँ, अपनी निष्ठा की परिपक्वता के लिये ऐसा विचार हृदय में रखा भी जाय तो कोई दोष की बात नहीं। किन्तु उसमें भी विरोध के लिये तो स्थान नहीं है। भला, विरोध किससे होगा? ज्ञान की दृष्टि में तो सअ उसका अपना आप ही है। तो क्या वह आपसे ही विरोध करेगा? और भक्त की दृष्टि में सर्वत्र उसका इष्टदेव ही है। अत: उसे तो विरोध के लिये रंचकमात्र भी गुंजाइश नहीं है।

इस प्रकार आपके समझाने से वह परिस्थिति शान्त हो गयी। इसी तरह उस उत्सव में और भी कई प्रकार के विघ्न आये, किन्तु साथ ही कीर्तन, कथा, गायन और सत्संग में आनन्द भी खूब रहा। शहर के हजारों स्त्री-पुरुष, बालक- वृद्ध और युवा बड़े उत्साह से प्रत्येक प्रोग्राम में सम्मिलित होते रहे। उत्सव की समाप्ति पर बड़ा भारी भण्डारा हुआ तथा अतिथि-सत्कार का भी वहाँ अच्छा प्रबन्ध रहा। उत्सव के पश्चात् सब लोग श्रीमहाराजजी को साथ लेकर चले और रास्ते में धामपुर में रामेश्वर की ससुराल वालों के विशेष आग्रह से उतरे। इन लोगों ने इधर से जाते समय बहुत प्रार्थना की थी तब श्रीमहाराजजी ने कह दिया था कि लौटते समय तुम्हारे यहाँ ठहरेंगे। तीन दिन तक धामपुर में बड़ी धूमधाम से उत्सव हुआ। उन लोगों के अत्यन्त नम्र व्यवहार से श्रीमहाराजजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सभी का यथासाध्य बहुत अच्छा सत्कार किया फिर सब लोग बाँध पर चले आये।

पीछे हमने एक माई का उल्लेख किया है। उसके विषय में एक घटना विशेष से उल्लेखनीय है। एक दिन श्रीमहाराजजी एकान्त में बैठे स्वाध्याय कर रहे थे। उस समय दो-चार अन्य माइयों के साथ इन्होंने आकर दण्डवत् की। श्रीमहाराजजी का स्वभाव अत्यन्त संकोची तो था ही। अत: उन्होंने इनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। ये सब माइयों के सहित आपके समाने बैठ गयीं और बोलीं,' महाराजजी! भगवान् के दर्शन किस प्रकार हों?' आपने यह समझकर कि इस देश की माइयों को अधिकतर वेदान्त के संस्कार होते हैं। अत: हैं, वेदान्त प्रक्रिया के अनुसार ही उत्तर दे दिया। आप

बोले,'ब्रह्म तो सर्वत्रपूर्ण है और वही अपना वास्तविक स्वरूप भी है। केवल अज्ञान का आवरण होने से ही स्वरूप की विस्मृति हो गयी है। अत: साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर श्रवण, मनन निदिध्यासन करने से आत्मसाक्षात्कार होकर सर्वत्र ब्रह्मदर्शन होने लगता है।' आपकी यह बात सुनकर इस माई ने ठण्डी श्वास ली और गद्‌गद् वाणी में अत्यन्त दीनतापूर्वक प्रार्थना की 'भगवन्! वेदान्त का ब्रह्म तो बना बनाया है। जिस साधु के भी पास जाओ इसी का उपदेश करते हैं। किन्तु आपके पास तो हम बड़ी आशा से आयी हैं। आप तो हमें उस ब्रज के ठाकुर बालगोपाल श्रीनन्दनन्दन के दर्शन कराइये। महाराज! वेदान्तका सिद्धान्त तो बहुत ऊँचा है। हम अबला भला, उसकी किस प्रकार अधिकारिणी हो सकती हैं?'

इनका यह असामान्य प्रश्न सुनकर महाराजजी को आश्चर्य सा हुआ और आपने समझा कि ये कोई सामान्य स्त्री नहीं है। तब आपने आँख उठाकर इनकी ओर देखा। बस, एक बिजली सी चमक गयी और वे सभी माइयाँ विह्वल होकर आपके चरणों में लोट गयीं तथा प्रार्थना करने लगीं, 'हम आपका बहुत यश सुनकर आयी हैं। हमने सुना है कि कोई भी इन चरणों से निराश नहीं लौटा है। तब फिर हम ही क्यों वंचित रहें?' यह कहकर वे विह्वल हो गयीं। अब क्या था, करुणागार की करुणादेवी जागृत हो उठीं और अपनी ही सजातीया अबलाओं को आपकी वाणी द्वारा वचनामृत पिलाने लगीं। आप बोले, 'माइयों? आप लोग इतनी निराश क्यों होती हैं। श्रीगोपालजी का चित्त तो माखन से भी कोमल है। वे अपने आश्रित भक्त के आँसू देख कर कभी स्थिर नहीं रह सकते। उनकी अपार करुणा का क्या ठिकाना है। आपने पूतना का चरित्र तो सुना ही होगा। वह स्तनों में कालकूट विष लगाकर आपको मारने के लिये आयी थी। किन्तु स्तनपान के नाते हमारे भोले-भाले बाल-गोपाल ने तो उसे माता ही मान लिया और अपने योगीजन दुर्लभ दिव्यधाम को भेज दिया। उसी को स्मरण करके आपने मथुरा से उद्धवजी के द्वारा माता यशोदा को यह संदेश भेजा -

'मैंया की गति सो तो बकीको दै दीनी मैं,
उद्धव! मैया सो कहियो हम ऋणियाँ तुम्हारे हैं।'

इस प्रकार आपने भक्तिभाव को उद्दीप्त करने वाले करुणा एवं वात्सल्य से पूर्ण अनेकों कृष्ण चरित्र सुनाकर उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि भगवान् तो वांछाकल्पतरु हैं। उन्हें जो जिस भाव से भजता है उसे वे उसी रूप में प्राप्त होते हैं। तुम विश्वास करके नित्य हार्दिक प्रार्थना किया करो। इससे किसी न किसी प्रकार श्रीगोपालजी तुम्हें अवश्य दर्शन देंगे।

यह सुनकर वे शान्त हो अपने-अपने घर चली गयीं और तत्परता से भजन-साधन करने लगीं। उन पर सन्त सद्गुरुदेव की कृपा दृष्टि तो पड़ ही चुकी थी। अतः कुछ ही दिनों में उनके हृदय में तीव्र विरह जाग्रत हो उठा। वे दिन-रात गोपालजी से दर्शन देने के लिये प्रार्थना करने लगीं और निरन्तर रोती रहती। प्रायः दो वर्ष बाद उन्हें ऐसा आश्वासन मिला कि मैं शीघ्र ही तुम्हारे भाई की कन्या में आविष्ट होकर कुछ काल तुम्हारे बीच क्रीड़ा करूँगा। तब तो हर्षातिरेक से इनका हृदय-कमल खिल उठा और ये बड़े उत्साह से साधन-भजन में लग गयीं। ये सब माइयाँ इकट्ठी होकर व्रजसाहित्य के द्वारा श्रीकृष्ण चरित्र का गान करती थीं तथा हारमोनियम, तबला, झाँझ और करताल आदि बजाकर घण्टों नृत्य करती रहती थीं। ये केवल आठ-दस ही थीं, सो किवाड़ बन्द करके पागल-सी होकर निरन्तर तीन-चार घण्टे तक नामकीर्तन और गुणकीर्तन करती रहती थीं। इनके हृदयों में निरन्तर ही श्रीगोपालजी की प्रतीक्षा रहती थी।

भगवान् नारदजी अपने भक्तिसूत्रों में कहते हैं-'लौल्यमेव मूल्यमेकलं तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।' अर्थात् एकनिष्ठ लालसा ही भगवद्दर्शन का मूल्य है, उस लालसा का स्वरूप है उनका एक क्षण के लिये विस्मरण होने पर भी अत्यन्त व्याकुल हो जाना। इसके सिवा भगवान् की यह भी प्रतिज्ञा है कि मैं बैकुण्ठ या योगियों के हृदय में भी नहीं रहता। मैं तो वहीं रहता हूँ जहाँ भक्तजन मेरा नाम या गुण गाते रहते हैं।

'नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥'

अतः अपनी इस प्रतिज्ञा के अनुसार एक-दिन कीर्तन के समय ही अकस्मात् उस सात वर्ष की कन्या में गोपालजी का आवेश हो गया। पहले तो वह हुंकार करके मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी, फिर कुछ चेत होने पर कहा,'मैं आ गया हूँ। कुछ दिनों तुम्हारे मध्य में खेल करूँगा। देखो, मेरी पूजा-आरती मत करना। मुझे तो खाने के लिये खूब माखन-मिश्री देना। मैं तो नन्द बाबा और यशोदा मैया का लाडिला लाल हूँ। मुझे माखन रोटी ही प्यारी लगती है। जो मुझे ब्रह्म परमात्मा या भगवान् कहकर पुकारते हैं और बड़े-बड़े आडम्बरों से मेरी पूजा करते हैं। उनसे तो मैं दूर ही भागता हूँ। मेरी मैया ने तो मुझे एक दिन ऊखल से बाँध दिया था, किन्तु मुझे तो फिर भी मैया ही प्यारी लगती है। वह चाहे मुझे प्यार करे चाहे गाली दे। इन्द्र एवं ब्रह्मा आदि की स्तुतियाँ सुनकर तो मैं दौड़कर मैया के आँचल में छिप जाता हूँ और वहीं स्तनपान करके दिव्य सुख का अनुभव करता हूँ। इस प्रकार गोपालजी ने माधुर्य से मिश्रित तोतली वाणी से विशुद्ध व्रजभाषा में कुछ बातें कहीं।

उस समय उस कन्या की आकृति और प्रकृति बिल्कुल बदल गयी थी उसके चेहरे से दिव्य तेज निकल रहा था। उस समय गोपालजी उठकर उन सबके मध्य में नृत्य करने लगे। चरणों में नूपुर न होने पर भी वहाँ सबको नूपुरों की सुमधुर ध्वनि और दिव्य वंशी सुनायी दी। उनके आनन्द का पारावार न रहा। सभी आनन्दातिरेक से मूर्च्छित होने लगीं। तब गोपालजी बड़े जोरो से हँसने लगे और बोले,'वाह! वाह! ऐसे ही मेरे साथ खेलोगी। अच्छा लो, मैं स्वयं तुम्हें अपने साथ खेलने की शक्ति प्रदान करता हूँ।' यह कहकर उनके सामने जो प्रसाद पड़ा था वही सबको थोड़ा-थोड़ा बाँट दिया। उसे खाते ही उनके शरीर में एक बिजली-सी दौड़ गयी उनमें स्वाभाविक ही यह भावना हो गयी कि हम सब व्रज की गोपी हैं और वात्सल्यरस मूर्ति श्रीयशोदाजी की नित्यसखी परिकर हैं।

अब गोपालजी उनके मध्य में खेल करने लगे। कभी तो उनका हाथ पकड़कर नृत्य करते हुए रास करते और कभी सबके मध्य में त्रिभंगललित गति से खड़े होकर वंशी बजाने का भाव करते। उस समय वे सब उनके आस-पास कीर्तन करती घूम-घूमकर नृत्य करती थीं। इससे वे सभी दिव्य एवं अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगीं। कभी-कभी आप अनेकों बालोचित कर्म भी करते थे। कभी मचल जाते और पृथ्वी पर लोटने लगते। तब अनेक प्रकार की बातें करने पर ही शान्त होते थे। कभी भोजन करते-करते भाग जाते थे। उस समय ये प्रधान माई यशोदाजी के भाव से भावित होकर उनके पीछे-पीछे दौड़ती थीं। किन्तु आप बहुत देर तक हाथ ही नहीं आते थे और मैया को अँगूठा दिखाकर कहते टिलिलिली झर्र! क्या पकड़ेगी? ले, पकड़ ले मैया!' जब वे भागते-भागते तंग हो जातीं तो बैठकर रोने लगतीं। बस, आप उसी समय दौड़कर आते और मैया के गले से लिपट जाते। फिर माँ बेटा खूब किलोल करते थे कभी लाला मैया के मुँह में ग्रास देते तो कभी मैया लाला को भोजन करातीं। यह अद्भुत दृश्य देखकर अन्य सब सखियाँ अपने नेत्रों को कृतार्थ करती थीं। कभी गोपालजी थाल का सारा भोजन इधर-उधर फेंक देते थे और घर के दूध दही एवं माखन के भाँडे फोड़ डालते थे। तब मैया छड़ी लेकर आपको धमकाती थीं। इस प्रकार आप क्रमशः अनेकों प्रकार की लीलाएँ करने लगे। उनका आस्वादन करके सब सखियाँ आनन्दसागर में सन्तरण करने लगीं। उनके आहार, निद्रा और श्रम सभी विस्मृत हो गये। वे सब मानो सुख समुद्र की मीन ही बन गयीं। किन्तु इस रहस्य को वे बहुत गुप्त रखती थीं और अपने घर का फाटक सर्वदा बन्द किये रहतीं थीं।

एक दिन कोई भक्त गलती से छिपकर आ गया। बस, उसी समय गोपालजी अन्तर्धान हो गये। तब तो ये सब घबरा गयीं। फिर बहुत प्रार्थना और उपवास करने पर प्रकट हुए और बोले कि अमुक व्यक्ति मेरी आज्ञा के बिना क्यों आया। यदि मेरी आज्ञा लिये बिना कोई भी व्यक्ति आयेगा तो फिर मैं नहीं आऊँगा। कुछ काल पश्चात् इस मण्डल के दीक्षागुरु स्वामी अनन्ताश्रमजी

ब्रह्मचारी तथा उनके शिष्य जगदीश्वरानन्दजी को यह समाचार मिला। तब गोपालजी की अनुमति से ये भी इस लीला में सम्मिलित हो गये और अनेक प्रकार की दिव्य लीलाओं का रसास्वादन करने लगे। इन अद्भुत चरित्रों को सुनकर और भी कोई-कोई भक्त दर्शनों की इच्छा करने लगे। उनमें से भी जिन्हें गोपालजी की अनुमति मिली वे लीला में सम्मिलित हो गये।

हमारे कौतुकी सरकार भी उन दिनों होशियारपुर आये हुए थे। आपने भी कुछ भक्तों से यह चर्चा सुनी, किन्तु स्त्रियों के बीच में जाने में आपको संकोच होता था। अत: यह स्थिर हुआ कि यदि गोपालजी की सम्मति हो तो शहर के बाहर श्रीअनन्ताश्रमजी के आश्रम में दर्शन करें। दूसरे दिन गोपालजी से पूछा गया कि अमुक सन्त अपने कुछ भक्तों के साथ आपके दर्शन करना चाहते हैं। इस पर गोपालजी खूब हँसे और बोले,' मैं तो बालक हूँ, मुझे किसी से क्या संकोच है?' अत: दूसरे दिन दोपहर को बाबू जयरामदास, बाबू नाथूराम और बाबू फकीरचन्द आदि दो-चार मुख्य भक्तों के साथ आश्रम में पधारे।

श्रीगोपालजी को तीन प्रकार का आवेश होता था-(१)सामान्य बालक जैसी कौतुकप्रियता और खेलकूद में भी पूर्ण अन्तर्यामिता तथा सर्वज्ञता आदि (२) बिना किसी परिवर्तन के अकस्मात् ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों का आवेश अथवा किसी एक का प्रकाश और उसमें कुछ चमत्कारिक बातों का वर्णन। (३) गाढ़ मूर्च्छा के बाद एकदम ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों का अथवा केवल एक ही का विकास। उस समय रासलीला, दान-लीला एवं माखनचोरी आदि दिव्यलीलाओं का प्राकट्य हो जाता था। अथवा नूपुर या वंशीनाद का श्रवण तथा पूर्ण अन्तर्यामिता एवं सर्वज्ञतादि गुणों का प्रकाश हो जाता था।

जब श्रीमहाराजजी के साथ सब लोग एकत्रित हो गये तब पहले तो आप सामान्य अवस्था में एकदम भागकर मैया के आँचल में जा छिपे और छिपे-छिपे ही कुछ प्रश्नों का उत्तर देते रहे फिर सबके विशेष आग्रह करने पर आपने कहा, हूँ! हूँ! मुझे तो सकुच लगती है। इन सबको बाहर निकाल दो, तब मैं लीला करूँगा।' तब आपसे कहा गया कि ये तो वे ही सन्त हैं,

जिनको आपने अनुमति दे दी थी। आप बोले,'नहीं, और भी बहुत लोग आ गये हैं।' वास्तव में आपके साथ बहुत आदमी आ गये थे। तब सबको बाहर निकाल दिया गया। फिर आपने पूछा,'अब यहाँ कौन-कौन हैं? संतों को छोड़कर बताओ, क्योंकि उनमें मुझे कोई संकोच नहीं है। सब लोगों के नमा बताये गये तो आपने कहा, अमुक-अमुक व्यक्ति को और बाहर निकाल दो।' इस प्रकार अन्त में केवल वे ही व्यक्ति रह गये जिन्हें कल आपने अनुमति दी थी।

उसी समय आप उठकर नृत्य करने लगे। फिर अपने उस परिकर का मण्डल बनाकर उसके बीच में त्रिभंगललित गति से वंशी बजाने की-सी चेष्टा करने लगे। इस प्रकार थोड़ी देर रास का अभिनय कर और भी अनेकों बाललीलाएँ कीं। उसी समय बाबू जयरामदास वकील ने प्रार्थना की कि हम सबको अपने उस श्यामसुन्दर रूप में दर्शन कराइये। इस पर बड़े जोर से हँसे और बोले,'भला, सबको कैसे दर्शन हो सकते हैं। क्या सबके मन में दर्शन करने की एक-सी चटपटी लगी है।' बाबूजी ने कहा,हाँ, मेरे विचार से तो यहाँ जितने लोग बैठे हैं सभी को दर्शनों की प्रबल इच्छा है।' आप हँसकर बोले,'वाह! तू क्या जाने किसी के चित्त की। मैं तो अन्तर्यामी हूँ। मुझे सबका पता है। 'अच्छा, तू अपनी ही बता, तेरे चित्त में इस समय क्या है?' बाबूजी ने कहा, 'मेरे चित्त में तो इस समय कुछ नहीं है।' इस पर आप बड़े जोरों से खिलखिला कर हँसे और बोले, 'वाह! बस, यही तू अपने चित्त को जानता है?'

इससे आपका अभिप्राय सम्भवत: यही था कि जब तक जीव तीनों गुणों से पूर्णतया ऊपर नहीं उठता तब तक उसका चित्त किसी भी अवस्था में संस्कारों से खाली नहीं होता। चित्त के अनेकों स्तर होते हैं। उनमें ऊपर के स्तर में एकाग्रता हो भी जाय तो भी भीतर वासनाओं का घमासान मचा रहता है। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जिन लोगों को आत्मसाक्षात्कार नहीं हुआ है उन्हें यदि समाधि हो जाय तो भी उससे उठते ही मन में कामक्रोधाादि वृत्तियों का आवेश हो जाता है। यदि उनके चित्त के भीतरी स्तरों में कमादि न होते तो उनका आवेश कैसे हो सकता था। इसलिये जब तक इस जीव को
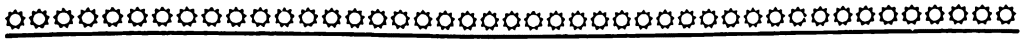
सम्यक् प्रकार से आत्मसाक्षात्कार या भगवत्प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक कैसे ही चमत्कार हो जायें, यह निर्भय नहीं हो सकता।

'सद्गुरु के मारे मुए, धन्य जिन्हों के भाग।
त्रैगुण से ऊपर गये, जहाँ दोष नहिं राग॥' (चरणदासजी)
'भीखा बात अगम्म की, कहन-सुनन की नाहिं।
कहै सो जाने नहीं, जाने सो कहै नाहिं॥' (भाखाजी)
'एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥' (गीता २/७२)

उस समय भंयकर गर्मी के कारण सब लोग घबरा रहे थे। इसलिये एक भक्त ने प्रार्थना की कि महाराज! वर्षा हो जाय तो अच्छा हो तब आप बड़े गम्भीर और रूखे स्वर में बोले, 'क्या तुझे इस सृष्टि की मुझसे भी अधिक चिन्ता है? मेरी सृष्टि है, मैं जानूँ। तू बीच में बोलने वाला कौन है?' इससे वह बेचारा तो सकपका कर रह गया। फिर एक भक्त ने कहा,'महाराज! मेरा उद्धार करो।' तब आप नन्हे से बच्चे की तरह मचलकर बोले,'ऊँ ! ऊँ ! मैं तो इस समय खेलने के लिये आया हूँ, किसी का उद्धार करने नहीं आया।'

तात्पर्य यह है कि इस बालगोपाल के रूप में तो आप में माधुर्य का ही प्राधान्य रहता है। इस अवस्था में अपने ऐश्वर्य को प्रभु प्रच्छन्न ही रखते हैं किन्तु जिन बड़भागी जीवों को इस अद्‌भुत माधुर्य के आस्वादन का सुअवसर प्राप्त होता है उनका उद्धार तो स्वतः सिद्ध है। भला, भगवदीय लीलाओं के माधुर्य का आस्वादन करके भी कोई संसार में बँध सकता है?

इस प्रकार उस गोपालजी के आवेश में अनेकों चमत्कारिक और रहस्यमयी लीलाएँ हुईं। वह आवेश कुछ दिनों तक रहा, पीछे अन्तर्धान हो गया। भक्तवत्सल भगवान् इसी प्रकार कहीं आवेश द्वारा और कहीं साक्षात् अवतार लेकर अपने अनन्य भक्तों को सुख देते हैं।

काजिमाबाद का उत्सव

जिला अलीगढ़ में अतरौली के पास काजिमाबाद नाम का एक गाँव है। यहाँ माहेश्वरी वैश्यों के कई घर हैं। अच्छी सम्पन्न बस्ती है। सं. १९८८ में यहाँ के कुछ उत्साही भक्तों ने एक उत्सव की योजना की। संयोजकों में प्रधान व्यक्ति थे श्रीप्यारेलाल डागा और मास्टर राधावल्लभ जी। इनमें भी डागाजी का उद्योग विशेष सराहनीय था। उन्होंने बहुत परिश्रम करके श्रीअच्युत मुनिजी, श्रीभोलेबाबाजी, हमारे महाराज जी, सेठ गौरीशंकर जी, श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार आदि कई सुप्रसिद्ध विरक्त सन्त और गृहस्थ भक्तों को एकत्रित किया था। इनके सिवा उस उत्सव में वृन्दावन से गोस्वामी श्रीविजलयकृष्णजी तथा अनन्तलालजी आदि कुछ वैष्णवाचार्य भी पधारे थे। श्रीमहाराजजी के साथ शिवपुरी और बाँधके अनेकों भक्त भी आये हुए थे। इस प्रकार वहाँ साधु, सन्त एवं भक्तों का बड़ा अद्‌भुत समागम हुआ था। वह सचमुच जंगम तीर्थराज ही बन गया था।

मुद मंगलमय सन्त समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।।
रामभक्ति जहँ सुरसरिधारा। सरस्वती ब्रह्मविचार प्रचारा।।
विधिनिषेधमय कलिमलहरणी। कर्मकथा रविनन्दिनि वरणी।।
वट विश्वास अचल निजधर्मा। तीरथराज समाज सुकर्मा।।
सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा।।
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्यफल प्रगट प्रभाऊ।।

इस समय तो वास्तव में काजिमाबाद में साक्षात् सत्संगरूपी त्रिवेणी की धारा ही बह रही थी। एक ओर तो हमारे श्रीमहाराजजी संकीर्तन सुधा की वर्षा करके भगवद्‌भक्ति रूप भागीरथी की धारा प्रवाहित कर रहे थे। दूसरी ओर से अनेकों विद्वानों और कथावाचकों के द्वारा विधिनिषेधमयी शास्त्रचर्चा के रूप में श्रीकलिन्दकन्या की कमनीय धारा बह रही थी तथा उन दोनों के बीच में अलक्षित रूप से श्रीअच्युत मुनिजी, श्रीभोले बाबाजी आदि ब्रह्मनिष्ठ

महापुरुषों के मुखारविन्दों से ब्रह्म विचार रूपा सरस्वती प्रवाहित हो रही थी। इस सत्संग-त्रिवेणी में जिसने अवगाहन किया वही सदा के लिये कृतकृत्य हो गया।

जिस समय हमारे महाराजजी हाथ में घण्टा ले कमर में फेंटा कसकर खड़े होते थे, उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो संसार को प्रेम रस में डुबो देंगे। आपके कीर्तन चक्र में जो भी आ जाता था, वह चाहे घोर नास्तिक हो, एक बार तो अवश्य चक्र की तरह घूम जाता था। किसी की क्या मजाल जो कीर्तन मण्डल में आकर एक बार थिरक-थिरक कर नाचने न लगे। उस समय का वह दिव्य समाज और दिव्य कीर्तन देखते ही बनता था। कहने सुनने या लिखने से तो उसकी छाया भी नहीं आ सकती। मण्डल के बीच में श्रीमहाराजजी घण्टा बजाते हुए चक्र के समान घूम-घूमकर नृत्य कर रहे हैं। उनके पीछे अनेकों अन्तरंग भक्त उन्मत्त होकर विविध प्रकार की भावभंगी से नाच रहे हैं तथा उपस्थित दर्शकवृन्द उस प्रेमानन्दमयी सुरसरी में अवगाहन करके बेसुध हो रहे हैं। सैकड़ों प्रेम से रो रहे हैं तो सैकड़ों हँस रहे हैं। सैकड़ों पृथ्वी पर लोट रहे हैं तो सैकड़ों श्रीमहाराजजी के चरणों में लिपट रहे हैं किन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि हजारों मनुष्यों को पागल बना कर भी आप उसी प्रकार सहजावस्था में ही घण्टा बजा रहे हैं। मजाल क्या जो आपका कोई भी भाव प्रकट हो जाय।

'लाज़िम है सोज़े इश्क का शौला अयां न हो।
जल-भुनिये इस तरह से कि मुतलक धुआँ न हो॥'

बस, जैसा दिव्य कीर्तन था वैसा ही शिवपुरी की मण्डली का पदगान भी था, जिससे गाने वाले और सुनने वालेसभी लोट-पोट हो रहे थे। जिधर देखो उधर ही शराबियों का सा कोलाहल मचा हुआ था। इसी तरह और भी जहां-तहाँ के भक्तों के अपने-अपने ढंग के निराले ही पद गान हो रहे थे। वास्तव में बात तो यह है कि जिस प्रकार बिजली का करेण्ट आते ही तरह-तरह के बल्ब (लट्टू) अपने आप प्रकाशित हो जाते हैं, उसी प्रकार जब हमारे कौतुकी सरकार हरिरस मदिरा में उन्मत्त होकर सभा में विराजते हैं तब
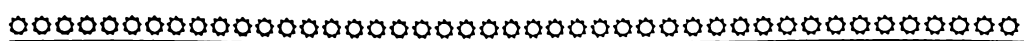
सभी के हृदयों में प्रेम रस छलकने लगता है। उसको कोई गाकर, कोई बजाकर, कोई सुनाकर और कोई सेवा करके अपने आस-पास की जनता पर बखेरते हैं और वह उसकी अद्‌भुत माधुरी का आस्वादन करके अपने को कृतकृत्य करती है।

इस उत्सव में बड़े-बड़े कथावाचकों की दिव्य कथाएँ भी हो रही थीं। खुदागंज के पण्डित श्रीगोविन्दाय नमोनमः जी श्रीरामचरित मानस की लोकमनोरम कथा कह रहे थे। ब्रज के निगूढ़ रस मर्मज्ञ गोस्वामिपाद गोपीप्रेम की अद्‌भुत व्याख्या कर रहे थे तथा सेठ गौरीशंकरजी का बड़ा गम्भीर और पाण्डित्यपूर्ण व्याख्यान होता था। हमारे प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्रीअच्युत मुनिजी वेदान्त सिद्धान्त का अद्‌भुत प्रतिपादन करते थे तथा पूज्य श्रीभोलेबाबाजी उपनिषदों की कथा कहते थे। श्रीभोलेबाबाजी वास्तव में बड़े ही भोले सन्त थे। कुछ आधुनिक वेदान्तियों के कहने में आकर उन्होंने अपनी कथा में भक्ति एवं कीर्तनादि पर खुले कटाक्ष किये। इससे वहाँ के भक्त मण्डल को बड़ा दुःख हुआ। हमारे श्रीमहाराजजी को भी इससे कुछ खेद पहुँचा। आप तो सदा से ही अत्यन्त समन्वयवादी और समदर्शी रहे हैं। आपकी दृष्टि में तो ज्ञान और भक्ति में कोई भी भेद नहीं है। दोनों ही संसार ताप की अमोघ औषधि हैं।

आज के श्रीभोले बाबाजी के व्याख्यान से भक्तजन ऐसे मर्माहत हुए कि कई लोगों ने तो अन्न-जल छोड़ दिया, क्योंकि उनकी दृष्टि में तो भगवन्निन्दा सुनना बड़ा भारी अपराध था। जैसा कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने कहा है-

'हरि हर निन्दा सुनै जो काना। होई पाप गोघात समाना।।'

अतः आज इस शुष्क वेदान्त के कारण भक्त समाज में बड़ी खलबली पड़ गयी। किन्तु वहाँ जो लोग एकत्रित हुए थे। वे प्रायः सभी संभ्य और सुशिक्षित थे। इसलिये कोई उपद्रव खड़ा नहीं हुआ। आज ही सायंकाल में बड़े पण्डाल में श्रीमन्महाप्रभुजी की रजकोध्दार लीला का अभिनय होने वाला था। सन्ध्याकालीन कीर्तन तो आज श्रीमहाराजजी के निवास स्थान पर

ही हो गया। भक्तों के चित्त उद्विग्न होने के कारण आज उसमें ढील रही। उसके बाद आठ से दस बजे तक लीलाभिनय का प्रोग्राम था। किन्तु श्रीमहाराजजी ने उसमें जाने से मना कर दिया। इसका कारण यह था कि लीला के प्राय: सभी पात्र हतोत्साह हो रहे थे। आपके अस्वीकार करने से उनका रहा सहा उत्साह भी शिथिल पड़ गया।

सब लोग बड़े असमन्जस में पड़ गये। मैं मध्यान्होत्तर के प्रोग्राम के बाद ही हजारों मनुष्यों के समक्ष लीला की सूचना दे चुका था और बाहर के सभी सन्त, विद्वान् और आस-पास की जनता इस प्रकार हजारों मनुष्य ठीक समय पर पण्डाल में आ चुके थे। हम लोगों ने जब विशेष प्रार्थना की तो आपने हमें आज्ञा देकर कहा, 'तुम लीला करो। जिनकी लीला है वे उसे स्वयं सम्भाल लेंगे। तुम तो केवल निमित्तमात्र बनकर खड़े हो जाओ। किन्तु इस समय मुझे विवश मत करो आज मेरी तबियत ठीक नहीं है। परन्तु मेरा विश्वास है कि मेरे बिना तुम लोग संकोच त्यागकर जो कुछ भी करोगे वह मेरे सामने से भी बढ़िया होगा। अत: भगवान् का आश्रय लेकर अपना काम करो और मुझे शरीर से नहीं तो मन से वहीं समझो। यह कहकर आपने हम सबको कुछ प्रसाद दिया और बड़े प्रेम से समझाया कि तुम बड़े प्रेम और उत्साह से लीला करो तथा मुझसे कहा कि तू थोड़ी देर जनता को लीला का रहस्य समझा देना। बस,'गुरोर्राज्ञा गरीयसी' ऐसा समझकर हम लोग दण्डवत् करके पण्डाल में आ गये।

सबसे पहले तो सूत्रधार के रूप में मुझे ही मंचपर जाना पड़ा भाई! सच कहता हूँ, रंगमंच पर जाते ही मेरे भीतर मानो किसी भूत का आवेश हो गया। मैंने दो-चार मिनट बड़े उच्चस्वर से 'हरि हरि बोल, बोल हरि बोल। मुकुन्द माधव गोविन्द बोल' इस ध्वनि का कीर्तन कराया। फिर मेरे द्वारा किसी महान् शक्ति ने भक्ति-सिद्धान्त का ऐसा विचित्र प्रतिपादन कराया कि सभी उपस्थित सन्त, महन्त और पण्डित चकित रह गये। मैं तो उस समय केवल यन्त्र बना हुआ था। मेरे मुख से जो कुछ निकल रहा था उसमें मेरा कोई

अभिमान नहीं था। उसने भोलेबाबाजी की एक-एक युक्ति का ऐसा सरस और सुन्दर उत्तर दिया कि वे भी सुनकर अवाक् रह गये। उस समय मेरी वाणी गद्‌गद् थी, नेत्रों से निरन्तर आँसुओं की धारा बह रही थी शरीर काँप रहा था तथा दासोऽहं का अमित बल मेरे अन्दर काम कर रहा था। मैं न जाने क्या-क्या कह गया। मेरे मुख से इस प्रकार प्रायः एक घण्टे तक पागल-सा प्रलाप होता रहा। उस समय मैं रो रहा था और मेरे साथ सारी जनता भी भाव-समुद्र में डूबी हुई थी।

इसके पश्चात् शिवपुरी वालों ने मिलकर मंगलाचरण किया उन्होंने पहले गुरुवन्दना के कुछ श्लोक कहकर 'न गुरोरधिकम्' का कीर्तन किया, फिर गौरसुन्दर की महिमा के कुछ श्लोक कहे और अन्त में 'स्वागत चैतन्यचन्द्र करत हम तिहारो' यह स्वागत गान गाया। उनके हृदय भी आज उथल-पुथल हो रहे थे, क्योंकि श्रीमहाराजजी की अनुपस्थिति से वे बड़े मर्माहत हुए थे। उनके स्वागतगान ने तो मानो सचमुच ही कलिपावनावतार श्रीशचिनन्दन को उनके परिकरसहित प्रकट कर दिया। किन्तु उनके दर्शन तो केवल कुछ बड़भागियों को ही हो सके। इसके पश्चात् एक महाराष्ट्रीय युवक सन्यासी, जिन्हें सम्राट् गौरचन्द्र स्वामी कहते थे, श्रीमहाप्रभुजी के सन्यास-वेष में रंगमंच पर आये वे श्रृंगार करते-करते ही भावाविष्ट हो चुके थे। अतः रंगमंच पर आते ही मदोन्मत्त की भाँति 'हरि बोल, हरि बोल, हरि हरि बोल' कहते हुए उछल-उछलकर नृत्य करने लगे। वे अत्यन्त-करुणा पूर्वक गद्‌गद् कण्ठ से प्रार्थना करते थे, 'भैया! हरि बोलो, जीवन नष्ट हो रहा है। भाई जीवनमात्र का परमपुरुषार्थ श्रीहरिनामोच्चारण ही है' उस समय उन्होंने श्रीगौरांगदेव की निम्नांकित दशा को चरितार्थ कर दिया था-

'ऊर्ध्वीकृत्य भुजद्वयं करुणया सर्वान जनान् भाष्यते,
रे रे भागवत हरिं वद वद श्रीगौरचन्द्रः स्वयम्।
प्रेम्णा नृत्यति हुंकृति विकुरुते हा हा रवः व्याकुलो,
भूमौ लुण्ठति मूर्च्छितः स्वहृदये हस्तौ विनिक्षिप्यति।।

अर्थात् स्वयं गौरचन्द्र अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर बड़ी करुणा से सब लोगों से कहते हैं, अरे भक्तों! हरि बोलो, हरि बोलो' ऐसा कह करके प्रेम से नृत्य करते हैं, हुँकार करते हैं, व्याकुल होकर हा-हाकर करते हैं, मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर लोटने लगते हैं और अपनी छाती में हस्त-प्रहार करते हैं।

हमारे लीलास्वरूप श्रीगौरांगदेव सचमुच आवेश में आये हुए थे। वे एक-एक प्राणी से अनुनय विनय करने लगे। किसी किसी के तो चरण पकड़कर वे अत्यन्त दीन-भाव से प्रार्थना करते, भैया! हरि बोलो और मुझे सदा के लिये मोल ले लो। भाई! इस घोर कलिकाल में तो केवल हरि-नाम का ही सहारा है।' इस समय प्रेमावेश में उन्हें शरीर की सुधि नहीं थी। वे मेघ गम्भीर वाणी से हुँकार करते थे, जीव मात्र से अनुनय-विनय करते थे और दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर नृत्य करने लगते थे।

इस उन्मत्तावस्था में ही वे धोबी के पास पहुँचे और उससे अत्यन्त नम्रता पूर्वक दीन भाव से बोले,'भैया धोबी! हरि बोलो!' धोबी कपड़े धोने के काम में इतना तल्लीन था कि उसने कुछ भी परवाह नहीं की प्रभु फिर गिड़गिड़ाकर कहने लगे, 'भैया धोबी! हरि बोलो' 'भैया धोबी! हरि बोलो।' धोबी ने समझा यह कोई मंगता बाबाजी है, भूखा है, ऐसा कहकर कुछ खाना माँगता है। वह बोला,'बाबा! मेरे पास कुछ नहीं है। मैं अत्यन्त धनहीन हूँ। तुम बस्ती में चले जाओ।' यह कहकर वह फिर कपड़े धोने में लग गया। तब आप नेत्रों से आँसू बहाते घुटनों के बल बैठे अंजली बाँध कर बोले,'भैया धोबी! तुम एक बार हरि बोलो और मुझे सदा के लिये मोल ले लो। मुझे और कुछ नहीं चाहिये।' धोबी झुँझलाकर बोला,'न बाबा! मैं हरि नहीं बोलूँगा। यदि मैं हरि बोला❀ हो जाऊँगा तो मेरे बच्चों का पालन कौन करेगा? तुम तो बाबाजी हो, तुमको तो कुछ भी काम-काज नहीं है। जाओ, मुझ पर कृपा करो।' ऐसा कहकर वह फिर कपड़े धोने में लग गया। तब आपने उसका हाथ पकड़कर कहा, 'लाओ, तुम्हारा काम मैं करूँ और तुम एक बार हरि बोलो।'

❀ साधु।

अब तो बेचारा धोबी बहुत घबराया और बोला, 'नहीं ठाकुर! ऐसा मत करो। मुझे स्पर्श न करो। नीच धोबी हूँ। ऐसा करने से मुझे भारी पाप लगेगा। आप बोलो, मैं क्या करूँ?' आपने कहा, 'तुम हरि बोलो।' वह कपड़े छोड़कर 'हरि बोल, हरि बोल' कहने लगा। बस, फिर क्या था? हरिनाम भूत की तरह उससे चिपट गया। अब तो वह ग्रहग्रस्त तथा मदोन्मत्त की भाँति 'हरि बोल, हरि बोल' कहता पागल हो गया। इसी प्रकार उसकी धोबिन भी पगली हो गयी तथा उसे जो छूलेता वही पागल हो जाता। इस तरह सारा गाँव ही पागल हो गया।

हमारे सीताराम बाबा धोबी बने थे। सो वे तो अपना अभिनय पूरा करके बाबाजी के बाबाजी ही रह गये। किन्तु सम्राट्स्वामी तो गौराचन्द्र के आवेश में भैया धोबी! हरि बोलो' ऐसा कहते-कहते उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। रात के बारह बज गये, किन्तु उन्हें होश न आया। इस दिव्य लीला का दर्शन कर सारी जनता मुग्ध हो गयी, सभी के हृदय पटल पर नाम नरेश का सिक्का जम गया और सब लोग 'भैया धोबी! हरि बोलो' इन्हीं शब्दों को दुहराते यथास्थान चले गये। किन्तु हमारे महाराष्ट्रीय बाबा को अब भी चेत न हुआ। वे नृत्य करते-करते बेहोश हो गये। हम उन्हें इसी अवस्था में उठाकर श्रीमहाराजजी के पास ले आये। उन्होंने कहा, इन्हें दूध पिलाकर इनके आसन पर लिटा दो और इनकी अच्छी तरह देखभाल रखो। परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी हम उन्हें दूध न पिला सके।उन्हें क्षण-क्षण में मूर्च्छा हो जाती थी और जब चेत होता था तब वही रट 'भैया धोबी! हरि बोलो।' इस तरह वे चौबीस घण्टे तक अचेत रहे।

पीछे श्रीमहाराजजी ने उन्हें बड़े प्रयत्न से दूध पिलाया। फिर भी तीन दिन तक वे अर्धबाह्य अवस्था में ही रहे। इसके पश्चात् उनका जीवन सदा के लिये पलट गया। वे परम विरक्त, शान्त, गम्भीर और अनुरागी सन्त हो गये। इससे पहले वे बड़े ही चंचल थे किन्तु अब उनकी सारी चंचलता जाती रही। इस प्रकार श्रीभोलेबाबाजी की बातों में प्रेमी भक्तों को जो दुःख था उससे सौ

गुना सुख उन्हें इस लीला से मिला और सभी के हृदयों में श्रीभगवान् की महिमा का आतंक बैठ गया। फिर तो सारे ही सिद्धान्त उनके सामने नतमस्तक हो गये।

इस प्रकार यह उत्सव बड़े आनन्द से सम्पूर्ण हुआ और सभी समागत सन्त एवं भक्तजन यथास्थान चले गये।

अलीगढ़ का उत्सव

सन् १९१६ में, जब आप इस प्रान्त में आये, पैदल ही श्रीवृन्दावन से अलीगढ़ होते हुए गंगातट पर पधारे थे। उस समय मार्ग में आप अचलताल पर ठहरे थे। वहाँ आपकी नोटबुक, दो चार पाठ्य-पुस्तकें कमण्डलु और साधारण-सा कम्बल किसी साधुवेशधारी चोरने चुरा लिया। नोटबुक में आपके अनेकों आध्यात्मिक अनुभवों की बातें लिखी थीं, अतः उसके जाने का आपको कुछ खेद हुआ किन्तु उन दिनों तो आपमें वैराग्य की अपूर्व मस्ती भरी हुई थी। अतः प्रातःकाल होते ही उठकर चल दिये। उस समय भी अलीगढ़ में गौरभक्तों की एक सामान्य-सी मण्डली थी, जो कभी-कभी कुछ कीर्तन किया करती थी।

किन्तु जिस समय सन् १९१७ से आपने गवाँ में कीर्तन आरम्भ किया तब से तो बढ़ते-बढ़ते उसका प्रभाव आस पास के सभी नगर एवं गाँवों से फैल गया। बाँध के उत्सवों में इन सब स्थानों के भक्तजन आते थे और यहाँ से संकीर्तन तथा संकीर्तनोत्सव का संस्कार लेकर अपने यहाँ भी वैसा ही आयोजन करने का प्रयत्न करते थे। इसी के फलस्वरूप दिल्ली एवं बुलन्दशहर

आदि शहरों में बड़े-बड़े उत्सव हुए इसी प्रकार सन् १९३२ के होली के उत्सव पर अलीगढ़ के कुछ भक्तों ने श्रीमहाराजजी के आगे अपने यहाँ उत्सव करने का प्रस्ताव रखा। आपने उनकी प्रर्थना स्वीकार कर ली। अतः पूज्य बाबा तो होली के पश्चात् अनूपशहर, कर्णवास और रामघाट होते हुए वैशाख मास में अलीगढ़ पहुँच गये। आपने रामनवमी का उत्सव बाँध पर ही किया और फिर बैशाख मास में अलीगढ़ पधारे। उस समय भक्तपरिकर के सहित आपकी यात्रा और भोजनादि का सारा प्रबन्ध गवाँ के साहू जानकीप्रसादजी ने किया था। उत्सववालों से आपने कुछ भी नहीं लिया।

उत्सव के मुख्य संचालक थे ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी तथा उसमें प्रधानता थी वृन्दावनवासी श्रीराधारमणजी के गोस्वामियों की क्योंकि अलीगढ़ के प्रमुख कार्यकर्ता इन्हीं लोगों के शिष्य थे। इस उत्सव में एक विशाल पण्डाल में अखण्ड-कीर्तन की योजना की गयी थी तथा सभा मण्डप अचलताल पर वैश्य क्लव के विशाल भवन में था। हमारे बाबा अपने परिकर सहित साहू पन्नालाल के बगीचे में ठहरे हुए थे तथा उनके भोजनादि की व्यवस्था भी उन्हीं के स्थानीय भक्तों के सहयोग से मास्टर राधावल्लभजी ने की थी। महाराजजी भारतबन्धु प्रेस में ठहरे थे और हम लोग बाबू दुर्गाप्रसाद वकील के यहाँ।

उत्सव में जो महानुभाव पधारे थे उनमें एक थे स्वामी श्रीएकरसानन्दजी महाराज। आप बड़े ही अध्यवसायी संयमी एवं सरल प्रकृति के सन्त थे। आपके साथ कुछ गृहस्थ और विरक्त भक्तजन भी पधारे थे। उस समय जिला कानपुर और फर्रुखाबाद के आस-पास आपका बड़ा प्रभाव था। आपका व्याख्यान प्रायः तीन घण्टे में समाप्त होता था और उसमें एक ही साथ ज्ञान, भक्ति, कर्म, ज्योतिष, वैद्यक तथा जादूटोना आदि सभी प्रकार की बातें आ जाती थीं। व्याख्यान देने में आपका उत्साह भी खूब था, प्रायः सत्तर वर्ष की आयु होने पर भी आप व्याख्यान देते थकते नहीं थे।

दूसरे विचित्र सन्त थे श्रीकृष्ण प्रेमजी। आप जन्मतः अंग्रेज हैं। पहले लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रोफेसर होकर आये थे। उस समय वहाँ के वाईस

चांसलर थे डॉक्टर ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती इनकी धर्मपत्नी श्रीयशोदामाई बड़ी निष्ठावती वैष्णव महिला थीं उनके जीवन का इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उनसे गुरु दीक्षा लेकर इन्होंने सदा के लिये आत्म समर्पण कर दयिा। फिर उन्हीं के आदेश से इन्होंने श्रीराधारमणजी के गोस्वामी श्रीबालकृष्णजी महाराज से गौड़ीय सम्प्रदाय की दीक्षा ली और ये शिखा-सूत्र एवं कण्ठी-तिलक धारणकर प्रोफेसर निकसन से श्रीकृष्ण प्रेम वैरागी बन गये। पीछे इन्होंने संस्कृत एवं बंगला का अभ्यास कर वैष्णव शास्त्रों का अनुशीलन किया और अल्मोड़ा से प्रायः पन्द्रह मील दूर मिरतोला में एक आश्रम बनाया। इस आश्रम में ये माता यशोदामाई तथा कुछ अन्य भारतीय एवं योरोपीय धर्मबन्धुओं के साथ रहकर वैष्णवीय पद्धति से सेवा पूजा करने लगे। इस स्थान का नाम इन्होंने उत्तर वृन्दावन रखा है। यहाँ श्रीराधाकृष्ण का सुन्दर एवं विशाल मन्दिर है तथा उसमें श्रीदुर्गा, राम, हनुमान एवं बुद्ध भगवान् की प्रतिमाएँ हैं। उसके अतिरिक्त जहाँ-तहाँ कुछ दूरी पर अनेकों एकान्त कुटियाँ बनी हुई हैं। लेखक ने प्रायः एक मास इस स्थान पर व्यतीत किया है। श्रीकृष्णप्रेम जी बड़े ही सौम्य और मधुर प्रकृति के संत हैं। मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति से भी भरी सभा में गाढ़ आलिंगन करके मिलते हैं। आपके स्वभाव में किसी प्रकार का साम्प्रदायिक पक्षपात या असहिष्णुता नहीं है। आपका कीर्तन भी बड़ा मधुर होता है। आप का स्वरूप स्वभाव से अत्यन्त सुन्दर और लम्बा चौड़ा है। जिस समय आप संकीर्तन में भावाविष्ट होकर नृतय करते हैं उस समय साक्षात् गौरसुन्दर से ही जान पड़ते हैं। अलीगढ़ में श्रीमहाराजजी के कीर्तन में उछल-उछल कर नृत्य करते हुए आप अचेत हो गये थे। आपकी अवस्था दिनों दिन गम्भीर होती जा रही है।

इस उत्सव में तीसरे विशिष्ट सन्त थे श्रीकृष्णानन्ददासजी मण्डली वाले। ये अपनी भक्त-मण्डली के सहित हमारे बाबा के पास साहू पन्नालाल के बगीचे में ही ठहरे हुए थे। इनका जन्म सम्भवतः पंजाब प्रान्त में हुआ था। पूर्वावस्था में इन्होंने शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था। फिर संन्यास लेकर

ये गंगातट पर विचरने लगे। उस समय श्रीअच्युतमुनिजी से इन्होंने ब्रह्मसूत्र आदि कुछ वेदान्त ग्रन्थों का भी अध्ययन किया किन्तु पीछे अद्वैत वेदान्त में इनकी आस्था न रही। भक्तिभाव से आकृष्ट होकर इन्होंने नवद्वीप के प्रसिद्ध सन्त बाबा रामदासजी से गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा ले ली। ये निरन्तर महामन्त्र का जप करते थे तथा एक निश्चित ध्वनि से झाँझ, करताल एवं ढोलक बजाते हुए बड़ी मस्ती से कीर्तन किया करते थे। इनकी मण्डली में पच्चीस-तीस व्यक्ति रहते थे। उनमें एक दो लड़कियाँ भी थी। वे सब अपने को श्रीश्यामसुन्दर का सखा समझते थे तथा उनमें कई बार भगवत्पार्षदों का आवेश भी हो जाता था। इनकी ठाकुरसेवा भी बड़ी भावपूर्ण थी। उसमें प्रायः सभी अवतारों और सम्प्रदायाचार्यों के चित्र रहते थे। बड़े ही विश्वासी और सरल सन्त थे। शास्त्रार्थ के लिए भी सर्वदा तैयार रहते थे अपने बुद्धिकौशल से इन्होंने कई आर्य समाजियों को भी परास्त करके वैष्णव बना दिया था। ये अपनी मण्डली सहित प्रायः व्रजके गाँवों में घूमा करते थे। इस उत्सव में इनकी नित्य प्रति श्रीमद्भागवत की कथा होती थी।

इनके सिवा जो वृन्दावन के गोस्वामी स्वरूप आये थे उनमें प्रधान थे श्रीविजयकृष्णजी महाराज। इनके सभापतित्व में ही यहाँ सत्संग का सारा कार्यक्रम चलता था। ये बड़े ओजस्वी वक्ता हैं। आज-कलके युवकों पर इनके व्याख्यानका खूब प्रभाव पड़ता है। इनके सिवा गोस्वामी अनन्तलालजी एवं बालकृष्णजी आदि कुछ अन्य महानुभावों के भी व्याख्यान होते थे। ये सभी श्रीभगवन्नाम की महिमा, संकीर्तन के अद्भुत प्रभाव वैष्णव सेवा और साम्प्रदायिक दीक्षा आदि विषयों का प्रतिपादन करते थे। किन्तु स्वयं अत्यन्त सुकुमार एवं नागरिक होने के कारण कीर्तन करते नहीं थे। इधर हमारे सरकार अपने सीधे-सादे ग्रामीण भक्तोंके साथ पण्डालमें तीन बार सिंह गर्जनसे कीर्तन करते थे। उस समय कीर्तनसुधाका पान करके भक्तजन तो प्रेम से पागल हो जाते थे और दर्शकवृन्द उस लोकोत्तर दृश्यको देखकर धीरे-धीरे भगवन्नाम एवं श्रीमहाराजजी की ओर आकर्षित होते जाते थे। किन्तु गोस्वामी लोग तो

अपने को ही कीर्तन और भगवन्नाम का ठेकेदार समझते थे। अतः उन्हें यह बात न रुची और वे तरह-तरह से हमारे कीर्तन की चुटकियाँ लेने लगे।

धीरे-धीरे उनका मनोमालिन्य यहाँ तक बढ़ा कि उनमें से कोई महाशय कुछ बहिर्मुख गवैया को लिवा लाये और उनसे सभा में अंटशंट गाने गवाने लगे। तब यह देखकर कि इन लोगों को हमारा सभा में बैठना अच्छा नहीं लगता श्रीमहाराजजी चुपचाप उठकर चले गये तथा उनके पीछे पूज्य बाबा और दोनों महानुभावों के भक्तजन भी उठ आये। उनके साथ और भी हजारों भक्त, गायक और वक्ताओं ने सभामण्डप छोड़ दिया। इससे गोस्वामी महानुभावों में भी बड़ी हलचल फैली और वे लोग अपने-अपने बिस्तरे बाँधकर श्रीवृन्दावन को चलने के लिए तैयार हो गये। इधर बाबा और महाराजजी ने समझा कि हमारे यहाँ रहने से इन लोगों को दु:ख होता है। अतः हमें यहाँ से चला जाना चाहिए। यह सोचकर यह भी चलने की तैयारी करने लगे इस प्रकार दोनों दलों को चलते देख ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी बहुत घबराये। उन्होंने देखा कि यह तो इस यज्ञ में महान् विघ्न उपस्थित हुआ है। तब उन्होंने गोस्वामियों के पास जाकर कहा, इस उत्सव का उत्तरदायित्व तो मेरे और आपके ऊपर अवलम्बित है। वे लोग तो निरपेक्ष अतिथि हैं। उन्होंने तो हमसे किराया और भोजनादि का खर्चा भी नहीं लिया है। तथा यहाँ पर विशेष प्रभाव उन्हीं का है। अतः हमें सोच-समझकर काम करना चाहिए।

इस प्रकार जब ब्रह्मचारीजी ने उन्हें सुनाया तो वे लोग अपने व्यवहार के लिए बहुत लज्जित हुए और सबने बाबाके पास आकर क्षमा प्रार्थना की। बाबा सबको लेकर महाराजजी के पास आये। इससे आपको बड़ा संकोच हुआ। बोले कि मैं तो यही सोचकर जा रहा था कि आपको मेरे कारण कुछ दु:ख हुआ है। यदि आप लोगों की ऐसी आज्ञा है तो मैं नहीं जाऊँगा इस प्रकार यह मनोमालिन्य बात की बात में निवृत्त हो गया। जहाँ वास्तव में कोई स्वार्थ दृष्टि नहीं होती वहाँ प्रथम तो कोई संघर्ष होता नहीं है, और यदि अन्यथा ग्रहण के कारण कोई मनोमालिन्य हो भी जाता है तो एक ओर से भी सफाई हो जाने पर सर्वथा निवृत्त हो जाता है।

उत्सव के अन्त में सब लोगों ने नगरकीर्तन का विचार किया। कार्यकर्ताओं ने आपसे सवारी में बैठकर साथ रहने की प्रार्थना की। किन्तु आपने कहा कि मैं तो सवारी के आगे कीर्तन करते हुए चलना चाहता हूँ। यह बात किसी को न जँची। सवारी के साथ पाँच-छः घण्टे कीर्तन करते हुए चलना आपके स्वास्थ्य के लिए किसी प्रकार ठीक नहीं बैठ सकता था। अतः अन्तमें यह निर्णय किया गया कि आप आरम्भ में कीर्तन कराकर सवारी को विदा कर देंगे और सवारी लौटने पर स्वयं ही उसका उपसंहार करा देंगे। बीचमें किसी उपयुक्त स्थानपर बैठकर सवारी का दर्शन करेंगे। पूज्य बाबाने भी यही विचार पसन्द किया। इसलिए यही अन्तिम निर्णय रहा।

आज अलीगढ़ में बड़ी भारी तैयारी की गयी थी। सारे नगरके बाजार और सड़कें साफ करके सुसज्जित की गयी थीं। दुकानदारों ने अपनी दूकानें सजाने में कोई बात उठा नहीं रखी थी। कसेरों ने बड़े विचित्र ढंगों से अपनी दूकानों के सारे बर्तन सजाये थे तथा बजाजों ने रंग-बिरंगे वस्त्रों से अपने बाजार को सुसज्जित किया था। इसी प्रकार प्रत्येक चौक में शामियाने लगाकर उन्हें बन्दनवार, ध्वजा, पताका, कलश और कदली-स्तम्भादि से सजाया गया था। इन मण्डपों में भक्तजन धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, शंख, घण्टा, पान, फूल और चन्दनादि मंगलद्रव्य लिये इस सवारी का स्वागत करने के लिये तैयार खड़े थे। आकाश में सब ओर श्रीनामघोष एवं जयघोष गूँज रहा था। स्थान-स्थान पर लोग उमंग भरे भगवान् की पूजा के लिये तरह-तरह की सामग्री लिये खड़े थे तथा सड़क के दोनों ओर छतों पर सहस्रों नर-नारी कीर्तन करते हुए सवारी का दर्शन कर रहे थे। इस प्रकार सारा नगर साक्षात् दिव्य धाम ही बना हुआ था।

सवारी चलने के समय पहले सब मण्डलियाँ पण्डाल में एकत्रित हुईं। वहाँ श्रीमहाराजजी ने कीर्तन आरम्भ कराया। इस समय ऐसा रंग जमा कि सब लोग प्रेम से पागल हो गये और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सभी के भीतर एक दिव्य शक्ति का संचार हो गया है, मानो स्वयं भगवत्पार्षदों ने ही सबके

शरीर में आविष्ट होकर उन्हें उन्मत्त कर दिया है। आप कुछ दूर तक समष्टि कीर्तन कराते चले और फिर बाबा का संकेत पाकर लौट आये। अब यह संकीर्तन कई मण्डलियों में विभक्त हो गया, जिन्हे स्थान भेद से बाँध, अलीगढ़, मेरठ, बुलन्दशहर एवं दिल्ली आदि की मण्डलियाँ कह सकते हैं।

यह जलूस प्रायः चार फर्लांग लम्बा था। इनमें सबसे आगे बैण्ड बाजा था। उसके बाद बाँध की मण्डली और फिर भगवान् का सुन्दर सिंहासन था। उसके क्रमशः अन्य मंडलियाँ थीं, इन मण्डलियों का जगह-जगह पान, इलायची एवं ठण्डाई आदि से उचित सत्कार होता था तथा जहाँ-जहाँ जलूस ठहरता था वहाँ कुछ महानुभावों के व्याख्यान एवं पद आदि भी होते थे। आज तो अलीगढ़ मानो प्रेम का ही गढ़ बना हुआ था। आज तो यहाँ प्रेम का समुद्र ही उमड़ रहा था, जिसमें अवगाहन करके कीर्तनकार और नगर-निवासी सभी कृतकृत्य हो रहे थे।

आज अलीगढ़ के हिन्दू ही नहीं मुसलमान भी प्रेम से पगाल हो रहे थे। वे भी खुदा और भगवान् में अभेद मानकर मुक्तकंठ से कीर्तन में सहयोग दे रहे थे। वे आपस में कह रहे थे कि भाई! आज तो हमारे शहर में खुद अल्ला मियाँ ही तशरीफ ले आये हैं और इन महात्माओं के रूप में तो हमारे पीर-पैगम्बर ही इकट्ठे हो गये हैं। उन्होंने भी अपने मुहल्लों और दूकानों की खूब सजावट की थी तथा कीर्तनकारों को फल-फूल भेंट करके अपनी श्रद्धा प्रकट की थी। यह अलौकिक चमत्कार तो अलीगढ़ में ही देखा गया। इससे सभी लोगों का उत्साह और भी अधिक बढ़ गया।

इस प्रकार चार बजे से सारे शहर में घूमता हुआ यह जलूस रात के दस बजे पुनः मण्डप में पहुँचा। यहाँ हमारे सरकार ने घण्टा बजाते हुए पुनः समष्टि कीर्तन कराया। इससे आनन्द की ऐसी बाढ़ उमड़ी कि सभी को देह की सुधि भूल गयी और छै घण्टे की सारी थकान उतर गयी। कीर्तन के पश्चात् प्रसाद वितरण हुआ और फिर सब लोग विदा होकर यथास्थान चले गये।

बाँध का सबसे बड़ा उत्सव

अब बाँध पर होली के समय तो प्रत्येक वर्ष उत्सव होने लगा। सन् १९३३ की होली आने से पूर्व श्रीमहाराजजी बोले, 'इस बार तो ऐसा उत्सव होना चाहिए जैसा पहले कभी न हुआ हो। उसमें देश देशान्तर से सभी विरक्त सन्त और भक्त एकत्रित हों और सभी का यथोचित सत्कार किया जाय। यदि ऐसा उत्सव कर सको तब तो करो, नहीं तो सामान्य उत्सव करने की मेरी इच्छा नहीं है इस पर सबने प्रार्थना की कि, 'आपकी जैसी इच्छा हो करें। हम तो केवल निमित्त मात्र है।' आप बोले, 'भाई ! इस काम में अपने तन, मन, धन को स्वाहा करना होगा। यदि आप लोग उत्सव को साक्षात् भगवान् का विराट रूप समझ कर उनकी सेवा के आगे स्वार्थ और परमार्थ को भूलकर प्रसन्नतापूर्वक प्राणपर्यन्त न्यौछावर करने को तैयार हों तो ऐसा उत्सव हो सकता है। वास्तव में 'उत्सव' तो उत्साह का ही नाम है। राजा मयूरध्वज ने घर पर आये हुए अतिथियों की सेवा में उनके सिंह के सामने अपने प्राणप्रिय पुत्र को स्वयं चीरकर डाल दिया था। इसी प्रकार जब एक बार श्रीकृष्ण और अर्जुन राजा कर्ण की परीक्षा के लिए वर्षा के समय विप्र वेश धारण करके आये और उनसे सूखा चन्दन काष्ठ माँगा तो उन्होंने अपना सारा मकान ढाकर उसके चन्दन के किवाड़, चौखट, कड़ियाँ और पलंग आदि चीर-फाड़कर उन्हें चन्दन दिया था। इसी तरह का त्याग करने के लिए यदि आप लोग तैयार हों तो उत्सव करो ढील-ढाल से तो ऐसा उत्सव होगा नहीं।'

यह बात सबने सहर्ष स्वीकार की। बस, एक कार्यकारिणी समिति बनायी गयी और दूसरे ही दिन उसकी बैठक करके भिन्न-भिन्न सदस्यों को भिन्न-भिन्न कार्य सौंप दिये गये। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

लाला जानकीप्रसाद-स्वागताध्यक्ष बनाये गये। इनके जिम्मे सभी कामों की देखभाल करना था।

रामेश्वरप्रसाद-कोषाध्यक्ष थे। इनकी सहायता के लिए भाईसिंह
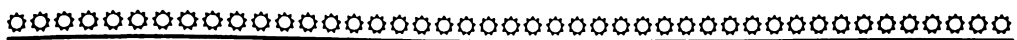
इनके साथ रहा। इसके सिवा इन्हें एक रसोईघर के सञ्चालन का भार भी सौंप गया, जिसमें सम्पूर्ण साधुसमाज और उड़ियाबाबाजी का परिवार भोजन करता था।

ललिताप्रसाद—रामेश्वर की सहायता से सब महानुभावों के पास निमन्त्रणपत्र भेजना, भिन्न-भिन्न कैम्पोंकी रचना करना और पीली कोठी के पश्चिम की ओर सत्संगमण्डप बनवाना।

बहादुरसिंह और छविकृष्ण—बाहर से आने वाले सन्तों को वहाँ जाकर लाना।

लाला किशोरीलाल और चन्द्रसेनजी—भोजनसामग्री एकत्रित करना। तथा भोजन भण्डारों की व्यवस्था करना।

बड़ी गढ़ी वाली ठाकुरानी—कीर्तन मन्दिर की सजावट कराना।

बाबू कुन्दनगिरि, खुशीराम, भोलासिंहजी और त्रिलोकसिंह—आदि कई सज्जनों को भिन्न-भिन्न कैम्प बनवाने का काम सौंपा गया। इन कैम्पों का विभाग इस प्रकार था—

(१) **भक्तमण्डल**—यह श्रीमहाराजजी की कुटी और पीली कोठी के बीच वाले मैदान में बनाया गया था। इसमें एक हजार गृहस्थ ठहर सकते थे।

(२) **साधुमण्डल**—यह पीली कोठी के दाहिनी ओर था। इसमें सौ साधु तथा आदरणीय व्यक्तियों के ठहराने का प्रबन्ध था। इसे फूस और सिरकियों द्वारा बनाया गया था।

(३) तीसरा कैम्प पूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी के परिकर के लिए था। यह पीली कोठी के बायीं ओर बनाया गया था।

(४) चौथा कैम्प पीली कोठी वाले क्राँस बाँध के दक्षिण में विशेष आदरणीय सज्जनों के लिए था।

ठाकुर गुलाबसिंहजी—इन्हें सम्पूर्ण बाँध की कुटियों की मरम्मत तथा उन्हें लिपवाने-पुतवाने का कार्य सौंपा गया। श्रीमहाराजजी की कुटी की सफाई का काम भी इनके जिम्मे था। किन्तु पीली कोठीको सफाई और
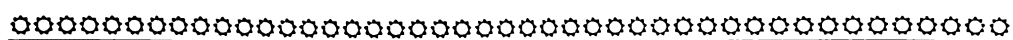
सजावट बहादुरसिंह को सौंपी गयी थी। उत्सव भूमि में प्रकाश के लिए प्राय: सौ हण्डे जलाये जाते थे। उनकी व्यवस्था भी गुलाबसिंह के ही अधीन थी।

पण्डित हरियशजी—इनके जिम्मे एक महीने के अखण्ड कीर्तन की सारी व्यवस्था थी। ये ही भिन्न-भिन्न गावोंकी पार्टियोंको बुलाते तथा उनकी ड्यूटी बदलते थे तथा कीर्तन-मन्दिरमें झण्डी, झण्डा और बन्दनवार लगाना, कलश-स्थापना करना तथा कदलीद्वार बनाना भी इन्हीं के आधीन था।

ठाकुर भोलासिंह और चण्डीप्रसाद—इन्हें जगह-जगह प्राय: पचास शौचालय बनवाने और उनकी सफाई करवाने का काम सौंपा गया था। इस कामके लिए प्राय: पचास भंगी नियुक्त किये गये थे।

यह सारी उत्सवभूमि दो-तीन वर्ग मील के बीच में थी। इसमें अनेकों भोजन-भण्डार थे। पहले तो केवल चार भण्डार रखने का निश्चय हुआ था। किन्तु उत्सव के समय तो ग्यारह चौके चल रहे थे। उनके अतिरिक्त रईसोंके अपने निजी चौके में भोजन बनवाने का प्रबन्ध एक प्रधान व्यक्ति को सौंपा गया था और उसकी सहायता के लिए छोटे चौकों में पाँच-पाँच तथा बड़ों में दस दस आदमी रखे गये थे, जो भोजन कराने का काम करते थे। कैम्पों का प्रबन्ध भी इसी प्रकार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को सौंपा गया था। वे लोग अपने-अपने कैम्प में भोजन, सफाई, रोशनी और जल की पूरी व्यवस्था करते थे तथा जब सब लोग सत्संग में चले जाते थे तो वे ही उनके सामान की रखवाली भी करते थे।

बाँध पर हजारों आदमी एकत्रित हुए थे, किन्तु वहाँ अन्य मेलों की तरह किसी प्रकार का प्रपंच हल्ला-गुल्ला या बहिर्मुखता नहीं थी। जो लोग आये थे वे सभी सत्संगप्रिय, सज्जन और भजनानन्दी थे। तथा सभीकी श्रीमहाराजजी में श्रद्धा थी। इसलिए चौबीसों घण्टे वहाँ के प्रोग्राम में उपस्थित रहने के कारण उन्हें व्यर्थ बात करने का अवकाश ही नहीं मिलता था। प्रात: काल तीन बजे पहली घण्टी होती थी। उसमें पहले तो पाँच-सात घण्टे और शंखवाले आगे-आगे बजाते चलते थे और उनके पीछे बहुत बढ़िया बैण्ड बाजा,

जिसमें प्राय: पच्चीस आदमी थे, प्रभाती के स्वरों में बजाता हुआ कीर्तन मन्दिर से आरम्भ होकर सारे मेले में घूमता था। इस प्रकार पहली घण्टी में प्राय: पन्द्रह मिनट लग जाते थे। यह चक्कर प्राय: एक मील का होता था।

फिर दूसरी घण्टी पौने चार बजे होती थी और श्रीमहाराजजी अपनी कुटी से चलकर ठीक चार बजे कीर्तन मन्दिर में पहुँच जाते थे। उस समय घनश्याम सिंह उनके आगे घण्टा बजाता चलता था। उसे सुनकर बाहर से आये हुए सब भक्त भी कीर्तन मन्दिर में आ जाते थे। पाँच बजे तक बड़ी धूम से समष्टि कीर्तन होता था। उस कीर्तन में भावुक भक्तों को बड़े अद्‌भुत अनुभव होते थे। एक बार मेरी भी बड़ी विचित्र अवस्था हुई। कीर्तन करते-करते मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह संसार सर्वथा मेरी दृष्टि से ओझल हो गया है। पीछे कुछ होश आनेपर ऐसा जान पड़ा कि मैं अलग हूँ और यह शरीर अलग है। उसके पश्चात् मेरी वृत्ति अत्यन्त अन्तर्मुखी हो गयी, मुझे अपने शरीर के भीतर सूर्यका-सा प्रकाश दीख पड़ा। उस प्रकाश में शरीर के सारे अंग और अवयव स्पष्ट दिखते थे। मैं तटस्थ होकर साक्षी रूप से उन्हें देख रहा था। इसी समय मुझे मूलाधार चक्रमें अलातचक्र की भाँति कुण्डलीनी शक्ति का दर्शन हुआ। तब मैंने संकल्प किया कि यह चलने लगे। वह एकदम सीधी होकर बिजली की भाँति सब चक्रों का भेदन करके सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ऊपर को चली। किन्तु जब गले में स्थित विशुद्ध चक्र की भी भेदन करके आगे बढ़ी तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीमहाराजजी मुझे बड़े जोर से डाँटकर कह रहे हैं। 'बस इससे ऊपर जाने का अभी समय नहीं है।' इससे मुझे उसी समय चेत हो गया। किन्तु उस क्षण तो मुझे अपने में इतना सामर्थ्य जान पड़ता था कि यदि मैं चाहूँ तो सारे संसार की कुण्डलिनी शक्ति को जगा सकता हूँ, इस समय मैं कीर्तन-मण्डलको छोड़कर भाग गया था और पीली कुटी की छत पर बैठा हुआ था। जब चेत हुआ तो महाशय सुखरामगिरीजी मेरे पास बैठे हुए थे। मैंने उनसे कहा, महाशयजी ! यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारी कुण्डलिनी शक्तिको जगा दूँ।' उन्होंने कहा, 'नहीं'! इसके पश्चात् मैं सावधान हो गया।

इन सब बातों को लिखने से मेरा अभिप्राय केवल यही है कि श्रीगुरुदेव की कृपा से केवल कीर्तन द्वारा भी बड़ी से बड़ी अवस्थाओं का अनुभव हो सकता है। श्रीनाम-नरेश की शरण में जाने से किसी और साधन की अपेक्षा नहीं रहती। योग, ज्ञान, भक्ति और कर्म द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है वह केवल कीर्तन द्वारा ही बड़ी सुगमता से प्राप्त हो जाता है। आवश्यकता है केवल उसमें दृढ़ विश्वास की।

कीर्तन के बाद सब लोग गंगास्नान के लिए जाते थे। हमारे श्रीमहाराजजी तो कीर्तन से पहले ही शोच, स्नान और व्यायामादि से निवृत्त हो लेते थे। किन्तु सर्वसाधारण का स्नानका समय कीर्तन के बाद पाँच बजे से ही था। उन दिनों गंगाजी प्राय:एक मील दूर थीं। बाँध से गंगा तक अच्छी चौड़ी सड़क बना दी गयी थी और उसमें जगह-जगह गैस के हण्डे और झण्डियाँ भी लगा दी गयी थीं, जिससे कोई रास्ता न भूले। सब लोग गंगास्नान करके नित्यकर्म से निवृत्त होते थे। उसके बाद आठ बजे फिर बैण्ड बाजा बजता था। तब सब लोग तैयार होकर रासमण्डप में पहुँच जाते थे। उस समय तक सत्संग भवन नहीं बना था। अत: पीली कुटी के पश्चिम की ओर एक चबूतरे पर कई शामिया ने लगाकर सत्संगमण्डप बनाया गया था, और उसे झण्डियों चित्रों और बन्दनवारों से खूब सजा दिया गया था। इस मण्डप में ही रासलीला होती थी। ग्यारह बजे रास समाप्त होता था। फिर वहीं से श्रीमहाराजजी कीर्तन-मन्दिर में पधारते थे और आधा या पौन घण्टा कीर्तन होता था। उसके पश्चात् बारह से एक बजे तक केवल एक घण्टे में सब लोग भोजन कर लेते थे।

तदनन्तर सब लोग कुछ देर विश्राम करते थे और दो बजे से कथा एवं प्रवचन आरम्भ हो जाते थे। सबसे पहले श्रीमहाराजजी रामचरित मानस की दो अष्टपदियों का अर्थ करते थे और फिर हमारे श्रीउड़ियाबाबाजी के प्रधान कृपापात्र भक्तवर पण्डित श्रीलक्ष्मीनारायणजी अन्य सब लोगों के साथ मिलकर उन्हें 'मंगलभवन अमंगलहारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी' यह सम्पुट लगाकर बड़े भाव से गाते थे। उसके पश्चात् कई विशिष्ट कथावाचकों
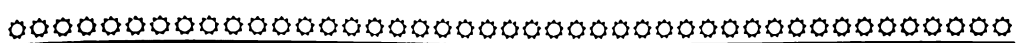
की अत्यन्त सरस और भावपूर्ण कथाएँ होती थीं तथा उनके बीच-बीच में भावुक भक्तजन मनोहर पद-कीर्तन करते थे। इस प्रकार यह प्रोग्राम दो से पाँच बजे तक तीन घण्टे रहता था। इस समय श्रोतागण कथामृत और कीर्तनसुधा का आस्वादन करते आनन्दविभोर हो जाते थे।

जिस सभा में हमारे श्रीमहाराजजी विराजते हैं। उनमें शांति बिना प्रयत्न ही बनी रहती है। आपके उपस्थित रहते हुए किसी प्रकार का गोलमाल या कोलाहल करने का साहस कोई कर नहीं सकता, इस प्रकार वहाँ बिना प्रबन्ध के ही सारा प्रबन्ध हो जाता है। अहा ! कैसी विचित्र सभा थी जहाँ एक आसन पर दो अलग-अलग आसन बिछाये जाते थे और उनपर दाहिनी ओर शंकर स्वरूप श्रीउड़ियाबाबाजी और बायीं ओर साक्षात् गौरांगस्वरूप श्रीमहाराजजी विराजते थे। इस उत्सव में और भी अनेकों सन्त एवं विद्वान् पधारे थे। उनमें सबसे वयोवृद्ध थे बाँध गुफा त्रिवेणीतट प्रयाग के परमहंस बाबा अवध बिहारीदासजी। उनके लिए एक ओर चौकी पर अच्छा सुन्दर कालीन बिछाया गया था। उनके पास ही नीचे सामान्य आसन पर उनके प्रिय शिष्य बाबा जयरामदासजी दीन विराजते थे। वे श्रीरामचरित मानस के अपूर्व वक्ता तथा आकृति प्रकृति से साक्षात् श्रीपवननन्दनजी जान पड़ते थे। आप सुन्दर पीताम्बरी चोगा पहनते थे और विशाल भालपर श्रीरामानन्दी तिलक लगाते थे। हाथ में पीताम्बरी अँगोछे की झोली और उसमें बड़े-बड़े दानों की तुलसी की माला रखते थे। आपका शरीर कुछ स्थूल और स्वरूप बड़ा भव्य था। जिस समय आप श्रीरामायणजी का छोटा-सा गुटका हाथ में लेकर व्यासगद्दी पर विराजते थे उस समय आपकी अपूर्व शोभा होती थी। आपका प्रवचन अत्यन्त सरल और सरस होने पर भी बड़ा पाण्डित्यपूर्ण होता था। आपकी शब्द योजना, वर्णन-शैली तथा पदों की व्याख्या बड़े से बड़े पण्डित और साहित्यक को भी मुग्धकर देती थी। आप जिस रस का वर्णन करते थे वही मूर्तिमान हो जाता था। वह कथा क्या थी साक्षात् ऐसा जान पड़ता था मानो स्वयं महावीरजी ही अपने प्राणाराम भगवान् राम का चरित्र सुना रहे हैं।

दूसरे कथावाचक थे श्रीधाम वृन्दावन के बाबा गौरांगदासजी महाराज। ये बड़े ही भावुक और ब्रजरस के मर्मज्ञ महात्मा थे। इनकी कथा भी अत्यन्त भावमयी होती थी। जिस समय प्रभुपाद श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती के राधासुधानिधि स्तोत्र से महाभावमयी श्रीवृषभानुनन्दिनी की अत्यन्त निगूढ़ एवं रसमयी निकुञ्ज क्रीड़ाओं का वर्णन करते थे उस समय श्रोतागण ब्रजरस के माधुर्य का आस्वादन करके भाव-विभोर से हो जाते थे। स्वयं भी कोरे कथावाच्क ही नहीं थे, बल्कि निरन्तर उसी भाव समुद्र में सन्तरण करने वाले मधुरभाव के उपासक थे। समय पर इनके हृदय में अद्भुत भावतरंगे उमड़ती रहती थीं।

चौथे महापुरुष थे हमारे बंगाली स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी एम. ए.। आप उज्जवलनीलमणि आदि रसग्रन्थों की बड़ी अपूर्व कथा कहते थे। आपका शरीर भी अत्यन्त सुन्दर, सुगठित और स्वस्थ था आपका श्रीभगवान् के प्रति सखी-भाव था। तथा वैसा ही आपका वेष भी था। आपकी कथा और व्याख्यानों में मधुर रस का बड़ा विलक्षण वर्णन होता था। उसे वर्णन करते करते आपको भावसमाधि हो जाती थी। आपका स्वर भी बड़ा मधुर था तथा संगीतशास्त्र के भी आप पूर्ण मर्मज्ञ थे। जिस समय आप संकीर्तन में गोपीभाव से भावित होकर नृत्य करने लगते थे, उस समय सभी दर्शकों के चित्त एक अपूर्व रस में सरावोर हो जाते थे।

पाँचवे सन्त थे ऋषीकेश के स्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती। आपका शरीर भी बड़ा स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट था। आप बड़ी मस्ती से उछल-उछल कर कीर्तन करने लगते थे। आपकी मस्ती देखकर जनता में भी एक अपूर्व उल्लास भर जाता था। मदरासी होने के कारण आपको हिन्दी का अच्छा अभ्यास नहीं था। इसलिए आप अँग्रेजी में भाषण देते थे और आपके शिष्य स्वामी स्वरूपानन्दजी उसकी स्वतन्त्ररूप से हिन्दी में व्याख्या कर देते थे।

सन्तों में एक प्रधान संगीतज्ञ थे स्वामी रामानन्दजी सरस्वती। ये भी स्वामी श्रीशिवानन्दजी के ही शिष्य थे। पूर्वाश्रम में इनका नाम श्रीअवधशरणजी था। समय-समय पर इनके भी पद होते थे।

गृहस्थ भक्तों में मुख्यतया कल्याण सम्पादक श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार का नाम उल्लेखनीय है वे अपने कुछ साथियों के सहित पहली बार ही बाँध पर पधारे थे। उनके व्याख्यानों का भी जनता पर बड़ा अद्भुत प्रभाव पड़ता था। आप दैवी-सम्पद् के तो मानो भण्डार ही हैं। आपका जैसा सौम्य स्वभाव है वैसा ही शान्तरस पूर्ण अद्भुत भाषण भी होता था।

रात्रि के समय पूज्य श्रीभोलेबाबाजी का भाषण होता था। उसमें अधिकतर वेदान्त-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता था। इसी प्रकार और भी कई महानुभावों के उपदेश एवं व्याख्यान होते थे। कभी भी हमारे सीताराम बाबा चिमटा बजाकर 'जय सियाराम जय जय सियाराम' की ध्वनि बोलते हुए बड़ा प्रभावशाली पद-कीर्तन कराते थे। उनके सिवा स्वामी श्रीएकरसानन्दजी के शिष्य ब्रह्मचारी नारदानन्द, शुकदेवानन्द एवं भजनानन्दजी के भी सुन्दर भाषण होते थे।

इस समय पूज्य श्रीकरपात्रीजी का नाम सारे भारतवर्ष मे विख्यात है। वे नये-नये संन्यासी होकर इस उत्सव पर पधारे थे। किन्तु अभी तक आपने सभा में व्याख्यानादि देना आरम्भ नहीं किया था। इस अवसर पर 'सनम' उपाधिधारी एक मुसलमान सज्जन भी आये थे। उनका भगवान् श्रीकृष्ण में बड़ा गम्भीर प्रेम था। उनके भावमय भाषण का भी जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था।

रात्रि के समय सायंकालीन समष्टिकीर्तन और भोजन के पश्चात् कुछ पदकीर्तन होता तथा बाँध प्रान्त के भक्तजन किसी भक्त गाथा का अभिनय करते थे। उससे मनोरञ्जन के साथ जनता को भगवद्भजन तथा साधु सेवा आदि का उपदेश भी मिलता था। इस प्रकार सवेरे तीन बजे से रात्रि के दस बजे तक सारा समय सत्संग, भगवल्लीला एवं भगवन्नाम कीर्तन में ही व्यतीत होता था। तथा सब लोग हर समय भावरस में निमग्न रहकर मतवाले-से रहते थे।

हमारे उत्सवों में भोजनादि का निरीक्षण तथा बाहर से आये हुए मुख्य-मुख्य अतिथियों की सँभाल प्रधानतया श्रीउड़ियाबाबाजी ही करते हैं।

हमारे महाराजजी और पूज्य बाबा में किस प्रकार का सम्बन्ध है, सो तो हम लोग समझ नहीं सकते। हमें तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध साक्षात् मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम और भूतभावन शंकर-सा ही जान पड़ता है।

'सेवक स्वामि सखा सियपिय के।
हित निरुपाधि सब विधि तुलसी के।।'

'कौ बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुनभेद समुझहिं साधु।।'

इन दोनों महापुरुषों में कौन बड़ा है और कौन छोटा—इस भेद को कोई नहीं समझ पाया वे इन्हें बड़ा मानते हैं और ये उन्हें। वे इनके मनको लिए रहते हैं और ये उनके मन को। वे इनका किञ्चित् संकेत पाकर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं और ये उनका संकेत पाने पर अपने आपको न्यौछावर कर देते हैं। भाई ! इन दोनों की जोड़ी तो अद्‌भुत है। क्या कहें, क्या उपमा दें? 'इन सम ये उपमा उर आनी।'

प्राय: सभी बड़े-बड़े उत्सव दोनों ही की उपस्थित में हुए हैं। उनमें आतिथ्य-सत्कार तो बाबा के जिम्मे रहता है और कथा, कीर्तन एवं सत्संग का प्रबन्ध श्रीमहाराजजी करते हैं। हमारी दृष्टि में तो एक श्रीगौरसुन्दर हैं तो दूसरे श्रीपाद नित्यानन्द हैं। इसी प्रकार दोनों के भक्तों का भी परस्पर अत्यन्त प्रेम पूर्ण सम्बन्ध हैं।

पूज्य बाबा ही की तरह बाँध के अधिकांश उत्सवों में स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी भी उपस्थित रहते हैं। आप भेरिया के श्रीबंगाली बाबाजी के शिष्य हैं तथा बड़े ही निष्ठावान्, तपस्वी और विरक्त महात्मा हैं। हमारे श्रीमहाराजजी से तो भेरिया में प्रथम मिलन के समय से ही आपका घनिष्ठ प्रेम है। पूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी की तरह आप भी उत्कल देश के ही रत्न हैं।

इनके सिवा अन्य जो महानुभाव इस अवसर पर पधारे थे उनमें ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपका तो हम लोगों से चिरकाल से आत्मीयता का सम्बन्ध है तथा पूज्य श्रीबाबा और

महाराजजी के प्रति आप बड़ी श्रद्धा और आदर का भाव रखते हैं। इस प्रकार कहाँ तक लिखें, उस समय बाँध पर जो-जो महानुभाव पधारे थे उन सबका परिचय लिखने से तो यह लेख बहुत अधिक बढ़ जायेगा; अत: अब उसके अन्य कार्यक्रम पर कुछ लिखने का प्रयत्न किया जाता है।

उत्सव में मध्यान्ह और रात्रि के समय प्राय: नित्य ही शिवपुरी की मण्डली द्वारा मंगलाचरण रूप से पदगान होता था। उस मण्डली का नेता था राधेश्याम तथा उसके साथी थे शिवचरन, मिढ़ईलाल, पं. राधेश्याम, खञ्जनलाल और किशोरीनन्दन आदि। राधेश्याम के गान की बात क्या लिखें? उसका कोयलका-सा कण्ठ बड़ा ही मधुर और गम्भीर था तथा वैसा ही सरस उसका हृदय भी था। वह तो पद गाते-गाते मूर्च्छित-सा हो जाता था। कभी-कभी तो तबला भी उसके हाथ से छूट जाता था। जब ये सब लोग मिलकर गाते थे तो एक आनन्द की तरंग-सी उठने लगती थी। उसमें सभी मस्त हो जाते थे। ऐसा ही मादक पदकीर्तन होता था दिल्ली की मण्डली का। उसके प्रमुख गायक थे दशरथनन्दन, दीनानाथ और शिवचरण। कभी कभी हरिदासपुर के पण्डित हरियशजी के तीन-चार बच्चे भी मिलकर श्रीमन्महाप्रभुजी का अष्टक बोलते थे। उनका गान भी बड़ा मनोहर होता था। हमारे श्रीमहाराजजी को कई लोगों का मिलकर गाना अधिक प्रिय था।

हम उत्सव कर्मचारियों को भी तीन समय समष्टि-कीर्तन में सम्मिलित होना अनिवार्य था। उस समय सारा काम जहाँ का तहाँ छोड़ दिया जाता था। वस्तुत: वह कीर्तन ही हमारी सच्ची खुराक थी, उसीसे शक्ति संञ्चय करके हम अहर्निश अथक् परिश्रम कर पाते थे। उन दिनों हमें अपने शरीर की भी कोई सुधि नहीं थी। हम लोग रात्रि को बारह बजे ही जग पड़ते थे। चार बजे तक शौच, स्नान, व्यायाम आदि नित्य कर्मों से निवृत्त होते और फिर सारे दिन मशीन की तरह काम में लगे रहते थे। इतने व्यस्त रहनेपर भी श्रीमहाराजजी की कृपा से हमारे चित्त अत्यन्त शान्त, गम्भीर और स्थिर रहते थे। आलस्य तो किसी भी समय हमारे पास फटकता भी नहीं था। कभी थोड़ी बहुत थकान
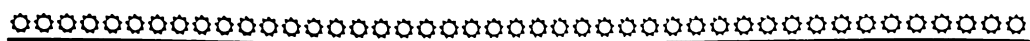
होती भी तो जहाँ कीर्तनमें एक घण्टा पागलों की तरह नाचे शरीर और पसीने से तर हुआ कि सारी थकान उतर गयी तथा शरीर और मन एकदम हल्के हो गये बस, हर समय एक मस्ती-सी सवार रहती थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानो हम किसी के हाथ की कठपुतली हैं, हमें नचानेवाला सूत्रधार तो कोई और ही है। वास्तव में हम जैसे अयोग्य व्यक्तियों से ऐसे बड़े-बड़े कार्य करालेना केवल उस नटवर की अनोखी लीला का विलास ही तो है। हम तो उसमें केवल निमित्तमात्र ही थे।

उस समय किसी का भी पुरुषार्थ अपनी योग्यतासे कम नहीं था। ठाकुर गुलाबसिंह, रामेश्वरप्रसाद, किशोरीलालजी, बहादुरसिंह, राजवीरसिंह, छविकृष्ण, बाबू कुन्दनगिरिजी तथा और भी सभी कार्यकर्ताओं का पुरुषार्थ सराहनीय था, सभी का कार्य कौशल बड़ा विचित्र था तथा सभी अपना-अपना कार्य बड़े परिश्रम और कौशल से करते थे। श्रीमहाराजजी भी इनमें प्रत्येक के कार्य की बड़ी प्रशंसा करते थे। किन्तु इन सबसे भी साहू जानकी प्रसादजी का पुरुषार्थ बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उन्होंने तो इस उत्सव में अपना तन, मन, धन सभी न्यौछावर कर रखा था। यों तो उनका हाथ सभी कामों में था, किन्तु उनका प्रधान कार्य था बाहर से आये हुए विरक्त और गृहस्थ अतिथियों का स्वागत करना। सो वे दिन-रात पागल की तरह इस कार्य में लगे रहते थे। उन्होंने अनूपशहर और बबराला स्टेशन दोनों जगह सवारियों का उचित प्रबन्ध किया था तथा दोनों जगह से बाँध तक आने वाली सड़कों की मरम्मत करायी थी। बबराल से बाँध तक तो उन्होंने एक लॉरी का भी प्रबन्ध किया हुआ था।

बाँध पर रात-दिन हर समय यात्री आते रहते थे। उनके ठहरने की यथोचित व्यवस्था करना इनके जिम्मे था। अतः यात्रियों का सामान ढोने के लिए इनके पास हर समय आठ-दस नौकर रहते थे। किन्तु कभी-कभी तो नौकर न होने पर ये स्वयं ही उनका सामान उठाकर ले जाते थे। उस समय इन्हें जूते या कपड़े पहनने का भी होश नहीं था। अतः इस दौड़धूप में इनके पैर में एक काँटा लग गया, जो आगे चलकर इनके लिए घातक सिद्ध हुआ।

इनका दूसरा काम था विरक्त महात्माओं के भोजन का प्रबन्ध करना। उसकी भी इन्होंने बड़ी सुन्दर व्यवस्था की थी। उनके चौके में हर समय पक्का और कच्चा दोनों प्रकार का भोजन तथा जलपान, दूध, चाय और फल आदि तैयार रहते थे। जो साधु जैसा चाहते थे उन्हें वैसा ही पदार्थ दिया जाता था। इनके अतिरिक्त और भी जिस कार्य के लिए श्रीमहाराजजी आज्ञा करते थे उसीको ये प्राणपण से पूरा करते थे।

यह शीतकाल का अवसर था। बाँध पर ग्यारह बड़े-बड़े और यात्रियों के सैकड़ों छोटे-छोटे चौके चल रहे थे। इसके सिवा कर्मचारियों और साधुओं को तापने के लिए भी लकड़ी की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार नित्यप्रति सैकड़ों मन लकड़ी का खर्चा था। अतः जितनी भी लकड़ी इकट्ठी की गयी थी वह समाप्त हो गयी। तब यह प्रश्न श्रीमहाराजजी के सामने कमेटी में रखा गया। आपने सब रईसों से कहा, 'भाई ! लकड़ी का उचित प्रबन्ध करो।' इस पर सबने जबाब दिया कि महाराजजी यदि आप कहें तो गीली लकड़ी तो चाहे जितनी मंगायी जा सकती है, किन्तु सूखी लकड़ी हमारे यहाँ बिल्कुल नहीं है। तब आपने जानकीप्रसाद से कहा, 'क्या तू लकड़ी का प्रबन्ध कर सकता है? उन्होंने बड़े उत्साह से कहा, 'हाँ कर सकता हूँ। आप जितनी चाहें उतनी लकड़ी आ सकती है। आप बोले, 'अच्छा, तू ही सब प्रबन्ध कर दे। अब आजसे मेरे पास किसी की लकड़ीकी शिकायत न आवे। उन्होंने कहा, 'बहुत अच्छा।'

उसी समय जानकीप्रसादजी ने अपने सब गाँवो में आदमी भेजकर जो भी इमारत के काम की लकड़ी पड़ी थी सब मँगवा ली और उसे चिरवा डाला। अपने घर के खर्चे के लिए जितनी भी लकड़ी थी वह भी मँगवा ली। तथा अपना एक बाड़ा था, उसे भी उधड़वा डाला और उसके सब किवाड़, चौखट, कड़ी और तख्ते चिरवा डाले। इस प्रकार बाँधपर अपनी कुटीके सामने अपने ही बाड़े में तीन-चार हजार मन लकड़ी का चट्टा लगा दिया और सब चौकों तथा यात्रियों को सूचना दे दी कि जिसे जितनी भी लकड़ी की आवश्यकता हो यहाँ से ले जाय। आपका यह प्रबन्ध देखकर सब लोग दंग

रह गये और रईस लोग तो लज्जित भी हुए। जब महाराजजी को यह बात मालूम हुई तो वे बड़े प्रसन्न हुए। इसी तरह जो काम किसी से नहीं होता था वह जानकीप्रसादजी को ही सौंपा जाता था और ये अपने तन, मन, धन की बाजी लगाकर उसे पूरा करते थे।

इस उत्सव में बाँध कल्पतरु हो गया था। जिसे जिस वस्तु की इच्छा होती थी वही मिल जाती थी। उस समय सचमुच ऐसा प्रतीत होता था अष्टसिद्धियाँ शरीर धारण करके यहाँ जनता जनार्दन की सेवा कर रही हैं। वहाँ सभी का परस्पर स्वाभाविक प्रेम था तथा ऐसे-ऐसे विरक्त और गृहस्थ सन्त पधारे थे कि उनका दर्शन करके चित्त में बड़ी प्रसन्नता होती थी। इस कीर्तन कल्पतरु के नीचे जो भी पहुँच गये उन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय करामलकवत् हो गया। उन्होंने स्वयं कृत्कृत्य होकर इस प्रसाद को अपने-अपने यहाँ लेजाकर वहाँ की जनता में वितरण किया। हजारों व्यक्तियोंने तो इस पाठशाला से यह दिव्य पाठ पढ़कर आजीवन इसीका प्रचार करने का व्रत ले लिया। इस तरह देश के कोने-कोने में कीर्तन का बिजली की तरह प्रचार हो गया। आज से बीस वर्ष पहले तो एक बंगदेश को छोड़कर और कहीं भी कीर्तन का प्रचार नहीं था। अथवा कहीं-कहीं कुछ प्राचीन सन्तों के स्थानों पर टिमटिमाते हुए दीपक के समान इसका कुछ आभास मिलता था। किन्तु आज तो इन उत्सवों के प्रताप से इस आध्यात्मिक विश्वविद्यालय से हजारों विद्यार्थियों ने स्वयं सीखकर सब ओर कीर्तन का प्रचार कर दिया है। आपकी यह प्रचार करने की शैली अत्यन्त गुप्त और रहस्यपूर्ण थी। इसके पश्चात् आपने अनेकों भक्तों के अनुरोध से मेरठ, अलीगढ़, बुलन्दशहर और बरेली आदि कई शहरों में जाकर उत्सव किये। दिल्ली में तो आप कईबार पधारे और तीन-तीन चार-चार महीने ठहर कर बड़े समारोह से उत्सव किये। उनका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उस समय दिल्ली में नील कटरे में केवल नवलप्रेम सभा नाम की एक ही ऐसी संस्था थी, जहाँ नियम से कीर्तन होता था, किन्तु अब तो वहाँ गली-गली कूँचे-कूँचे और घर-घर में कीर्तन का प्रचार हो गया है।

उस समय अखण्ड कीर्तन का नाम केवल बंगालियों में ही सुना जाता था, किन्तु अब चौबीस घण्टों का अखण्ड कीर्तन तो साधारण घरों में भी हो जाता है। इसके सिवा छः महीने या एक वर्ष के अखण्ड कीर्तन भी कई स्थानोंपर हो चुके हैं। तथा कई जगह तो निरवधिक अखण्ड कीर्तनों की भी व्यवस्था हुई है यह सब आपका ही प्रभाव है। किन्तु आप तो सदा गुप्तरूप से ही काम करते रहे हैं, आपने तो हमें भी उत्सवों का विज्ञापन कभी नहीं छपवाने दिया। बस, केवल प्रतिष्ठित सन्तों को ही दस-बीस पत्र डलवा दिया करते थे। एक उत्सव पर मैंने विज्ञापन छपवा लिये थे, तो आप बड़े नाराज हुए, और बोले हमारा कीर्तन तो गँवारों का सा हल्ला-गुल्ला है इसमें ऐसी क्या विशेषता है जो हम किसी को बुलावें। हाँ जो स्वयं प्रेमवश आयेगा उसे तो किसी प्रकार की शिकायत भी नहीं होगी। बस, हमारे यहाँ उत्सवों में तो बिना बुलाये ही इतनी भीड़ हो जाती थी कि हमें सँभालना कठिन पड़ता था। किन्तु इस तरह केवल चुने हुए प्रेमी सज्जन ही आते थे। इसलिए किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती थी।

इस उत्सव में प्रायः दस हजार दर्शक आये थे। इन सबका प्रबन्ध स्वयं ही हो रहा था। उनका सारा सामान चाहे जहाँ खुला पड़ा रहता था, किन्तु कोई उसे छूता नहीं था। लोगों को अपने सामान की कोई परवाह नहीं थी। वे प्रत्येक प्रोग्राम में सम्मलित होते थे तथा समय से पहले ही वहाँ पहुँच जाते थे। इस प्रकार बड़े ही प्रेम और उत्साह से यह उत्सवस्वरूप महायज्ञ निष्पन्न हुआ।

इस उत्सव में भोजन का प्रबन्ध तो मानो साक्षात् जगदम्बा अन्नपूर्णा ने ही किया था। भोजन-भण्डार निरन्तर चौबीस घण्टे खुला रहता था, किन्तु उसमें कभी किसी चीज की कमी नहीं पड़ी। उत्सव के बीच में दो एकादशी और शिवरात्रि को फलाहार का प्रबन्ध किया गया। फाल्गुन शुक्ला एकादशी को तो दस हजार आदमियों के लिए कूटू की पकौड़ी, पूरी, आलू का शाक, चौलाई की खीर और सिंघाड़े का हलवा तथा महात्माओं के लिए फलों की व्यवस्था भी की गयी थी। उस समय की पंगत हमारे श्रीउड़ियाबाबाजी ने स्वयं

ही भक्तमण्डलके विस्तृत मैदान में लगायी थी। वह दृश्य बड़ा ही अद्‌भुत था। परोसने वाले भी सैकड़ों आदमी थे। किन्तु सभी सामान अक्षय हो गया था। उस बात को हमारे बाबा अभी तक नहीं भूले हैं। समय-समय पर उसकी चर्चा कर देते हैं। विशेषत: उसकी पकौड़ियों को बहुत याद करते हैं। बहुत बढ़िया होनेके कारण उन्हें पसन्द किया था। अजी ! वह उत्सव क्या था, एक प्रकार की विराट् पुरुष की आराधना ही थी।

इस प्रकार बात की बात में फाल्गुन मास समाप्त हुआ और होली का दिन आया। इसी दिन श्रीमन्महाप्रभुजी का जन्म हुआ था। अत: हम इसे श्रीगौर जन्म पूर्णिमा कहते हैं। इसी के उपलक्ष्य में यह सब धूमधाम हो रही थी। अत: आज सायंकाल में कीर्तन भवन में विशेष समारोह के साथ जन्म-आरती होगी। बड़ी गढ़ीवाली ठकुरानी साहिबा ने कीर्तन मन्दिर को बड़े उत्साह से सजाया है। पण्डित हरियशजी ने भी केले के खम्भ लगाकर जहाँ-तहाँ द्वार बनाये हैं। अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी झण्डियों के तथा आम्रपल्लवों के बन्दनवार लगाये गये हैं। तथा सारे बाँध पर भी रंग-बिरंगी झण्डियाँ खड़ी करके बन्दनवार लगाये हुए हैं। यद्यपि उत्सव के आरम्भ से ही बीस-पच्चीस स्त्रियों का एक समूह बाँध को निरन्तर लीपता रहता था, तथापि आज तो मोहलनपुर गाँव के सभी स्त्री-पुरुष आकर बाँध के तीनों क्रॉस बन्ध और सभी कुटियों को लीपने में लगे हुए हैं। अधिकांश कुटियों के आगे बन्दनवार, पताका और कलश स्थापित करके चौक पूरे गये हैं अत: सर्वत्र अपूर्व मंगल हो रहा है। कीर्तन मन्दिर के ऊपर एक सात गज लम्बा सात रंग का विशाल झण्डा लगाया गया है। श्रीठाकुरजी का सिंहासन भी आज बढ़िया-बढ़िया रेशमी, मखमली और कामदार वस्त्रों से ऐसा सजाया गया है कि देखते ही बनता है। यों तो आज पूर्णिमा होने के कारण सर्वत्र स्वभाव से ही पूर्णचन्द्र की स्निग्ध कान्ति छिटकी हुई है, तो भी गैस के सैकड़ों हण्डों से कीर्तन मन्दिर और सारा बाँध जगमगा रहा है। आज पूजन के लिए सैकड़ों ही पुष्पमालाएँ और चन्दन तैयार रखे गये हैं। एक चाँदी के बड़े थाल में आटे के दीपकों में सैकड़ों ही

फूल-बत्तियाँ सजायी गयी हैं तथा ग्यारह शंख ग्यारह घण्टे और जितने भी अधिक से अधिक नगाड़े, तबला, खोल, ढोल एवं हारमोनियम मिल सके हैं तैयार रखे गये हैं। आज सारा बाँध आनन्द से भरा जगमगा रहा है, क्योंकि यह शचिनन्दन श्रीगौरसुन्दर का जन्मदिवस है। हमारे श्रीमहाराजजी के उत्साह का भी आज ठिकाना नहीं है। इन दिनों में प्राय: पन्द्रह दिन तक आपका उपवास ही होता है। आप केवल कुछ फल और दूध ही लेते हैं। बड़ा भारी संयम चलता है। आज सारे उत्सव का आनन्दोत्साह एकत्रित होकर पूर्णचन्द्र के रूप में उदित होगा और इधर श्रीगौरसुन्दर का जन्मोत्सव मना कर सब भक्तों के हृदयों में प्रेमचन्द्र का आविर्भाव होगा। बहुत गौरभक्तों ने तो आज गौरपूर्णिमा का उपवास किया है।

बस, सायंकाल को ठीक साढ़े पाँच बजे पहली घण्टी और पौने छः बजे दूसरी घण्टी बजी। श्रीमहाराजजी कीर्तन मन्दिर में पधारे। पहले तो बड़े जोर से जय शचिनन्दन गौरगुणाकर। प्रेम परशमणि भावरस सागर, इस ध्वनि का कीर्तन हुआ। फिर जब महाराजजी खूब नृत्य कर चुके तो उसी समय मण्डल तोड़कर सब लोग ठाकुरजी के सामने से हट गये और पण्डित हरियशजी ने आरती करना आरम्भ किया। इधर ग्यारह घण्टे, ग्यारह शंख और सम्पूर्ण बाजों की तुमुल ध्वनि के साथ 'जय गौरहरि जय गौरहरि। जय जय शचिनन्दन गौरहरि' इस ध्वनि का कीर्तन होने लगा। कीर्तन के साथ मिलकर बैण्ड बाजा भी बज रहा था। उस समय कीर्तन और बाजों की झनकार से आकाश गूँज उठा। इस अवसर पर श्रीमहाराजजी एवं भक्तों का नृत्य भी बड़ा अनूठा था। उसे किन शब्दों में वर्णन करें?

'वह शोभासुसमाज सुख, कहत न बने खगेश।
वरनै शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश॥
सोई सुख लवलेश, जिन वारेक सपनेहु लहेउ।
ते नहिं गनहि खगेश, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति॥'

बस, सब भक्तजन आनन्द में विभोर होकर नृत्य कर रहे हैं। किसी को तन-मन की सुधि नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रीगौरसुन्दर अपने भक्तपरिकर के साथ सब भक्तों के हृदयों में प्रकट हो गये हैं और सभी को कठपुतली की तरह नचा रहे हैं, और हँसा रहे हैं। कोई भक्त पृथ्वीपर लोट रहा है कोई किसी को आलिंगन कर रहा है और किसी के शरीर में कोई सात्त्विकविकार प्रकट हो गया है, महाराजजी आज थिरक-थिरक कर नृत्यकर रहे हैं। किसी को एक किसी को दो और किसी को तीन चार सात्विक विकारों का उद्रक हो रहा है। आज भक्तों के मनो में ऐसा आनन्द का समुद्र उमड़ा है कि वे पागल हो गये हैं और निरन्तर दिव्य चिन्मय रस का उपभोग कर रहे हैं। श्रीमहाराजजी के नृत्य का तो आज विराम ही नहीं है। वे अनेकों प्रकार की अंगभंगीद्वारा अद्भुत नृत्य कर रहे हैं। उनका शरीर रबड़ की तरह त्रिभंग होकर कभी इधर को, कभी उधर को कभी तिरछा कभी बाँका और कभी ऊँचे उछल-उछलकर विचित्र भावों से भावित हो रहा है। यह सब होते हुए भी घण्टा ठीक अपनी ताल के अनुसार बज रहा है। इसी प्रकार सब बाजे भी ठीक ताल-स्वर से बज रहे हैं।

आखिर, जैसे-तैसे कीर्तन का विराम हुआ। किन्तु एक प्रकार का प्रेमतरंग का कोलाहल-सा मचा ही रहा। इसी समय मुख्य-मुख्य व्यक्ति श्रीमहाराजजी के आस-पास खड़े होकर श्रीगौराष्टक एवं चैतन्याष्टोत्तरशतनाम आदि गौरपरक स्तोत्रों का पाठ करने लगे। इस समय भी अनेकों भक्त गौर-प्रेम से छककर नृत्य कर रहे थे। इसके पश्चात् राधेश्याम की प्रमुखता में शिवपुरी के भक्तों ने पहले 'अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तंयेन चराचरम्।' इत्यादि कुछ श्लोकोंसे गुरुदेव की वन्दना की, फिर नीचे श्लोकों का कीर्तन किया।

'न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।
शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः ॥
इदमेव शिवम्, इदमेव शिवम्, इदमेव शिवम् इदमेव शिवम् ।
मम शासनतः, मम शासनतः, मम शासनतः, मम शासनतः॥'

तदन्तर अनेकों श्लोकों से श्रीमहाप्रभुजी की स्तुति की और फिर सबने मिलकर बड़े ही भाव से नीचे लिखे पदका कीर्तन किया—

प्रगटे प्रभु राधारमण राधाकान्तिधारी।।
कृष्ण भये गौर आज, ब्रजके सब तजे साज।
भये मधुर मुरलि त्याग, नामगान कारी।।१।।
भ्राता बलरामचन्द, भये प्रभु नित्यानन्द।
संग संग भक्तवृन्द, ब्रजके नर नारी।।२।।
व्रजको जो महारास, सोई कीर्तन विलास।
प्रिया प्रेम कर प्रकाश दृगन बहत वारी।।३।।
वृन्दावन नवद्वीप, भयो सुरधुनि समीप।
ब्रजरानी ब्रजमहीप, भये जन्मकारी।।४।।
धन्य घड़ी पल निमेष, धन्य जाति धन्यदेश।
जामे धरि दीनवेश, जन्मे अवतारी।।५।।
ऐसो नहिं कबहु भयो, पतितनहू प्रेम लह्यो।
सबको भवताप गयो, महिमा विस्तारी।।६।।
तप्तहेमसम सुकान्ति, रजत वपु विपुल शान्ति।
दर्शनसो मिटत भ्रान्ति, छविकी बलिहारी।।७।।

जिस समय गौरप्राण राधेश्याम ने सब भक्तों के साथ मिलकर यह पद गाया, मानो सब ओर आनन्दामृत की वर्षा होने लगी। अन्त में हरि दासपुर के बच्चों ने श्रीगौरविष्णुप्रियास्तवावली से दो अष्टक कहे। इस प्रकार बड़े आनन्द से उस समय का कार्यक्रम समाप्त हुआ। बाँधपर जब-जब होलीका उत्सव होता है, उसमें गौरजन्म के समय सर्वदा यही कार्यक्रम रहता है। आज इस कार्यक्रम में दस बजे का समय हो गया था, बस, प्रसाद वितरण होने पर सब लोग अपने-अपने निवासस्थानों पर चले गये।

प्रातःकाल फिर वही प्रोग्राम आरम्भ हुआ। किन्तु आज रासलीला में बड़े समारोह से जन्मोत्सव मनाया गया। महाराजजी की कुटिया में जो कुछ समान था वह सभी रासवालों को भेटकर दिया गया तथा और लोगों ने भी

अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार रुपया, प्रसाद वस्त्र और पात्र आदि से उनका सत्कार किया इस प्रकार बड़ी धूम-धाम से नन्दोत्सव की तरह ही आज बधाई आदि हुई। उसमें सब लोगोंने सहयोग दिया। कोई भाँड बनकर आया तो कोई कलन्दर और बन्दर बन गये। ये सब हमारे महाराजजी के अत्यन्त कृपापात्र भक्त ही थे। इन्हें इस तरह के विचित्र वेषों में देखकर महाराजजी बड़े प्रसन्न हो रहे थे तथा और सब संतजन भी हँस रहे थे।

सायंकाल में कुछ खेल किये गये। हमारे अनूपशहर के भक्त रामप्रसादजी ने शारीरिक बल से सम्बन्ध रखनेवाली कलाएँ प्रदर्शित की। तथा और भी इसी प्रकार के कुछ खेल-कूद हुए। अन्त में उत्सव की पूर्णाहुति हुई और सब लोग अपने स्थानों को चले गये।

बुलन्दशहर का उत्सव

उत्सव समाप्त होने पर बुलन्दशहर के भक्तों ने श्रीमहाराज जी और पूज्य उड़िया बाबाजी से अपने यहाँ उत्सव करने के लिए प्रार्थना की। तब दोनों महापुरुषों ने आपस में सलाह की और उनकी प्रार्थना स्वीकार करली। बस, रामनवमी पर उत्सव होना निश्चित हो गया।

इधर हमारे वीर भक्त साहू जानकीप्रसाद के पैर में उत्सव के दिनो में जो काँटा लगा था वह पक गया। पहले तो उन्होंने उसकी कोई परवाह नहीं की, किन्तु पीछे कष्ट बहुत बढ़ गया और उसी के कारण उन्हें रक्त पित्त का दौरा पड़ गया। उनके मुँह से रक्त का वमन होने लगा। अतः डॉक्टर और वैद्यों को भी बुलाया गया। एक दिन श्रीमहाराजजी भी पधारे, तो ये बहुत रोये और कहा,'आपने क्यों कष्ट किया।' श्रीमहाराजजी ने आपको बहुत ढाँढस बँधाया। फिर इनकी कोठी में ही पन्द्रह दिन का उत्सव करने का निश्चय हुआ। अतः पन्द्रह दिन तक बड़ी धूमधाम से कथा, कीर्तन, रास और सत्संग होते रहे। इससे उन्हें कुछ आराम सा प्रतीत हुआ। किन्तु अब तक रुधिर बहुत निकल

चुका था, इसलिए इन्हें निर्बलता बहुत हो गयी थी। तो भी इन्होंने उत्सव का सारा प्रबन्ध बड़ी श्रद्धा और उत्साह से किया। अपनी ओर से किसी प्रकार की कसर नहीं रखी। तन, मन, धन से खूब ही सेवा की और आनन्द भी खूब रहा।

पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी तो बाँध का उत्सव समाप्त होते ही बुलन्दशहर की चल दिये थे, क्योंकि वे किसी सवारी पर नहीं चढ़ते थे, अतः उन्हें पैदल चलकर ही बुलन्दशहर पहुँचना था। अब श्रीमहाराजजी भी खादर प्रान्त से प्रायः सौ आदमी कीर्तन करने वाले और दस-बीस प्रमुख भक्तों को लेकर चले। आप प्रथम तो कहीं बाहर जाते नहीं हैं। और यदि किसी के विशेष आग्रह से जाना स्वीकार कर लेते हैं तो वहाँ के लोगों से किराया भी नहीं लेते। इधर के भक्त ही वहाँ जाने का सारा प्रबन्ध करते हैं। वहाँ के लोगों से इतना संकोच करते हैं कि किसी जगह तो भोजन का प्रबन्ध भी अपने लोगों से ही कराते हैं। बुलन्दशहर में भी आपने ऐसा ही किया था, पीछे उनके बहुत आग्रह करने पर दो-चार दिन उनका भोजन भी स्वीकर कर लिया था।

हम जब बुलन्दशहर पहुँचे तो वहाँ के लोगों का उत्साह देखकर दंग रह गये। उन्होंने भारत के अनेकों प्रसिद्ध सन्त, भक्त एवं कीर्तन प्रेमियों को आमन्त्रित किया था। बाँध पर जो जो महात्मा पधारे थे उनमें से दो-तीन को छोड़कर प्रायः सभी यहाँ आये थे। उनके अतिरिक्त जो अन्य महानुभाव पधारे थे उनमें विश्वविख्यात स्वामी रामतीर्थ के शिष्य श्रीनारायण स्वामीजी तथा गोस्वामी बिन्दुशरणजी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उत्सव के आयोजन में यद्यपि नागरिकों का बड़ा ही उत्साह था, तथापि यहाँ के आर्यसमाजी भाइयों ने कुछ विरोध भी प्रकट किया। उन्होंने तरह-तरह के छिद्रान्वेषण करके कुछ विरोधी विज्ञापन भी छपवाये तथा शास्त्रार्थ के लिए भी आमन्त्रित किया। शुभ कार्यों में विघ्नों का आना तो स्वाभाविक ही है। किन्तु वास्तव में विघ्न कोई बुरी चीज नहीं है। वे तो साधक के परम मित्र हैं। विघ्नों के द्वारा ही साधक अपनी त्रुटियों को समझ पाता है और उनका शान्तिपूर्वक सामना करने से उसे साधन में दृढ़ता प्राप्त होती है। आज

तक संसार में जितने भी आचार्य, अवतार और महापुरुष हुए हैं उन्हें विघ्नों की कृपा से ही वह प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। विघ्नों के बिना तो किसी की महत्ता का कोई परिचय ही नहीं मिल सकता। यदि रावण और कंस न होते तो आज श्रीराम और कृष्ण को भी कौन जानता? इसी तरह बुद्ध महावीर, ईसा मसीह और मुहम्मद आदि अन्य धर्मों के आचार्य भी अनेक प्रकार की विपत्तियों के बादलों को चीरकर ही संसार में सूर्य की तरह चमके थे। संसार में ऐसा एक भी महापुरुष नहीं मिलेगा जिसे विघ्न, विरोध और विपत्तियों का सामना न करना पड़ा हो।

किन्तु साधक को चाहिए कि विरोध का विरोध करने में अपनी शक्ति क्षीण न करे। उसे तो उसकी उपेक्षा करके तत्परता पूर्वक अपने इष्टसाधन में ही लगा रहना चाहिए। जो व्यक्ति इधर-उधर दृष्टिपात न करके अनन्य भाव से पथ पर ही चलता रहता है उसके सारे विघ्न स्वतः ही शान्त हो जाते हैं। अतः उत्सव की ओर से आर्यसमाज के विरोध का कोई प्रतिवाद नहीं किया। एक दिन प्रोफेसर श्रीगंगाशरण शील ने अपने प्रवचन में उसके खण्डन में कुछ बातें कहीं थीं। उनके लिए हमारे श्रीमहाराजजी ने अपनी बहुत अप्रसन्नता ही प्रकट की थी।

इसी प्रकार एक दिन श्रीनारायण स्वामीजी ने भी अपने व्याख्यान में द्वैत का खण्डन करते हुए कीर्तनादि की कुछ आलोचना की थी। उससे भक्त समाज को बहुत दुःख हुआ। स्वामीजी तो व्याख्यान देकर चले गये। उनके बाद गोस्वामी श्रीबिन्दुशरणजी का भाषण हुआ। उन्होंने बड़ी युक्ति से भक्तिपक्ष का समर्थन किया और विरोधी पक्ष के अक्षेपों का निराकरण किया। इससे भावुक भक्तों के व्यथित हृदय पुनः शान्त हो गये। इसी तरह और भी अनेकों भाषण हुए तथा सभी को बड़ा आनन्द हुआ।

उत्सव की समाप्ति के दिन नगर कीर्तन का आयोजन किया गया था। इसके लिए वहाँ के लोगों ने बड़ी तैयारी की थी। सारे शहर में खूब सफाई कराकर छिड़काव कराया गया था बाजारों में जहाँ-तहाँ कदली-स्तम्भ खड़े करके बन्दनवार बाँध दिये गये थे। दुकानदारों ने अपनी-अपनी दुकानों के

सामने बड़ी भारी सजावट की थी। यहाँ तक कि मुसलमानों ने भी अपनी दुकानें सजायी थीं। चौराहों पर शामियाने लगाकर बढ़िया-बढ़िया मण्डप बनाये गये थे। यहाँ कीर्तन-मण्डलियाँ कुछ देर ठहरकर कीर्तन करती थीं। पुलिस तथा महावीरदल एवं सेवासमिति के स्वयं-सेवकों का प्रबन्ध भी सराहनीय था। सारा शहर ध्वजापता का एवं रंग-बिरंगी झण्डियों से सजाया गया था। स्थान-स्थान पर जल एवं शर्बत की प्याऊ बैठायी गयीं थीं तथा पान-इलायची आदि का भी प्रबन्ध था। उस समय तो सारा शहर साक्षात् वैकुण्ठ ही बन गया था।

'तद्धि वृन्दावनं धाम प्रेमाश्रुपुलकाञ्चितैः।
यत्र संगीयते भक्तैर्हरेर्नामैव केवलम्।।
तत्र तीर्थान्यशेषाणि क्षेत्राणि सकलानि च।
यत्र संगीयते भक्तैर्हरेर्नामैव केवलम्।।'

श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की गयी थी कि आप सवारी के साथ मोटर या हाथीपर चलें। किन्तु आपने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं तो कीर्तन करता हुआ पैदल ही चलूँगा। तब हमने निवेदन किया कि नगर कीर्तन में पाँच घण्टे से कम समय नहीं लगेंगे। आपका वृद्ध शरीर है, अतः इतना परिश्रम करना ठीक नहीं होगा। दूसरे आपके और दूसरे लोगों के कीर्तन में बड़ा अन्तर है। वे लोग तो दो पार्टियाँ बनाकर वारी-वारी से ध्वनि बोलते हैं और आप आरम्भ से अन्ततक प्राणों की बाजी लगा कर निरन्तर कीर्तन करते रहते हैं। अतः आपके लिए तो यही ठीक रहेगा कि सवारी चलने के आरम्भ में और फिर लौटने पर मण्डप में ही कीर्तन करा दें।

बस, अन्त मे यही तय हुआ कि आप आरम्भ में कीर्तन कराकर किसी मुख्य स्थान पर बैठकर सवारी का दर्शन करेंगे। अब मण्डलियों का विभाग हुआ। सबसे आगे बैण्ड बाजा था। उसके पीछे दो-तीन बाजे और थे और फिर बहुत बढ़िया सजा हुआ श्रीभगवान् का सिंहासन था। उसमें बैटरियों द्वारा बिजली का मण्डलाकार प्रकाश किया गया था। उसके आगे एक प्रमुख कीर्तन-मण्डली थी और पीछे बाँध वालों की मण्डली थी। उसके पीछे क्रमशः दिल्ली, गाजियाबाद, मेरठ और अलीगढ़ की मण्डलियाँ थी। फिर एक

मण्डली बालगोपालों की थी और सबसे पीछे बहुत बड़ी महिला मण्डली थी। उसकी नेत्री एक विदुषी महिला थीं। बीच-बीच में उनका व्याख्यान भी होता जाता था। इन सब मण्डलियों के आस-पास स्वयंसेवक तथा पुलिस के सिपाही थे। बाजारों में दर्शकवृन्द भी मन्त्रमुग्ध से होकर कीर्तन में सहयोग दे रहे थे। इस प्रकार इस नगर कीर्तन की बड़ी शोभा हुई। जगह-जगह भगवान् की आरती होती थी तथा भोग लगाया जाता था तथा मण्डलियों को बार-बार पान, इलायची, शरबत एवं मिठाई आदि भेंट की जाती थीं। किन्तु हम लोगों को तो यह सब विघ्न-सा प्रतीत होता था। अतः हमने तो हाथ जोड़ दिये और श्रीमहाराजजी की कृपा से अनन्त बल धारण करके नामामृत का पान करते हुए कीर्तन में ही लगे रहे। श्रीमहाराजजी शरीर से भले ही कीर्तन में नहीं रहे तथापि मन से तो हममें प्रत्येक के साथ थे। इसलिए पाँच घण्टे का समय इस प्रकार निकल गये कि पता भी नहीं लगा।

इस प्रकार श्रीमहाराजजी, पूज्य बाबा तथा अन्य सन्तों के अनुग्रह और बुलन्दशहर वासियों के प्रेम एवं उद्योग से वह नगर कीर्तन अलौकिक हो गया। यथाशक्ति सभी मण्डलियों ने बड़े परिश्रम से कीर्तन किया। बाँध की मण्डली तो इस समय पागल-सी हो रही थी। सभी लोग महावीरजी की-सी छलाँगे मारते ताण्डव नृत्य-सा करते हुए नामघोष कर रहे थे। यह कीर्तन सायंकाल में ठीक पाँच बजे आरम्भ हुआ और रात को दस बजे सवारी मण्डप में पहुँची। वहाँ सारी मण्डलियों के साथ श्रीमहाराजजी ने एक घण्टे तक बड़े जोर से समष्टि कीर्तन किया। उस समय तो ऐसा प्रतीत होता था मानो सारे विघ्नों के सिर पर चरण रखकर श्रीनाम-नरेश की कीर्त्ति-पताका भक्तों के हृदयाकाश में फहरा रही है। बस, सभी भक्त प्रेम से पागल हो गये, सबकी थकान दूर हो गयी, सबके हृदय हल्के हो गये तथा सभी बालकों की तरह उलछने लगे। इस प्रकार प्रेमानन्द की लूट-सी मच गई। इस तरह बड़े आनन्द से यह उत्सव समाप्त हुआ।
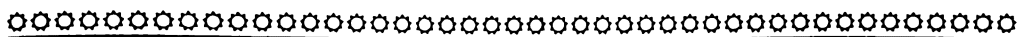
दो सच्चे सेवकों का विछोह

जिस समय श्रीमहाराजजी गवाँ से बुलन्दशहर के लिये चले थे, हमारे साहू जानकीप्रसादजी रुग्ण होने के कारण वहीं रुक गये थे। उनका विचार दूसरे दिन चलने का था। किन्तु दैव-वश उन्हें फिर रक्तपित्त का दौरा हो गया। अत: उन्हें वहीं रुकना पड़ा। अब उनका भोग समाप्त हो चुका था। अत: उनकी दशा बहुत गिर गयी और वे मरणासन्न हो गये। तब लोगों ने कहा कि श्रीमहाराजजी को बुला दें ? तो उन्होंने उत्तर दिया 'नहीं, कदापि नहीं। इस नश्वर जीवन के लिये श्रीमहाराजजी को कष्ट देना सर्वथा अनुचित है। यों तो श्रीमहाराजजी सर्वदा मेरे पास ही हैं और अब तो मैं इस मायिक शरीर को त्याग कर सदा के लिये उन्हीं की अभय एवं आनन्दमयी गोद में जाना चाहता हूँ। बस, तुम उन्हें मेरे कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम निवेदन कर देना और कह देना कि वे मुझे भूलें नहीं।' ऐसा कहकर उन्होंने स्वयं ही अपने को पृथ्वी पर लेने के लिये कहा। यथाशक्ति दान-पुण्य भी किया गया। फिर वहाँ उपस्थित लोगों से वे बोले, 'आप लोग राम-नाम उच्चारण करें। अब मैं चलता हूँ। इस प्रकार रामनाम लेते-लिवाते हुए ही उन्होंने यह पार्थिव शरीर त्याग दिया।

उनका यह समाचार लेकर खुशीराम के पिता चौधारी परमेश्वरीसिंहजी बुलन्दशहर गये। वहाँ श्रीमहाराजजी जब रास समाप्त होने पर निवास स्थान को जाने के लिये मोटर पर बैठने वाले थे तभी चौधरीजी आपके चरण पकड़ कर रो पड़े। तब आप बोले, क्यों दद्दा ! क्या बात है !' तब उन्होंने बताया कि जानकीप्रसाद का शरीर नहीं रहा। यह सुनकर महाराजजी ने दद्दा को बहुत समझाते हुए कहा, 'जानकीप्रसाद के लिये रोना व्यर्थ है। उसने तो अपने कर्त्तव्य का पूर्णतया पालन किया। वह बड़ा वीर था। मैंने तो उत्सव में उसका पुरुषार्थ देखकर निश्चय कर लिया था कि अब इसका अन्त समय समीप ही है। यहाँ आते समय मैंने उससे साथ चलने के लिये ही कहा था। किन्तु उसने किसी भी कारण से कहा कि मैं कल आऊँगा। तभी मेरे मन में कुछ सन्देह हुआ था। यदि मेरे साथ चला आता तो इस समय उसकी मृत्यु टल सकती थी। किन्तु विधि का विधान तो ऐसा ही था। इसलिये मैं भी भगवदिच्छा समझ कर चुप हो गया।

खैर, कोई बात नहीं वह अपना कर्त्तव्य समाप्त कर चुका था। अब हमें उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिये कि श्रीहरि उसकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। इस प्रकार की प्रार्थना से उसका कल्याण होगा और हमारा भी चित्तशुद्ध होगा।

बुलन्दशहर का उत्सव समाप्त होने पर आप गवाँ गए और वहाँ जानकीप्रसाद के निमित्त से अखण्ड कीर्तन किया। इसके पश्चात् ग्रीष्मकाल में आप निजामपुर के ढाके में रहे। वहाँ एक सामान्य-सी फूस की कुटी डलवा ली थी तथा ज्येष्ठ मास में विशेष गर्मी होने पर पृथ्वी में एक गुफा खुदवायी थी। इस प्रकार वहाँ सत्संग, कीर्तन एवं कथा आदि का खूब आनन्द रहा। वहाँ भिरावटी, गवाँ बरोरा, निजामपुर और भैसरोली आदि गाँवों के आदमी भी प्रातः-सायं दोनों समय कीर्तन में इकट्ठे हो जाते थे। अतः खूब धूमधाम से कीर्तन होता था तथा कभी-कभी आप वन भ्रमण भी करते थे।

सीताराम इस समय आपकी सेवा में था। इसका परिचय पहले 'बाबूजी के यहाँ भोजन' शीर्षक प्रकरण में दिया जा चुका है। यह मनुष्य क्या साक्षात् देवता ही था। ऐसा सेवक तो आज तक कहीं देखने में नहीं आया। परन्तु विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' उससे कोई ऐसा अपराध बन गया कि आपका चित्त उससे उपराम हो गया। आपने उससे स्पष्ट कह दिया कि तू अपने घर चला जा। सीताराम दस बर्ष से निरन्तर आपकी सेवा में रहता था। तथापि आप कभी उससे अप्रसन्न नहीं हुए। वरन् कई बार उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। आज न जाने किस कारण से आपको उसे त्यागना पड़ा। इस त्याग के लिए आपको हार्दिक खेद हुआ था और कोई भगवद्विधान समझकर ही आपने ऐसा किया था। उस समय आपने कहा था कि मालूम होता है अब या तो मेरा शरीर नहीं रहेगा या सीताराम नहीं रहेगा। इसीलिए ऐसा अवसर आया है। हुआ भी ऐसा ही। सीताराम बड़ी गम्भीर प्रकृति का व्यक्ति था। आज्ञा होते ही वह अपने गाँव को चला गया। किन्तु अपने प्रभु से पृथक् रहकर वह कैसे जीवन धारण कर सकता था ! अतः वैसा ही संयोग बन गया। उसके गाँव में प्लेग का प्रकोप हुआ और सीताराम का विरह-विषाद भी प्लेग के रूप में ही परिणत हो गया। उसे बड़ा भयानक ज्वर हुआ और ग्रन्थि भी निकल आई। तीन दिन में ही उसकी
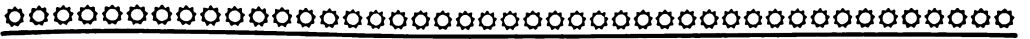
दशा बिगड़ गई। किन्तु अब भी उसे चेत बना हुआ था। उसने अपने पिता से कहा, 'तुम मुझे बाँध पर ले चलो'। उसके पिता बैलगाड़ी में डालकर उसे बाँध पर ले आये। वहाँ पहुँचते ही उसका चित्त प्रसन्न हो गया और वह बाँध की रज में लोटने लगा। इस प्रकार लोटते-लोटते तथा चित्त में श्रीमहाराजजी का ध्यानकर मुख से रामनाम उच्चारण करते हुए ही उसने अपनी मानवलीला समाप्त कर दी और सदा के लिये अपने इष्टदेव की नित्यलीला में सम्मिलित हो गया।

पाठक सम्भवतः सीताराम के बाँध पर आने का हेतु समझ गये होंगे। पहले यह हमारे भक्तप्रवर बाबू हीरालालजी का अनन्य सेवक था। उसके इष्टदेव श्रीमहाराजजी. और परम पावन धाम बाँध थे। उन्होंने बाँध को श्रीमहाराजजी का ही स्वरूप समझकर अपना तन मन धन उसी पर न्यौछावर कर दिया था तो फिर उनका अनन्यशरण भक्त और सेवक सीताराम अपने इष्टधाम बाँध पर अपना शरीर क्यों न त्यागता ? भला वह अपने स्वामी से क्यों पीछे रहता ? उसकी तो बाँध में बड़ी भारी श्रद्धा थी। अतः वह हठ पूर्वक बाँध पर आया और मुखसे अपने इष्टदेव का नाम उच्चारण करता उन्हीं के धाम में देह त्यागकर परमधाम को चला गया।

एक वर्ष का अखण्ड कीर्तन

सन् १९३५ में बाँध पर फिर होलीका उत्सव हुआ। अबतक उत्सवों के समय अखण्ड कीर्तन का समय उत्तरोत्तर बढ़ता रहा था। सबसे बड़े उत्सव में पन्द्रह दिन का अखण्ड कीर्तन रहा। इस वर्ष उसकी अवधि एक महीना कर दी गयी। हमारे महाराजजी का तो सारा जीवन ही उत्सवरूप है। आप जहाँ भी बैठ जाते हैं वहीं उत्सव हो जाता है। जहाँ रहते हैं वहाँ नित्य उत्सव-सा ही होता रहता है। अतः आपकी सन्निधि में हुए उत्सवों का कहाँ तक वर्णन करें। आप तो साक्षात् उत्सवमूर्ति ही हैं।

इसके दूसरे साल सन् १९३६ में आपने यह प्रस्ताव रखा कि अबकी बार एक वर्षतक अखण्डकीर्तन, रासलीला और कथा-सत्संगादि का क्रम ऐसा भावपूर्वक रखा जाय जिससे हम सबके जीवन नवीन हो जाएँ। हम सभी लोग दृढ़ प्रतिज्ञ होकर इस अनुष्ठान को पूरा करें और एक-दूसरे के लिये सर्वस्व न्यौछावर करके आपस में प्रेम रखें। यहाँ तक कि यदि हो सके तो सबका खान-पान भी एक साथ ही हो। हम लोगों का पारस्परिक व्यवहार जितना शुद्ध और स्पष्ट होगा उतना ही इस अनुष्ठान में आनन्द रहेगा और उतने ही तीव्र गति से हम परमार्थ की ओर अग्रसर हो सकेंगे। हमारा ऐसा व्यवहार हमारे लिये ही नहीं। सारे संसारके लिये भी मंगलकारी होगा। अत: हम लोगों का पारस्परिक सम्बन्धों में बहुत सावधानी रखनी होगी। इसमें सबसे बड़ा विघ्न है स्वतन्त्रता की इच्छा। इसलिये हमें अपनी स्वतन्त्रता छोड़ देनी चाहिये तथा अपनी अपेक्षा दूसरे के मन का अधिक ध्यान रखान चाहिये। ऐसा करने से कभी कोई झगड़ा नहीं होगा और न कोई विघ्न ही आयेगा। बाहर के विघ्न तो कभी आते हैं जब हमारे चित्तों में कोई अन्तर आता है। हमारे चितों में यदि राईभर अन्तर होगा तो बाहर उसका पहाड़ बन जायगा।

आपका यह प्रस्ताव सभी को प्रिय लगा और उस कार्यक्रम की आयोजना की गयी। कुछ दिन बाद ही अखण्डकीर्तन आरम्भ हो गया तथा सब काम बड़े उत्साह से होने लगे। यों तो बाँध के कारण सैकड़ों गाँवों की रक्षा हुई है। किन्तु दूर होने के कारण वहाँ के लोग विशेष उत्सवों पर ही सम्मिलित हो सकते हैं। इस अखण्ड कीर्तन में सबका सम्मिलित होना सम्भव नहीं था। इसमें तो आस-पास के अधिक से अधिक छ: कोश तक के गाँव ही सम्मिलित हो सके थे। इन गाँवों की संख्या प्राय: तीस थी। इनको सात दिनों में बाँट दिया गया था बड़े गाँव एक दिन में दो या तीन और छोटे चार-चार सम्मिलित होकर कीर्तन करते थे। जिन गाँवों का जो दिन नियुक्त किया गया था उस दिन चौवीस घण्टे उन्हीं की पार्टियाँ कीर्तन करती थीं। दूसरे दिन प्रात: काल दूसरे गाँवों के लोग आ जाते थे और वे चले जाते थे। कीर्तन वालों की चार पार्टियाँ बनायी जाती थीं और उनके अलग-अलग नक्कारची रहते थे। इनमें गवाँ का खमानी चमार

प्रधान था। श्रीमहाराजजी के कीर्तन में यही नगाड़ा बजाता था। यह बड़ा प्रेमी आदमी था और नगाड़ा बजाते-बजाते पागल-सा हो जाता था। चारों पार्टियाँ एक-एक घन्टे की बारी से तीन बार दिन में और तीन बार रात में कीर्तन करती थीं। कीर्तन में हर समय एक नगाड़ा एक घन्टा और ग्यारह जोड़ी झांझ बजायी जाती थीं। प्रात: काल ४ से ५ बजे तक, मध्याह्न में ११ से १२ बजे तक और सायंकाल में ६ से ९ बजे तक समष्टि कीर्तन होते थे इनमें श्रीमहाराजजी तथा बाँधपर रहने वाले सभी लोग सम्मिलित होते थे।

यह अखण्ड कीर्तन बड़े ही आनन्द और उत्साह से हुआ। हमारे ग्रामीण लोग प्रेम से उन्मत्त होकर नृत्य करने लगते थे। उनकी सरल श्रद्धा स्वभाव से ही भावोद्दीपन कर देती थी और वे प्रेम से पागल हो जाते थे। ऐसी स्थिति में उनके स्वर-ताल भी स्वयं ही मिल जाते थे। इन सामान्य ग्रामीणों का कीर्तन देखकर बाहर के बड़े-बड़े संकीर्तनाचार्य भी मुग्ध हो जाते थे।

इस अखण्ड कीर्तन के प्रधान प्रबन्धक थे हरिदासपुर वाले पण्डित हरियशजी, उनके आधीन चार पहरे वाले थे, जो पार्टियाँ बदलने का भी काम करते थे। उनके अतिरिक्त दो आदमी ऐसे थे जो एक दिन पहले गाँवों में जाकर लोगों को सूचना देते थे कि कल आप लोगों की पार्टियाँ बाँधपर कीर्तन करेंगी। तथा दूसरे दिन प्रात:काल ही उन्हें बाँधपर ले आते थे। इस काम को कभी-कभी श्रीमहाराजजी भी करते थे तथा कभी मैं भी जाता था। हम सवेरे तीन या चार बजे ही पहुँचकर पहले तो घन्टा बजाकर सारे गाँव को इकट्ठा करके एक घण्टे तक प्रभाती के स्वरों में बड़ी धूम से कीर्तन कराते। फिर व्याख्यान द्वारा भगवन्नाम की महिमा सुनाकर लोगों को उत्साहित करते और उन्हें अपने साथ ही ले आते थे। बाँध के लिए भी हम इसी युक्ति से लोगों को लाते थे। उस समय तो हम बाँधा से दस-दस मील के गाँवों में रात के एक या दो बजे पहुँचकर कीर्तन और व्याख्यान करते तथा मदद लेकर सूर्योदय तक बाँध पर लौट आते थे। आप उस समय घोड़ों की तरह दौड़कर चलते थे तथा आपके पीछे हम लोग भी दौड़ते जाते थे। वहाँ से आकर उन हजारों आदमियों से एक या दो बजे तक

काम कराते थे और उनके साथ स्वयं भी मिट्टी खोदना, टोकरियाँ भरना तथा उन्हें उठाना आदि सब प्रकार के काम करते थे। दूसरा कोई भी आदमी काम करने में आपकी बराबरी नहीं कर सकता था।

श्रीमहाराजजी के सामने बड़े से बड़ा पुरुषार्थी भी घबरा जायगा। आपके साथ तो वही काम कर सकता है जो सब प्रकार से आपका अनुगत हो। उसे तो आप साक्षात् महावीर ही बना देते हैं। आपके साथ मार्ग चलने वाले आदमी में, चाहे वह कितना ही निर्बल हो, बिजली-सी दौड़ जाती है। पिछले दिनों घनश्यामसिंह आपकी सेवा में आया है। वह सम्भवतः इन्हीं दिनों में आया था। शरीर से वह बहुत ही दुबला-पतला आदमी है, उसे केवल अस्थिपञ्जरावशिष्ट कह सकते हैं। तथापि जिस समय मार्ग चलते समय वह आपके आगे-आगे चलता है, ऐसा मालूम होता है मानो कोई रुई का पिण्ड ही हवा में उड़ रहा हो। इसीसे हम लोग उसे गरुड़जी' कहने लगे हैं आप शीतकाल में भी दो बजे से पहले उठकर शौचादि से निवृत्त हो साढ़े तीन बजे गंगाजी या यमुनाजी में स्नान करने के लिये जाते रहे हैं। उस समय भी ये घनश्यामसिंह या दाताराम जैसे निर्बल आदमी साथ-साथ दौड़ते चलते थे। वहाँ से लौटकर साढ़े चार या पाँच बजे तक कीर्तन करते और तुरन्त ही टहलने चले जाते थे।

इस प्रकार सारे जीवन में आपका यही क्रम रहा है। आप को ढीले-ढाले किसी ने नहीं देखा। वृद्धावस्था में आपके शरीर में केवल अस्थिपञ्जर रह गया है, तथापि आपका वैराग्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है। बाँध के आरम्भ से ही आपको प्रतिवर्ष एक बार वैराग्य की तरंग आती है और वह कुछ दिनों के लिये अज्ञातवास करा देती है। बाँध पर निरन्तर एक साल तो आप इसी वर्ष रहे। सो भी दृढ़ संकल्प करके और नियमबद्ध होने के कारण। और साल तो आपके चले जाने पर हम लोग भी भाग जाते थे और बाँध उजड़-सा जाता था। फिर जब आप आते तो नवीन सृष्टि रची जाती थी। उसके बाद उत्सव किया और फिर भाग गये। बहुत दिनों से आपका यही क्रम चलता रहा है।

बाँध से विरक्ति और गंगोत्री यात्रा

इस प्रकार बाँध बँधा, उस पर अनेकों बड़े-बड़े उत्सव हुए और वर्षों भगवन्नाम कीर्तन भी हुआ। फिर भी कई बार ऐसे कारण उपस्थित हुए जिनके कारण आपके चित्त को बहुत ठेस लगी और आपका चित्त बाँध एवं उससे सम्बन्धित व्यक्तियों से उपराम हो गया। इसमें एक विशेष कारण था। उसका निर्देश करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

आपकी दृष्टि में तो तीनों कालों में कभी प्रवृत्ति अथवा स्वार्थ का लेश भी नहीं था। आपका तो एक मात्र उद्देश्य था निरन्तर स्वयं भगवच्चिन्तन करना तथा अन्य जीवों को भी श्रीभगवान् के अभय चरणों में लगाना। इसी उपदेश से आपने कीर्तन का प्रचार किया और बाँध भी बनाया। जिस प्रकार बच्चे को लड्डू का लोभ देकर कुछ काम करा लिया जाता है उसी प्रकार आपने सोचा कि बाँध बँधाने से इन लोगों का स्वार्थ सिद्ध होगा और उससे ये लोग भगवान् का आश्रय लेकर कीर्तन करते हुए अनायास ही इस दुःखरूप संसार-सागरसे तर जायँगे। सम्भवतः इसी से आपने कुछ दिनों तक अपनी सिद्धि और शक्तियों का भी परिचय दिया, जिससे सहस्रों भयंकर रोगी अच्छे हो गये और अनेकों लोगों की लोकेष्णा, पुत्रेष्णा एवं वित्तेष्णा की पूर्ति हुई। अनेकों जीव त्रिविधतापों से मुक्त होकर भगवतपरायण भी हुए और फिर हमारे देखते-देखते ही इस नश्वर शरीर को त्याग कर भगवद्धाम को चले गये।

किन्तु बाँध से सम्बन्ध रखने वाले और आपकी सिद्धियों की धूम सुनकर दूर-दूर से आने वाले मनुष्यों में सकामी ही अधिक थे। पहले तो न जाने किस तरंग में आकर आप अपने स्वरूप को प्रकट कर बैठे। किन्तु जब निरन्तर सकामी पुरुषों की भीड़ रहने लगी तो आप उससे एकदम घबड़ा गये और इसी कारण बाँध से भी उपराम हो गये। बाँध बँधने से पहले उस प्रान्त के सैकड़ों गाँव अत्यन्त दुःखी थे। अब वे सब प्रकार सुखी हो गये। उनके घरों में अन्न एवं धन की खूब वृद्धि हुई। इसलिये यहाँ के लोग भी प्रमादी हो गये। उनकी श्रद्धा
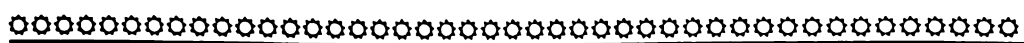
भी अब धीरे-धीरे ढीली पड़ने लगी। सकामी पुरुषों की श्रद्धा तो अपनी कामना-पूर्ति तक ही रहती। उसका काम बना कि श्रद्धा भी समाप्त हुई। हमारे पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजी कहा करते हैं-'कोई भी दुनियादार आदमी निकाम नहीं हो सकता, फिर चाहे वह कितना ही विद्वान, धनी, भजनानन्दी, भावुक, विश्वासी और श्रद्धालु क्यों न हो। उसके ये सब गुण भी अधिकतर इसी उद्देश्य से होते हैं कि उसका संसार बना रहे। उसके संसार को तनिक भी ठेस लगी कि उसकी श्रद्धा समाप्त हुई। मैंने बड़े-बड़े भक्त कहलाने वालों को भगवान् और सन्तों को गाली देते सुना है। ये पहले जितने अधिक प्रेमी समझे जाते थे उतने ही बड़े विरोधी बन जाते हैं।' इसी प्रकार परमहंस श्रीराम-कृष्ण कहा करते थे-'गीध पक्षी आकाश में कितना ही ऊँचा उड़े, उसकी दृष्टि तो पृथ्वी पर पड़े हुए सड़े मांस पर ही रही है। इसी प्रकार संसारी मनुष्य परमार्थका कितना ही ढोंग दिखावे, उसका लक्ष्य तो सांसारिक पदार्थ ही रहते हैं। अतः ऊपर की क्रिया देखकर ही किसी को भक्त या साधु समझना नितान्त मूर्खता ही है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं-

'लखि सुवेष जग वञ्चक जेऊ। वेष प्रताप पूजियत तेऊ॥
उभरे अन्त न होइ निवाहू। कालनेमिजिमि रावण राहू॥
किये कुवेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवन्त हनुमानू॥

इन्हीं सब कारणों से हमारे श्रीमहाराजजी का चित्त बाँध से, वहाँ की साधारण जनता से और वहाँ के प्रमुख कार्यकर्त्ता हम लोगों से उपराम हो गया। अतः आप बार-बार बाँध छोड़कर भागने लगे तथा अपनी सिद्धियों और चमत्कारों को भी निन्दा करने लगे। कोई भी सकामी पुरुष सामने आ जाता तो आप घबरा उठते। इस प्रकार हमारे परम कृपालु, शरणागतवत्सल सरकार की सांप-छछून्दर की-सी गति हो गयी। आप न तो करुणावश हम लोगों को त्याग ही सकते थे और न हमारी उच्छृङ्खलता के कारण हमें ग्रहण ही कर सकते थे।

प्रिय पाठक ! मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि उस समय सबसे अधिक प्रमाद तो मैंने ही किया था। मेरा तुच्छ हृदय बाँध के ऐश्वर्य तथा सांसारिक
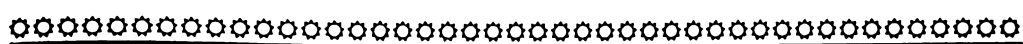
लोगों के अनुचित सत्कार से फूल गया था। मैं सचमुच मोहान्ध होकर काम-क्रोधादि दुष्ट वृत्तियों का शिकार बन गया था। ऐसे अनेकों दोष मेरे चित्त में आ गये थे, जो पहले बाल्यावस्था में भी नहीं थे। साधक का मार्ग सचमुच अत्यन्त कण्टकाकीर्ण है। इसमें पग-पग पर संसार के प्रलोभनों का भय रहता है। यदि सिर पर समर्थ सद्‌गुरु न हों तो इस तुच्छ बहिर्मुख जीव का भवसागर से निस्तार होना अत्यन्त कठिन है। संसार में सबसे अधिक भय तो दुःसंग का ही है। किन्तु उससे भी अधिक भय के स्थान भक्त स्त्रियाँ और भक्त बालक हैं। ये साक्षात् मीरा और प्रह्लाद ही क्यों न हों निरन्तर सम्बन्ध रहने पर हृदय में अवश्य ही मोहादि विकारों को उत्पन्नकर देते हैं। इसी श्रीमद्भागवत में कहा है -

'मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
वलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।।' ❀

तथा हमारे कलिपावनावतार श्रीमन्महाप्रभुजी भी कहते है -

'निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य,
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च,
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधुः।। ❀❀

मुझे भीतर से ऐसे सांसारिक प्रलोभन में फँसा देखकर अन्तर्यामी सर्वज्ञने ऊपर से मेरी भी उपेक्षा कर दी। इस प्रकार बाँध के सभी कार्यकर्ताओं की ओर से आप उदासी हो गये। आप औरों से तो स्पष्ट नहीं कहते थे, किन्तु मुझ पर तो आपकी ऐसी असीम कृपा थी कि मुझे तो आप स्पष्ट मेरे दोष बता देते थे। मेरे दोषों के कारण आपके अदोषदर्शी, निर्मल और शान्त हृदय में भी क्षोभ

❀ **अपनी माता, बहिन और पुत्री के साथ भी एकान्त में न बैठे, क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं, ये विद्वान् को भी खींच लेती हैं।**

❀❀ **जो किसी प्रकार का संग्रह नहीं रखता, भगवान् के भजन में लगा हुआ है और संसार को पार करना भी चाहता है उसके लिये विषयी पुरुष और स्त्रियों पर दृष्टि डालना विषभक्षण से भी बुरा है।**
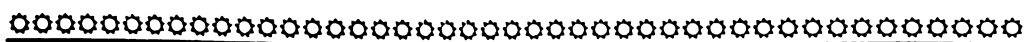
हो जाता था। कभी-कभी तो आप मुझे कुछ दण्ड भी दे दिया करते थे। यह आपकी मातृसुलभ करुणा ही थी -

'जिमि शिशु तन व्रण होइ गुसाईं। मातु चिराव कठिनकी नाईं॥'

'जदपि प्रथम दुःख पावहि, रोवहि बाल अधीर।
व्याधिनाश हित जननी, गनै न सो शिशु पीर॥'

इस प्रकार बाँध के आरम्भ से ही यह विरक्ति और उपरति की लीला भी आरम्भ हो गयी। इसीसे बाँध भी स्थिर नहीं रह सका। वह भी श्रीगंगाजी के गर्भ में लीन होने लगा, क्योंकि वह तो केवल आपका संकल्प ही था सचमुच जैसे 'तीन लोक से मथुरा न्यारी' है, उसी प्रकार साक्षात् दिव्यधाम ही आपके संकल्प से बाँध के रूप मे श्रीगंगाजी के वक्षः स्थल पर प्रकट हो गया था। जब जीवों ने उसकी उपेक्षा की और जिस उद्देश्य से वह प्रकट हुआ था उसे नहीं अपनाया तो वह भी धीरे-धीरे अर्न्तध्यान होने लगा। पहले बड़ी बाढ़ के बाद ही वह असली कैम्प से इधर-उधर कट गया था। तब नहर वालों ने उसे बनवाया। उसके पश्चात् धीरे-धीरे उसके सतरह क्रॉस बाँधों में से कई श्रीगंगाजी के अर्पण हो गये। उनमें से कई की ठोकरों में तो एक-एक लाख रुपये का कंकड़ लगा था। उनकी पहले तो कई बार श्रीमहाराजजी ने मरम्मत करा दी। किन्तु फिर उस प्रान्त के धनी और निर्धन सभी लोगों की लापरवाही देखकर आप भी उदासीन हो गये।

एक वर्ष का अनुष्ठान पूरा होने पर जब होली का उत्सव हुआ तो उसमें भी हम लोगों से कुछ भूलें हो गयीं। उनके कारण उपराम होकर आप उत्सव समाप्त होते ही रात्रि में किसीसे कुछ कहे बिना चले गये। हम लोगों ने इधर-उधर खोज की, किन्तु कुछ पता न चला। पीछे मालूम हुआ कि आप ऋषिकेश में श्रीजयदयाल गोयन्दका के सत्संग में हैं। आप बाँध से चलकर पाँच दिन में ही प्रायः डेढ़ सौ मील दूर ऋषिकेश पहुँच गये थे। रास्ते में आपने भिक्षा मांगी नहीं, और स्वयं किसी ने दी नहीं इस प्रकार पाँच दिन तक केवल जल

पीते हुए स्वर्गाश्रम पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर आलू का शाक और परांठे खाने को मिले। पाँद दिन के उपवास के बाद परांठे खाने के कारण आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया और आपको खाँसी-जुकाम की शिकायत हो गयी। श्रीजयदयालजी तथा उनके सत्संगियों ने चिकित्सा का प्रबन्ध किया, किन्तु आपका स्वास्थ्य न सुधरा। तब आप एक दिन चुपचाप वहाँ से उत्तराखण्ड की ओर चले गये। साथ में न कोई आदमी लिया न आवश्यक वस्त्र ही। बस, जो वस्त्र पहने हुए थे उनके अतिरिक्त एक टाट का टुकड़ा लेकर चल दिये। श्रीजयदयालजी ने मुनिलालजी को भेजकर हमें सूचना दी। तब बाँध पर कीर्तन के प्रबन्ध के लिये मुझे छोड़कर कुँवर गुलाबसिंह उनकी दोनों बहिनें, रामेश्वर, खुशीराम, दाताराम आदि दस-बारह आदमी आपकी खोज में चले। जब ऋषिकेश पहुँचने पर आपका कोई निश्चित पता न लगा तो इस दल ने पता लगाते हुए आगे जाने का निश्चय किया। उत्तराखण्ड की कठिन यात्रा थी, दुर्गम पहाड़ी रास्ते से पैदल ही चलना था, और ये सभी बड़े सुकुमार थे। इस बात का भी निश्चय नहीं था कि आप गंगोत्तरी की ओर गये हैं या बदरीनारायण की ओर। किन्तु बदरीनाथ आप पहले जा चुके थे। इस दल ने गंगोत्तरी की ओर जाने का निश्चय किया।

जब ये लोग उत्तर काशी पहुँचे तो वहाँ अकस्मात् एक दिन आपके दर्शन हो गये। देखते ही सब लोग विह्वल हो गये। रामेश्वर और दाताराम तो पागल-से होकर आपसे लिपट गये। अन्य सब लोग भी चरणों में पड़कर फूट-फूटकर रोने लगे। तब आपने समझा बुझा कर सबको शान्त किया। उस समय आप इतने निर्बल हो गये थे कि बोलना भी कठिन था। आपकी अवस्था साक्षात् जड़ भरत की-सी हो रही थी। शरीर में केवल अस्थिपञ्जर रह गया था। वस्त्र भी बहुत मैले हो गये थे तथा जूता भी टूट गया था। विचित्र दशा थी, पहचाने भी नहीं जाते थे। आखिर सब लोगों को दुखी देखकर आपका करुणापूर्ण हृदय पिघल गया और आप इनके साथ हो लिये।

बस, सबने भोजन बनाकर खिलाया, आपके कपड़े बदले और फिर विश्राम किया। उसके पश्चात् जब शान्ति से बैठे तो आपने बतलाया कि मैं तो

शरीर त्यागने के संकल्प से ही इधर आया था। मेरा चित्त तुम सबकी ओरसे बहुत उपराम हो गया था। ऋषिकेश से चलने पर मैं तीन दिन में बिना कुछ खाये नित्य चालीस-चालीस मील चलकर यहाँ पहुँचा हूँ। मुझे उस समय शरीर का होश नहीं था। यह तो प्रारब्धवश ही अब तक बचा है। उस समय आपका सारा शरीर सफेद पड़ गया था। उसमें रुधिर की बहुत कमी हो गयी थी। शीत की अधिकता भी इसमें कारण थी। उत्तराखण्डका शीतल प्रदेश और आपके पास एक कम्बल भी नहीं था।

आपने यह भी बतलाया कि उत्तर काशी में आकर आप जिस स्थान में रहे थे वहाँ के महन्त ने दो-तीन दिन बाद ही यह कहकर आपको निकाल दिया कि तुम हमारे आश्रम के प्रत्येक कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं होते हो, इसलिये यहाँ नहीं रह सकते तब आप यह कहकर कि मुझे आपके नियमों का पता नहीं था, क्षमा कीजिये-अपना कमण्डलु उठाकर चल दिये और दूसरे स्थान में रहने लगे। पीछे कई प्रसिद्ध सन्तों ने आपको पहचान लिया और आश्रम के महन्त को बहुत बुरा भला कहा। तब वह बेचारा आपके पास आया और बहुत क्षमा याचना करते हुए आपसे पुनः आश्रम में चलने का आग्रह करने लगा। किन्तु आप फिर वहाँ न गये और महन्त को प्रेम-पूर्वक समझा दिया।

बाँध के भक्तों को आपने समझा-बुझाकर वहीं से लौटना चाहा। किन्तु सब लोगों ने प्रार्थना की कि अब गंगोत्तरी के इतने समीप आकर बिना स्नान किये लौटना ठीक नहीं है। अतः आपने उनकी बात मान ली और साथ-साथ गंगोत्तरी की ओर चल दिये। आप प्रत्येक दिन के पड़ावपर सबसे पहले पहुँच जाते थे। इस तरह सानन्द भैरों चट्टी पहुँचे। वहाँ से गंगोत्तरी केवल सात मील है। किन्तु रास्ता बहुत चढ़ाई का है। आप सब लोगों के साथ सवेरे आठ मील चलकर भैरों चट्टी पहुँचे थे। अतः और सबको तो वहीं छोड़ दिया। आप अकेले ही भोजन के पश्चात् गंगोत्तरी गये और सायंकाल तक वहाँ से लौट आए। इस प्रकार उस दिन उस विकट पहाड़ी प्रदेश में आपने बाईस मील की यात्रा की। इससे सब लोग बड़ा आश्चर्य करने लगे। दूसरे दिन प्रातःकाल सब लोगों के

साथ आप पुनः गंगोत्तरी गये। वहाँ एक-दो दिन ठहरकर आपने सब लोगों से कहा, 'अब तुम सब चले जाओ, मैं कुछ दिन यहीं रहूँगा।' यह सुनकर सभी बहुत दुःखी हुए और फूट-फूटकर रोने लगे। उन दिनों वहाँ आपके परममित्र स्वामी ब्रह्मप्रकाशजी❀ थे। उन्होंने भी सबको बहुत दुःखी देखकर आपसे जाने के लिये कहा। किन्तु आपने स्वीकार न किया। तब सब लोगों ने अनशन करके सत्याग्रह किया। इससे आपने घबराकर एकान्त में स्वामी ब्रह्मप्रकाशजी से विचार किया। उन्होंने सबकी ओर से कहा कि या तो आप अभी इनके साथ चले जायँ या इन्हें वहाँ पहुँचने की कोई निश्चित तिथि बतला दें। तब आपने विवश होकर बताया कि मैं गुरुपूर्णिमा पर कर्णवास में श्रीउड़ियाबाबाजी के पास पहुँच जाऊँगा। उस समय गुरुपुर्णिमा का एक महीना था। सबने आपका यह निर्णय मान लिया। आपने बहुत आग्रह करने पर भी न तो किसी को वहाँ पास रहने दिया और न एक कम्बल को छोड़कर कोई विशेष वस्त्र ही स्वीकार किया। खाने-पीने का भी आपने कोई प्रबन्ध नहीं करने दिया। आखिर, सब लोग लौट आये।

आप स्वामी श्रीब्रह्मप्रकाशजी की कुटी से कुछ दूरी पर एक छोटी-सी एकान्त कुटी में ठहरे। बस, चौबीस घण्टों में एकबार काली कमली वालों के क्षेत्रसे भिक्षा ले आते थे और उसके बाद मुँह में इलायची भी नहीं डालते थे। हर समय अकेले ही रहते थे। केवल नियत समय पर दो-तीन घण्टे श्रीस्वामीजी महाराज के साथ ही शास्त्र चर्चा हो जाती थी। शेष समय में आपका स्वाध्याय चलता रहता था। पुस्तकें आपको श्रीस्वामीजी से मिल गयी थीं।

❀ आप उत्तराखण्ड के एक सर्वमान्य सन्त हैं। आप अत्यन्त विरक्त तथा वेदान्तादि शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हैं। श्रीमद्भागवत, ब्रह्मसूत्र, योगवासिष्ठ एवं गीता आदि कई ग्रंथ तो आपके प्रायः कण्ठस्थ हैं। आप बड़े ही संयमी, तितिक्षु, शान्त, एकान्त प्रिय और निष्ठावान् महात्मा हैं। आप जैसे तत्त्वनिष्ठ हैं वैसे ही भगवत्प्रेमी भी हैं। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल और मधुर है। जिसने एक बार भी आपका दर्शन किया है वही आपका प्रशंसक बन गया है। आपका शरीर पंजाब प्रान्त का है। कई बार आप बाँध पर भी पधारे हैं। किन्तु अधिकतर गंगोत्री से हरिद्वार तक उत्तराखण्ड में ही रहते हैं। श्रीमहाराजजी से आपका बहुत पुराना परिचय है तथा दोनों ही की परस्पर बड़ी श्रद्धा और प्रीति है।

हमारे पाठकों में से जिन्हें गंगोत्तरी दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ होगा वे जानते होगे कि वहाँ कितना शीत पड़ता है। मुझे तो वहाँ का अनुभव है। शीत की अधिकता के कारण यात्री लोग वहाँ एक-दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते। कुछ सन्त-महात्मा ही वहाँ महीना दो महीना ठहरते हैं। किन्तु उन्हें अग्नि और वस्त्र का पर्याप्त प्रबन्ध रखना होता है। तथापि आपने एक महीने तक एक दिन भी अँगीठी नहीं जलायी और न सारा सामान रहते हुए भी कभी दीपक जलाया। श्रीगंगाजी का जल वहाँ साक्षात् र्ब्फ के समान ही ठण्डा है। यात्रियों को उसमें एक गोता लगाना भी कठिन पड़ता है। किन्तु आप तो दस-बीस गोते लगा कर खूब स्नान करते थे। आपकी तपतितिक्षा देखकर वहाँ के महात्मा चकित हो गये थे।

मैंने पीछे कई बार आपकी तितिक्षा के विबाय में चर्चा की है। आपकी सब लीलाएँ अलौकिक ही थीं। कभी तो आप शीत से इतने डरते कि चौबीसों घण्टे कुटी में ही रहते, उसके सब झरोखे बन्द करा देते और अँगीठी भी दहकती रहती। फिर उसी समय उसके विपरीत केवल एक मलमल का कुरता पहने मीलों जाकर गंगा या यमुना में सैकड़ों गोते लगा कर स्नान करते तथा वहाँ किनारे पर ही खुली हवा में नंगे शरीर से व्यायाम करते। सामान्यतया तो आप तो आप मिताहार का इतना जोरदार प्रतिपादन करते हैं कि एक ग्रास भी अधि क खाना गोवधसे बढ़कर बताते हैं, किन्तु कभी अकेले ही दस-बीस आदमियों का भी भोजन कर डाला है। ऐसी ही बात गर्मी की भी है। कभी तो ग्रीष्म ऋतु में खस के पर्दों में निरन्तर छिड़काव होते रहने पर भी आपको विकल होते देखा और कभी वैशाख-ज्येष्ठ की भयंकर गर्मी में दोपहर के समय गंगाजी की बालू में हजारों आदमियों के साथ घोर परिश्रम करते रहे हैं। बाँध का काम कराते समय केवल दोपहर को एक से दो बजे तक एक घण्टे की छुट्टी भोजन करने के लिये होती थी। उस समय किसान लोग भी परिश्रम के कारण घबराये हुए थे। किन्तु आप बड़े उत्साह से निरन्तर चार मजदूरों के बराबर काम करते थे। भोजन के विषय में भी आपकी ऐसी ही विचित्रता देखी गयी है। स्वभाव
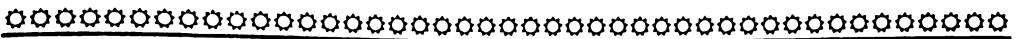
से तो आपको थोड़े नमक और बिना मिर्च-मसाले की मूँग की दाल तथा पालक और लौकी का शाक पसन्द है। किन्तु भगवानपुर, भेरिया एवं अन्य स्थानों में हमने अपनी आँखों से देखा है कि आप माधूकरी भिक्षा में मिली हुई मोटी-मोटी बेझड़ की रोटियाँ आम या मिर्च के अचार अथवा खट्टे मठ्ठे के साथ खाते थे। और चौबीस घण्टों में केवल यही भोजन करके बड़े प्रसन्न रहते थे। मैंने कभी इस विषय में कुछ कहा तो आपने यही उत्तर दिया कि भाई ! साधू के लिये तो भिक्षान्न साक्षात् अमृत है। इसकी बराबरी तो और किसी प्रकार का अन्न नहीं कर सकता।

'भिक्षाहारी फलाहारी भिक्षा नव परिग्रहः।
सदन्नं वा कदन्नं वा सोमपानं दिने दिने॥⊛

अस्तु ! गंगोत्तरी से लौटकर आप कर्णवास पधारे। वहां पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी की सन्निधि में गुरुपूर्णिमा का उत्सव हुआ। उस समय बाँध प्रान्त मे बहुत से भक्त एकत्रित हुए। इस प्रकार कुछ दिन वहाँ रहकर आप श्रीवृन्दावन चले गये तथा भाद्रपद में जन्माष्टमी के पश्चात् निजामपुर आ गये। फिर तो माघपर्यन्त वहाँ के जंगल में निवास किया। उस समय निजामपुर के लोगों ने खेत-बारी के काममें लगे रहने के कारण सत्संगादि में कुछ लापरवाही की। अतः वहाँ बड़े-बड़े ओले पड़े, जिनसे सारी फसल नष्ट हो गयी। तब सब लोगों ने क्षमा याचना की। आपने उन्हें बड़े प्रेम से समझाया और कहा कि श्रीभगवान् तो अपने निज जनों को ही प्रमाद करने पर दण्ड देते हैं। यह तो उनकी महती कृपा ही है। क्रोधोऽपि देवस्य वरेणतुल्यः।' वास्तव में सुख-दुःख तो हमारे कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होते हैं। किन्तु यदि हम उन्हें श्रीभगवान् का ही विधान मान कर प्रसन्नता से सहन करें तो हमारा वह दुःखभोग तपरूप हो जाता है और उससे श्रीहरि भी प्रसन्न हो जाते हैं।

⊛ **भिक्षान्न भोजन करने वाला यतितो फलाहारी ही है। भिक्षा संग्रह नहीं है। भिक्षा में मिला हुआ अन्न अच्छा अथवा बुरा, वह तो नित्यप्रति सोमपान के समान ही है।**

पीछे श्रीमहाराजजी की कृपा से वहाँ फिर वर्षा हो गयी और उस नष्ट हुई फसल में नवीन अंकुर निकल आये। इससे वहाँ कुछ अन्न पैदा हो गया। उसी साल वर्षा ऋतु में अवर्षण के कारण सर्वत्र हाहाकार मच गया। तब श्रावण मास में निजामपुर वालों ने इस संकल्प के अखण्ड कीर्तन आरम्भ किया कि जब तक वर्षा न होगी तब तक बराबर कीर्तन करते रहेंगे। बस, इस अनुष्ठान के आरम्भ होने से ग्यारहवें दिन अकस्मात् बादल उठा और खूब मूसलाधार वर्षा हुई, जिससे श्रावण के अन्त में बोयी हुई फसल भी खूब हुई। उस कीर्तन में कई भक्तों को बड़े विचित्र चमत्कार हुए थे।

आपका अज्ञातवास और मेरी पुरी यात्रा

सन् १९३९ का होली का उत्सव बड़े समारोह से बाँध पर ही हुआ। उसमें मुझसे कुछ ऐसे अपराध हुए कि जिनके कारण श्रीमहाराजजी मुझसे उदासीन हो गये। तब आपने कुछ चुने हुए सत्संगियों की एक कमेटी बनाई। उन्हीं के साथ आपका सत्संग होने लगा। यह प्रोग्राम चैत्र शुक्ला रामनवमी तक चला। दशमी को आपने भावी कार्यक्रम के विषय में अपनी प्राइवेट कमेटी में विचार किया। सबने अपने-अपने विचार प्रगट किये। किन्तु अन्तिम निर्णय के लिये भगवान् की आज्ञा लेने का निश्चय हुआ। अतः अलग-अलग कागजों पर दो-तीन पक्ष लिखकर गोलियाँ बनाई और श्रीभगवान् से प्रार्थना करके उनमें एक गोली उठा ली। उसमें 'अज्ञातवास' लिखा था। इसलिये आपने अकेले ही कहीं चले जाने का निश्चय कर लिया। हम लोगों के बहुत कहने पर भी किसी को साथ लेना स्वीकार नहीं किया।

बस, एक दिन आप रात्रि में किसी से बिना कुछ कहे कुछ वस्त्र और कमण्डलु लेकर चले गये। आपके इस प्रकार जाने से हम लोगों को बहुत चिन्ता हुई। कुछ दिनों बाद पता लगा कि आप नैमिषारण्य में हैं। तब गुलाबसिंह, रामेश्वर, खुशीराम, छविकृष्ण, दाताराम और मैं इस प्रकार कई लोग वहाँ पहुँचे तो बहुत

खोज करने पर आप स्वामी नारदानन्दजी की कुटी पर मिले। परन्तु आप हमसे बोले नहीं। हमने भी भोजन त्याग दिया। अन्त में जब स्वामी नारदानन्दजी ने बहुत आग्रह किया तो आपने हमें बुलाया और समझाते हुए कहा, 'भाई ! जिसके लिये मैंने घर और देश छोड़ा वह बात तो मेरी बनी नहीं। आप लोगों से मेरा राग हो गया है। अब आप मुझे क्षमा करे। और शान्तिपूर्वक अपने घर पर लौट जायँ। मैं अब स्वतन्त्र विचरूँगा। जब कभी भगवत्प्रेरणा होगी तो आप लोगों के बीच आ जाऊँगा।'

इस प्रकार की बातें कहकर आपने बहुत दु:ख प्रकट किया। उन्हें सुनकर हमारे पाषण-हृदय भी टूक-टूक हो गये और हम निरुपाय होकर रोने लगे। मैं और रामेश्वर तो बहुत रोये, यहाँ तक कि मूर्च्छितप्राय हो गये। तब आपका दयालु हृदय करुणा से भर आया और बड़ी शान्ति एवं गम्भीरता से हमें समझाने लगे। आप बोले, मुझे सबसे अधिक दु:ख तो रामेश्वर और ललिताप्रसाद ये दो ही देते हैं। सो रामेश्वर तो गृहस्थी है, किन्तु यह ललिताप्रसाद तो विरक्त होकर भी व्यवहार में सावधान नहीं रहता। अनेक प्रकार की गड़बड़ें करता रहता है। इसलिये इसकी ओर से मेरा चित्त बहुत दु:खी हो गया था और मैंने यह निश्चय कर लिया था कि अब जीवन पर्यन्त इससे संसर्ग नहीं रखूँगा। किन्तु यह तो अब भी पीछा नहीं छोड़ता। अच्छा, इसीसे पूछा कि अब या तो यह हमसे सर्वथा सम्बन्ध छोड़ दे या कोई दण्ड स्वीकार करे।' मैंने कहा, आप मुझें जो भी कड़े से कड़ा दण्ड देना चाहें मैं सहर्ष सहने को तैयार हूँ।' तब आप बोले, 'अच्छा, अब एक साल मेरी जगह तू ही किसी अपरिचित देश में जाकर किसी आश्रम में मेहनत करके अपना निर्वाह कर, वस्त्र भी बहुत सामान्य रख और द्रव्य (रुपया-पैसा) भी हाथ से मत छू।' मैंने कहा, 'आप कृपया यह बतला दें कि मैं कहाँ चला जाऊँ ?' आप बोले, 'जगन्नाथपुरी चला जा। केवल वहाँ तक पहुँचने का किराया अपने पास रख ले। वहाँ किसी आश्रम में मेहनत करके सामान्य भोजन ले लेना और मौन होकर भजन करना।'

बस आपका आदेश पाते ही मेरे भीतर एक दिव्य शक्ति का संचार हो गया और मैं आपकी अपार करुणा का स्मरण करके विह्वल हो गया। मुझे
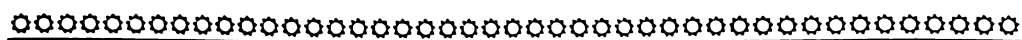
उस समय इतना सुख हुआ कि उसे वाणी से कथन नहीं किया जा सकता। मैंने समझा कि एकमात्र मैं ही आपका सबसे अधिक कृपापात्र हूँ। इसीसे आपने मुझे ही दण्ड प्रदान किया है।

'साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुनकर सहज सुभाऊ॥'

नहीं तो, भला आपके आनन्दामृत से भरे हुए परम शान्त हृदय में किसी व्यक्ति के लिये दण्ड-विधान करने का सामर्थ्य कहाँ है ? यह तो आपके लिये एक असम्भव-सी बात है। मेरा तो यह सौभाग्य ही था कि आप मुझे अपना नितान्त आत्मीय समझकर कभी-कभी दण्ड दे देते थे। अहा ! आपका वह दण्ड भी कितना सुखमय होता था-यह बात हृदय ही जानता है। साथ ही जिस पर आपकी यह अनूठी अनुकम्पा होती थी उसके तो आप ऋणी ही हो जाते थे। बस, बस, उस समय मेरे चित्त में इतना वैराग्य हुआ कि मुझे सारा संसार शून्य-सा प्रतीत होने लगा। मेरे हृदय में आपकी करुणामयी मूर्ति जाग्रत् हो उठी। मैंने उसी समय अपना सारा सामान और रुपया गरीबों को बाँट दिया और केवल रेल का टिकट लेकर वहाँ से चल दिया।

उसी समय एक अनिर्वचनीय तरंग ने आकर मेरे हृदय को उथल-पुथल कर दिया। मुझे एक अलौकिक सुख का अनुभव होने लगा। मुझे अपने हृदय में आठों पहर श्रीमहाराजजी दीखने लगे तथा संसार के सारे प्रलोभन मेरी दृष्टि से ओझल हो गये। मुझे मानो परमानन्द का अनुभव होने लगा हृदय सर्वथा वासनाशून्य हो गया और एक ऐसी अवस्था की जागृति हुई जो देवता और मुनियों को भी दुर्लभ है। उस समय तो मुझे योग, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य आदि सभी करामलकवत् प्रतीत होने लगे तथा मुझे श्रीसद्‌गुरुदयालु की अहैतु की करुणा का बार-बार स्मरण होने लगा। मुझे बार-बार ऐसा अनुभव होने लगा कि आपने मेरे हित के लिये ही उन भावों को धारण किया है जिनका आपके हृदय में स्वप्न में भी आना सम्भव नहीं था। ओह ! आप सर्वथा अदोषदर्शी होकर भी मेरे दोषों को देखते हैं, अक्रोध होते हुए भी मुझपर कृत्रिम क्रोध करते हैं और सर्वथा मायातीत होकर भी मेरे प्रति मायिक वृत्तियाँ धारण करते हैं। आप तो सचमुच मुझे अपना बालक ही समझते हैं।

'जिमि शिशु तन व्रण होइ गुसाईं। मातु चिराव कठिनकी नाईं॥
'जदपि परम दुःख पावहि, रोवहि बाल अधीर।
व्याधिनाश हित जननी, गनं न सो शिशुपीर॥'

इस प्रकार उस समय आपकी अपार करुणा से मेरा हृदय लबालब भर गया और मैं आनन्द में झूमता श्रीजगन्नाथपुरी पहुँचा। वहाँ एक जगह अपना आसन रखकर पहले तो समुद्र स्नान करके श्रीजगन्नाथजी के दर्शन किये। फिर रहने के लिये कोई उपयुक्त स्थान देखने लगा। मन्दिर के सामने ही एक मठ था। उसमें जाकर वहाँ के महन्तजी से मिला। वे बड़े ही सज्जन थे तथा उनका शरीर संयुक्त प्रान्त का ही था। उस स्थान का नाम था एमार मठ। उसमें चार लाख रुपया वार्षिक तो सरकारी कर दिया जाता था। अतः उसकी आमदनी आठ-दस लाख रुपया प्रतिवर्ष होनी चाहिए। मैंने महन्तजी से प्रार्थना की कि आप मुझे रहने के लिये कोई एकान्त कोठरी तथा छः घंटे का कोई शारीरिक परिश्रम का काम बता दें। मैं उसे करते हुए आपके भण्डार से प्रसाद ले लिया करूँगा। इसपर उन्होंने बड़े प्रेम से कहा, 'तुम आनन्द से यहाँ रहो। हमारे पाँच-छः बगीचे हैं उनमें बड़े-छोटे सब प्रकार के मकान बने हुए हैं। जहाँ अच्छा लगे रहो और हमारे निजी चौके में प्रसाद पा लिया करो। काम धीरे-धीरे हम स्वयं ही बता देंगे।

मैंने उस दिन वहीं प्रसाद पाया। वह तो राजा-महाराजाओं का सा बड़ा दिव्य भोजन था। किन्तु उस समय मुझे वैराग्य का नशा चढ़ा हुआ था। इसलिये उसे पाकर मेरा चित्त प्रसन्न नहीं हुआ। अतः मैं सामान लाने के बहाने वहाँ से चला आया और दूसरा स्थान ढूढ़ने लगा अब वहाँ के बड़े-बड़े स्थानों में न जाकर समुद्र तटपर श्रीहरिदासमठ में गया। वहाँ के महन्त श्रीगोपीनाथजी से मिलकर मैंने अपना विचार प्रकट किया। वे सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले, तुम्हारे रहने योग्य तो यही स्थान है। यह यहाँ के सभी मठों की अपेक्षा निर्धन है। इसमें बहुत सामान्य सा प्रसाद मिलेगा और सेवा चाहे जितनी करो। यहाँ का सब काम हम स्वयं ही करते हैं। बस उन्होंने मुझे अत्यन्त एकान्त में एक कमरा बता दिया। उसके सामने ही समुद्र का अत्यन्त कोलाहलमय विशाल

वक्ष-स्थल फैला हुआ था। वहाँ और कोई शब्द सुनायी नहीं देता था और न कोई पुरुष ही जाता था।

अब, अपना सामान लाने के लिये मैं फिर उस एमारमठ में गया। वहाँ के महन्तजी ने मुझे बड़े प्रेम और आग्रह से कहा कि तुम हमारी मोटर में बैठकर हमारे सब बगीचे और मकान देख आओ। फिर जहाँ तुम रहना पसन्द करोगे वहीं सारा प्रबन्ध कर दिया जायेगा।' मैंने पूछा, 'आप मुझसे सेवा क्या करायँगे? तब वे बोले, 'हम तुम्हें अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं। तुम हमारे देश के हो, यहाँ के आदमियों से हम प्रसन्न नहीं हैं। तुमको जबसे हमने देखा है तभी से हमारा ऐसा विचार हो गया है। यह लो ताली-कुञ्जी। सम्भालो अपना काम।'

यह सुनकर मुझे भीतर से बड़ी हँसी आयी, किन्तु ऊपर से बड़ी गम्भीरता से यह कहकर कि मैं फिर जाऊँगा।' उन्हें प्रणाम करके चला आया और चुपचाप अपना सामान लेकर हरिदास मठ में पहुँच गया। मैंने मन ही मन श्रीमहाराजजी का स्मरण करके बार-बार मायादेवी को प्रणाम किया और कहा, 'जगदम्बे ! तू यहाँ तो मेरा पीछा छोड़ दे। यह स्थिति मुझे बड़े भाग्य से मिली है। अब तो इन प्रलोभनों को मुझसे दूर रख।' बस, फिर मैं उस मठ में नहीं गया।

हरिदासमठ रहकर में मैं वहाँ की फुलवाड़ी का काम करने लगा। दूर कुएँ से जल लाकर उसे सींचता और उसकी सफाई करता। इस प्रकार तीन घण्टे सवेरे और तीन घण्टे सायंकाल में खूब परिश्रम से काम करता था। शेष समय में अपने निजी कार्य कर लेता था। सायंकाल में समुद्र तटपर तीन-चार मील घूमने चला जाता था और घण्टों समुन्द्र तटपर बैठा रहता था। इसमें मुझे बड़ा ही आनन्द मिलता था। दोपहर को दाल-भात का प्रसाद ले लेता था तथा रुचि होती तो थोड़ां सायंकाल में भी खा लेता था। मेरे लिये इस जीवनमें यह नया ही भोजन था तेल में छकी दाल-तरकारी और केवल भात। वहाँ रहने वाले लोगों को प्राय: आँव का विकार हो जाता था। इस डर से मैं थोड़ा भूखा ही रहता था। नित्यप्रति बगीचे की सिंचाई का कठिन परिश्रम, नियमित आसन व्यायाम और सायंकाल में तीन-चार मील का भ्रमण इस प्रकार काफी शारीरिक परिश्रम

हो जाता था। तथा भोजन बहुत सामान्य था। इसलिये चित्त बहुत प्रसन्न रहता था। महाराजजी मुझे निरन्तर अपने समीप ही प्रतीत होते थे। रात्रि में भी मैं केवल दो तीन घण्टे ही सोता था' इसलिये यद्यपि शरीर तो दुर्बल हो गया था, तथापि मन का उत्साह दिन पर दिन बढ़ रहा था।

अब महाराजजी का विरह मुझे व्याकुल करने लगा। किन्तु इस देश से लौटने की इच्छा तो स्वप्न में भी नहीं थी। यही निश्चय कर लिया था कि अब इसी प्रकार आयु के दिन पूरे करके यहीं शरीर त्याग देना है। चित्त की एक विचित्र अवस्था थी। मैं चौबीस घण्टे मौन रहकर सेवा एवं स्वाध्याय में लगा रहता था। मेरे शरीर का भार क्षीण होते-होते तीन महीने में पन्द्रह सेर कम हो गया। आखिर, मेरे पेट में आँवका विकार हो ही गया। तब मैंने समझा अब शरीर नहीं रहेगा। थोड़े ही दिन पीछे मुझे ज्वर भी हो गया। मैंने शुद्ध लंघन किये, केवल जल पीता रहा। ज्वर बड़ा भयानक था एक सौ छः डिग्री तक हो जाता। उस समय मेरी विचित्र अवस्था थी। श्रीमहाराजजी मुझे निरन्तर अपने समीप जान पड़ते थे। मैं उनसे बातें भी कर लेता था। बड़े आनन्द की अवस्था थी। मैं चुपचाप पड़ा रहता था। किसी से भी बोलना मुझे सर्वथा असह्य था।

इस प्रकार सात दिन तक निरन्तर रहकर आठवें दिन मेरा ज्वर छट गया। नवें दिन महन्तजी ने मुझे दाल खिला दी। मैं दाल खाकर आराम कर रहा था कि उसी समय महन्तजी मेरे पास दौड़े आये और बोले, तुम्हारे महाराजजी का पत्र आया है।' फिर उसे पढ़कर सुनाया। उसमें लिखा था कि ललिताप्रसाद पुरी में गया हुआ है, कृपया उसे ढूँढ़कर जल्दी से जल्दी वृन्दावन भेज दें। उसके पास किराया नहीं है, सो आप उसे दे दें, पीछे यहाँ से भेज दिया जायगा।

महन्तजी से महाराजजी का पहला परिचय था। आप नवद्वीप वाले बाबा रामदासजी के शिष्य थे। इसी से श्रीमहाराजजी ने उन्हें चिट्ठी लिखी थी। यहाँ वृन्दावन में एक विराट् उत्सव की योजना हो रही थी इसलिये सम्भव है पूज्य श्रीबाबा ने कहा हो अथवा सभी ने प्रार्थना की हो इस कारण से, या अभी कुछ दिन और भी इस संसार में रखना था, इसलिये आपने मुझे बुलाया। हो सकता
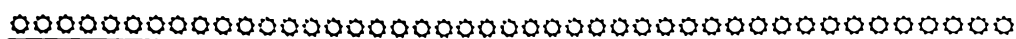
है, इनके सिवा कोई और ही कारण मुझे बुलाने का हो। इस विषय में मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता वास्तविक बात तो वे ही जानें।

ज्वर की हालत में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीमहाराजजी अनन्त माताओं से भी अधिक स्नेह से मेरे पास बैठे मुझे प्यार कर रहे हैं। और कहते हैं कि तू यहाँ आकर बहुत दुःखी हो गया है, वृन्दावन को चल। यहाँ का जलवायु अच्छा नहीं है। इस पर मैं कहता हूँ, 'नहीं, मैं नहीं जाऊँगा' तो आप बड़े दुःखी-से होकर आग्रह करने लगते हैं। बस, मैं रोने लगा और उसी दिन मेरा ज्वर उतर गया। उसके दूसरे दिन आपका यह पत्र पहुँच गया। मैं आपकी यह अपार करुणा और भक्तवत्सलता देखकर विह्वल हो गया। तत्काल मेरे शरीर में अनन्त बल आ गया और मै उसी समय इधर आने के लिये तैयार हो गया। महन्तजी ने बहुत कहा कि तुमने आज सात दिन लंघन करने के बाद दाल खाई है, इसलिये दो-चार दिन में बल बढ़ जाने पर जाना, हम महाराजजी को पत्र लिखे देते हैं। किन्तु मैं विवश हो गया। मैंने बहुत अनुनय-विनय करके उनसे स्वीकृति ली और उसी समय स्टेशन जाने के लिये तैयार हो गया। महन्तजी मुझे किराया देने लगे। किन्तु उसका प्रबन्ध दूसरे प्रकार ही हुआ।

जिला मैमनसिंह के एक बंगाली सज्जन थे। वे अच्छे बड़े ताल्लुकेदार थे। उनकी आय प्रायः चार लाख रुपया वार्षिक थी। हमारी सरोजनी❀ माँ के कुछ सम्बन्धी होते थे। माताजी भी उस समय वहीं ठहरी हुई थीं। उन्होंने उनसे मेरी कुछ प्रशंसा कर दी। इसलिये वे मुझसे बहुत स्नेह करने लगे। तथापि उनके

❀ ये एक विरक्त वैष्णवी माई थीं। इन्होंने अँग्रेजी की भी अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी और आयु के पूर्व भाग में जगविख्यात श्रीअरविन्द घोष के साथ देश सेवा में भी भाग लिया था। वाल्यावस्था में खेल-कूद में भी इन दोनों का साथ रहा था। किन्तु फिर ये गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा लेकर श्रीवृन्दावन वास करने लगी थीं। इनका स्वभाव बड़ा ही शांत सरल और स्नेहपूर्ण था। पूज्य श्रीउड़ियाबाबा जी और हमारे महाराजजी में इनकी बहुत श्रद्धा थी, तथा हम लोगों से ये सर्वथा मातृवत् स्नेह रखती थीं। गत मार्गशीर्ष शुक्ला ९ सं० २००३ को श्रीवृन्दावन में इनका गोलोकवास हुआ। उस समय इनके अन्त्येष्टि संस्कार में हम लोगों के साथ उक्त दोनों महापुरुष स्वयं पधारे थे।
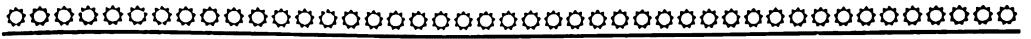
बहुत आग्रह करने पर भी मैं तो केवल एक बार ही उनके निवास स्थान पर गया था। मुझे तो उनके संसर्ग में भी मायादेवी का बड़ा भारी प्रलोभन दिखायी देता था। माँ सरोजिनी की कृपा से इस बंगाली परिवार के सभी स्त्री-पुरुष मेरे प्रति बहुत श्रद्धा और प्रेम प्रदर्शित करने लगे थे तथा इनके सम्पर्क से कुछ अन्य महानुभाव भी किसी न किसी रूप में मेरी कुछ सेवा करना चाहते थे। मैं तो केवल अपने परम कृपालु गुरुदेव की कृपा से ही उन प्रलोभनों से बच सका था। नहीं तो पता नहीं, मायादेवी के चक्कर में आकर मेरी क्या दशा होती।

जब इन्हें पता लगा कि मैं जा रहा हूँ तो यह सारा परिवार मठ में आकर रोने लगा। मैं तो घबरा गया। किन्तु फिर श्रीमहाराजजी के बल पर मैंने उन्हें समझा बुझाकर शांत किया। ये लोग मुझे हजारों रुपये देने लगे। परन्तु उनके अत्यन्त आग्रह करने पर मैंने मार्ग व्यय के लिये केवल बीस रुपये स्वीकार किये। उन्होंने अपनी घोड़ा गाड़ी मँगाकर स्टेशन तक मेरे साथ जाकर इन्टरक्लास का टिकट खरीद दिया तथा रास्ते के लिये कुछ खाने पीने का भी प्रबन्ध कर दिया। मैं बड़े आनन्द में वहाँ से चलकर वृन्दावन पहुँच गया और श्रीमहाराजजी के चरणों में पड़कर बहुत रोया।

श्रीमहाराजजी ने प्रसन्न होकर मुझे समझाते हुए कहा, भाई ! जो कुछ होता है सब ठीक है। यह मार्ग बड़ा ही कठिन है। इस प्रकार अनेकों ठोंकरें खाकर भी यदि जीव सुधर जाय तो बहुत बड़ी बात है। केवल कोरे उपदेश से किसी जीव का कल्याण नहीं हो सकता। जीवन की अनेकों घटनाओं में पड़कर ही जीव का चित्त शुद्ध होता है। हमें कई बार निराशा के बादल घेरते हैं, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा पतन हो रहा है। किन्तु उसी में से श्रीहरि-गुरु कृपा का झंझावत उठकर एकदम सब बादलों को छिन्न-भिन्न करके प्रेमसूर्य को प्रकाशित कर देता है, जिससे हमारे जन्म-जन्मातरण का घोर अन्धकार सदा के लिये नष्ट हो जाता है और हम कृतकृत्य हो जाते हैं। इसके लिये बड़े भारी धैर्य की आवश्यकता है। हमें प्रारब्धवश प्राप्त हुए सब प्रकार के सुख-दुःखों को उदासीन भाव से भोगते हुए निरन्तर भगवत् कृपा की वाट जोहते रहना चाहिये। जो इस प्रकार निरन्तर जीवन के प्रत्येक व्यापार में प्रभु

की प्रेरणा का ही अनुभव करता है वही इस संसार बन्धन से छूटकर परम पद प्राप्त कर सकता है।'

इस प्रकार उपदेशामृतका पान कराकर आपने मेरा सारा सन्ताप शान्त कर दिया। मैं वैशाख के प्रारम्भ में पुरी गया था और श्रावण के कृष्णपक्ष में वहाँ से लौटा। इस प्रकार मुझे वहाँ प्रायः सवा तीन महीने लगे। मेरा शरीर बहुत कृश हो गया था। किन्तु धीरे-धीरे सब ठीक हो गया और मैं खूब दौड़-धूप करने लगा।

श्रीवृन्दावन का विराट उत्सव

श्रीवृन्दावन के विराट उत्सव में हमारे महाराजजी प्रायः प्रतिवर्ष ही कुछ समय के लिए श्रीवृन्दावन जाया करते थे। किन्तु यहाँ इनके और इनके परिकरों के ठहरने के लिए कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं था। इसलिए सभी को बड़ी असुविधा रहती थी। यह देखकर पूज्य बाबा के व्रजवासी भक्तों ने ऐसी इच्छा प्रकट की कि यहाँ कोई स्थान बन जाय। पहले तो पाँच सौ रुपया लगाकर एक कुटिया बनाने का ही विचार हुआ था। किन्तु पीछे भिन्न-भिन्न भक्तों के विशेष आग्रह से यहाँ एक आश्रम ही बन गया। इस आश्रम की नींव बाबा ने व्रज के सर्वमान्य सन्त श्रीग्वारिया बाबा से रखवायी थी। आरम्भ में इसमें एक कोठी बनी। उसमें तीन कमरे, बरामदा और चबूतरा नीचे थे तथा एक कुटी ऊपर। इस ऊपरवाली कुटी में ही आरम्भ से अब तक हमारे महाराजजी रहे हैं। उसके पश्चात् पूज्य बाबा के लिये एक अलग कुटी बनी जिसमें नीचे दो गुफायें भी थीं। अन्त में ठाकुर कञ्चनसिंहजी गोराहवालों ने इसका दरबाजा बनवाया, जिसके इधर-उधर ६-७ कमरे, एक खुला हाल और एक रसोई घर है। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक मकान इस आश्रम के पश्चिम की ओर भी बनवाया, जो पीछे मातृमण्डल नाम से प्रसिद्ध हुआ। इतना आश्रम बनजाने पर बाबा का विचार इसका उद्घाटनोत्सव करने का हुआ।

सन् १९३८ की गुरुपूर्णिमा पर हमारे श्रीमहाराजजी इस आश्रम में वृन्दावन में ही थे। यहाँ मार्गशीर्ष तक आप मौन रहे पूज्य बाबा ने उस साल रामघाट में गुरुपूर्णिमा की थी। वहाँ से वे कार्तिक में बाँध पर गये और गवाँ, बरोरा, निजामपुर एवं भिरावटी आदि गाँवों में घूमते तथा सब लोगों को माघ में उत्सव के अवसर पर वृन्दावन आने के लिये कहते मार्गशीर्ष में वृन्दावन आ गये।

बाबा ने आश्रम का नाम श्रीकृष्णाश्रम रखा। यह उस समय कोई बड़ा स्थान नहीं था। किन्तु आखिर यह था तो बाबा का संकल्प साथ ही इससे हमारे श्रीमहाराजजी का भी विशेष सम्पर्क था। अत: भविष्य में यह बहुत बढ़ गया और आज तो यह श्रीवृन्दावन के प्रधान स्थानों में है। ऐसा ही विशाल इसका उत्सव भी हुआ। लोगों ने अपनी आयु में वृन्दावन में इतना बड़ा उत्सव पहले कभी नहीं देखा था। इस अलौकिक उत्सव का विवरण लिखना मेरी शक्ति के बाहर है, केवल उसका आभास मात्र लिखने का प्रयत्न करता हूँ।

उत्सव का प्रोग्राम माघ शुक्ला द्वितीया से फाल्गुन शुक्ला द्वितीया तक पन्द्रह दिनका रखा गया। इसमें अन्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त पन्द्रह दिन का अखण्ड कीर्तन भी रखा गया। इसका प्रबन्ध मेरे जिम्मे था। कीर्तन के लिये आश्रम के सामने श्रीदावानल बिहारीजी के बगीचे में एक पृथक् मण्डप बनाया गया था तथा उसी के आस-पास अनेकों डेरे लगाकर कीर्तन मण्डलियों को ठहराया गया था। उस समय कीर्तन करने वाले प्राय: चार सौ आदमी तो बाँध प्रान्त के थे। उनके अतिरिक्त सहता, सिरसा विश्रामपुर, अतरौली, अलीगढ़ और दिल्ली आदि कई स्थानों की मण्डलियाँ बाबा के परिकर की थीं। इन सब कीर्तनकारों की छ: मण्डलियाँ बना दी गयी थीं। उनमें से प्रत्येक मण्डली में सौ आदमी थे। अत: कीर्तनमण्डप में कम से कम सौ आदमी हर समय कीर्तन करते रहते थे। उनके साथ एक घण्टा, एक नगाड़ा, एक ढोलक, एक हरमोनियम बाजा और पच्चीस जोड़ी झाँझ रहती थीं कीर्तन बड़ी ही धूमधाम से होता था। प्रात: काल से ५ बजे तक, मधयान्ह ११ से १२ बजे तक और सायंकाल से

६ से ७ बजे तक श्रीमहाराजजी समष्टि कीर्तन कराते थे। उस समय तो आनन्द की लूट सी होने लगती थी। उस समय पूज्य श्रीबाबा भी सहज समाधिओं में मग्न हुये एक ओर खड़े रहते थे तथा स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी, स्वामी निर्मला-नन्दजी, बाबा रामदासजी आदि अनेकों महात्मा अपनी उपस्थिति और सहयोग से भक्तों के हृदय में कीर्तनानन्दकी और भी वृद्धि कर देते थे। इसके सिवा श्रीवृन्दावन के अनेकों वैष्णव महात्मा और भक्तजन भी उसमें सम्मिलित होते थे। उस समय तो हजारों कीर्तनकार भगवन्नाम का घोष करके आकाश को गुञ्जायमान कर देते थे।

हमारे सरकार उस समय अनेक प्रकार से नृत्य करते हुए घण्टा बजाते थे। कभी-कभी तो स्वयं ही कोई दिव्य अमानुषी लीला आरम्भ हो जाती थी। अहा ! आज वे बातें प्रत्यक्ष-सी होकर मानस नेत्रों के सामने आ जाती हैं। कीर्तन के मण्डल में श्रीमहाराजजी नृत्य करते दौड़ रहे हैं। उनके पीछे सीताराम बाबा, मैं तथा और भी दो-चार भक्त उसी गति से चल रहे हैं। उस समय हम लोगों के चित्तों में जो दिव्य भाव तरंगें खेलने लगती थीं उन्हें लेखबद्ध करना असम्भव ही है। हमें ऐसा प्रतीत होता था कि हम लोग दिव्य-धाम में हैं और श्रीयुगलसरकार के साथ नित्य विहार में सम्मिलित होकर अनेकों दिव्य लीलाओं का रसास्वादन कर रहे हैं। कभी तो ऐसा मालूम होता मानो श्रीरघुनाथजी के साथ अवध में खेल रहे हैं, कभी श्रीश्यामसुन्दर और श्रीकिशोरीजी के साथ उनके सखीपरिकर रूप से नित्य विहार में सम्मिलित हैं ऐसा अनुभव होता और कभी ऐसा जान पड़ता कि श्रीनवद्वीप धाम में श्रीगौरसुन्दर तथा श्रीपाद नित्यानन्द आदि गौरभक्तों के साथ नित्यसंकीर्तन में सम्मिलित हैं। इस प्रकार जिस समय जैसा कीर्तन होता उसी के अनुसार भाव राज्य में प्रवेश करके उन-उन लीलाओं का अनुभव करते थे।

सभी भावोन्मत हो जाते थे। किसी को भी तन-मन का होश नहीं रहता था। यदि कभी करुणारस की जागृति होती तो सभी रुदन करने लगते थे और यदि हास्य रस का उदय होता तो तभी प्रसन्नतापूर्वक नृत्य करते हुए खिलखिलाकर हँसने लगते थे। कीर्तन में विभिन्न भावों के भक्त सम्मिलित होते थे। उन्हें

अपने-अपने भावानुसार अपने-अपने इष्ट का अनुभव तथा दर्शन होता था। भाई! कीर्तन तो दिव्य कल्पतरु है। उसकी छाया में आकर जिसकी जैसी इच्छा हो वही पूर्ण हो जाती है। उसके द्वारा अपनी-अपनी वासनाओं के अनुसार लोग अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। और निष्काम भक्त साक्षात् अपने इष्ट के साथ तादात्म्य प्राप्त कर दिव्य सच्चिदानन्द रस का अनुभव करते हैं। इसी कीर्तन कल्पतरु के नीचे खड़े होकर ज्ञानीजन सहज समाधि और ब्राह्मी स्थिति का अनुभव करते हैं तथा योगीजन सविकल्प एवं निर्विकल्प समाधियों का अनुभव करके नित्य परमात्म सुख प्राप्त करते हैं।

'चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापण
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सवत्मिस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥'❁

सचमुच उस समय तो इस महासंकीर्तन के रूप में श्रीवन्दावन में दिव्य महारास ही हो गया। उस कीर्तन के चक्र में यदि घोर नास्तिक भी आ जाता तो विवश होकर उसे भी नाचना पड़ता। पीछे उसका भाव स्थायी रहे अथवा न रहे। उस समय तो कई आर्य समाजी भी इस कीर्तन से मुग्ध होकर नाम प्रेमी बन गये।

आश्रम के भीतर एक बहुत बड़ा पण्डाल बनाया गया था। उसमे प्रातः काल ८ से ११ बजे तक श्रीमद्भागवत का पारायण और कथा होती थी। मूल ग्रन्थ का परायण श्रीबाँकेबिहारी के सेवाधिकारी गोस्वामी मदनमोहनजी करते थे तथा कथा स्वामी श्रीरामानुजदासजी कहते थे ! आपकी व्याख्या बड़ी ही

❁ **श्रीकृष्ण सङ्कीर्तन अत्यन्त विजय को प्राप्त होता है। यह चित्तरूपी दर्पण को स्वच्छ करने वाला, संसार रूपी घोर दाबानल को शान्त करने वाला, कल्याण रूपी चन्द्रमा की कान्ति का विस्तार करनेवाला विद्या रूपी वधू का जीवन, आनन्द समुद्र को उल्लसित करनेवाला, पूर्णतया अमर पद का आस्वादन कराने वाला और सब प्रकार अपने में सराबोर कर देनेवाला है।**
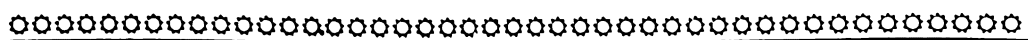
पाण्डित्यपूर्ण और मनोरम होती थी। उस समय सैकड़ों भक्त बड़े मनोयोग से कथा सुनते थे।

इसके पश्चात् १२ से २ बजे तक भोजन और विश्राम का समय था। आश्रम के पास ही श्रीदावानलविहारी के मन्दिर में भोजन भण्डार और कोठार था। वहाँ आठ-दस चौकों में हर समय कच्ची रसोई बनती रहती थी। उसमें भक्तजन स्वयं जाकर पा लेते थे। इसके प्रधान प्रबन्धक थे केशवराम धीरजराम अनूपशहरवाले तथा उनके सहायक थे पं. निद्धालाल। इसी मन्दिर में पक्की रसोई का भी प्रबन्ध था। जो लोग पक्का भोजन करना चाहते थे उन्हें उनके डेरे पर ही पहुँचा दिया जाता था। उत्सव में आये हुए सभी भक्तों की सूची बना ली गयी थी तथा उन्हें पृथक्-पृथक् मण्डलों में विभक्त कर दिया था। एक-एक मण्डल का प्रबन्ध एक-एक मुख्य पुरुष को सौंपा गया था। उसकी सहायता के लिये आठ-दस आदमी और भी रहते थे। ये लोग हर समय अपने मण्डल की सब प्रकार की सेवा करते थे। श्रीकृष्णाश्रम के आस पास जितने भी स्थान थे सब माँग लिये गये थे। श्रीकाठियाबाबा के आश्रम का बाड़ा, श्याम, बगीचा, परमहंसाश्रम, दिल्लीवाली बगीची, निम्बार्क पाठशाला, निम्बार्क बाग, मथुरा- प्रसादजी का आश्रम, बिहारीजी का बगीचा, जयपुरवाला मन्दिर, मिर्जापुरवाली, दिल्लीवाली और सिन्धी धर्मशालाएँ तथा ब्रह्मनिवास आश्रम-इन सभी स्थानों में भक्तजन ठहराये गये थे। इनके सिवा और सैकड़ों डेरे और रावटियाँ भी लगायी गयी थीं।

रोशनी का विभाग अलग था। उसकी भी एक कमेटी थी। उसके प्रधान थे मास्टर राधावल्लभजी। ये सर्वत्र रोशनी का यथोचित प्रबन्ध करते थे तथा इसी कमेटी के जिम्मे सफाई का काम भी था। इस उत्सव में पाँच-छः हजार व्यक्ति बाहर से आये थे। इसलिये सफाई की देखभाल बहुत आवश्यक थी। किन्हीं महाशय ने मैजिस्ट्रेट के यहाँ शिकायत कर दी थी कि वृन्दावन में इतना बड़ा उत्सव हो रहा है, इसके कारण यहाँ की जलवायु बिगड़ने की सम्भावना है। तब मैजिस्ट्रेट ने जाँच के लिये हैल्थ आफिसर को भेजा। उन्होंने सफाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध पाया। किन्तु नियम की पूर्ति के लिये वहाँ चलता-फिरता

औषधालय (Turing dispensary) भेज दिया। पीछे स्वयं कलक्टर साहब आये और वहाँ के सुप्रबन्ध देखकर लिख गये कि मैंने इतने बड़े मेले का ऐसा अच्छा प्रबन्ध नहीं देखा।

इसी तरह पानी का विभाग भी अलग था। इसके प्रधान अधिकारी थे रामघाट वाले बाबू रामसहायजी। आश्रम के आस पास मीठे पानी की बहुत कमी है। केवल एक छोटा-सा कुआँ दावानल कुण्ड के पास है। इसलिये इस बात का भय था कि इतने बड़े उत्सव को पीने का जल कैसे दिया जायगा। अतः उत्सव के प्रधान मन्त्री श्रीजानकीप्रसाद बागला ने यह प्रस्ताव रखा कि सेठ हरगुलालजी की बनवायी हुई नहर के द्वारा दावानल कुण्ड को, जिसमें उस समय बहुत कम जल रह गया था, यमुनाजी के जल से भर लिया जाय। इसके लिये बहुत प्रयत्न भी किया गया, परन्तु सफलता न मिली। तब बाबू रामसहायजी ने सीमेण्ट के दो कुण्ड बनवाये। उनमें कनस्तर की बेंगियों द्वारा कई कहार हर समय श्रीबिहारीजी की बगीची के कुएँ से जल लाकर भरते रहते थे। इसलिये अन्त तक जल का कोई कष्ट नहीं हुआ।

इस उत्सव में सब प्रकार की सेवा के लिये स्वयंसेवकों का भी एक दल था। उसकी भी एक समिति थी। उसके प्रधान थे दण्डिस्वामी आत्मबोध तीर्थ (फर्रूखाबादी बाबा) तथा इनके प्रधान सहायक थे पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित। स्वयंसेवकों का प्रधान कार्य मेले में पहरा लगाना था। ये लोग अपनी-अपनी ड्यूटी से पृथक्-पृथक् स्थानों पर लाठी लिये खड़े रहते थे तथा रात्रि के समय 'हरिबोल' अथवा 'राधेश्याम' बोलकर पहरा लगाते थे। इनका उस समय का भगवन्नामोच्चारण बड़ा ही सुहाबना लगता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पन्द्रह दिन में हजारों मनुष्यों का सम्मेलन होने पर भी किसी की एक पैसे की चीज भी नहीं खोयी। जो चीज इधर-उधर पड़ी मिलती थी वह दफ्तर में पहुँचा दी जाती थी और उसके मालिक उसे वहाँ से प्राप्त कर लेते थे।

इस विभाग का एक दूसरा काम था सभा एवं रासलीला में आने वाले दर्शकों के जूतों की सँभाल यदि इसकी सुव्यवस्था न होती तो इतने बड़े सम्मेलन

में सैकड़ों जूते खो जाते। इसकी देखभाल फर्रूखाबादी दण्डिस्वामी स्वयं करते थे। इसका क्रम यह रखा गया था कि १] २] ३ इस प्रकार नम्बर डालकर एक-एक नम्बर के दो-दो टिकट बनाये गये थे। उनमें से एक टिकट जूते में डाल दिया जाता था और एक जूते के मालिक को दे दिया जाता था। तथा उन जूतों को नम्बरों के क्रम से ही लकड़ी के तख्तों से बनायी हुई अलमारियों में रख दिया जाता था। सभा से लौटने पर जूते का मालिक टिकट देकर उस नम्बर का जूता प्राप्तकर लेता था। दण्डिस्वामी कई बार तो स्वयं ही जूतों को रखने का काम करने लगते थे। उस समय दूसरे लोगों के विशेष प्रार्थना करने पर ही वे उस काम को छोड़ते थे। उनकी वह निर्मानता और अद्‌भुत सेवानिष्ठा निःसन्देह सराहनीय थी।

इसके सिवा यात्रियों की सुविधा के लिये उत्सव में ही डाकखाने और औषधालय का भी प्रबन्ध था। आश्रम रेलवे लाइन के किनारे ही है। वृन्दावन स्टेशन यहाँ से प्रायः तीन फर्लांग है। अतः उत्सव के अधिकारियों ने लिखा-पढ़ी करके आश्रम के पास ही एक अस्थायी स्टेशन की व्सवस्था करा दी थी। मेले में आने और जाने वाली प्रत्येक गाड़ी यहाँ खड़ी हो जाती थी। और यहीं यात्रियों को टिकट भी मिल जाता था। इस प्रकार इस उत्सव में सभी प्रकार से बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया गया था।

भोजन और विश्राम के पश्चात् दोपहर बाद २ से ५ बजे तक व्याख्यान एवं कथाओं का क्रम रहता था। इसके प्रबन्धक थे पं. श्रीलालजी याज्ञिक। इस समय ग्वालियर वाले बाबा रामदासजी श्रीरामचरितमानस की बड़ी ही अपूर्व कथा कहते थे तथा पं. श्रीजगन्नाथजी 'भक्तमाली' भक्तमालकी और गोस्वामी श्रीगौरगोपालजी श्रीगौरचरित की विचित्र रसपूर्ण कथाओं का रसास्वादन कराते थे, बाबा श्रीरघुनाथदासजी का भी बड़ा प्रेमोन्मादपूर्ण भाबाण होता था। इनके अतिरिक्त जो वृन्दावन के अनेकों गोस्वामी स्वरूप, आचार्यपाद और उपदेशाक पधारे थे उनमें गोस्वामी प्राणगोपालजी, विजयकृष्णजी और श्रीकृष्णचैतन्यजी तथा श्रीरंगाचार्यजी, श्रीरामानुजदासजी, श्रीचक्रपाणिजी एवं पण्डित श्रीकृष्णवल्लभजी

के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वेदान्त विषय पर स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूत एम. ए. का बड़ा अद्‌भुत भाषण होता था। दो-तीन दिन महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा और कविरत्न पं. अखिलानन्दजी के पाण्डित्यपूर्ण भाषण भी हुए। इस समय स्थानीय तथा बाहर से पधारे हुए अनेकों महात्माओं का भी बड़ा अपूर्व सम्मेलन हुआ था। गंगातीरवासी स्वामीशास्त्रानन्दजी, निर्मलानन्दजी और भोलेबाबाजी भावपुरवाले स्वामी श्रीहीरानन्दजी स्वामी श्रीकृष्णानन्ददासजी मण्डी वाले आदि अनेकों महापुरुषों ने इस उत्सव की शोभा बढ़ाई थी।

इसके पश्चात् सायंकालीन समष्टि कीर्तन के अनन्तर साढ़े सात से दस बजे तक रासलीला होती थी। बौहरे ब्रजलालजी पं. बाबूलालजी पिसावे वाले पं. कृष्णलालजी और पं. बाबूलालजी इन चार स्वामियों की मण्डलियों ने चार-चार दिन लीलाएँ कीं। इन लीलाओं में बड़ा ही अद्‌भुत रस रहा। अन्तिम दिन सब मण्डलियों का महारास हुआ। श्रीवृन्दावन में रासलीला तो जगह-जगह होती हैं, किन्तु ऐसा अनुभव प्राय: सभी का है कि लीला में जैसा आनन्द यहाँ आता है वैसा और कहीं नहीं आता। इसका कारण एकमात्र श्रीमहाराजजी की अद्‌भुत लीलानिष्ठा ही है। आप तो जो कार्य भी करते हैं उसी में भाव और क्रिया का पूर्ण सहयोग रहता है। रासलीला में आप नित्यधाम की चिन्मयी लीला की ही भावना रखते हैं और जितनी देर लीला होती है पूर्ण मनोयोग से चँवर अथवा पंखे द्वारा श्रीठाकुरजी एवं सखी परिकर की परिचर्या करते रहते हैं।

रासलीला के पश्चात् रात्रि में १० से ११ बजे तक पुन: भोजन वितरण होता था। कच्ची रसोई तो हर समय ही तैयार रहती थी। जिन्हें जब सुविधा होती तभी चौके में जाकर पा लेते थे, पक्का भोजन इस समय डेरों पर पहुँचा दिया जाता था।

माघ शुक्ला पूर्णिमा को स्वामी श्रीरामानुजदासजी की प्रधानता में कवि सम्मेलन हुआ। उसमें कई महानुभावों ने भाग लिया, इसके पश्चात् फाल्गुन कृष्णा २ को समष्टि भण्डारा हुआ। इसमें वैष्णवों के भोजन का प्रबन्ध तो श्रीकाठिया बाबाजी के आश्रम में किया गया था तथा उन्हीं के तत्त्वावधान में यह काम
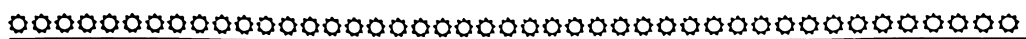
छोड़ दिया गया था। बड़े-बड़े मन्दिरों में वहीं भोग तैयार कराया गया और वहीं से सब गोस्वामी स्वरूपों को प्रसाद वितरण हुआ। अन्य सब साधुसमाज, ब्राह्मणवर्ग, दरिद्रनारायण तथा उत्सव में आये हुए भक्तमण्डल के भोजन का प्रबन्ध श्री कृष्णाश्रम में ही रखा गया था। इस भण्डारे में परोसने का प्रबन्ध बड़ा ही अद्भुत था। लड्डू, कचौड़ी, पूरी, शाक, रायता और सोंठ इतनी चीजें परोसी जाने वाली थीं। इनकी टिकट छाप ली गयी थीं और जिस आदमी को जो चीज परोसनी थी उसे वही टिकट दे दी गयी थी। फिर जो पंक्तियाँ लगायी गयी थीं उनमें से प्रत्येक पंक्ति का एक प्रधान व्यवस्थापक नियुक्त कर दिया था और उसे निश्चित परोसने वाले दे दिये गये थे। इस प्रकार सब काम बहुत नियमानुसार किया गया था। इस भण्डारे में साधु और दरिद्रनारायण तो सभी जीम गये थे। किन्तु ब्राह्मणों में एक अड़चन पड़ गयी। उस समय वृन्दावन के ब्राह्मणों में दो पार्टियाँ थीं। उनमें आपस में इतना विरोध था कि वे दोनों एक जगह जीमने के लिये नहीं जा सकती थीं। परन्तु बाबा का विचार किसी एक ही पार्टी को निमन्त्रित करने का नहीं था। अतः आश्रम की ओर से सभी ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर दिया गया। इससे पहले तो भण्डारे में किसी भी पार्टी के ब्राह्मण नहीं आये, किन्तु पीछे धीरे-धीरे दोनों ही पार्टियों के आधे आदमी जीम गये। इस भण्डारे में इतने लोगों का भोजन हुआ था कि आश्रम में स्थान न रहने के कारण उसके आप-पास दावानल कुण्ड और रेलवे लाइन तक पंगतें लगानी पड़ी थीं। उस दिन प्रायः एक-सौ बीस मन आटा सेका गया था। इससे उस भण्डारे की विशालता का अनुमान हो सकता है। उस दिन वहाँ किसी के लिये कोई रोक-टोक नहीं थी।

किन्तु इसके पीछे भी बहुत सामान बच गया। वह तो मानों अक्षय भण्डारा हो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब हमने भण्डार देखा तो उसमें प्रायः पचास मन लड्डू बचे हुए थे। पीछे बीस मन लड्डू तो मैंने अपने हाथों से वितरण किये। बाकी लड्डू गुरुकुल तथा वृन्दावन के समस्त स्कूल और पाठशालाओं में बाँट दिये गये। बाहर से भक्त आये थे उन्हें विदा होते समय यथा योग्य खूब प्रसाद दिया गया। इसके सिवा जो कच्चा सामान बचा था वह श्रीकाठिया

बाबा के स्थान कलाधारी बाबा के बगीचे तथा अन्यान्य स्थानों में बाँट दिया गया। उस समय इतना सामान बचा था कि हम लोग बाँटते-बाँटते थक गये। श्रीमहाराजजी तथा बाबा को अब तुरन्त ही बाँध पर पहुँचकर होली का उत्सव करना था। इसलिए इस काम की पूर्णाहुति करने की बहुत जल्दी थी। आखिर बाबा तो एक दिन रात को चुपचाप अकेले ही उठ गये। पीछे कृष्णाश्रम में रहने वाले भक्त उस काम को सम्भालते रहे। इस प्रकार यह उत्सव बड़ा ही विचित्र हुआ।

शिवपुरी और बरेली के उत्सव

बस सन् १९४० का होली का उत्सव बाँध पर हुआ। उसके पीछे ग्रीष्म ऋतु में भी आप और पूज्य बाबा अपने परिकर सहित बाँधपर ही रहे। बड़े आनन्द से रामनवमी का उत्सव हुआ। उसमें हम लोगों ने आपस में मिलकर ही श्रीरामलीला की। उसके पश्चात् बाबा तो सम्भवत: ज्येष्ठ में चले गये। आप श्रावण तक यहीं रहे। यहीं श्रीगुरुपूर्णिमा का उत्सव हुआ। फिर आप श्रीवृन्दावन पधारे। वहीं चातुर्मास्य किया और शीतकाल में भी वहीं उत्सव होता रहा। अत: सन् १९४१ का होली का उत्सव श्रीवृन्दावन में ही हुआ। पूज्य बाबा तो गुरुपूर्णिमा पर ही यहाँ आ गये थे। उत्सव के समय बाँध के प्रमुख भक्त तथा शिवपुरी, होशियारपुर एवं देहली आदि स्थानों से भी सब लोग आ गये थे। इस वर्ष ब्रह्मचारी प्रेमानन्दजी के तत्त्वावधान मे पण्डित चेतरामकी मण्डलीने उन्हीं की रची हुई श्रीगौरलीलाओं का अनुकरण किया। श्रीब्रह्मचारीजी ने रामलीलाओं की शैली पर ही ब्रजभाषा में इन लीलाओं की रचना की है।

इसके पश्चात् आप बाँध पर चले आये और ग्रीष्म ऋतु में वहीं रह कर बाँध की मरम्मत कराते रहे। उन दिनों आप रात के दो बजे ही उठ जाते और गाँवों में कीर्तन करके वहाँ से मदद निकालकर लाते थे। फिर तीन-चार
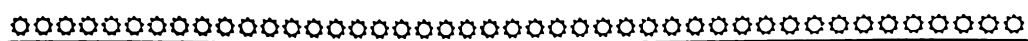
घण्टे उनके साथ खूब परिश्रम करते थे। तत्पश्चात् १० से १२ बजे तक कथा और मध्याह्न में भोजन एवं विश्राम करके २ से ५ बजे तक पुनः कथा एवं सत्संग करते थे। सायंकाल में ६ बजे से एक घण्टा समष्टि कीर्तन होता और रात्रि में भक्तजन कोई पदगान और लीला अभिनय करते थे।

इस प्रकार गुरुपूर्णिमा तक आप बाँध पर ही रहे। श्रावण में आप वृन्दावन चले गये। उस वर्ष बाबा का चातुर्मास्य कर्णवास में हुआ था। आप कार्तिक में कर्णवास चले आये। वहीं बाबा ने रासमण्डली भी बुला ली। अतः कार्तिकी स्नान पर अच्छा उत्सव हो गया। अखण्ड कीर्तन रास और सत्संग सभी का आनन्द रहा। फिर मार्गशीर्ष में मुझे शिवपुरी भेजा और पीछे से आप भी पहुँच गये। वहाँ पहले तो सामान्य ही प्रोग्राम रहा किन्तु फिर पौष में पूज्य बाबा भी अपने परिकर सहित पहुँच गए। बस, चेतराम की रासमण्डली बुला ली गयी और बड़ी धूम-धाम से उत्सव होने लगा।

हमारे शिवपुरी के उत्सवों में बड़ा ही विचित्र आनन्द रहता है। वहाँ जैसा अद्भुत कीर्तन और पदगान होता है वैसा अन्यत्र नहीं देखा गया। इस बार आप तो बस्तीसे एक मील दूर लाला राधेश्याम की बगीची में रहते थे तथा वहीं तीसरे पहर की कथा सायंकाल का कीर्तन और रात्रि का सत्संग होता था। प्रभाती कीर्तन और रासलीला वस्तीवाले ठाकुरजी के मन्दिर में होती थी। वहीं आपकी पहली कुटी में बाबा ठहरे थे तथा नीचे के मन्दिर में उनका परिकर था। वहीं एक कोठरी में मैं रहता था मन्दिर के प्रांगण में लीला का मण्डप बनाया गया था। उन दिनों ऐसा नियम बनाया गया था कि श्रीमहाराजजी के आने पर कीर्तन आरम्भ होते ही बाहर का फाटक बन्द कर दिया जाता था। उसके पश्चात् कोई भी स्त्री या पुरुष भीतर नहीं आ सकता था। किन्तु फिर भी मन्दिर खचा-खच भर जाता था और भीड़ अधिक होने पर भी किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं होती थी। सबलोग चुपचाप बड़ी शान्ति से रास-दर्शन करते थे।

उन दिनों यह मण्डली श्रीमन्महाप्रभुजी की लीलाएँ ही करती थी। इन लीलाओं के रचयिता ब्रह्मचारी प्रेमानन्दजी भी मण्डली के साथ आये हुए थे।
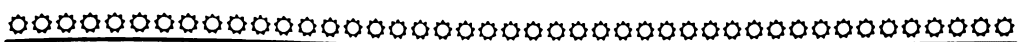
आप ही स्वरूपों को अभिनय की शिक्षा देते थे। आप बड़े ही विरक्त तथा अँग्रेजी, संस्कृत और बंगला के अच्छे पण्डित हैं, संगीत शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता हैं और भाषा के साधारण कवि भी हैं। किन्तु आपकी कल्पना शक्ति और लेखनी बड़ी अद्‌भुत है। लीला के हाव-भाव कटाक्ष सिखाने में भी आप बड़े दक्ष हैं। आप सचमुच बड़े ही निःस्पृह और प्रतिभाशाली सन्त हैं। हमारे श्रीमहाराजजी आपका बड़ा आदर करते हैं। आपने जो गौरलीला लिखी है उसका अभिनय दो ढाई मास तक हो सकता है। इसके अतिरिक्त श्रीमहाराजजी की आज्ञा से आपने श्रीकृष्णविजय नाम का एक नाटक भी लिखा है। इसका अभिनय श्रीगीताजयन्ती के अवसर पर प्राय: प्रति वर्ष ही होता है।

शिवपुरी में एक मास तक यह उत्सव बड़े ही आनन्द से हुआ। यहाँ की जनता सब प्रकार अनुकूल थी तथा यहाँ की-सी कीर्तन मण्डली तो कहीं भी नहीं है। इसका पदगान बड़ा ही भावपूर्ण होता है। ये लोग जो पद गाते हैं उसी भाव में तल्लीन हो जाते हैं तथा श्रोता लोगों पर भी उसका अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है।

इसके पश्चात् बरेली वालों के विशेष आग्रह से आप परिकर सहित वहाँ पधारे, वहीं मारवाड़ीगंज में मण्डप बना था तथा आप चुंगीवाले बाग में ठहरे थे। उस उत्सव में बरेली वालों का बड़ा विलक्षण उत्साह देखा गया। वहाँ के मारवाड़ी समाज ने भोजन का सुन्दर प्रबन्ध किया था। तथा मण्डप का प्रबन्ध दूसरे नागरिकों के अधीन था। उनमें रामचन्द्र हलवाई, श्रीराम गोटे वाले, मास्टर मुकुटविहारीलाल, सुन्दरलाल सुनार तथा राम निवास गोटे वाले प्रमुख थे।

बरेली के उत्सव की मुख्य विशेषता यह थी कि यहाँ प्रभाती कीर्तन के समय लोगों का बड़ा अद्‌भुत उत्साह देखा गया। प्रात: काल चार बजे का समय, माघ का महीना और घोर शीत। फिर भी शहर के दूर-दूर के मुहल्लों से प्राय: एक हजार स्त्री-पुरुष एकत्रित हो जाते थे। उस समय का प्रभाती कीर्तन बड़ा ही विचित्र और आश्चर्यमय होता था। जिस प्रकार श्रीमहाराजजी कीर्तन आरम्भ करते ही गद्‌गद् कण्ठ और प्रेमोन्मत्त हो जाते थे उसी प्रकार हम लोग

भी रोते-रोते पागल से हो जाते थे। श्रीमहाराजजी की उस समय जो अवस्था होती थी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आपको दिव्योन्माद हो जाता था, जिसके कारण आप रोते-रोते मूर्च्छित हो जाते थे। उसके पश्चात् सावधान होकर आप प्रेम से विह्वल होकर एक घण्टे तक श्रीमन्महाप्रभुजी का चरित्र वर्णन करते थे तब तो साक्षात् अमृत की वर्षा होने लगती थी और सारी जनता प्रेम मुग्ध हो जाती थी। उस समय सभी के हृदय प्रेम से उथल-पुथल हो जाते थे, सभी के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग जाती थी और सभी उन्मत प्रायः हो जाते थे। यह सारा प्रोग्राम यद्यपि ४ से ७ बजे तक का था। किन्तु इस समय तो प्रेम की ऐसी बाढ़ आती कि उसके आगे मर्यादा का बाँध न ठहर सका और इसी कार्यक्रम में कभी आठ तथा कभी नौ भी बज जाते थे। नौ से साढ़े ग्यारह बजे तक श्रीमन्महाप्रभुजी की लीला का प्रोग्राम था। सो किसी दिन तो वहाँ से हट कर केवल पाँच मिनट के लिये मन्दिर में जा हाथ मुँह धोकर ही आप लीला में आ जाते थे।

उस समय लीला भी ऐसी विचित्र हुई कि हजारों आदमियों की भीड़ होने पर भी सब शान्त रहते थे। स्त्री-पुरुष, बालक, युवा, वृद्धा सभी मन्त्र मुग्ध से होकर चित्रपुत्तलिका की तरह स्तब्ध और शान्त बैठे रहते थे। लीला की समाप्ति में आप थोड़ी देर कीर्तन करते थे। फिर भोजन के पश्चात् २ से ५ बजे तक पण्डित राधेश्यामजी बरेली वालों की और बाबा रघुनाथदासजी वृन्दावन वालों की कथाएँ होती थीं तथा और भी कुछ प्रवचन होते थे। उनके बीच-बीच में शिवपुरी वालों का अथवा किसी अन्य गायक का पदगान होता था। इसके पश्चात् रात्रि में साढ़े सात तक कीर्तन का समय था और उसके पश्चात् दस बजे तक फिर व्याख्यान एवं पदगान होते थे।

इस उत्सव में बरेली वालों का उत्साह तो सराहनीय था ही, इधर हमारे महाराजजी ने भी उनके सामने अपना हृदय खोलकर कर रख दिया था। बस, प्रेम की मानो लूट ही कर दी थी। बरेली वालों ने भी अपनी ओर से कसर नहीं रखी। प्रत्येक प्रोग्राम में हजारों ही स्त्री, पुरुष और बालक अपना काम-काज

छोड़कर सम्मिलित होते थे। इसी से उन्हें यह सुर-मुनि दुर्लभ अलौकिक रस आस्वादन करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। बरेली में इस प्रकार का रसविकास देखकर हम लोग भी मुग्ध हो गये। हम बार-बार आश्चर्य चकित होने लगे तथा हमारे मनों में तरह-तरह के विचार उठने लगे। हमने एक घटना से तो यही निश्चय किया कि हम लोगों पर अथवा बरेली वालों पर उस समय कोई विपत्ति का आक्रमण होने वाला था, उसी को आपने सबसे भगवत्स्मरण करा फिर टाल दिया।

यह बात थी कि जिस समय आप शिवपुरी से चले उस दिन पण्डित लेखराजजी के यहाँ कीर्तन था। वहाँ किसी सामान्य कारण से ही आपका चित्त क्षुब्ध हो गया। आपके परम शान्त हृदय में भी एक तूफान उठ खड़ा हुआ। हम लोगों को आपने खूब फटकारा और अत्यन्त दु:ख भरे हृदय से ऐसे अनेकों मर्म भेदी शब्द कहे कि हम सब लोग घबरा गये। हमने समझा कि न जाने क्या प्रलय होने वाली है। वस, हम सब श्रीचरणों में पड़कर रोने लगे। और हम कर ही क्या सकते थे ? हमारा तो एक मात्र यही सम्बल था तब आप कुछ ढीले पड़े। नहीं तो आपने यह निश्चय कर लिया था कि अब इस जन्म में किसी से आँख नहीं मिलानी है। पीछे बहुत प्रार्थना करने पर आप बरेली जाने को तैयार हुए।

दूसरे दिन सब लोगों को लेकर आप बरेली के लिए चले। मीरगंज तक तो आप पैदल ही चले। साथ में रासमण्डली और बाँध प्रान्त के भी कई लोग थे। अत: कुछ लोग पदैल चले और कुछ सवारियों में। मीरगंज में एक कार आपके लिये और दो मोटर लॉरी हम सबके लिये आने की बात थी। सो बरेली से जो कार आपके लिये निश्चित की गयी थी वह तो किसी कारण से पीछे रह गयी, एक दूसरे सज्जन अपनी कार लेकर मीरगंज पहुँच गये।

जब पहले कार वाले को मालूम हुआ तो वह भी अपनी गाड़ी लेकर बड़ी तेजी से दौड़ा। उसमें भाई साहब छेदालाल छोटा पुत्र कृष्णमुरारी भी बैठा

था। वह कार बड़ी तेजी से जा रही थी। इतने ही में शंखा नदी के पुल पर सामने से कई बैलगाड़ियाँ आती दिखायी दीं। ड्राइवर ने उनसे बचाने के लिये कार को ज्यों ही बायीं ओर किया कि वह पुल की दीवार से टकरा कर बीस फुट नीचे नदी में जा पड़ी और चूर-चूर हो गयी। मोटर ड्राइवर भी उसी समय मर गया। किन्तु कृष्णमुरारी को किसी दैवी शक्ति ने मोटर से निकाल कर बहुत दूर फेंक दिया। वह भी बेहोश हो गया। चोट तो काफी लगी, किन्तु थोड़ी ही देर में उसे ऐसा मालूम हुआ कि महाराजजी उसके पास खड़े हैं और पुकार रहे हैं, 'कृष्ण ! उठो, तुम तो अब अच्छे हो गये। आज तुम्हारी मृत्यु का योग था, किन्तु भगवान् ने तुम्हें बचा लिया।' ये शब्द सुनते ही कृष्ण सचेत हो गया, किन्तु महाराजजी अन्तर्धान हो गये। फिर वह जैसे-तैसे चलकर सड़क पर आया और वहाँ से एक आदमी के द्वारा पास की पुलिस चौकी पर सूचना करायी। वहाँ से एक सिपाही आया। उसने स्टेशन से बरेली को तार देकर एम्बुलैंस कार मँगायी और वह कृष्ण को अस्पताल ले गयी।

उधर श्रीमहाराजजी दूसरी कार से बरेली पहुँच गये। वहाँ उन्हें मोटर दुर्घटना का पता लगा। किन्तु भाई साहब छेदालाल जी तो मालूम होने पर भी श्रीमहाराजजी की सेवा में ही लगे रहे। तब आपने उनसे पूछा, 'छेदालाल ! तू कृष्ण के पास नहीं गया ?' वे बोले, 'महाराजजी ! मैं जाकर क्या करता। उसकी रक्षा तो भगवान् ही कर सकते हैं।' उनका अटल धैर्य और भगवद्-विश्वास देखकर आप बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें साथ लेकर स्वयं अस्पताल को गये।

वहाँ जाकर कृष्ण को देखा। उसकी मरहमपट्टी सिविल सर्जन ने स्वयं की थी। वह चित्त लेटा हुआ था। महाराजजी को देखते ही प्रेम से रोने लगा। तब आपने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसे समझाया कि घबराओ मत, तुम जल्दी ही अच्छे हो जाओगे। जो कुछ भी हुआ है सब ठीक ही है। क्या जाने उस समय तुम्हारी मृत्यु का ही योग हो। भगवान् ने तुम्हें बचाया है, वे ही तुम्हें शीघ्र अच्छा करेंगे। यह कहकर आप चल दिये और मुझे आज्ञा दी कि इसका

सब प्रबन्ध ठीक कर दो। मैंने उसका सब प्रबन्ध कर दिया। पीछे बरेली में रहते हुए आप एक दो बार उसके पास फिर भी गये।

इस प्रकार एक सप्ताह तक बरेली में अभूतपूर्व उत्सव हुआ। सचमुच ऐसा रसविकास तो सन् १९१८ में निजामपुर में ही देखा गया था। उसके बाद तो अकस्मात् यहीं प्रकट हुआ। उस समय तो उसे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि अब कोई और विचित्र लीला होने वाली है। श्रीमन्महाप्रभुजी की जगन्नाथधाम की गम्भीर लीला का-सा प्रारम्भ जान पड़ने लगा। सचमुच उस समय श्रीमहाराजजी की अवस्था तो श्रीकृष्णविरहोन्मादिनी के सदृश ही थी। उसका प्रभाव भी सभी दर्शकों पर अद्भुत हुआ। सब लोग प्रेम से पागल हो गये। किन्तु फिर आपने उस लीला का संवरण कर लिया। न जाने किस हेतु से उस दिव्य लीला का आविर्भाव हुआ था और फिर क्यों इतनी जल्दी उसका तिरोभाव हो गया। यह रहस्य कुछ समझ में नहीं आया।

इसके पश्चात् आप शिवपुरी के एक अत्यन्त सरल भक्त पण्डित दाताराम के विशेष आग्रह से पीलीभीत के पास उनकी कुटी पर पधारे। वहाँ जाकर आप बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्होंने सचमुच अपनी शक्ति से अधिक तैयारी की थी। उनका आश्रम तो साक्षात् प्राचीन ऋषियों का-सा जान पड़ता था। महाराजजी ने वहाँ खूब खेल-कूद किया। आपने उनके यहाँ जाने-आने का दो लारियों का खर्चा भी उनसे नहीं लिया, इधर बरेली वालों से ही दिला दिया। बस, एक दिन वहाँ रहकर सायंकाल में ही आप बरेली लौट आये।

श्रीवृन्दावन धाम में

बरेली का उत्सव समाप्त होने पर और सब लोग तो यथा स्थान चले गये, किन्तु आप हम दो-चार व्यक्तियों के साथ श्री वृन्दावन चले आये। इधर, गुलाबसिंह की बहिनें भी अपने सब परिवार के साथ वृन्दावन ही आ गयीं। ये इस बार परमहंसाश्रम में ठहरीं। इनका कारिन्दा पण्डित निरञ्जनप्रसाद बड़ा ही सरल, सज्जन तथा श्रीमहाराजजी का अनन्यशरण अन्तरंग सेवक था। महाराजजी की भी उस पर बड़ी कृपा थी। यहाँ आने पर वह दैववश बीमार पड़ गया और दो-चार दिन में ही उसे घोर सन्निपात हो गया। महाराजजी भी कई बार उसके पास गये। किन्तु अब उसका प्रारब्ध समाप्त हो चुका था, अतः वह मरणासन्न हो गया। तब श्रीमहाराजजी ने उसके पास जाकर स्वयं कीर्तन कराया तथा अखण्ड-कीर्तन का प्रबन्ध कर दिया। बस, वह दूसरे ही दिन श्रीधाम में श्रीमहाराजजी की सन्निधि में नामकीर्तन के अखण्डघोष के बीच स्वयं भी भगवन्नाम लेता देह त्यागकर श्रीयुगलसरकार की नित्य लीला में प्रवेश कर गया। उसकी सब अन्त्येष्टि क्रिया भी हम लोगों ने ही की थी।

भाई ! श्मशान में जाकर उसको अपने ही हाथों दाह देकर मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि निरञ्जन सचमुच ही श्रीश्यामसुन्दर के साथ सखामण्डल में खेल रहा है। वास्तव में वह मेरे मनकी भावना थी अथवा हमारे कौतुकी सरकार की कोई लीला थी, सो तो कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु उस समय मेरी दृष्टि से यह दृश्य प्रपञ्च तो सर्वथा ओझल हो गया था। बस, मैं आनन्दसमुद्र की एक मीन बन गया था। उस समय मेरी दशा सुतीक्ष्णकी-सी थी। मैं कभी तो स्तुति करता था, कभी नृत्य करने लगता था, कभी रोता था, कभी मूर्च्छित हो जाता था। इस तरह प्रायः तीन घण्टे तक मैं भाव-समुद्र में उछलता-डूबता रहा। फिर सब लोगों ने मुझे पकड़कर श्रीयमुनाजी में स्नान कराया। स्नान करते-करते मैं उससे हटता ही नहीं था। आखिर सब लोग मुझे जैसे-तैसे पकड़कर लौटा लाये। मेरी यह अवस्था कई दिनों तक रही। श्रीभगवान् अपने सेवक पर
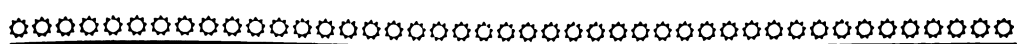
किस प्रकार करुणा करते हैं- इसका वह सजीव दृश्य अभी तक मेरे हृदय पर अंकित है।

निरञ्जन वास्तव में निरञ्जन ही था। वह सर्वप्रिय था। था तो वह रियासत का कारिन्दा, किन्तु उससे भी अधिक वह श्रीमहाराजजी का निज जन था। उस पर आपका बहुत ही प्यार और विश्वास था। उसका स्वभाव बड़ा ही मधुर था। श्रीमहाराजजी के तो कूकर को भी वह अपना आन्तरिक मित्र मानकर प्यार करता था। वह बालक के समान अत्यन्त सरल और उदारात्मा था। रियासत के अतिरिक्त वह अपने पास से भी सैकड़ों रुपये श्रीमहाराजजी तथा उनके सेवकों की सेवा में खर्च कर डालता। उसने बाँध पर भी अपने लिये एक अलग पक्की कुटी बनवायी थी। वह बाँध की सभी कुटियों में बढ़िया थी। किन्तु बनने के बाद वह उसमें सम्भवतः एक दिन भी नहीं रहा। उसमें सर्वदा अच्छे-अच्छे सन्त ही ठहरते रहे। इस सन्तसेवा के कारण ही उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि साक्षात् श्रीमहाराजजी के सामने ही उसकी मृत्यु हुई। ऐसा सुयोग तो किसी विरले सौभाग्यशाली का ही प्राप्त होता है।

'साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलितो तीर्थः सद्यः साधुसमागमः॥'

अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि निरञ्जन ने श्रीधामवृन्दावन में साक्षात् भगवत्स्वरूप श्रीमहाराजजी के समक्ष भगवन्नाम लेते हुए देह त्यागकर प्रभु का परमधाम ही प्राप्त कर लिया।

माघ मास में निरञ्जन की मृत्यु हुई। इसके पश्चात् फाल्गुन में होली का उत्सव भी बड़ी धूम-धाम से यहीं हुआ पूज्य श्रीबाबा तो हम लोगों के आने के पहले से ही यहाँ विराजमान थे। उत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ। इस समय पंजाब से एक नाटक-मण्डली आयी हुई थी। उसने कई भक्तचरित्रों के सुन्दर अभिनय किये। प्रातःकाल साढ़े आठ से ग्यारह बजे तक पण्डित चेतराम की मंडली द्वारा श्रीगौरांग-लीलाएँ होती रहीं तथा मध्याह्नोत्तर अनेकों कथाएँ और

प्रवचन होते थे। इस समय कथावाचकों में प्रधानवक्ता थे स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती। आप तो सन्यास लेने के पश्चात् अधिकतर पूज्य बाबा की ही सन्निधि में रहते हैं। आपकी प्रवचन तथा व्याख्यान शैली बड़ी ही सरस, सरल, सुबोध और सारगर्भित होती है। जिस समय आप विशुद्ध साहित्यिक भाषा में श्रीमद्‌भागवत की कथा कहते हैं उस समय अच्छे-अच्छे पण्डित और साहित्यरसिक भी मुग्ध हो जाते हैं। आपकी कथा में एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि आप प्रसंगानुसार भक्ति और ज्ञान दोनों ही सिद्धान्तों का ठीक उनकी साम्प्रदायिक पद्धति के अनुसार ही निरूपण करते हैं। भक्ति का निरूपण करते समय आप पक्के वैष्णव और ज्ञानका प्रतिपादन करते समय पक्के वेदान्ती जान पड़ते हैं। जहाँ-जहाँ पूज्य बाबा की उपस्थिति रहती है वहाँ-वहाँ आपकी कथा प्राय: होती ही रहती है। दूसरे कथावाचक थे अद्वैतवंशावतंस प्रभुपाद गोस्वामी गौरगोपालजी। आपका श्रीमद्‌भागवत का प्रवचन भी बड़ा ही हृदयग्राही होता है। श्रीकृष्णाश्रम में आपकी कथा भी प्राय: होती रहती है। किन्तु अब तो आप कुछ विशिष्ट कारणों से श्रीवृन्दावन छोड़कर कलकत्ता में रहने लगे हैं। व्याख्यानदाताओं में प्रधानत: श्रीवृन्दावनधाम के अनेकों गोस्वामी स्वरूप थे। उनके अतिरिक्त एक व्याख्यानदाता थे हमारे स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूत, आपका वेदान्त विषय पर बड़ा मार्मिक उपदेश होता था।

इस प्रकार यह उत्सव भी बड़े समारोहसे हुआ। इसके आरम्भ होने से पहले ही हमारे महाराजजी को कल्याण सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्‌दार का एक निमन्त्रण मिला था। उन्होंने ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी की प्रेरणा से अपने जन्मस्थान रतनगढ़ (बीकानेर) में एक उत्सव की योजना की थी। उसमें पधारने के लिये आपको भी आमन्त्रित किया गया था। आप अधिकतर तो कहीं बाहर के उत्सवों में जाना पसन्द नहीं करते, किन्तु श्रीपोद्दारजी से तो आपका हार्दिक स्नेह था और श्रीब्रह्मचारीजी तो सर्वथा अपने ही थे। इसलिए इस उत्सव को आपने अपना ही मान लिया और उनकी कोई प्रेरणा न होने पर भी आपने श्रीरामनरसिंह हरलालकासे, जो पहले कल्याण के प्रबन्धक रह चुके थे और
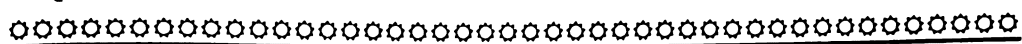
इस समय कुछ दिनों से वृन्दावन में ही रहते थे, कहा, पोद्दारजी को लिख दो हम सौ कीर्तनकारों को लेकर आयेंगे और हमारे साथ रासलीला मण्डली और चैतन्यलीला मण्डली भी आयेंगी। तथा हम सबके जाने के लिये रेल के डिब्बे रिजर्व करा लो।' बस, श्रीपोद्दारजी को सूचना दे दी गयी। आपकी ऐसी आत्मीयता देखकर वे तो मुग्ध हो गये।

रतनगढ़ का उत्सव होली से ही आरम्भ होने वाला था। किन्तु आपको होली का उत्सव तो वृन्दावन में ही करना था। इसलिये यह निश्चय हुआ कि उसके बाद ही यहाँ से चल देंगे। होली के दो-तीन दिन पहले बात का निर्णय करने के लिये पोद्दारजी ने रतनगढ़ से मुनिलालजी को भेजा और इधर झूसी से रतनगढ़ जाते हुए ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी भी आ गये। आपको उन दिनों जो पंजाबी नाटक मण्डली आयी हुई थी उसकी लीलाएँ बहुत पसन्द थीं। अतः आपका विचार उसे भी ले जाने का था। परन्तु उधर बीकानेर के महाराज सर गंगासिंहजी की मृत्यु हो चुकी थी। अतः नाटकादि रियासत में नहीं हो सकते थे। इसलिये वह विचार तो स्थगित करना पड़ा। रतनगढ़ कर्मचारियों की रुचि कुछ चैतन्य लीला के भी पक्ष में कम ही थी। इधर कुछ मारवाड़ी सज्जन रासमण्डली के विषय में आपको तरह-तरह की सलाहें देते थे। इससे आपका चित्त कुछ उदासीन हो गया और अपने त्रयोदशी के दिन रामनरसिंहजी से कह दिया कि तुम पोद्दारजी को तार दे दो वे प्रसन्नता से उत्सव करें, मेरा विचार वहाँ आने का नहीं रहा है। इससे वृन्दावन और रतनगढ़ दोनों ही जगह बड़ी खलबली पड़ गयी। मुनिलालजी ने तो अनशन ही कर दिया। रतनगढ़ से भी एक ही दिन में तीन-चार तार आ गये। तब आपने अन्तिम निर्णय बाबा पर छोड़ दिया। उन्होंने कहा, 'जब एक बार वहाँ जाने का निर्णय हो चुका है तो हरिबाबाजी की बात तो पत्थर की लकीर है, उसमें अन्तर क्यों आना चाहिये? अतः उनका वहाँ जाना ही ठीक होगा।' बस, अन्त में जाना ही निश्चित रहा। डिब्बे तो रिजर्व हो ही चुके थे। और सब प्रकार का मार्ग का प्रबन्ध भी श्रीरामनरसिंहजी को ही सौंप दिया गया तथा मुनिलालजी रतनगढ़ चले गये।

रतनगढ़ का उत्सव

बस, होली का उत्सव समाप्त होने के दूसरे ही दिन आपने मुझे रतनगढ़ भेज दिया और उसके अगले दिन चैत्र कृष्णा २ को परिकर सहित आपने भी प्रस्थान कर दिया। आपके साथ ही स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती, स्वामी कृष्णानन्दजी अवधूत ब्रह्मचारी श्रीप्रेमानन्दजी भी चले। आपके लिए बी.बी.सी. आई. रेलवे के डिब्बे रिजर्व कराये गये थे, जिससे फिर कहीं बदलने की आवश्यकता न हो। अत: आप बाँदीकुई होकर रेवाड़ी पहुँचे। यहाँ श्रीरामनरसिंहजी तथा उनके ससुर भक्त नन्दकिशोरजी मोरपङ्खवालों ने भक्ति आश्रम में आपके स्वागत का प्रबन्ध किया था। यहाँ आपकी गाड़ी रात में ही पहुँच गयी थी और बीकानेर की गाड़ी सायंकाल में जाने वाली थी। अत: सब लोगों को भक्तिआश्रम में ले जाया गया। वहाँ आश्रम की ओर से सबका आतिथ्य सत्कार हुआ था तथा रासलीला भी करायी गयी। स्वामी श्रीपरमानन्दजी का यह विशाल आश्रम लोकसेवा का बड़ा उपयोगी काम कर रहा है। इसके द्वारा प्रतिवर्ष जगह-जगह चक्षुदान यज्ञ कराये जाते हैं, जिसमें अनेका नेत्रहीन पुत्रहीन पुरुषों के नेत्र बनाये जाते हैं तथा और भी कुछ रोगों की अचूक दवाएँ दी जाती हैं। इसके सिवा इस आश्रम में एक ब्रह्मचर्याश्रम एक महिलाश्रम और एक गौशाला भी है। वहाँ की गौशाला की आप बड़ी प्रशंसा करते थे।

इस प्रकार तृतीया को तो आप रेवाड़ी भक्ति आश्रम में रहे। उसके दूसरे दिन सवेरे ही रतनगढ़ पहुँचे। इससे पहले चूरू स्टेशन पर आपका भक्तराज श्रीजयदयालजी गोयन्दका ने स्वागत किया वहाँ स्टेशन पर ही सबके साथ मिलकर आपने प्रभाती कीर्तन किया। इधर रतनगढ़ में यह निश्चय हो चुका था कि रासस्वरूपों की सवारी निकाली जायगी अत: यहाँ वे तथा और भी बहुत से लोग नित्यकृत्य से निवृत्त हुए और फिर वहाँ से रतनगढ़ तक रेल के डिब्बे में ही उनका श्रृंगार किया गया।
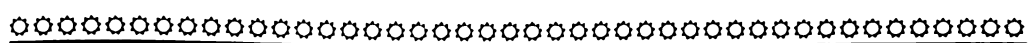
जिस समय गाड़ी रतनगढ़ स्टेशन पर पहुँची उस समय वहाँ का बड़ा ही विचित्र दृश्य था। स्वागत की ऐसी धूम तो बहुत कम देखी गयी थी। स्टेशन पर हजारों आदमी उपस्थित थे। उनमें से अनेकों पुष्प या पुष्पमालाएँ लिये हुए थे। ब्रह्मचारी कीर्तनमण्डली के साथ आपका स्वागतकर रहे थे। श्रीपोद्दारजी की तो अद्भुत अवस्था थी। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम के वन से अयोध्या पधारने पर जो अवस्था भरतलालजी की थी वैसी ही आज श्रीभाईजी (पोद्दारजी) की जान पड़ती थी। उस दिन तो स्टेशन पर अद्भुत उत्साह, अपूर्व उल्लास देखा गया। एक बहुत बढ़िया बैण्ड बाजा मधुरध्वनि से स्वागतगान कर रहा था। गाड़ी स्टेशन पर पहुँचते ही श्रीभगवन्नामघोष और जयघोष से आकाश गूँज उठा। अनेकों माला और पुष्पवृष्टि से सबका सत्कार हुआ। श्रीरासविहारी को राजा-महाराजाओं की तरह सवारी से ले जाना था। अतः एक ठेले पर बड़ा ही सुन्दर सिंहासन सजाया गया था। उस पर स्वरूपों को बिठाकर फिर आप से भी उसी पर बैठने की प्रार्थना की गई। किन्तु आपने स्वीकार नहीं किया। वृन्दावन के बाबा रघुनाथदासजी इसी गाड़ी से रतनगढ़ पहुँच गये। जब भाईजी ने बहुत आग्रह किया तो महाराजजी ने कहा, अच्छा, रघुनाथदासजी को बैठा दो।' जब उनसे प्रार्थना की गई तो उन्होंने ठाकुरजी के आगे कीर्तन करते हुए चलने की इच्छा प्रकट की। आप भी ऐसा ही करना चाहते थे। किन्तु मैंने देखा कि आपको यात्रा की थकान है। अतः यहाँ मरुभूमि में दो मील तक तुमुल कीर्तन करते हुए चलने से आप थक जायँगे। बस, मैंने एक युक्ति सोची। मैं भाईजी से बोला, आप महाराजजी को एक चँवर दे दें और यह प्रार्थना करें कि आप भगवान् के पीछे उनकी सवारी में खड़े होकर चँवर करते रहें।

तब श्रीभाईजी के विशेष आग्रह से आपने यह बात स्वीकार कर ली। आप उसी सवारी में चँवर करते हुए खड़े रहे और बाबा रघुनाथदासजी के साथ हम सब लोग कीर्तन करते उसके आगे-आगे चले। हमारे साथ ही रतनगढ़ की कीर्तनमण्डली भी मिल गयी। इस जुलूस में सबसे आगे बैण्ड बाजा था। उसके पीछे ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी एक झण्डा लिये ऊँट पर चढ़े हुए थे, किन्तु आपने

मुँह पीछे की ओर श्रीभगवान् के सम्मुख किया हुआ था। उसके पीछे एक बालाकों की और फिर प्रयाग के कुछ बंगालियों की कीर्तनमण्डलियाँ थीं। उनके बाद श्रीरासबिहारी की सवारी और उसके आगे हम सब लोग थे। इस प्रकार सब लोग बड़ी धूमधाम से कीर्तन करते चले। उस समय तो ठीक ऐसा जान पड़ता था-

'जनु आनन्द समुद्र दुइ मिले विहाय सुवेल।'

हमारे बाबा रघुनाथदासजी तो बड़े ही मस्ताने महात्मा हैं। इस समय वे आनन्दविभोर होकर साक्षात् श्रीमहावीरजी की-सी चेष्टाएँ कर रहे थे। कभी प्रेमोन्मत्त होकर उछलने लगते, कभी अनेकों प्रकार के संकेत करते श्रीठाकुरजी की ओर बढ़ जाते तथा तरह तरह से नृत्य करने लगते। आप बालब्रह्मचारी और नियमित व्यायामशील हैं अतः वृद्धावस्था होने पर भी आपका दिव्य कलेवर अत्यन्त ओज, तेज एवं लावण्य से पूर्ण है। इस पर भी इस समय आपको प्रेमावेशवश अश्रु-पुलक, कम्प आदि अनेकों सात्त्विक विकारों का उन्मेष हो रहा था। आप अत्यन्त सुमधुर कण्ठ से भगवन्नामकीर्तन करते हुए अपने अलौकिक दर्शनों से समस्त रतनगढ़ निवासियों का आश्चर्य समुद्र में डुबो रहे थे।

इस प्रकार बड़े आनन्द से धीरे-धीरे कीर्तन करते प्रायः एक घण्टे में शहर में पहुँचे। आगे-आगे छिड़काव किया जा रहा था। मरुभूमि में तो स्वभावतः जल का अकाल-सा ही रहता है, फिर भी श्रीभाईजी के सुप्रबन्ध से आज सड़कें जल से भीग रही थीं। साथ ही नागरिकों वक्षस्थल भी प्रेमाश्रुओं से सिञ्चित हो रहे थे। मार्ग में स्थान-स्थान पर श्रीभगवान् को भोग समर्पण किया गया तथा उनकी आरती और स्तोत्र-पाठ भी हुआ। इस प्रकार भक्ति, भक्त, भगवन्त और गुरुदेव के इस अलौकिक सम्मेलन को देखकर सभी लोग मुग्ध हो गये, सभी को बड़े अनूठे और अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। उस समय तो श्रीगोस्वामीजी की यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ हो गयी -

'जनु मरुभूमि कल्पतरु जामा।'

बस, सब नगरवासियों को दर्शनानन्द देती यह सवारी मण्डप में पहुँची। वहाँ श्रीरासविहारी को पण्डाल में बिठाकर श्रीमहाराजजी ने स्वयं घण्टा बजाते

हुए समष्टि कीर्तन किया। उस समय के आनन्द का वर्णन करना इस जड़ लेखनी की शक्ति से बाहर है। उस समय तो अपने दिव्य तुमुल कीर्तन से आपने सभी को मुग्ध कर दिया।

इसके पश्चात् सब लोगों के ठहराने की यथायोग्य व्यवस्था की गयी। इसके लिये स्थानों का वर्गीकरण तो पहले ही कर लिया गया था। इसी उद्देश्य से मुझे एक दिन पहले भेजा गया था। श्रीमहाराजजी को तापड़ियों के नौहरे में उतारा गया। श्रीअवधूतजी और ब्रह्मचारी प्रेमानन्दजी एक बगीचे में ठहराये गये। रासमण्डली और सम्पूर्ण भक्तमण्डल तापड़िया की धर्मशाला और गनेड़ीवालों के नौहरे में ठहराये गये। बाबा रघुनाथदासजी अपने परिकर सहित अजीतसरियाओं की हवेली में उतरे। यहाँ के प्रधान प्रबन्धक तो भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार ही थे। उनके साथ सम्पूर्ण कल्याण-परिवार और नगर के कई प्रमुख सज्जन भी लगे हुए थे। उनमें श्रीब्रह्मानन्दजी अजीतसरिया और श्रीघनश्यामदासजी तापड़िया प्रधान थे। अजीतसरियाजी के अधीन भोजन भण्डार की सारी व्यवस्था थी और तापड़ियाजी के जिम्मे प्रधानतया लीला के रंगमञ्च तैयार करना तथा वहाँ की व्यवस्था करना था।

यहाँ का प्रबन्ध बड़ा ही अद्भुत था। हमने तो सुन रखा था कि मारवाड़ में जल का बहुत कष्ट होता है। परन्तु यहाँ तो विलकुल इसके विपरीत ही देखा। हम लोग कई बड़े-बड़े मकानों में ठहरे हुए थे। प्रत्येक स्थान पर वहाँ के ठहरने वालों के लिये वहीं रसोई घर का प्रबन्ध किया गया था। हर समय बढ़िया से बढ़िया कच्चा-पक्का भोजन दूध, फल, मेवा, मिठाई और चाय तैयार रहते थे। जिसे जिस चीज की आवश्यकता हो वही यथेच्छ मिल सकती थी। पानी की बड़ी-बड़ी तांवे और पीतल की नांदे हर समय भरी रहती थीं और उनमें पचासों स्त्री-पुरुष हर समय बड़े-बड़े कलशों द्वारा दूर-दूर से जल लाकर डालते रहते थे। प्रत्येक निवास-स्थान पर दो-चार आदमी हर समय हर प्रकार की सेवा के लिये उपस्थित रहते थे। नहाने तथा कपड़े धोने के साबुन भी सब जगह रखे रहते थे। इस प्रकार उन लोगों ने तो हमारे सामने अतिथि सत्कार का एक उत्कृष्ट

आदर्श ही उपस्थित कर दिया था। वहाँ सेवा करने वाले प्राय: लक्षाधीश पुरुष ही थे। वे और उनके छोटे-बड़े बच्चे सभी बड़े उत्साह से सारा काम करते थे। उनके व्यवहार में बड़ी ही श्रद्धा, प्रेम, विनय और शिष्टता थी। हम लोगों के सिवा उस प्रान्त के भी प्राय: सात सौ आदमी एकत्रित हो गये थे। उनका भी भोजनादि से उचित सत्कार किया जाता था।

रतनगढ़ मारवाड़ प्रदेश का एक प्रधान नगर है। उसमें अनेकों लखपति और करोड़पति हैं। वहाँ के मकान प्राचीन शैली के और विचित्र चित्रकारी से युक्त हैं। बड़े विशाल और भव्य भवन हैं। किन्तु सड़कों पर केवल बालू ही बालू है। अत: सवारी के लिये वहाँ ऊँट और ऊँटों के ताँगे ही हैं। भाई हुनमानप्रसादजी तो लोकप्रसिद्ध उदारात्मा हैं। वहाँ के सभी लोगों का आपके प्रति आन्तरिक स्नेह और श्रद्धा है। अत: आपके संकेत पर सभी लोग बड़ी तत्परता से सब काम कर रहे थे। रुपये की तो वहाँ कोई कमी थी ही नहीं, साथ ही उन लोगों की श्रद्धा भी अपूर्व थी, तथापि हमारे महाराजजी ने तो उनसे मार्ग-व्यय भी नहीं लिया। भाई मुनिलालजी के कहने से मैं दो रसोइया और चार कहार उनके लिये ले गया था। उनका वेतन और मार्ग-व्यय उन्होंने मुझे दिया तो सुनने पर श्रीमहाराजजी मुझसे नाराज हुए और बोले, 'जब मैंने तुमसे मनाकर दिया था तो तुमने उनसे खर्च क्यों लिया?' तब मुनिलालजी के यह कहने पर कि ये लोग मैंने अलग बुलाये थे तब आप शान्त हुए। उनका विचार सब लोगों को यथायोग्य वस्त्र और द्रव्यादि भेंट करने का भी था। परन्तु आपने वह भी अस्वीकार कर दिया। यहाँ तक कि सीताराम बाबा को एक जोड़ा जूता भी नहीं लेने दिया। फिर भी उनका आतिथ्य आदर्श था तथा उन्होंने रासवालों और बाहर से आये हुये विद्वान् व्याख्याता एवं कीर्तनकारों का दानमान से अच्छा सत्कार किया।

उत्सव के प्रोग्राम में सबसे पहला कार्य तो था श्रीरामचरित मानस के एक सौ आठ नवाह्न पारायणों का। इसमें एक सौ आठ पण्डित तो वरण करके नियुक्त किये गये थे। किन्तु साथ ही अनेकों स्त्री-पुरुष भी अपनी-अपनी पोथी लेकर उसमें सहयोग देते थे। वह भी बड़ा ही अद्‌भुत समागम था। इस प्रकार

प्रातःकाल ५ से ८ बजे तक बड़ी धूमधाम से पाठ होता था। फिर साढ़े आठ से ग्यारह बजे तक रासलीला होती थी। पण्डित चेतरामजी की मण्डली थी। लीलाएँ बड़ी ही अपूर्व हुईं।

इसके पश्चात् भोजन एवं विश्राम के अनन्तर २ से ६ बजे तक कथा एवं प्रवचन होते थे। इनका प्रोग्राम श्रीमहाराजजी की सलाह से ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी बनाते थे। प्राय: नित्य ही सबसे पहले बाबा रामदासजी ग्वालियर वालों के शिष्य रामजीमहाराज श्रीरामचरितमान की कथा कहते थे। उनके पश्चात् अनेकों वक्ताओं के उपदेश एवं बीच-बीच में पदगायन होते थे। वक्ताओं में प्रधान थे बाबा रघुनाथदासजी, आचार्य चक्रपाणिजी स्वामी, श्री अखण्डानन्दजी सरस्वती, अवधूत श्रीकृष्णानन्दजी और हनुमानप्रसादजी पोद्दार। कभी-कभी श्रीजयदयालजी गोयन्दका, कविरत्न पं. राधेश्यामजी, पं. रामानन्दजी दिल्ली वाले और पण्डित लक्ष्मणनारायणजी गर्दे के भाषण हुए। इनके सिवा वहाँ और भी अनेकों सन्त, भक्त, विरक्त और विद्वान महानुभाव पधारे थे। उस समय तो रतनगढ़ सचमुच आध्यात्मिक जगत् के अनेकों देदीप्यमान रत्नों का भण्डार बन गया था, भाईजी के उत्साहपूर्ण हृदय से यह ज्ञान, कर्म और भक्ति रूप त्रिवेणी की दिव्य धारा प्रवाहित होकर सभी को आनन्द प्रदान कर रही थी। इस सन्तसमाज रूप प्रयागराज में स्नान करके सहस्त्रों नर-नारी कृतकृत्य हो गये । यह तो ठीक वैसी ही बात हुई जैसा कि श्रीगोस्वामीजी ने कहा है-

'जनु सिंहलवासिन्ह भयउ, विधिवश सुलभ प्रयाग ।'

रात्रि के समय मण्डप में तो एक महाराष्ट्रदेशीय कीर्तनकार का कीर्तन होता था, किन्तु एक दूसरे स्थान पर श्रीगौरांगलीला होती थी। इसके लिये बड़ा सुन्दर मञ्च बनाया गया था। इसमें आरम्भ में तो बहुत गोलमाल रहा। दर्शनों में अधिकतर लोग बहिर्मुख थे तथा रात्रि में भीड़ भी अधिक हो जाती इस लिये बहुत गड़बड़ रहती थी। कुछ पण्डितों ने श्रीमहाप्रभुजी की भगवत्ता में आस्था न होने के कारण पोद्दारजी को पत्र लिखकर अपना विरोध भी प्रकट किया। इससे पोद्दारजी को यह भी भय हुआ कि कहीं से ये लोग कोई उपद्रव खड़ा

न कर दें। इसलिये उन्होंने एक विनीत पत्र लिखकर मुनिलालजी को श्रीमहाराजजी के पास भेजा। उसमें प्रार्थना की गयी थी कि मुझे तो श्रीगौर लीलाओं के होने में किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं है, किन्तु यहाँ कुछ लोग बहुत रोष प्रदर्शित कर रहे हैं। उनकी मनोवृत्ति को देखते हुए मुझे भय है कि वे किसी समय मञ्च पर ही किसी प्रकार से लीला का अपमान न कर दें। इसलिये प्रार्थना है कि रात्रि के समय भी चैतन्यलीला के स्थान पर श्रीरासलीला ही की जाय। श्रीमहाराजजी ने पत्र सुनकर मुनिलालजी से बड़ी गम्भीरता से कहा, 'भैया ! पोद्दारजी से कहना वे ऐसी कोई आशंका न करें। यह सब हमारे संकल्प की ही कमजोरी है। भला, विरोध करने वाले क्या हमसे कोई अलग है। वे भी अपनी आत्मा ही तो हैं। यदि हमारा संकल्प शुद्ध हो तो उनके हृदय निश्चय बदल जायेंगे। देखो, श्रीनवद्वीपधाम में तो सब श्रीकृष्णोपासक ही हैं, किन्तु जिस समय वहाँ श्रीविष्णुदिगम्बरजी गये थे सारा नवद्वीप 'रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीता राम' की ध्वनि से गूँज उठा था। इस प्रकार यदि हमारी निष्ठा ठीक हो तो हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, प्रेमानन्दजी ने यह लीला बड़ी लगन से लिखी है। उन्होंने भजन छोड़कर इसे लिखा और सिखाया है। उनका ऐसा उत्साह देखकर इसमें रचना सम्बन्धी कई त्रुटियाँ होने पर भी मैंने आज तक कभी उनसे कोई संशोधन करने को नहीं कहा। अतः तुक कोई चिन्ता मत करो किसी को अपना विरोधी मत समझो, भगवान् सब प्रकार मंगल करेंगे।' बस, इन शब्दों से श्रीभाईजी का समाधान हो गया और सचमुच उसके बाद किसी प्रकार का कोई विरोध या गोलमाल भी नहीं हुआ। लोगों ने बड़े प्रेम से लीलादर्शन किया।

इस प्रकार पन्द्रह दिन तक यह उत्सव बड़े ही आनन्द और उत्साह से हुआ। जिस समय सन्तजन वहाँ से विदा हुए नागरिकों की विचित्र अवस्था हो गई। सभी प्रेम से विह्वल हो गये। हमारे भाईजी का गम्भीर हृदय भी उस समय उथल-पुथल हो गया। उनके नेत्रों से अश्रुवर्षण होने लगा तथा वाणी गद्गद् हो गई। जिस समय वे हमारे महाराजजी से विदा हो रहे थे उस समय का दृश्य तो अपूर्व ही था।

बस, गाड़ी ने सीटी दे दी और हम लोग सबसे प्रेमाभिवादन करते हुए, वहाँ से विदा हो गये। चुरू में स्टेशन पर ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम वालों ने हमारा बड़ा सत्कार किया। वे लोग भोजन दूध और जल आदि लिये खड़े थे। यह व्यवस्था श्रीपोद्दारजी की प्रेरणा से ही हुई थी। ऋषिकुल के प्रायः सभी ब्रह्मचारी पीताम्बर धारण किये उपस्थित थे। उन्होंने श्रीमहाराजजी को सादर प्रणाम किया तथा सब लोगों को गाड़ी से उतारकर प्लेटफार्म पर बिठाया। फिर सब ब्रह्मचारियों ने एक स्वर से पुरुषसूक्त का पाठ किया तथा और भी कुछ स्तोत्र सुनाये। अन्त में श्रीमहाराजजी ने सबको अपने हाथ से प्रसाद दिया। वह दृश्य भी अपूर्व ही था।

बस, गाड़ी वहाँ से चली और दूसरे दिन प्रातःकाल दस बजे यह जंगमप्रयागराज दिल्ली पहुँच गया। वहाँ आप केवल एक दिन ही रुके और फिर बाँध पर आ गये।

मुजफ्फरनगर का उत्सव

बाँध से दूसरे दिन ही आप भिरावटी आ गये। यहाँ बहादुरसिंह के घर पर सबका भोजन हुआ। आपने स्वयं सबको भोजन परोसा। उस समय का दृश्य साक्षात् श्रीश्यामसुन्दर के वनभोजन का-सा था। आप बड़े खिलवाड़ में पड़ गये। सब लोगों से बोले, 'भाइयो ! यह दिव्य भोजन है। साक्षात् गोलोक-धाम से आया है इसको बड़े प्रेम से पाओ, तुम्हारे सब पाप-ताप दूर हो जायेंगे तथा तुम्हें श्रीश्यामसुन्दर का साक्षात्कार होगा।' जब भोजन परोसा गया तो सब लोगों ने आपको बीच में बिठाया और अपने-अपने हाथ से आपको भोजन कराया। फिर आपकी आज्ञा होने पर सब भोजन करने लगे और आपने परोसना आरम्भ किया। खूब आमोद-प्रमोद हुआ। आप खूब हँसने-हँसाने और बड़े आग्रह से

भोजन कराने लगे। उस दिन सचमुच ही आपने हमारे आगे दोगुना-चारगुना भोजन परोस दिया था और वह सभी हमें खाना पड़ा। किन्तु उससे हमें किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ, प्रत्युत शरीर में हल्कापन और चित्त में विशेष आनन्द की ही स्फूर्ति हुई।

फिर आप वहाँ से अनूपशहर गये तथा गंगा किनारे भगवानपुर तक घूमकर फिर वहीं लौट आये। फिर कुछ दिन अनूपशहर में सत्संग होता रहा, इतने ही में मुजफ्फनगर के कुछ भक्तों को लेकर वहाँ ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी आये। उन्होनें मुजफ्फरनगर में एक उत्सव की योजना की थी। उसमें परिकर सहित पधारने के लिए उन्होंने आपसे प्रार्थन की। आपने वहाँ जाना स्वीकार कर लिया और बाँधपर मेरे पास खबर भेजी कि वहाँ के सभी प्रमुख भक्त और प्राय: सौ कीर्तन करने वालों को लेकर अनूपशहर आ जाओ। मैंने पण्डित हरियशजी तथा और दो-चार प्रमुख भक्तों को बुलाकर सबको सूचना दे दी। बस, सब लोग निर्दिष्ट तिथि पर अनूपशहर पहुँच गये। वहाँ आपके लिये कार का तथा और सबके लिये लारियों का प्रबन्ध था। अत: हम बड़े आराम से मुजफ्फरनगर पहुँच गये और यथास्थान ठहरा दिये गये।

इस उत्सव की योजना ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी की अध्यक्षता में वहाँ के सिविलसर्जन के उद्योग से हुई थी। यहाँ एक यज्ञमण्डप में कुछ विद्वानों के द्वारा श्रीविष्णुयज्ञ का भी आयोजन कराया गया था तथा एक पक्के संकीर्तन भवन में वही के नागरिकों द्वारा एक महीने से अखण्डकीर्तन हो रहा था। इसमें हर समय सैकड़ों भक्त बड़ी धूमधाम से 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' इस महामन्त्र का कीर्तन कर रहे थे। कीर्तन में यहाँ के लोगों का उत्साह सराहनीय था। एक दूसरे मण्डप में एक सौ आठ विद्यार्थियों के द्वारा श्रीरामचरितमानस के एक सौ आठ नवान्ह पाठों की व्यवस्था की गई थी। ये लोग 'मंगलभवन अमंगलहारी, द्रवहु सो दशरथ अजिर विहारी' यह सम्पुट लगाकर बाजे-गाजे के साथ बड़ी धूम-धाम से पाठ कर रहे थे। इस सबसे थोड़ी दूरी पर एक बहुत बड़ा पण्डाल बनाया गया था, उसमें कथा,

व्याख्यान और पदगायन का प्रोग्राम चलता था तथा उसी में रासलीला भी होती थी। यहाँ भी अनेकों उच्चकोटि के कथावाचक और व्याख्यानविशारद पधारे थे। रतनगढ़ से भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार और ऋषिकेश से भक्त श्रीजयदयालजी गोयन्दका भी कुछ दिनों के लिये आये थे।

यहाँ का कार्यक्रम भी हमारे यहाँ के उत्सवों की तरह ही था। प्रातःकाल चार पाँच बजे तक हमारे श्रीमहाराजजी समष्टि कीर्तन कराते थे। फिर ८ से ११ बजे तक रासलीला होती थी और उसके पीछे कुछ देर श्रीमहाराजजी समष्टि कीर्तन कराते थे। तदनन्तर भोजन एवं विश्राम के पश्चात् २ से ६ बजे तक कथा एवं व्याख्यानादि होते थे। सायंकाल ७ से ८ बजे तक पुनः समष्टि संकीर्तन होता था और फिर रात्रि में ८ से १० बजे तक कथा एवं व्याख्यानादि होते थे। इसी बीच में आप समय निकालकर दस-बीस मिनट के लिये श्रीरामायणजी के पाठ और विष्णुयाग के मण्डपों मे भी जाते थे। इस प्रकार यह उत्सव भी बड़े समारोह का हुआ। इसका प्रोग्राम तो एक महीना रहा था, किन्तु आप तो इसके अन्तिम सप्ताह में गये थे और इसी सप्ताह में इसमें विशेष धूमधाम भी रही थी।

आतिथ्य का प्रबन्ध यहाँ भी बहुत सुन्दर रहा तथा यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों का दक्षिणा एवं भोजन-वस्त्रादि से भी खूब सत्कार किया गया। उत्सव समाप्त होने पर ब्रह्मचारीजी का ऐसा विचार हुआ कि यहाँ से चलकर परीक्षितगढ़ में शुकताल पर गंगाकिनारे एक भागवत का सप्ताहयज्ञ किया जाय। अतः आपने और सबको तो विदा कर दिया केवल दो-चार आदमियों को लेकर वहाँ गये। यह सप्ताहयज्ञ भी बड़े समारोह का हुआ।

इसके पश्चात् आप ब्रह्मचारीजी के साथ देहरादून के पास सहस्र धारा चले गये। वहाँ भी एक सप्ताह पारायण हुआ। वहाँ से केवल एक दिन के लिये श्री माँ आनन्दमयी के रायपुरआश्रम में गये और फिर डलहौजी (पंजाब) चले गये। वहाँ प्रायः दो मास रहे। अब गुरुपूर्णिमा आ गई थी और हमें आप का कोई निश्चितरूप से पता नहीं था। इसलिये सब लोग बहुत व्याकुल हुए। पीछे जब पता लगा तो बाँध प्रान्त के कुछ लोग डलहौजी गये। किन्तु आप वहाँ से

होशियारपुर के लिये चल दिये, दैवयोग से रास्ते में बाँध वालों से आपकी भेंट हो गयी। अतः वे सब भी आपके साथ ही होशियारपुर पहुँच गये और वहीं गुरुपूर्णिमा का उत्सव हुआ। किन्तु शिवपुरी के लोग वहाँ नहीं पहुँच सकें।

कुछ दिन होशियारपुर में रहकर आप दिल्ली चले आये। उस समय आपका स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ था। अतः इर्विन अस्पताल के डॉक्टर हंसराजजी बहुत आग्रह करके आपको अपने क्वाटर पर ले आये। आपने सभी को विदा कर दिया, केवल ठाकुर गुलाबसिंह के साले प्रेमबाबू को अपने पास रहने दिया। डॉक्टर हंसराज अपनी धुनके आदमी हैं ये बड़े ही सदाचारी, संयमी, उदारात्मा और स्पष्टवक्ता हैं। ऊपर से इनका व्यवहार कुछ रूक्षसा दीख पड़ेगा। किन्तु इनके हृदय में दूसरों के लिये बड़ा सहानुभूति का भाव रहता है। साधु-सन्तों के तो मानों ये गृह-चिकित्सक (Home Surgeon) हैं। उनकी तो अनिच्छा होने पर भी ये जबरदस्ती चिकित्सा एवं सेवा करते हैं। श्रीमहाराजजी को इन्होंने को इन्होंने विशेष औषधि नहीं दी। केवल आहार-विहार के परिवर्तन से ही स्वस्थ बना दिया। आप श्रीमहाराजजी को साथ ही भोजन कराते थे और साथ ही घूमने के लिये ले जाते थे। केवल उन्हीं अवसरों पर दोनों की बात भी होती थी।

यहाँ महाराजजी प्रायः तीन मास रहे। उनके क्वाटर पर ही दोनों समय कथा-कीर्तन करते थे। उस समय दिल्ली के पं. ज्योतिप्रसादजी, पण्डित रामानन्दजी, लाला आत्मारामजी खेमका तथा श्रीविपिनचन्द्र मिश्र आदि कुछ सत्संगी नियमित रूप से पहुँच जाते थे। अतः उन दिनों तो इर्विन अस्पताल शारीरिक रोगों का ही नहीं भवरोगों का भी चिकित्सालय बन गया था। डॉक्टर हंसराजजी की सेवा वास्तव में आदर्श थी। उनका भाव अत्यन्त सरल और स्पष्ट था, उसमें कृत्रिमत्ता का लेश भी नहीं था। इस प्रकार तीन मास वहाँ रहकर आप वृन्दावन आ गये।
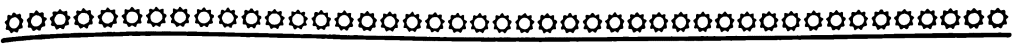
उत्सव और श्रीवृन्दावन परिक्रमा

सन् १९४४ के माघ मास में श्रीकरपात्रीजी महाराजजी ने दिल्ली में एक बहुत बड़ा यज्ञ किया था। ऐसा यज्ञ भारतवर्ष में सैकड़ों वर्षों नहीं हुआ। उसमें सौ यज्ञकुण्ड थे, प्राय: एक हजार याजक थे और लगभग दस लाख रुपया व्यय हुआ था। इस यज्ञ में कुछ दिनों के लिये हमारे श्रीमहाराजजी और माँ श्रीआनन्दमयी के साथ ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी भी पधारे थे। उस वृहत् आयोजन को देखकर श्रीब्रह्मचारीजी का विचार ऐसा हुआ कि इसी प्रकार का एक महान् सम्मेलन सारे भारतवर्ष के संकीर्तन-प्रेमियों का भी किया जाय। इस उद्देश्य से उन्होंने श्रीमहाराजजी तथा कल्याण सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार से भी बात की। ये दोनों महानुभाव सहमत हो गये और श्रीवृन्दावन में यह महोत्सव करना निश्चित हुआ। ब्रह्मचारीजी ने जहाँ तहाँ इसकी सूचना भेज दी और इसके लिये तैयारी करना भी आरम्भ कर दिया। किन्तु जब यह प्रस्ताव पूज्य बाबा के आगे रखा गया तो उन्होंने इसे स्वीकार न किया। श्रीवृन्दावन में बाबा का आश्रम था और यहाँ उत्सव होने से उसका भार अधिकतर उन्हीं पर पड़ता। अत: उन्होंने कुछ देर सोच विचारकर कहा, 'वृन्दावन में कोई बड़ा आयोजन हम नहीं कर सकते। यहाँ तो सामान्यतया सत्संग और कथा कीर्तन चलता रहे-यही बहुत है। यहाँ पिछले बड़े उत्सव में ही बड़ी अड़चनें पड़ी थीं। यह आयोजन तो बहुत ही बड़ा होगा। यहाँ न तो इतना स्थान है और न इतनी रसद ही मिल सकती है। इनसे भी बढ़कर दिक्कत है पानी की। अत: यहाँ ऐसा कोई वृहद् आयोजन नहीं हो सकता।' यह सुनकर ब्रह्मचारीजी बड़े मर्माहत हुए। उन्होंने बहुत अनुनय-विनय भी की। किन्तु बाबा किसी प्रकार तैयार न हुए। आखिर, उन्होंने प्रयाग जाकर त्रिवेणी तट पर ही इसकी योजना की। वहाँ यह उत्सव उतना विशाल तो नहीं हो सका, फिर भी इतने थोड़े समय में जैसा कुछ हुआ, आदर्श ही था। उसमें उन्होंने पूज्य बाबा, महाराजजी और माँ श्रीआनन्दमयी को भी आमन्त्रित किया। किन्तु बाबा का इतनी जल्दी पैदल चलकर पहुँचना सम्भव
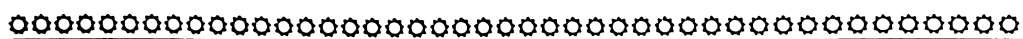
नहीं था और महाराजजी होली के उत्सव का आयोजन कर चुके थे। अतः ये दोनों तो नहीं जा सके। माँ अवश्य अपने परिकर सहित वहाँ पधारीं और पूरे दिन उस उत्सव में रहीं।

इधर बाबा और महाराजजी ने विचार किया कि हम यद्यपि अखिल भारतवर्षीय उत्सव की योजना को सफल नहीं बना सके तो भी यथासम्भव होली के उत्सव को विशेष धूमधाम से करें। श्रीमहाराजजी ने ब्रह्मचारी को पत्र में भी लिख दिया कि आप हृदय से मुझे वहीं उपस्थित समझें। यहाँ मैं आपके उत्सव की ही कमी को पूरा करूँगा। भगवान् तो सभी जगह समान रूप से व्याप्त हैं।

इस प्रकार यह सन् १९४४ का उत्सव बड़ी धूमधाम से किया गया। इसमें दो सौ कीर्तनकार तो बाँध प्रान्त से बुलाये गये थे और दो सौ बाबा के भक्तपरिकर के थे। अतः सौ-सौ आदमियों की चार पार्टियाँ बानकर हर समय सैकड़ों झाँझ, शङ्ख, ढोलक और घण्टों के साथ बड़ी धूमधाम से अखण्ड कीर्तन होता था। आश्रम के मण्डप में सवेरे ८ से १० बजे तक रासलीला होती थी और उसके पश्चात् एक घण्टे तक श्रीरामचरितमानस का गान एवं कथा होती थी। कथा स्वयं श्रीमहाराजजी ही कहते थे मध्यान्होत्तर दो से छः बजे तक अनेकों कथा एवं प्रवचन होते थे। कथावाचक प्रधानतया बाबा रामदासजी ग्वालियर वाले और श्रीजगन्नाथजी भक्तमाली थे। तथा व्याख्याताओं में स्वामी श्रीरामानुजदासजी, गोस्वामी गौरगोपालजी, एवं अन्यान्य गोस्वामीस्वरूप थे। बीच-बीच में भावुक भक्तजनों द्वारा पदगान भी होता रहता था। तथा रात्रि में बाँधप्रान्त के भक्तजन कोई लीला करते थे।

इस उत्सव की सबसे विचित्र घटना थी श्रीवृन्दावन की परिक्रमा। इसके लिये निश्चय होने पर फाल्गुन शुक्ला दशमी को प्रायः दो सौ आदमियों ने लगकर पाँच छः मील लम्बे परिक्रमा के मार्ग की सफाई की जगह-जगह बन्दनवार लगाये और स्थानों में कदली स्तम्भ एवं लता पत्रादि लगाकर चार मण्डप बनाये। एकादशी को प्रातःकाल परिक्रमा आरम्भ हुई। पहले चार बजे कीर्तनमण्डप में प्रभाती-कीर्तन हुआ। फिर पण्डित हरियशजी ने श्रीमहाराजजी और बाबा को

चन्दन लगाकर पुबपमालाएँ पहनायीं तथा अन्य सब सन्तों को भी चन्दन लगाकर मालाएँ पहनायी गयीं। यहीं से कीर्तन करते हुए यात्रा आरम्भ हुई। आगे-आगे अनेकों झण्डे-झण्डियाँ चलीं तथा साथ में कई गैस के हंडे रहे कीर्तन बड़ी धूम-धाम से हो रहा था, सब लोग उन्मत्तप्राय: हो रहे थे। महाराजजी भी बड़ी मस्ती से घण्टा बजाते हुए नृत्यकर रहे थे। परिक्रमा में मार्ग में जो चार मण्डप बनाये गये थे, उनमें से पहले विश्रामस्थल पर आपने जमकर कीर्तन किया और फिर सबको बिठाकर श्रीवृन्दावनधाम की महिमा का वर्णन किया इसके पश्चात् दूसरी ध्वनि उठाकर कीर्तन करते चले। इस यात्रा में सबसे आगे बैंड बाजा था, उसके पीछे वृन्दावन की जनता थी, फिर आपका कीर्तनमण्डल चलता था और पीछे-पीछे अनेकों अन्य मण्डलियाँ कीर्तन करती चल रही थीं।

श्रीवृन्दावन में प्रत्येक एकादशी पर भी अनेकों भक्तजन परिक्रमा लगाते हैं। जिसपर भी यह एक प्रधान एकादशी थी और आपके कीर्तन एवं परिक्रमा की धूम सर्वत्र मची हुई थी इसलिए इस यात्रा में वृन्दावन के हजारों प्रेमी और विरक्त सम्मिलित हो गये थे। इसप्रकार आज तो आनन्द की लूट-सी मची हुई थी। सभी लोग कीर्तनानन्द में विभोर हो रहे थे।

हमारा भक्तमण्डल जिस प्रकार प्रथम विश्रामस्थल पर रुका था उसी प्रकार उसने आगे के तीन मण्डपों में भी कुछ देर ठहर कर विश्राम लिया, दूसरे विश्रामस्थल पर आपने श्रीप्रिया-प्रियतम की अनुपम रूपमाधुरी का वर्णन किया तथा तीसरे पर भगवान् की लीलाओं का तथा वृन्दावन के रसिकों का महत्त्व सुनाया। यह मण्डप श्रीजगन्नाथ घाटपर था। यहाँ बाबा के कहने से आपने आधा घण्टा के लिए जलपान की छुट्टी कर दी। तब बाबा ने सबको फलाहारी प्रसाद वितरण किया। इसके पश्चात् ठीक बारह बजे पुन: परिक्रमा आरम्भ हुई चौथे विश्रामस्थल पर पहुँचकर फिर पूर्ववत् जमकर कीर्तन हुआ और आपने श्रीभगवन्नाम की महिमा का वर्णन किया। इस प्रकार चारों विश्रामस्थलों पर आपने श्रीभगवान् के नाम, धाम, लीला और स्वरूप का पृथक्-पृथक् वर्णन किया।

दोपहर के पश्चात् प्रायः दो बजे यह भक्तमण्डल आश्रम में पहुँचा। इस प्रकार दस घण्टे में यह परिक्रमा पूरी हुई। किन्तु आश्चर्य तो यह था कि किसीको थकान का लेश भी नहीं था। सभी के शरीर अत्यन्त हल्के और मन प्रसन्न थे। ऐसा हमें कई बार अनुभव हुआ है कि यदि कीर्तन में मन का थोड़ा-सा भी प्रवेश हो जाता है तो फिर मस्ती का ठिकाना नहीं रहता। फिर तो कितना ही सिंहगर्जन से कीर्तन करो दूना उत्साह बढ़ता है। और यदि चित्त की चंचलता के कारण कीर्तन रस में प्रवेश न हो तो एक घण्टा भी कीर्तन करना भारी हो जाता है। यह श्रीधाम की परिक्रमा कितनी विचित्र हुई, इसका वर्णन लेखनी द्वारा नहीं किया जा सकता। इस आनन्द को तो हृदय ही जानता है। इस प्रकार गौरपूर्णिमा का यह उत्सव भी बड़ा ही विचित्र हुआ।

ग्वालियर का उत्सव

ऊपर सन् १९४४ के होली के उत्सव का उल्लेख किया जा चुका है। उसमें ग्वालियरवाले बाबा रामदासजी पधारे थे। आपका गुरुस्थान ग्वालियर से प्रायः दस मील दूर करह में है। यहाँ आपने एक उत्सव करने का निश्चय किया था। उसमें पधारने के लिये आपने पूज्यबाबा और महाराजजी से प्रार्थना की बाबा रामदासजी का इन दोनों ही महापुरुषों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः दोनों ही ने वहाँ जाना स्वीकार कर लिया। बाबा तो उत्सव समाप्त होने पर चैत्र कृष्णा द्वितीया को ही कुछ विरक्त सेवकों को साथ लेकर चल दिये। महाराजजी ने मुझे बाँध प्रान्त से अच्छे-अच्छे सौ कीर्तनकारों को लाने भेजा। बस, मैं छटे-छटे सौ आदमी और प्रमुख भक्तों को लेकर श्रीवृन्दावन आया। यहाँ से हम रेल द्वारा चलकर चैत्र कृष्णा अमावस्या को करह पहुँचे। पूज्य श्रीबाबा हमसे एक दिन पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे।

बाबा श्रीरामदासजी का उस प्रान्त में बड़ा प्रभाव है। हमें तो स्टेशन पर ही उनकी महिमा का परिचय मिल गया। स्टेशन से ये स्थान प्रायः चार मील है। हमारे महाराजजी का विचार तो वहाँ तक पैदल ही जाने का था। किन्तु स्टेशन पर जो लोग मिले उन्होंने अपने प्रेमपूर्ण आग्रह से आपको सवारी में जाने के लिये विवश कर दिया। कुछ मोटर और लारियाँ पहले से ही तैयार थीं। उनके द्वारा हम लोग करह पहुँचे। स्टेशन से करह तक का मार्ग बहुत ही ऊबड़-खाबड़ और झाड़-झंखाड़ से पूर्ण था। उस समय बाबा ने ही बड़े परिश्रम से उसमें एक सड़क तैयार करायी थी। फिर भी इसमें कई जगह हमें उतर कर मोटरों को धक्के लगाने पड़े थे। क्यों न हो, एक तपस्वी के स्थान पर पहुँचना था न ? परमार्थ का मार्ग भी तो ऐसा विकट है। अस्तु, जैसे-तैसे हम उत्सव भूमि में पहुँच गये।

किन्तु वहाँ का दृश्य देखकर तो हम चकित रह गये । यह तो सचमुच ही जंगल में मंगल हो रहा था। एक बहुत लम्बा-चौड़ा मैदान साफ किया गया था। उसमें एक विशाल मण्डप बनाया गया था तथा उसके अतिरिक्त और भी दो-तीन छोटे-मण्डप हजारों डेरे, रावटियाँ शामियाने और फूस की कुटियाएँ अनेकों टीन के विश्राम स्थान बने हुए थे। इन सबसे अलग अलग हमारे बाबा के लिये एक नवीन पक्की कुटी बनायी गयी थी तथा उसके आस-पास उनके भक्तपरिकर के लिये सैकड़ों रावटियाँ और फूस की कुटियाएँ थीं। महाराजजी के लिये सबसे अगल पहाड़ी के ऊपर नितान्त एकान्त में एक नवीन कुटी थी। उसके पास दो-चार कुटियाँ भी थीं।

इस उत्सव-भूमि में ही बाबा श्रीरामदासजी का आश्रम है। इसमें एक श्रीरघुनाथजी का मन्दिर है और दो मन्दिर श्रीहनुमानजी और शिवजी के हैं। इन मन्दिरों के आस-पास श्रीगुरु महाराजजी की गुफा, कुटिया तथा अन्य दो-चार कुटियाएँ हैं। इनके अतिरिक्त कोठार-भण्डार और अतिथि-अभ्यागतों के ठहरने के लिये भी कुछ स्थान हैं। इस उत्सव क्षेत्र में दो-तीन कुएँ भी थे तथा एक ओर कुछ दूरी पर बहुत बड़ी फूस की यज्ञशाला बनवायी गयी थी। उसके
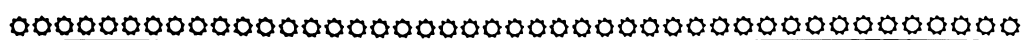
आस-पास भी सैकड़ों रावटियाँ और फूस की कुटियाएँ थीं। यहाँ सैकड़ों पण्डित और विद्यार्थियों के द्वारा बड़ी धूमधाम से विष्णुयाग हो रहा था। इसी प्रकार एक पृथक् मण्डप में एक महीने अखण्ड कीर्तन की योजना की गई थी इसमें सहस्रों नर-नारी नित्यप्रति भाग लेते थे।

मैदान में एक ओर बड़ी पाकशाला थी। उसके चारों ओर टीन का परकोटा बना हुआ था तथा टीन से ही उसे छाया गया था। उसमें एक ओर बड़ा भारी भन्डार और कोठार था। इतना विशाल कोठार और भण्डार तो आजतक किसी भी उत्सव में नहीं देखा गया। कोठार में एक और आलू तथा अन्य शाकों के ढेर लगे हुये थे। एक ओर सैकड़ों पीपे शुद्ध घी, दूसरी ओर सैकड़ों बोरी खांड और तीसरी ओर आटे की हजारों बोरियाँ रखी हुई थीं। भण्डार की लम्बी-लम्बी टीन की बेरकों में बड़ी-बड़ी पैंतीस भट्ठियाँ बनी हुई थीं। उनमें हर समय पूरी मिठाई, मालपुआ एवं शाक आदि बनते रहते थें। कच्चे भोजन का प्रबन्ध तो दूसरे छोटे-छोटे स्थानों में था। वह केवल खासअतिथियो को ही मिलता था। सर्वसाधारण के लिये तो दोनों समय पूड़ी शाक और मिठाई प्रबन्ध किया गया था। मिठाई समय-समय पर बदलती रहती थी। भोजन सामूहिक होने पर भी बहुत बढ़िया होता था। यह भोजनालय हर समय खुला रहता था। इसमें बिना रोक-टेक सभी भोजन कर सकते थे।

बड़े महाराज का ग्वालियर-राज्य के प्रायः सवा सौ गाँवों मे बड़ा भारी प्रभाव था। उन सभी गाँवों में एक बार जाकर बाबा रामदासजी कह आये थे कि महाराजजी का विचार एक विराट् उत्सव करने का है। आप लोग यथा शक्ति घी, आटा, खाँड़, शाक आदि सभी प्रकार का सामान इकट्ठा करके, अमुक तिथि तक वहाँ पहुँचा दें। तथा प्रत्येक गाँव से एक-एक स्वयंसेवकदल और एक-एक कीर्तनमण्डली भी वहाँ पहुँच जाय। आप लोग भी अधिक से अधिक संख्या में उत्सव में पधारें तथा अपने ठहरने और भोजनादिका प्रबन्ध स्वयं कर लें। हम तो केवल निष्काम भाव से बाहर से आये हुए अतिथियों की सेवा का ही प्रबन्ध करेंगे।

केवल इतनी सूचना से वहाँ के गाँवों में उत्साह भर गया और बात ही बात में स्वयं ही यह सारा प्रबन्ध हो गया। हमारे देखते हुए भी वहाँ सब प्रकार के सामान की सैकड़ों गाड़ियाँ आयी थीं। उनका कोठारी, भण्डारी और लेखक लोग स्वयं ही नियमानुसार वहीखाते में जमाखर्च कर रहे थे। भाई सचमुच वहाँ तो हमने रामराज्य ही देखा।

'कोई कछ कहइ न कोइ कछ पूछा।
प्रेम भरा मन निज गति छछा।।'

उस समय वहाँ उन सवा सौ गाँवों और अन्यान्य स्थानों की प्राय: एक लक्ष जनता एकत्रित थी। किन्तु वे तो सभी स्वयंसेवक थे, नहीं-नहीं वे सब तो सच्चे रामसेवक थे। उनमें बड़े बड़े विद्वान्, रईस, अमीर, जमीदार, किसान, बालक, युवा, वृद्ध स्त्री-पुरुष सभी प्रकार के लोग थे और जो जिस सेवा के योग्य था उसी प्रकार के सेवासंघ में भर्ती होकर बड़ी तत्परता से अपने काम में लगा हुआ था। किसी को भी दिन रात का होश नहीं था।

एक ओर बहुत बड़ा बाजार भी लगा हुआ था। उसमें सैकड़ों बढ़िया-बढ़िया दूकानें थीं। उन सब पर वस्तुओं के निश्चित भाव लिखे हुए थे। सभी बड़ी पवित्रता से पूड़ी और मिठाई आदि तैयार करते तथा उन्हें ईमानदारी से बेचते थे। इस उत्सव भूमि में चार-पाँच हजार तो स्वयंसेवक, राजकीय सैनिक और पुलिस के आदमी थे, जो हर समय अपनी-अपनी ड्यूटी के अनुसार पहरा देते थे तथा और भी सब प्रकार का प्रबन्ध करते थे। इसी से इतने बड़े मेले में दफ्तर में जमा होकर वह अपने मालिक को मिल जाती थी। औषधालय भी सारे मेले में आठ-दस से कम न होंगे। उनमें बड़े प्रेम से चिकित्सा की जाती थी।

इस प्रकार वहाँ का अद्‌भुत प्रबन्ध देखकर मैं तो दंग रह गया। इस स्थान से कोई भी शहर या कस्बा दस मील से कम दूरी पर नहीं होगा। रास्ते भी सब जंगल एवं पहाड़ी के थे। बैलगाड़ियाँ ही सामान ढोती थीं। उन्हीं के द्वारा इतना सामान कैसे आ गया ? वहाँ जगह-जगह हजारों तख्ते तो टीन के पड़े थे और हजारों डेरे हर समय तैयार रहते थे, जो कहते ही लगा दिये जाते

थे। इसके सिवा मोटी जीन और नये टाट के हजारों थान पड़े हुए थे। उन्हीं के द्वारा लोहे के नल लगाकर एक विशाल मण्डप सजाया गया था। इसमें नीचे टाट और ऊपर जीन या गाढ़ा इस प्रकार नये थान ही बिछाये गये थे। इस मण्डप में प्राय: बीस हजार आदमी बैठ सकते थे। बड़ा विचित्र यह मण्डप था।

इस प्रकार यद्यपि और सब सामान तो बाहर से आ गया था किन्तु पानी की यहाँ बहुत कमी थी। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण यहाँ के कुओं में भी बहुत कम पानी था। किन्तु बाबा रामदासजी ने इसका भी बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया था। उन्होंने एक पचास फुट लम्बा-चौड़ा तथा आठ फुट गहरा पक्का कुण्ड बनवाया था। यहाँ से दो मील दूर चम्बल नदी थी। वहाँ तक बढ़िया सड़क तैयार करायी गयी थी तथा पानी ढोने वाली चार लॉरियाँ और अनेकों बैलगाड़ियाँ जिनमें से प्रत्येक में बीस मन पानी आ सकता था, ग्वालियर की म्युनिसिपलिटी से और छावनी से माँग ली थीं। ये लॉरियाँ और बैलगाड़ियाँ निरन्तर पानी ढोती रहती थीं। नदी पर एक छोटा-सा ऑइल इन्जिन लगाकर रबड़ का लम्बा पाइप लगा दिया था। उससे थोड़ी ही देर में गाड़ियों में जल भर दिया जाता था और वे ला-लाकर उसे निरन्तर कुण्ड में डालती रहती थीं। कुण्ड पर दस-बीस आदमी निरन्तर जल बाँटते रहते थे। तथा मुख्य-मुख्य स्थानों पर सेवक लोग स्वयं ही पहुँचाते रहते थे। इस प्रकार इस समस्या का भी बहुत अच्छा समाधान निकल आया था। अत: किसी को कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। फिर भी जो गंगा यमुना में किलोल करने वाले थे उन्हें तो कुछ संकोच करना ही पड़ता था। किसी समय बाबा रामदासजी से कोई पानी के लिये शिकायत करता तो आप बड़ी नम्रता से कह देते थे, भाई ! पानी की जगह घी खर्च करो।' वास्तव मे घी इसी प्रकार खर्च भी होता था। जो जितना माँगता था उसे उतना ही दिया जाता था।

किन्तु इस तरह पानी का उचित प्रबन्ध हो जाने पर भी नदी दूर होने के कारण लोगों को शौच-स्नानादि क्रियाओं में तो जल का संकोच खलता ही था। ऐसा देखकर इन्द्रदेव को भी कुछ लज्जा आयी और उन्होंने सन्तों का कष्ट देखकर खूब जोर से वर्षा कर दी, इससे जंगल के सब तालाब और गड्ढों में जल भर गया। इस प्रकार नित्य ही एक बार वृष्टि होने लगी। अकस्मात् बादल

उठता और वर्बा हो जाती तथा उसी समय फिर धूप निकल आती। इस प्रकार उत्सव के किसी भी प्रोग्राम में बाधा डाले बिना ही इन्द्रदेव ने वहाँ की कमी पूरी कर दी।

एक बार तो प्रोग्राम के समय ही बड़े जोरों की वर्षा के साथ प्रचण्ड झंझावात करने लगा। तुरन्त ही हमारे महाराजजी उठकर कीर्तन करने लगे। और सब लोगों ने भी उसमें योग दिया। उधर तो आँधी और वर्षा का वेग बढ़ा और इधर संकीर्तन की आकाशव्यापिनी तुमुलध्वनि का। बस, एक प्रकारका देवासुरसंग्राम छिड़ गया। वायु ने मेले के सभी डेरों को उलट-पुलटकर दिया तथा मण्डप भी बहुत अस्त-व्यस्त हो गया। किन्तु जहाँ महाराजजी कुछ भक्तों के साथ कीर्तन कर रहे थे वह स्थान अब भी सुरक्षित था। अन्त में जब वृष्टि बन्द हुई तो लोगों ने हाथोंहाथ मण्डप को ठीक कर दिया और सूखे फर्श लाकर बिछा दिये अतः कथा व्याख्यानादि का प्रोग्राम पुनः पूर्ववत् चलने लगा। उस समय की वर्षा भी बड़े आनन्द का कारण थी। उस प्रान्त में गर्मी बहुत अधिक पड़ती थी। यदि वर्षा न होती तो लोगों को उससे बड़ा कष्ट होता। अतः इस प्रकार नित्य छिड़काव करके तो इन्द्रदेव ने उस उत्सव की बड़ी ही अनूठी सेवा की।

हमारे बाबा रामदासजी तो निरन्तर समागत सन्त एवं अतिथियों के सत्कारों में व्यस्त रहते थे। वे तो इस समय खाना, पीना, सोना, बैठना सभी भूले हुए थे। हर समय कमर कसे इधर-उधर दौड़ते रहते थे, अतः उत्सव का सारा भार हमारे परम उदार सरकार ने अपने ऊपर ले लिया था। आपने हम लोगों से कहा कि यह बाबा रामदास का उत्सव नहीं, हमारा अपना ही उत्सव है। इसको बाँध और वृन्दावन के उत्सव से भी अधिक सावधानि से सँभालना चाहिए। देखो, किसी प्रकार की ढील न हो। सत्संग, कथा, कीर्तन, रासलीला और रामलीला का सारा प्रबन्ध हम लोगों को स्वयं ही करना चाहिए। इस प्रकार जब आपने अपने ऊपर यह कह भार ले लिया तो फिर प्रबन्ध होना कौन बड़ी बात थी। सभी काम सुचार रूप से होने लगे। प्रोग्राम में सब लोग ठीक समय पर आ जाते थे। विशिष्ट व्यक्तियों को यथा समय लाने की ड्यूटी हम लोगों

की थी। बस, निरन्तर आनन्द की वर्षा होने लगी और उससे आप्लावित होकर सभी लोग अपने को कृतकृत्य समझने लगे।

उत्सव के प्रत्येक प्रोग्राम में बाबा रामदासजी के गुरुमहाराज अवश्य पधारते थे। उनके साथ हजारों भक्त 'जय सियाराम जय जय सियाराम' की तुमुल ध्वनि से आकाश को गुञ्जायमान करते आते थे। उनके आने पर वहाँ की सारी जनता खड़ी हो जाती थी तथा सब लोग शान्त हो जाते थे। वे बड़ी नम्रता से पहले श्रीमहाराजजी और पूज्य बाबा को और फिर सभी प्रमुख सन्तों को अलग-अलग प्रणाम करते थे और फिर हाथ जोड़े खड़े होकर सब ओर घूमते हुए सभी लोगों का अभिवादन करके अपने निर्दिष्ट आसन पर विराज जाते थे। आप विशेष पढ़े-लिखे नहीं हैं, केवल सामान्य-सी हिन्दी जानते हैं। तथापि रामनाम में आपकी बड़ी अपूर्वनिष्ठा रही है। आपने यहीं एक पर्वतीय गुफा में कन्द-मूल-फल खाते हुए मौन रहकर निरन्तर बारह वर्ष तक श्रीरामनाम का जप किया है। उसीके प्रभाव से आपको कई बार श्रीयुगलसरकार तथा महावीरजी के दर्शन हुये हैं और दिव्य वरदान आदि भी मिले हैं। इसीसे आपकी सिद्धि और शक्तियों की उस प्रान्त में बड़ी धूम है। आपकी सेवा से सहस्त्रों नर-नारी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं। आप बड़े ही भोले-भाले, सरलहृदय, निःस्पृह और त्यागी सन्त हैं। आपके नेत्रों से प्रायः निरन्तर ही अश्रुपात होता रहता है तथा आप अधिकतर मौन से ही रहते हैं। इसीसे उधर के लोग आपको 'मौनीबाबा' कहा कहते हैं।

आप जैसे तपस्वी, त्यागी और श्रीरघुनाथजी के अनन्यशरण भक्त हैं वैसे ही योग्य शिष्य आपको बाबा रामदासजी मिले हैं। आप बड़े ही शान्त, उदार, विनयी, नम्र, मितभाषी और निःस्पृह सन्त हैं। श्रीरामचरितमानस के तो आप उच्चकोटि के वक्ता हैं। आपका प्रवचन बड़ा ही सरस, मधुर, भावगर्भित एवं पाण्डित्यपूर्ण होता है। इसीप्रकार चुने हुए दोहों के साथ आपका कीर्तन भी बड़ा ही अलौकिक होता है। जिस समय आप कथा या कीर्तन करते हैं उस समय तो ऐसा अमृतवर्षण होता है कि नास्तिक लोग भी मुग्ध हो जाते हैं। उन दिनों उत्सव का सारा भार आप पर ही था। तो भी आप सत्संग के प्रायः प्रत्येक

प्रोग्रामों में सम्मिलित होते थे। आपको कार्यवश कहीं जाना होता तो श्रीमहाराजजी से पूछकर ही जाते थे। कभी-कभी आपका प्रवचन भी होता था। उस समय आप बड़े शान्त प्रतीत होते थे। आपसे हर समय अनेकों पुरुष अनेकों कार्यों की बातें करते रहते थे। उन्हें आप बड़ी शान्ति से थोड़े शब्दों में ही उत्तर दे देते थे। मेरे सामने ही वृन्दावन के एक अत्यन्त उग्रस्वभाव वाले व्यक्ति ने आपसे कुछ कड़े शब्द कहे किन्तु आपने उसे बड़ी नम्रता और प्रेम से समझाकर उसके भोजनादि का उचित प्रबन्ध कर दिया। बाहर के अतिथियों के लिये आपने अपने तीन-चार दुकानों पर कह दिया था कि वे जो चाहें वही उन्हें खिला दो अथवा दे दो और उनका हिसाब हमारे नाम लिख दो। रासमण्डली अथवा बाहर से आये हुए भक्त जिस समय जितना सामान चाहते कोठार से ले आते थे। वहाँ तो सब प्रकार का अक्षय भण्डार था। गाँवों से हर समय सैकड़ों मन दूध-दही आता और बँटता रहता था। उस समय तो सचमुच वहाँ अन्नपूर्णा ही अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के सहित उत्सव की सेवा कर रही थी। प्रत्येक मनुष्य की सेवा में हर समय स्वयं सेवक हाथ जोड़े खड़े रहते थे। और उनकी प्रत्येक सेवा करने को तत्पर रहते थे।

हमारे भोलाशंकर पूज्यचरण श्रीउड़ियाबाबाजी ने बाहर के प्रमुख अतिथियों की सेवा का भार अपने जिम्मे ले लिया था। वे अपने अनेकों भक्तों द्वारा निरन्तर उनकी सेवा का ध्यान रखकर उन्हें सब प्रकार सन्तुष्ट रखते थे। वहाँ उस समय स्वामी-सेवक का भेद मिट गया था। सभी सेवक बने हुए थे। और सभी स्वामी थे। हमारे श्रीमहाराजजी ने देखा कि जनता बहुत है, सबका एक मण्डप में बैठना सम्भव नहीं है। तब आपने दो मण्डप और बनवाये। वहाँ शामियानों की कमी तो थी नहीं। बात की बात में मण्डप तैयार हो गये। उनमें से एक में रामलीला और गायनादि का प्रोग्राम रखा गया तथा दूसरे में व्याख्यानादि का इस प्रकार तीनों मण्डपों में जनता बँट गयी और बड़े ही आनन्द एवं शान्ति से उत्सव चलता रहा।

उत्सव का विस्तार प्रायः चार मील के घेरे में था। एक लक्ष की भीड़ थी। तो भी उस मेले में बहिर्मुखता नहीं थी। सारे ही मेले में जगह-जगह अपने-अपने डेरों पर सबलोग कथा, कीर्तन, भजन, ध्यान और स्तुति पाठ आदि

में लगे रहते थे। कहीं किसी प्रकार की अश्लील चर्चा या चेष्टा देखने में नहीं आयी। न कोई पारस्परिक झगड़ा ही देखा गया। बाहर से आये हुए संत एवं भक्तों के डेरों पर भी जिज्ञासुगण जाकर उनका सत्संग तथा सब प्रकार की सेवा करते थे। उस समय तो सचमुच वहाँ रामराज्य की स्थापना हो गयी थी।

'चारिहु चरन धरम जग माहीं। पूरी रहेउ सपनेहु अघ नाहीं।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहि स्वधर्म निरत श्रुतिरीति।।
जहँ-तहँ नर रघुपतिगुण गावहिं। बैठि परस्पर यहै सिखावहिं।।
भजहु प्रणतप्रतिपालक रामहिं। शोभाशील रूपगुणधामसहिं।।
जलज विलोचन श्यामलगातसहिं। पलक नयन इव सेवक त्रातहिं।।

आज यह सन्तसमाजरूप प्रयागराज ही यहाँ उपस्थित हो गया है। चारों ओर ज्ञान, भक्ति और कर्म का ही प्रतिपादन हो गया है। इसी सत्संगरूप त्रिवेणी में सहस्त्रों नर-नारी अवगाहन करके भवताप से मुक्त हो रहे हैं।

'ब्रह्मनिरूपण धर्म विधि, वरनहिं तत्त्वविभाग ।
कहहिं भक्ति भगवन्तकी, संयुत ज्ञान-विराग ।।'

इस प्रकार वहाँ सर्वथा शान्ति, सुव्यवस्था और सद्विचार का ही साम्राज्य था।

इस उत्सव में बाहर से जो अतिथि आये थे उनके भोजन का सब प्रकार सुचारु प्रबन्ध था। किन्तु एक समय तो भोजन-भण्डार के समीप प्रायः दस हजार मनुष्यों की समष्टि पंगत लगती थी, उसमें किसी के लिये भी रोक-टोक नहीं थी। जो चाहे वही भोजन कर सकता था। वह भोजन भी बहुत बढ़िया बनता था। उसमें एक मिठाई और पूड़ी-शाक रहते थे। इस पंक्ति में प्रायः साधु और दरिद्रनारायण ही रहते थे, ब्राह्मणों की पंगत तो यज्ञशाला के समीप अलग ही होती थी। इस मेले में आस-पास की जनता कोई व्यक्ति तो आग्रह करने पर भी भोजन नहीं करता था। उनके अपने-अपने गाँवों के डेरे अलग-अलग लगे हुए थे। वहाँ उनका अपना स्वतन्त्र भोजन का प्रबन्ध था। अथवा कोई अपने घर से मँगाता था, या बाजार से लेकर खा लेता था। इसी से वहाँ बड़ी शान्ति थी। भोजन के लिये आपस में कूकुर की भाँति झगड़ने वाले भोजन भट्ट वहाँ नहीं थे।

उत्सव की समाप्ति में दशमी के दिन समष्टि भण्डारा हुआ। उसमें एक लाख आदमियों के भोजन का प्रबन्ध किया गया था। बूँदी के लड्डू, मालपूआ और आलू का शाक केवल तीन ही चीजें बनायी गई थीं। लड्डू तो सात दिन से बना-बनाकर भण्डार में ढेर लगा दिया गया था। सम्भवत: पाँच सौ बोरी खाँड़ के लड्डू बने होंगे। मालपुए भी एक दिन पहले बीस बड़ी-बड़ी भट्टियों पर तैयार किये गये थे। वे सम्भवत: छ: सौ मन आटे के होंगे। किन्तु इतने अधिक बनने पर भी बहुत बढ़िया बने थे।

उत्सव की समाप्ति के एक दिन पहले बाबा रामदासजी ने अपने प्रवचन में अत्यन्त गद्-गद् होकर सब सन्तों को धन्यवाद देते हुए कृतज्ञता प्रकट की और कहा, आप लोगों ने बड़ा कष्ट सहन करके मुझे और इस प्रान्त की जनता को कृतार्थ किया है।' ऐसा कहकर वे रो पड़े। उनका ऐसा भाव देखकर सब लोग आनन्द से भर गये। वह वक्तव्य क्या था, साक्षात् अमृत की वर्षा ही थी। फिर आप हाथ जोड़कर अपने यहाँ की जनता से बोले, 'भाई ! आप लोगों ने तन, मन, धन से उत्सव की सेवा की है। इसके लिये मैं अत्यन्त अभारी हूँ। और आप लोगों को हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि भगवान् आपका कल्याण करें। श्रीरघुनाथजी आप लोगों को अपनी भक्ति प्रदान करें। आप लोगों ने दस दिन से बराबर अपने घर से भोजन खाया है, यहाँ का एक कण भी स्वीकार नहीं किया है। किन्तु आज आप लोगों से मेरी हार्दिक विनय है कि कल समष्टि भण्डारे में आप लोग स्वयं माँग-माँग कर प्रसाद ग्रहण करें। तभी मेरा चित्त प्रसन्न होगा। याद रखिये-'यज्ञशिष्टाशिन: सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषै:—जो यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।'

बस, दूसरे दिन समष्टि भण्डारे का दृश्य बड़ा ही अपूर्व रहा। पहले तो साधु और ब्राह्मणों की पंक्ति हुई, फिर, दरिद्रनारायण का सत्कार हुआ और तदनन्तर ग्रामवासियों की एक वृहत् पंक्ति हुई। इसके सिवा आठ-दस जगह प्रसाद-वितरण का प्रबन्ध किया गया था, जो लोग बैठना नहीं चाहते थे वे प्रसाद ले लेते थे। इस प्रकार आज प्राय: एक लाख व्यक्तियों का भोजन हुआ। परन्तु

भण्डार भरपूर था, अक्षय था। बहुत से लोगों को तो बाबा रामदासजी स्वयं प्रसाद बाँट रहे थे। हमारे बाबा और महाराजजी ने भी पंक्तियों के दर्शन किये।

यज्ञ के पीछे यज्ञकर्ता ब्राह्मणों का यथेष्ट दक्षिणा और वस्त्रादि से सत्कार किया गया। सन्त-महात्माओं को भी वस्त्रादि भेंट किये गये। रासलीला और रामलीला की मण्डलियों का भी धन एवं वस्त्रादि से अच्छा सत्कार हुआ। हमारे महाराजजी और बाबा से भी वस्त्रादि स्वीकार करने के लिये बहुत आग्रह किया गया। किन्तु आप लोगों ने तो अस्वीकार कर दिया। वरन् अपने सम्पन्न भक्तों से उनकी सेवा करायी। चलते समय सब लोग बड़े प्रेम से मिले और यज्ञ का प्रसाद ले-लेकर यथा स्थान चले गये। उस यज्ञ की स्मृति आज तक हृदय में बनी हुई है।

उत्सव के पश्चात्

उत्सव के पश्चात् पूज्य बाबा तो कुछ भक्त और विरक्त संतों के साथ पैदल चले और महाराजजी ने हम लोगों के साथ प्रस्थान किया। वहाँ से हम आगरा और भानुप्रतापजी दरोगा के विशेष आग्रह से तीन दिन उनके यहाँ ठहरे। उन्होंने वहाँ की जनता से एक मन्दिर में तीन दिन अखण्ड कीर्तन कराया। तीन दिन वहाँ कथा, कीर्तन, सत्संग एवं रासलीला का अच्छा आनन्द रहा। दरोगाजी ने बड़े प्रेम, उत्साह और श्रद्धा से सब लोगों की सेवा की।

वहाँ पूज्य बाबा के सेवक भगवद्दासजी ने अपने गाँव सहता चलने के लिये प्रार्थना की। यह गाँव आगरे से केवल दस मील दूर था। अतः उनके प्रेम से बाध्य होकर आप सबके साथ सहता गये। वहाँ भी सम्भवतः तीन दिन ही उनके बगीचे में ठहरे। यह बगीचा बड़ा ही सघन, रमणीक और एकान्त है। यहाँ खूब धूमधाम से उत्सव होता रहा भगवद्दासजी ने बड़े उत्साह और तत्परता से सब प्रकार की सेवा की।

सहता से सब लोग वृन्दावन आ गये। यहाँ बरेली के कुछ लोगों ने वहाँ चलने के लिये बहुत आग्रह किया। अतः आप बरेली पधारे। वहाँ पन्द्रह दिन तक खूब आनन्द रहा। पण्डित चेतराम की मण्डली ने ब्रह्मचारी प्रेमानन्दजी के तत्त्वधान में श्रीमन्महाप्रभुजी की लीलाओं का अभिनय किया। पण्डित राधेश्यामजी की कथा तथा अनेकों गायकों के सुन्दर गान हुए। यहाँ अन्य स्थानों की अपेक्षा कीर्तन का विशेष आनन्द रहता है। उसमें भी प्रभाती कीर्तन तो ऐसा कहीं नहीं होता। उसका वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता। उन दिनों कीर्तन तथा पदगान के समय श्रीमहाराजजी को दिव्योन्मादमयी अवस्था देखकर हमारे पाषाण हृदय भी मोम हो गये थे। हम लोग फूट-फूटकर रोने लगते थे। उस दिव्य आनन्द का इस जड़ लेखनी से किस प्रकार वर्णन किया जाय?

उस समय अनेकों भक्तों को तरह-तरहके अनुभव हुए। अपनी-अपनी भावना के अनुसार विभिन्न भक्तोंने श्रीमहाराजजी को भिन्न भिन्न रूपों में देखा। तथा अपनी-अपनी स्थिती के अनुसार उन्होंने श्रीमहाराजजी की उस दिव्य प्रेममयी अवस्था से लाभ उठाया। उस समय का वह भाव था बड़ा ही अद्भुत, अलौकिक और आश्चर्यमय।

इसके पश्चात् आप पीलीभीत गये। वहाँ तीन दिन का उत्सव हुआ। उसमें बाँध प्रान्त, शिवपुरी और बरेली के प्रायः दो सौ कीर्तन प्रेमी गये थे। उन लोगों ने भी सब प्रकार का प्रबन्ध बड़े उत्साह और चावसे किया। आतिथ्य सत्कार भी यथा- सम्भव ठीक ही हुआ है। वहाँ से एक दिन के लिये आप नानकमता❀ गये। यहाँ एक मीठे रीठों का वृक्ष है। पीलीभीत का उत्सव समाप्त होने पर आप बरेली आकर माँ श्रीआनन्दमयी के पास अल्मोड़ा चले गये। वहाँ

❀ **यह स्थान पीलीभीत से प्रायः तीस मील है। कहते हैं, एक बार भाई मरदाना और एक दूसरे शिष्य को साथ लिये यहाँ गुरुनानक साहब आये थे। शिष्यों को बहुत भूख मालूम हुई, तब श्री गुरु साहब ने उनसे कहा 'ये रीठे के फल खा लो।' उन्होंने कहा, 'रीठा तो बहुत कड़वा फल है।' तब आपने कहा, 'नहीं, ये रीठे तो छुहारे की तरह मीठे हैं।' बस, तभी से इस वृक्ष के रीठे छुहारे की तरह मीठे हो गये। इसके साथ इसी की जड़ से मिला हुआ दूसरा वृक्ष भी है। किन्तु उसके रीठे कड़वे होते हैं।**

ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी भी थे। वे श्रीबद्रिकाश्रम जा रहे थे। उनके साथ आप भी वहाँ को चले किन्तु फिर कारणवश रास्ते से ही लौट आये। तथा आषढ़ के आरम्भ में बरेली आकर फिर शिवपुरी चले आये।

इस साल गुरुपूर्णिमा का उत्सव शिवपुरी में ही हुआ। यह उत्सव इस रूप में सम्भवत: पहले कभी नहीं हुआ। इसमें सारा प्रोग्राम आपने स्वयं निश्चित किया और पूजा करने का अवसर भी सब लोगों को दिया। स्वयं ही प्रसाद बाँटा तथा खूब खेल-कूद भी किया। नहीं तो, आप इस अवसरपर प्राय: उदासीन ही रहा करते थे। और पूजा के नाम से तो बहुत बिगड़ते थे। कोई भी आप में गुरु भावना करे-यह बात आपको असह्य थी। यह मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि आपको पत्रादि में भी डॉक्टर माधोराम बरेली वाले और बाबू ब्रजबिहारीलाल सक्सेना-इन दो व्यक्तियों को छोड़कर कोई 'गुरु देव' लिखने का साहस नहीं कर सकता था। मैनें तो अपने सारे जीवन में कभी आपके मस्तक पर चार फूल भी नहीं चढ़ाये और न कभी आपको चन्दन ही लगाया है। मुझे कभी ऐसी इच्छा भी नहीं हुई। हाँ, हमारे भक्त समाज में दो-चार व्यक्ति बड़े हठी भी थे, जो गुरु पूर्णिमा के अवसर पर कभी पूजा किये बिना नहीं रह सकते थे। इनमें प्रधान थे पण्डित हरियशजी और दूसरे थे भाई छेदालालजी। सो कभी तो आप इनकी पूजा स्वीकार कर लेते थे। और कभी बिगड़ जाते थे। इस प्रकार द्वन्द्व प्राय: चलता ही रहता था। गुरु पूर्णिमा पर आप प्राय: रूखे हो जाते थे। जहाँ लोग पूजा की सामग्री लेकर इकट्ठे हुए कि आप बिगड़े।

आप कहा करते थे, 'संसार में यदि सबसे ऊँचा भाव या सम्बन्ध है तो वह गुरु-शिष्यका ही है। किन्तु वह इतना ओछा नहीं है कि पूजा या दण्डवत करने से ही पूरा हो। वह तो तन, मन, धन, तथा प्राणतक की न्यौछावर चाहाता है। शिष्य में तो अपना सर्वस्व त्याग करने पर भी लेशमात्र अभिमान नहीं आना चाहिये। उसे स्वप्न में भी यह विचार न हो कि मैनें कुछ किया है। गुरु भाव तो हृदय का गुप्त धन है। वह तो गुह्यतम आध्यात्मिक भाव है। उसमें दिखावे के लिये अवकाश नहीं है। भाई! मैं तो इस योग्य हूँ नहीं कि किसी का गुरु

बन सकूँ। यदि गुरुभाव करना हो तो श्रीउड़ियाबाबा या किसी अन्य महापुरुष के पास जाओ! मैं तो ठीक शिष्य भी नहीं बन सका।'

इस पर यदि हम में से कोई कुछ कह देता तो उसी समय आप कमण्डलु उठाकर चल देते। इसलिये हमें कुछ कहने का साहास भी नहीं होता था। इसके विपरीत कभी-कभी ऐसा भी होता था कि आप बड़ी प्रसन्नता से बैठे रहते और खूब पूजा हो जाती। किन्तु ऐसा अवसर बहुत कम मिलता था। और प्राय: उसी समय मिलता था जब एकान्त में इने-गिने आदमी ही पूजा करनेवाले होते थे। किन्तु इस साल शिवपुररी में आप बड़े प्रसन्न रहे। स्वयं ही व्यासपूजा का प्रोग्राम रखा। एक सिंहासन बना कर उसपर श्रीभगवान् के चित्र लगाये तथा श्रीमद्‌भागवत आदि ग्रन्थ रखे। आपने स्वयं पूजा की और पीछे जब लोगों ने आपका पूजन किया तब भी चुपचाप बैठे रहे। वरन् खिलवाड़ भी करने लगे। आप फूल लेकर स्वयं भी दूसरों पर चढ़ाने लगे और खूब हँसे। इस प्रकार बड़े आनन्द से पूजा हुई। पीछे कुछ स्तोत्रपाठ और पदगान भी हुआ। पदगान में तो आनन्द की बड़ी भारी तरंग उठी। सब लोट-पोट हो गये। राधेश्याम रोते-रोते विह्वल हो गया तथा उसका तबला बजाना भी छूट गया। पीछे आपने अपने हाथ से प्रसाद-वितरण किया इसमें सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसा सौभाग्य तो कभी-कभी ही प्राप्त होता है।

फिर श्रावण मास में आप वहीं रहे। उन दिनों नित्य एक-एक भक्त के घर बड़े उत्साह से कीर्तन होता था। बाग से बस्ती में जिसके घर जाना होता वहाँ तक खूब सफाई होती और बन्दनवार आदि लगाकर अच्छी तरह सजावट कर दी जाती थी। घर भी खूब लीप-पोत कर बन्दनवार, कलश और कदली-स्तम्भों से सजाया जाता था। तथा एक सुन्दर सिंहासनपर श्रीठाकुरजी को विराजमान कराया जाता था। जब श्रीमहाराजजी पधारते तो उन्हें पुष्पमाला एवं चन्दन धारण कराकर सब भक्तों को भी चन्दन लगाकर मालाएँ पहनायी जाती थीं। फिर कीर्तन होता और उसके पश्चात् हवन करके स्तोत्रपाठ और

पदगान के अन्तर प्रसाद-वितरण किया जाता था। फिर सब लोग यथास्थान चले जाते थे। इस प्रकार यह घर-घर का उत्सव बड़े आनन्द से चल रहा था।

एक दिन बाबूलाल कान्यकुब्ज के लड़के बनवारीलाल के यहाँ कीर्तन था। लड़का तो कीर्तनमण्डली का ही एक गायक था। उसने प्राणपण से तैयारी भी खूब की थी। किन्तु उसका पिता विशेष प्रेमी नहीं था। इसीसे अथवा मुझसे कुछ गलतियाँ हो गयी थीं उनके कारण आप अकस्मात् प्रातःकाल ही कमण्डलु लेकर एक आदमी के साथ बाग से सीधे करेंगी स्टेशन चले गये और भाई साहब से समझाकर कह दिया कि मैं धीरे-धीरे चलता हूँ, पीछे सवारी का ठीक प्रबन्ध करके और सब लोगों को भी शाम की गाड़ी पर करेंगी स्टेशन भेज देना। (उस समय बाँध प्रान्त के बहुत से लोग वहाँ ठहरे हुए थे।) साथ ही आपने यह भी कहा कि बनवारी के यहाँ तुम लोग कीर्तन अवश्य कर देना।

बस, भाई साहब ने जैसे ही हम लोगों को यह समाचार सुनाया हमें बड़ा धक्का लगा। किन्तु करें क्या? सेवाधर्म भी तो बड़ा कठिन है। 'सबतें सेवकधर्म कठोरा।' पहले तो मन में आया कि अभी दौड़कर पकड़ लें और सत्याग्रह कर दें। किन्तु फिर कर्त्तव्यनिष्ठा ने विवश किया। सोचा 'आज्ञासमन सुसाहिब सेवा' अतः अब वैसा ही करना चाहिए जैसी उनकी आज्ञा है। हठ करने पर भी वे तो मानेंगे नहीं, हम व्यर्थ कर्त्तव्यच्युत होंगे। अतः सब लोगों के लिये सवारियों का प्रबन्ध किया गया और बनवारीलाल के यहाँ कीर्तन किया।

आखिर, सब लोग विदा हुए। अब, पहले तो मेरे मन में मान हुआ कि मैं कभी जीवनभर सामने नहीं आऊँगा। परन्तु फिर मन नहीं माना। एक घोड़े का तांगा लेकर मैं दोपहर को दो बजे शिवपुरी से चला। रास्ते में बड़ी-कड़ी धूप थी। श्रावण का महीना था। जगह-जगह पानी और कीचड़ की भरमार थी। कुछ रास्ता भी भूल गये। अतः दो घण्टे का मार्ग पाँच घण्टे में पूरा हुआ। जब स्टेशन पर पहुँचे गाड़ी जा चुकी थी। बड़ी निराशा, दुःख और पश्चात्ताप हुआ। उधर से लौटे तो रास्ते में बड़ी जोर की वर्षा हुई। घोड़ा धूप से तपा

हुआ था। अब, एकदम भीगने से शिथिल पड़ गया। उसे एक-एक पग चलना कठिन हो गया। वर्षा बराबर हो रही थी। सर्वत्र कीचड़ ही कीचड़ थी तथा जहाँ-तहाँ पानी भी भरा हुआ था। घोड़े की हालत बहुत खराब हो गई। उसे खाली ताँगा लेकर चलना भी कठिन हो गया। घोड़ा ऊँचा जवान और मोटा-ताजा था। किन्तु इस समय तो अकस्मात् श्रीमहाराजजी की अप्रसन्नता से दैवी-प्रकोप के चक्र में पड़ गया था रास्ते में ही रात के दस बज गये। घोर अन्धकार छाया हुआ था। घोर विपत्ति का सामना था, हम किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये।

इस समय पन्नालाल ताँगेवाला और मैं दो ही आदमी थे। रास्ते में चलते-चलते अकस्मात् एक गड्ढे में घोड़ा गिर गया। हमने देखा तो वह लम्बे-लम्बे श्वास ले रहा था। उसकी आँखें मुन्दी हुई थीं और वह मृत्यु के द्वार पर पहुँच चुका था हम लोग बहुत घबराये। मैंने मन-ही-मन श्रीमहाराजजी का स्मरण किया कि प्रभो! क्षमा करो! अपराध तो मेरा और घोड़ा एक गरीब का मरे! यह ठीक नहीं। जो कुछ दण्ड देना हो मुझे ही दीजिये इसका भला क्या अपराध है? साथ ही मैंने श्रीमहावीरजी का स्मरण किया। वहाँ से प्रायः दो फर्लाङ्ग पर एक आम के बगीचे में कुछ मुसलमान रखवालों की आवाज सुनाई दी। मैं बड़े कष्ट से उनके पास गया वे सब शिवपुरी के ही थे। उन्होंने मुझे पहचान लिया। उसी समय दो आदमी मेरे साथ आये और बड़े परिश्रम से उस घोड़े को गड्ढे से निकालकर खड़ा किया। पन्ना ने घोड़ा पकड़ा और ताँगे को वे दोनों खींचकर बाग तक लाये। वहाँ से ताँगे का सारा सामान तो एक आदमी ने सिर पर रखा और ताँगा वहीं छोड़ दिया। तथा घोड़े को धीरे-धीरे उसके घर ले आये। पीछे कुछ दिनों में घोड़ा ठीक हो गया। किन्तु मेरी रिस बनी ही रही।

भिरावटी का उत्सव

श्रीमहाराजजी वहाँ से धनारी स्टेशन उतरकर अकस्मात् ही भिरावटी पहुँच गये। वहाँ लोगों ने जल्दी से दौड़-भागकर सब कुटियों की सफाई की। भिरावटी में रणवीरसिंह और बहादुरसिंह के बगीचे में चार-पाँच कुटियाँ बनीं हुई हैं इनमें कभी कभी महीनों ठहरकर आप बड़े-बड़े उत्सव किया करते थे। अत: अबकी बार भी वहीं ठहरकर आपने एक बड़े उत्सव की योजना की। आप वहाँ के लोगों से बोले, 'यदि उत्सव करना है तब तो ऐसा करो जो 'न भूतो न भविष्यति' हो। तन मन धन सब कुछ अर्पण करके प्राणों की बाजी लगा दो।'

बस, बहादुरसिंह की प्रमुखता में सब लोग उत्साहपूर्वक उत्सव करने को कटिबद्ध हो गए उन्होंने मुझे बुलाने के लिए प्रार्थना की तो आप बड़े नाराज हुए। आपने स्पष्ट कह दिया कि 'मैं तो उसे नहीं बुलाता यदि तुम लोग अपने प्राणों की बाजी लगाकर उत्सव कर सको तो करो, नहीं तो चुप हो जाओ।' बस, फिर किसी ने कोई आग्रह नहीं किया।

मेरे जीवन में यही एक ऐसा उत्सव था, जिसमें मेरी अनुपस्थिति रही। किन्तु इसमें विशेषता यह थी कि इस बार स्वयं आपने ही अपनी देख-रेख में सारे उत्सव का प्रबन्ध रखा था। नहीं तो, आप सर्वदा तटस्थ रहा करते थे। आप भीतर से तो चाहते थे कि ललिताप्रसाद आ जाय, किन्तु ऊपर से यदि कोई मेरा नाम लेता तो कह देते थे कि आप ही आ जायगा, बुलाने की कोई जरूरत नहीं है। उधर मुझे एक महीने तक तो समाचार ही नहीं मिला कि आप कहाँ हैं। अत: मैं शिवपुरी के मन्दिर और कुएँ की मरम्मत कराने में लग गया। काम बहुत बड़ा था, अत: मैं उसे ही जोरों से कराने लगा।

भिरावटी में आप पहले तो डेढ़ महीना सामान्य रूप से रहे। फिर धीरे-धीरे उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। पूज्य बाबा को भी बुलाने का उद्योग किया गया था। श्री श्रीमाँ आनन्दमयी को भी बुलाया गया। और भी कई विरक्त सन्त जहाँ-तहाँ से बुलाये गये। भक्त और सत्संगियों को बुलाने के लिये जहाँ-तहाँ

पत्र और आदमी भेजे गये। एक आदमी शिवपुरी भी आया। उसने सामान्यतया सभी से चलने के लिये कहा। किन्तु मेरे-जैसे अभिमानी आदमी को जब तक विशेष रूप से न बुलाया जाय, कहीं जाना असम्भव था। अतः मैंने शिवपुरी से सभी प्रमुख सत्सङ्गियों को भेज दिया, किन्तु स्वयं अपने काम में ही फँसा रहा मुझे तो उसके लिये यह अच्छा अवकाश मिल गया।

इधर, उत्सव के कार्यक्रम में पहिले तो डेढ़ महीने तक दोनों समय कीर्तन और दोनों समय तीन-तीन घण्टे श्रीमद्भागवत एवं भगवद्गीता आदि कई ग्रन्थों की कथा एवं अनुशीलन होने लगा। भिरावटी में कुछ अच्छे विद्वान्, संयमी और विचारवान् पण्डित हैं, श्रीमहाराजजी के अनन्य भक्त भी हैं। अतः यहाँ स्वाध्याय का क्रम बहुत अच्छा रहता है। इस समय वहाँ पं० रामदत्त शास्त्री, बाबू भगवद्दत्त, पं० छविकृष्ण, केशवदेव, गणेशदत्त, रामचन्द्र और बरोरा के पण्डित जयशंकरजी उपस्थित थे। स्वाध्याय में आपका खूब मन लगा। आप प्रत्येक ग्रन्थ की संस्कृत टीकाओं का विचार करके बड़ी ही सुन्दर और विशद व्याख्या करते थे, जिससे सब लोग लाभ उठा सकें। उस समय किसी को कोई शंका होती तो खूब प्रश्नोत्तर भी चलता था आप बड़े प्रेम से सब बात समझाते थे, जिससे वह विषय अच्छी तरह हृदयंगम हो जाय।

आश्विन मास की अमावस्या से उत्सव आरम्भ हुआ। बाहर से अनेकों विरक्त सन्त, भक्त और विद्वान् पधारकर उत्सव की शोभा बढ़ाने लगे। उनमें जो गृहस्थ भक्त थे उन्हें तो बस्ती में ही रईसों की कोठियों में ठहराया गया था और विरक्तों के ठहरने का प्रबन्ध बगीचे के लम्बे-चौड़े मैदान में अनेकों रावटियाँ लगाकर किया गया था। वहाँ सिरकी और बाँस लगाकर अनेकों फूस की कुटियाँ भी बनाई गई थीं। सत्सङ्ग रामलीला और रासलीला के लिए एक विशाल पण्डाल बनाया गया था तथा कीर्तन के लिये एक गोल मण्डप की रचना की गई थी।

हमारे यहाँ के उत्सवों में श्री श्रीमाँ आनन्दमयी सम्भवतः पहली बार इसी उत्सव में पधारी थीं। उनका स्वागत आपने बड़ी धूमधाम से किया। धनारी स्टेशन से माँ हाथी पर लाई गई थीं। जब वे भिरावटी के समीप पहुँची तो
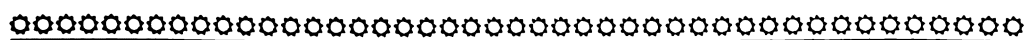
आप कुछ भक्तो के साथ कीर्तन करते हुए उन्हें लेने गये। उस समय का दृश्य बड़ा ही अद्‌भुत था। ऐसा प्रतीत होता था—

'जनु आनन्दसमुद्र दुइ, मिलत विहाय सुबेल।'

इस समय बरेली में पण्डित राधेश्यामजी कथावाचक भी माँ के साथ हाथी पर ही बैठे हुए थे। उन्होंने जब आपको आते देखा तो आपके सामने हाथी पर बैठा रहना धृष्टता समझकर उतरने की जल्दी की। उस जल्दी में वे हाथी से गिर गये। उनका स्थूल शरीर और वृद्धावस्था थी। ऐसी दुर्घटना से उनका जीवन सङ्कट में पड़ सकता था। परन्तु भगवत्कृपा से उनको बहुत सामान्य चोट आई। वे तो इसे श्रीमहाराजजी का ही एक चमत्कार मानते थे।

इस उत्सव में पूज्य श्रीबाबा अपने परिकर सहित पधारे थे। उनके अतिरिक्त श्रीवृन्दावनधाम से स्वामी रामानुजदासजी और पण्डित जगन्नाथजी भक्तमाली ने तथा ग्वालियर से बाबा श्रीरामदासजी ने पधारने की कृपा की थी। इन सभी महानुभावों के बड़े अद्‌भुत प्रवचन और उपदेश होते थे। कथाओं का भी बड़ा विचित्र रङ्ग था। एक तो भगवच्चरित्र स्वभाव से ही मधुर होते हैं, दूसरे भक्त महानुभावों द्वारा वर्जित, तीसरे श्रोता भी प्रेमी और परम श्रद्धालु। बस, सारे ही योग ऐसे मिले कि निरन्तर अमृत की वर्षा होने लगी। आनन्द की एक बाढ़ सी आ गई।

यहाँ रासलीला मण्डली तो पण्डित कुञ्जबिहारीजी की आई थी। वह श्रीकृष्ण लीलाओं का तथा ब्रह्मचारी प्रेमाननदजी के तत्त्वाधान में श्रीमन्महाप्रभुजी की लीलाओं का अभिनय करती थी। किन्तु रामलीला की कोई व्यवसायी मण्डली नहीं थी। वह तो श्रीमहाराजजी के कुछ लीलारसिक भक्तों का ही पुरुषार्थ था। उन्होंने अपने ही कुछ बालक और गाने-बजाने वाले एकत्रित करके यह लीला की थी। भक्तों के भावपूर्ण हृदयों से प्रकट होने के कारण यह रासलीला साक्षात् श्रीराम की ही लीला हो गयी। जिस समय जिस रस का प्रसङ्ग होता

था वही मूर्त्तिमान हो जाता था। इस अद्भुत लीला का दर्शक करके सभी दर्शन मुग्ध हो गये और भाव समुद्र में उछलने डूबने लगे।

इस उत्सव में और सब कार्यक्रम तो अन्य उत्सवों की तरह ही था, किन्तु एक नवीनता भी थी। प्रात:काल छः बजे ही आप बस्ती में प्रत्येक दिन क्रमशः एक-एक कीर्तन करते हुए बड़ी धूमधाम से पधारते थे। जिस दिन जिसके घर की बारी होती उसके आनन्द का कोई पारावार नहीं रहता था। वह तन मन धन से यथासाध्य उत्सव की तैयारी करता था। अपने घर से महाराजजी की कुटी पर्यन्त खूब सफाई और छिड़काव कराता था सर्वत्र झण्डियाँ और बन्दनवार लगाता था। अपने घर को भी लीप पोतकर अच्छी तरह सजाता और एक सुसज्जित सिंहासन पर श्रीभगवान् को विराजमान कराता। जब श्रीमहाराजजी पधारते तो घर के सब लोग प्रणाम करते और पण्डित हरियशजी आप को पुष्पमाला पहनाकर चन्दन लगाते। फिर सब भक्तों के भी प्रसादी चन्दन लगाया जाता। इसके पश्चात् आप बड़ी धूमधाम से कीर्तन करते। उस समय सभी लोग भावविभोर होकर नृत्य करने लगते थे और नामामृत का रसास्वादन करके उन्मत्त हो जाते थे। कीर्तन का विराम होने पर कुछ पदगान होता और स्त्रियाँ मङ्गल-गान करती थीं। फिर प्रसाद-वितरण होता और सब लोग यथा स्थान चले जाते थे।

इस प्रकार यह उत्सव एक महीने तक होता रहा। इसमें बहादुरसिंह का बड़ा विलक्षण पुरुषार्थ रहा। उसने तन, मन, धन और प्राणों की भी उपेक्षाकर सब प्रकार श्रीमहाराजजी की सेवा की। उन दिनों उसे खाने, पीने और सोने का भी होश नहीं था। पीछे श्रीमहाराजजी ने मुझसे स्वयं कहा था कि बहादुरसिंह तो पागल हो गया था। उसे दिन-रात का भी कुछ पता नहीं था। इसी प्रकार छविकृष्ण ने भी इस समय बड़ा भारी परिश्रम किया।

उत्सव की समाप्ति के दिन नगर-कीर्तन का प्रोग्राम रखा गया। उसमें भिरावटी वालों ने बड़ी भारी तैयारी की। सबने अपने-अपने घर लीप-पोतकर स्वच्छ कर दिये तथा गलियाँ साफ करके सर्वत्र बन्दनवार, कदलीस्तम्भ, मंगलकलश और ध्वजापताका लगा दिये। स्थान-स्थान पर मङ्गलद्वार बनवाये गये, चौराहों
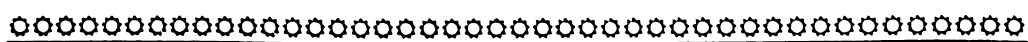
पर शामियाने लगाकर मण्डप तैयार किये तथा सभी ने अपने द्वारों पर बन्दनवार कलश स्थापित किये। इस प्रकार भिरावटी इस समय भूवैकुण्ठ बनी हुई थी। स्त्रियाँ और बालक जगह-जगह टोली बनाकर कीर्तन कर रहे थे। इधर श्रीमहाराजजी पूज्य बाबा, माँ श्रीआनन्दमयी और अन्यान्य सन्त एवं भक्तों के सहित नंगे पैर ही नगर-कीर्तन में चले। आज आपके आनन्द का पारावार नहीं था। दो-तीन खोल ढोलक, नगाड़ा और तबला आदि के साथ सैकड़ों जोड़ी करताल बज रही थीं। तथा महामन्त्र की तुमुल ध्वनि से आकाश गूँज रहा था। बस, सर्वत्र आनन्द की वर्षा हो रही थी। भक्तजन आनन्द में नृत्य करते हुए पृथ्वी पर लोट रहे थे। टोड़ीराम आदि कुछ भक्त तो श्रीमहाराजजी के आगे-आगे नृत्य करते चलते थे। आज तो ऐसा जान पड़ता था मानो नदियानागर श्रीगौरसुन्दर अपने भक्तपरिकर के सहित इस समाज में आविष्ट होकर दिव्य कीर्तन कर रहे हैं। आप सबको पागल बनाकर भी बराबर सचेत हैं, सबको प्रेमदान करके भी स्वयं प्रेम के भिखारी हैं तथा प्राणिमात्र को पुरुषार्थ-चतुष्टय लुटाकर भी स्वयं दीन-हीन-कंगला हैं। आप सर्वशक्तिमान् होकर भी तृणादपि सुनीच हैं, कर्त्तुम-कर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं समर्थ होकर भी तरोरिव सहिष्णु हैं, ब्रह्मादि के सेव्य होकर भी अमानी हैं और हरि होकर भी हरिनामकीर्तन में तत्पर हैं। इस प्रकार आप प्रेमानन्द में भरकर भिरावटी की गलियों में प्रेमामृत की वर्षा करके सब नर-नारियों को अलौकिक आनन्द प्रदान करते चले जा रहे हैं।

बीच-बीच में भक्तजन अपने-अपने भाव और योग्यता के अनुसार चन्दन एवं पुष्पमाला आदि से कीर्तन का स्वागत करते हैं। चौराहों पर, जहाँ विशेष मण्डप बनाये गये हैं, कुछ देर खड़े होकर कीर्तन की ध्वनि बदलकर तुमुल कीर्तन किया जाता है और फिर आगे बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार फिर दूसरे चौक पर कीर्तन बदलकर आगे बढ़ते हैं। रास्ते में दोनों ओर सहस्रों नर-नारी खड़े हुए पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। उनकी जय ध्वनि से आकाश गूँज रहा है।

इस प्रकार यह नगर कीर्तन सानन्द समाप्त हुआ। आज भिरावटी नवद्वीप बन गया। बहादुरसिंह का घर श्रीवास का आँगन बन गया। वह तो आज पागल

हो गया है, उसे अपने तन मन की सुधि नहीं है। यही दशा दूसरे भक्तों की भी है। सभी के नेत्रों से अनवरत अश्रु वर्षण हो रहा है। तथा कम्प, प्रस्वेद और पुलक आदि अष्ट सात्विक विकारों का आविर्भाव हो रहा है। विरक्त सन्त एवं समागत भक्तजन भी अपने-अपने भाव में विभोर हैं। मन भाव से पूर्ण हैं और शरीर थकान से बस—

'कोइ कछु कहै न कोइ कछु पूछा। प्रेमभरा मन निजगति छूछा॥'

अब, सब लोग बगीचे के वृक्षों की छाया में विश्राम कर रहे हैं। प्रसाद-वितरण हुआ और सब लोग अपने-अपने कार्यों में लग गये भोजन के पश्चात् दूसरा प्रोग्राम आरम्भ हुआ। उत्सव की समाप्ति के दिन बहुत बड़ा भण्डारा हुआ। फिर और सब सन्त एवं भक्तजन तो यथा स्थान चले गये, किन्तु माँ श्रीआनन्दमयी और हमारे बाबा अपने कुछ भक्तों के सहित वहीं रहे। रासमण्डली और रामलीला मण्डली भी विदा हो गयीं। बस, कीर्तन और सत्सङ्ग का प्रोग्राम पूर्ववत् चलता रहा।

इधर मैंने भी अपना शिवपुरी का काम जल्दी-जल्दी समाप्त करके विचार किया कि अब तो श्रीचरणों के दर्शन करने चाहिये। सो दीपावली के दो दिन पहले त्रयोदशी को मैं पहुँच गया। उस समय कथा हो रही थी। मैं जाकर एक ओर बैठ गया। आपने एक तिरछी निगाह से मेरी ओर देख लिया। कथा समाप्त होने पर आप कुछ बिगड़े और बहुत देर तक कुछ कहते-सुनते रहे। आप बोले, 'हमारा काहे का उत्सव है। सब दिखलावा मात्र है। देखो, इस ललिताप्रसाद का ही मेल नहीं मिलता। यह तीन कदम पर बैठा रहा और नहीं आया। मैं नित्य प्रतीक्षा करता रहा।' यह बात सुनकर मेरा हृदय तो टूक-टूक हो गया। मैंने जैसे-तैसे अपने भाव को रोका और कहा, 'महाराजजी! यहाँ न आकर मैं कौन-सा सुखी हो गया? मैं तो उसी दिन घोर विपत्ति में पड़ गया। मरते-मरते बचा हूँ। इसके सिवा, आपकी तो नाराजगी भी असीम कृपा ही है। 'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः।' किन्तु उसे देखकर दूसरे लोगों के भी भाव बिगड़ जाते हैं। अतः इन लोगों की उदासीनता देखकर और बहुत दिनों तक आपका कोई
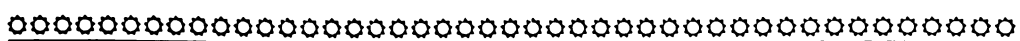
समाचार न पाकर मैंने वहाँ कुएँ और मन्दिर की मरम्मत का काम आरम्भ कर दिया था। अब उसे समाप्त करके आया हूँ।'

यह सुनकर आपने सब लोगों को बड़े प्रेम से समझाया और कहा, 'खैर, जो हुआ अब हम लोगों को मिलकर बड़ी तत्परता से कोई अनुष्ठान करना चाहिये। मेरे विचार से तो शतचण्डी करना ठीक होगा। इससे हमारी जन्म-जन्मान्तर की बिगड़ी बन सकती है। हम सबको दीनभाव से श्रीजगदम्बा की शरण ग्रहण करनी चाहिए। माँ बड़ी दयामयी हैं, पुत्र वत्सलता हैं, क्षमासमुद्र हैं। वे हमारे सब अपराधों को क्षमा कर देंगी। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।''

बस, सर्वसम्मति से शतचण्डी-अनुष्ठान निश्चित हो गया। अब इस विषय में विचार हुआ कि यह हो कहाँ? भिरावटी वालों की तो यही इच्छा थी कि यह यहीं हो, क्योंकि यहाँ सब प्रकार की तैयारी भी थी। किन्तु मेरा और कुछ अन्य भक्तों का यही विचार हुआ कि यह गंगातट पर बाँध पर होना चाहिए। तैयारी तो दो दिन में हो सकती है। ऐसी ही श्रीमहाराजजी की भी रुचि थी। अतः यह बाँध पर ही होना निश्चित हो गया। आपने सफाई के लिये गुलाबसिंह को आज्ञ दे दी। किन्तु भिरावटी वालों का विशेष आग्रह था, इसलिए अभी दीपावली तक दो दिन यहीं ठहरना स्वीकार कर लिया।

दीपावली का उत्सव भिरावटी वालों ने बड़ी धूमधाम से किया। उसमें सारी कुटियों पर रोशनी का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध किया गया था। श्रीमहाराजजी की कुटी पर तो बड़ी ही विचित्र रचना की गई थी। वह देखने ही योग्य थी, लिखकर उसका दिग्दर्शन नहीं कराया जा सकता। इस उत्सव का दूसरा प्रोग्राम प्रत्येक प्रमुख भक्त के यहाँ आपका पधारना था। वह दृश्य भी बड़ा ही अपूर्व था। आप भक्तपरिकर के सहित कुछ रईस और गरीब भक्तों के घर पधारे। उस समय उन्होंने अपने-अपने भाव और योग्यता के अनुसार आपका विभिन्न रूप से स्वागत किया। उनके हृदय का भाव अद्भुत ही था। आप भी उस समय बड़े प्रसन्न थे और खिलवाड़ में पड़ गये थे। आपने सब लोगों को बड़े-बड़े

वर दिये, अपने हाथ से प्रसाद बाँटा, प्रत्येक भक्त को स्वयं मालाएँ पहनायीं तथा लोगों से माँग-माँगकर प्रसाद खाया और लुटाया। उस समय भक्तों के आनन्द का कोई पारावार नहीं था। प्रत्येक भक्त के यहाँ उसके भाव के अनुसार आपका खिलवाड़ विचित्र ही होता था। यह तो सचमुच श्रीश्यामसुन्दर की माखन चोरी अथवा श्रीगौरसुन्दर की नवद्वीप भ्रमण लीलाओं का-सा दृश्य था। आज तो परम शान्त एवं गम्भीर समुद्र भी भक्तवात्सल्य-रूप वायु से विवश होकर विक्षुब्ध हो उठा। आज तरंग पर तरंग आ रहीं हैं। उनमें सब भक्त भी विभोर हो रहे हैं। आज इस प्रेमचन्द्र के प्रकाश से यह अज्ञानतमसाच्छन्न महारात्रि भी उद्भासित हो उठी है। बाहर तो असंख्य दीपकों की जगमगाहट है ही भीतर भी अनेकों सात्त्विक गुणों का प्रकाश हो गया। बस, सब लोग साक्षात् प्रेमदेव के साथ मिलकर दिवाली मना रहे हैं।

अमीरों के बड़े-बड़े प्रसादों में बड़ी तैयारी के साथ आपको अनेकों थालों में तरह-तरह के व्यञ्जन भेट किये गये, किन्तु आपने उदासीनतापूर्वक यही कह दिया कि प्रसाद बाँट दो। किन्तु जब एकनितान्त निर्धन भक्त टोड़ीराम ब्राह्मण की झोपड़ी में पहुँचे तो आप मचल गये। बोले, 'टोड़ीराम! मुझे तो बड़ी भूख लगी है मेरे प्राण निकल रहे हैं। कुछ खाने को दे।' बेचारा टोड़ीराम चरणों पर लोटकर रोने लगा। आप हँसकर बोले, 'आज रोने से काम नहीं चलेगा। खूब पेट भरकर खिलाना पड़ेगा।' तब टोड़ीराम ने सावधान होकर जो कुछ भी रूखा-सूखा उसके घर में था लाकर सामने रख दिया। उसकी भैंस का एक हाँडी दूध था। वह आपके आगे रख दिया तथा कहीं से एक-दो रुपये के बताशे भी ले आया। बस, आपने स्वयं कुछ प्रसाद पाकर दूध पिया तथा सब भक्तों को भी प्रसाद एवं दूध दिया। उसी समय उसका भाई रेवतीराम भी अपनी दूध की हाँडी ले आया तथा आस-पास से कई पड़ोसियों की भी हाँडियाँ आ गयीं। इस प्रकार गरीब टोड़ीराम का घर तो आज साक्षात् क्षीर भण्डार ही बन गया। उसकी हाँडी का दूध अक्षय हो गया। अनेकों भक्तों के पीने पर भी वह समाप्त न हुआ।
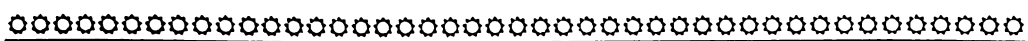
इस प्रकार भ्रमण-लीला समाप्त करके आप अपनी कुटी पर पधारे। तब वहाँ विशेष रूप से दीपावली मनाई गई। पण्डित हरियशजी ने दीपकों द्वारा बड़ी विचित्र रचना की थी। उन्होंने उनकी पंक्तियों द्वारा धनुष, बाण, शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि की आकृतियाँ तथा ॐ, राम, सीताराम, राधेश्याम आदि भगवन्नाम अङ्कित किये थे। बड़ा ही अद्भुत दृश्य था। उसे देखने के बाद प्रसाद बाँटने की आज्ञा हुई, वहाँ एक ओर खीलों का और दूसरी ओर मिठाइयों का ढेर लगा हुआ था। जनता भी हजारों की संख्या में एकत्रित थी। बस, सबको बैठाकर प्रसाद बाँट दिया गया। फिर सब लोग सो गये। प्रातःकाल आप उठे और कुछ लोगों को साथ लेकर बाँध की ओर चल दिये। पीछे कुछ लोग सवारियों द्वारा चले गये।

शतचण्डी अनुष्ठान

आप कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को ही बाँधपर पहुँच गये और उसी दिन वहाँ अखण्ड कीर्तन आरम्भ हो गया। उसके साथ ही और सब प्रोग्राम भी निश्चित हो गया। दो-तीन दिन बाद शतचण्डी अनुष्ठान की भी तैयारी होने लगी। भिरावटी और हरिदासपुर के पण्डित एकत्रित हुए, बरोरा से पण्डित जयशंकर, नित्यानन्द और जौहरीलाल तथा बहट से पण्डित रामलाल आ गये। इनके सिवा जहाँ तहाँ से कुछ और भी पण्डित आ गये। बस, श्रीदुर्गासप्तशती का सम्पुट सहित पाठ आरम्भ हुआ। कुछ पण्डित अनुष्ठान की निर्विघ्न समाप्ति के लिये गायत्री जप और श्रीगोपाल-सहस्रनाम का पाठ करने लगे। पाठ के पीछे नित्य ही दशांश हवन होता था। यह प्रोग्राम प्रातःकाल ८ बजे से १२ बजे तक चलता था। इसके पश्चात् दोपहर बाद २। से ५ बजे तक कथा, ६ से ७ तक समष्टि कीर्तन और रात्रि को ८ से १० बजे तक अपने भक्त परिकर की लीला होती थी।

इस समय महाराजजी अकेले ही थे। हमारे बाबा तो अपने भक्त परिकरके सहित भिरावटी से ही अनूपशहर एवं कर्णवास आदि की ओर चले गये थे तथा माँ श्रीआनन्दमयी भी कहीं अन्यत्र चली गई थीं। बाँध पर इस तरह का अनुष्ठान पहली बार ही हो रहा था। यों श्रीदुर्गासप्तशती के पाठ तो कुछ भक्तों के साथ मिलकर आप दोनों नवरात्रों में किया करते थे। यह अनुष्ठान कार्तिक शुक्ला पञ्चमी को आरम्भ हुआ और नौ दिन में त्रयोदशी को समाप्त हो गया। चतुर्दशी को हवन तर्पण और मार्जन कराया गया तथा कुमारी और कुमारों का भोजन हुआ। उसी दिन साधु, ब्राह्मण तथा दरिद्रनारायण का भण्डारा भी हुआ तथा सब भक्तों ने भी प्रसाद पाया।

इन्हीं दिनों श्रीमहाराजजी के अनन्यशरण भक्त सागरमल को दमा का दौरा पड़ गया। उन्हें उससे बहुत कष्ट था। अतः यह विचार हुआ कि कार्तिकी पूर्णिमा को आस-पास के सभी दमारोगियों को खीर में दवा * दी जाय तथा और सब लोगों को भी खूब खीर खिलायी जाय, क्योंकि शरद्पूर्णिमा पर भिरावटी में खीर का यथेष्ट प्रबन्ध नहीं हो सका था। अतः पच्चीस मन दूध तो भैंस का मँगाया गया और रोगियों के लिये सात मन गाय के दूध का प्रबन्ध हुआ। आस-पास के सब गाँवों में सूचना कर दी गयी कि जितने भी श्वांस के रोगी हों पूर्णिमा की सायंकाल में आ जायँ और रात भर जागकर भजन करें। दूसरे दिन प्रातःकाल उन्हें खीर में दवा खिलायी जायगी। बस, सब गाँवों में हल्ला मच गया और प्रायः एक सहस्र रोगी एकत्रित हो गये।

सायंकाल में खीर बनी। उसे मिट्टी की चौड़ी-चौड़ी प्यालियों में भरकर पीली कुटी की छत पर मुंडोलियों पर लगा दिया। छत के ऊपर ही श्रीमहाराजजी के साथ हम लोग और कुछ खास-खास रोगी बैठे। और सब रोगी नीचे रहे तथा उन्हें जगाकर भजन कराने के लिये कुछ आदमी नियुक्त कर दिये गये। ऊपर 'अपार-करुणासिंधुर्भगवान् भक्त तत्परः', यह सम्पुट लगा कर श्रीगोपालसहस्रनाम का पाठ आरम्भ हुआ। फिर कई ध्वनियों का कीर्तन किया गया तथा कुछ स्तोत्रों का पाठ हुआ। प्रातःकाल चार बजे भगवान् को भोग लगाकर खीर में तुलसी पत्र छोड़ा गया और

*** यह वही दवा है जो प्रतिवर्ष शरत्पूर्णिमा पर चित्रकूट में दमा के रोगियों को खिलायी जाती है।**
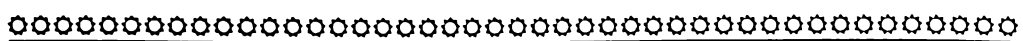
सब प्यालियों में दवा डालकर उन्हें बाँटा गया। लोग दवा खाकर चले गये, उससे न्यूनाधिक रूप में सभी को लाभ हुआ।

इस प्रकार यह उत्सव अपने ढंग का निराला ही हुआ किन्तु उस प्रान्त के लोगों का भाव उतना अच्छा नहीं देखा गया जैसा कि श्रीमहाराजजी चाहते थे। भगवान् की माया सचमुच बड़ी प्रबल है। वह अच्छे-अच्छे तपस्वी और संयमियों के भी छक्के छुड़ा देती है, फिर इन बेचारे ग्रामीणों की तो बात ही क्या थी। बाँध बँधने से इधर के लोग अन्न-धन से पूर्ण हो गये थे। उन्हें अब किसी अभाव का अनुभव नहीं होता था। अत: वे प्रमाद में फँसकर बाँधकर्त्ता की महिमा को भूल गये। इसी प्रकार हम लोग भी अनेकों मायिक प्रलोभनों में फँसकर मायापति से विमुख हो गये। हमारे चित्तों पर आसुरी सम्पत्ति का अधिकार हो गया। हमें परस्पर कलह होने लगा। दो चित्त भी आपस में एक न हो सके। हम निरन्तर परदोष-दर्शन करने लगे तथा वृथाभिमान में फूलकर श्रीमहाराजजी के पास रहते हुए भी उनसे कोसों दूर हो गये। साधन-भजन में भी हमारी रुचि न रही। तथा आपस में भी वैमनस्य रहने लगा।

इन्हीं कारणों से पहले श्रीमहाराजजी ने बाँध छोड़ा था तथा दया से अभिर्भूत होकर बार-बार हमें सचेत किया था। किन्तु हमारी मोह-निद्रा दूर न हुई। हम लोग अभिमान में डूबकर एक दूसरे की उपेक्षा करने लगे। अमीर लोग अमीरी के अभिमान में रहे और गरीब भी बाँध की कृपा से फल-फूलकर कुछ सुखी हुए तो उन्मत्त से हो गये। पण्डित अपनी पण्डिताई के और साधु अपनी साधुताई के अभिमान में चूर हो गये। इस प्रकार अपने-अपने दूरभिमान के कारण सभी अलग-अलग हो गये। ऐसा विप्लव देखकर श्रीमहाराजजी ने भी हमारी ठपेक्षा कर दी। अत: बाँध भी धीरे-धीरे श्रीगङ्गाजी के गर्भ में जाने लगा। इस समय तक जैसी स्थिति रही है, उससे यही अनुमान होता है कि एक दिन श्रीद्वारकापुरी की तरह यह भी विलीन हो जायगा और इसकी केवल कहानी रह जायगी। यह तो एकमात्र आपका ही सङ्कल्प था। अत: आपका सङ्कल्प शिथिल होने पर कैसे ठहर सकता है।

श्रीमहाराजजी तो बार-बार हमें सचेत करने का प्रयत्न करते थे। उनके बहुत प्रयत्न करने पर भी जब हमें चेत नहीं होता था, तभी उन्हें भागने की सूझती थी। अबकी बार भी ऐसा ही हुआ। पहले तो हम सब पर बहुत रुष्ट हुए और प्राय: चौबीस

घण्टे पीली कुटी के सामने मिट्टी में मूर्च्छित-से पड़े रहे। बहुत प्रयत्न करने पर भी वहाँ से न उठे। न शौच, न स्नान, न भोजन, न जलपान। बड़ी भयङ्कर स्थिति में पड़े रहे। हम लोग घबरा गये और बहुत प्रयत्न करने पर भी न समझ सके कि वास्तव में क्या कारण है। हाँ मोटे-रूप से यही अनुमान किया गया कि हम लोगों की वर्तमान दुर्दशा और भावी विपत्ति तथा पारलौकिक हानि को देखकर ही आपका हृदय करुणा से उद्विग्न हो उठा है। इसीसे आपको ऐसा प्राणान्त कष्ट हुआ है, क्योंकि—

'संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पै कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। परदुःख द्रवहिं सुसंत पुनीता॥'

इस बार भिरावटी और बाँध पर निरन्तर चार महीने आपने घोर परिश्रम किया। फिर भी जैसा आप चाहते थे वैसी परिस्थिति नहीं बन सकी। इसी से आपका धैर्य टूट गया है और आप अत्यन्त मर्माहत होकर मूर्च्छित हो गये हैं।

आपका हृदय समुद्र के समान गम्भीर था। आपकी किस चेष्टा का क्या अभिप्राय है—यह समझना सामान्य मानवबुद्धि के लिये असम्भव था। कभी आप ऊपर से तो प्रसन्न दिखायी देते, किन्तु भीतर विरहाग्नि से सन्तप्त रहते। इस प्रकार कभी ऊपर से तो किसी व्यक्ति पर अत्यन्त असन्तुष्ट जान पड़ते, किन्तु भीतर से उस पर आपका अत्यन्त स्नेह रहता। किन्तु किसी भी अवस्था में बाहरी आडम्बरों पर आपकी दृष्टि कभी नहीं जाती थी। आपका तो सदा से निरन्तर ही एक लक्ष्य रहा है। वह है—'येन केन प्रकारेण श्रीकृष्णस्मरणं भवेत्'—किसी भी प्रकार निरन्तर भगवद्च्चिन्तन बना रहे। आपको किसी भी सम्प्रदाय विशेष का आग्रह नहीं है। आप तो सच्चाई के उपासक हैं और सभी का समान रूप से आदर करते हैं। आपको संत-चरित्र और भगवत्कथाओं से प्रेम है और उसमें भी किसी प्रकार की साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं है। संत चाहे किसी भी देश, जाति अथवा सम्प्रदाय का हो, आप तो केवल यही देखते हैं कि उसमें कितना त्याग है, कितनी लगन है, कितनी दैवी सम्पत्ति है और भगवत्प्राप्ति के लिए कितनी व्याकुलता है। आप कहा करते हैं—'हमको गुणग्राही होना चाहिये। अदोषदर्शी होकर ही हम उस सर्वदोषोपहारी हरि को प्राप्त कर सकते हैं, पतित होकर ही हम पतितपावन के पास पहुँच सकते हैं तथा दीन होकर

ही उस दीनबन्धु के दरबार में जा सकते हैं। यदि हम चाहते हैं कि श्रीभगवान् हमारे अपराधों को क्षमा करें तो उसका सबसे सुगम साधन यही है कि हम अपने से सम्बन्ध रखने वाले लोगों के सभी अपराधों को क्षमा कर दें, कभी किसी के दोष या अपराधों पर दृष्टि न डालें, क्योंकि वास्तव में सब रूपों में हमारा प्यारा इष्टदेव ही तो क्रीड़ा कर रहा है।'

आपका कथन है कि श्रीभगवान् तो सर्वरूप हैं। ऐसा कोई भी गुण या क्रिया नहीं है, जिसके आश्रय श्रीभगवान् नहीं हैं। उनमें सभी प्रकार के विरोधी गुण पाये जाते हैं। भगवन् शिव को ही देखो। वह शवस्वरूप होकर भी शिव (कल्याणमय) हैं। उनकी जटाओं में सत्त्वस्वरूप श्रीभागीरथी की शीतलधारा और अमृतमयी चन्द्रकला विराजमान हैं तो उन्हीं के साथ तमोमय विषधर सर्प और प्रलयाग्निपूर्ण तृतीया नेत्र भी वहीं हैं। उनके वामाङ्ग में त्रैलोक्यसुन्दरी भगवती उमा हैं तो वही मुण्डों की माला और भयङ्कर सर्प भी हैं। एक ओर उनका वाहन वृषभ है तो उसी के सामने श्रीजगदम्बका का वाहन सिंह भी बैठ हुआ है। एक ओर गणेशजी का वाहन मूषक है तो दूसरी ओर कार्तिकेयजी का वाहन मयूर भी है। किन्तु श्रीभोलानाथ जी की सन्निधि में ये अपना वैर-विरोध छोड़कर परमशान्त हो गये हैं। इसी प्रकार हमें भी संसार की सब प्रकार की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में समानरूप से वर्तते हुए सर्वथा शान्त रहना चाहिये और निरन्तर अपने शुद्ध सच्चिदानन्दमय स्वरूप का स्मरण रखते हुए भगवद्च्चिन्तन करना चाहिए। हमें कभी किसी से किसी प्रकार का वैर-विरोध या ईर्ष्या-द्वेष नहीं करना चाहिये।

किन्तु हमलोग प्रमादवश आपके इस अमूल्य सदुपदेश का पालन करने में असमर्थ रहे। आपने हमें चेताने और भगवद्-भजन में लगाने की भरसक चेष्टा की, परन्तु हम जैसे के तैसे ही रहे। इससे आपका हृदय टूट गया और आप अत्यन्त मर्माहत हो चौबीस घण्टे तक मूर्च्छा की-सी स्थिति में पड़े रहे। यह देखकर हम लोग घबरा गये और किंकर्त्तव्यविमूढ होकर बहुत दुःखी हो गये। तब हमने अत्यन्त दीन होकर आपसे प्रार्थना की कि आपकी इस अवस्था में हम लोगों का क्या कर्त्तव्य है यह कुछ समझ में नहीं आता। तब आप उठे और बोले 'एक घण्टे में तुम सब आना, तब विचार

करेंगे। अभी मैं स्नानादि से निवृत्त हो लूँ।' आपके ऐसा कहने पर हमारी जान में जान आयी। मैं अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगा। तब आप डाँटकर बोले, 'इस समय जाओ, जो कुछ होना है स्वयं ही होगा। तुम्हारे रोने से कुछ नहीं होगा।'

बस, एक घण्टे पीछे हम सब लोग एकत्रित हुए। तब आपने इस विषयपर विचार करना आरम्भ किया कि अब हमें क्या करना चाहिये। हम सबने तो यही कहा कि जैसा आप उचित समझें करें। आप किसी भी परिस्थिति में रहें, किन्तु प्रसन्न रहें। इस पर आप बोले, 'तुम सब एक मत से जो बात तय करोगे या तो मैं वही करूँगा, क्योंकि सबकी एक मति में भी भगवदिच्छा निहित रहती है, या फिर जैसी भगवदाज्ञा हो वह किया जाय।' किन्तु हमने तो यही प्रार्थना की कि जिसमें आपकी प्रसन्नता हो वही करें। जब इस प्रकार कुछ निश्चय न हो सका तो आपने चिट्ठी डालकर भगवदाज्ञा लेने का निश्चय किया। अतः 'अज्ञातवास' 'बाँधपर निवास' 'वृन्दावनवास' और 'होशियारपुर जाना' ये चार चिट्ठीयाँ लिखकर भगवान् के सामने रखी गयीं। फिर मिलकर कीर्तन किया तथा सभी ने एकाग्र चित्त से प्रार्थना करके गीता का यह श्लोक उच्चारण किया—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वाँ धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नं।।

इसके पश्चात् उक्त चार गोलियों में से एक उठायी तो उसमें 'वृन्दावनवास' लिखा हुआ था। अतः यही अन्तिम निर्णय रहा। सबने चुपचाप इसे स्वीकार लिया।

आप उसी दिन बाँध से भीषमपुर चले गये। वहाँ भी सब लोग पहुँचे। तब आपने समझा-बुझाकर आठ आदमियों की एक कमेटी बना दी। उसमें ये लोग थे— कुँवर गुलाबसिंह, रामेश्वर प्रसाद, बाबू कुन्दनगिरि, पण्डित हरियशजी, चौधरी रूपरामसिंह, खुशीराम, बहादुरसिंह और मैं। इस कमेटी को यह आज्ञा हुई कि तुम सब आपस में मिलकर इस प्रान्त के गाँव-गाँव में कीर्तन का प्रचार करो तथा बाँध की मरम्मत कराते हुए गौरपूर्णिमा के उत्सव की तैयारी करो। यदि तुम सब ठीक-ठीक काम करते रहे और बाँध पर अखण्ड कीर्तन भी होता रहा तो सम्भव है होली के उत्सव पर मैं भी आ जाऊँ।

इस प्रकार सबको आश्वासन देकर आप वृन्दावन चले गये। हम लोगों ने लौटकर आपस में विचार किया और कार्य का प्रोग्राम बनाया। फिर सब लोग अपने-अपने घर चले गये और मैं बाँध पर चला आया। पीछे एक-दो आदमियों ने दो-चार दिन मेरे साथ गाँवों में जाकर प्रचार किया। किन्तु फिर सब अपने-अपने घर के धंधों में लग गये और माया की मोहमयी गोद में पड़कर अचेत हो गये। किसी को भी अपने कर्त्तव्य का स्मरण न रहा। हाँ, केवल पण्डित हरियशजी और चण्डीप्रसाद बराबर मेरा साथ देते रहे। हम लोग नित्य प्रात:काल गाँवों में जाकर कीर्तन करते और व्याख्यान देते थे तथा बाँध के अखण्डकीर्तन के लिये कीर्तनकारों की पार्टियाँ निकालकर लाते थे। इसके सिवा हम गाँव-गाँव में उत्सवों की योजना भी करते थे। जिस गाँव में उत्सव होता था वहाँ के लोग आपस में चन्दा करके भोजन-भण्डारा का प्रबन्ध करते थे और आस-पास के प्रमुख भक्तों को निमन्त्रित करते थे। वहां सब लोग मिलकर सफाई करते तथा किसी प्रमुख स्थान को लीप-पोत कर बढ़िया मण्डप बनाते थे। जगह-जगह कदलीस्तम्भ खड़े करके बन्दनवार बाँधते तथा कलश स्थापित करते थे। वहां चौबीस घण्टे का अखण्ड कीर्तन होता तथा दूसरे दिन जब बांध से हम लोग पहुँचते तो खूब धूमधाम से समष्टि कीर्तन किया जाता था। उस समय बड़ा ही आनन्द आता था ऐसा जान पड़ता था मानो श्रीमहाराजजी यहीं उपस्थित हैं। इस प्रकार हमारा यह प्रोग्राम पौष या माघमास तक चला।

सन् १९४५-४६ के उत्सव

आप तो वृन्दावन में थे। इधर होली का अवसर समीप आ रहा था, हमने आपका विचार जानने का प्रयत्न किया तो मालूम हुआ कि आप तो इस वर्ष श्रीवृन्दावन में ही होली करेंगे। किन्तु मेरा विचार हुआ कि बाँध पर भी किसी-न-किसी रूप में अवश्य उत्सव होना चाहिए, क्योंकि आपने जाते समय हमें ऐसी ही आज्ञा दी थी। अत: मैंने गाँवों से कुछ चन्दा किया और उत्सव की तैयारी करने लगा। वहाँ और

तो कोई सहायक था नहीं, गवां के बाबू कुन्दनगिरि अवश्य कुछ सहानुभूति रखते थे। उनके सिवा महाशय सुखरामगिरि और चण्डीप्रसाद जी ने भी मेरा हाथ बँटाया। हाँ, भाईसिंह ने पूरी सहायता की। रईसों से तो मैंने कोई सहायता माँगी नहीं थीं, साधारण ग्रामीणलोग तो स्वयं ही सब काम करने के लिये तैयार हो गये, मैंने पण्डित हरियशजी तथा कुछ अन्य लोगों की सहायता से बाँध के अखण्ड कीर्तन के अतिरिक्त एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त बड़ी धूम-धाम से गाँव-गाँव में अखण्ड कीर्तन कराये। गौरपूर्णिमा के दिन सारे गांवों की मण्डलियाँ अपना-अपना भोजन लेकर आई और सौ आदमियों ने बड़ी धूम-धाम से कीर्तन किया।

दूसरे दिन प्रतिपदा को बड़ा भण्डारा हुआ। इस उत्सव में भोजन की व्यवस्था केवल आज ही की गयी थी। और दिन तो मण्डलियां अपने घर से भोजन लेकर आती थीं। इस भण्डारे में केवल तीन-चार हजार आदमियों के भोजन का प्रबन्ध था। किन्तु निमन्त्रण था प्राय: तीस गांवों को। अत: उस दिन तो विचित्र चमत्कार ही हो गया। भोजन में पूड़ी, शाक और दही-बूरा था। कुछ शक्कर और चावलों का भी प्रबन्ध किया गया था। श्रीमहाराजजी की अनुपस्थिति के कारण बाहर के लोग तो आये नहीं थे, जिन्हें इस बात का पता नहीं था ऐसे केवल दस-बीस आदमी ही आये थे। गवां और भिरावटी के भक्तजन भी वृन्दावन चले गये थे। यद्यपि श्रीमहाराजजी ने इन्हें बांध पर ही उत्सव करने की आज्ञा दी थी, तो भी प्रेमाधिक्य के कारण ये आपकी सन्निधि में ही पहुँच गये थे। किन्तु इससे आप प्रसन्न नहीं हुए वृन्दावन के उत्सव में पूज्य बाबा के सङ्कोच से यद्यपि आप सम्मिलित तो हुए, किन्तु रहे कुछ उदासीन ही और बाँधप्रान्त के भक्तों से बोले तक नहीं।

हमारे बाँध के उत्सव में चौधरी खुशीराम, ठाकुर भोलासिंह और बाबू कुन्दनगिरि ने भोजन बनवाने में बड़ी सहायता की। इस उत्सव में कीर्तन भी बहुत चमत्कारपूर्ण हुआ। पूर्णिमा के दिन सायंकाल की आरती के समय तो खुशीरामजी तथा अन्यान्य भक्तों को साक्षात् श्रीमहाराजजी घण्टा बजाकर नृत्य करते दिखायी दिये। मुझे भी उस दिन अन्य उत्सवों की अपेक्षा अधिक उत्साह और आनन्द का अनुभव

हुआ। दूसरी विशेषता यह थी कि इस बार भण्डारे में अन्य उत्सवों की अपेक्षा दरिद्रनारायण का विशेष सत्कार हुआ। अन्य उत्सवों में तो अतिथि नारायण की प्रधानता होने के कारण इन बेचारों की पूछताछ कम ही होती थी। इसके सिवा उस समय भोजन भण्डार पर अमीर नारायण का पहरा रहता था, इसलिये दरिद्रों का सत्कार नहीं हो पाता था। किन्तु इस बार तो सब दरिद्र ही दरिद्र थे। इसलिये अपने सजातियों का हमने खूब सत्कार किया।

पहली पंक्ति में ही बाँध के ऊपर तो साधु, ब्राह्मण और अन्य द्विजातिमात्र बैठाये गये तथा नीचे भङ्गी, चमार कञ्जड़ आदि अन्त्यजों को एक ही पंक्ति में बैठाकर उन्हें परोसने का अलग प्रबन्ध कर दिया। हमारे पाठक कहेंगे कि यह कैसा पागल है जो बार-बार भोजन की चर्चा करने लगता है। परन्तु मैं क्या करूँ? मुझे तो उस समय साक्षात् 'समत्वमाराधनमच्युतस्य' की उक्ति चरितार्थ होती दिखाई दे रही थी। इस दिव्य भाव का साक्षात् अनुभव तो मुझे उसी उत्सव के भण्डारे में हुआ। मुझे उस समय सभी में अपने इष्ट का अनुभव हो रहा था। मेरी दशा विचित्र थी। भोजन परोसने वाले तो दूसरे ही लोग थे। मैं तो पागल की तरह कभी ऊपर कभी नीचे हाथ जोड़कर गद्गद् कण्ठ से सबको आग्रहपूर्वक भोजन करने के लिये कह रहा था। अपनी उस समय की अवस्था को इस जड़ लेखनी से मैं किस प्रकार व्यक्त करूँ?

इससे पहले जब मैं भोजन-भण्डार में भोग लगाने के लिये गया तो उसी समय मेरी अवस्था पागलों की-सी हो गयी थी। वहाँ प्रार्थना करते समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि श्रीमहाराजजी अपने दिव्य पार्षदों के सहित आकाश मार्ग से उतरे हैं और भोजन भण्डार में भोग लगाकर आज्ञा कर रहे हैं कि तुम्हारा भण्डार अक्षय हो गया है अतः तुम भेदभाव छोड़कर सबको एक साथ भोजन करने के लिये बिठा दो। इसीसे मुझे ऐसी प्रेरणा हुई थी। बस, वह पंक्ति सानन्द समाप्त हुई। फिर बाँध के कार्यकर्त्ता और आस-पास के गाँवों के लोगों की पंक्ति पर पंक्ति बैठने लगीं। इसी समय मैंने दो-तीन आदमी भेजकर दीपपुर, मोहलनपुर, हरिदासपुर, धर्मपुर, उमेदपुर और सिलारा आदि आस-पास के गाँवों में घण्टाघोष के साथ सूचना करा दी कि भाई सब लोग बाँध पर प्रसाद पाने के लिये चलो।

बस, फिर क्या था ? दल पर दल आने लगे पंगत पर पंगत बैठने लगीं। इस प्रकार रात के बारह बज गये, किन्तु भोजन समाप्त नहीं हुआ। जब लोगों का आना बन्द हो गया, तो भण्डार बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल आठ बजे मोहलनपुर के बालक और बाँध के कर्मचारियों की पंगत लगी तथा जिसको चाहा मुक्तहस्त से वितरण किया गया। तब कहीं दोपहर को दही बूरा समाप्त हुआ। इस प्रकार इस भण्डार के अक्षय होने की प्रसिद्धि सब ओर हो गयी। वृन्दावन में हमारे कौतुकी सरकार ने भी यह बात सुनी और अपने मुख से कई बार इस कीर्तन और उत्सव की प्रशंसा की।

इस प्रकार सन् १९४५ की होली का उत्सव आपने वृन्दावन में ही किया। उसमें प्रतिवर्ष के अनुसार रासलीला, गौरलीला सत्सङ्ग और कीर्तन का आनन्द रहा। उसके पश्चात् भी आप बराबर श्रीवृन्दावन में ही रहे। वहाँ कथा, कीर्तन और सत्सङ्ग आदि का क्रम नियमानुसार चलता रहा। पूज्य बाबा के यहाँ प्रतिवर्ष की गुरुपूर्णिमा, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, शरत्पूर्णिमा, दीपावली, अन्नकूट, होली और रामनवमी के उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं। इधर दो-तीन वर्ष से मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को गीताजयन्ती का उत्सव भी होने लगा था। इस वर्ष आपने इसका विशेष रूप से आयोजन किया। इन दिनों पण्डित लक्ष्मणजी की मण्डली का रास हो रहा था। उसके साथ अपने भक्तपरिकर के कुछ लोगों ने मिलकर स्वामी प्रेमानन्दजी का, ❋ लिखा हुआ श्रीकृष्णविजय नाम का नाटक खेला। वह नाटक बहुत सुन्दर हुआ था। उसके पश्चात् मध्याह्न में सबने फलाहार किया और मध्याह्नोत्तर तथा रात्रि में अनेकों विद्वानों और महात्माओं के भाषण हुए। वक्ताओं में प्रधान थे व्रजविदेही महन्त श्रीकाठिया बाबा जी, स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी, स्वामी श्रीरामानुजदासजी, गोस्वामी विजयकृष्णजी, गोस्वामी अनन्तलालजी और आयुर्वेदाचार्य पण्डित उमाशङ्करजी। इस उत्सव का सबसे पहला कार्यक्रम था सम्पूर्ण गीता का पाठ। यह प्रातःकाल ६से ७ बजे तक

❋ अब ये ब्रह्मचारी से संन्यासी हो गये थे।
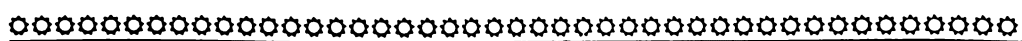
स्वामी अखण्डानन्दजी के नेतृत्व में निष्पन्न हुआ। इस प्रकार यह उत्सव बड़े ही समारोह का हुआ।

अब माघमास आ गया था। गतवर्ष तीन वर्षों से बाँध पर उत्सव न होने के कारण बाबा के मन में कुछ उथल-पुथल हुई कि इस बार तो बाँध का उत्सव अवश्य होना चाहिये। आपने हमसे इस विषय में चर्चा की तथा हमारे द्वारा यह बात श्रीमहाराजजी के कानों में भी पहुँच गयी। पूज्य बाबा का संकल्प जानकर एक दिन सत्सङ्ग की समाप्ति पर आपने बाबा से कहा, 'यदि आपका विचार बाँध पर उत्सव करने का हो तो अभी निश्चय हो जाना चाहिये।' अतः दूसरे ही दिन हम दो-चार आदमियों के साथ आपकी कुटी में इस पर विचार किया गया, तब आपने अपनी अगली पिछली सब बातें कहकर उत्सव की अनिच्छा प्रकट की। किन्तु हमारे बाबा ने जोर देकर कहा, 'नहीं, हमारा बाँध का उत्सव अवश्य होगा।' इस पर आपने अपना आग्रह छोड़ दिया और उत्सव का विचार करके यही निश्चय किया कि मुझे इसकी तैयारी के लिये अभी चला जाना चाहिए। अतः आप माघ कृष्ण द्वितीया को ही बाँध पर चले गये और उत्सव की तैयारी करने लगे।

उस समय गङ्गाजी ने पीली कुटी आधी काट दी थी। आपने जितना भाग बचा था उसी पर बड़े परिश्रम से बाबा के लिए कुटी तैयार करायी तथा एक महीने तक रात-दिन परिश्रम करके गाँवों से हजारों आदमियों की मदद लाकर उस भग्नावशिष्ट बाँध को पुनः दिव्य और भव्य बना दिया। ठीक शिवरात्रि के दिन बाबा पहुँचे। उस दिन रात्रि को दीपमालिका हुई और बड़े समारोह से बाबा की पूजा की गयी। माघ पूर्णिमा से अखण्ड कीर्तन भी आरम्भ हो गया था। पण्डित चेतराम की रासमण्डली आयी। उसने रासलीला और गौरलीलाओं का अभिनय किया। अनेकों संत महात्मा और विद्वान् आये। उनके प्रवचन और उपदेश हुए। माँ श्रीआनन्दमयी भी अपने कुछ भक्त परिकर के सहित पधारी। इस प्रकार सदा की भाँति यह उत्सव भी बड़े समारोह से हुआ।

उत्तरखण्ड

माँ श्रीआनन्दमयी के साथ

ऊपर हम कई बार माँ श्रीआनन्दमयी की चर्चा कर चुके हैं। हमारे बहुत से पाठक आपके पवित्र सुयश से अपरिचित होंगे। इसलिये यहाँ आपके विषय में कुछ पंक्तियाँ लिखना अप्रासंगिक न होगा। माँ वर्त्तमान समय में संसार के प्रधानतम महात्माओं में हैं। आपने पूर्व बंगाल के एक निर्धन किन्तु निष्ठावान् ब्राह्मण परिवार को अपने आविर्भाव से गौरवान्वित किया था। आपकी शिक्षा-दीक्षा भी सामान्य ही हुई है। किन्तु आपके दिव्य विग्रह को आश्रित करके स्वभाव से ही सब प्रकार की साधनाएँ प्रकट हुई थीं। तथा सभी में आपने ऊँची से ऊँची सिद्धि प्राप्त की थी। आपका जीवन अत्यन्त चमत्कार-पूर्ण और अलौकिक अनुभवों से सम्पन्न है। इस समय आपके भक्तों में ऊँचे से ऊँचे विद्वान्, सरकारी अफसर, धनिक और राजा-रईस आदि भी हैं। आपके अन्दर सरलता, सरसता, उदारता, समता, प्रसन्नता आदि सभी प्रकार की दैवी सम्पद् का बड़े अपूर्वरूप से विकास हुआ है। आपके भक्त तो आपको साक्षात् जगज्जननी माँ दुर्गा के रूप में ही देखते हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस समय इतना सहज स्नेह और उन्मुक्त आनन्द किसी अन्य महापुरुष में प्राय: नहीं देखा जाता। बंगाल में तो इस समय जैसा आपका मान है वैसा सम्भवत: किसी महापुरुष का नहीं है।

इधर कुछ वर्षों से हमारे श्रीमहाराजजी का माताजी के प्रति अधिकाधिक श्रद्धाभाव होता जा रहा है। आप सत्सङ्ग और कथाओं के समय अन्य ग्रन्थों की तरह कई बार श्रीमाताजी के जीवन-चरित्र या उपदेशों की कथा भी कहा करते हैं। इस वर्ष बांध के उत्सव पर माताजी कुछ भक्तों के सहित पधारी ही थीं। आपके भक्त बहरामपुर (बंगाल) में एक उत्सव की योजना पहले से ही कर चुके थे माँ की मुख्य

शिष्या दीदी * वहाँ जाकर सारा प्रबन्ध कर आई थीं। माँ के साथ ही आपका भी वहाँ जाना निश्चित हो गया। अतः आप उत्सव समाप्त करके प्रतिपदा के सायंकाल में ही बंगयात्रा के लिये बबराला स्टेशनपर पहुँच गये। आपके साथ बाँध एवं शिवपुरी के प्राय: पचास भक्त जानेवाले थे। अत: वे सब भी सवारियों द्वारा स्टेशन पर आ गये। बबराला से रात को ही बरेली पहुँचे, वहाँ माताजी के भक्त एवं इन्जीनियर साहब ने सबका बड़े प्रेम से स्वागत किया। वहाँ से कलकत्ते के लिये पहले से ही एक बोगी रिजर्व करा ली थी। अत: दिन भर बरेली में रहकर रात को डाकगाड़ी से काशी के लिये प्रस्थान किया।

लखनऊ स्टेशन पर माताजी के भक्तों ने स्वागत की बड़ी तैयारी की हुई थी। अत: जैसे ही गाड़ी स्टेशन पर पहुँची वहाँ 'माँ श्रीआनन्दमयी की जय' 'श्रीहरिबाबा की जय' के घोष से आकाश गूँज उठा। गाड़ी ठहरते ही श्रीमाताजी, महाराजजी तथा अन्य सब लोग उतर पड़े, वहाँ जोशीजी की प्रधानता में स्वागत की बड़ी भारी योजना की गई थी। उन लोगों ने दोनों महापुरुषों को पुष्पमालाओं से ढक दिया। दोनों के आगे फल और मिष्ठान्न के ढेर लग गये। अनेकों बड़े-बड़े आदमी इनके दर्शनों से अपने को कृत-कृत्य मान रहे थे। बस, एक आनन्द का बाजार-सा ही लगा था लोगों ने ठहरने का बहुत आग्रह किया। किन्तु पहले से प्रोग्राम तो जाने का ही था। इसलिये विवशता बतलाकर पुन: गाड़ी में बैठ गये। इस स्वागत-समारोह के कारण कुछ देर गाड़ी को भी लेट होना पड़ा फिर सब लोगों को रोते छोड़कर वह जङ्गम तीर्थराज आगे को चल दिया और सब लोग निर्दिष्ट समय पर काशी पहुँच गये।

यहाँ भदैनी में गंगातट पर श्रीमाताजी का आश्रम है। अत: सब लोग उतर गये। स्थानीय भक्तों ने स्टेशन पर स्वागत किया फिर सब लोग सवारियों द्वारा आश्रम में पहुँचे। यहाँ तीन दिन ठहरने का प्रोग्राम था। अत: समयानुसार कथा-कीर्तनादिका

---

* 'दीदी' या श्रीगुरुप्रियादेवी माँ के एक प्रधान भक्त श्रीशशाङ्क मोहन मुकर्जी की पुत्री हैं। इनके पिता सिविल सर्जन थे और पीछे स्वामी अखण्डानन्दगिरि नाम से संन्यासी हो गये। श्रीगुरुप्रियादेवी बालब्रह्मचारिणी हैं। इन्हें सम्भवत: माँ का सबसे अधिक साथ रहा।

क्रम चलने लगा। यहाँ बंगाली भक्तों की श्रद्धा सराहनीय थी। कुछ बालक और बालिकाओं ने बड़े ही मधुर स्वर से पदगान किया। तीन दिन बात ही बात में निकल गये। पूजनीया माँ और श्रीमहाराजजी ने हम लोगों का पूरा ध्यान रखा। दीदी बढ़िया से बढ़िया सत्सङ्ग और कीर्तनादिका प्रबन्धकर रही थीं। भोजन में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं थी। भोजन बंगाली था। इसलिए पहले तो कुछ कम अनुकूल पड़ा, किन्तु फिर उससे धीरे-धीरे हमारा भेद कम होने लगा।

यहाँ से डाकगाड़ी द्वारा हम कलकत्ता पहुँचे। वहाँ एक बहुत बड़े बंगाली बाबू के यहाँ ठहरे। उनके यहाँ मण्डप की तैयारी तथा कथा, कीर्तन और नाटक आदि का प्रबन्ध देखकर हम अवाक् रह गये। कुछ बच्चों का पदगान तो बड़ा ही विलक्षण हुआ। एक अस्सी वर्ष के वृद्ध गायक थे। उनके मुँह में एक भी दांत नहीं था। किन्तु कण्ठ कोयल के समान मधुर और सुरीला था। ऐसा ही उनका ताल-स्वर का गम्भीर ज्ञान था तथा हृदय भी अत्यन्त भावपूर्ण और सरस था। जब ये गाते थे तो ऐसा जान पड़ता था मानो कोई दस वर्ष का बालक गा रहा है। यह सब देखकर तो यही निश्चय हुआ कि गान-तान की जैसी कुशलता बंगालियों में है वैसी इस देश के लोगों में नहीं है। रात्रि को कुछ बच्चों ने मिलकर नाटक किया। वह भी अपूर्व ही हुआ। इस प्रकार यहाँ हम तीन दिन ठहरे।

इसके पश्चात् हम रेलवे द्वारा कलकत्ता से दक्षिण की ओर बहरामपुर गये। यहाँ तो स्वागत का बड़ा ही अपूर्व समारोह था। उसे देखकर तो हम एक दम दङ्ग रह गये। यहाँ कई बैण्ड बाजों के साथ कई कीर्तन मण्डलियाँ माताजी के स्वागत के लिये आयी थीं। बैण्ड बाजों में एक बहुत बढ़िया था। उसमें प्रायः पचास बजाने वाले थे। और बाजे प्रायः बीस-बीस आदमियों के थे। उस समय वहाँ के भक्त नर, नारी और बालकों का उत्साह अत्यन्त सराहनीय था। वे सभी भावविभोर हो रहे थे। उनके कण्ठ गद्गद् थे तथा उन्हें अश्रु, पुलक, कम्प आदि कई सात्त्विक विकार हो रहे थे। उस समय वे 'माँ शब्द का ही कीर्तन कर रहे थे।' माँ को देखते ही वे प्रेमातिरेक से पागल हो गये तथा अपनी आनन्दमयी माँ की आनन्दमयी गोद में आनन्दपूर्वक शयन करने के लिये दुग्धपोष्य शिशु की तरह मचल गये। इधर माँ भी अपने अबोध
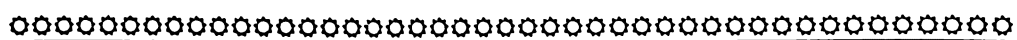
बालकों को स्नेहसिक्त नेत्रों से निहार कर मानो उन पर प्रेमामृत की वर्षा कर रही थीं। माताजी का ऐसा अचिन्त्य प्रभाव देखकर हमारे सरकार तो मानो सहज समाधि में मग्न थे। तथा हम लोग चकित-से होकर इस अलौकिक दृश्य को देख रहे थे।

अब समागत जनता एक जुलूस बनाकर चलने लगी। सबसे आगे बढ़िया बैण्ड बाजा रहा। उसके बाद कुछ जनता और एक कीर्तन मण्डली रखी गयी। इस प्रकार क्रमशः अन्य बाजे और कीर्तन मण्डलियाँ रहीं। इस तरह यह जन समुदाय प्रायः एक मील लम्बे जुलूस में परिणत हो गया। श्रीमाताजी का आश्रम यहाँ से चार मील दूर था। यह एक लाख मनुष्यों का जुलूस निरन्तर नामघोष और जयघोष करता उस आश्रम की ओर चला। वहाँ पहुँचकर हम लोग यथा स्थान ठहराये गए। फिर जलपान के पश्चात् कीर्तन की व्यवस्था हुई। बस, आज तो कीर्तन में अपना अलौकिक चमत्कार दिखाकर हमारे सरकार ने बहरामपुर की भक्त जनता को मुग्ध कर दिया।

पूजनीया माँ को 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द। हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द' यह ध्वनि बहुत पसन्द है। आज आपने इसीका कीर्तन आरम्भ किया। पहले दो-चार बार प्रणव और राम नाम का दीर्घ स्वर में उच्चारण करके आपने शनैः शनैः कीर्तन को ऊँचा उठाया और फिर सिंहनाद करते हुए अत्यन्त गद्गद् कण्ठ से स्थायी अन्तरा के क्रम से दो बार नीचा और दो बार ऊँचा उच्चारण करके जब मण्डल के बीच में घण्टा बजाते हुए नृत्य आरम्भ किया तब उस समय की छटा तो अलौकिक हो उठी। आज मनोहर भी खोल बजाते हुए उन्मत्त हो रहा था, राधेश्याम तबला पर और किशोरीनन्दन हारमोनियम पर बिखरे पड़ते थे तथा हम लोग बड़ी तन्मयता से झांझ बजा रहे थे। इसी प्रकार जयराम नक्कारचीके नक्कारे, एक बंगाली महानुभाव के मृदङ्ग और अन्य अनेकों बंगालियों की करताल ध्वनि से अकाश गूँज रहा था। आज कीर्तन में किसी को होश नहीं था। सभी लोग थिरक-थिरक कर नृत्य कर रहे थे। उधर माताजी भी चित्रपुत्तलिका की तरह एक और मातृमण्डल के आगे खड़ी थीं जिस समय पहली ध्वनि के पश्चात् श्रीमहाराजजी मण्डलाकार घूमते हुए, उछल-उछल कर नृत्य करने लगे और आपके पीछे हम दो-चार आदमी उसी भावभङ्गी

से चले तथा मनोहर बंगालियों की तरह ही अङ्ग भङ्गी से उछलता खोल बजाने लगा उस समय तो वह कीर्तन विश्वविजयी हो गया। वहाँ उपस्थित बंगाली कीर्तनाचार्य इस अलौकिक कीर्तन को देखकर दंग रह गये और मन ही मन कहने लगे कि ऐसा कीर्तन या तो नवद्वीप में श्रीगौरसुन्दर का सुना गया था या आज अपने चर्मचक्षुओं से यह प्रत्यक्ष देखा है।

इस प्रकार जब उपस्थित जनता कीर्तनानन्द में निमग्न थी और कीर्तन दिव्य भावतरङ्गों से तरङ्गायमान हो रहा था उसी समय पूजनीया माँ भी आनन्दातिरेक से उन्मत्त और ऊर्ध्वबाहु होकर अपने घूर्णित एवं प्रफुल्लित नेत्रों से आनन्दामृत की वर्षा करती हमारे साथ मण्डल में घूमने लगीं। अब तो महाराजजी का आनन्द और भी सौ गुना बढ़ गया। वे समस्त भक्तपरिकर के साथ उन्मत्त से होकर नृत्य करने लगे। बस, सारी जनता मुग्ध हो गयी।

इस प्रकार यह कीर्तन प्रायः दो घण्टे तक होता रहा। किन्तु हमें तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो दो क्षण भी नहीं बीते। हम सभी के चित्त उत्साह से उछल रहे थे, किन्तु हमारे मर्यादापुरुषोत्तम सरकार तो सबको पागल बनाकर भी स्वयं सहजावस्था में ही स्थित थे। यहाँ दो दिन में महामन्त्र का अखण्ड कीर्तन चलता रहा। अतः आपने भी कीर्तन ध्वनि को महामन्त्र में बदलकर प्रणाम किया और वहाँ से चल दिये। इस बंग-यात्रा में आपने कीर्तन में विशेष शक्तिसञ्चार कर दिया। बरेली से चलने पर बनारस और कलकत्ते में भी ऐसे कई दिव्य कीर्तन हुए थे। किन्तु यहाँ विस्तारभय से उनका विवरण नहीं लिखा गया।

आप प्रणाम करके अपने निवास-स्थान पर चले आये। श्रीमाताजी तो भगवती के मन्दिर में ठहरी थीं और वहीं हमारा सीताराम बाबा भी था। किन्तु हमारे महाराजजी के लिये तो आपने एकान्त और पवित्रता के विचार से अलग ही एक फूस का छप्पर डलवा दिया था। यहाँ मच्छरों का बहुत जोर था। अतः माताजी ने आग्रह पूर्वक सबके लिये जालीदार मछहरी भेज दी थी। हम लोग पास ही एक स्कूल में ठहरे थे। यहाँ के मच्छारों से तो हम घबरा गये थे। किन्तु कीर्तन और कथा के समय
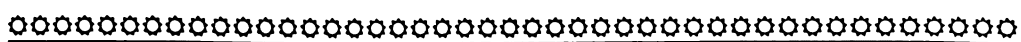
यह सब बातें भूल जाते थे। भगवती के मन्दिर के पास ही एक टीन का बंगला-सा बनाकर दुर्गापूजा का आयोजन किया गया था। शाक्तों का यह सबसे बड़ा उत्सव है और साल में नवरात्रों के समय दो बार इसका अनुष्ठान होता है। आश्विन में इसे शारदीपूजा कहते हैं और चैत्र में बासन्तीपूजा। इस समय तन्त्रोक्त विधि से मिट्टी की चतुर्भुजा अष्टभुजा अथवा दसभुजा मूर्ति बनाकर उसकी विधिवत् प्राणप्रतिष्ठा की जाती है और फिर तन्त्रोक्त पद्धति के अनुसार षोडशोपचारों से उसकी अष्टयाम पूजा होती है। इस पूजा में तरह-तरह के दिव्य भोग और बहुमूल्य वस्त्रादि भेंट किये जाते हैं। यह शाक्तों का एक यज्ञ ही होता है। हमने तो जीवन में पहली वार ही यह उत्सव देखा था। हमारे यहाँ जैसे कर्मकाण्डोक्त यज्ञों का विधान होता है वैसा ही यह दुर्गा-पूजा का महोत्सव है। कोई-कोई भक्त तो इस समय जगदम्बा के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। इस प्रकार बंगाल में नवदुर्गा के समय यह महोत्सव घर-घर मनाया जाता है।

भाई! हम लोग तो रामधुन करने वाले ठहरे। इस विधि-विधान में हमारी रुचि होनी कठिन ही थी। यह तो प्रात:काल ६ बजे से १२ तक का अखण्ड प्रोग्राम था हमें तो यह शुष्क और नीरस ही प्रतीत होता था। किन्तु उन लोगों की श्रद्धा तो सराहनीय थी। हम तो कभी-कभी दर्शन कर आते थे। किन्तु हमारे महाराजजी तो प्रात:काल तीन-चार घण्टे उसमें बड़े मनोयोग से सम्मिलित होते थे।

एक दूसरे मण्डप में नियमित क्रम से कथा, कीर्तन, सत्सङ्ग और नाटक प्रोग्राम चलता था। उसमें दो सहोदर पण्डित रामरसायनजी की बड़ी अपूर्व कथा चाहते थे। उनकी कथनशैली बड़ी विचित्र थी। उनमें छोटे भाई तो बाजा बजाते थे, आप छोटी सी करताल बजाकर कथा कहते थे और एक अन्य व्यक्ति तबला बजाता था। उनकी मधुर कण्ठ से गायी हुई बंगालीभाषा पदावली की हम सबको मुग्ध कर देती थी। इसी प्रकार उनकी आख्यायिकाएँ भी बड़ी मनोमोहक और भावपूर्ण होती थीं। ऐसी आख्यायिकाएँ हमने पहले कभी नहीं सुनीं। उनकी वर्णन शैली ऐसी सुन्दर और सुबोध थी कि हमसे कई लोगों को बंगभाषा का न होने पर भी उनकी बातें बहुत प्यारी लगती थीं।

एक नाटकमण्डली जिसे बंगाली लोग 'यात्रा' कहते थे, किसी धार्मिक नाटक का अभिनय करती थी। उनका गाना, बजाना तथा नाट्य भी दर्शनीय था। हास्य रस का भी बड़ा ही अद्‌भुत अभिनय करते थे। एक दिन किसी कालेज के विद्यार्थियों ने भी मन्दिर में एक नाटक खेला, उसे देखकर तो हम अवाक् रह गये।

एक दिन पञ्चवटीस्थापन का उत्सव हुआ। उस स्थान पर कुछ झाड़ी-सी थी और पृथ्वी भी ऊँची-नीची थी। अतः पहले तो श्रीमहाराजजी ने हम लोगों को साथ लगाकर उसकी सफाई की और फिर अत्यन्त परिश्रम करके गोल मण्डालाकार पाँच गड्ढ़े खोदे। सवेरे दस बजे का मुहूर्त्त था। उस समय खूब कीर्तन किया गया। फिर वास्तुपूजन और स्वस्तिवाचनपूर्वक श्रीमाताजी ने उन गड्ढ़ों में क्रमशः बड़, पीपल, आम, अशोक और आंवले के पाँच वृक्ष लगाये। इसके पश्चात् प्रसाद-वितरण हुआ। यह पञ्चवटी-स्थापन माताजी के सभी आश्रमों में होता है। यह बंगाल की एक प्राचीन प्रथा है।

हमारे श्रीमहाराजजी का तो सभी सन्तों में स्वभाव से ही प्रेम और श्रद्धा का भाव हो जाता है। किसी के दोष देखना अथवा किसी में अश्रद्धा करना तो आप जानते ही नहीं हैं। फिर श्रीमाताजी तो एक सर्वमान्य सन्त हैं। उनमें आपकी गम्भीर श्रद्धा होनी तो स्वाभाविक ही थी। उधर माताजी तथा दीदी भी पहले ही से तथा विशेषरूप से इस यात्रा में सब प्रकार श्रीमहाराजजी की प्रसन्नता का ध्यान रखती थीं। उन्होंने यथासम्भव सब प्रोग्राम सुन्दर ही बनाया और धीरे-धीरे भोजनादि की व्यवस्था भी अनुकूल हो गयी। हमारा रसोइया स्वयं ही हमारे अनुकूल दाल, रोटी और शाक आदि बना लेता था। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि इतने बड़े शहर में ढूँढने पर बड़ी कठिनता से तवा मिला। वहाँ तो सब लोग भात ही खाते हैं।

बंगालियों का गान-तान तथा नाट्य का कौशल देखकर हम लोग तो मुग्ध हो गये। कुछ सुशिक्षित बालिकाओं का कीर्तन भी अत्यन्त सराहनीय था। वे निरन्तर तीन-चार घण्टे तक कीर्तन करती थीं। उनका उत्साह, प्रेम और परिश्रम अवश्य प्रशंसनीय था। इसी प्रकार वहाँ कुछ रईस और गरीब भक्तों की श्रद्धा भी बड़ी विलक्षण
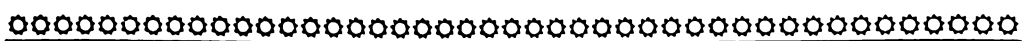
थी। उनका अतिथि-सत्कार अपूर्व था। कभी-कभी उनके घरों में भी उत्सव हुए। इस प्रकार वहाँ खूब आनन्द रहा।

फिर वैशाख कृष्णा को हम लोग वहाँ से कलकत्ता आये। वहाँ दो-तीन दिन ठहरकर नवद्वीप गये। यहाँ एक सप्ताह ठहरने का प्रोग्राम था। श्रीमाताजी और महाराजजी तो श्रीगोविन्ददेवजी के मन्दिर में ठहरे और हम लोगों को भजनाश्रम में ठहराया गया श्रीगोविन्ददेवजी की सेवा-पूजा का प्रबन्ध बड़ा ही विलक्षण है। यहाँ सर्वथा शास्त्रमर्यादा से पूजा होती है। श्रीठाकुरजी का शृङ्गार भी अपूर्व था। उन्हें लाखों रुपये के जवाहिरात और दिव्य वस्त्राभूषण धारण कराये जाते थे। दिन में कई बार नया शृङ्गार होता था। प्रसाद वितरण की भी यहाँ सुन्दर व्यवस्था है। प्रसाद के द्वारा अतिथियों का सत्कार भी किया जाता है। भोजन के पश्चात् मन्दिर में नियमित रूप से दो घण्टे तक श्रीमद्भागवत तथा गौडीय सम्प्रदाय के उज्ज्वलनीलमणि षट्सन्दर्भ अथवा कृष्णकर्णामृत आदि ग्रन्थों की दिव्य कथा होती है। उसके वक्ता एक श्रीपाद नित्यानन्दजी के वंशधर गोस्वामी थे। वहाँ का प्रोग्राम बहुत ही बढ़िया रहा। सात दिन तक हमने श्रीठाकुरजी का प्रसाद ही सेवन किया। भजनाश्रमवालों ने भी हमारा अच्छा सत्कार किया। एक दिन गौडीयमठ में भी सत्संग एवं कीर्तन हुआ तथा काजी की कब्रपर भी कीर्तन किया गया। वहाँ धोबी के उद्धार की गौरलीला भी हुई। हमारे सीताराम बाबा धोबी बने।

इस प्रकार नये-नये दृश्य और स्थान देखकर इस यात्रा में हमें बड़ा सुख मिला। किन्तु बंगाली भोजन से हम तङ्ग आ गये और हमें जन्मभूमि की महिमा याद आने लगी। अतः जब पुनः लौट कर कलकत्ते में आये तो हमने आपसे इधर लौटने के लिये प्रार्थना की। किन्तु श्रीमाताजी का आग्रह अभी आपको साथ रखने ही का था। अतः हमें तंग आया देख आपने जिनकी रुचि देखी ऐसे पाँच-सात आदमियों को छोड़कर और सबको विदाकर दिया। बस, हम लोग हावड़ा जंकशन पर डाकगाड़ी में सवार हुए। किन्तु यहाँ भीड़ के कारण हमें प्राणान्त कष्ट हुआ। अभी कुछ प्रारब्ध शेष था, इसीसे जीवित बच गये।

अब हम लोग तो इधर आ गये और आप माताजी के साथ ढाका चले गये, वहाँ माताजी के दो आश्रम हैं। उनमें बड़े आश्रम में ठहरे। यहाँ कई वर्षों से एक अखण्डधूनी जल रही है। तथा नवाबसाहब का प्राचीन बाग और घुड़दौड़ का मैदान आदि कुछ दर्शनीय स्थान भी हैं। ढाका में भी कथा कीर्तन और सत्सङ्ग का खूब रङ्ग जमा तथा स्वागतसत्कार की भी अच्छी धूम रही। वहाँ एक सप्ताह रहकर वैशाख के शुक्लपक्ष में पुनः कलकत्ता आ गये। वहाँ छब्बीस दिन तक माताजी के जन्मोत्सव का समारोह रहा। उसमें अखण्डकीर्तन, कथा, यात्रा, नाटक और अनेकों बालक-बालिकाओं के गान एवं नृत्य आदि हुए। तरह-तरह के खेल-कूद भी किये गये। अतः श्रीमहाराजजी यहाँ खूब प्रसन्न रहे।

ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष में यहाँ से एक दिन के लिये भुवनेश्वर होते हुए श्रीजगन्नाथपुरी पधारे। वहाँ तीन दिन ठहरकर टाटा नगर में टाटा का लोहे का कारखाना देखते हुये सीतारामपुर गयेँ वहाँ का उत्साह एवं कथा कीर्तन और सत्संग का क्रम सराहनीय था इस जगह एक बंगाली ने बड़े अद्‌भुत जादू के खेल दिखाये।

अब इधर का प्रोग्राम समाप्त हो गया और सब लोग दिल्ली चले आये। यहाँ नई दिल्ली में बाबू आदित्यनारायण के यहाँ ठहरे। ये दिल्ली के अच्छे रईस आदमी हैं और अमीरी ठाठ से रहते हुए भी एक उच्च-कोटि के भक्त हैं। श्रीश्यामसुन्दर के प्रति इनका बड़ा गम्भीर प्रेम है। ये सचमुच कोई उच्च-कोटि के योगभ्रष्ट प्राणी हैं। अपना भेद ये किसी पर प्रकट नहीं करते। केवल कुछ सन्तों के साथ और विशेषतः हमारे महाराजजी से ही इनका निःसंकोच भाव है। इनके द्वारा अनेकों सुप्रसिद्ध सन्तों की सेवा होती रहती है। इनके घर पर कोई भी सन्त या भक्त आ जाय, उसकी ये यथासाध्य सेवा करते हैं। इनका सारा परिवार ही वैष्णव-भावसम्पन्न है। तथा सभी लोग नियम से भजन करने वाले हैं। जहाँ कहीं विशेष सत्सङ्ग होता है वहीं ये मोटर द्वारा पहुँच जाते हैं और अधिक से अधिक सत्सङ्ग लाभ करते हैं।

अस्तु यहाँ भी सत्सङ्गादिका अच्छा आनन्द रहा। फिर श्रीमाताजी के साथ आप सोलन चले गये। सोलन के राजा श्रीदुर्गासिंह जी बड़े ही विनम्र, उदार, सन्तसेवी
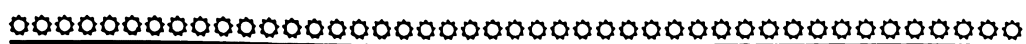
और सौम्य प्रकृति के सज्जन हैं। श्रीमाताजी में इनकी बड़ी गहरी श्रद्धा है। राजगुरु महोदय भी माताजी के अनन्य भक्त हैं। एकबार भावावेश के समय माँ के मुख से अप्रचलित भाषा में कुछ स्तोत्र निकले थे। उनकी इन्होंने पांडित्यपूर्ण व्याख्या की है। वह व्याख्या आप नित्य-प्रति कथा के रूप में सुनाया करते थे। सोलन में सत्संग का रङ्ग खूब जमा। यहाँ एक विलक्षण सन्त पधारे हुये थे। वे थे स्वामी श्रीशरणानन्दजी। आप बड़े ही निष्ठावान् विरक्त और प्रतिभाशाली महात्मा हैं। आप प्रज्ञाचक्षु हैं। आपका आध्यात्मिक ज्ञान अपूर्व है। वेदान्त, योग, भक्ति, कर्म अथवा लौकिक व्यवहार का कैसा ही अटपटा प्रश्न हो आप नपे-तुले शब्दों में उसका ऐसा सरल और सुबोध उत्तर दे देते हैं कि सुनने वाले दङ्ग रह जाते हैं। आपके उत्तर एक प्रकार के सूत्र ही होते हैं। आप बड़े ही प्रसन्न-वदन, शान्त, गम्भीर और उदार प्रकृति के सन्त हैं। श्रीआनन्दमयी माँ के प्रति आपका बड़ा आदरता का भाव था। जिस समय आप एक अबोध दुग्ध-पोष्य शिशु की तरह 'माँ! माँ!' ऐसा कहते थे, वह कैसा प्यारा लगता था। हमारे श्रीमहाराजजी तो बार-बार आपसे ऐसा कहलाया करते थे। आपके प्रश्नोत्तर 'सन्तसमागम' नाम से पुस्तककार भी प्रकाशित हुए हैं।

हमारे श्रीमहाराजजी तो राजा साहिब की निजी कोठी में, जो राजमहल के समीप ही थी, ठहरे थे। वह स्थान बहुत एकान्त था। श्रीमाताजी एक नवीन आश्रम में ठहरायी गयी थीं। वहाँ कीर्तन और सत्सङ्ग भी होता था। श्रीमहाराजजी जिस कोठी में ठहरे थे वह वहाँ से एक मील दूर थी। किन्तु राजासाहब के बहुत आग्रह करने पर भी आप कभी मोटर में नहीं बैठे, सर्वदा ऊँची नीची पगडण्डी से पैदल चलकर प्रत्येक प्रोग्राम में आते रहे।

ऊपर लिखा जा चुका है कि कुछ दिनों से आप सत्सङ्ग के समय अन्य ग्रन्थों की तरह पूजनीया माँ की जीवनी की कथा भी कहा करते हैं। यह कथा कभी-कभी माताजी की उपस्थिति में होती है। उस समय कई घटनाओं का निर्णय आप स्वयं श्रीमाताजी से कराते जाते हैं। यहाँ भी यही क्रम चलता था। सो आप के पूछने पर कभी तो माता जी कुछ कह देती थी और कभी कहने लगतीं, 'पिताजी! मैं तो आपकी

बच्ची हूँ, पगली हूँ पागलपन में न जाने क्या-क्या कह दिया है।' उस समय महाराजजी स्वामी शरणानन्दजी से कहते, 'स्वामीजी! अब तो आप बालक की तरह माँ! माँ! कहकर पुकारें तो भले ही माता जी कुछ बता दें। हमारे-जैसों को तो इन्होंने ऊपर से ऊपर ही टाल दिया है।' इस प्रकार कभी-कभी सत्सङ्ग के समय खूब कुतूहल भी हुआ करता था।

इस सत्सङ्ग-मण्डल में एक प्रधान मातृभक्त थे डॉक्टर पन्नालालजी। आप उच्च कोटिके विद्वान् और राजनीति-विशारद हैं। अपने पूर्व जीवन में आप कई ऊँचे सरकारी पदों पर रह चुके हैं। अवकाश ग्रहण करने के समय आप संयुक्त प्रान्त के गवर्नर के सलाहकार थे। अब तो आपने आध्यात्मिक साधना के लिये श्रीमाताजी का ही आश्रय ले लिया है। आप बड़े ही सरल, संकोची और मितभाषी हैं। माताजी से तो आप बालककी तरह प्रश्न करते रहते थे। संस्कृत में भी आपकी बहुत अच्छी योग्यता है। अतः श्रीमद्भागवत के स्वाध्याय के समय आप भी एक संस्कृत टीका लेकर बैठते थे। बँगला साहित्य का भी आपने अच्छा अनुशीलन किया है। जिस समय श्रीमहाराजजी चैतन्य-चरितामृत का स्वाध्याय करते थे, उस समय ये भी उसकी एक अच्छी टीका लेकर बैठते थे। इन दिनों श्रीमहाराजजी से इन्होंने श्रीनारदभक्तिसूत्र का अध्ययन भी किया था। यहाँ के स्वाध्याय एवं सत्संग में ये प्रमुख व्यक्ति थे। पाश्चात्य शिक्षाप्रणाली के प्रकाण्ड पण्डित होने पर भी आप भारत की सनातन संस्कृति और सभ्यता के पक्षपाती हैं। कभी-कभी आप पाश्चात्य प्रणाली के अनुसार श्रीमहाराजजी से प्रश्न भी किया करते थे। उनके अत्यन्त सूक्ष्म और सरल उत्तर सुनकर आप चकित हो जाते थे। समय का इन्हें भी पूरा ध्यान रहता था। इसलिये श्रीमहाराजजी इनसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

इस प्रकार सोलन के सत्सङ्ग में आप खूब प्रसन्न रहे। राजा साहब बड़ी सावधानी से आपकी सेवा का ध्यान रखते थे। माता जी भी आपका सब प्रकार ध्यान रखती थीं। तथा दीदी बार-बार हर एक बात की देख-रेख करती रहती थीं। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण वहाँ का जलवायु भी बहुत सुहावना था अतः आषाढ़ शुक्ला
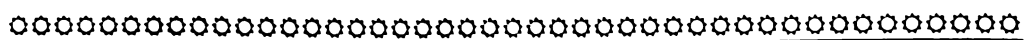
गुरुपूर्णिमा का उत्सव यहीं करने का निश्चय हुआ। तब आपने बाँध, गवां, भिरावटी और शिवपुरी को भी चिट्ठियाँ डलवा दीं। अत: गुरुपूर्णिमा से एक दिन पहले हम सब लोग पहुँच गये। आप पुत्रवत्सला माँ की तरह हम सबको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और घनश्यामसिंह को भेजकर दीदी की देख-रेख में सबके ठहरने का प्रबन्ध करा दिया। वहाँ का अद्‌भुत सत्सङ्ग समारोह तथा राजा साहब और रानी साहिबा की श्रद्धा एवं सेवा देखकर हम लोग अवाक् रह गये। हमारे भोजन का भी बंगालियों से पृथक् उचित प्रबन्ध कर दिया गया।

उत्सव के लिये एक बड़ी कोठी में सुन्दर मण्डप सजाकर अखण्ड कीर्तन की व्यवस्था हुई। शिमला से बहुत से बंगाली भक्त पधारे। ये सभी कीर्तन करने वाले थे, चतुर्दशी को रात्रि के दस बजे उनका अधिवास कीर्तन हुआ। उसमें ये लोग गद्‌गद् कण्ठ होकर बंगलापदों का गान करते हुए पार्षदों सहित 'श्रीगौरहरि' का आवाह्न करते थे। उस समय इनका भाव बड़ा ही अलौकिक था। ये सभी लोग बड़े-बड़े पदाधिकारी और उच्चकोटि के भक्त थे। कोरे वैतनिक कीर्तनिया नहीं थे। उनका अधिवास कीर्तन सुनकर सभी लोग दंग रह गए। प्रात:काल ६ बजे से अखण्ड कीर्तन आरम्भ हुआ। उस समय श्रीमहाराजजी ने हमसे कहा कि तुम लोग बंगालियों के अनुगत होकर कीर्तन करो। अत: हम सब तथा माताजी के परिकर और वहाँ रहनेवाले सब भक्तजन भी एक साथ मिलकर कीर्तन करते हुए सिंहासन के चारों ओर घूमने लगे। आप घण्टा बजा रहे थे, हम लोग करताली बजाते तथा राधेश्याम तबला और मनोहर खोल बजा रहे थे। उस दिन आपने ६ से ११ बजे तक निरन्तर पाँच घण्टे कीर्तन किया। आप उन्मत्त प्राय: हो रहे थे तथा और सब भी उन्मत्त होकर नृत्य कर रहे थे। माता जी भी हमारे साथ एक हाथ ऊँचा उठा कर नृत्य करने लगीं। उस समय बंगाली महानुभावों ने प्रेम से छककर दिव्य कीर्तन द्वारा सारी जनता को आनन्द से सराबोर कर दिया। सभी प्रेमामृत से छक गए।

ग्यारह बजे आप कीर्तन से अलग हुए और स्नान करके बैठे। उसी समय बाँध प्रान्त के लोग अपनी-अपनी पूजा की सामग्री लेकर आ गए। राधेश्याम,

खुशीराम तथा दो-चार अन्य भक्त तो आपके भोजन पर बैठते ही आ गये थे। अत: उन्होंने तो आपको चन्दन लगाकर मालाएँ पहना दीं और प्रसाद भी भेंट कर दिया। किन्तु फिर आपने मना कर दिया और कह दिया कि जाओ माताजी की पूजा कर दो और उन्हीं को सारा प्रसाद और वस्त्रादि भी भेंट दो वहीं से सबको बाँट दिया जायगा। इस पर कुछ लोगों ने तो ऐसा ही किया। किन्तु रामेश्वरप्रसाद, पण्डित हरियशजी तथा और भी दो चार हठी लोग आपके भोजन कर चुकने पर भीतर चले गये। और मना करने पर भी आपनी मनमानी कर ही ली। आप बिगड़े भी, एक मीठी फटकार भी लगायी, किन्तु यहाँ सुनने वाला कौन था? ये सब तो चिकने घड़े थे, पानी पड़ा और बह गया। इनकी यह खींचातानी सदा ही चलती रही है। जीवन में दो-चार बार छोड़कर आपने कभी प्रसन्नतापूर्वक पूजा नहीं करायी।

भोजन के पश्चात् सत्संग, कथा और शिवपुरी वालों का पद गान हुआ। कुछ बंगाली बालक-बालिकाओं के गायन भी बड़े मनोमोहक हुए। सायंकाल में कीर्तन के पश्चात् पण्डित हरियशजी तथा सीताराम बाबा आदि बाँध प्रान्त के भक्तों ने एक गुरु-महिमा सम्बन्धी लीला का अभिनय किया। उसका प्रभाव भी वहाँ की जनता पर अच्छा पड़ा। माताजी तो इस प्रकार की लीलाओं से बड़ी प्रसन्न होती थीं और आग्रहपूर्वक करवाया करती थीं। इस प्रकार यह उत्सव सम्पूर्ण हुआ। द्वितीया को आपने हम सबको विदा कर दिया। उसके कुछ दिनों बाद आप भी श्रीमाताजी और स्वामी शरणानन्दजी के सहित दिल्ली होते हुए वृन्दावन आ गये।

श्रीवृन्दावन में छः मास

श्रावण के शुक्लपक्ष में आप श्रीवृन्दावन पधारे। उससे पहले ही स्थान ठीक करने के लिये आपने मुझे भेज दिया था। श्रावण-मास में झूलनोत्सव के कारण यहाँ स्थान का बहुत संकोच हो जाता है। तथापि पूज्य बाबा के प्रभाव से हमें जयपुरवाले के मन्दिर में जो राजमहल है वह मिल गया। उसकी थोड़ी-बहुत सफाई भी करा दी गयी। किन्तु कुछ विवशताओं के कारण अभी फर्श, तख्त पात्र और जल आदि का प्रबन्ध नहीं हो पाया। सोचा कि आ जाने पर यह सब प्रबन्ध कर दिया जायगा। इतने ही में आप सबके साथ सायंकाल में अकस्मात् मोटर द्वारा दिल्ली से आ गये। मैं उस समय कहीं गया हुआ था। आपने बाबा से पूछा, 'माताजी के ठहरने का प्रबन्ध कहाँ किया गया है?' बाबा ने कहा, 'जयपुरवाले मन्दिर में।' तब आप बाबा को लेकर मन्दिर में गये। परन्तु वहाँ फर्श, रोशनी, जल आदि का कोई प्रबन्ध न देखकर बड़े उद्विग्न हुए। अभी लम्बी यात्रा करके आये थे और गर्मी से घबराये हुए थे। वर्षा का समय था। मकान की छत पर गये तो वह गीली थी और नीचे गर्मी थी। इतने ही में मैं आ गया और सब सामान जुटाने लगा। आप बोले, 'तूने पहले आकर यहाँ क्या किया? मुझे तो यह मकान भी पसन्द नहीं है।' तब मैंने कहा, 'सरकार! वृन्दावन में तो ऐसा बढ़िया कोई दूसरा मकान मिलेगा नहीं। यह तो आपके तथा बाबा के प्रताप से मिल गया है। नहीं तो जब से यह राजमहल बना है, इसमें राजासाहब के सिवा अभी तक कोई व्यक्ति नहीं ठहरा।' फिर सब प्रबन्ध हो जाने पर आपको कुछ सन्तोष हुआ।

इस समय आपको जो व्यग्रता हुई थी उसमें बहुत ऊँची भावना निहित थी। आप पूज्य महानुभावों के स्वागत सत्कार में किसी भी प्रकार की ढील करना सहन नहीं कर सकते थे। अतिथिसत्कार में तो आप तन, मन, धन और प्राण सभी की बाजी लगा देना अपना कर्त्तव्य समझते थे। अत: दूसरने दिन प्रात:काल ही आप सबको साथ लेकर उस मकान की सफाई में जुट गये। उसका बड़ा सहन पक्का नहीं था। अत: वह कुछ ऊँचा-नीचा था और वर्षा के कारण उसमें कुछ घास भी हो गयी थी।

आप बड़े परिश्रम से उनकी सफाई में लग गये, यह देखकर अपने परिकर के सहित माताजी तथा अन्य रईस और बाबू लोग भी इसी काम में भिड़ गये। तब आपने देवियों को तो एक और अलग काम बता दिया और पुरुषों के सहित आप फावड़ा, छबड़ा, खुरपी और झाड़ू लेकर सफाई करने लगे। बस, अब तो जो आता वही इस काम में जुट जाता। इस प्रकार प्रातःकाल ६ से ८ बजे तक खूब काम हुआ। फिर सबके साथ मिलकर कीर्तन किया और बोले, 'अब एक सप्ताह तक इसी प्रकार नित्य दो घण्टे सवेरे और एक घण्टा सांयकाल में सफाई किया करेंगे। अच्छा भाई! सच-सच बताओ आप लोगों के चित्त और शरीर इस समय फूल की तरह हल्के और खिले हुए हैं या नहीं? यही तो निष्काम कर्म है। इस प्रकार स्वार्थत्यागपूर्वक भगवत्सेवाबुद्धि से निरन्तर भगवन्नाम लेते हुए काम करना ही तो सच्ची उपासना है। देखो, रात यह मकान किसी काम का नहीं जान पड़ता था, किन्तु अब तो अच्छा लगने लगा है।'

अब यहाँ पीतल की तीन बड़ी-बड़ी नाँदें रख दी गयीं। उनमें दो आदमी निरन्तर जल भरते रहते थे। तथा मकान के बाहर एक ओर टीन के बरामदे में रसोई का प्रबन्ध कर दिया गया। माताजी की रसोई तो मकान के भीतर ही अंगीठियों द्वारा बनायी जाती थी। इस प्रकार यथासाध्य सब प्रबन्ध ठीक हो गया। आप भी निर्दिष्ट समय पर पहुँच कर नित्य सफाई करते रहे। इस प्रकार चार-पाँच दिनों में ही वह मकान सब प्रकार ठीक हो गया।

इधर रासलीला तो पहले ही से हो रही थी। कथा-कीर्तन का भी समुचित प्रबन्ध था। रात को सीताराम बाबा आदि कुछ भक्त मिलकर लीलाकर लेते थे। चार-पाँच दिन श्रीवृन्दावन की एक लीलामण्डली ने भी भक्तचरितों के सुन्दर अभिनय किये। एक पञ्जाबी युवक ने नृत्यकला का सुन्दर प्रदर्शन किया। इस प्रकार श्रीमाताजी के स्वागत सत्कार का यथा साध्य सन्तोषजनक आयोजन हो गया। श्रावण के अन्त में आप दिल्ली होती हुई सोलन चली गयीं, स्वामी श्रीशरणानन्दजी तो एक विशेष कारण से जिस दिन आये थे। उसके दूसरे ही दिन सोलन चले गये थे। आप यहीं रहे।

अब श्रीकृष्णजन्माष्टमी आयी। यह पूज्य बाबा का भी जन्म-दिवस है। अत: यह उत्सव आश्रम में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इसमें समय-समय पर बहुत बढ़िया बीनबाजा बजता रहता है। सवेरे ६ बजे से रात्रि के १२ बजे तक अखण्डकीर्तन होता है। केवल अन्य प्रोग्रामों के समय ही उसे विराम दे दिया जाता है। रासमण्डली श्रीकृष्णजन्म की लीला करती है। इस वर्ष तो प्रात:काल और रात्रि में दोनों समय कुञ्जविहारी की मण्डली का रास हुआ। रात्रि में जन्मलीला हुई। लीला के पश्चात् भगवान् की जन्म आरती हुई और फिर सभी समागत व्यक्तियों को पञ्चामृत एवं प्रसाद दिया। प्राय: एक हजार साधु-महात्मा और बाहर से आये हुए भक्तों का फलाहार का भण्डारा भी हुआ आज पूज्य बाबा का भी विशेष रूप से शृङ्गार एवं पूजन किया जाता है। बाबा का जन्मकाल ठीक मध्याह्न है। अत: उस समय भक्तजन एकान्त में बाबा का अभिषेक करते हैं तथा उन्हें नवीन पीतवस्त्र पहनाते हैं। रात्रि को सारा प्रोग्राम समाप्त हो जाने पर आपको झूले में झुलाया जाता है। उस समय आपका बालकृष्ण रूप से शृंगार किया जाता है। उस समय अनेक प्रकार के कौतूहल पूर्ण नृत्य, गान एवं लीलाएँ की जाती हैं। यह सब समारोह एकान्त में केवल अन्तरंग भक्तजन ही करते हैं।

दूसरे दिन सवेरे रासलीला में नन्दोत्सव होता है और मध्याह्न में बड़ा भारी भण्डारा किया जाता है। उसमें किसी भी अतिथि अभ्यागत के लिये रोक-टोक नहीं होती। भोजन भी बहुत बढ़िया बनाया जाता है। फिर ३ से ५ बजे तक कथा होती है और उसके पश्चात् आश्रम में दधिकाँदा मनाया जाता है। पूज्य बाबा हमारे महाराजजी तथा स्वामी अखण्डानन्दजी आदि महात्मागण बाबा की कुटी के बरामदे में बैठ जाते हैं। उनके आगे भक्तजन ग्वाल एवं गोपियों की भावना से नाचते-गाते हैं। उन पर कुटी की छत पर से हल्दी मिला हुआ दही बरसाया जाता है। इस होली में किसी को भी अछूता नहीं छोड़ा जाता। इसके अतिरिक्त फल, मेवा, पात्र और रुपये-पैसे भी बरसाये जाते हैं। उनके लिये भक्तों में खूब छीना-झपटी और लूट भी होती है। वृन्दावन के श्रीबाँकेबिहारीजी और राधावल्लभजी के मन्दिरों में भी दधिकाँदा होता

है। किन्तु यह तो उससे भी बढ़ चढ़कर मनाया जाता है। सब लोग खूब हँसते और खेलते कूदते हैं। इस प्रकार यह उत्सव बड़े समारोह से मनाया जाता है।

इसके पौने दो मास पश्चात् शरत्पूर्णिमा आयी। बाबा के यहाँ यह उत्सव भी बड़े समारोह से होता है। इसी रात्रि को भगवान् श्रीश्यामसुन्दर ने गोपियों के साथ रासक्रीड़ा की थी। अत: आश्रम के विशाल प्रांगण में आज चार-पाँच रासमण्डलियों ने महारास किया। उस समय की अपूर्व शोभा थी। शरच्चन्द्र की स्निग्ध कान्ति, विद्युद्दीपों का उज्ज्वल प्रकाश और उसमें 'विच-विच गोपी विच-विच श्याम', के क्रम से अनेक रूपधारी श्री श्यामसुन्दर उतनी ही व्रजाङ्गनाओं के साथ नृत्य कर रहे हैं। इस अनूठी लीला को देखकर सभी दर्शकवृन्द मुग्ध हो रहे थे। आज सब कुछ श्वेत ही श्वेत था। चन्द्रमा की श्वेत चन्द्रिका, ऊपर श्वेत चाँदनी और नीचे श्वेत चादर बिछी हुई थी। उस श्वेत मण्डप में श्वेत शृङ्गारधारी श्रीश्यामसुन्दर श्वेतवस्त्रविभूषिता व्रजसुन्दरियों के साथ नृत्य कर रहे थे। रात्रि को प्राय: ग्यारह बजे इस दिव्यलीला का विराम हुआ। सब दर्शकों को शरच्चन्द्र की सुधामयी किरणों से संसिक्त खीर का प्रसाद दिया गया। पीछे जो बाहर से आये हुए भक्तजन और स्थानीय महात्मा रहे उनकी पङ्गतें बैठायी गयीं। सबने भरपेट खीर खायी। आज के दिन बाबा के यहाँ तीस-चालीस मन दूध की खीर बनती है। पूर्णिमा के दिन तो सब लोग खीर खाते ही हैं, पीछे भी एक-दो दिन तक प्रसाद बँटता रहता है।

इस प्रकार बड़े आनन्द से शरत्पूर्णिमा का उत्सव समाप्त हुआ। इसके पश्चात् दीपावली और अन्नकूट के उत्सव हुए। अन्नकूट के दिन भी बाबा के यहाँ बीस-पच्चीस प्रकार के व्यञ्जन बनाये जाते हैं और हजार डेढ़ हजार व्यक्तियों को भोजन कराया जाता है। इसके पश्चात् हमारे महाराजजी ने गीताजयन्ती के उत्सव की तैयारी आरम्भ की। आपने रात्रि के समय गीता का प्रवचन आरम्भ कर दिया। उस समय आप दिन में कई टीकाओं से गीता का स्वाध्याय करते थे और रात्रि में उसकी कथा कहते थे। कथा के समय भी जगह-जगह आपस में विचार होता था। इस वर्ष आपने इस उत्सव को विशेष रूप से सफल बनाने का प्रयत्न किया। स्वामी प्रेमानन्दजी ने

जो पाण्डवों के सन्धि-सन्देश से लेकर गीतोपदेश तक का प्रसंग 'श्रीकृष्णविजय' नामक नाटक के रूप में लिखा है उसके अभिनय की तैयारी होने लगी। स्वामी जी बड़े मनोयोग से पात्रों को शिक्षा देने लगे। बाहर से भी पर्दे और पोशाकें मँगायी गयीं। लक्ष्मण और किशनलाल की मण्डलियों के मुख्य-मुख्य पात्रों के साथ हम लोग भी मिल गये। इस प्रकार पूरी तैयारी करके यह नाटक किया गया। अभिनय बहुत सुन्दर हुआ। यों तो तीन वर्ष से हर साल ही यह नाटक खेला जाता था, किन्तु इतनी सफलता इसमें कभी नहीं मिलीं इस बार श्रीकृष्ण का पार्ट किशनलाल के पुत्र मोहन ने और अर्जुन का पार्ट हरगोविन्द ने किया। ये ही प्रधान पात्र थे, दोनों ही का अभिनय बहुत सुन्दर हुआ। मैंने इसमें भीमसेन का पार्ट किया था। इस समय दर्शकों में काठियाबाबाजी, स्वामी श्रीरामानुजदासजी, स्वामी रघुनाथदासजी और आचार्य श्रीचक्रपाणिजी आदि वृन्दावन के अनेकों सन्त, महन्त और आचार्य भी पधारे थे। सभी ने नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की। नाटक समाप्त होने पर और सब लोग तो यथा स्थान चले गये, किन्तु हमारे बाबा रघुनाथदासजी तो समाधिस्थ हुए वहीं बैठे रहे। तब महाराजजी उन्हें बड़े प्रयत्न से सचेत करके अपनी कुटी पर ले गए।

मध्याह्न में सैकड़ों आदमियों की फलाहार की पङ्गत हुई और मध्याह्नोत्तर २ से ६ बजे तक तथा रात्रि में ७॥ से १० बजे तक अनेकों विद्वानों के गीताजी पर प्रवचन हुए। व्याख्याताओं में प्रधान थे श्रीकाठियाबाबाजी महाराज, स्वामी अखण्डानन्द, स्वामी श्रीरामानुजदासजी, गोस्वामी विजयकृष्णजी, गोस्वामी गौरगोपालजी, पं० जगन्नाथजी भक्तमाली और पं० उमाशङ्करजी आयुर्वेदाचार्य। इस प्रकार यह उत्सव बड़े आनन्द का हुआ। व्याख्यानदाता विद्वानों को तथा नाटक के प्रत्येक पात्र को बाबा की ओर से एक-एक बढ़िया कम्बल भेंट किया गया।

मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को गीताजयन्ती का उत्सव हुआ। उनके बाद पौष मास में भी आप यहीं रहे। फिर होली का उत्सव बाँध पर करने का निश्चय होने से माघ के आरम्भ में आप बाँध पर चले गये। पूज्य बाबा ने शिवरात्रि पर वहाँ पहुँचने का वचन दिया। अत: वे यहीं रहे।

बाँध और देहरादून में

बाँध पर पहुंचकर आपने वहाँ की सफाई और मरम्मत करायी। पीलीकुटी वाली ठोकरपर गतवर्ष जो कुटी बनी उसे भी अबकी बार गङ्गाजी ने काट लिया था। बस थोड़ा-सा ठोकर का भाग और फाटक ही शेष था। आपने उसीको बड़े परिश्रम से काट-छाँटकर ठीक किया और वहीं बाबा के लिए एक सुन्दर कुटी बनायी। उसीके बराबर फाटक के भीतर ही आठ-दस कुटियाँ टीन डालकर बनायीं तथा उसी ठोकर पर उत्तर की ओर कुछ कुटियाँ स्वामी अखण्डानन्द और उनके परिकर के लिये बनायी गयीं। इनके सिवा कुछ फूस की कुटियाँ फाटक के बाहर बाँध के नीचे और कुछ सत्संग भवन तथा आपकी कुटी के बीच में बनायी गयीं। सर्व साधारण के लिये पण्डित छविकृष्ण को भेजकर दो सौ रावटियाँ मेरठ छावनी से मँगा ली गयीं। उन्हें जब आवश्यकता होती थी लगा दिया जाता था। इस प्रकार उजड़ा हुआ बाँध एक बार फिर आनन्दकानन बन गया।

इन्हीं दिनों आपने गाँवों से कुछ चन्दा भी कर लिया। कुछ रुपया गवाँ और भिरावटी के रईसों ने भी दिया। इस प्रकार सारा प्रबन्ध करके माघपूर्णिमा से अखण्ड कीर्तन और नियमित सत्सङ्ग आरम्भ कर दिया। किन्तु गत दो वर्षों से आप रासमण्डलीवालों के व्यवहार से ऊब गये थे। अतः इस बार आपका विचार कोई मण्डली बुलाने का नहीं था। किन्तु दो-चार दिन पीछे ही कुछ रास के रसिकों ने आग्रह किया कि बहुत लोग रास के लिये उत्सुक हैं, अतः कोई मण्डली बुला ली जाय। तब आपने मुझे आज्ञा दी कि तुम वृन्दावन जाकर जल्दी से जल्दी कुञ्जबिहारी की मण्डली और स्वामी प्रेमानन्द को लिवा लाओ। देखो, देर मत करना, क्योंकि यहाँ तुम्हारी जिम्मेवारी का बहुत काम पड़ा हुआ है। मैं बाँध से ही एक मोटर ठेला लेकर फाल्गुन कृष्णा ११ को चला और उसी दिन वृन्दावन पहुँच गया। प्रार्थना करने पर स्वामीजी तो तुरन्त चलने को तैयार हो गये, किन्तु मण्डली ने मेरा नाक में दम कर दिया। कोई निश्चित उत्तर ही नहीं। मुझे पाँच दिन हो गये। मैं अच्छे झंझट में फँसा। उधर श्रीमहाराजजी आज्ञा और बाँध के काम की याद आने पर मैं घबरा जाता

था। जैसे-तैसे मण्डली चलने को राजी हुई। किन्तु जब उसके एक प्रबन्धक ने हमारा ठेला देखा तो वे बहुत बिगड़े और बोले, 'क्या हमारी मण्डली इस ठेले में जायगी ?' मैंने जैसे-तैसे रात ही एक मोटर लारी का प्रबन्ध किया और उसे उन्हीं के दरवाजे पर खड़ा कर दिया किन्तु सवेरे फिर कुञ्जविहारी ने साफ इन्कार कर दिया। मुझे बड़ा क्रोध आया, किन्तु महाराजजी के उपदेशों को स्मरण करके मैं मौन हो गया। किन्तु उसने भी मुझे इसी प्रकार तंग किया। आखिर स्वामी प्रेमानन्दजी तथा कुछ अन्य भक्तों को लेकर उस लारी से ही मैं मथुरा जंक्शन पर आया और मोटर वाले को कुछ देकर विदा कर दिया।

अब रासमण्डलियों से मुझे भी बड़ी घृणा हो गयी और मैंने निश्चय किया कि अपने उत्सवों में हम रास कभी नहीं बुलायेंगे। यदि महाराजजी भी बुलायेंगे तो मैं सत्याग्रह कर दूँगा। इधर मुझे एक सप्ताह लग गया। बाँध पर पहुँचकर मैं श्रीचरणों में पड़कर खूब रोया और पूछने पर आपको सारा वृतान्त सुना दिया। तब आप बोले, 'भाई ! मैं तो पहले ही इनके व्यवहार से ऊबकर रास का विचार छोड़ चुका हूँ। तुम सबके आग्रह से ही मैंने कह दिया था, सो तुमने भी इसका फल पा लिया। खैर, कोई चिन्ता नहीं, भगवान् जो कुछ करते हैं अच्छा ही होता है। उधर तुम झंझट में पड़ गये और मैं यहाँ के झंझटों से घबरा कर भागने का विचार कर रहा था। बाबा के हिम्मत बँधाने से ही रुका हूं। अच्छा अब तुम अपना काम सम्भालो। मैं तो कथा कीर्तन और सत्सङ्ग के सिवा और कोई व्यवहार की बात नहीं सुनूँगा। यदि मुझसे कोई ऐसी बात कहोगे तो मैं भाग जाऊँगा, किसी का लिहाज नहीं करूँगा।'

बस, अब बड़े आनन्द से सत्सङ्ग चलने लगा। कुछ सत्संगी बाहर से आये हुए थे और कुछ इधर-उधर से आ गये। बड़ी शान्ति से सब प्रोग्राम चलने लगा। रात को भक्तजन आपस में ही मिलकर कुछ लीला कर लेते थे। कीर्तन के समय हम लोग मोहलनपुर के आदमियों को निकाल लाते थे। तीन समय बड़ी धूमधाम से कीर्तन हो जाता था। बीच के समय में भक्तजन, पूज्य बाबा, स्वामी शास्त्रानन्दजी, अवधूत कृष्णानन्दजी और माँ श्रीआनन्दमयी के सत्सङ्ग का लाभ उठाते थे। कथा के समय

भी माताजी कभी-कभी कुछ कहा करती थीं। इस प्रकार श्रीगौरपूर्णिमा का उत्सव भी बड़े आनन्द से सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन बधाई और बृहत् भण्डारा हुआ। इस प्रकार सब कार्यक्रम बड़ी शान्ति से चल रहा था कि चैत्र कृष्णा पञ्चमी या षष्ठी को कुञ्जबिहारी की मण्डली बिना बुलाये ही पहुँच गयी। बात यह हुई कि इस मण्डली पर कलकत्ते के एक सेठ का बहुत प्रभाव था। वे श्रीमहाराजजी में भी श्रद्धा रखते थे और अच्छे धर्मभीरु आदमी थे। उन्हें जब मण्डली का यह प्रपञ्च मालूम हुआ तो बहुत दु:ख हुआ। लोगों से उन्होंने यह भी सुना कि बहुत लोग मण्डली के न जाने में मुझे ही कारण बताते हैं, अत: उन्होंने मण्डलीवालों को बहुत बुरा-भला कहा और स्पष्ट कह दिया कि यदि मुझसे सम्बन्ध रखना चाहते हो तो अभी बाँध पर चले जाओ। अपने पास से ही उन्होंने मण्डली को खाने और किराये का खर्चा दिया और कह दिया कि वहाँ से कुछ मत लेना। जो कुछ मिलने की सम्भावना हो उससे सौ रुपये अधिक मुझसे ही ले लेना। इसी से ये लोग लाचार होकर आये थे। पहले तो मोटर, ट्रक और लॉरी में आने को भी राजी नहीं हुए थे। अब बबराला तक रेल में और वहाँ से किराये की बैलगाड़ियों में आये। जिस समय बाँध पर पहुँचे बहुत ही उद्विग्न और अपमानित जान पड़ते थे।

किन्तु हमारे क्षमासिन्धु सरकार ने उनके अपराध पर कोई दृष्टि न देकर मुझे बुलाया और कहा, 'भैया! कुञ्जबिहारी बिना ही बुलाये आया है और बहुत लज्जित-सा जान पड़ता है। मुझसे बड़ी क्षमायाचनासी कर रहा था। कहता था कि कुछ दिन मैं अपनी ओर से ही रास करूँगा। केवल मुझे ठहरने के लिये सामान्य-सा स्थान बता दिया जाय। अब तो अपनी करनी पर वह स्वयं लज्जित है और अपने को अपराधी मानता है। अत: अब हमें उनके सत्कार में कोई कमी नहीं रखनी चाहिए। आखिर ये हमारे घर पर बिना बुलाये आये हैं और हमने सदा ही इनमें पूज्यभाव रखा है। अत: अब भी हमारी ओर से कोई अनुचित चेष्टा नहीं होनी चाहिये। यद्यपि रास देखने को अब मेरा तनिक भी मन नहीं चाहता, किन्तु मेरे न आने से इन्हें दु:ख होगा, इसलिये मैं जैसे-तैसे इनके लिये समय निकालूँगा ही।' बस, अब ठीक प्रोग्राम बना लिया
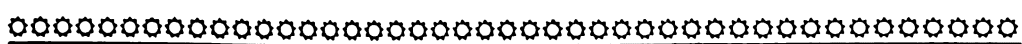
गया। रामनवमी के उपलक्ष में श्रीरामायणजी के अखण्डपाठ और नवरात्र में दुर्गापाठ की योजना हो गयी।

इस प्रकार बड़े आनन्द से रासलीला और बीच-बीच में गौर लीला होने लगी। श्रीरामनवमी का उत्सव भी बड़े समारोह से हुआ। पीछे एकादशी को मण्डली विदा की गयी। इस बार इनका विशेष सन्तोष करने की दृष्टि से सर्वदा की अपेक्षा अधिक रुपया भेंट किया गया। आप बोले, 'हम तो इन्हें अपनी ओर से ग्यारह के स्थान में पच्चीस रुपये प्रतिदिन के हिसाब से देंगे। उसके अतिरिक्त ऊपर से जो आ जाय वह इनका भाग्य रहा।' अत: इस हिसाब से आने-जाने का किराया देकर बीस दिन के पाँच सौ रुपये भेंट किये गये और पाँच सौ के लगभग चढ़ावे में आ गये, इस प्रकार प्राय: एक हजार रुपया देकर सवारियों का उचित प्रबन्ध करके मण्डली को विदा कर दिया गया। किन्तु पीछे हमें मालूम हुआ कि इन्होंने सेठजी को लिख दिया था कि हमें वहाँ से एक हजार रुपये मिलते थे। किन्तु आपके कथनानुसार वह हमने नहीं लिये। इस पर सेठजी ने इनके खाते में ग्यारह सौ रुपया जमा करके इन्हें सूचना दे दी थी। परन्तु पीछे किसी ने सेठजी को वास्तविक परिस्थिति की भी सूचना दे दी थी। उस पर उन्होंने क्या किया वह हमें मालूम नहीं है।

प्रिय पाठक! ऊपर जो बातें लिखी गयी हैं वे बहुत अवान्छनीय-सी हैं। इन्हें लिखकर ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं कही जा सकती। किन्तु इन्हें लिखना इसलिये आवश्यक समझा गया कि जिससे सामान्य लोग इनके ऐसे प्रपञ्चों में फँसकर श्रीभगवान् की दिव्य चिन्मयी लीलाओं में अश्रद्धा न कर बैठे। पहले तो इन लोगों में भाव था, निष्ठा थी और व्यवहार की सच्चाई थी। किन्तु अब तो कलिमहाराज की कृपा से किसी प्रकार पैसा पैदा करना ही इनमें अधिकांश लोगों का लक्ष्य रह गया है। जिन रासस्वरूपों के द्वारा उन्हें हजारों रुपये और आदर-सत्कार आदि प्राप्त होते हैं उनके साथ भी इनका ऐसा भद्दा व्यवहार होता है कि रासरसिकों के हृदय काँप उठते हैं। अत: जिन्हें रासका रस लेना हों उन्हें तटस्थ रहकर अपने मन को सावधान रखते हुए केवल शृंङ्गार के समय ही दर्शन करना चाहिए। इसके

अतिरिक्त इनके साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार बढ़ाना अथवा स्वरूपों से शृङ्गार घर में या इनके डेरे पर जाकर मिलना निरापद नहीं है। इनसे व्यावहारिक सम्बन्ध बढ़ाने पर मैंने अच्छे-अच्छे साधकों का पतन होते देखा है। यह बड़ी ही कठिन घाटी है। इसमें यदि दृष्टि ठीक लक्ष्य पर रही तब तो बेड़ा पार है, और यदि किसी प्रकार का राग या मोह होने से रासस्वरूपों में प्राकृत भाव हो गया तो इससे बढ़कर पाप भी क्या हो सकता है ? भला, सोचो तो, जिन स्वरूपों में हम साक्षात् अपने इष्टदेव श्रीश्यामा-श्याम की भावना रखते हैं उन्हींको यदि हम अपनी किसी नीच वासना की पूर्ति का साधन बना लें, तो हमारा नरक में भी कैसे ठिकाना लगेगा। इसलिये सर्वदा बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। पहले जहाँ-तहाँ मैं श्रीमहाराजजी की रासदर्शन की शैली लिख चुका हूँ। आपने जन्मभर रास देखा किन्तु कभी किसी भी स्वरूप की ओर दृष्टि उठाकर नहीं निहारा। इतना होने पर इस मण्डली वालों की करतूतों ने आपको उपराम कर ही दिया। अस्तु।

रासमण्डली विदा होने पर पूज्य बाबा तो एक-दो दिन पीछे अनूपशहर होते हुए कर्णवास चले गये। माँ तो मण्डली की विदाई के दिन ही बनारस चली गयी थीं। अब बाँध पर केवल आप ही रह गये थे। सो एक दिन आपके अनन्य भक्त सागर ने आपसे अपने गाँव सकोई चलने के लिये प्रार्थना की। आपने पूछा, 'बाबा से नहीं कहा ?' वह बोला, 'बाबा तो कह गये हैं कि जब आप आने का निश्चय कर दें, तभी सूचना मिलने पर वे भी आ जायँगे।' तब आपने वैशाख कृष्ण द्वितीया को वहाँ चलने का निश्चय किया। आप बाँध से सकोई गये और बाबा कर्णवास से वहाँ आ गये। पहुँचते ही कीर्तन हुआ। दोपहर का समय था और सब लोग घाम से चलकर आये थे तथा वैद्य लक्ष्मीनारायण आदि कुछ भक्त सम्मिलित नहीं हुए। इसलिए कीर्तन ठीक नहीं बना। आपने बहुत परिश्रम करके जैसे-तैसे कीर्तन किया। फिर सब लोग यथा स्थान ठहर गये और भोजनादि से निवृत्त होने पर ३ से ५ बजे तक कथा हुई। पाँच बजे सब लोग यथा स्थान चले गये। आपका विचार यहीं से कहीं अकेले चले जाने का था। किन्तु हम लोग आग्रह करके आपको बाँध पर ले आये। बाबा अपने परिकर सहित अनूपशहर चले गए।
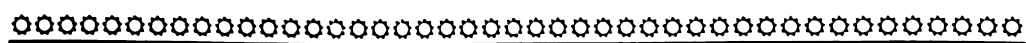
आज-कल आपकी मनोवृत्ति बहुत वैराग्यपूर्ण हो रही थी। उसके अनेकों कारण थे। उनमें मुख्य तो यही था कि बहुत दिनों से आपको निरन्तर प्रवृत्ति में रहना पड़ा था। इधर प्राय: पन्द्रह दिन से आप भगवान् बुद्ध की जीवनी का स्वाध्याय कर रहे थे। उसने भी आपके वैराग्य को जागृत कर दिया। उस पर भी सकोई में कीर्तन नहीं बना और उसमें कुछ अन्तरङ्ग भक्तों की लापरवाही देखी गयी। इन्हीं सब कारणों से आप कुछ उदास रहने लगे। अब आप कथा-कीर्तन तो करते थे, किन्तु उदासीन की तरह। यहाँ तक कि भोजन में भी आपकी अरुचि हो गयी थी। ऐसी दशा देखकर हम लोग घबरा गये। हमने समझा कि अब आप हमें छोड़कर कहीं एकान्त में जाना चाहते हैं। तब मैंने एक दिन साहस करके पूछा, 'महाराज! आप उदास क्यों रहते हैं?' आप अपनी वही पुरानी गाथा कहने लगे—'भाई! जिस कारण मैंने घर छोड़ा, सगे सम्बन्धी छोड़े, वह बात तो मेरी बनी नहीं। इधर आप लोगों के प्रति मेरा राग द्वेष हो गया। अकारण ही कोई अच्छा लगता है और कोई बुरा। साधु के लिये परमार्थ-मार्ग में सबसे बड़ा शत्रु ये राग-द्वेष ही तो हैं। अत: मैं आप लोगों से प्रसन्नतापूर्वक कहीं एकान्त में जाने की अनुमति चाहता हूँ। यदि मैं बिना कहे ही कहीं चला जाऊँगा तो आप लोगों को दु:ख होगा और वह दु:ख मेरे मार्ग में विघ्न करेगा। आप सब मेरे परमार्थ-बन्धु हैं और प्राणपण से मेरे हितचिन्तक हैं। अत: प्रसन्नतापूर्वक मुझे जाने की अनुमति दें। यदि जीवन रहा और भगवान् की इच्छा हुई तो फिर आ मिलूँगा।'

आपके ये मर्मभेदी वाक्य सुनकर हम सब घबरा गये। हमें निश्चय हो गया कि अब ये अवश्य जायँगे। यदि हम इन्हें हठपूर्वक रोकेंगे तो इनके स्वास्थ्य पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा। अत: मैंने पूछा, 'आखिर आपका विचार कहाँ जाने का है?' इस पर आप बड़े वैराग्यपूर्ण तीखे स्वर में बोले, 'सारा संसार पड़ा है, कहीं भी चले जायँगे, तुम्हें क्या बतावें?'

बस, पाँच बजे कथा समाप्त करके आप कुटिया पर चले गए। हम लोगों ने विचार किया कि सायंकाल के कीर्तन के पश्चात् पुन: प्रार्थना करेंगे कि आप कहीं भी जायँ किन्तु अपने साथ एक आदमी अवश्य ले जायँ। परन्तु आप तो साढ़े पाँच

बजे ही फूलचोर बाबा के * साथ सलाह करके एक सामान्य-सी चादर, अँगोछा और लँगोटी लेकर जैसे टहलने जाते हैं, गङ्गा किनारे उत्तर की ओर चल दिये। चलते समय दाताराम आपका अभिप्राय समझ गया। किन्तु आपने उसे अपनी शपथ दिला दी कि अभी किसी से कुछ मत कहना। थोड़ी दूरी पर पण्डित सुन्दरलालजी मिले। उनसे कहा 'पण्डितजी ! राम राम' परन्तु उन्हें इस रहस्य का कुछ पता न चला। फिर थोड़ी दूर जाकर आपने गङ्गाजी पार की और दूसरे तटपर चलने लगे।

इधर, हम लोगों को पता लग गया। तब सब ओर हल्ला मच गया कि महाराजजी चले गये। हमने दौड़कर देखा तो आप दूसरे तटपर जा रहे थे। मैंने सोचा अब हठ करना ठीक नहीं है, वैराग्य तो आपका स्वरूप ही है। अतः मैं सब लोगों को लैटा लाया और अपनी कुटी में आकर रोने लगा। शाम को मोहलनपुर के लोगों ने मुझसे कहा कि हम लोग श्रीमहाराजजी को ढूँढने के लिये उस पार जाते हैं। उससमय अन्धेरी रात थी मैंने तो उनसे जाने के लिये मना ही किया। किन्तु वे माने नहीं। प्रायः पचास आदमी लालटेनें लेकर वहीं गंगाजी के पार हुए और आपको ढूँठने के लिये किनारे-किनारे चले। किन्तु आप किनारा छोड़कर ऊपर की ओर बढ़ गये थे और दो-तीन कोश बेले में जाकर एक जगह स्वच्छ बालुका में चादर बिछाकर पड़ गये थे। ये लोग आपसे थोड़ी ही दूरी पर लालटेनें लिए हल्ला मचाते आगे बढ़ गए और रातभर चलते ही रहे। आखिर, प्रातःकाल कोई दस कोस से लौटे। पाँच सात व्यक्ति तो बीस कोस भगवानपुर तक गए और वहाँ से तीसरे दिन लौटकर आए।

इधर हमारे बाँध के कार्यकर्ताओं में परस्पर विचार हुआ कि अब हमारा क्या कर्त्तव्य है। इस पर मैंने तो स्पष्ट कह दिया कि वे जो कुछ करते हैं वही ठीक है। यदि हमारा सच्चा प्रेम होता तो वे हमें त्यागकर क्यों जाते। अब भी यदि हमारा भाग्य अनुकूल होगा तो उनका हम पर कुछ भी वात्सल्य होगा तो वे हमें छोड़कर

* ये एकवृद्ध पंजाबी संत हैं। बहुत दिनों से बाँध और वृन्दावन के सत्संग में आया करते हैं। इन्हें फूल पत्ती के आभूषण बनाकर लीला स्वरूपों को पहनाने का विशेष व्यसन है। इसलिये कभी फूल चुराने की आवश्यकता भी पड़ती होगी। सम्भवतः इसीसे इनका नाम 'फूलचोर बाबा' पड़ गया है।
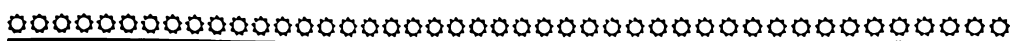
जायेंगे कहाँ ? कुछ दिनों में फिर आ मिलेंगे। तब तक हमें विरहाग्नि में तपना ही चाहिए। इससे हमारे हृदय शुद्ध हो जायेंगे। समर्थ गुरु के पास भी निरन्तर रहने से अनेकों अपराध बन जाते हैं। उनका सच्चा प्रायश्चित कुछ दिन उससे अलग रहकर पश्चात्ताप करना ही है।

इस पर कुछ लोगों ने तो मेरी बात मान ली। किन्तु गुलाबसिंह, रामेश्वरप्रसाद और पण्डित हरियशजी मुझसे सहमत न हुए। वे दूसरे दिन सवेरे ही हाथी पर चढ़कर भगवानपुर गए। मुझसे भी साथ चलने को कहा। किन्तु मैं बोला, 'तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है। किन्तु तुम पैदल चलने में असमर्थ हो, इसलिए हाथी पर जा सकते हो। मैं तो इस प्रकार नहीं जा सकता। और न मैं बाँध पर ही रहूँगा।' तब वे मुझसे अपने लौटने तक बाँध पर ही रहने के लिए कहकर भगवानपुर चले गये। किन्तु वहाँ से दूसरे दिन उन्हें निराश होकर ही लौटना पड़ा। मेरा चित्त बहुत घबरा गया था। अतः मैं दूसरे ही दिन बबराला जाकर वहाँ से रेल द्वारा कहीं अन्यत्र चला गया।

अब आपकी कथा सुनिये। जिस स्थान पर आप लेटे थे वहाँ से चाँदनी निकलते ही आप चल दिये और रात-रात में ही स्याना की ओर दस बारह कोश बढ़ गये। प्रातःकाल घाम बढ़ने पर किसी पेड़ के नीचे ठहर गये। बेचारे फूलचोर बाबा तो बूढ़े और कुछ बीमार भी थे। अतः इतनी दौड़ से वे शिथिल पड़ गये। आपने उस दिन माधूकरी भिक्षा की। सायंकाल में स्याना के पास नहर की पटरी पर पहुंचे और फूलचोर बाबा से बोले, 'बाबा! अब मैं अकेला ही जाऊँगा, आप अपना स्वतन्त्र विचरें।'

नहर की पटरी पर कुछ ही दूर चले थे कि आत्मानन्द* मिल गया। वह तो दो चार दिन से स्याना ही ठहरा हुआ था। उसने आपको पहचान लिया और बड़े प्रेम से प्रणाम किया। किन्तु आपने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। आत्मानन्द ने कहा,

* यह एक युवक संन्यासी है। पहले पूज्य बाबा के यहाँ कोठारी था। अब साधु होकर स्वतन्त्र विचरता है। श्रीमहाराजजी में इसकी अच्छी श्रद्धा थी और यह चाहता था कि आपकी सेवा का कोई अवसर मिले।

'पास ही एक कुटी है, वहाँ पधारिये। मैं भिक्षा ले आऊँगा।' किन्तु भूखे होने पर भी आपने मनाकर दिया। और वहाँ पटरीपर ही अपनी चादर बिछाकर पड़ गए। आत्मानन्द से कह दिया कि अब तुम जाओ। किन्तु वह अपनी कुटिया से अपना जो सामान्य-सा वस्त्र था ले आया, और यह सोचकर कि अब आपकी सेवा का अच्छा अवसर मिल गया है, आपसे कुछ दूरी पर पड़ गया। आपसे इसलिए कुछ पूछा नहीं कि सम्भव है मनाकर दें। वह इस आशंका से कहीं रात में उठकर न चल दें सोया नहीं। हुआ भी ऐसा ही। आप रात को दो बजे ही उठकर नहर की पटरी-पटरी हरिद्वार की ओर चल दिये। आत्मानन्द पीछे-पीछे हो लिया। किन्तु नौ मील तक आपने न दायें देखा न बायें और न पीछे ही मुड़कर देखा। आखिर शौचादि से निवृत्त होने के लिए आप रुके, तब आत्मानन्द को देखकर पूछा, 'आप कहाँ जा रहे हैं?'

वह बेचारा बालक आपके मुँह से 'आप' शब्द सुनकर भौंचक्का-सा रह गया और बोला, 'मुझे भी हरिद्वार की ओर ही जाना है। आपके साथ ही चला चलूँगा।' तब आप चुप हो गये और शौचादि से निवृत्त होकर आगे चले। इस प्रकार रात-रात में ही बीस मील निकल गये। धूप चढ़ने पर कहीं वृक्ष के नीचे ठहरे। मध्याह्न में स्वयं ही भिक्षा मांगने गए और रूखी-सूखी रोटी मट्ठे के साथ खा ली। दोपहरी में ध्यानावस्थित हुए बैठे रहे तथा सायंकाल में कुछ ठण्ड होने पर चार-पाँच मील चलकर विश्राम किया। आत्मानन्द भी आपके आस-पास ही रहा। इस प्रकार चलते-चलते चौथे दिन हरिद्वार पहुँच गए। रात्रि को बहुत थक गये थे और भूखे भी थे। किन्तु जब आत्मानन्द ने पूछा कि मैं भिक्षा ले आऊँ तो निषेध कर दिया और भूखे ही पड़ गए। आत्मानन्द ने साथ रहने की बहुत प्रार्थना की। तब आपने इस शर्तपर स्वीकार कर लिया कि जब किसी प्रकार विक्षेप समझेंगे तब अलग-अलग हो जायेंगे। फिर आप बोले, 'मैं बहुत थक गया हूँ। इसलिये स्टेशनमास्टर और गार्ड से पूछ लो। वे कह दें तो रेलगाड़ी से देहरादून चलें।' उन्होंने आज्ञा दे दी। अतः आप गाड़ी पर बैठकर देहरादून पहुँच गए।

यहाँ आपके परिचित एक गोविन्दप्रसाद पाण्डे थे। ये श्रीमाताजी के भक्त थे। किन्तु आपको उनका पता मालूम नहीं था। दैवयोग से रेल में ही किसी से उनका
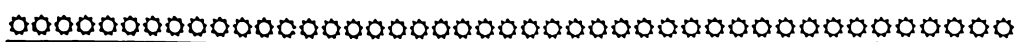
पता मालूम हो गया। अतः आप देहरादून स्टेशन से सीधे श्रीपाण्डेजी के घर पहुँचे। वहाँ आत्मानन्द ने आवाज दी। तब पाण्डेजी का लड़का बाहर आया। आत्मानन्द ने उसे आपका परिचय दिया उसने पाण्डेजी से जाकर कहा तो उन्हें सहसा विश्वास नहीं आया। किन्तु वे बाहर दौड़े आये तो सचमुच ही उन्होंने जड़भरत की तरह आपको कमण्डलु लिये खड़ा देखा। बस, उनका शरीर पुलकित हो गया, गला भर आया और वे श्रीचरणों में पड़ गए। अभी दो महीने पूर्व उन्होंने बाँध पर आपके दर्शन किये थे। उस समय उनके मन में ऐसी भावना हुई थी कि क्या कभी मेरा ऐसा सौभाग्य होगा जो मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ। उसीके उत्तर में मानो आज आप उनके द्वार पर खड़े हैं। आपकी ऐसी अन्तर्यामिता और भक्तवत्सलता से मुग्ध होकर पाण्डेजी तो अचेत-से हो गये और आप को भीतर घर में लिवा ले गए। आपको अकस्मात् आया देख उनकी धर्मपत्नी ❋ और बालकों ने भी प्रणाम किया। फिर स्नानादि से निवृत्त हो आपने बड़े प्रेम से भोजन किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही आप ठहरने के लिए एकान्त स्थान देखने लगे। किन्तु आत्मानन्द और पाण्डेजी की इच्छा थी कि अभी कुछ दिन आप मकान पर ही ठहरें, जिससे अच्छी तरह सेवा करके आपका मार्ग का श्रम दूर किया जा सके। उनके विशेष आग्रह से आप तीन दिन उन्हीं के मकान पर ठहर गए। वहां आपने उनकी सब प्रकार की सेवा स्वीकार की और अच्छी तरह खाया-पीया। इसके पश्चात् आप खूब स्वस्थ होकर वहाँ से तेईस मील दूर डोंगा नाम के स्थान पर चले गये। यहाँ श्रीमाताजी का एक आश्रम है। स्थान बड़ा ही एकान्त है। यहाँ आपने माधूकरी भिक्षा करते हुए रहने का निश्चय किया। वहाँ माता जी के एक प्रधान भक्त चौधरी शेरसिंहजी रहते थे। वे बड़े ही साधुसेवी सज्जन थे। उनके विशेष आग्रह से एक दिन तो उनके यहाँ भोजन कर लिया। फिर माधूकरी भिक्षा करने लगे। आत्मानन्द से भी

❋ पाण्डेजीकी धर्मपत्नी अनूपशहर के वैद्य पण्डित कृष्णवल्लभजी (लल्लूजी) की पुत्री हैं। अतः ये बहुत दिनों से श्रीमहाराजजी से परिचित थीं। ये स्त्री पुरुष दोनों ही बड़े भगवद् भक्त और साधुसेवी हैं।

अलग रहने को कह दिया। आप स्वयं ही अपना सारा कामकर लेते थे। आपकी आज्ञा मानकर आत्मानन्द अलग रहने लगा।

चौधरी शेरसिंह के बहुत आग्रह करने पर छह: दिन तो आपने दूध भी नहीं पिया, किन्तु फिर वहाँ रहकर आपका विचार शतचण्डी अनुष्ठान करने का हुआ। अत: आप दोनों समय एक-एक तोला घी डालकर आधा-आधासेर दूध लेने लगे और किसी से भी न मिलने का नियमकर लिया। एक दिन एक भक्त आपका नाम सुनकर दर्शनों के लिये देहरादून से आया। किन्तु आपने मिलने के लिये साफ मना कर दिया। उसने बहुत आग्रह किया तो केवल उसके फल स्वीकार कर लिये। वह इतने से ही सन्तुष्ट होकर चला गया और भविष्य में आपका अनन्य भक्त बन गया।

डोंगा पर्वतीय स्थान है। वहां एक पहाड़ी नदी भी है। आप रात्रि को ठण्डी हवा में बाहर ही सोते थे और एक घण्टा नदी में स्नान करते थे। इससे आपके शरीर में वायु बढ़ गया। आत्मानन्द ने बहुत प्रार्थना की तो आपने बाहर सोना तो छोड़ दिया किन्तु उससे छिपकर नदी में एक घण्टा स्नान तो कर ही लेते थे। इस प्रकार बारह दिन में अनुष्ठान पूरा कर तेरहवें दिन चौधरी शेरसिंह के यहाँ डटकर भोजन किया और उनके बहुत मना करने पर भी वहाँ से पैदल ही देहरादून लौट आये। इस समय आपका शरीर बहुत कृश हो रहा था, यद्यपि चेहरे का तेज पहले से भी बढ़ा-चढ़ा था।

देहरादून पहुँचने पर सारी दुर्बलता और बीमारी न जाने कहाँ चली गयी। पाण्डेजी की विशेष इच्छा जानकर आप चार दिन उन्हींकी बैठक में ठहरे और उनसे खूब माँग-माँगकर भोजन किया। भोजन के समय आप 'यह लाओ, वह लाओ' इस प्रकार माँग-२ कर खूब कौतुक करते थे, इससे पाण्डेजी को बड़ी प्रसन्नता हुई और आपका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा हो गया, फिर अकेले रहने का निश्चयकर आप माताजी के रायपुरवाले आश्रम पर गये आत्मानन्द से भी कह दिया कि तुम अब अलग रहो। आप रायपुर में अकेले रहकर पहाड़ियों के यहाँ से रूखी-सूखी रोटियाँ माँगकर खाने लगे। चौबीस घण्टे में केवल एक बार यही भोजन करते थे। फिर मुँह
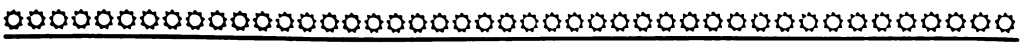
में इलायची भी नहीं डालते थे। इस प्रकार आप प्राय: आठ दिन रहे। आपकी इस चर्या से उदासीन होकर आत्मानन्द यमुनोत्तरी चला गया।

कुछ दिनों बाद माताजी आ गयीं और आप भी उनके पास किशनपुर वाले आश्रम में आ गये। इधर आत्मानन्द भी यमुनोत्तरी से लौटकर आपके पास आ गया। यहाँ भी आप एकान्त कोठरी में अकेले ही रहते थे। केवल एक समय माताजी के यहाँ से जो भी भोजन आता था वही पा लेते थे पीछे माताजी के विशेष आग्रह से कुछ फल और रात्रि में दूध भी लेने लगे। आत्मानन्द के जिम्मे आजकल केवल इतनी सेवा थी कि बाहर जाते समय साथ चला जाता, आपके लिए दातौन दे जाता और कोई विशेष बात होती तो आप उससे कह देते। अब यहाँ प्रात: सायं कीर्तन और दोनों समय सत्संग भी होने लगा। इस समय मुख्य सत्संगी थे डाक्टर पन्नालालजी। उन्हीं के कारण श्रीमद्भागवत, चैतन्य चरितावली और नारदभक्ति-सूत्रों की कथा होती थी तथा माताजी का जीवन-चरित्र भी सुनाया जाता था।

इन्हीं दिनों माताजी के एक बंगाली भक्त का एकमात्र पुत्र बीमार पड़ गया। बालक की आयु प्राय: पाँच वर्ष की थी। उसे टाईफाईड फीवर (सन्निपातज्वर) हो गया। रोगी की अवस्था असाध्य देखकर उसकी माता तो पागल-सी हो गयी। वह माताजी के पास आयी उनके चरणों से लिपटकर रोने लगी। तब माताजी ने कहा, 'पगली! पिताजी के * चरणों में प्रणाम कर। इनकी कृपा से तो न जाने कितने मृतक जीवित हुए हैं।' तब उसने बच्चे को लाकर आपके चरणों में डाल दिया। आप बड़े संकोच में पड़ गये और बोले, 'माताजी की कृपा से एक बच्चे को जीवन दान मिलना भला कौन बड़ी बात है?' फिर माताजी से परामर्श करके आपने दुर्गापाठ कराने को कहा। किन्तु वहाँ कोई योग्य पण्डित मिल नहीं सकता था। इसलिए आप स्वयं ही पाठ करने लगे। इसके सिवा सत्संग के पश्चात् आप माताजी तथा सम्पूर्ण भक्त परिकर के साथ उस बालक के पास जाकर आधा घण्टा कीर्तन भी करते थे, तथा उसके

* मां श्रीआनन्दमयी प्राय: सभी सम्भावित पुरुषों से पिताजी कहकर ही बोला करती हैं। इसीसे हमारे श्रीमहाराजजी को भी आप 'पिताजी' ही कहती हैं।

माता-पिताओं से दीन-दुखियों को कुछ दान कराया और बच्चों को प्रसाद बँटवाया, इस प्रकार खेल ही खेल में चार-पाँच दिनों में वह बच्चा स्वस्थ हो गया। उसके माता-पिता की श्रद्धा भी बड़ी ही अद्‌भुत थी। उन्होंने इतने दिनों तक अपने अत्यन्त सुकुमार और बीमार बच्चे को, यह सोचकर कि माताजी और महाराजजी आकर नीचे बैठेंगे, चारपाई पर नहीं सुलाया।

अब गुरुपूर्णिमा समीप आ गयी थी। इस वर्ष यह उत्सव भी आपने वहीं करने का निश्चय लिया। बस, हम लोगों को आपने सूचना करा दी और हम चतुर्दशी को ही वहाँ पहुँच गए। किन्तु उस दिन तो आप हम से बोले ही नहीं, रात को श्रीमाताजी के सामने विचार हुआ कि आपके नवीन आश्रम में जो पञ्चवटी की स्थापना होने वाली है वहाँ सफाई का काम है, यहाँ बाँध से बहुत लोग आये हुए हैं। ये मिट्टी का काम खूब कर सकते हैं। अतः कल प्रभाती कीर्तन के पश्चात् ये सब वहाँ पहुँच जायँगे। दीदी इनके लिए फावड़ों और टोकरों का काफी प्रबन्ध करा लें। बस, प्रातःकाल ही हम सब लोग वहाँ पहुँच गये और फावड़े लेकर पागलों की तरह पहाड़ काटने लगे, उसी समय बादल उठकर बड़ी भारी वर्षा होने लगी। किन्तु आपने हमें उत्साहित करते हुए कहा, 'भाइयो आज गुरुपूर्णिमा का दिन है। इसलिये आज तो माताजी की सेवा करते-करते प्राण चले जायँ तो श्रेयस्कर ही होगा। देखो, काम से मुँह मत मोड़ना, हमें इतनी जमीन साफ करनी है।'

बस, हम लोग आपके साथ बराबर काम में जुटे ही रहे। एक ओर हमारे शरीरों से निरन्तर पसीनों की धाराएँ बह रही थी और दूसरी ओर आकाश से मूसलाधार जल बरस रहा था। एक प्रकार का घोर संग्राम ही मच गया था। किन्तु साथ ही आनन्द एक लूट-सी मची हुई थी, सभी लोग मस्त हो रहे थे। परन्तु अब तो वर्षा ने इतना जोर पकड़ा कि काम करना असम्भव हो गया। तब आपने कहा, 'बस, अब काम पूरा हो गया। और बारह भी बज चुके हैं। इसलिये कीर्तनकर लो और यहीं गुरुपूर्णिमा भी मना लो। वहाँ माताजी के सामने तो सङ्कोच भी लगेगा।' अतः उसी समय तुमुल ध्वनि से 'गुरवेनमः' का कीर्तन का रङ्ग ऐसा जमा कि हम सभी लोग पागल हो गये।

ऊपर से तो निरन्तर जलवृष्टि और भीतर से प्रेमवृष्टि। सब लोग उस कीचड़ में ही थिरककर नाचने लगे। हमारे पण्डित रामलालजी तो मूर्च्छित प्राय: होकर कीच में ही मिल गये। मैं बहुत सँभलते सँभलते भी लोट-पोट हो गया। उसी आनन्द में कीर्तन करते-करते दो घण्टे हो गये। इधर वर्षा भी कम हो गई। इसी समय हमने आँखें खोलकर देखा तो ऊपर कुछ भक्तों के साथ खड़ी हुई माताजी हँस रही थीं।

बस सब लोग सावधान होकर वहां से चल दिये और स्नान आदि से निवृत्त हो अपने-अपने काम में लग गये। भोजन के पश्चात् पञ्चवटी स्थापना का मुहूर्त था। सो बहुत सी पूजन की सामग्री लेकर माताजी और श्रीमहाराजजी अपने-अपने परिकर सहित कीर्तन करते चले। वहाँ एक पण्डित ने पूजन कराया और फिर श्रीमाताजी तथा महाराजजी के हाथ से पंचवटी की स्थापना कराई गई तथा अन्त में प्रसाद-वितरण हुआ। सायंकाल में कीर्तन के पश्चात् बाँध प्रान्त के भक्तों ने एक गुरुमहिमा सम्बन्धी लीला की। लोगों पर उसका प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा।

दूसरे दिन प्रभाती कीर्तन करके सब लोग मोटर लॉरियों द्वारा हरिद्वार गए। वहाँ एक बंगालियों के आश्रम में ठहरे। रात्रि का कीर्तन वहीं हुआ तथा दूसरे दिन दोपहर तक का सारा प्रोग्राम भी वहीं निष्पन्न हुआ। दोपहर पश्चात् पाँच-चार आदमियों के साथ श्रीमाताजी और महाराजी हरिद्वार से चार-पाँच मील दूर श्रीनारायण स्वामीजी से मिलने के लिए गए। ये भी एक सुप्रसिद्ध महापुरुष हैं। केवल टाटकी कौपीन धारण करते हैं और रात्रि में केवल दो-तीन घंटे सोकर निरन्तर ''नारायण'' नाम का जप करते हैं। श्रीमहाराजजी से आपका पहले ही से बहुत प्रेम है। आप बड़े प्रेम से मिले। फिर परस्पर कुछ भगवच्चर्चा छिड़ने पर आपने बहुत जोर देकर श्रीमहाराज जी से संकेत में और कुछ लिखकर कहा—'आपको सत्संग और कथा कीर्तन में राग हो गया है। अत: यह सब एक दम छोड़कर निरन्तर हमारे पास रहो। इसीमें आपका हित है।' यह बात हम सबको तो बहुत बुरी लगी, किन्तु बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते हुए आप बोले, 'ठीक है यदि माताजी भी यह बात स्वीकार कर लें तो दो महापुरुषों की आज्ञा होने से मैं इसे भगवदाज्ञा ही समझूँगा और फिर आजन्म किसी से आँखें नहीं मिलाऊँगा।'

किन्तु जब माताजी से पूछा तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया, 'जो पिताजी को अच्छा लगे वही करें।' आप बोले, 'मैं अपनी ओर से जो कुछ करता हूँ भगवदाज्ञा समझकर ही करता हूँ।' इस पर श्रीमन्नारायण स्वामीजी ने बहुत जोर देकर कहा, 'हमारे हृदय में स्पष्ट भगवदाज्ञा हो रही है कि आपको सब प्रकार का सङ्ग छोड़कर एकान्त में रहना चाहिये।' तब आपने बड़ी नम्रता से कहा, 'श्रीमहाराजजी ? भगवान् तो एक ही है। अतः आपके हृदय में जो प्रेरणा हो रही है वह मेरे हृदय में भी तो होनी चाहिये।' तब वे चुप हो गये और हम सब वहाँ से चले आए। किन्तु उनकी बातों का आपके चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा। आश्रम पर आकर भी आप उसी विषय पर विचार करते रहे और उदास भी हो गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ही आपने हम लोगों को यथास्थान जाने की आज्ञा दी। अतः मैं तो वहाँ से वृन्दावन चला आया और आप श्रीमाताजी के साथ पुनः देहरादूर लौट गये।

वहाँ जाकर भी आपने वही चर्चा छेड़ दी। आप श्रीमाताजी से बोले कि यदि आप आज्ञा दे दें तो मैं आजन्म एकान्त में रह सकता हूँ। किन्तु माताजी तो आपके स्वरूप को अच्छी तरह समझती थीं। भला, वे आपसे ऐसा करने के लिए कैसे कह सकती थीं। आखिर उन्होंने बड़ी युक्ति से कहा, 'अचछा, अभी तो श्रीवृन्दावन चलें, वहाँ जैसा बाबा कहें वैसा ही करें।' अतः आप विवश होकर दिल्ली होते हुए श्रीवृन्दावन चले आये।

अब थोड़ा इस विषय में विचार करें कि आपसे श्रीनारायण स्वामी ने एकान्तवास के लिए इतना आग्रह क्यों किया। वे भी तो एक अच्छे महात्मा और उच्चकोटि के साधन सम्पन्न महापुरुष हैं। इनके सिवा उनका आपसे हार्दिक स्नेह भी रहा है। ठीक है, किन्तु फिर भी यही कहना होगा कि वे आपकी वास्तविक स्थिति से अपरिचित थे। इनका तो ऐसा स्वभाव ही है कि हर एक के आगे अपने असन्तोष की ही बात करते हैं, वह सब सुनकर ये और सलाह भी क्या देते ? वे तो बड़े ही सरल और सीधे-सादे विरक्त महात्मा हैं। इनकी अटपटी लीलाओं को वे क्या समझ सकते थे। अतः अपनी सरल बुद्धि से उन्हें जो ठीक जँचा वह कह दिया। एक विरक्त सन्त किसी असन्तोष प्रकट करने वाले महात्मा को इनके सिवा और क्या सलाह दे सकता था ?
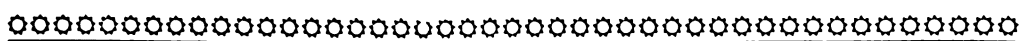
वृन्दावन से विरक्ति

बस, श्रीमाताजी के साथ आप श्रावण मास में वृन्दावन आ गये। यहाँ पूज्य बाबा को श्रीनारायण स्वामीजी की बात सुनकर उनकी सम्मति पूछी। वे तो हँस पड़े और उस कथन की उपेक्षा ही कर दी। अत: अब आपने उस विषय में कोई संकल्प-विकल्प करना छोड़ दिया। श्रीमाताजी भी कुछ दिन ठहरकर कहीं अन्यत्र चली गयीं।

यहाँ कथा-कीर्तन में तो आप पूर्ववत् सहयोग देते रहे। बल्कि प्रात:काल भी कुछ देर श्रीमाताजी की जीवनी की कथा सुनाने लगे। किन्तु गत दो वर्ष से रासलीला से आपका चित्त उपराम हो गया था। अत: आप रास के समय अपना स्वाध्याय किया करते थे। उन दिनों पण्डित किशनलाल की मण्डली के रास हो रहे थे। उन्हें आपकी अनुपस्थिति खलती थी। इधर पूज्य श्रीबाबा के परिकर में भी कुछ सामान्य-सी बातों को लेकर परस्पर पार्टीबन्दी और गहरे मतभेद चल रहे थे। इन बातों ने आपके सुकुमार चित्त पर बहुत चोट पहुँचाई और आप उदास-से रहने लगे। कीर्तन के समय भी उदासीन से बैठे रहते थे। इससे हम सबको भी कुछ चिन्ता हुई।

एक दिन हमने पूछा कि कीर्तन से आपकी उदासी का क्या कारण है। तब आप बोले, 'यह सब मेरा ही दोष है। यदि आज तक मेरी निष्ठा कीर्तन में हुई होती तो आप लोगों की भी अवश्य हो ही जाती। मुझे ढीले-ढाले कोई काम करना अच्छा नहीं लगता। ऐसा कीर्तन करने से तो न करना ही अच्छा है। यदि करो तो हर समय सूली पर चढ़े रहकर प्राणों की बाजी लगाकर करो। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो सब अलग होकर मनमानी करते रहो। तुम लोगों ने घर-बार छोड़ा, किन्तु यहाँ आकर घर से भी अधिक राग-द्वेष में फँस गये। यह तो अपने जीवन को बरबाद करना ही है। आजकल संसार में जो बड़े-बड़े आश्रमों की कड़ी आलोचना की जाती है उसका कारण यही तो है कि वहाँ के सन्त, महन्त और उनके अनुयायियों के जीवन सामान्य संसारी पुरुषों से भी गये-गुजरे हैं। वे तनिक-तनिक सी बातों पर आपस में झगड़ते रहते हैं। उनका सारा समय पारस्परिक कलह और परिचर्चा में ही व्यतीत होता है।

उसमें शारीरिक या मानसिक किसी भी प्रकार का संयम नहीं है। न उनकी कथा-कीर्तन या साधन-भजन में ही रुचि रहती है। वे एक प्रकार से यह भूल ही जाते हैं कि हमने किस उद्देश्य से घर छोड़ा है। सच पूछो तो आश्रमों में यह सारी भीड़ व्यर्थ ही इकट्ठी हो जाती है। इनमें कोई विरला ही सच्चा जिज्ञासु होता है, जो किसी प्रकार शरीर का निर्वाह करते हुए रात-दिन साधन करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है। भाई ! अपने से बड़े महापुरुषों के विषय में कुछ सोचने का तो हमें अधिकार नहीं है। वे कुछ भी करें। उस पर दृष्टि न देकर हमें तो उनके उपदेशानुसार बड़ी लगन से अपने साधन में लगे रहना चाहिये।'

इस प्रकार आपने बहुत कुछ कहा। वास्तव में आश्रमवासियों की ढील-ढाल और राग-द्वेषादि के संस्कारों से विवश होकर आपको वृन्दावन में रहना कठिन हो गया। इधर बाबा भी अस्वस्थ रहने के कारण ढीले-ढाले हो रहे थे। आप यह सोच ही रहे थे कि कहाँ जायँ, वर्षाऋतु तो श्रीवृन्दावन की ही अच्छी होती है, इतने ही में भिरावटी से पण्डित छबिकृष्ण आ गये। आपने एकान्त में उनसे अपना विचार प्रकट किया, तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर आपसे भिरावटी चलने के लिये प्रार्थना की। आप बोले, 'भाई ! आज-कल तो वहाँ का जलवायु ठीक नहीं रहता, चारों ओर पानी ही पानी भर जाता है तथा कीचड़ और मच्छरों की भरमार रहती है किन्तु इन बाह्य अड़चनों के रहते हुए हमलोग तत्परता से सत्संग, स्वाध्याय और कथा-कीर्तन में लग जायँ तो इनका कोई ध्यान भी नहीं आ सकता।'

इस प्रकार कुछ देर बातचीत करके आपने भिरावटी जाने का निश्चय कर लिया और छविकृष्ण से कहा कि तू बाबा से अत्यन्त नम्रतापूर्वक मेरी ओर से प्रार्थना कर कि वे मुझे भिरावटी जाने की अनुमति दे दें। तब छवि ने बाबा के पास जाकर प्रार्थना की। उन्होंने कह दिया कि जिसमें उनकी प्रसन्नता हो वही करें। बस, दूसरे ही दिन आप मोटर लारी द्वारा वृन्दावन से चल दिये और सानन्द भिरावटी पहुँच गये। उस दिन सम्भवतः भाद्रपद कृष्णा १३ थी। आपको अकस्मात् आया देखकर वहाँ के सब लोग चकित रह गये और जल्दी से कुटिया की सफाई आदि करके आपको

ठहराने की व्यवस्था में लग गये। आपके साथ वृन्दावन से कई सत्संगी गये थे। वे सब भी यथास्थान ठहरा दिये गये।

भिरावटी और बाँध के उत्सव

अब भिरावटी में जहाँ-तहाँ के अनेकों भक्त एकत्रित होने लगे साथ ही आपने अपना कथा कीर्तन स्वाध्याय और सत्संगादि से कार्यक्रम भी निश्चित कर लिया। बहादुरसिंह, नरेन्द्रसिंह, प्रसन्नकुमार, राजेन्द्रसिंह, लोचनसिंह और छविकृष्ण आदि तो सफाई के कामों में जुट गये। और बाबू भगवद्दत्त, रामदत्तशास्त्री, केशवदेव शास्त्री, लोकमणि शास्त्री, रामचन्द्र एवं कृष्णदत्त सारस्वत आदि के साथ आपका स्वाध्याय चलने लगा। प्रातः काल ५ से ७ बजे तक तो नित्य प्रति एक-एक घर में बड़े समारोह से कीर्तन होता था। फिर ८ से ११ बजे तक कुछ संस्कृत ग्रन्थों का स्वाध्याय किया जाता था। दोपहर को भोजन के पश्चात् ३ से ५ बजे तक कथाएँ होती थीं। उनमें बस्ती के अनेकों स्त्री, पुरुष एवं बालक भी उपस्थित होते थे। तत्पश्चात् ५॥ से ६॥ बजे तक एक स्वच्छ मैदान में कुछ खेल-कूद होता था और रात्रि में ७॥ से ९ बजे तक कीर्तन पदगायन के पश्चात् आप थोड़ी देर माँ श्री आनन्दमयी की जीवनी सुनाते थे।

इस प्रकार यह उत्सव बड़े ही आनन्द औ शान्ति से चलने लगा। यह वर्षाऋतु तो थी ही; किन्तु आप उसकी कोई परवाह न कर पानी और कीचड़ में ही बड़े उत्साह से सारा कार्यक्रम चलाते थे। वृन्दावन में आपने पूज्य बाबा के स्वास्थ्य लाभ के निमित्त से पण्डित राधेश्यामजी 'कञ्ज' द्वारा 'नाशै रोग हरे सब पीरा। जपत निरन्तर हनुमत वीरा' इस सम्पुट के साथ हनुमान चालीसा के एक सौ आठ पाठ कराये थे। उसमें सभी का विशेष उत्साह देखकर आपने उसी शैली से श्रीरामचरितमानस के एक सौ

आठ नवाह्न पाठ कराने का भी निश्चय किया था। किन्तु कुछ विवशताओं से वहाँ तो आपका यह सङ्कल्प पूरा न हो सका। अत: आप कञ्जजी को अपने साथ भिरावटी ले आये थे। यहाँ कुँवर नरेन्द्रसिंह के मकान में इस अनुष्ठान का आयोजन किया गया। तब श्रीरामचरितमानस के एक सौ आठ पाठक और पाठिकाएँ तैयार की गयीं। वे सब अपनी-अपनी पोथी लेकर बैठते थे। बस, पहले श्रीकञ्ज जी बोलते और पीछे वे सब उसी ध्वनि में बोलते थे। इस प्रकार यह अनुष्ठान बड़े ही आनन्द से होने लगा। इससे सभी लोगों का सत्सङ्ग आदि में बहुत उत्साह बढ़ गया।

अभी इसे आरम्भ हुए तीन दिन हुए थे कि कुछ कारणों से आपने मुझे बहुत फटकारा मैं गुस्सा होकर बाँध को चला गया और वहाँ अनशन करके नवाह्न परायण करने लगा। इधर नवाह्न पाठ तो आनन्द से चलता रहा, किन्तु आप बहुत उदास हो गये। और भी कई लोगों ने प्रार्थना की कि उन्हें बुला लेना चाहिये। तब आप बोले, वह बड़ा जिद्दी है, मेरे बिना शायद ही आवे। और मैं इस समय अनुष्ठान छोड़कर कैसे जाऊँ? किन्तु जब सबने बहुत आग्रह किया तो आपने बहादुरसिंह और छबिकृष्ण को आज्ञा दी कि तुम लोग रात का प्रोग्राम पूरा करके १० बजे हाथी पर जाओ और सबेरे नवाह्न आरम्भ होने से पहले ही लौट आओ। देखो, रास्ते में बराबर श्रीभगवान् का स्मरण करते जाना और वहाँ रोते हुए बड़ी नम्रता से बोलना। इस पर यदि आ जाय तो अच्छा ही है, नहीं तो नवाह्न का नियम पूरा करके सब लोग वहीं चलेंगे और अनशन करके अनुष्ठान करेंगे।

बस, ये दोनों रात को १० बजे हाथी पर चढ़कर चले और २ बजे मेरे पास पहुँचे। उस दिन मुझे पाँच दिन बिना खाये हो गये थे। इससे मेरा शरीर तो बहुत थक गया था किन्तु फिर भी सब प्रोग्राम ठीक चल रहा था। चित्त की अवस्था भी अच्छी थी मैं उन दिनों दो बार आधा-आधा सेर जल ही लेता था। मुझे ध्यान तथा स्वप्न में सर्वदा ही महाराजजी अपने समीप दिखाई देते थे। मैं निरन्तर मौन रहकर अपनी एकान्त कुटी में ही पड़ा रहता था और यह निश्चय कर लिया था कि अब इस शरीर को रखना व्यर्थ है। मैं सोचता था—

'अहह दैव! मैं कत जग जायउ। प्रभु के एकहु काम न आयउ॥'

एक बात उस दिन बड़ी विचित्र हुई। उस रात जब छविकृष्ण और बहादुर सिंह भिरावटी से चले तो बारह बजे के लगभग मैंने स्वप्न में वहाँ की सब बातें ज्योंकी त्यों देखीं। मैंने देखा कि श्रीमहाराजजी अत्यन्त दु:खी होकर मुझसे कह रहे थे कि तूने मुझे बहुत तङ्ग किया है। देख तो, तेरे कारण यहाँ कितने लोग दु:खी हो रहे हैं। अब तू बहादुरसिंह के साथ चला आ, नहीं तो कल अनुष्ठान समाप्त करके परसों हम सब तेरे पास आयेंगे और अनशन करके सत्याग्रह करेंगे। ऐसे कहते-कहते आपके नेत्रों से निरन्तर अश्रुवर्षण हो रहा था।

आपकी यह विचित्र दशा देखकर मेरा हृदय विदीर्ण होने लगा। मैं चारपाई पर बैठकर रोने लगा। इस समय रात्रि का एक बजा था। और मेरी कुटिया का दरवाजा बन्द था। प्राय: दो बजे बाहर से रोने की आवाज सुनाई दी। मैं चौंक पड़ा और मैंने उठकर किवाड़ खोले तो बहादुरसिंह मेरे पैरों से लिपट गया। छवि ने वहाँ का सारा वृत्तान्त सुनाया। अभी-अभी स्वप्न में भी मैंने ये ही सब बातें देखी थीं। अत: मैंने अपना हट छोड़ दिया और बार-बार अपने को धिक्कारते हुए मन ही मन कहा, 'अरे पापी मन! तूने जन्म भर श्रीमहाराजजी को कष्ट ही दिया है। याद रख तुझे परलोक में इसके लिये दण्ड भोगना पड़ेगा।'

बस, उसी समय चलने की तैयारी हो गयी। मैंने मोहलनपुर से भूपसिंह को बुलाया। उसकी तेज बैलों की सवारी में हम लोग सवेरे पाँच बजे ही चल दिये। हाथी को पीछे आने के लिये छोड़ दिया। हम साढ़े आठ बजे भिरावटी पहुँच गए। श्रीमहाराजजी पाठ में जाते हुए रास्ते के बाग में ही मिल गये। मुझे देखकर आपने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा, अच्छा, आ गया। बहुत अच्छा हुआ। दूसरे दिन नवाह्न पारायण समाप्त हुआ। उसके पीछे वही सम्पुट लगाकर श्रीहनुमान चालीसा के एक सौ आठ पाठ हुए। मैं तो पहुँचते ही सारे कार्यक्रमों में सम्मिलित होने लगा। और सब लोगों का भी इस समय पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ा हुआ उत्साह था।

यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है कि गत दो वर्ष से श्रीमहाराजजी रासलीला से उपराम हो गये थे। इसलिये आपने यहाँ कोई मण्डली नहीं बुलाई थी। किन्तु वृन्दावन से मनोहर बिन बुलाये ही हरगोविन्द की मण्डली लेकर पहुँच गया। मण्डली के आने पर आपने उसका यथोचित सत्कार किया और लीला की भी व्यवस्था हो गयी। किन्तु आपका समय तो पहले ही सब बँधा हुआ था। इसलिये आप स्वयं रास में नहीं जाते थे। इससे मनोहर नाराज हुआ। बोला कि मैं तो आप ही को लीला दिखाने के लिये मण्डली लाया हूँ। नहीं तो, इस तरह बिना बुलाये क्यों लाता ? तब उसकी प्रसन्नता के लिये आप घुटनों तक पानी और कीचड़ खूँदते सवेरे दस बजे रास में जाते और बारह बजे कीर्तन करके घोर घाम में कुटी पर लौटते। आखिर, हम लोगों के आग्रह से आपने यह आना-जाना बन्द कर दिया और मण्डली को भी यथोचित सत्कार करके विदा कर दिया।

इसके पश्चात् लोगों का उत्साह देखकर आपका विचार हुआ कि एक विशेष उत्सव किया जाय। उसमें सब महापुरुषों को भी आमन्त्रित करना चाहिए। अतः पूज्य बाबा और माँ के पास छविकृष्ण को भेजा गया। बाबा तो अस्वस्थ थे, इसलिये उनके आने की सम्भावना तो थी नहीं। साथ ही कुछ विशेष कारणों से माँ के आने में भी सन्देह हो गया। किन्तु आपने तो उनके आने की सम्भावना से बड़ा भारी सफाई का काम आरम्भ कर दिया। उस कीच-पानी में ही आप स्वयं प्रातःकाल अँधेरे में तीन चार कोश तक के गाँवों में जाकर कीर्तन और व्याख्यान द्वारा लोगों को उत्साहित करके मदद लाते। इस प्रकार भिरावटी में नित्य प्रति चार-पाँच सौ आदमियों की मददें आती थीं। उन्हें काम पर लगाकर आप स्वाध्याय में लग जाते थे और हम लोग उनसे दोपहर तक खूब काम कराते थे। आप स्वाध्याय से निवृत्त होने पर उनसे कीर्तन कराते और फिर वे अपने अपने गाँवों को चले जाते थे।

इस प्रकार आश्विन और कार्तिक में बड़ी भारी सफाई होती रही। आपकी कुटिया के ऊपर एक नवीन चौबारा बना तथा कीर्तन मण्डल भी बनवाया गया। और भी सबकुटियों की मरम्मत हुई तथा आठ-दस नयी कुटियाँ बनाई गयीं। जो काम
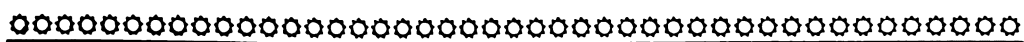
करना उनमें पूरे मन से जुट जाना तो आपका स्वभाव ही है। अतः एक दिन तो आपने यह शर्त लगा दी कि यदि आज रात-रात में सवेरे छः बजे तक एक नवीन पक्की कुटी तैयार हो जायगी, तब तो मैं यहाँ रहूँगा, नहीं तो कल सवेरे ही चला जाऊँगा। यह सुनकर सब लोग चुपचाप चले गये और आपस में सलाह करके उसी समय दस-बीस गाड़ियों में ईंटें मँगवायीं और बीसों राज मजदूर लगाकर रातभर गैस के हण्डों की रोशनी में काम करा सबेरे तक कुटी तैयार करा दी। प्रातःकाल जब आपने उसे देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और बोले, 'भाई! इन्होंने तो आश्चर्य ही कर दिया।'

इस तरह श्रीमाताजी की कुटिया तथा उनके पचास भक्तों के लिये भी कुटियाऐं तैयार हो गयीं। प्रायः एक मील के घेरे में सारा जंगल लीप-पोतकर, स्वच्छ एवं सुन्दर बना दिया गया। वहाँ के वृक्षों के चबूतरे भी दिव्य बना दिये गये और उन पर अनेकों भगवत्सम्बन्धी वाक्य लिख दिये गये। इस बार इस आश्रम का जैसा परिष्कार हुआ वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इसमें प्रायः तीन महीने तक सैकड़ों आदमी लगे रहे और हजारों रुपये खर्च हुए।

किन्तु जिन श्रीमाताजी के आगमन के लिये ये सब तैयारियाँ हो रही थीं, वे तो बार-बार प्रोग्राम बदल देती थीं। आखिर, मार्गशीर्ष में वे पधारीं और सो भी केवल एक सप्ताह के लिये। आपके आने पर बड़ा भारी स्वागत किया गया। पहले कभी किसी के आने पर न तो इतनी तैयारी की गयी थी और न ऐसा स्वागत ही हुआ था। उसका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। सात दिन तक बड़ी ही धूमधाम से कीर्तन, सत्सङ्ग और उत्सव हुआ तथा चलते समय उस आश्रम की बड़े ही समारोह से परिक्रमा की गयी। माताजी के चले जाने पर एक दिन मैंने कहा, 'हमारी इतनी तैयारी होने पर भी माताजी केवल एक सप्ताह के लिये पधारीं?' इस पर आप बोले, 'पागल! जब लाट साहब आते हैं तो दुनियादार आदमी लाखों रुपया खर्च करते हैं और तैयारी करते-करते पागल हो जाते हैं। इतना होने पर वे केवल घण्टे-दो घण्टे को आते हैं और कभी-कभी तो वे सब कुछ होने पर भी नहीं आते। हम लोगों की दृष्टि में उनका आना, न आना और वह सारी तैयारी व्यर्थ ही है, वास्तव में उसका कुछ भी मूल्य

नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि किसी महापुरुष के स्वागत के लिये कुछ तैयारी तुमने कर ही ली, तो क्या हो गया। उनकी तो दृष्टिमात्र पड़ने से जीव जन्म-जन्मान्तर के पापों से मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है। भला, बताओ तो, उस अलौकिक परमार्थ लाभ के सामने तुम्हारे इस आडम्बर का क्या मूल्य है, जिसका कि तुम इतना अभिमान करते हो ? इसके सिवा हमें तो सारा काम अपना कर्तव्य समझकर निष्काम भाव से ही करना चाहिए। हमारा ऐसा भाव हो जाना ही सबसे बड़ी सिद्धि है। वास्तव में तो सच्चा साधक ही सिद्ध है और साधन में लगे रहना ही सिद्धि है। जिसके कारण हमें ऐसी सेवा का अवसर मिले उस पर तो अपना सर्वस्व निछावर कर देना चाहिये।'

अस्तु। इसी प्रकार कुछ दिनों आप वहाँ और रहे, फिर पौष मास के आरम्भ में ही उत्सव करने तथा ठोकर बनवाने के विचार से बाँध पर चले आये। वहाँ पहुँचकर आपने पूज्य बाबा के पास जाने का विचार किया। अतः छविकृष्ण को रेल द्वारा वृन्दावन भेजकर फिर मोटर से आप भी वहाँ गये। बाबा से आपने इस विषय में परामर्श किया कि बाँध का उत्सव होना चाहिए या नहीं। और यदि किया जाय तो पहले ठोकरें बनाकर करें, या जैसे-तैसे टूटे बाँध पर ही। तब बाबा ने कहा, 'मेरे विचार से तो ठोकरें बनाकर ही करना ठीक होगा, परन्तु इसमें आपको परिश्रम बहुत करना पड़ेगा।'

तब आप बाबाजी की रुचि जानकर यह कहकर बाँध पर चले गये कि आप माघ पूर्णिमा का स्नान बाँधपर ही करें। मैं ठोकरें बनाकर उत्सव की तैयारी करूँगा। बाँध पर पहुँचकर आपने पीली कोठी की ठोकर बनाने का निश्चय किया। किन्तु वहाँ कंकड़ बिलकुल नहीं था। और प्रायः एक लाख रुपये का खर्चा था। परन्तु आप तो प्राणों की बाजी लगाकर उसमें तन-मन से भिड़ गये। बस, श्रीभगवान् ने सहायता की और आवश्यकता से अधिक कंकड़ मिल गया तथा और भी सब प्रकार की सहायता दैवयोग से होती गयी। अजी, एक आश्चर्य ही हो गया। माघ पूर्णिमा तक एक नहीं, तीन ठोकरें बन गयीं—पीली कोठी वाली, आपकी कुटी वाले बाँध की और इन दोनों के बीच वाले क्रॉस बाँध की। इस प्रकार तीन ठोकरें बन जाने पर भी आठ-दस हजार मन कंकड़ बचा रहा।

इसके साथ ही उत्सव की तैयारी भी होती रही। अतः माघ पूर्णिमा को बाबा के न पहुंचने पर भी अखण्ड कीर्तन आरम्भ हो गया। इसी समय वृन्दावन से बाबा ने पुष्कर को भेजकर कहलाया कि मैं धीरे-धीरे शिवरात्रि तक पहुँच सकूँगा। आपने कहा, 'ठीक है।' किन्तु फिर किसी ने आकर कहा कि बाबा का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, इसलिये वे नहीं आ सकेंगे। इस समाचार से आप बड़े मर्माहत हुए और बोले, 'हम तो बाबा के लिये मरते हैं, किन्तु वे हमारी तनिक भी परवाह नहीं करते। हाँ यह तो ठीक है कि उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। किन्तु वहाँ के वातावरण में तो उसका सुधरना असम्भव ही है। बाबा तो भक्तवत्सल हैं। उनके अंतरंग भक्त वृन्दावन नहीं छोड़ना चाहते, इसलिए उन्होंने भी यहाँ आने का विचार छोड़ दिया। अब, यह सोचना चाहिये कि इस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है ?'

श्रीश्री माँ तो अपने निर्दिष्ट समय पर आ गयी थीं। किन्तु बाबा का न आने का विचार सुनकर आप बहुत उदास हुए। तब हमने कहा, 'जैसे भी हो बाबा को अवश्य लाना चाहिये। यदि हो सके तो उन्हें मोटरकार द्वारा ले आवें। किन्तु मोटर में बैठना तो वे तभी भले ही स्वीकार करें, जब आप स्वयं जाकर उनसे इसके लिये आग्रह करें। नहीं तो, हमारे कहने से वे आजीवन किसी सवारी में न बैठने की अपनी प्रतिज्ञा कैसे तोड़ सकते हैं।' इस पर आप बोले, 'मुझे तो बाबा का हित भी वहाँ के वातावरण में से निकलने में ही दीखता है अतः उन्हें लाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये।'

बस, दूसरे ही दिन फाल्गुन शुक्ला एकादशी को आप माता जी के सहित मोटर द्वारा अनूपशहर से वृन्दावन गये और वहाँ जाकर बाबा से मोटर में बैठने का बहुत आग्रह किया। किन्तु इसके लिये वे तैयार नहीं हुए। हाँ, पैदल चलने को तैयार थे किन्तु उनकी निर्बलता और अस्वस्थता के कारण उनके अंतरंग भक्तों ने पैदल आने नहीं दिया। माताजी ने भी मोटर में चलने का बहुत आग्रह किया। इस पर भी बाबा मौन रहे। बाबा के भक्त तो बराबर विरोध ही करते रहे। स्वामी प्रबोधानन्द ने तो इतना तर्क-वितर्क किया कि महाराजजी घबरा गये। इस प्रकार रात के बारह बज

गये और कुछ भी निर्णय न हो सका। तब महाराजजी को बहुत उद्विग्न देख माता जी ने कहा, 'पिताजी! अब आप आराम करें; कल जो कुछ होना होगा स्वयं ही हो जायगा।' आखिर यह निश्चय करके कि सवेरे पाँच बजे कीर्तन करके चलेंगे आप निराश होकर सो गये।

इधर महाराजजी के शयन करने पर बाबा ने अपने अन्तरङ्ग भक्तों के साथ विचार-विनिमय किया और फिर जाने का निश्चय कर रात के दो बजे हाथरस वाले सेठ राधेश्याम सेक्सरिया की मोटर में बाँध को चल दिये। महाराजजी यह मोटर बाबा को ले जाने के लिये ही हाथरस से साथ ले आये थे। जाते समय बाबा ने महाराजजी को जगाना उचित नहीं समझा और अपने आदमियों से कह दिया कि जब हरिबाबा कीर्तन करके चलने को तैयार हों तब कह देना कि बाबा चले गये।

श्रीमहाराजजी तीन बजे उठकर नित्य क्रिया में लग गये और ठीक चार बजे आकर पाँच बजे तक कीर्तन किया। फिर ज्योंही चलने को तैयार हुए कि किसी से मालूम हुआ, बाबा चले गये हैं यह सुनकर माताजी तो बहुत हँसी और कहने लगीं, देखो पिताजी! मैंने कहा था न कि जो होना होगा स्वयं ही हो जायगा। रात को जब महाराजजी निराश होकर सोने लगे थे तब माताजी ने दीदी से कहलाया था कि पिताजी चिन्ता न करें। यदि भगवान् की इच्छा हुई तो अन्तर्यामी स्वयं ही उनके हृदय में चलने की प्रेरणा कर देंगे। उस बात को स्मरण करके आप गद्‌गद् हो गये और जल्दी से मोटर में बैठकर चल दिये। सो आप तो प्राय: आठ बजे अनूपशहर पहुँचे किन्तु बाबा पाँच बजे ही पहुँच गये थे। वहाँ से पुल पार करके वे स्नानादि से निवृत्त हो श्रीगंगाजी की रेती में विराजमान हुए। उस समय बाबा के आगमन की सूचना पा अनूपशहर के अनेकों भक्त दर्शन को आये। वहाँ पुष्प, फल और मिठाइयों का ढेर लग गया। बाबा बड़े आनन्द में समागत भक्तों को प्रसाद बाँट रहे थे। आपको अकस्मात् आये देख भक्तों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था, सबसे बड़ा आश्चर्य और उल्लास तो इस बात से हुआ कि आपने श्रीमहाराजजी के प्रेमवश अपनी आजन्म किसी सवारी में न बैठने की प्रतिज्ञा तोड़ दी थी। यह आपका अद्‌भुत त्याग था।
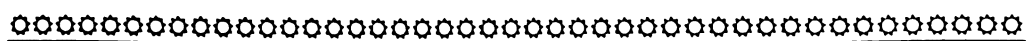
इसी समय बाँध से कुछ सवारियाँ लेकर मैं वहां पहुँचा। तब किसी ने कहा कि बाबा तो वे सामने विराजमान हैं। बस मैं दौड़कर गया और श्रीचरणों में प्रणाम किया। आप स्वयं ही बोले, 'अरे ललिताप्रसाद! मैं तो रात को दस बजे ही वृन्दावन से चल दिया। बाबा तो वहाँ से पाँच बजे चले होंगे। वे यहाँ आठ बजे तक पहुँचेंगे।' आपका यह अपूर्व स्नेहमय त्याग देखकर मैं मुग्ध हो गया। आपने आगे कहा, 'वहाँ मुझे लोगों ने बहुत रोका परन्तु मैंने तो उनकी इच्छा के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं किया जब मुझे मालूम हुआ कि मेरे न जाने से बाबा को दुःख होगा तो मैं चुपचाप राधेश्याम की मोटर में चला आया।'

ये सब बातें हो ही रही थीं कि महाराजजी की मोटर भी पुल पर आ गयी। हम सब लोग दौड़कर गये तो उन्होंने उतर कर पूछा, क्या तुझे बाबा मिले ? मैंने कहा, 'हाँ, वे सामने ही तो बैठे हैं।' तब आप बड़े हँसे और बोले, 'भाई! बाबा तो बड़े लीलाधारी हैं। कल कितना झगड़ा हुआ किन्तु आपने 'हाँ' या 'न' कुछ भी नहीं कहा और रात को चुपचाप चले आये। ठीक है, 'लोकोत्तराणाँ चेताँसि को न विज्ञातुमर्हति।' भाई! समर्थों का खेल समझना कोई सहज बात नहीं है। अच्छा, अब बाबा से कहो कि मोटर में बैठ लें और हम सब दूसरी सवारियों से अथवा पैदल चले जायँगे।' मैंने कहा, 'बाबा तो यहाँ से पैदल ही जाने को कहते हैं।' तब आप बोले, 'नहीं भाई! बहुत निर्बल हो गये है।' मैंने कहा, 'नहीं, आप चलकर देखें, कैसे मस्त बैठे हैं ?' आपने कहा, 'तू पगाल है, जा जिद्द करके मोटर में बैठा दे।' मैं बोला, 'बहुत अच्छा।' फिर मैंने जाकर बाबा से प्रार्थना की और उनके निषेध करने पर भी उन्हें हठपूर्वक मोटर में बैठा दिया। तब बाबा बोले, 'अच्छा, माँ और बाबा को भी बिठा दो' अतः उन्हें भी प्रार्थना करके उसी कार में बैठाया। तथा अन्य सब भक्तों को हाथी और बैलगाड़ियों में बिठाकर झट से बाँध पर पहुँच गये, वहां सब लोग यथास्थान ठहरा दिये गये। आपने पहुँचते ही कीर्तनमण्डप में बड़ी धूमधाम से कीर्तन किया।

उस दिन शिवरात्रि थी। बस, कमेटी करके उत्सव का प्रोग्राम निश्चित किया गया। यथा समय कथा, कीर्तन और सत्संग के प्रोग्राम हुए, रात्रि को बड़ी धूमधाम

से शिवरात्रि का उत्सव मनाया गया, बाबा को एक चौकी पर बिठाकर बहादुरसिंह, छविकृष्ण, भगवती और सागर आदि भक्तों ने आपका पुष्पों से शिवजी के समान शृङ्गार किया और रुद्राष्टकादि अनेकों स्तोत्र पढ़े। उसके पश्चात् 'शिव शिव शम्भो हर हर महादेव' का कीर्तन हुआ और प्रसाद-वितरण किया तथा खूब दीपावली मनायी गयी।

इस वर्ष रासमण्डली कोई भी नहीं बुलायी गयी, क्योंकि गत दो-तीन वर्ष से मण्डलियों के दूषित व्यवहार के कारण आपका चित्त इनकी ओर से उपराम हो गया है। बस, इस वर्ष तो कथा कीर्तन और प्रवचन ही उत्सव के प्रधान अङ्ग थे। सवेरे पाँच, मध्याह्न में ग्यारह और सायंकाल में सात बजे खूब धूमधाम से समष्टि कीर्तन होता था। प्रातःकाल ८ से ११ बजे तक और मध्याह्नोत्तर २॥ से ६ बजे तक सुन्दर-सुन्दर कथाएँ होती थीं तथा रात्रि में मुरादाबाद वाले पण्डित पुरुषोत्तमदास व्यास वीणा द्वारा अद्भुत पद-कीर्तन कराते थे। फाल्गुन के शुक्ल पक्ष में तो बाहर से अनेकों विद्वान्, व्याख्याता, कथावाचक और कीर्तनकार आये हुए थे। उनके प्रवचन, कथा एवं कीर्तनादि होते रहे। सभी प्रोग्राम में बड़ी शान्ति रही। केवल वे ही लोग सत्सङ्ग में आते थे जो शान्तिपूर्वक उसका रस ले सकते थे। और साल तो लीलाओं के कारण कुछ हुल्लड़बाजी भी हो जाती थी। इस बार वैसी जनता बिलकुल इकट्ठी नहीं हुई।

इस प्रकार होली का उत्सव सानन्द समाप्त हुआ। दूसरे दिन बड़ी धूमधाम से बधाई और बड़ा भण्डारा हुआ। फिर विचार हुआ कि अब उत्सव के बाद एक दम ढील-ढाल हो जायगी, इसलिये वृन्दावन के गोस्वामी यमुनावल्लभजी के द्वारा श्रीमद्भागवत का सप्ताह प्रवचन कराना चाहिए। गोस्वामीजी आये हुए तो पहले ही से थे। किन्तु उस समय तो समयाभाव होने के कारण सप्ताह की योजना नहीं हो सकी। अतः अब यह अनुष्ठान आरम्भ हुआ। प्रातःकाल तो बहादुरसिंह की कुटिया में मूल ग्रन्थ का पाठ होता था और मध्याह्नोत्तर २ से ६ बजे तक श्रीगोस्वामी जी महाराज उसका धारावाहिक प्रवचन करते थे। प्रातःकाल पाठ के समय भी सत्सङ्ग भवन में

कथा एवं सत्सङ्ग का प्रोग्राम चलता था। इस प्रकार चैत्र का कृष्णपक्ष सानन्द समाप्त हुआ।

अब नवरात्र आरम्भ हुए। हमारे कौतुकी सरकार को तो नित्य नवीन उत्सव चाहिए। अत: आप रामनवमी के उत्सव के विषय में विचार करने लगे। इस सम्बन्ध में दो विचार प्रस्तुत हुए। एक तो यह कि नवरात्री में दुर्गासप्तशती के पाठ किये जायँ और दूसरा यह कि भिरावटी की तरह यहाँ रामचरितमानस का नवाह्न परायण हो। दुर्गासप्तशती पण्डितों की चीज है, इसलिए अधिकांश लोगों के लिये श्रीरामचरितमानस को ही विशेष रुचिकर समझकर पण्डित सोहनलाल की प्रधानता में श्रीरामचरितमानस का नवाह्न पारायण आरम्भ हुआ। कभी-कभी प्रधान का कार्य मुरादाबाद वाले पण्डित पुरुषोत्तमजी व्यास अथवा मनोहर भी करते थे।

इस बार श्री नवाह्नपारायण में सीताराम बाबा सम्मिलित नहीं हुआ। वह चाहता था कि यह अनुष्ठान मेहुआ में उसकी कुटी पर हो। परन्तु उस छोटी-सी कुटी में यह सैकड़ों आदमियों का अनुष्ठान कैसे हो सकता था। इसके सिवा इस वार उसकी और भी कई प्रकार की उच्छ्रृखलताएँ देखी गयीं। वह तो बेचारा एक अनपढ़ ग्रामीण साधु था। उसकी सरलता और विरक्ति के कारण श्रीमहाराजजी उसे प्रेम करते थे और वह भी अपने को उनका सखा समझता था। श्रीमहाराजजी के कारण ही पूज्य बाबा और श्री श्री.माँ आनन्दमयी भी उसका आदर करते थे। इतने उच्च कोटि के महापुरुषों से आदर पाकर उसका मस्तिष्क बिगड़ गया था। इसीसे उसने भरी सभा में कई ऊट-पटाङ्ग बातें भी कह डाली थीं। उसका चित्त इतना बिगड़ गया कि जब चैत्र कृष्णा द्वितीया को माताजी विदा होने लगीं और उनके याद करने पर श्रीमहाराजजी उसे बुलाने के लिये स्वयं उसकी कुटी पर गये तो भी वह नहीं आया। और उसी समय प्रात:काल चार बजे ही वहाँ से मेहुआ को चला गया। वहाँ उसने अनशन करके केवल जल पीते हुए नवाह्नपारायण आरम्भ कर दिया और कुटिया वालों से कह दिया कि बाँघ से कोई भी आवे मुझसे मिलने न पावे, नहीं तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा और अपने प्राण त्याग दूँगा।

इधर बाँध पर बड़े ही उत्साह और तैयारी से पाठ चलने लगा। सारा सत्सङ्ग भवन पाठ करने वालों से भरा रहता था। बस, नित्य नवीन उत्साह से नवाह्न समाप्त हुआ। रामनवमी के दिन जन्मोत्सव मनाया गया। उस दिन बाँध वालों ने कई प्रकार की अपनी प्राइवेट लीलाओं का अभिनय किया। इस प्रकार यह उत्सव भी बड़े समारोह का रहा।

अब की बार एक बात बड़े आश्चर्य की देखी। वह यह कि पहले यदि कभी सीताराम बाबा तनिक भी रूँठ जाता था। तो आप तुरन्त ही उसको मनाते थे। किन्तु इस बार आपने उसकी चर्चा भी नहीं की। एक दिन गोपालदास, मनोहर और सागर आदि ने मिलकर आपसे आग्रह किया कि सीताराम बाबा को बुला लेना चाहिए। तब आप बोले, 'मेरे विचार से तो उसे कष्ट देने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने अपनी ओर से आज तक बहुत खींचातानी की, किन्तु वह तो बराबर बिगड़ता ही गया। इस बार भिरावटी में और यहाँ भी उसकी बुद्धि बहुत विपरीत हो गयी। उस दिन चलते समय माताजी ने उसे बड़े प्रेम से स्मरण किया। तब मैं स्वयं उसे बुलाने गया। फिर भी वह नहीं आया। भला, विचारो तो जिन माताजी को मैं इतना आदर देता हूँ, उनकी भी उसने कोई परवाह नहीं की। अतः मैं तो तभी से उदासीन हो गया हूँ। मैंने तो समझ लिया है कि सीताराम बाबा मेरे हाथ से निकल गया है। जिनसे अपनी आत्मीयता होती है उन्हींके दुःख से दुःखी और सुख से सुखी हुआ जाता है, जिससे कोई सम्बन्ध नहीं होता उसके सुख-दुःख से भी अपना क्या प्रयोजन है। श्रीभगवान् भी कहते हैं-'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' जो लोग जिस भाव से मेरा आश्रय लेते हैं, उनके साथ मैं वैसा ही बर्ताव करता हूँ। इसके सिवा जब हमारे सङ्ग से उसमें दुर्गुण ही बढ़ते हैं अथवा उसे दुःख ही होता है तो हम ऐसा क्यों करें ?'

किन्तु इस पर भी जब लोगों ने विशेष आग्रह किया तो आप बोले, 'अच्छा, यदि आप लोगों की विशेष रुचि है तो बहादुरसिंह और सागर चले जायँ, किन्तु मेरी ओर से उससे कुछ न कहें। यदि उसकी रुचि हो तो लिवा लायें।' बस ये दोनों रात

को ही चले गये और सवेरे छः बजे ही उसकी कुटी पर पहुँचे। परन्तु बाबा ने किवाड़ ही नहीं खोले। ये दोनों दोपहर तक दरवाजे पर धूप में खड़े रोते रहे। बेचारा सागर तो घबरा गया, किन्तु बहादुरसिंह बराबर धूप में पड़ा रोता रहा। किन्तु सीताराम बाबा अपनी तपस्या के अभिमान में टस से मस न हुआ। आखिर आश्रम वासियों ने उससे बहुत भला-बुरा कहा कि भला, सोचो तो इस प्रान्त का एक रईस और श्रीमहाराजजी का अनन्य भक्त, जिसके दरवाजे पर कई बार तुम अन्न-वस्त्र की याचना करने गये हो, तुम्हारे द्वार पर पड़ा रो रहा हो और तुम कुछ ध्यान ही नहीं देते। यह कहाँ की साधुता है ?

तब सीतारामने लज्जित होकर किवाड़ खोले और बहादुरसिंह को उठाया। बहादुरसिंह ने अत्यन्त दीन भाव से प्रार्थना की कि बाबा यह हठ छोड़ दो, इससे सबको दुःख होता है। तब वह बोला, 'मेरा हठ तो कुछ भी नहीं है। अच्छी तरह मेरा नवाह्न चल रहा है। अच्छा, तुम बहुत कहते हो तो मैं रामनवमी को जन्मोत्सव के पश्चात् पञ्चामृत ले लूँगा।' इस प्रकार समझा-बुझाकर उसने इन दोनों को दो-दो मोटे-मोटे टिक्कड़ खिलाकर विदा कर दिया। श्रीमहाराजजी ने जब सागर के मुख से सब बातें सुनी तो वे बड़े मर्माहत हुए और उनकी उदासीनता पहले से भी अधिक बढ़ गयी।

इधर उत्सव तथा ठोकरों की मरम्मत कराते समय यहाँ के रईसों में भी आपस में बहुत मतभेद और झगड़ा होता रहता था। इसका भी आपके चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा और आप इस प्रान्त से उपराम हो गए। यहाँ की साधारण जनता ने भी जैसा चाहिये था वैसा साथ नहीं दिया। इससे भी आप बहुत क्षुब्ध हुए। यहाँ तक कि एक दिन तो स्वयं ही अपने मुँह पर तमाचे लगाये और बड़े जोश में भरकर बोले, 'जिस बाँध को बनाकर लोग श्रीभगवान् के सम्मुख नहीं हुए उसे तो हम सौ वार अपने हाथ से काट दें।' एक बार आप मोहलनपुर में झुन्नी की चौपाल पर गये हुए थे। वहाँ उससे ये शब्द कहे, तू प्रमाद करके जिस चौपाल में सोता है, याद रख, वह तो गङ्गाजी का घर है। देख भाई! ये गङ्गा जी साक्षात् कालरूप होकर मुँह फाड़े खड़ी हैं। एकदिन ये बाँध को और तुम्हारे गाँव को हड़पकर जायँगी। देखो, सावधान होकर हरिनाम

का सहारा लेना। नहीं तो तुम्हारी वही दुर्दशा होगी जो बाँध बनने से पहले थी। इस प्रकार इस प्रशान्त महासागर में कई बार तूफान उठते देख हम लोग घबरा गए और यही समझे कि अब भावी अच्छी नहीं है। बाँध और मोहलनपुर पर अवश्य कोई भारी विपत्ति आने वाली है।

बस, आप बाँध के काम से तंग आकर उपराम हो गए और मुझसे कह दिया कि तुम जैसा उचित समझो यथाशक्ति कुछ करते रहना। मुझे तो गंगाजी का रूख अच्छा नहीं जान पड़ता। इसका कोई विश्वास नहीं कि यह रूख बदल कर कब क्या कर डाले।

इसके पश्चात् आप तो सत्सङ्ग और कथा-कीर्तन में लग गए। और रामनवमी का उत्सव समाप्त होने पर पूज्य बाबा अनूपशहर आकर भेरिया और कर्णवास आदि में भ्रमण कर वैशाख शुक्ला द्वितीया को मोटर द्वारा वृन्दावन चले आए। आप अब तक बाँध पर ही थे। वैशाख शुक्ला २ को आपने सुना कि बाबा अनूपशहर आये हैं। अतः सायंकाल ८ बजे नौका द्वारा वहाँ पहुँचे। परन्तु वहाँ मालूम हुआ कि बाबा सवेरे ही राधेश्याम हाथरस वालों की मोटर से वृन्दावन चले गए हैं। आपको यहाँ से श्रीमाताजी के जन्मोत्सव में दिल्ली जाना था। अतः रात्रि में आप पण्डित रामप्रसाद के बाग में रहे और दूसरे दिन प्रातःकाल ४ बजे ही बाबू आदित्यनारायण की मोटर में दिल्ली चले गए।

चलते समय मैंने आपसे पूछा कि मैं बाँध पर ही लौट जाऊँ? तब आपने बड़ी प्रसन्नता से कहा, 'ठीक है, जहाँ तक हो सके प्राणपण से पीली कोठी वाली ठोकर को मजबूत करना। मुझे इस साल गङ्गाजी का रुख अच्छा नहीं मालूम होता। अच्छा, जैसी भगवदिच्छा! कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'

इसके पश्चात् प्रायः बीस भक्तों के साथ आप दिल्ली चले गए और मैं बाँध पर लौट आया।

उपसंहार की ओर

अबकी बार आपने हमें बार-बार बाँध की ओर से सचेत किया। इससे हमारे चित्तों में भी तरह-तरह की आशङ्काएँ होने लगीं। चलती बार आपने पीली कोठी वाली ठोकर को सुदृढ़ बनाने पर विशेष जोर दिया था। अत: मैंने बाँघ पर आकर बड़े-बड़े पिञ्जड़े बनवाये और उनमें कङ्कर भरवाकर उन्हें ठोकर के चारों ओर लगवा दिया। श्रीगङ्गाजी की धार का वेग सीधा इसी ठोकर पर आ गया। किन्तु यह बहुत सुदृढ़ थी, इसलिए उसे सहन करती रही। इस प्रकार हमारे पास जो कुछ रुपया, कंकर और समय था उसका पूरा सदुपयोग करते हुए हमने आषाढ़ कृष्णा एकादशी तक काम किया। फिर अकस्मात् शिवपुरी से समाचार मिला कि श्रीमहाराजजी दिल्ली से नैनीताल और अल्मोड़ा गये हुए हैं और अब वहाँ से बरेली होकर शिवपुरी आने वाले हैं। अत: मैं बाँध के काम की व्यवस्था करके तुरन्त शिवपुरी चला आया और वहाँ बाग वाली कुटी तथा मन्दिर की मरम्मत एवं सफाई कराने लगा।

किन्तु निर्दिष्ट तिथि तक मुझे आपका कोई समाचार नहीं मिला। इसलिए मैं आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी को वर्षा में भीगता बरेली पहुँचा। किन्तु वहाँ आपका कोई निश्चित पता न लगा। किसी ने कहा वे श्रीमाताजी के साथ बनारस चले गये हैं और कोई बोला अभी अल्मोड़ा में ही हैं। आखिर मैंने पण्डित लेखराज के पुत्र लक्ष्मीनारायण को अल्मोड़ा भेजा और मरम्मत एवं सफाई का काम करने के लिए शिवपुरी लौट आया। घनश्याम सिंह मेरे साथ था। वह उसी दिन अपने घर जाने के लिए करेंगी स्टेशन चला गया और वहाँ से घूमता फिरता श्रीमहाराजजी के पास बनारस जा पहुँचा। पाँचवें दिन अल्मोड़ा से लक्ष्मीनारायण लौटकर आया। उससे मालूम हुआ कि श्रीमहाराजजी बरेली न उतरकर श्रीमाताजी का विशेष आग्रह होने के कारण सीधे बनारस चले गये हैं। इधर एकादशी के लगभग घनश्याम का पत्र मिला कि वे बनारस से प्रयाग होते हुए गुरुपूर्णिमा पर वृन्दावन पहुँचेंगे। गुरुपूर्णिमा के लिये ही हमारी यह सारी खोज थी। अत: हमने निश्चय किया कि चतुर्दशी को बरेली से चलकर पूर्णिमा को हम वृन्दावन पहुँच जायँगे।

इसी निश्चय के अनुसार हम सवेरे ही गाड़ी से बरेली पहुँचे। वहाँ मारवाड़ीगंज जाने पर समाचार मिला कि आप तो झूसी में ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी के आश्रम में ही ठहरे हुए हैं। यह बात किसी समाचार पत्र में प्रकाशित हो चुकी थी और इस विषय में रामचन्द्र हलवाई के पास मनोहर का पत्र भी आया था। मैंने रामकुमार को भेजकर वह पत्र मँगवाया। उसमें लिखा था कि श्रीमहाराजजी ने एक वर्ष झूसी में ठहरने का निश्चय कर लिया है, अत: श्रीगुरुपूर्णिमा यहीं होगी। इसके विपरीत श्रीराम के पास वृन्दावन से आनन्द ब्रह्मचारी का पत्र आया था उसमें लिखा था कि चतुर्दशी को यहाँ श्रीहरिबाबा अवश्य आ जायेंगे। इन दोनों पत्रों को देखकर अन्तिम निर्णय यही हुआ कि झूसी ही चलना चाहिए। अत: हम जलपान करके सीधे स्टेशन चले गये और दोपहर बाद ढाई बजे की गाड़ी से चलकर पूर्णिमा को सवेरे नौ बजे झूसी पहुँच गए। वहाँ उत्सव के प्रोग्राम के अनुसार अखण्ड कीर्तन आरम्भ हुआ। तथा दूसरे दिन प्रात:काल आपने भी हम लोगों के साथ चार घण्टे कीर्तन किया।

किन्तु इस अवसर पर हम प्राय: दस आदमी शिवपुरी के और दो-तीन आदमी बरेली के ही वहाँ पहुँचे थे। बाँध प्रान्त का कोई भी आदमी यहाँ नहीं आ सका। उन्हें तो आपके वृन्दावन पहुँचने की सूचना थी, अत: वे वहीं गये थे वहाँ पहुँचने पर हमने पूछा तो मालूम हुआ कि आप वृन्दावन जाने का निश्चय कर चुके थे, तथा सीट रिजर्व कराने के लिये बैकुण्ठदास को भेज रहे थे। इतने ही में वृन्दावन से घनश्यामसिंह पहुँच गया और सबके मना करने पर भी उसने कह दिया कि बाबा वहाँ नहीं हैं, न जाने कहां चले गये हैं। * यह सुनकर आप बड़े मर्माहत हुए और बोले, 'हम तो बाबा के लिये ही वृन्दावन जा रहे थे। जब वे वहाँ नहीं है तो हम वृन्दावन जाकर क्या करेंगे? जैसी भगवदिच्छा।'

*** इस समय बाबा कानपुर वाले सेठ पद्मपति सिंघानिया की माता के आग्रह से उनका एक यज्ञ आरम्भ कराने के लिये मोटर द्वारा कानपुर चले गये थे। किन्तु कुछ अन्तरङ्ग भक्तों के सिवा और लोगों को यह बात मालूम नहीं थी। अत: वे यही समझते थे कि न जाने वे कहाँ चले गये हैं और सम्भवत: गुरुपूर्णिमा पर वृन्दावन नहीं आयेंगे। किन्तु बाबा यज्ञ आरम्भ कराकर चतुर्दशी को वृन्दावन पहुँच गये।**

इधर ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी का यह आग्रह था कि कुछ आप दिनों यहीं रहे। अतः आपने गुरुपूर्णिमा पर झूसी रहने का ही निश्चय कर लिया, पीछे भगवदाज्ञा लेने पर भी ऐसा ही निर्णय हुआ। अतः आपने मनोहर से जहाँ-तहाँ सूचना करा दी कि आप गुरुपूर्णिमा पर यहीं रहेंगे। परन्तु समय थोड़ा था, अतः कहीं तो पत्र समय से पहले पहुँच गये और कहीं नहीं पहुँच सके।

प्रिय पाठको! आपके प्रोग्राम में इस प्रकार की गड़बड़ तो हमने जीवनभर कभी नहीं देखी। आप तो एक बार जो निर्णय कर लेते थे वही अटल हो जाता था। इस मर्यादार्णव में इस प्रकार की हलचल देखकर हम लोगों के हृदय क्षुब्ध हो उठे कि न जाने हम लोगों पर क्या विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं।

अस्तु। पूर्णिमा के दिन तीन बार डेढ़-डेढ़ दो-दो घण्टे कीर्तन कराया तथा मध्याह्न में व्यास पूजा हुई। उसी समय ब्रह्मचारी जी तथा हम लोगों ने आपका यथायोगय पूजन किया। दूसरे दिन प्रभाती कीर्तन के पश्चात् आप वहीं बैठ गये और विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। उधर वृन्दावन से तो बुलाने के लिए बाबा का तार आया था और इधर भगवदाज्ञा झूसी में रहने के लिये हो चुकी थी। अतः आपने आचार्य चक्रपाणिजी से, जो उन दिनों वहीं थे, कहा, 'चक्रपाणिजी! ये सब लोग तो किसी न किसी पक्ष से सम्बन्ध रखते हैं, आप निरपेक्ष हैं। अतः इस विषय में आप बताइये कि मैं क्या करूँ?' आचार्य जी बड़े चक्कर में पड़े, क्योंकि उन्हें एक ओर हमारा और दूसरी ओर ब्रह्मचारीजी का संकोच था। आखिर आपने ही कुछ गोलमोल शब्दों में कहा, 'भाई! मेरे विचार से तो मुझे भगवदाज्ञानुसार साल भर यहीं रहना चाहिए! क्यों ब्रह्मचारीजी?' इस पर ब्रह्मचारीजी खूब हँसे और शिर हिलाते हुये 'श्रीकृष्णगोविन्द हरे मुरारे' कहकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

हम लोगों में से मैंने और मनोहर ने कुछ कहा तो आप डाँटकर बोले, 'बस चुप रहो, यहाँ बिना पूछे किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।' हम चुप हो गए। फिर आपने कहा, 'अब तुम लोग जाओ। घनश्याम, गोपालदास और मनोहर भी चले जायँ। हाँ, उचित समझो तो दाताराम यहाँ रह जाय। और किसी को यहाँ ठहरने की

आवश्यकता नहीं है। इससे हम बड़े मर्माहत और निराश हुए। आखिर नौका द्वारा गङ्गाजी पारकर त्रिवेणी स्नान करके सायंकाल की गाड़ी से लौट आए। मैं तो सीधा वृन्दावन चला आया और यहाँ श्याम बगीचे में ठहरकर शान्ति से कालयापन करने लगा। भाद्रपद के आरम्भ में स्वामी सनातनदेव जी भी यहीं आ गये और हम दोनों इस ग्रन्थ के लेखन और सम्पादन में लग गए। इतने ही में अमावस्या के लगभग बाँध से भाई सिंह का पत्र आया कि गंगाजी का जोर बाँध की ओर जान पड़ता है, अभी कोई भय की बात नहीं है। फिर एकदिन मैंने स्वप्न देखा कि बाँध और पीली कोठीवाली ठोकर कट गयी है तथा कीर्तन मन्दिर भी गिर गया है। इस बात की चर्चा मैंने बाबा से की और भाई सिंह को भी लिखा। इसके कुछ ही दिन पीछे भाई सिंह का तार आया कि ठोकर कट गयी और कटाई कोर्तन मन्दिर के पास है।'

तार पाते ही मैं बाँध पर गया। वहाँ तो साक्षात् प्रलय का ही दृश्य सामने था। बाँघ का उपसंहार आरम्भ हो गया था। मैं तो देखकर घबरा गया मेरे देखते-देखते प्राय: सौ शीशम के वृक्ष तड़ाक-पड़ाक कटकर श्रीगंगाजी के गर्भ में विलीन हो गये, मोहलनपुर गाँव सारा ही नष्ट हो चुका था तथा वहाँ के सभी स्त्री-पुरुष अपने बालकों और पशुओं को लिए बाँध पर पड़े थे। उकनी बड़ी दुर्दशा थी। वहाँ तो सचमुच श्रीरामचरितमानस में वर्णित दक्षयज्ञविध्वंस का सा दृश्य था।

'भई जग विदित दक्षगति सोई। जस कछु शम्भु विमुख की होई॥'

मैं पीछे लिख चुका हूँ कि इस बार इन लोगों के दुर्व्यवहार से तङ्ग आकर श्रीमहाराजजी ने कई बार कड़े शब्दों में कहा था कि ये गंगाजी साक्षात् कालरूप से मुँह फैलाये बैठी हैं, किसी दिन तुम्हारे गाँव को और बाँध को हड़प कर जायँगी। तुम जो भगवान् से विमुख होकर सुख की नींद सो रहे हो वह सुख एक दिन घोर विपत्ति के रूप में परिणत हो जायगा। सो आज उनके वे शब्द ज्यों के त्यों चरितार्थ हो रहे थे। भला, अनेक बार आग्रहपूर्वक मना करने पर भी जिन लोगों ने चोरी करना नहीं छोड़ा और अपनी दुष्टता से आस-पास के गाँवों को तंग कर दिया वे कब तक चैन की वन्शी बजा सकते थे। अनेकों गरीबों की ठण्डी आहों ने उन्हें भस्मकर दिया।
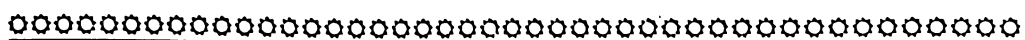
उन्होंने अनेकों महात्माओं और स्वयं श्रीमहाराजजी की आज्ञाओं की अवहेलना की। उसका प्रतिफल उनके सामने आ गया।

इधर तो यह घोर विपत्ति थी और उधर पशुओं में भयंकर रोग फैल गया। पाँच-पाँच सौ रुपये की भैंसें बीमार होकर क्षणभर में मरने लगीं। तब तो ये लोग स्वयं ही कहते थे कि भाई! हमने जैसा किया वैसा ही फल पा लिया। अब आगे ये लोग कहाँ बसेंगे, कुछ ठिकाना नहीं। इसीसे कहा है कि तीर्थ के समीप विषयी और दुनियादार लोगों का रहना ठीक नहीं। इन लोगों के वहाँ रहने से उस पवित्र स्थान की तथा वहाँ रहने वाले भक्त और महात्माओं की अवज्ञा होती है और इस महापाप से उनका भी सब प्रकार अहित ही होता है। ऐसे ही अपराध के कारण जब साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र-पौत्रों को भी उच्छेद हो गया तब दूसरे लोगों की तो बात ही क्या है ? तीर्थ तथा महापुरुषों की सन्निधि में तो मनुष्य को बड़ी सावधानी से रहना चाहिये और अपने मन वाणी एवं शरीर से कभी कोई अवैध चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

अस्तु। बाँध पर पहुंचकर मैंने प्राणपण से प्रयत्न किया कि किसी प्रकार कीर्तन-मन्दिर बच जाय। किन्तु उस समय की परिस्थिति देखकर और अपने स्वप्न को स्मरण करके मुझे ऐसी आशा नहीं रही। फिर भी अपना कर्तव्य समझकर मैं उस पानी कीच में गवाँ और भिरावटी गया। तथा वहाँ सब लोगों से बात करके दूसरे दिन बाँध पर लौटा। मुझे कुछ लोगों ने तो मन्दिर को उखड़वाने की सलाह दी और कुछ ने ऐसा कराने को मना किया। मेरा मन भी दस-बीस हजार रुपये के लोहे के लिए अपने पूज्य स्थान पर कुल्हाड़ा चलवाने का नहीं हुआ। किन्तु जब गंगाजी की कटाई ठीक मन्दिर के नीचे आ गयी तो नरौरा के इञ्जीनियर और बाँध के कुछ लोगों ने विवश किया कि यह सारा सामान व्यर्थ ही गंगाजी में डूब जायगा यदि आप आज्ञा दें तो इसे उखड़वा लें। तब मैंने लाचार होकर कह दिया कि भाई ? मैं तो इसे गिरता या उखड़ता देख नहीं सकूँगा। इसलिये मैं आज ही वृन्दावन चला जाता हूँ। पीछे तुम चाहो तो उखड़वा लेना। बस, मैं तो उसी समय अपनी ममतास्पद कुछ औषधियाँ और पुस्तकें लेकर नौका द्वारा अनूपशहर आ गया और वहाँ से दूसरे दिन वृन्दावन

आकर अपने इसी काम में लग गया। पीछे बाँधसे समाचार मिला कि कीर्तन-मन्दिर श्रीगंगाजी के गर्भ में लीन हो गया है। उसका कुछ समान तो उखाड़ लिया गया था, किन्तु उसका लोहे का भारी पञ्जर तो नहीं खोला जा सका, वह तीन-चार दिनों तक तो जल के ऊपर दीखता रहा, किन्तु फिर जलमग्न हो गया।

प्रिय पाठक! बाँध पर मुझे छः दिन लगे, किन्तु एक क्षण को भी निद्रा नहीं आयी। मोहलनपुर के ग्रामीणों के बस जाने से वहाँ का वातावरण दूषित हो गया था। अथवा वहाँ की परिस्थिति ने मुझे किंकर्तव्य-विमूढ बना दिया था। इसीसे मुझे निद्रा नहीं आई। ऐसी स्थिति में मैं वहाँ अधिक ठहरता तो बीमार पड़ जाता। यहाँ आने पर जब मेरा चित्त शान्त हुआ तो मेरी समझ में आया कि आप क्यों उदासीन होकर झूसी में विराजे हैं तथा क्यों इस साल आपके प्रोग्राम में इतनी उथल-पुथल हुई थी। हमारे बाँध का प्राण तो हमारा कीर्तन-मन्दिर ही था। जब वह गंगाजी में डूब गया तो अब बाकी क्या रहा? हम इसे भी उस नटवर की अनोखी लीला का एक दृश्य समझकर ही हृदय को थामते हैं। किन्तु फिर भी हमारे हृदय में रह-रहकर पीड़ा होती है कि अब बाँध के उत्सवों के मिस से वह संत-महात्मा और भक्तजनों का अद्‌भुत समागम इन चर्मचक्षुओं से कब देखेंगे। यों तो हमारे कौतुकी सरकार जहाँ भी विराजते हैं नित्य उत्सव ही रहता है, किन्तु बाँध की बात तो निराली ही थी। वह श्रीभागीरथी का सुरम्य तट, हमारे प्रिय सरकार की लीलाभूमि, बेचारे भोले-भाले ग्रामीण भक्तों का अलौकिक भाव और उनके साथ मिलकर कीर्तन करते हुए उस दिव्य रस का उपभोग—ये सब बातें तो बाँध के साथ ही थीं। अहो! बाँध-जैसा दिव्य स्थान क्या इस जन्म में फिर भी देखने को मिलेगा?

वास्तव में हम लोगों ने बाँध के स्वरूप को नहीं समझा। इसी से तो विधाता ने वह दिव्य और अलौकिक चिन्मयधाम, जिसका एक-एक कण श्रीहरिनामसे विभूषित था, हठात् हमारे नेत्रों से ओझल कर दिया। इसका सबसे बड़ा अपराधी तो मैं ही हूँ। मैंने अहर्निश बाँध पर न जाने कितने कायिक, वाचिक और मानसिक अपराध किये थे। पता नहीं, उनका कितना दण्ड मुझे भोगना पड़ेगा। तथापि मुझे

भरोसा है कि 'कुपुत्रो जायेत क्वचि दपि कुमाता न भवति।' इस प्रकार दण्डविधान करके भी भगवान् मेरा हित ही करेंगे।

पाठकों! हमें और कोई दण्ड मिले अथवा न मिले, यह भी क्या कम दण्ड है कि हमारा यह आनन्दकानन, आध्यात्मिक क्रीड़ास्थल और साक्षात् भावरस स्थल हमारे नेत्रों के सामने ही धीरे-धीरे प्रलय की ओर जा रहा है और हम जीवित हैं! यदि हम प्राणपण से बाँध के आविर्भाव के उद्देश्य पूर्ति में लग जाते तो आज ये दिन न देखने पड़ते। प्रभु प्रमाद को कभी आश्रय नहीं देते। उन्होंने स्वयं ही समुद्र के वक्षःस्थल पर सुवर्णमयी द्वारिका पुरी प्रकट की और अपने ही वीर्य से यदुवंश का विस्तार किया। किन्तु जब यादव लोग प्रमाद करने लगे तो स्वयं ही सबका सफाया कर दिया और द्वारका भी समुद्र में लीन हो गयी। वैसी ही यह लीला भी हुई है। अब हमारी आयु का उपसंहार हो रहा है और हमारे सरकार की लीलाओं का भी उपसंहार-सा दिखायी देता है। इसीसे उनके दिव्यधाम का भी उपसंहार आरम्भ हो गया है। अतः अब मैं भी अपनी इस ढिठाई का उपसंहार करता हूँ। सरकार की अमानुषिक लीलाएँ समुद्र के समान अथाह और अपार हैं। मैं तो उसका केवल बिन्दुमात्र ही प्रस्तुत कर सका हूँ। किन्तु यह भी मेरी योग्यता से बहुत अधिक है। अतः मैं विश्राम लेता हूँ। पाठक सरकार की लीलाओं का यह आभास मात्र पढ़कर अपने जीवन को सफल करें और मुझे आशीर्वाद दें कि किसी भी जन्म में मैं श्रीसरकार के चरणकमलों का भ्रमर बनकर उनकी लीलाओं के रस का आस्वादन कर सकूँ।

वर्तमान भक्तपरिकर

महापुरुषों के जीवन से अनेकों मनुष्यों का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जीवन-चरित में उन सभी का उल्लेख अथवा परिचय नहीं दिया जा सकता। उसमें तो केवल उन्हीं के विषय में कुछ लिखा जाता है जिनका उस चरित में आयी हुई घटनाओं से घनिष्ठ सम्पर्क होता है। हमारे श्रीमहाराजजी के भक्तपरिकर में भी ऐसे अनेकों महानुभाव हैं जिनका इस समय उनसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु इस चरित में उनमें से अधिकांश के तो केवल नामों का ही उल्लेख हुआ है और किन्हीं-किन्हीं के तो नाम भी नहीं आये। हम नीचे उनमें से कुछ प्रधान भक्तों का संक्षिप्त परिचय लिखते हैं—

पण्डित सुन्दरलालजी

पण्डित सुन्दरलालजी को तो श्रीमहाराजजी का भक्त न लिख कर 'मित्र' ही लिखना उपयुक्त होगा। परन्तु सख्य भी तो भक्ति का ही एक भावविशेष है। अतः इस प्रकारण में आपका परिचय देना उतना अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता। हाँ, आपके सख्यभाव में भक्ति की अपेक्षा प्रीति की ही प्रधानता है। आपका भाव प्रायः सर्वथा सङ्कोचशून्य है।

सुना है आपका जन्मस्थान मुरादाबाद है। आपने काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित काशीनाथजी से विद्याध्ययन किया था। उसके पश्चात् आप महाविद्यालय ज्वालापुर में अध्यापन कराने लगे। आपकी धर्मपत्नी अत्यन्त रूप-गुणसम्पन्ना और पतिपरायणा थीं। अकस्मात् उनका देहावसान हो गया। इससे आपके हृदय में वैराग्य की ज्वाला भभक उठी। बस, आप संसार को असार समझकर निकल पड़े और गंगातट पर इधर-उधर विचरने लगे। घूमते-घूमते आप गवाँ भिरावटी की ओर आ निकले। उस समय सन् १९१६ में हमारे चरितनायक भी इसी लीलाक्षेत्र में विचर रहे थे। अकस्मात् आपसे कहीं भेंट हो गयी। आपके रूप-लावण्यमय दिव्य विग्रह,

अद्भुत वैराग्य और विशुद्ध प्रेम को देखकर पण्डितजी मुग्ध हो गये। आप स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रिय, शृङ्गाररस मर्मज्ञ और साहित्य रसिक थे। उन दिनों आप भिरावटी में कुँवर उम्मरसिंह के पुत्र कुँवर देवेन्द्रसिंह और वीरेन्द्रसिंह को संस्कृत पढ़ाते थे। इसीसे मैंने आपको भिरावटी से गवाँ जाते हुए सड़क पर देखा था। उस समय आप बड़े उन्मत्त से रहा करते थे।

आप बड़े ही सहृदय, रसज्ञ और सौष्टवप्रिय पुरुष हैं। आपको विशृङ्खलता तनिक भी पसन्द नहीं है। गाने में, बजाने में, चीजों को रखने में बोलने में अथवा किसी भी काम में कोई त्रुटि हुई कि आपको वह असह्य हो जाता है। इसलिये कोई सामान्य पुरुष आपकी सेवा नहीं कर सकता। किन्तु जितनी जल्दी आप बिगड़ते हैं उतनी ही जल्दी प्रसन्न भी हो जाते हैं। आपका स्वभाव सचमुच बालकों का सा है। इसीसे आपका किसी से भी कोई स्थायी वमनस्य नहीं रहता। आपका सबसे बड़ा गुण है निःस्पृहता। संग्रह आप कभी कुछ नहीं करते। सफाई और सादगी आपको बहुत पसन्द है। भोजन भी सादा और स्निग्ध ही प्रिय है। अनेक प्रकार की अथवा अधिक मसाले की चीजें बिलकुल पसन्द नहीं करते।

आपका श्रीमहाराजजी और पूज्य बाबा दोनों ही के प्रति समान प्रेम है और दोनों को प्रायः एक ही समय मिले थे तब से अब तक आप अधिकतर इन दोनों में से ही किसी एक के पास रहते हैं। इन दोनों के प्रति आपके हृदय में जो गूढ़ और प्रगाढ़ प्रेम है उसका ठीक-ठीक माप करना हम लोगों की बुद्धि से बाहर है। इसी से ये दोनों महापुरुष भी इनसे सर्वदा प्रेम मानते और डरते रहते हैं। मैंने आपसे पूछा था कि श्रीमहाराजजी के प्रति आपका क्या भाव है, तो आपने बड़ी सच्चाई और सफाई के साथ कहा, 'मैं तो एक तटस्थ दर्शक की तरह हूँ। जैसे नदी में कोई नाव जा रही हो और उसे देखते हुए कोई व्यक्ति उसके साथ-साथ किनारे पर चलता रहे। मुझे भी इसी तरह ये दोनों (श्रीमहाराजजी और बाबाजी) अच्छे लगते हैं तथा ये जो कुछ कर रहे हैं वह भी अच्छा लगता है। उसे देखते हुए मैं भी साथ-साथ चल रहा हूँ।'

जो कुछ भी हो, पण्डितजी का स्थान इन दोनों ही महापुरुषों के परिकर में बहुत ऊँचा है। किसी प्रकार का स्वार्थ या परमार्थ बन्धन न होने पर भी आपका दोनों के साथ जो घनिष्ठ प्रेम है उसका महत्व क्या किसी भी बात से कम है ?

श्री आनन्द ब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी आनन्दजी का जन्म जिला बुलन्दशहर के जहाँगीराबाद नामक कस्बे में एक सम्मानित ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इस समय इनकी आयु प्रायः पचास वर्ष की है। आरम्भ में ये थोड़ी अँग्रेजी और हिन्दी पढ़कर किसी फौजी दफ्तर में क्लर्क हो गये थे। वहाँ कुछ वर्ष काम करने पर इन्हें वैराग्य हुआ और ये नौकरी छोड़कर अनूपशहर में ब्रह्चारी प्रभुदत्तजी के पास चले आये। उस समय ब्रह्चारीजी आजकल की तरह भजनानन्दी नहीं थे। इनके कांग्रेसी विचार थे। इन्हीं विचारों में ये भी रङ्ग गये। ये स्वभाव के बड़े सरल थे। किसी प्रकार का साम्प्रदायिक भेद कुछ नहीं समझते थे। जिसे कुछ आदरणीय व्यक्ति समझते थे उसीका अनुसरण करने लगते थे। इसीसे इनकी ऐसी स्थिति थी कि गंगापर गांगादास और यमुनापर यमुनादास हो जाते थे।

किन्तु इनके चित्त में परमार्थ की खोज अवश्य थी। इसीसे ये आधे बाबाजी और आधे बाबूजी बने जहाँ-तहाँ घूमते रहते थे। शिर पर केश और लम्बी दाढ़ी नीचे लम्बा कटिवस्त्र और ऊपर कोट—बस, इसी ठाट से ये रहते थे। एक बार ये उझियानी पहुँचे। वहाँ इनके मित्र एक वैद्यजी थे। उनसे इन्होंने श्रीमहाराजजी के विषय में कुछ बातें सुनीं। उन्होंने बताया कि हरिबाबाजी बड़े ही प्रभावशाली सन्त हैं। उन्होंने अनूपशहर के पास एक बहुत बड़ा बाँध बनवाया है। उसके लिए चन्दा करते वे एक बार यहाँ भी आये थे। मैं तो कट्टर आर्यसमाजी था। अतः जब मुझे मालूम हुआ कि वे कुछ आदमियों के साथ चन्दा करते इस ओर आ रहे हैं तो मैंने निश्चय किया कि मैं उन्हें एक पैसा नहीं दूँगा। किन्तु जब वे मेरी दुकान पर पहुँचे तो मैं उनसे प्रभावित होकर तुरन्त खड़ा हो गया और उन्हें झुककर प्रणाम किया ; वे बड़ी जल्दी से बोले, 'इनसे पच्चीस रुपये ले लो।' उस समय मेरे पास पच्चीस ही रुपये थे। उनके कहते

ही मैंने चुपचाप निकालकर दे दिये। वे चले गये और मैं इस घटना से चकित-सा रह गया। तबसे मुझ पर उनका आध्यात्मिक प्रभाव अब तक बना हुआ है।

इसी प्रकार और भी दो-चार जगह महाराजजी की महिमा सुनकर इन्हें आपके दर्शनों की चटपटी लगी। अत: ये सन् १९२३ में बाँध पर पहुँचे। दैवयोग से उसी दिन बाबू हीरालालजी का देहावसान हुआ था। उनकी चिता जल रही थी। उस दिन उनकी मृत्यु की अलौकिक घटनाएँ सुनकर इनकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी। रात्रि को कीर्तन में इन्हें महाराजजी के दर्शन हुए। कीर्तन और सत्सङ्ग के पीछे आपने इनका परिचय पूछा और फिर मुझे इनकी देख-रेख का काम सौंपकर कहा, 'इन्हें कोई कष्ट न हो।'

वहाँ ये दो-तीन दिन रहे और श्रीमहाराजजी से बहुत प्रभावित हुए। फिर घूमते-फिरते श्रीवृन्दावन जा पहुँचे। वहाँ भी इन्हें श्रीमहाराजजी के दर्शनों की उत्कट अभिलाषा हुई, सो एक दिन अकस्मात् आप टिकारी वाले मन्दिर में रासलीला में बैठे मिल गये। रास के बाद आपसे बातचीत हुई तो मालूम हुआ कि गोपीनाथ बाजार में स्वामी कृष्णानन्दजी के पास गौरांगदरिद्रालय में ठहरे हुए हैं। ये भी वहीं चले गये और एक दिन हिम्मत करके पूछ बैठे, 'महाराजजी! लोग आपको भगवान् कहते हैं और सर्वशक्तिमान् बताते हैं, क्या यह बात ठीक है?' इस पर आप हँस पड़े और फिर बड़ी शान्ति से समझाया, 'ब्रह्मचारीजी! यह तो उन लोगों का भाव ही है। मैं वास्तव में क्या हूँ, सो तो क्या कहा जाय। संसार में अवतारों, आचार्यों, सन्तों एवं महापुरुषों की जितनी भी अनुगतों के भाव का ही प्राधान्य है।' इसी प्रकार थोड़े से शब्दों में ही आपने इनका समाधान कर दिया।

एक बार वे कर्णवास में पूज्य बाबा के पास ठहरे हुए थे। वहाँ इनके मन में सङ्कल्प हुआ कि इष्ट तो एक ही होना चाहिये। अत: मैं किसे इष्ट बनाऊँ। इसी समस्या पर विचार करते ये सो गये। तब स्वप्न में इन्हें श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए, फिर आपका शरीर ही एक षोडश वर्षीय सुवर्णवर्ण बालक के रूप में परिणत हो गया। उस बालक को देखकर ये मुग्ध हो गये और बार-बार उसका आलिङ्गन करने

लगे। इसी समय यहाँ एक षोडश वर्षीय बालिका प्रकट हुई। तदनन्तर विचित्र वेष-भूषा से सुसज्जित वंशी बजाते हुए श्रीश्यामसुन्दर प्रकट हुए। उनके साथ अपने सखी परिकर सहित श्रीवृषभानुनन्दिनी भी सुशोभित थीं। बस, तत्काल रासलीला आरम्भ हुई और उसे देखते ही इनकी आँखें खुल गयीं। इससे इनकी इष्टविषयिणी समस्या का समाधान हो गया। पीछे इन्होंने स्वामी कृष्णानन्दजी को यह स्वप्न सुनाया तो उन्होंने कहा, 'वह षोडश वर्षीय बालक तो श्रीमन्महाप्रभुजी थे। उनके साथ श्रीविष्णुप्रियाजी प्रकट हुई थीं। और वे ही श्रीराधाकृष्ण के रूप में परिणत हो गये। इस सब लीला का प्राकट्य श्रीमहाराजजी के दिव्य विग्रह से हुआ था अतः इसमें, श्रीमन्महाप्रभुजी में और युगलसरकार में कोई अन्तर नहीं समझना चाहिये।' बस इससे इनके चित्त का पूर्ण समाधान हो गया। तबसे इनकी ऐसी निष्ठा हो गयी है कि जहाँ कहीं ये श्रीमन्महाप्रभुजी के मन्दिर में जाते हैं। वहाँ इन्हें पहले श्रीमहाराजजी के दर्शन होते हैं और फिर श्रीमहाप्रभुजी के। अतः इनका दृढ़ विश्वास है कि ये साक्षात् कलिपावनावतार श्रीमन्महाप्रभुजी ही हैं। इन्हें इष्टमन्त्र भी एक विचित्र चमत्कार द्वारा ही प्राप्त हुआ था।

ब्रह्मचारीजी बड़े ही भावुक और सरल प्रकृति के पुरुष हैं। ऐसे सरल विश्वासी पुरुष मेरे देखने में तो बहुत कम आये हैं। किसी भी भक्त या संत के विषय में कोई कैसी ही चमत्कार घटना सुनायी जाय ये उसमें अविश्वास या सन्देह करना जानते ही नहीं। अतः इनके जीवन में अनेकों चमत्कारी अनुभव हुए हैं तथा इनका परिचय भी अनेकों भक्त और संतों से है। इसमें साम्प्रदायिक सङ्कीर्णता तनिक भी नहीं है। कोई किसी भी सम्प्रदाय या जाति का महात्मा हो उसीके ये बड़े प्रेम से दर्शन करते हैं। पहले दस-बारह साल तक ये निरन्तर श्रीमहाराजजी या बाबा की सन्निधि में ही रहे हैं। किन्तु अब छः-सात साल से ये वृन्दावन में ही रहने लगे हैं। अब तो ब्रजमण्डल से आजीवन बाहर न जाने का इन्होंने नियम कर लिया है। वृन्दावन में सैकड़ों भक्तों से इनका सम्पर्क है। हम लोग तो इन्हें नारदजी कहा करते हैं। सारे वृन्दावन में कहाँ क्या हो रहा है—इन्हें सब खबर रहती है। ये सभी मुख्य-मुख्य सन्त भक्तों को सब प्रकार के प्रोग्रामों की सूचना देते हैं। किसी भी सम्प्रदाय में कोई उत्सव या भगवच्चर्या का आयोजन हो ये उसमें अवश्य पहुँच जाते हैं।

इनकी भिक्षा का प्रकार भी निराला ही है। वृन्दावन के तीस-चालीस घरों में ये क्रमशः एक-एक दिन जाकर भोजन कर आते हैं। वर्षा, धूप, शीत किसी भी कारण से इसमें अन्तर नहीं पड़ता। यदि कभी कहीं विशेष कारण से जाना नहीं होता तो उसे पहले से सूचित कर देते हैं। रात्रि को केवल दूध लेते हैं। उसका प्रबन्ध भी इन्होंने भिक्षावृत्ति से ही कर लिया है। इनका सब काम नियत क्रम से होता है। ये प्रातःकाल तीन बजे उठकर प्रभाती कीर्तन करते हैं और यमुना स्नान एवं दैनिक-पाठ- पूजन से निवृत होकर यदि आश्रम में होता है तो एक घण्टे रासदर्शन करते हैं। ११ बजे भिक्षा के लिये जाते हैं। वहाँ से एक-दो बजे तक लौटकर कुछ स्वाध्याय करते हैं। फिर पाँच या छः बजे तक आश्रम में कथा एवं सत्सङ्ग सुनते हैं। सायंकाल में शौच स्नानादि से निवृत्त होकर मन्दिर में दर्शन करने के लिये जाते हैं। उसी समय यदि कहीं कोई उत्सव होता है तो उसमें भी सम्मिलित होते हैं। फिर दस बजे हलवाई के यहाँ से दूध पीकर ग्यारह बजे सो जाते हैं। ये सभी काम बहुत शान्तिपूर्वक करते हैं और कोई समय व्यर्थ नहीं खोते। इस संयत जीवन के कारण ही इनका स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

यद्यपि इनका स्वभाव बहुत शान्त है, तो भी किसी के अनुचित व्यवहार से ये दबने वाले नहीं हैं। उस समय ये एकदम उग्र हो जाते हैं। किन्तु फिर थोड़ी ही देर में बालक की तरह शान्त हो जाते हैं। इनका क्रोध बिलकुल पानी की लकीर की तरह होता है। अब धीरे-धीरे ये उसे भी छोड़ रहे हैं और सर्वदा सत्य बोलना, क्रोध न करना तथा किसी की निन्दा न करना—इन नियमों के पालन का अभ्यास कर रहे हैं।

इस प्रकार इनका जीवन एक सच्चे और सरल साधक का जीवन है। श्रीमहाराजजी के ये मुख्य पार्षदों में हैं।

स्वामी कृष्णानन्दजी

स्वामी कृष्णानन्दजी 'बम्बईवाले' बोलकर प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म जिला जौनपुर के किसी गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनकी शिक्षा भी सामान्य

ही हुई थी। पीछे ये बम्बई में किसी व्यापारी के यहाँ भैया का * काम करने लगे थे। वहाँ कार्यवश इन्हें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के पास भी जाना पड़ता था। उन्हें ये प्राय: श्रीबनारसीदासजी झुझनूवाले के साथ सत्संग करते देखते थे। पोद्दारजी की माताजी का इन पर बहुत स्नेह था। धीरे-धीरे उनके सम्पर्क से इनकी सत्सङ्ग और भजन में अभिरुचि हो गयी और ये नौकरी छोड़कर काशी चले आये। यहाँ श्रीरामकृष्ण डालमियाँ ने इन्हें श्रीभोलेबाबाजी के पास जाने की सलाह दी। अत: ये अनूपशहर आ गये।

अनूपशहर में श्रीभोलेबाबाजी के पास इन्होंने सेठ रामशङ्करजी मेहता के मुख से श्रीमहाराजजी की प्रशंसा सुनी। आपके उत्कृष्ट भगवत्प्रेम की बात सुनकर इनके चित्त में दर्शनों को उत्कट अभिलाषा जाग्रत हो उठी और ये तत्काल श्रीमहाराजजी के पास चले आये। उनके दर्शनमात्र से ये मुग्ध हो गये और उन्हीं को अपने जीवन का आदर्श मान लिया। इनके मन में ऐसा संकल्प हुआ कि मेरा जीवन भी ठीक इसी प्रकार होना चाहिए।

इसके पश्चात् ये बहुत दिनों तक ब्रह्चारी के रूप में श्रीमहाराजजी अथवा बाबा के ही साथ रहे। कीर्तन में इनकी अच्छी रुचि थी। श्रीमहाराजजी के साथ ये ठीक उन्हींकी तरह कीर्तन करने का प्रयत्न करते थे। कुछ वर्ष इस प्रकार सत्सङ्ग और सेवा में व्यतीत कर इन्होंने स्वामी रामकृष्णाश्रमजी से संन्यास दीक्षा ले ली। उस समय इनका योगपट्ट (नाम) हुआ स्वामी श्यामानन्द आश्रम। परन्तु ये अपने ब्रह्मचर्य के 'कृष्णानन्द' नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

इन्होंने बाह्यरूप से तो श्रीमहाराजजी का पूर्णतया अनुकरण किया है। इनका वेषभूषा, बैठना, कीर्तन करना और चलना फिरना प्राय: उन्हीं की तरह होता है। इनके

---

* बम्बई में व्यापारियों के यहाँ पूर्वी युक्त प्रान्त के कुछ लोग नौकरी करते हैं। उनका काम एक फर्म से दूसरे फर्म में हुंडी-पर चेके भुगतान का रुपया ले जाना होता है। ये लोग बहुत ईमानदार माने जाते हैं। इन्हें ही वहाँ 'भैया' कहा जाता है।
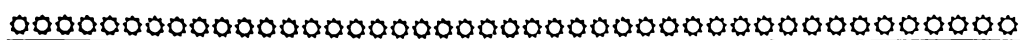
कारण सङ्कीर्तन का प्रचार भी बहुत हुआ है। बम्बई, पूर्वी संयुक्त प्रान्त तथा आगरा और अलीगढ़ आदि कुछ जिलों में इनके अनेकों भक्त हैं और वहाँ इनकी प्रेरणा से साल में दो-चार सङ्कीर्तनोत्सव भी होते ही रहते हैं। ये बड़े ही मिलनसार और मधुर भाषी हैं। इसीसे शिक्षा बहुत सामान्य होने पर भी इनका बहुत से पढ़े लिखे और धनी-मानी पुरुषों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा है। एक सामान्य स्थिति से इन्होंने जो उन्नति की है वह वास्तव में बड़ी असाधारण बात है। श्रीमहाराजजी में इनका बड़ा गम्भीर भाव है तथा पूज्य बाबा में भी ये बहुत श्रद्धा रखते हैं। ये सचमुच इस समाज के एक उज्जवल रत्न हैं। उदारता इनका प्रधान गुण है। अनेकों लक्षाधीशों से सम्पर्क होने पर भी ये किसीसे कोई याचना नहीं करते और स्वतः ही जो प्राप्त होता है उसे मुक्त हस्त से वितरण कर देते हैं। भविष्य के लिये ये रुपया या सामग्री कुछ भी जोड़कर नहीं रखते। झगड़े से ये बहुत डरते हैं। यदि इनके साथ कोई अनुचित बर्ताव करता है तो इन्हें बुरा तो लगता है, किन्तु उसे कोई उत्तर न देकर ये स्वयं ही वहाँ से उठ जाते हैं। इस प्रकार इनमें साधुजनोचित अनेकों गुणों का अच्छा विकास हुआ है।

सीताराम बाबा

इनका जन्म तहसील गुन्नौर के मड़कावली नामक ग्राम में एक अहीर-परिवार में हुआ था। इन्हें बचपन से ही सत्सङ्ग में प्रेम था। अतः बहुत छोटी आयु में ही ये किन्हीं रामानन्दी माहात्मा के शिष्य हो गए। इनका गुरु का दिया हुआ नाम 'जैरामदास' है। किन्तु ये 'सीताराम बाबा' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। साधु होने के एक-दो वर्ष बाद ही ये मेहुआमढ़ी पर रहने वाले वृद्ध तपस्वी महात्मा किशोरीदासजी के पास आ गए। ये महात्मा प्रतिवर्ष गर्मियों में पञ्चाग्नि और चौरासी धूनी तपते थे तथा शीतकाल में एक गड्ढे में बैठकर उसके ऊपर तिपाई पर एक सौ छिद्र का घड़ा रख उसमें दो आदमियों से एक सौ एक घड़ों में रखा हुआ बासी जल डलवाते थे। इस प्रकार प्रायः तीन घण्टों में उनका स्नान होता था। उस समय वे बेहोश हो जाते थे। फिर शिष्य लोग अग्नि में तपाकर उन्हें चेत कराते थे। इनको यह कठोर तपस्या वृद्धावस्था तक चलती रही।

सीताराम बाबा पढ़े-लिखे कुछ नहीं थे। पीछे कुछ अक्षर सीखकर ये श्रीरामचरितमानस का पाठ करने लगे। गाने का शौक बड़े बाबा को भी था और इन्होंने भी उनसे कुछ गाना सिख लिया था। पूज्य बाबा किशोरीदासजी के पास ये प्राय: चौदह वर्ष की आयु में आये थे। उससमय इनका श्यामवर्ण और हृष्ट पुष्ट शरीर था तथा शिर पर सुन्दर केश थे। इसी तरह गला भी बहुत ऊँचा और गम्भीर था। ये चिमटा बजाकर नृत्य करते हुए श्रीकबीरदास तथा अन्यान्य सन्तों के पद गाया करते थे। इनका उत्साहपूर्ण भावमय गान सुनकर गाँव के लोग मुग्ध हो जाते थे।

मेहुआ बाँध से छः कोश की दूरी पर है। जब बाँध का काम हो रहा था तो सन् १९२३ के शीतकाल में किसी गाँव की मदद के साथ ये बाँध पर आये और मेरे सामने ही इन्होंने खूब पल्ला भर-भरकर मिट्टी डाली। श्रीमहाराजजी घण्टा बजाते हुए मदद से काम करा रहे थे। ये पल्ला भरकर ठीक उनके चरणों के पास ही डालते थे। एक युवक साधु को इतने परिश्रम से काम करते देखकर आप बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि साधु बाबा प्राय: कोई सेवा का काम नहीं करते। वहाँ तो सेवा कराने की कोई प्रवृत्ति हो जाती है। अत: उसी दिन इनका आपसे परिचय हो गया और ये समय-समय पर आपके पास आने लगे। फिर तो श्रीमहाराजजी के साथ ये बाँध की सेवा और मदद निकलवाने का काम भी करने लगे। धीरे-धीरे श्रीचरणों में इनका बहुत अनुराग हो गया, किन्तु इनकी मुख्य सेवा रही है कीर्तन में श्रीमहाराजजी से गले से गला मिला कर अन्त तक ठीक उन्हीं की तरह सिंहनाद से कीर्तन करना। उस समय ये आनन्द में विभोर होकर नृत्य करने लगते हैं। कीर्तन में ये प्राय: श्रीमहाराजजी के वामपार्श्व में उनके समीप ही खड़े होते हैं। इनकी दूसरी सेवा में है सत्सङ्ग में चिमटा बजाकर 'जय सियाराम जय जय सियाराम' की ध्वनि कराना; अथवा कोई पद गाते हुए नृत्य करना। इनकी यह कला बड़ी विचित्र है। इसका सभी प्रकार की जनता पर बहुत बड़ा अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी ये सभा में ही कोई हँसी की बात भी सुनाया करते हैं। उस समय सभी लोग हँसते-२ लोट-पोट हो जाते हैं। अपनी भक्तपरिकर की लीलाओं में ये खूब अभिनय करते हैं। इनका पार्ट प्राय: हास्यप्रधान ही होता है।

ये बड़े ही विलक्षण प्रकृति के हास्यप्रधान व्यक्ति हैं। इनके हृदय में कभी-कभी तो ऐसा प्रेम जाग्रत होता है कि ये अन्न-जल त्यागकर प्राण त्यागने पर उतारू हो जाते हैं। और कभी इतना हठ और दुराग्रह देखा जाता है कि सामान्य-सी बात पर रूँठ जाते हैं और बहुत मनाने से भी नहीं मानते। जब श्रीमहाराजजी स्वयं मनाते हैं तभी मानते हैं और रोते-रोते श्रीचरणों में लोट-पोट हो जाते हैं। उस समय इनका यह आग्रह होता कि मेरे हृदय और मस्तक पर चरण रखो तब मानूँगा। तब तो हमारे सङ्कोची सरकार को इनकी प्रसन्नता के लिये विवश होकर इनका यह हठ पूरा करना ही पड़ता है, इनमें अपनी वैष्णवता का भी बड़ा अभिमान है, उसके कारण कभी-कभी ये तनिक-सी बात पर हम लोगों का तिरस्कार कर बैठते है। कभी-कभी तो ये सब प्रकार का भोजन कर लेते हैं, और कभी ब्राह्मण के हाथ का भी नहीं खाते। जब भण्डारा होता है तो सबसे पहले अमनिया लेकर अपने ठाकुरजी को भोग लगाते हैं। इनका इस प्रकार का आडम्बर लोगों को बहुत अखरता है और इसीसे प्रायः कुछ झगड़ा भी चलता रहता है। किन्तु कभी-कभी तो ये मान भी बहुत थोड़ी-सी बात से जाते हैं। तनिक खुशामद कर ली। अथवा ठाकुरजी के लिये कुछ अमनिया भोग रख दिया कि बाबाजी खुश हो गए।

श्रीमहाराजजी इन्हें उत्सवों में प्रायः अवश्य ले जाते हैं। अब मेहुआ में इन्होंने एक राममन्दिर भी बनवा लिया है। अतः अपने स्थान से इन्हें विशेष राग हो गया है। वहाँ दो-तीन बार श्रीमहाराजजी भी अपने भक्ति परिकर सहित जा चुके हैं, उस समय वहाँ खूब भण्डारे और उत्सव हुए हैं। रामानन्दी वैष्णव होने के कारण स्वाभाविक ही इनकी निष्ठा श्रीरघुनाथजी तथा हनुमानजी में है। ये श्रीरामचरितमानस का नवाह्न पारायण प्रायः करते रहते हैं, कभी-कभी ये हनुमानचालीसा के एक सौ आठ पाठ भी करते हैं। कीर्तन तथा पाठ करते हुए इन्हें विलक्षण आवेश सा हो जाता है। उस समय ये एकदम विह्वल हो जाते हैं।

हमारे श्रीमहाराजजी के सम्पर्क से इनकी ख्याति भी खूब बढ़ गयी है। पूज्य श्रीउड़ियाबाबा और माँ श्रीआनन्दमयी भी इनसे बहुत प्रेम करते हैं। किन्तु इनके

उद्दण्ड और हठी स्वभाव के कारण इन महापुरुषों को भी कई बार दुःखी होना पड़ता है। कभी-कभी तो ये बिना कहे भाग जाते हैं। गत वर्ष ये बाँध के उत्सव में बिगड़कर मेहुआ चले गये और वहाँ ग्यारह दिन का उपवास करके श्रीरामचरितमानस का नवाह्न पारायण किया। तबसे श्रीमहाराजजी का चित्त इनकी ओर से कुछ फिर गया है। गत गुरुपूर्णिमा पर जब हम झूसी गये थे तो आपने बड़े दुःख के साथ कहा था कि जब हमारा जन्मभर का साथी सीताराम बाबा ही हमसे अलहदा हो गया तब मैं उस प्रान्त में क्या जाऊँ ? ❋ यह सीताराम बाबा का सौभाग्य है कि श्रीमहाराजजी उन्हें अपना मानते हैं। किसी महापुरुषों की आत्मीयता से बढ़कर जीव का और क्या सौभाग्य हो सकता है। इनके जीवन में अनेकों चमत्कारी अनुभव भी हुए हैं। किन्तु मुझसे इन्होंने कभी उनकी चर्चा नहीं की, इसलिए कुछ लिख नहीं सकता।

मनोहर

मनोहर महाराजजी का खिलाड़ी भक्त है। इसका जन्म जहाँगीराबाद में एक ब्राह्मणकुल में हुआ था। बाल्यावस्था में यह बहुत ही चञ्चल और उद्धत प्रकृति का व्यक्ति था। युवावस्था में भी इस पर आधुनिक संसार से दूषित वातावरण का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। किन्तु पढ़ने-लिखने में इसकी अच्छी-अच्छी अभिरुचि थी। इसीसे इसने हिन्दी-उर्दू मिडिल पास कर लिया था। उसके पश्चात् यह किसी रईस के बच्चों को पढ़ाने लगा। किन्तु अपनी रूपसक्ति के कारण वहाँ यह बदनाम हो गया। इससे इसके मन में कुछ ग्लानि हुई और वहाँ से भागकर यह किन्हीं सन्त-सद्गुरु की खोज करने लगा। इसने श्रीमहाराजजी का सुयश सुना। अतः जिस समय बाँध पर एक वर्ष का अखण्डकीर्तन चल रहा था उस समय यह वहाँ पहुँचा। श्रीमहाराजजी के दर्शन करके यह मुझसे मिला और मैंने इसे अपनी कुटी पर ही रख लिया।

बाँध पर यह बहुत दिनों तक रहा तथा कीर्तन और सत्सङ्ग में सम्मिलित होता रहा। मुझे इसके स्वभाव में कई विचित्र बातें दीखीं। इसे मीठा और खीर खाने

❋ अब सीताराम बाबा फिर श्रीमहाराजजी के पास रहने लगे हैं।
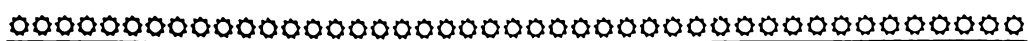
की बड़ी रुचि थी। सो इसके लिए मैंने छुट्टी कर दी थी। पूज्य बाबा ने इसे एक बड़ा-सा कटोरा दे दिया था। उसमें दो सेर दूध आ सकता था। यह उसे भरकर दूध-दही, खीर और मिठाई खा लेता था। यदि खाते-खाते कोई चीज बच जाती तो उठाकर रख देता और फिर कभी खा लेता। किन्तु कभी इसका व्यवहार इसके ठीक विरुद्ध होता था। भण्डारा में खीर या हलवा बनता और इस पर वैराग्य का भूत चढ़ जाता तो यह कहीं भाग जाता और गाँव से रूखी-सूखी रोटी माँगकर खा लेता तथा जङ्गल में पड़ा रहता। और कभी यथेष्ठ मीठा न मिलने पर ऐसा रूँठ जाता कि किसीके मनाने न मनता। कभी बड़े ही मनोयोग से कथा-कीर्तन करता और कभी नास्तिकों की तरह उनकी निन्दा करने लगता।

इसकी ऐसी विचित्र मनोवृत्ति देखकर मैं तो ऊब गया और इससे उपराम हो गया। फिर तो यह स्वतन्त्र हो गया। चाहे जहाँ खा लेता और पड़ा रहता। धीरे-धीरे श्रीमहाराजजी और पूज्य बाबा से भी इसका सम्बन्ध जुड़ गया। इससे कुछ परमार्थ की ओर भी झुकाव हुआ और फिर श्रीमहाराजजी के साथ खेल कूद में सम्मिलित होने लगा। इस प्रकार इसका सङ्कोच छूट गया और महाराजजी ने भी दाताराम से कह दिया कि मनोहर के खाने-पीने का ध्यान रखे। उधर कुँवर गुलाबसिंह और रामेश्वरप्रसाद से भी इसका मेल हो गया और वहाँ भी खाने-पीने लगा। यह खूब खाता और खूब कीर्तन करता था। पीछे श्रीवृन्दावन में जाकर इसने कुछ गाने-बजाने का भी अभ्यास किया और बड़ी धुन से उसमें लग गया। उन दिनों हमारे सरकार भी इसी अभ्यास में लगे हुए थे। अतः उन्हें भी यह एक साथी मिल गया। इन्हींके साथ ब्रह्मचारी आनन्द भी मिल गये। बस, तीनों मिलकर बड़े मनोयोग से गाने-बजाने का अभ्यास करने लगे। किन्तु इसका स्वभाव था उद्दण्ड और आप हैं बड़े नियम-निष्ठ। इसलिए कभी समय पर उपस्थित न होने के कारण आपको बहुत दुःख भी होता। उस समय आप इसकी उपेक्षा कर देते, मौन हो जाते अथवा नियम कर देते कि अब मनोहर मेरे सामने न आवे। तब इसका भूत एकदम उतर जाता, यह कहीं एकान्त में जाकर फूट-फूटकर रोने लगता। फिर किसी प्रकार क्षमा माँगकर आपको प्रसन्न कर लेता। पीछे यह गाने-बजाने में बहुत कुशल हो गया। अब कभी-कभी

यह कीर्तन में खोल बजाते हुए ठीक बंगालियों की तरह कूद-कूदकर नृत्य करता है। उस समय हमारे सरकार का भी कीर्तन में दुगुना उत्साह हो जाता है। उस समय भी इसकी रूँठा-रूँठी चलती रहती है। एक दिन यह उदास खड़ा हुआ था। बस, महाराजजी ने इसके घण्टा बजाने की हथौड़ी मारी। इससे यह आनन्द में मस्त होकर खोल बजाते हुए नृत्य करने लगा। उस दिन तो यही घटना सब कीर्तनकारों के लिये उद्दीपन विभाव बन गयी। श्रीमहाराजजी की इस कृपा के लिए पूज्य बाबा और श्रीश्री माँ आनन्दमयी भी इसके भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

अब इसका प्रेम श्रीमहाराजजी, पूज्य बाबा और श्री माँ तीनों ही में हो गया है। वास्तव में यह बड़ा ही खिलाड़ी और कौतुक-प्रिय व्यक्ति है। भक्तपरिकर की लीलाओं में यह अग्रगण्य है। कीर्तन, कथा और गाने-बजाने में भी बहुत कुशल है तथा श्रीमहाराजजीमें भी इसका अच्छा अनुराग है। यह उनमें अपना सखा भाव मानता है। मेरा तो उनके चरणों में आज तक ठीक-ठीक दास भाव भी नहीं हुआ। फिर मैं भला, इसकी महिमा का क्या वर्णन कर सकता हूँ इसके जीवन में चमत्कार भी बहुत हुए हैं। परन्तु इसने कुछ भी बताने की कृपा नहीं की। इसलिये कोई बात लिखी नहीं जा सकी। जो कुछ भी हो, मुझे इसके जीवन में उत्तरोत्तर उन्नति के ही लक्षण दिखायी देते हैं।

गोपालदास

इनका जन्म फिरोजाबाद के पास किसी ग्राम में हुआ था। ये वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हैं तथा बचपन से ही बड़े भजनानन्दी, साधुसेवी और अध्यवसायी रहे हैं। इनके पूर्वचरित तथा निजी भावों का मुझे विशेष ज्ञान नहीं है, किन्तु इस समय निःसन्देह ये श्रीमहाराजजी के अत्यनत निजी भक्तों में हैं।

ये पहले-पहले सम्भवतः सं० १९९५ में पूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी के पास श्रीवृन्दावन में आये थे और तभी इन्होंने उनके श्रीचरणों में आत्म समर्पण कर दिया था। ये बड़े ही शान्त और सेवापरायण व्यक्ति हैं। आश्रम की सभी प्रकार की सेवा,

जैसे जल भरना, भोजन परोसना साधुओं को भिक्षा बाँटना आदि ये बड़े प्रेम और उत्साह से करते हैं। इसलिए सभी लोग इनसे बहुत प्रसन्न रहते हैं और किसी से भी इनका कोई विरोध होता नहीं देखा जाता। श्रीभगवान् की रासलीला से इन्हें विशेष प्रेम है, इनका श्रीश्यामसुन्दर के प्रति सख्य भाव है। आश्रम में रासलीला की प्राय: सारी व्यवस्था प्रधानतया ये ही करते हैं। इन सब गुणों से श्रीमहाराजजी इनसे बहुत प्रसन्न रहते हैं।

अब तो गत पाँच-सात साल से ये प्राय: श्रीमहाराजजी के साथ ही रहते हैं। उनके प्रत्येक प्रोग्राम में ये बड़े मनोयोग से सम्मिलित होते हैं। श्री सरकार ने कई बार कहा है कि भाई, गोपालदास बड़ा देवता है, इसकी कभी कोई गलती नहीं देखी गयी। वास्तव में ये श्रीमहाराजजी के अत्यन्त कृपापात्र हैं—यही इनकी बड़ी से बड़ी विशेषता है।

वैकुण्ठदास

इनका जन्म-स्थान पञ्जाब है। बहुत दिनों से ये साधु समागम करते रहे हैं। वृन्दावन के प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य स्वामी रघुनाथदासजी से इन्होंने श्रीसम्प्रदायकी दीक्षा ली थी। किन्तु आठ दस वर्ष से ये प्रधानतया श्रीमहाराजजी की ही सेवा में रहते हैं। आपके ये अत्यन्त अन्तरङ्ग भक्तों में हैं तथा आप जो निजी स्वाध्याय या सत्सङ्ग करते हैं उनमें ये अवश्य सम्मिलित रहते हैं। इनमें सरलता, सौम्यता, दैन्य और विनय आदि कई भक्तजनोचित गुण हैं। ये व्यवहार में अधिकतर अपने ही दोषों पर दृष्टि रखते हैं, दूसरों के दोष ये बहुत कम देखते हैं। इसलिए इनका किसी से कोई विरोध नहीं होता।

इनमें सेवाभाव भी अच्छा है जब माताजी श्रीआनन्दमयी आश्रम में पधारती हैं। तब श्रीमहाराजजी इन्हें और मनोहर को विशेष रूप से इनकी सेवा का कार्य सौंपते हैं। इनके जीवन में अनेकों चमत्कारी अनुभव भी हुए हैं, किन्तु मुझे उनका ज्ञान नहीं है; इसलिए यहाँ कुछ लिख नहीं सकता।

डाक्टर होतीचन्द

ये एक सिन्धी नवयुवक हैं। प्राय: पन्द्रह वर्ष हुए वे अपनी माताजी और सहधर्मिणी के सहित वृन्दावन सेवन के लिए आ गए थे। जब से वृन्दावन में पूज्य श्रीबाबा का आश्रम बना है और श्रीमहाराजजी का वहाँ अधिकतर रहना हुआ है तब से ये बराबर सत्सङ्गादि में आते रहे हैं। अब तो इन्होंने पूर्णतया आपके श्रीचरणों में आत्मसमर्पण किया हुआ है। ये आपकी अत्यन्त तत्परता से तन मन धन से सेवा करते हैं। चाहे कैसी ही विघ्न-बाधा हो अपने नियत समय पर ये अवश्य सेवा में उपस्थित हो जाते हैं। जिस समय श्रीमहाराजजी वृन्दावन में विराजते हैं उस समय आपकी कई प्रकार की सेवा प्रधानतया ये ही करते हैं। आश्रम के तो यह गृह-चिकित्सक (Home Doctor) हैं। प्रत्येक आश्रमवासी की चाहे वह किसी भी स्थिति का हो, वे बड़े प्रेम से सर्वथा नि:स्वार्थ सेवा करते हैं।

श्रीमहाराजजी के प्रति इनकी श्रद्धा बड़ी ही सरल और गम्भीर है। आपको 'प्रभुजी' कहा करते हैं। सन्तों की अलौकिक शकित में इनका बड़ा विश्वास है। उनके सामने ये औषध-विज्ञान अथवा और भी किसी विज्ञान या युक्ति का कोई मूल्य नहीं समझते। देश के विभाजन के समय सिन्ध में इनकी काफी अचल सम्पत्ति थी। परन्तु भगवत्कृपा से इन्हें किसी प्रकार की क्षति नहीं उठानी पड़ी। उसे भी ये सन्तकृपा का ही प्रभाव मानते हैं। सचमुच, आज-कल अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवकों में ऐसे सरल विश्वासी बहुत कम देखे जाते हैं। अपने मिलनसार और मधुर भाषी स्वभाव के कारण स्थानीय सिन्धी लोगों में भी इनका अच्छा सम्मान हैं।

कुँवर गुलाबसिंह और उनकी बहिनें

हमारे सरकार यों तो गरीब परवर हैं, तथापि आपके दरबार में गरीब, अमीर, साधु, गृहस्थ, गुणी-अवगुणी, पण्डित-मूर्ख, नीच-ऊँच, स्त्री-पुरुष सभी प्रकार के मनुष्यों को आश्रय मिलता है। आपको तो सच्चा शरणागत ही प्यारा है; फिर वह कैसा ही क्यों न हो। जो किसी भी प्रकार आपके सम्पर्क में आ गया वह फिर छूट नहीं

सकता। आप शरणागत की योग्यता आदि दृष्टि नहीं देते, आप तो केवल उसका हृदय ही देखते हैं।

ऐसे सच्चे हृदय से शरणागत धनिक लोगों में आज-कल प्रधान हैं कुँवर गुलाबसिंह और उनकी बहिनें। इनके पिता ठाकुर सरदारसिंहजी अनूपशहर से प्राय: पाँच मील दूर जिरौली नामक गाँव के रईस थे। उनके दो स्त्रियाँ थी। वे परस्पर सगी बहिनें थीं बड़ी ठाकुरानी साहिबा से कोई सन्तान नहीं थीं। छोटी से ही ये तीन सन्तानें हुई थीं। किन्तु बड़ी माँ थीं बड़ी वीर और प्रबन्धकुशल देवी। ठाकुर साहब प्राय: बारह हजार रुपया के मालगुजार थे। किन्तु वे बहुत सीधे-सादे और अलमस्त आदभी रियासत का सारा प्रबन्ध ये ही करती थीं। इन बालकों पर भी इनका माँ से अधिक प्रेम था। अत: घर की सच्ची स्वामिनी ये ही थीं। छोटी माँ तो केवल इनकी जन्मदात्री ही थी। साधु सेवा में भी इनकी अच्छी रुचि थी। गङ्गातटवासी सभी प्रसिद्ध सन्तों की ये खूब सेवा करती थीं और समय-समय पर उनके दर्शनार्थ जाती रहती थीं। हमारे श्रीमहाराजजी में भी इनकी बड़ी गम्भीर श्रद्धा थी।

ठाकुर सरदारसिंह की दोनों पुत्रियों का विवाह गवाँ के एक रईस ठाकुर इन्द्रसिंह के साथ हुआ था। इनकी एक पूर्वपत्नी और थीं। किन्तु वे नेत्रहीन हो गयी थीं और कर्णवास में अपने पिता के घर रहने लगी थीं। ठाकुर इन्द्रसिंह गवाँ में सबसे बड़े जमीदार थे। ये प्राय: छत्तीस हजार वार्षिक के मालगुजार थे और इनकी सब आमदनी प्राय: पचास हजार रुपया प्रतिवर्ष थी। ये स्वभाव से बड़े शान्त, गम्भीर और मितभाषी व्यक्ति थे। खर्च कुछ हाथ खींचकर ही करते थे। यों बड़े ईमानदार थे और प्रजा के साथ भी इनका अच्छा व्यवहार था।

जिस समय बाँध के लिए चन्दा हुआ था उसमें इन्होंने बड़ी श्रद्धा से सबसे अधिक तीन हजार रुपया दिया था। पीछे भी बाँध तथा बाँध के उत्सव में इनका अच्छा सहयोग रहा। शरीर से ये काफी स्थूल थे, तो भी मैंने कई बार इन्हें धूप और कीचड़ में बाँध पर मिट्टी डालते देखा था। यद्यपि सामान्यतया इनका साधु-महात्माओं से मिलने का स्वभाव नहीं था; तथापि श्रीमहाराजजी के स्वाभाविक तेज से ये इतने

प्रभावित हुए कि अन्त तक उनके श्रीचरणों में श्रद्धा बनी रही। बाँध बँधने के बाद ये दो-तीन वर्ष जीवित रहे और तब तक बराबर तन, मन, धन से बाँध की सेवा करते रहे। जब ये मरणासन्न हुए तब भी इन्होंने श्रीमहाराजजी के दर्शनों की रुचि प्रकट की थी। किन्तु दैववश आप उस समय बाँध पर नहीं थे इसलिए मुझे ठीक स्मरण नहीं कि इनकी वह अभिलाषा पूर्ण हो सकी या नहीं।

इनकी असामयिक मृत्यु से सभी सम्बन्धियों को बड़ा शोक हुआ। उस समय इनकी आयु प्रायः पचास वर्ष की थी तथा दोनों ठाकुरानियाँ प्रायः तीस और बीस वर्ष की थीं। इनके देहावसान से ये असहाय-सी हो गयीं। अभी तक इनके कोई सन्तान भी नहीं हुई थी। इनके चित्त में बड़ी उथल-पुथल हुई और ये अपने पतिदेव के उद्धार तथा अपने भावी जीवन के सुधारने के लिए अत्यन्त चिन्तित हो गयीं। जब जीव सब ओर से निराश होकर अपने पथ प्रदर्शन के लिए व्याकुल हो जाता है तो दुःखहारी हरि उसे कोई उपयुक्त मार्ग दिखा ही देते हैं। अतः इस संकट काल में इन्हें भी ऐसी ही दैवी प्रेरणा हुई। भगवत्कृपा से इन्हें श्रीमहाराजजी का स्मरण हुआ और इन्हें निश्चय हो गया कि उनके कृपा प्रसाद से इनका और इनके दिवङ्गत पतिदेव का अवश्य उद्धार हो सकता है। श्रीमहाराजजी के स्मरण के साथ ही इन्हें भगवन्नाम कीर्तन का भी ध्यान आया और इन्होंने अत्यन्त आतुर होकर हरिनाम का आश्रय लिया। बस, इनका हृदय भगवत्प्रेम से भर गया और ये प्रेमपूर्वक कीर्तन करने लगीं। इससे इन्हें बहुत ढाँढस बँधा और साथ ही इन्हें श्रीमहाराजजी के दर्शनों की प्रबल आकाँक्षा जाग उठी।

किन्तु इन्होंने सुना था कि श्रीमहाराजजी अमीरों के यहाँ तो बहुत कम जाते हैं। उस पर भी स्त्रियों के पास जाने में तो उन्हें बहुत ही संकोच है। उनसे तो वे किसी प्रकार का भाषण आदि भी नहीं करते। इससे इनका चित्त बहुत मर्माहत हुआ और ये एकदम निराश हो गयीं। किन्तु फिर सोचा कि वे तो साक्षात् अन्तर्यामी श्रीहरि भगवान् ही हैं ये जगत्पिता हैं, हम सब तो उनकी सन्तान ही हैं। अतः वे अवश्य हमारी सहायता करेंगे।

ऐसा विचार आने से इन्हें साहस हुआ और इन्होंने अपने बन्धु बान्धवों से सलाह की कि ठाकुर साहब के त्रयोदशाह श्राद्ध में श्रीमहाराजजी को बुलाया जाय। इनका विशेष भाव देख सब लोग सहमत हो गये और इस कार्य के लिए महाशय सुखरामगिरिजी को अनूपशहर भेजा। महाशयजी श्रीमहाराजजी के अन्तरङ्ग भक्त तो थे ही, इनके भी पड़ोसी थे तथा महाशयजी के पिता ठाकुर सरदारसिंह के यहाँ कारिन्दा रह चुके थे, इसलिए उनसे इनका कोई पर्दा भी नहीं था। इन्होंने अत्यन्त दीनतापूर्वक एक प्रार्थना-पत्र लिखा और वह महाशयजी के हाथ में देकर फूट-फूटकर रोने लगीं। लोगों को ऐसी आशा नहीं थी कि महाराजजी एक गृहस्थ के अन्त्येष्टि संस्कार में सम्मिलित होने के लिए इतनी दूर से आ जायँगे। किन्तु आप तो बड़े दीनवत्सल हैं। अत: जब आपने वह पत्र पढ़ा और महाशयजी से भी सुना कि उनका भाव बहुत अच्छा है, वहाँ जाने से उन्हें बड़ा आश्वासन मिलेगा तो आप दूसरे दिन प्रात:काल ही पैदल चलकर गवाँ पहुँचे। आपके दर्शन करके दोनों विधवा बहिनों को बड़ी शान्ति मिली। आपने खड़े-खड़े उन्हें बहुत आश्वासन दिया और समझा बुझाकर चले गए। भोजन भी सम्भवत: किसी दूसरी जगह ही किया।

श्रीमहाराजजी के सदुपदेश का इनके चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा तथा इन्हें प्रत्यक्ष या स्वप्न में ऐसा भी अनुभव हुआ कि इनके दिवङ्गत पतिदेव का उद्धार हो गया है। फिर तो ये तन, मन, धन से श्रीमहाराजजी की शरणागत हो गयी और उनकी सब प्रकार सेवा करने लगीं। तब से बाँध तथा श्रीमहाराजजी की सेवा ये बहिनें ही करती हैं। इनकी श्रीचरणों में श्रद्धा भी अत्यन्त विलक्षण है। ठाकुर गुलाबसिंह इनके मँझले भाई हैं। ठाकुर इन्द्रसिंह की मृत्यु के पश्चात् ये ही इनकी रियासत का सारा प्रबन्ध करते हैं। ये बड़े ही सरल, शान्त औ निर्मान व्यक्ति हैं। श्रीमहाराजजी के चरणों में इनका भी अत्यन्त अनुराग है। इनके दो छोटे-छोटे लड़के हैं। उनमें बड़ा प्राय: दस वर्ष का और छोटा चार-पाँच वर्ष का है। ये भी बड़े ही सौम्य और सुशील हैं। इनमें छोटा तो बड़ी कुशलता से श्रीमहाराजजी का अनुकरण करता है। एक छोटा सा घण्टा लेकर उन्हीं की तरह घूम-घूमकर कीर्तन करता है, उन्हीं की तरह वीरासन

में बैठ जाता है और उन्हीं की तरह अपने नौकरों को दाताराम, घनश्याम आदि नाम लेकर पुकारता है। उसकी ये बालोचित चेष्टाएँ प्यारी लगती हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि इनकी वार्षिक आय प्राय: पचास हजार रुपया है। उससे अपना आवश्यक खर्च करके ये अधिकाँश रुपया श्रीमहाराजजी की आज्ञा से बाँध अथवा बाँध के उत्सवों में ही खर्च कर देती हैं। इन्हें श्रीमहाराजजी की आज्ञा में बहुत विश्वास है, परन्तु स्त्री-शरीर होने के कारण आपसे सीधे-सीधे मिलना तो बहुत कम होता है। दूसरे के द्वारा सूचना मिलने पर भी कभी-कभी सन्देह रह जाने के कारण आज्ञा पालन में त्रुटि भी हो जाती है। उस समय हमारे सरकार इनकी उपेक्षा कर देते हैं। निजजनों की उपेक्षा करना तो आपका स्वभाव ही है। बाँध उत्सवों में अधिकांश खर्चा उन्हीं का होता है। उस समय गुलाबसिंहजी के अधीन अनेकों उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य रहते हैं। ये यों तो बड़े सहनशील, सङ्कोची और सादगी पसन्द नवयुवक हैं, परन्तु रईसी स्वभाव होने के कारण काम करने में कुछ ढीले हैं। इसलिए इनसे कई बार कुछ त्रुटियाँ भी हो जाती हैं। उस समय यदि महाराजजी इन्हें डाँटते हैं तो ये बालक की तरह रो देते हैं। आपके सामने बोलने का तो इन्हें साहस ही नहीं होता। इन्हें कोई भी काम बताया जाय 'न' करना तो ये जानते ही नहीं, फिर वह पूरा हो अथवा न हो। इनको क्रोध आते भी हमने बहुत कम देखा है। इनका स्वभाव कुछ कौतुकप्रिय है तथा ये बड़े खिलाड़ी और मसखरे भी है।

इनकी बड़ी माँ का भी श्रीमहाराजजी में बहुत गाढ़ अनुराग था। वृद्धावस्था में वे प्राय, बीमार रहने लगीं। सम्वत् २००० अथवा २००१ में बाँध पर बहुत बड़ा उत्सव था। उस समय ये मरणासन्न हो गयी थीं। महाराजजी उस समय रात के २ बजे से रात के १० बजे तक एक मिनट का भी अवकाश नहीं था। तो भी इनके प्रेम से बाध्य होकर आप रात को १० बजे प्रोग्राम से निवृत्त हो मुझे और सागर को साथ लेकर उनके पास जाते थे। वहाँ उन्हें सचेत करके प्राय: एक घण्टा ठहरते और उन्हें भगवन्नाम एवं भगवच्चरित्र सुनाते थे।

मुझे तो कार्य की अधिकता के कारण उस समय आपका जाना बहुत अखरता था। दो-चार बार मैंने कहा कि वहाँ रोज जाने की क्या आवश्यकता है, अथवा जाना

ही हो तो थोड़ी देर बैठकर आ जाया करें। किन्तु आपने समझाया कि ऐसे मरणासन्न व्यक्ति को भगवन्नाम सुनाना अत्यनत आवश्यक है। इस नश्वर शरीर से यदि किसी की कुछ सेवा हो जाय तो अच्छा ही है। इससे दूसरे को बहुत आश्वासन मिलता है। हमारा क्या बिगड़ता है। घण्टे भरकम ही आराम सही। इस प्रकार पूरे एक महीने तक आप बराबर जाते रहे। उत्सव के बाद जब आप जाने लगे तब भी बूढ़ी माँ ने बाँध से घर जाना स्वीकार नहीं किया। कहा कि मैं तो इस दिव्य धाम में ही देह त्यागूँगी बस, इनके पास वारी-वारी से निरन्तर कथा-कीर्तन का प्रबन्ध कर दिया गया। और इन्होंने चैत्रमास में ही एक दिन भगवन्नाम लेते हुए शरीर त्याग दिया।

गुलाबसिंह और इनकी दोनों बहिनों के श्रीमहाराजजी के विषय में अनेकों चमत्कारपूर्ण अनुभव हैं। किन्तु मेरा इनके साथ कुछ सङ्कोच का भाव रहता है। इसलिए मैं विशेष कुछ नहीं जान सका। केवल एक घटना मुझे इस समय स्मरण आती है। उसे लिखकर इनका प्रसंग समाप्त करूँगा।

कुँवर इन्द्रसिंह की मृत्यु पश्चात् उनकी जायदाद के उत्तराधिकारी बड़ी गढ़ीवाले ठाकुर गिरवरसिंहजी के दत्तक पुत्र कुँवर वीरेन्द्रसिंह होते हैं। किन्तु कुछ व्यावहारिक उलझनों के कारण उनका इनसे वैमनस्य था, अत: उन्होंने इनकी जायदाद को कोर्ट कराने का षड्यन्त्र रचा और भीतर ही भीतर बहुत प्रयन्त करके जिला मजिस्ट्रेट के यहाँ इनके अनुचित खर्चे की शिकायत कर दी। इनकी अकाट्य युक्तियों से प्रभावित होकर कलक्टर ने पुलिस के साथ स्वयं आकर इनकी हवेली घेर ली और सारा सामान तथा पशु आदि ताले में बन्द करके उन पर अदालती की मुहर लगा दी। बस, क्षण में ही जो पचास हजार वार्षिक आय की रानी थीं वे अपने खर्चे के लिये भी परममुखापेक्षी बन गयीं। कलक्टर साहब इन्हें समझा-बुझाकर चले गये कि यदि तुम्हें कोई आपत्ति करनी हो तो अमुक तारीख तक हमारी अदालत में करो। नहीं तो तुम्हारे निर्वाह के लिये उचित वेतन नियुक्त करके तुम्हारी रियासत का प्रबन्ध कोर्ट ऑफ वार्ड्स को सौंप दिया जायगा।

अब क्या किया जाय। ये तो बेचारी अबलाएँ थीं और गुलाबसिंह भी ऐसे व्यवहारों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। अत: ये बहुत घबराये और एकान्त में श्रीमहाराजजी

को स्मरण करते हुए रोने लगे। आप उन दिनों वृन्दावन में थे। फिर एक पत्र में सब समाचार लिखकर किसी विश्वास पात्र व्यक्ति को आपके पास भेजा। आपने सब बातें बड़े ध्यान से सुनीं और उस आदमी से कहा, 'भाई! अपना ही कोई अपराध होता है तभी दूसरे की ओर से ऐसी चेष्टाएँ होती हैं। अतः विपद्विदारण श्रीहरि का स्मरण करते हुए अदालत में मुकदमा चलाना चाहिए मुझे विश्वास है वे अवश्य इनकी रक्षा करेंगे। इस प्रकार के कार्यों में कुन्दनगिरि बहुत कुशल है। उससे मेरी ओर से कह देना वह इस काम में उनकी सहायता करें।'

तब इन्होंने श्रीभगवान् का स्मरण कर बाबू कुन्दनगिरि की सहायता से मुकदमा चलाया। उसमें यह अद्भुत चमत्कार हुआ कि गाँव के रईस-गरीब सभी लोग इनके पक्ष में हो गए और जिस कलक्टर पर वीरेन्द्रसिंह का इतना प्रभाव था वह उल्टा उसीका विरोधी हो गया। मुकदमा प्रायः एक वर्ष चला और उसमें इनके प्रायः बीस हजार रुपये खर्च हुए। किन्तु विजय इनकी ही हुई और विरेन्द्रसिंह पर हर्जाने की दस-पन्द्रह हजार की डिगरी हो गयी। फिर कलक्टर ने इन्हें वीरेन्द्रसिंह पर मानहानि का दावा करने की सलाह दी। गुलाबसिंह ने मना भी किया, किन्तु कलक्टर के विशेष आग्रह से इन्हें वैसा करना ही पड़ा।

अब तो वीरेन्द्रसिंह बहुत घबराये और श्रीमहाराजजी के विशेष कृपापात्र पण्डित रामलालजी को लेकर उनकी शरण में आये। दोनों ही महाराजजी के चरण पकड़कर बहुत रोये, तब शरणागत वत्सल सरकार ने बीच में पड़कर गुलाबसिंह से इन्हें क्षमा करा दिया और इनसे भी प्रतिज्ञा करा दी कि भविष्य में ये ऐसा कोई दुर्व्यवहार नहीं करेंगे और सदा प्रेम का व्यवहार करते रहेंगे। यहाँ तक कि इन दोनों के आपस में और भी जितने मुकदमे थे वे सभी बाबू कुन्दनगिरि और मुझे मध्यस्थ बनाकर तय करा दिये। इन सब मामलों में यद्यपि वीरेन्द्रसिंह ने बहुत चपलता से काम लिया और इन्हें हर्जाने के पन्द्रह हजार की जगह केवल तीन हजार रुपये ही दिये तो भी आपकी शरणागत-वत्सलता और इन भाई-बहिनों की आज्ञा पालन में तत्परता देखकर सभी लोग मुग्ध हो गए तथा इनकी मुक्तकण्ठ से सराहना करने लगे।

भगवती की माँ

भेरिया से प्राय: एक मील दक्षिण की ओर मऊ नाम का एक गाँव है। यहाँ एक अग्रवाल वैश्य परिवार बुलन्दशहर से आकर बस गया था। ये लोग कुछ खेती, दुकानदारी और पशुपालन से अपना निर्वाह करते थे। यह परिवार बड़ा सात्त्विक, भजनानन्दी और साधुसेवी था। भेरिया के पूज्य बंगाली बाबा में इनका गुरुभाव था। इस परिवार में भगवती की माँ एक आदर्श साधुसेवी महिला थी। वह भोजन बनाकर अलग अमनिया रख देती थी और समय पर आये हुए अतिथि अभ्यागतों को खिलाकर ही अपने बच्चों को भोजन कराती थी।

सन् १९१६ में जब महाराजजी भेरिया में रहते थे तब स्वामी शास्त्रानन्दजी के साथ माधूकरी के लिये इनके घर भी जाया करते थे। इनका तेजस्वी स्वरूप देखकर मैया मुग्ध हो गयी और स्वामी शास्त्रानन्दजी से आपका परिचय पूछा। उन्होंने बताया कि ये पञ्जाबी शरीर हैं और परम विरक्त अवस्था में विचरते इधर आये हैं। मैया ने बड़े प्रेम से प्रार्थना की कि आप कुछ दिनों मेरी भिक्षा स्वीकार करें। मैं कुटिया पर ही पहुँचा दिया करूँगी। तब आपने उसे आश्वासन दिया कि मैं जब इच्छा होगी यहीं आ जाया करूँगा।

धीरे-धीरे मैया का अनुराग आपके प्रति बहुत बढ़ गया और ये इसी प्रकार आपकी प्रतीक्षा करने लगीं जैसे यशोदा मैया श्रीश्यामसुन्दर के वन से लौटने की करतीं रहती थीं। ये दही बिलोकर माखन निकालतीं और आँख मूँदकर ध्यान करते हुए इन्हें बुलाने लगतीं। बस, ये अकस्मात् दौड़कर आते, और ध्यानमग्ना मैया को झकझोरकर जगाते और कहते, 'माँ! मुझे तो बड़ी भूख लगी है।' मैया भौचक्की होकर चरणों में गिर जाती और दूध, दही, माखन, रोटी जो कुछ होता बड़े प्रेम से खिलाती। कभी ऐसा भी होता कि मैया घर से बाहर होती और ये आ जाते तो नि:सङ्कोच घर में घुस जाते और जो कुछ मिलता स्वयं खाते एवं बचा कुचा बालकों को लुटाकर भाग जाते। जब मैया आती तो बच्चे बताते कि पञ्जाबी बाबा आये थे और खा-पीकर चले गए हैं। यह सुनकर मैया के हर्ष का पारावार न रहता। यदि कभी इन्हें दो-चार

दिन आये बिना हो जाते तो मैया स्वयं अथवा भगवती के द्वारा कुछ खाने को पहुँचा देती। कभी कुछ खरीखोटी सुनाकर भी इन्हें घर आने के लिए बाध्य करती और कभी नवीन वस्त्र सीकर भेंट करती। इस प्रकार इनके प्रति मैया का प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि जब ये कहीं अन्यत्र चले जाते तो मैया विरह वेदना के कारण कभी-कभी तो तीन-चार दिन तक अन्न-जल छोड़कर रोती रहती। तब आप अकस्मात् आकर उसे ढांढस बँधाते और कुछ खा-पीकर चले जाते मैया से कह जाते कि यह बात किसी से कहना मत।

मैं श्रीमहाराजजी के साथ भेरिया में प्राय: रहा करता था। उस समय मैंने मैया का प्रेम अपनी आँखों से देखा था। महाराजजी की आज्ञा से मैं कभी-कभी कोई चीज लेने के लिए मऊ जाता था। उस समय मैया वत्सहीना गौ की भाँति मुझसे बड़े प्रेम पूर्वक आपके विषय में पूछ-ताछ करती थी तथा मेरे आग्रह करने पर मुझे अपने विचार और अनुभव भी सुनाया करती थी। उन्हें यहाँ विस्तार पूर्वक लिखना सम्भव नहीं है।

कुछ दिनों पश्चात् यह परिवार अनूपशहर आकर रहने लगा। भगवती और उसके पिताजी ने यहीं व्यापार करना आरम्भ कर दिया। यहाँ मण्डी में इनकी आढ़त की दुकान है। एक बार मैं बीमार होकर अनूपशहर में रहा था। मुझे पैंतीस लंघन के बाद पथ्य दिया गया था। उस समय बूढ़ी माँ ने मेरी जो सेवा की थी उसे क्या मैं कभी भूल सकता हूँ। मुझे आठ दिन तक बड़े ही प्रेम से अद्भुत पथ्य खिलाया था। उसके पश्चात् मैं गवाँ चला गया।

श्रीमहाराजजी ने एक बार प्रसन्न होकर मैया से कहा कि वर माँग। तब मैया बोली, 'मैं तो केवल यही चाहती हूँ कि मरते समय मुझे आपके तथा अपने परिचित अन्य महात्माओं के दर्शन हो।' आपने कुछ और माँगने के लिए बार-बार आग्रह किया, तथापि आपको सर्वशक्तिमान् समझते हुए भी उसने और कोई लौकिक या अलौकिक वस्तु नहीं माँगी। आखिर जब यह अनूपशहर में मरणासन्न हुई तो आप तुरन्त वृन्दावन से आ गए और भगवानपुर से स्वामी शास्त्रानन्दजी चले आए। इनके
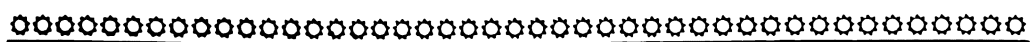
सिवा कुछ अन्य सन्त भी यहाँ उपस्थित हो गए। उस समय मैया मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई थी और आप सामने खड़े थे। इनके चारों ओर सब सन्त और भक्तजन कीर्तन कर रहे थे। आपने इस समय फिर पूछा कि क्या चाहती है। इस पर उसने कहा, 'आपकी कृपा से मेरे सामने आकाश में विमान खड़ा है। किन्तु मुझे फिर भी आपका विरह असह्य हो रहा है। तथापि इस जराजर्जरित शरीर को अब धराधाम में रखने की मेरी इच्छा नहीं है, क्योंकि अब इससे आप लोगों की सेवा नहीं होती। अत: आज्ञा दीजिए, अब मैं जाना चाहती हूँ।' यह कहकर वह 'हरि हरि बोल, बोल हरि बोल। मुकुन्द माधव गोविन्द बोल' ऐसा उच्चारण करती इस पार्थिव देह को छोड़कर दिव्य धाम में चली गयी।

इसके पश्चात् एक अद्‌भुत चमत्कार हुआ। उस समय रात्रि के नौ बजे थे। अनूपशहर के कुछ भक्तजन गंगातट पर कीर्तन कर रहे थे। उन्होंने अकस्मात् आकाश में दिव्य बाजों के साथ एक विमान जाता देखा। सब लोग चौकन्ने होकर उसे देखने लगे उसमें दिव्य देहधारिणी भगवती की माँ को देखकर वे लोग कीर्तन करते उसके घर आये और मैया के मृत देह को दण्डवत् प्रणाम करने लगे। उसी समय कुछ लोग दौड़कर बाग में गए और फूलों की गठरी बाँधकर ले आये। रात्रि में ही एक पुष्पक विमान बनाया गया और प्रात:काल प्राय: पाँच सौ भक्त बड़ी धूमधाम से कीर्तन करते मैया के शव को गङ्गा तट पर ले गए। श्रीमहाराजजी ने समस्त भक्तमण्डली के साथ उसकी चिता की सात परिक्रमाएँ करके दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीहरि और सन्तों की ऐसी अद्‌भुत कृपा देखकर भगवती और उसका सारा परिवार प्रेम से मूर्च्छित हो गया। भगवती ने माँ का दाह संस्कार किया और पीछे भण्डारे में भी अपनी शक्ति से अधिक व्यय किया। यह है साधु-सेवा का प्रत्यक्ष फल।

भगवती और सागर

भगवती इस संतसेविनी मैया का ही ज्येष्ठ पुत्र है, इसके छोटे भाई का नाम लक्ष्मण है तथा सागर इनका मोसेरा भाई है। आयु में सागर भगवती की अपेक्षा कुछ

बड़ा है, किन्तु अपनी कार्य कुशलता के कारण पहले भगवती का नाम लिया जाता है। सागर अपेक्षाकृत कुछ सीधा और भोला आदमी है।

इन दोनों भाइयों की बचपन से ही साधुसेवा में बड़ी लगन है। यद्यपि अपनी कुल परम्परा के अनुसार इनका गुरुभाव तो श्रीबंगालीबाबा और उनके पश्चात् स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी में रहा है, तथापि गंगातट के सभी सुप्रसिद्ध महात्माओं की ये समान-रूप से सेवा करते रहे हैं। इनका पूज्य श्रीउड़ियाबाबा में शिवजी का, श्रीमहाराजजी में विष्णु भगवान् का, स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी में ब्रह्माजी का भाव है। बाँध तथा अन्यान्य स्थानों के सभी उत्सवों में ये दोनों भाई जाते हैं और वहाँ इन्हें साधु सेवा का काम ही सौंपा जाता है। इन दोनों का परस्पर अत्यन्त अनुराग है। इनमें सागर का गाँव अनूपशहर से तीन कोश दूर सकोई है। इसने आरम्भ से ही विवाह नहीं किया। किन्तु इसकी बड़ी बहिन और तीन भानजे इसीके घर में रहते हैं, अतः उनकी देखरेख का भार तो इस पर रहता ही है।

ये दोनों भाई मानो इस दरबार के जय-विजय हैं। साधुओं की सेवा ये बड़े ही मनोयोग से करते हैं। इनसे सभी लोग बड़े प्रसन्न रहते हैं। किसीसे भी इनका किसी प्रकार का रागद्वेष या मनोमालिन्य नहीं रहता इसमें भगवती की पूजा करने में विशेष निष्ठा रही है। यह अपने गुरुदेव स्वामी शास्त्रानन्दजी की पूजा बड़े भाव से करता है। उस समय कीर्तन और स्तुति करते-करते पागल-सा हो जाता है। यदि संकोचवश वे कभी निषेध कर देते हैं तो यह 'गुरुदेव! गुरुदेव!' कहते हुए पागल हो जाता है और अन्न-जल त्याग देता है। तब उन्हें विवश होकर पूजा करानी ही पड़ती है। इसी प्रकार यह उड़ियाबाबाजी को भी चौकी पर बिठाकर उनका पुष्पों द्वारा शंकरजी का सा शृङ्गार करता है और रुद्राष्टक का पाठ 'ॐ नमः शिवाय' का कीर्तन करते-२ भावविभोर हो जाता है। कभी-कभी तो यह हमारे चरितनायक की भी पूजा किये बिना नहीं छोड़ता। यद्यपि इनका स्वभाव अत्यन्त सङ्कोची है, तो भी इसके हठी स्वभाव के कारण इन्हें इसकी पूजा स्वीकार करनी ही पड़ती है।

इन दोनों को अनेकों चमतकारपूर्ण अनुभव भी हुए हैं। किन्तु विस्तारभय से यहाँ उनका उल्लेख करना कठिन है। अब गृहस्थ के झंझटों में फँसे रहने के कारण भगवती का आना-जाना बहुत कम हो गया है, परन्तु फिर भी इसे अपने स्वार्थ और परमार्थ का सहारा निरन्तर इन चरणों में ही रहता है सागर तो अधिक से अधिक श्रीचरणों की सेवा में ही रहता है। इसकी प्रधान सेवा है मण्डप की सजावट करना; तथा रासलीला में सुव्यवस्था रखना इसे श्वास का रोग है। जब कभी उसका दौरा पड़ता है, यह मरणासन्न हो जाता है। श्रीमहाराजजी ने औषधोपचार तथा अन्यान्य साधनों से कई बार इसे मृत्यु के मुख से निकाला है। ये दोनों भाई महाराज के अन्तरङ्ग सलाहकार भी हैं। कभी-कभी तो ये उन्हें उपदेश भी कर देते हैं। एक बार इन्होंने उन्हें माधूकरी भिक्षा करते हुए गङ्गातट पर विचरने की सलाह दी थी।

भगवती की माता के विषय में तो पहले ही लिखा जा चुका है। किन्तु इसका तो सारा परिवार ही सात्त्विक है। इसके लड़के गङ्गाप्रसाद और श्यामसुन्दर बचपन से ही बड़े साधुसेवी हैं। इसकी तीन कन्याएँ हैं विद्यावती, चन्द्रवती और रूपवती ये तीनों ही बड़ी विलक्षण और भावराज्य में सन्तरण करनेवाली हैं। बाँध के उत्सवों में ये महीनों सत्सङ्ग एवं रासलीला का दर्शन करती रही हैं। अतः इन्होंने रास के बहुत से पद और हाव-भाव कटाक्ष सीख लिये हैं। बस घर के और अड़ोस-पड़ोस के कुछ बालकों को साथ लेकर ये कभी-कभी रासलीला का अनुकरण किया करती हैं उसमें इनके माता-पिता भी सम्मिलित हो जाते हैं। लीलानुकरण करते समय ये सामान्य-सी वेषभूषा भी बना लेती हैं, किन्तु उसमें प्रधानता भाव की रहती है। उस समय इनमें सचमुच कुछ भावावेश-सा हो जाता है। इनका ऐसा अद्भुत भाव देखकर इनके माता-पिता भावविभोर हो जाते हैं और आनन्द की एक बाढ़-सी आ जाती है।

इस प्रकार इन दोनों भाइयों का और इनमें से भगवती के परिवार का चरित्र बड़ा ही भावपूर्ण है। उसका कहाँ तक वर्णन किया जाय।

पण्डित हरियशजी

हरिदासपुरवाले पण्डित हरियशजी का उल्लेख पहले भी कई बार किया जा चुका है। ये वास्तव में अपने भक्त परिकर में बड़ा प्रमुख स्थान रखते हैं। पहले इनका गवाँ के बाबू हीरालालजी से विशेष प्रेम था। उन्हींसे इन्होंने श्रीमहाराजजी की प्रशंसा सुनी। सुनकर ही इनकी श्रीचरणों में भगवत् बुद्धि हो गयी और इसकी पुष्टि के लिये इन्होंने एक दिन मन ही मन यह सङ्कल्प किया कि यदि महाराजजी वास्तव में अन्तर्यामी हैं तो इसी समय मुझे दर्शन दें और मुझसे माँगकर भोजन करें। बस, अकस्मात् आप इनके सामने आकर खड़े हो गये और बोले, 'पण्डितजी! मुझे बड़ी भूख लगी है, जल्दी से कुछ खाने को दो।' आपकी ऐसी अद्भुत करुणा देखकर पण्डितजी मुग्ध हो गये और उसी समय इन्होंने श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया।

अब तो पण्डितजी के साथ आपकी अनेकों लीलाएँ होने लगीं। जंगल में नित्य ही इनके साथ खेल-कूद होता। आप होशियारपुर, वृन्दावन अथवा किसी भी स्थान में हों, जहाँ पण्डितजी ने स्मरण किया कि आ पहुँचे; भोजन किया, खेल-कूद किया और चल दिये। भोजन करने में बड़ी अटपटी लीलाएँ होती थीं। कभी-कभी तो आठ-दस आदमियों का भोजन कर जाते थे और बड़ा ही हठ करते थे। इस प्रकार महाराजजी के साथ इनका बड़ा विचित्र सम्बन्ध रहा है और वह जब से हुआ है तब से बराबर बढ़ता ही गया है। यहाँ तक कि प्रथम बार मिलने पर जब मैं शिवपुरी चला गया था तो आपने मुझे लिखे हुए दो-तीन पत्रों में पण्डितजी की चर्चा तथा उनके प्रेम की प्रशंसा की थी।

पण्डितजी कभी-कभी महाराजजी की भक्तमण्डली को भी भोजन कराया करते हैं। उस समय आप अत्यन्त सात्त्विक भोजन बनवाते हैं तथा गाँव के अनेकों स्त्री-पुरुष और बालकों के साथ नँगे पाँव भोजन के पात्रों को सिर पर रखे बड़े प्रेम से कीर्तन करते श्रीमहाराजजी की कुटी पर आते हैं। वहाँ स्त्रियाँ तो एक ओर बैठकर कीर्तन करती रहती हैं और श्रीमहाराजजी ग्वालमण्डली की तरह सब भक्तों को बिठाकर अपने हाथ से भोजन परोसते हैं। उस समय आप तरह-तरह से विनोद भी
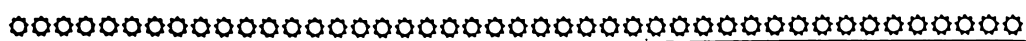
करते जाते हैं। कभी कहते हैं, 'भाइयो! यह भोजन नहीं, साक्षात् दिव्य प्रेम है। इसे पाने से हम सब प्रेममय हो जायँगे।' कभी कहने लगते हैं, 'न जाने पण्डितजी ने इसमें क्या जादू भर दिया कि खाते-खाते एक नशा-सा हो जाता है और रुचि भरती ही नहीं है।' कभी कहते हैं, 'देखा, भाई! यह साक्षात् श्रीहरि का अधरामृत है, इसे पण्डितजी दिव्य धाम से लाये हैं। इसे जो जितना अधिक खायगा उसे उतना ही अधिक भगवत्प्रेम प्राप्त होगा।' इस प्रकार हम लोग होड़ा-होड़ी खूब खाते, फिर भी शरीर खूब हल्का रहता। उस समय आप श्रीश्यामसुन्दर की तरह अनेकों बालोचित चञ्चलताएँ भी करते थे। उन्हें क्या लिखें हृदय जानता है। ठीक है—

अगम प्रेम को पन्थ, जहाँ नेम की गम नहीं।
यह भाषत सद्ग्रन्थ, जहाँ नेम तहँ प्रेम नहिं॥

इस प्रकार पण्डितजी का प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है। ये हमारे समाज में कीर्तन और उत्सवों के तो आचार्य हैं। श्रीमहाराजजी की खुल्लम-खुल्ला पूजा भी पण्डित छेदालाल और ये ही कर पाते हैं। उस समय ये सर्वथा भावविभोर हो जाते हैं। यदि कभी महाराजजी इन्हें पूजा करने से निषेध कर देते हैं तो ये रूँठकर अनशन कर डालते हैं। तब तो उल्टा इन्हें मनाना पड़ता है; और ये खूब रोते हैं। इस प्रकार इनका स्वभाव बड़ा जिद्दी है। मैं यद्यपि इनके पूजा के आग्रह का समर्थक नहीं रहा, तो भी उस समय इनका जो भाव देखने में आता है वह मुझे भी बहुत अच्छा लगता है। श्रीमहाराजजी में इनकी अनन्य निष्ठा है। उनके सिवा साक्षात् चतुर्भुज विष्णु आ जायँ तो भी ये उनकी परवाह नहीं करेंगे। ये ही सङ्कीर्तन मन्दिर में ठाकुरजी की आरती भी करते हैं। किन्तु उस समय भी ठाकुरजी की परवाह न करके श्रीमहाराजजी की ओर ही आरती करने लगते हैं। यदि महाराजजी के साथ अन्य सन्त बैठे हों तो भी ये तो पहले महाराजजी की पूजा करते हैं। यह बात हमारे सङ्कोची सरकार को बहुत अखरती है, और वे इन्हें डाँट भी देते हैं। तब ये रूँठकर बहुत दिनों तक आपके पास नहीं आते। इस तरह पूजा के विषय में इनका झगड़ा सदा चलता ही रहता है। परन्तु ये अपनी हठ के इतने पक्के हैं कि कभी टस से मस नहीं होते।

उत्सवों के समय ये बड़ा काम करते हैं। सत्तर वर्ष की आयु में भी इनमें युवकों का-सा उत्साह है। अखण्ड कीर्तन का सारा प्रबन्ध इन्हीं के आधीन रहता है। इनकी धर्मपत्नी भी अच्छी पढ़ी-लिखी और भक्तिमती महिला हैं। उनके चार पुत्र और चार कन्याएँ हैं। वे समय-समय पर दूसरे बालकों के साथ मिल कर सुन्दर-सुन्दर पद सुनाया करते हैं। इस प्रकार इनका सारा परिवार ही परम सात्त्विक और भगवत्प्रेम सम्पन्न है। इनकी एक सेवा बड़ी विलक्षण है। अपनी भक्तपरिकर की लीलाओं में ये नाट्य द्वारा सब सन्तों को खूब हँसाते हैं। इस कला में ये बड़े कुशल हैं। जिन्होंने लीलाएँ देखी है वे ही जानते हैं। कभी-२ ये अपने और गाँव के बालकों को इकट्ठा करके रामलीला या गौरलीलाएँ भी किया करते हैं। इनकी लीलाएँ बड़ी ही भावपूर्ण होती हैं। इस प्रकार इनका जीवन अत्यन्त भावमय है। आप इस भक्तपरिकर के एक अग्रगण्य व्यक्ति हैं।

पण्डित रामलालजी

ये बाँध से चार कोश पूर्व बहट के रहने वाले हैं। श्रीमहाराजजी से इनका सम्पर्क बाँध बनने से पहले ही हो गया था। ये बड़े ही विचित्र ढङ्ग के भक्त हैं। इनके चरित्र से तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये श्रीमहाराजजी के एक जन्मजन्मान्तर के अन्तरङ्ग पार्षद हैं। ये विशेष पढ़े लिखे भी नहीं है। व्याकरण का ज्ञान तो सम्भवत: नहीं के ही बराबर है, किन्तु कुछ ज्योतिष अवश्य पढ़ी है। सामान्यरूप से जन्म पत्र और वर्षफल भी बना लेते हैं। तथापि प्रश्नों का फल कहने में तो ये बड़े ही कुशल हैं। इन पर अपनी इष्टदेवी श्रीजगदम्बा की ऐसी कृपा है कि उसके बल से ये प्रश्नफल बड़े ही चमत्कारपूर्ण कहते हैं। इसी से इनकी ख्याति बड़े भारी ज्योतिषयों की तरह हो गयी है। कभी-कभी तो हमारे कौतुकी सरकार भी इनसे प्रश्न किया करते हैं। जिस समय ये श्रीमहाराजजी की शरण में आये इनकी स्थिति बहुत सामान्य थी। पुरोहिती और कृषिकर्म से इनका सामान्य भोजन-वस्त्र का काम चल जाता था। किन्तु पीछे आपकी कृपा से इन्होंने विलक्षण उन्नति की। जगह-जगह के हाकिम तथा गवाँ, भिरावटी आदि गाँवों के रईसों की सवारियाँ इनके द्वार पर खड़ी रहती थीं। इससे

इनकी आय भी अच्छी होने लगी। इनके पास दस-बीस हजार का ठिकाना हो गया। और आस-पास के जमीदारों से इन्हें कुछ माफी जमीन भी मिल गयी।

वास्तव में इनमें कोई विशेष योग्यता नहीं है। यह सब तो सद्‌गुरु कृपा का ही अचिन्त्य प्रभाव था। हम लोग तो इन्हें पागल कहा करते हैं तथा श्रीमहाराजजी का जमूड़ा, खिलौना या मनोरञ्जन का साधन समझते हैं। ये जब घर में रहते हैं तो पूरे दुनियादार, अर्थलोलुप और धनी-मानियों के चापलूसों की तरह हो जाते हैं; हर समय आजीविका के लिये विसौली इस्लाम नगर, गुन्नौर थाना और रजपुरा आदि गाँवों में ही घूमते रहते हैं। किन्तु बाँध पर अथवा कहीं अन्यत्र श्रीमहाराजजी के पास जाते हैं तो आहार और निद्रा का भी होश नहीं रहता, शरीर की भी सुध-बुध भूल जाते हैं और निरनतर उन्मतत की तरह मस्त रहते हैं।

उत्सवों में मध्याह्नोत्तर कथा एवं सत्सङ्ग के समय कुछ गायन का भी प्रोग्राम रहता है। उस समय कभी-कभी रामलालजी को भी पद गान का अवसर दिया जाता है। बस, फिर क्या है ? जैसे ही गान आरम्भ करने से पूर्व इन्होंने श्रीचरणों में प्रणाम किया, कि पागल हो गए। उस समय उनके शरीर में कोई दिव्य आवेश-सा हो जाता है। फिर जो स्फुरण होता है वही गाना आरम्भ कर देते हैं कभी किसी श्लोक को ही बड़ी तान-टान के साथ उच्चारण करने लगते हैं तथा कभी बड़ी अद्‌भुत आलापचारी करते हैं। पद गाते हुए यदि कभी करुणरस का उद्रेक हो गया हो तो गद्‌गद् कण्ठ से गाते-गाते नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है, शरीर केले के वृक्ष की तरह काँपने लगता है और ये बिजली की तरह कूद कर नृत्य करने लगते हैं उस समय श्रीमहाराजजी को लक्ष्य बनाकर इनका बड़ा ही विचित्र नृत्य होता है। इन्हें देखकर रीमहाराजजी तथा अन्य उपस्थित सन्त हँसने लगते हैं। हमारे सीताराम बाबा तो इनके भावोद्दीपन में ही सहायक हो जाते हैं। भाव की जाग्रति होने पर इन्हें सबसे पहले अपना कुरता फाड़ने की बात सूझती है। जब सीताराम बाबा कह देते हैं, 'बस, बस, पण्डितजी ! यह क्या करते हो ?' और जब ये रोने लगते हैं तो वे कहते हैं, 'बस, बस, पण्डितजी ! अभी रोओ मत, अभी तो कुछ नाच गा लो।' उनकी ऐसी

बातों से इनका भाव और भी बढ़ जाता है तथा उपस्थित महानुभावों को हँसी आ जाती है।

इनके इस प्रकार के भावपूर्ण नृत्य और गाने से सभी लोग मुग्ध हो जाते हैं। उस समय जब जैसा भाव आ जाता है उसी के ये तद्रूप हो जाते हैं। कभी-कभी कुछ व्याख्यान-सा भी आरम्भ कर देते हैं। उसका सारांश प्राय: यही होता है कि श्रीमहाराजजी तो राम कृष्ण अथवा गौरांगावतार हैं, श्रीबाबा साक्षात् शङ्करजी हैं और माँ आनन्दमयी स्वयं जगदम्बा हैं। तथा हम सब इनके नित्यपरिकर हैं। कभी-कभी तो इनका पागलपन इतना बढ़ जाता है कि ये रोते-रोते प्राय: मूर्च्छित हो जाते हैं और फिर सावधान होने पर गङ्गा तट या जंगल में भाग जाते हैं। वहाँ एकान्त में खूब रोते हैं अथवा समाधि लगाकर बैठ जाते हैं। फिर हममें से ही कोई जाकर इन्हें सावधान करता है अथवा प्रोग्राम समाप्त होने पर स्वयं श्रीमहाराजजी इन्हें सम्भालते हैं तथा वात्सल्यमयी जननी की तरह अपने पास बिठाकर ही इन्हें भोजन कराते हैं। उस समय भी इन्हें प्राय: दिव्य आवेश हो जाता है। और ये किसी लाड़िले बालक की तरह आपसे खिलवाड़ करने लगते हैं। कभी अत्यन्त फूट-फूटकर रोते हैं तो कभी जोर-जोर से खिलखिला कर हँसने लगते हैं कभी अन्तर्यामी और सर्वज्ञ की तरह बड़े गुप्त तत्त्वों का निरूपण करने लगते हैं और कभी पढ़े न होने पर भी अँग्रेजी या बंगला में बोलने लगते हैं। इनकी इस प्रकार की विचित्र अवस्थाएँ प्राय: होती रहती हैं। कभी-कभी ये भगवल्लीला या भक्त लीलाओं में नाट्य भी करते हैं। उस समय इनका अभिनय बड़ा ही कलापूर्ण होता है। उसे देखकर जनता मुग्ध हो जाती है।

ये मुझसे कहा करते हैं कि जब मैं घर से चलता हूँ तो मेरे अन्दर एक भूत का-सा आवेश हो जाता है। यहाँ आने पर श्रीमहाराजजी की असीम कृपा से आनन्द में इतना डूब जाता हूँ कि निरन्तर तरंग पर तरंग आती रहती हैं। उनसे कभी-कभी तो इतना घबराता हूँ कि उस आनन्द को धारण करने में असमर्थ हो जाता हूँ और मुझे अपने स्त्री-बच्चों का स्मरण हो जाता है। अत: कभी-कभी ये श्रीमहाराजजी से बिना कहे ही घर को भाग जाते हैं और फिर महीनों तक आपके पास नहीं आते। इनकी बीमारी की हालत में कई बार श्रीमहाराजजी इनके घर गये हैं और इन्हें जीवनदान भी दिया है।

इनकी धर्मपत्नी बड़ी सुयोग्य और सुशीला हैं। वह इनकी परिचर्या बहुत सावधानी से करती हैं। इनके दो पुत्र और तीन कन्याएँ हैं। एक कन्या के विवाह में समस्त भक्तपरिकर के सहित श्रीमहाराजजी पधारे थे। उस समय चौबीस घण्टे के अखण्ड कीर्तन और समष्टिकीर्तन पश्चात् अब रामलालजी का पद हुआ। तो ये पागल हो गये और इन्होंने अपने सब कपड़े फाड़ डाले। बराती लोग भी यह तमाशा देखते रहे। लड़की का सम्बन्ध बड़ें ही योग्य और सम्पन्न कुल में हुआ था। परन्तु इन्हें तो अपने शरीर की सुधि नहीं थी। ये तो पागल की तरह श्रीमहाराजजी के परिकर और उत्सव की सँभाल में ही लगे रहे। विवाह का सारा प्रबन्ध गवाँ के बड़ी गढ़ीवाले कुँवर वीरेन्द्रसिंह और उनके पिता चौधरी साहिबसिंहजी ने ही किया। उनके अतिरिक्त भिरावटी आदि कई गाँवों के रईसों ने खूब सहयोग दिया। इससे वह विवाह भी बड़ी धूमधाम से हुआ। भोजन के उपरान्त श्रीमहाराजजी हम सबके साथ बाँध पर चले आये।

इस प्रकार श्रीमहाराजजी की कृपा से इनके स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही खूब सधे हैं। ये स्वभाव से ही बड़े निष्काम हैं। इन्होंने प्रत्यक्ष में श्रीमहाराजजी से कभी कुछ नहीं लिया, प्रत्युत उत्सवों के समय ये सौ-सौ रुपये चन्दे में देते हैं। बाँध पर तो ये भोजन करने में भी सङ्कोच करते हैं। जब इनके बच्चे बाँध पर आते हैं तो अपना भोजन साथ लाते हैं। मुझसे इनका विशेष प्रेम हैं अतः विशेष आग्रह करने पर कभी मेरी कुटी पर तो भोजन स्वीकार कर लेते हैं।

जिनके जीवन में भाव की इतनी प्रधानता है, उनके अद्भुत चमत्कार और अनुभवों का क्या कहना है। किन्तु यहाँ उन्हें लिखने का अवकाश नहीं है, अतः अब इनका प्रसङ्ग समाप्त करता हूँ।

पण्डित सोहनलाल

ये भी बहट के ही रहने वाले हैं। इन्हें सामान्य संस्कृत एवं हिन्दी का अभ्यास है तथा बचपन से ही गाने का शौक है। ये उत्सवों के समय भिरावटी के रईस नरेन्द्रसिंह

और प्रसन्नकुमार के साथ आया करते थे। जिस समय ये भावपूर्ण हृदयसे नेत्रों में प्रेमाश्रु भर गद्गद् कण्ठ होकर गाते थे सब लोग मुग्ध हो जाते थे धीरे-धीरे श्रीमहाराजजी की इन पर कृपा हुई और इनका प्रेम भी श्रीचरणों में बढ़ने लगा। इन्हें महीनों तक आपकी सन्निधि में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और कई बार इन्होंने गा-गाकर श्रीरामचरितमान का नवाह्नपारायण कराया है।

इनकी आर्थिक स्थिति बहुत सामान्य है। किन्तु श्रीमहाराजजी से ये कुछ भी स्वीकार नहीं करते। वे देते हैं तो ये रो पड़ते हैं। भिरावटी में ये प्रतिवर्ष रामलीला कराते रहे हैं। उसमें ये बड़े भाव से तरह-तरह की ध्वनियों में श्रीरामायणजी गाया करते हैं। उसे सुनकर सभी जनता मुग्ध हो जाती है। बाँघ पर भी इन्होंने रामलीला करायी थी।

जिस समय श्रीमहाराजजी माँ आनन्दमयी के साथ बंगाल गये थे उस समय ये भी आपके साथ थे। वहाँ इन्होंने अनेकों बार पद गाकर सबको सुख दिया। ये सचमुच हमारे महाराजजी के गायक समाज के एक रत्न हैं।

खूबीराम

श्रीभगवान् के भक्त भी गुणों के भेद से तीन प्रकार के होते हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। खूबीरामजी उनमें तीसरी कोटि के भक्त हैं। इनकी चर्चा पहले कई प्रसङ्गों में हो चुकी है। ये बड़े ही कठोर स्वभाव के, लड़ाके, स्पष्टवक्ता और प्रभावशाली व्यक्ति हैं। इनके विषय में यह पता लगाना कि इनका वास्तव में क्या विचार है, असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। पहले तो जब कीर्तन होता था तो उसकी व्यवस्था ये ही करते थे। उस समय यदि कोई ऐसी चेष्टा करता जो कीर्तन में विघ्नकारी होती तो ये उसे डाँट देते थे। और इतने पर भी न मानता तो सबके सामने कान पकड़कर कीर्तन मण्डल से बाहर निकाल देते थे। कीर्तन में इन्हें शिव का भाव हुआ करता है। उस समय ये ताण्डव नृत्य करने लगते हैं और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि ये शिवजी के गण ही हैं। ये भुजा उठाकर डमरू बजाने की-सी चेष्टा करने लगते हैं
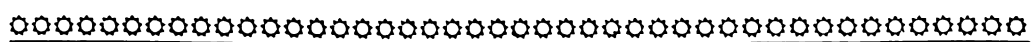
और मुख से बार-बार 'बं बं' शब्द उच्चारण करने लगते हैं। इनका मुँह लाल हो जाता है और ये छलाँगें मारते हुए श्रीमहाराजजी की परिक्रमा करने लगते हैं। कभी-कभी भावविशेष में केवल खाली हाथों से आरती-सी उतारते हैं और दण्डवत् करते हैं।

पहले तो ठीक कीर्तन होने की यही पहचान थी कि यदि खूबीराम को भाव आ गया तब तो कीर्तन ठीक हुआ, नहीं तो नहीं। यदि श्रीमहाराजजी के मन में तनिक भी कसर होती तो फिर खूबीराम को भाव आना असम्भव था। अब कीर्तन बन्द होने पर महाराजजी कहते कि आज तो कीर्तन में आनन्द नहीं आया। फिर कोई पूछता कि क्यों, क्या बात है? तो महाराजजी कहते, 'यह बात तो खूबीराम बतायेगा।' तब खूबीराम झट से कह देता कि आज अमुक पुरुष के मन में यह सङ्कल्प है, अथवा अमुक की यह गलती है। उस समय प्रायः यही देखा जाता था कि वह व्यक्ति झट अपना अपराध स्वीकार कर लेता था। तब उसे यही दण्ड दिया जाता था कि सबको प्रणाम करे और अपराध क्षमा करावे। और यदि कुछ सम्पन्न हुआ तो इतना प्रसाद बाँटे।

जब किसी कारणवश कीर्तन नहीं बनता तो श्रीमहाराजजी कहा करते हैं कि 'भाई! यह कीर्तन तो बड़े रस की बात है। यह तो हृदय का अमूल्य धन है। जब तक हमारे सबके मन एक नहीं होंगे तब तक कीर्तन नहीं बन सकता। कीर्तन में तो यह पक्की शर्त है। यदि एक मन, एक प्राण' एक भाव, एक इष्ट, एक नाम, एक स्वर, एक ताल और हृदय में भगवत्प्राप्ति की एक-सी तड़प वाले पाँच व्यक्ति भी मिलकर कोई सङ्कल्प करे तो वह तत्काल सिद्ध हो जायगा ऐसी अवस्था में कोई भी साधन करो सफल ही होगा। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि 'पाँच पंच तहाँ परमेश्वर' की कहावत बिलकुल सत्य है। हमारा सङ्कल्प एक होने से ईश्वर की पूरी शक्ति हमारे बीच आ जायगी। हम उसे जाने अथवा न जानें। जब हमारे मन में कुछ भी फर्क होगा तो हमें उतना ही फर्क अपने मन में, तन में, समाज में और सारे जगत् में दीख पड़ेगा। इसलिए हम लोगों को बहुत सावधान रहना चाहिये। इसमें सबसे बड़ा विघ्न स्वातन्त्र्य है। हमारा कोई भी सङ्कल्प, कोई भी चेष्टा स्वतन्त्र नहीं होनी चाहिये जो

कुछ भी हो मिलकर हो। यदि तुम्हारे सबके सङ्कल्प एक होंगे तो तुम जो भी चाहोगे तत्काल सिद्ध हो जायगा। इस विषय में कभी-कभी आप यह फारसी का शैर कहा करते हैं—

'दुदिल यक शबद अम्बदन कोहरा। परा गन्दगी आर दम्बोहरा॥'

आपका ऐसा वक्तव्य सुनकर जब चित्त ठीक हो जाता है तब फिर कीर्तन होता है और सभी आनन्द में विभोर हो जाते हैं।

खूबीराम को कभी-कभी कोई उग्र आवेश होता है। उस समय वे प्रायः भविष्य में होने वाली कई बातें कह डालते हैं। कभी-कभी तो वे बड़े दुःसाहस भी कर डालते हैं। जब कोई विशेष उत्सव का दिन होता तो श्रीमहाराजजी इस भावना से कि यह भगवान् का आसन है कुछ पुष्प लेकर अपने हाथ से रचना कर दिया करते हैं, उस समय कभी तो खूबीराम बैठे रहते हैं और कभी उस रचना को हाथों से मिटा देते हैं तथा कोई-कोई ऊट-पटांग शब्द भी कह डालते हैं। उन शब्दों का आशय प्रायः यही रहता है कि जब आप साक्षात् ईश्वर ही हमारे सामने उपस्थित हैं तो हम और ईश्वर को क्या मानें। ऐसे अवसर पर उनका भाव तो बहुत गम्भीर होता है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उनकी वे चेष्टाएँ खटकती हैं और कुछ अमंगल-सा प्रतीत होता है। उनके ऐसे विचित्र व्यवहारों का यथा प्रसंग उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार खूबीराम जी बड़े विचित्र भक्त हैं, इनकी महिमा का कुछ पता नहीं चलता। यों तो ये बड़े कृपण हैं, किन्तु श्रीमहाराजजी की आज्ञा होने पर ये कभी किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं करते। मेरा कहना भी ये प्रायः नहीं टालते। इनकी उल्टी चाल से डरकर हम लोग इनसे बड़ी युक्ति से बात किया करते हैं हृदय से तो इनकी श्रीमहाराजजी में पूर्ण श्रद्धा है। किन्तु प्रेम के अनुरोध से ही कभी-कभी इनका व्यवहार बड़ा तीव्र हो जाता है। कभी-कभी ये रूँठ जाते हैं। उस समय श्रीमहाराजजी इन्हें मनाते हैं। इन्हें किसी का डर नहीं है। यहाँ तक कि महाराजजी से भी ये डरते नहीं हैं। कभी-कभी श्रीमहाराजजी लोगों का आना-जाना बन्द कर देते हैं। उस समय
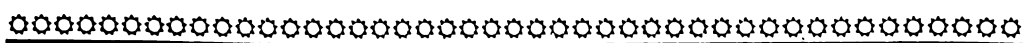
चाहे कैसा ही पहरा लगा हो, किन्तु यदि खूबीराम महाराजजी के पास जाना चाहें तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता।

इस प्रकार ये बड़े ही रहस्यपूर्ण व्यक्ति हैं। सच है, जिस प्रकार श्रीभगवान् का भेद नहीं खुलता उसी प्रकार उनके भक्तों का भेद जानना भी कठिन है।

खञ्जनकोरी

सम्भवत: सम्वत् १९७२ की बात है, श्रीमहाराजजी शिवपुरी पधारे थे। उस समय रमई जुलाहे का पुत्र खञ्जन प्राय: चौदह साल का बालक था। वह मदरसे में कुछ हिन्दी सीखने लगा था तभी से श्रीमहाराजजी से मिलने की इसकी प्रबल इच्छा थी। किन्तु जाति का जुलाहा होने के कारण द्विजातियों के समाज में आने की इसकी हिम्मत नहीं होती थी। अत: सम्वत् १९७६ के लगभग इसे अपने घर में ही दस-बीस समवयस्क बालकों के साथ नाम कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। शनै: शनै: इसका कीर्तन दल बढ़ गया। ये लोग अपनी चौपाल पर ढोलक, खञ्जरी, मजीरा और सारङ्गी आदि बाजों के साथ कीर्तन करते थे। एक दिन इनके कीर्तन की आवाज मन्दिर में मेरे कानों में पड़ी। मैंने पूछा, 'ये कौन लोग कीर्तन कर रहे हैं?' तब किसी ने कहा, 'यह कबीर पार्टी का कीर्तन है।'

बस एक दिन मैंने उस पार्टी को बुलाया। वे बेचारे बड़े सङ्कोच से मन्दिर में आये और बड़ी धूम-धाम से कीर्तन किया। तब मैंने उन लोगों को आश्वासन दिया और कहा, 'भाई! भगवान् तो दीनबन्धु और पतित पावन हैं, वे जाति-पाति कुछ नहीं देखते। 'हरि को भजे जो हरि का होई। जाति-पाँति पूछै न कोई।' अत: आज से तुम दोनों समय हमारे कीर्तन में आया करो बस, वे नियम पूर्वक दोनों समय बड़े उत्साह से हमारे कीर्तन में सम्मिलित होने लगे।'

खञ्जन शरीर से तो पतला-दुबला है, परन्तु बड़ा ही संयमी शान्त, जितेन्द्रिय, तितिक्षु, सत्यवादी और न्यायप्रिय है। वह अपने समय का पूरा सदुपयोग करता है, एक मिनट भी व्यर्थ नहीं खोता। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी वह ब्रह्मचर्य
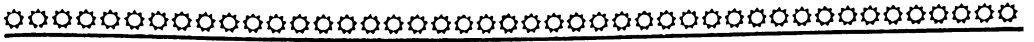
का पालन करता है तथा कभी क्रोध नहीं करता। इन दिव्य-गुणों के कारण वह अपनी जाति का सरपंच बन गया है। मेरी दृष्टि में तो यह बहुत ही अच्छा साधक है।

एक बार सम्वत् १९८८ में श्रीमहाराजजी शिवपुरी पधारे। उस समय अपने भक्तपरिकर के साथ आप नित्यप्रति एक-एक घर में जाकर कीर्तन किया करते थे। एक दिन खञ्जन के भी मन में आयाकि एक बार श्रीमहाराजजी मेरे घर भी पधारें। परन्तु यह सोचकर कि मैं तो नीच जाति का हूँ, मेरे घर महाराजजी क्यों पधारेंगे, वह सङ्कोच कर गया। आखिर जब यह सङ्कल्प उसके दबाये न दबा तो उसने अपना विचार पण्डित रामप्रसादजी से प्रकट किया। वे बोले, 'भाई! श्रीमहाराजजी की दृष्टि में सब समान हैं, वे तो पतित पावन हैं। तुम अवश्य उनके चरणों में अपनी प्रार्थना रखो।'

तब उसने टूटे-फूटे शब्दों में एक प्रार्थना पत्र लिखा और एकान्त में प्रणाम करके आगे रख दिया। आपने वह पत्र पढ़ा और कीर्तन के समय सब लोगों को उसका भाव बताकर कहा कि मेरे विचार से तो खञ्जन के घर अवश्य कीर्तन होना चाहिये यदि सामाजिक दृष्टि से इसके यहाँ जाने में कोई आपत्ति भी हो तो भी भगवन्नाम लेने के लिये जाने में तो कोई हर्जा नहीं है। इस पर अधिकांश ब्राह्मणों ने तो स्वीकार कर लिया वैश्य लोग कुछ असहमत से रहे। तथापि श्रीमहाराजजी के सामने स्पष्टतया मना भी नहीं कर सके। आखिर, दूसरे दिन आपके घर कीर्तन करने का निश्चय हो गया।

यह सुनते ही सारे कोरियों में प्रेम और उत्साह की बाढ़-सी आ गयी। वे स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सभी सब काम छोड़कर उत्सव की तैयारी में लग गये। उन्होंने अपने सारे मुहल्ले की गलियों तथा मन्दिर तक के रास्ते की खूब सफाई करके छिड़काव कर दिया तथा घरों को भी लीप-पोत कर स्वच्छ बना दिया। अपने मुहल्ले की गलियों में तीन-चार जगह केलों के दरवाजे बना कर रङ्ग-बिरंगे कागज और कपड़े की झण्डियाँ लगा दीं तथा आम के पत्तों का बन्दनवारें बाँध दीं। जगह-जगह कलश स्थापित किये और अपने घरों से साफ कपड़े निकालकर पाँवड़े बिछा दिये। इस प्रकार
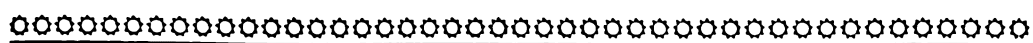
सारी तैयारी करके स्वयं भी सबने स्नान किया और धुले हुए स्वच्छ वस्त्र पहनकर खञ्जरी, मजीरा, और ढोलक आदि बाजों के साथ कीर्तन करते मन्दिर पर श्रीमहाराजजी को भी लेने के लिये आये। उस समय वे लोग भाव में विभोर हो बड़ी ऊँची ध्वनि से 'रघुपति राघव राजाराम पतितपावन सीताराम' का कीर्तन करते हुए उन्मत्त से हो रहे थे।

आज खञ्जन के आनन्द का कोई पारावार नहीं था। वह अत्यन्त शान्त और गम्भीर प्रकृति का व्यक्ति होने पर भी आज प्रेम से पागल हो रहा था। आज उसकी सचमुच शबरी की सी ही अवस्था हो रही थी। उसके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी और कभी-कभी तो वह श्रीमहाराजजी के सामने सड़क पर लोट-पोट हो जाता था। इधर, हमारे कौतुकी सरकार भी आनन्द में विभोर होकर त्रिभङ्ग गति से घण्टा बजाते हुए मानो नृत्य कर रहे थे। तथा भक्तजन भी भगवान् की पतितपावनता का विचार करके प्रेमोन्मत्त हो रहे थे। उस समय तो सभी को जाति-पाँति का विचार बिसर गया और दो-चार धर्मभीरु वैश्यों को छोड़कर सभी उस कीर्तन में सम्मिलित हो गये। इस प्रकार जब यह कीर्तन-मण्डल उनके मुहल्लों में पहुँचा तब तो बड़ा ही विचित्र दृश्य उपस्थित हुआ। उनका मुहल्ला मानो साक्षात् नवद्वीप ही बन गया। श्रीमहाराजजी के सम्पूर्ण शरीर से तेज निकलने लगा और कीर्तन इतना ऊँचा उठा कि सारा आकाश गूँज उठा। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो श्रीगौराँगदेव के सभी पार्षद तथा देवता और गन्धर्व भी कीर्तन में सम्मिलित हो गये हैं। आनन्द की अद्भुत तरंगें-सी उठने लगीं और प्रायः सभी दर्शक उन्मत्त हो गये।

'नृत्यन्ति देवतास्तत्र मुदाऽन्येषामलक्षितः।
यत्र संगीयते भक्तैर्हरेर्नामैव केवलम्॥'

बस, उस समय तो नाम-नरेश ने अपना प्रेम-राज्य स्थापित करके अपनी पतितपावनता का परिचय दे दिया। ऐसा दिव्य कीर्तन सम्भवतः आजतक शिवपुरी में नहीं हुआ।

'यस्मिन् देशे कुलाचारो धर्माचारस्तु नास्ति वै।
तथापि धन्यस्तद्देशो नामसङ्कीर्तनाद्धरेः॥
तत्र तीर्थान्यशेषाणि क्षेत्राणि सकलानि च।
प्रेम्णा प्रगीयते यत्र हरेर्नामैव केवलम्॥'

अस्तु। जिस समय पाँवड़ों पर कीर्तनानन्द की वर्षा करके सब दर्शकों को आनन्दविभोर करती यह कीर्तनमण्डली खञ्जन के आँगन में पहुँची तो उस अकिञ्चन की तैयारी और सजावट देखकर बस्ती के बड़े से बड़े आदमी भी दंग रह गये। आज खंजन का घर साक्षात् श्रीवास का आँगन बन गया था। जिस समय श्रीमहाराजजी बीच में खड़े हुए और सब भक्तों ने चारों ओर मण्डल बनाया। उस समय की अद्भुत शोभा का मैं क्या वर्णन करूँ। खञ्जन ने अपने को बहुत सम्भाला, किन्तु वह तो अकस्मात् मूर्च्छित होकर साष्टांग दण्डवत् करते हुए श्रीमहाराजजी के चरणों पर गिर गया। तब महाराजजी ने स्वयं उठाकर आलिंगन किया। उस समय का दृश्य भी अजीब था। ऐसा प्रतीत होता था मानो निषादराज से श्री रघुनाथजी भेंटकर रहे हैं; अथवा 'जन्म दरिद्र मनहुँ निधि पाई।'

बस, श्रीमहाराजजी का स्पर्श होते ही खञ्जन को चेत हुआ उस समय जो दो-चार वैश्यभक्त अभी तक नहीं आये थे वे भी दौड़कर कीर्तन में सम्मिलित हो गये। अब सब भक्तों ने मण्डलाकार होकर जैसे ही ओंकार का उच्चारण किया कि ऐसा मालूम हुआ मानो साक्षात् दिव्य वंशी बज उठी। फिर 'राम' शब्द का उच्चारण करते ही सब आनन्द में विभोर हो गये, इसके पश्चात् 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्दन। हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द' इस ध्वनि का कीर्तन आरम्भ हुआ। बस, फिर क्या पूछना था? एक बार ही प्रेमानन्द की लूट सी मच गयी। अनेकों भक्त रो रहे हैं तो अनेकों हँस रहे हैं। इसी प्रकार कोई काँप रहे हैं तो किन्हीं को श्रीमहाराजजी के दिव्य मंगल विग्रह में अनेकों अद्भुत रूपों के दर्शन हो रहे हैं। इस प्रकार बड़े ही आनन्द और उल्लास से वह कीर्तन हुआ। उसमें सभी भक्त प्रेमआनन्द से छककर उन्मत्त हो गये।
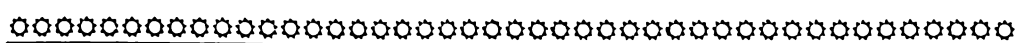
समष्टि कीर्तन समाप्त होने पर सब भक्त यथास्थान बैठ गये और राधेश्याम आदि ने पदगान किया। गायक लोग गाते-२ विह्वल हो गये और सुननेवाले भी एक अपूर्व आनन्द समुद्र में उछलने-डूबने लगे। इसके पश्चात् श्रीमहाराजजी के आगे बताशों का प्रसाद रखा गया। और दिन तो हम लोग प्रसाद बाँटते थे, किन्तु आज हमारे सरकार ने स्वयं ही अपने हाथों से बाँटा। और बाँटते-बाँटते खूब हँस-हँस कर विनोद करते हुए बोले, 'भाई! यह खञ्जन का प्रसाद सामान्य नहीं है। यह तो साक्षात् दिव्यधाम से ही प्रकट हुआ है। चिन्मय प्रसाद है। इस प्रसाद को जो कोई ग्रहण करेगा वही पवित्र होकर दिव्यधाम का अधिकारी हो जायगा।' इस प्रकार पहले तो आपने प्रसाद बाँटा और फिर हरि लूट की। आप चारों ओर को प्रसाद फेंक रहे थे और हँस-हँसकर कहते थे, 'लो भाई! आज हरिनाम की लूट है। आज खञ्जन के लिए नाम-नरेश ने अपना दिव्य प्रेम का भण्डार खोल दिया है।' इन सब बातों से प्रकट होता था कि आज आप खञ्जन के भक्तिभाव से बड़े ही प्रसन्न थे। अन्त में आपने भी सबके सामने एक-दो बताशे मुँह में डाले। इससे पहले ऐसी भीड़ में आप कभी प्रसाद नहीं खाते थे।

इसके पश्चात् उत्सव विसर्जित हुआ और सब लोग यथा स्थान चले गये। आपने मन्दिर में आकर भी खञ्जन की भूरि-भूरि प्रशंसा की और बार-बार यही कहा कि श्रीभगवान् तो पतितपावन हैं, परन्तु हम पतित नहीं बनते, वे तो दीनबन्धु हैं, परन्तु हम दीन नहीं बनते। किन्तु जब तक हम दीन नहीं बनेंगे दीनबन्धु के दरबार में नहीं पहुँच सकेंगे। जिस हृदय में जाति, विद्या, कुल, रूप, यौवन, धन अथवा बल आदि कण्टक विद्यमान हैं उसमें अत्यन्त सुकुमारिणी श्रीभक्ति महारानी का पदार्पण कभी नहीं हो सकता। वे तो उसी हृदय में पधारतीं हैं जो तृण से भी नीच और वृक्ष से भी अधिक सहनशील होकर तथा स्वयं निर्मान और दूसरों का मान करने वाला होकर सर्वदा श्रीहरिनाम का कीर्तन करता है।

इस प्रकार शिवपुरी की कीर्तनमण्डली में खञ्जन की कबीर पार्टी एक प्रधान अङ्ग बन गयी है। इसका उत्साह सदा-सर्वत्र एक-सा ही रहा है। जहाँ-कहीं

बाहर भी शिवपुरी की कीर्तन मण्डली जाती है उसमें इस पार्टी के दस पाँच सदस्य अवश्य जाते हैं। खञ्जन इन सबका नेता है और ये लोग इसका बहुत आदर करते हैं। यह बड़ा ही गुणी आदमी है। कीर्तन में, गायन में, लीलाभिनय में, दस्तकारी में, सजावट में, प्रबन्ध में, इस प्रकार व्यवहार परमार्थ सभी विषयों में यह परम कुशल है। समाज के बड़े-बड़े आदमी भी हर प्रकार के काम में खञ्जन से सलाह लेते हैं। कई बार विशेष अड़चन पड़ने पर मुझे भी खञ्जन से उपयोगी परामर्श मिला है।

खञ्जन को कई बार स्वप्न में श्रीभगवान के अनेकों रूपों में दर्शन हुए हैं तथा उनकी विशेष कृपा और प्रसाद की भी प्राप्ति हुई है। कीर्तन में भी अनेकों चमत्कार हुए हैं। श्रीरामायणजी में उसका बड़ा विश्वास है। उसके मासिक पारायण तो वह प्राय: करता ही है, कभी-कभी नवाह्नपारायण भी कर डालता है। जब कभी वह किसी काम को जाता है तो उस कार्य से सम्बन्धित रामायणजी की चौपाइयाँ पढ़कर जाता है। इससे उसे उस कार्य में अवश्य सफलता मिलती है। अपशकुन आदि की निवृत्ति के लिये भी वह इसी साधन का प्रयोग करता है। उसमें परोपकार और परसेवा का भाव भी बहुत बढ़ा हुआ है। मेरी दृष्टि में शिवपुरी में खञ्जन जैसा भक्त तो कोई भी नहीं है।

मुकुन्दराम

मुकुन्दराम निजामपुर का रहने वाला अहीर है। यह बड़ी ऐंठमरोड़ का आदमी है। हेतराम से इसका विशेष मेल-जोल नहीं था। इसलिए श्रीमहाराजजी तथा कीर्तन में इसकी श्रद्धा कुछ देर से हुई। एक बार यह जंगल में घूम रहा था। उस समय इसे अकस्मात् श्रीमहाराजजी के दर्शन हुए। बस, यह उसी समय ऐसा मुग्ध हुआ कि सदा के लिये उनके श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। उसके बाद यह कीर्तन में सम्मिलित हुआ और पहले दिन ही कीर्तन करता-करता अचेत हो गया। पीछे श्रीमहाराजजी और कीर्तन में इसकी श्रद्धा बहुत बढ़ गई। यह खर्च करने में भी बड़ा उदार है। इसकी स्त्री भी कुछ पढ़ी लिखी, समझदार और घर के कार्यों में बड़ी निपुण है। यह भोजन बनाने में बहुत कुशल है। श्रीमहाराजजी को इसके हाथ का भोजन
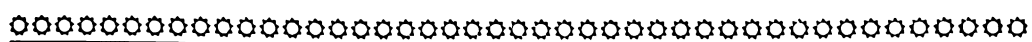
बहुत पसन्द है और इसके घर आप ठीक उसी प्रकार भोजन करते हैं उसे गौर सुन्दर श्रीशची माँ के यहाँ तथा श्यामसुन्दर माँ यशोदा के यहाँ। महाराजजी को भोजन कराने में तीन-चार माइयाँ बहुत कुशल थीं। बरोरा में निर्बलसिंह की पत्नी (पंचमसिंह की माँ), निजामपुर में मुकुन्दराम की पत्नी, शिवपुरी में पण्डित छेदालाल की पत्नी और अनूपशहर में भगवती की माँ। ये जिस प्रकार श्रीमहाराजजी में अत्यन्त उदारता का भाव रखती थीं उसी प्रकार हम लोगों को भी अपने बालकों से अधिक स्नेह से भोजन कराती थीं।

श्रीमहाराजजी ने एक दिन मुकुन्दराम से कहा, 'तू अच्छी तरह औटाकर पानी ले आ। देख, रामनाम लेते हुए औटाना।' मुकुन्दराम ने अपनी स्त्री से औटाने को कह दिया और उसका औटाया हुआ जल लेकर महाराजजी के पास आया। आपने वह जल नहीं पिया और कह दिया कि जिस प्रकार कहा था उस प्रकार तुने नहीं औटाया। मुकुन्दराम ने अपनी गलती स्वीकार की और क्षमा याचना करके दूसरी बार भगवन्नाम लेते हुए स्वयं औटाया। तब आपने जल पिया। आपका भोजन जहाँ कहीं बनता था आप स्पष्ट कह देते थे कि भगवन्नाम लेते हुए बनाया जाय। और यह बड़ी विचित्र बात थी कि यदि ऐसा न किया जाता तो भूखे होने पर भी आप भोजन नहीं करते थे। आप कहा करते थे कि भोजन सामने आने पर उसके संस्कार मेरे सामने प्रत्यक्ष नाचने लगते हैं। एक बार किसी ने पूछा था कि माधूकरी भिक्षा करते समय आपका यह नियम कैसे चलता है। तब आपने कहा कि माधूकरी तो साधु के लिये साक्षात् अमृत है उससे बढ़कर पवित्र अन्न साधु के लिये दूसरा नहीं है। उसमें ऐसे किसी नियम की आवश्यकता नहीं है। सारे दोष तो अपने निमित्त से बने हुए अन्न में ही आते हैं। अतः उसीकी शुद्धि के लिये ऐसे नियमों की आवश्यकता है।

अब मुकुन्दराम को पता लग गया कि आप तो अन्तर्यामी है। अतः वह बहुत सावधानी से आपकी सेवा करने लगा। निजामपुर में आपका भोजनादि का प्रबन्ध अधिकतर इसी के घर रहता है और भी जो कोई साधु-संन्यासी निजामपुर में आते हैं उनकी सेवा भी इसी के घर से ही होती है, क्योंकि इसकी स्त्री की साधुओं में बड़ी श्रद्धा है।

पण्डित जौहरीलाल पर कुछ कर्जा था। उसमें कुछ रुपये इसके भी थे। एक बार वे बहुत बीमार पड़े। तब महाराजजी ने उनसे पूछा, 'तुम क्या चाहते हो?' उन्होंने बतलाया कि अमुक-अमुक व्यक्तियों का मुझ पर इतना कर्जा है। यदि आप उचित समझें तो भुगतवा दें। श्रीमहाराजजी ने बाबू हीरालाल से उनका सारा कर्जा भुगताने के लिये कह दिया। हीरालालजी ने मुकुन्दरराम के पास भी रुपये भेजे। किन्तु इसने नहीं लिये और कह दिया कि बाबूजी आपके हैं तो क्या मैं आपका नहीं हूँ।

एक बार श्रीमहाराजजी ने इससे कहा कि तू सूद लेना छोड़ दे। किन्तु इसने माना नहीं। इसके सिवा दो बड़े-बड़े बैल भी पाल लिये। उनकी सेवा सुश्रूषा में इसका श्रीमहाराजजी के पास आना-जाना भी कम हो गया। किन्तु दैवयोग से वे दोनों बैल मर गए। तब इसको बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उस दिन से इसने सूद लेना भी छोड़ दिया।

एक बार, जिन दिनों में बाँध बँध रहा था, यह बीमार पड़ गया और इसे तेरह लंघन हो गए। उस समय श्रीमहाराजजी बाँध पर ही थे। ये तीन दिनों तक श्रीमहाराजजी के दर्शनों के लिये रोता रहा। तब एक दिन अकस्मात् महाराजजी ने मुझसे कहा कि तू जाकर मुकुन्दराम को बुला ला मैं निजामपुर गया, देखा कि मुकुन्दराम तो मरणासन्न है। मैंने सब आदमियों को इकट्ठा करके कीर्तन कराया। बस, उसी दिन उसका बुखार उतर गया और वह दूसरे ही दिन दाल खाकर बाँध पर चला गया तथा मिट्टी का पल्ला भरकर श्रीमहाराजजी के पास पहुँचा। तब महाराजजी ने कहा, 'तेरा कुछ पाप था, जिससे तू बीमार हुआ। अच्छा हुआ, तू आ गया। अब तेरा पाप कट गया।'

इसके पिता हुलासी कुछ बहिर्मुख प्रकृति के पुरुष थे। किन्तु एक दिन कीर्तन में उनहें श्रीमहाराजजी के शरीर में कुछ दिव्य प्रकाश दीख पड़ा। उसी दिन आपमें उनकी भगवद्बुद्धि हो गयी और उसके थोड़े ही दिनों बाद अनायास ही राम-नाम लेते हुए उनकी मृत्यु हुई। उस समय मुकुन्दराम ने स्वप्न में देखा कि वे भगवद्धाम को चले गए हैं।

एक बार कीर्तन करते-करते इसे ऐसा भावावेश हुआ कि यह एक पतली-सी नीम की डाली पकड़कर लटक गया। उस समय इसका शरीर रुई के समान हल्का हो गया और यह प्राय: मूर्च्छित हो गया। तब कुछ लोग इसे उसी अवस्था में पकड़े हुए ऊपर को उठाये रहे। इसकी ऐसी अवस्था प्राय: तीन घण्टे तक रही। उस समय जिसने इसके शरीर को छुआ वह भी प्रेम से पागल हो गया।

एक बार मुकुन्दराम के मन में आया कि गाँव के जो बहिर्मुख लोग हैं वे भी कीर्तन करने लगें। दैवयोग से एक दिन बड़ा विचित्र कीर्तन हुआ। उस समय वे लोग भी तमाशा देखने चले आये। उन्हें देखकर मुकुन्दराम मन ही मन प्रार्थना करने लगा कि ये सब भी कीर्तन में सम्मिलित हो जायँ। तब उसे एक गौर वर्ण का अत्यन्त सुन्दर बालक मध्य में नृत्य करता दिखायी दिया। उसे देखकर वह तो विह्वल हो गया। धीरे-धीरे कीर्तन का आकर्षण इतना बढ़ा कि वे सब लोग भी विवश होकर उसमें सम्मिलित हो गए। बड़ा ही अपूर्व चमत्कार हुआ।

एक बार मुकुन्दराम बीमार हो गया और प्राय: बीस लंघन हो गए। बचने की कोई आशा नहीं रही। तब इसकी स्त्री महाराजजी को स्मरण करके बहुत रोने लगी। तब उसे ऐसा प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ कि महाराजजी ने उसकी ओर एक पुड़िया फेंकी है और कहा है, 'तू क्यों घबराती है। यह दवा खिला दे, अच्छा हो जायगा।' बस, वह उसी दिन अच्छा हो गया और दूसरे ही दिन उसे पथ्य दे दिया गया। इसी प्रकार एक बार यह स्वयं बीमार पड़ गयी थी तब भी श्रीमहाराजजी के स्मरण और उनकी कृपा से उसी दिन अच्छी हो गई।

जिस समय अनूपशहर में रामेश्वर के लिए कीर्तन कराया गया मुकुन्दराम भी वहाँ गया था। उन्हीं दिनों किसी कार्यवश महाराजजी निजामपुर पधारे और लोगों को खूब प्रसाद बाँटा। मुकुन्दरामजी की स्त्री के मन में यह पूछने का सङ्कल्प हुआ कि वे कब आवेंगे। परन्तु सङ्कोचवश पूछ न सकी। आप अनूपशहर को चल दिए। किन्तु फिर बहुत दूर से लौटे और स्वयं ही जाकर कहा कि वह परसों आवेगा। इस तरह की आपकी अनेकों लीलाएँ इन लोगों के साथ हुआ करती थीं।

मुकुन्दराम का कीर्तन में बड़ा विश्वास है। जब कभी गाँव पर अवर्षण आदि कोई आपत्ति आती है तो यह गाँव वालों के साथ मिलकर पन्द्रह दिन या एक महीने के अखण्ड कीर्तन की योजना करता है। उससे प्राय: वह विपत्ति टल जाती है।

भाईसिंह

भाईसिंह निजामपुर के प्रधान भक्त हेतराम के बड़े भाई बासुदेव का पुत्र है। जिस समय श्रीमहाराजजी ने निजामपुर में जाना आरम्भ किया यह बारह-तेरह साल का था और गुन्नौर के मदरसे में पढ़ता था। वहाँ से मिडिल पास करने पर, इसके चाचा हेतराम का परलोकवास हो गया तो यह अपनी दादी की देख-रेख में घर का काम-काज करने लगा। यह कीर्तन में नृत्य करते-करते उन्मत्त हो जाता था। इसे शरीर की सुधि नहीं रहती थी और तरह-तरह के दिव्य दर्शन भी होते थे। निजामपुर के कुछ बालाकें को दैवी आवेश हुआ करते थे। उस अवस्था में वे कभी रामलीला और कभी कृष्णलीला करने लगते थे। उन बालकों में श्रीराम, दाताराम, रामफल, हेमराज, भाईसिंह और गोपीराम के नाम उल्लेखनीय हैं। आवेश के समय लीला भी बड़ी ही अलौकिक होती थी। दर्शकगण छ: छ: घण्टे तक निरन्तर कीर्तन करते हुए एकटक दृष्टि से उसका दर्शन करते रहते थे। यहाँ तक कि कभी-कभी सारी रात बीत जाती थी। वैसी अद्‌भुत लीला तो न कभी देखी है न सुनी है। वह क्या समय था? कैसी अवस्था थी? उस समय हमने उसका विशेष आदर ही नहीं किया।

हेतराम की तरह भाईसिंह पर भी श्रीमहाराजजी की विशेष कृपा दृष्टि रही है। यह पढ़ा लिखा होने के कारण व्यवहार में भी बड़ा कुशल है। हमारे उत्सवों में अनेकों कार्य इसके अधीन रहते हैं। देखने में तो यह बहुत ढीला और भोला-भाला है किन्तु है हमारे महाराजजी का बड़ा अन्तरंग पार्षद। व्यवहार और परमार्थ सम्बन्धी ऐसी कोई बात नहीं, जिसमें इसके उपस्थित रहने पर श्रीमहाराजजी इससे सलाह न लें। इसकी स्मरणशक्ति इतनी अच्छी है कि जब मैंने यह चरित्र लिखना आरम्भ किया तो इसने सन् १९१६ से १९४६ तक का सारा ब्यौरा मुझे केवल स्मृति के बल से ही बता दिया। बाँध के काम में भी इसने लाखों रुपयों का हिसाब रखा था। उस
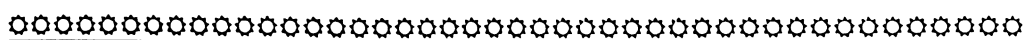
समय सबसे कठिन काम था कंकर लाना। वह भी इसीने किया। एक गुण इसमें बड़ा विलक्षण है। यह मितव्ययी भी पूरा है। श्रीमहाराजजी मुझे अधिक खर्च करने वाला समझकर मेरी अपेक्षा भी इसमें अधिक विश्वास करते हैं। इसने भी सरकार की सेवा के सामने कभी अपने घर या शरीर की भी परवाह नहीं की। बाँध के प्रारम्भ से ही इसका सब प्रकार की सेवा में हाथ रहा है। गाँव के चन्दों में यह स्वयं सबसे अधिक देता है तथा घर पर आये हुए साधु, सन्त एवं अतिथियों की भी यथासाध्य सेवा करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाईसिंह परमार्थ और व्यवहार दोनों में ही बड़ा कुशल है। बाँघ पर सर्वदा ही इस पर बहुत से उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य छोड़ दिये जाते हैं और यह उन्हें बड़ी लगन और तत्परता से निष्पन्न करता है।

गोपीराम

यह भाईसिंह का छोटा भाई है। जिस समय निजामपुर में कीर्तन आरम्भ हुआ था, इसकी आयु केवल आठ वर्ष की थी। किन्तु कीर्तन में इसके बड़े सुन्दर भाव होते थे। यह बालकों की मण्डली का सरदार था। जब यह अपने समवयस्क बालकों के साथ कीर्तन करता था तो वे सभी प्रेम से पागल हो जाते थे। उनमें से दो-चार को तो दिव्य आवेश हो जाता था। और वे दिव्य लीलाओं का अभिनय करने लगते थे।

एक दिन कीर्तन करते-करते कुछ बालकों में गोपीभाव का आवेश हुआ और वे श्यामसुन्दर के विरह में फूट-फूटकर रोने लगे तथा रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। यह उस मूर्च्छा की अवस्था में ही भागा और एक पुराने कुएँ में गिर गया, पीछे लोगों ने जाकर देखा तो उसमें झाऊ के आजार पर बैठा उसी अर्धबाह्य अवस्था में ऊपर को हाथ उठाये कीर्तन कर रहा है। तब इसे बाहर निकाला। होश आने पर पूछा गया तो बोला, 'मुझे कुछ पता नहीं है। हाँ, इतना स्मरण है कि जब मैं पानी में गिरा तो महाराजजी ने मुझे उठाकर सूखे में बिठा दिया।' इसी तरह की अनेकों अवस्थाएँ हुआ करती थीं। यह कीर्तन में कई घण्टे तक नृत्य करता रहता है।

दाताराम

दाताराम भी निजामपुर के भाईसिंह, गोपीराम आदि का ही साथी है। यह भी जाति का अहीर ही है। पहले श्रीमहाराजजी की सेवा में सीताराम रहा करता था। अब प्रायः पन्द्रह वर्ष से उसकी मृत्यु के पश्चात् यही काम करता है। श्रीमहाराजजी की रसोई बनाना, पानी भरना, स्नान कराना, बर्तन धोना आदि सभी सेवाएँ यही करता है। यह बड़ा ही सरल और श्रद्धालु व्यक्ति है। इन सब सेवाओं को यह बड़े ही चाव और उत्साह से करता है। रात को ग्यारह बजे सोकर तीन बजे उठता है और फिर हर समय किसी न किसी काम में लगा रहता है।

यह बात तो पहले लिखी जा चुकी है कि निजामपुर में एक बालमण्डली थी। उसके कई बालकों को कीर्तन करते-करते आवेश हो जाता था और फिर स्वतः ही उनके द्वारा कोई दिव्य लीला होने लगती थी। दाताराम भी उसी मण्डली का एक सदस्य था। भावावेश के समय यह अपने को रामदल का वानर ही समझता था। कीर्तन करते-करते, यह पागल-सा हो जाता था। इसका जन्म एक अत्यनत धनहीन घर में हुआ था। पढ़ा-लिखा भी यह कुछ नहीं है। स्वभाव का बहुत सीधा और मन्दबुद्धि भी है। निजामपुर में यह सबसे पहले मेरे ही पास आया था। उस समय इसकी आयु प्रायः आठ वर्ष की थी। पीछे बाँध के काम में इसने खूब तत्परता से सेवा की। उस समय इसने दिन-रात एक कर दिये थे। इसकी सेवा से सन्तुष्ट होकर श्रीमहाराजजी ने इसे तथा इसके साथी बालकों को कई प्रकार के वर दिये। उसी का यह परिणाम है कि आज इसे उनकी निजी सेवा का गौरव प्राप्त हुआ है।

किन्तु एक विश्ववन्द्य महापुरुष की सेवा का गौरव प्राप्त होने से अब इसके स्वभाव में वैसी सादगी और सात्त्विकता नहीं रही है। इसके साथी भी अब हँसी-हँसी में इसे 'पण्डित दाताराम' कहकर पुकारने लगे हैं। इसीसे श्रीमहाराजजी भी अब इससे उतने प्रसन्न नहीं रहते। वे कभी-कभी फटकारते रहते हैं और समय-समय पर कुछ दिनों के लिये अपने से पृथक् भी कर देते हैं तथापि जिसे आपकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह क्या किसीसे भी कम सौभाग्यशाली है। उसका भाग्य तो

सर्वथा सराहनीय ही है। इस मायानदी के चक्र में पड़कर तो सभी का माथा घूम जाता है। तथापि जिसे एक बार श्रीभगवान् या सद्गुरुदेव अपना लेते हैं उसका इस संसार में किसी भी प्रकार अमंगल नहीं हो सकता। इसके जीवन में भी अनेकों चमत्कार हुए होंगे, किन्तु मेरे विचार से तो इसे श्रीमहाराजजी का इतना घनिष्ठ सम्पर्क प्राप्त होना ही सबसे बड़ा चमत्कार है।

घनश्यामसिंह

यह सहपऊ गाँव का रहने वाला है। इनकी कौटुम्बिक उपाधि 'शाहजी' है। इससे मालूम होता है कि पहले इनका कुटुम्ब बहुत सम्मानित था। गाँव की बड़ी गढ़ीवाली ठकुरानी रामदेवी से भी इनका कोई सम्बन्ध था। अतः सन् १९२० के लगभग यह कुछ दिन गवाँ में रहा था। उस समय इसकी आयु केवल दस-बाहर साल की थी। ठकुरानी साहिबा की ओर से यह कभी-कभी कुछ सामान लेकर आया करता था। उस समय श्रीमहाराजजी की निजी सेवा में ही था। अतः मैंने इसे देखा था।

पीछे प्रारब्धवश यह वहाँ से चला गया और बीकानेर स्टेट में अपने चाचा क पास रेलवे में कोई नौकरी कर ली। वहाँ यह आठ वर्ष रहा। जिस समय सन् १९२२ में बाँध बनाया जा रहा था इसने भी इसकी ख्याति सुनी और एक पत्र लिखकर श्रीमहाराजजी से प्रार्थना की कि मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। यदि आज्ञा हो तो यहाँ से नौकरी छोड़कर चला आऊँ। आपने उत्तर में लिखवा दिया कि इस समय काम छोड़कर आने की आवश्यकता नहीं है। जब भगवदिच्छा होगी तो स्वतः ही ऐसा संयोग बन जायगा।

इसके कुछ समय पश्चात् यह बीमार पड़ गया और श्रीमहाराजजी की कीर्ति सुनकर बाँध पर चला आया। यहाँ यह मेरी कुटी के बाराबर बड़ी गढ़ीवाली की कुटी में ही ठहरा। इसे संग्रहणी हो गई थी। इसने मुझसे दवा माँगी और दैवयोग से मेरी चिकित्सा में रहकर ही यह स्वस्थ हो गया।

अब इसने पुनः यहीं रहने की इच्छा से श्रीमहाराजजी से कोई काम बताने के लिये प्रार्थना की। तब आपने इसे सामान्य-सा पहरे का काम बता दिया। कुछ काल पश्चात् इसे पुनः खूनी दस्त हुए और यह मरणासन्न हो गया। मैंने श्रीमहाराजजी को इसकी दशा सुनायी तो आपने इसे बुलाया। किन्तु निर्बलता के कारण यह चारपाई से उठकर आ न सका। तब किसी को भेज कर इसे बलात्कार से उठाया और वहाँ से दो मील दूर दीपपुर से आगे एक हनुमानजी के मन्दिर पर ले जाकर वहाँ खेल-कूद में खूब दौड़ाया। बस, उसी समय इसके शरी में एक विचित्र स्फूर्ति आ गयी और यह सर्वथा स्वस्थ हो गया।

इसके पश्चात् आपने इसकी सेवा स्वीकार कर ली। इसका मुख्य कार्य था घण्टा लेकर कीर्तन में जाना और ठीक समय पर उसे आपके हाथ से ले लेना अथवा आपको पकड़ा देना। इस काम से अवकाश मिलने पर कुटिया पर पहरा लगाना तथा श्रीमहाराजजी सत्सङ्ग या रास में जहाँ-कहाँ भी जायँ उनके आगे-आगे चलना। इसी कारण हम तो इसे गरुडजी कहा करते हैं।

एक दिन की बात है श्रीमहाराजजी बाँध प्रान्त के कुछ सेवकों के साथ हरिदासपुर के बाग में थे। उस समय घनश्यासिंह भी वहीं था। बस, हमारे कौतुकप्रिय सरकार को कुछ कौतुक करने की सूझी। आप सब भक्तों से कहने लगे, 'भाई! हमारा सारा जीवन व्यर्थ चला गया। अभी तक हमें भगवत्प्राप्ति नहीं हुई। इसलिये आज खूब रोना चाहिये। आज इतने रोओ कि या तो भगवान् प्रकट हो जायँ या रोते-रोते यह शरीर नष्ट हो जाय। इस प्रकार भगवत्प्राप्ति किये बिना जीने से तो मर जाना ही अच्छा है। हम लोगों में सबसे बड़ा दोष तो यही है कि हम थोड़ी सी बात में ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। वास्तव में तो हमारा लक्ष्य अभी बहुत दूर है। अभी तो हमारा उसमें चञ्चु प्रवेश भी नहीं हुआ है और हम मान बैठे हैं अपने को कृतकृत्य। अहो! कितना बड़ा आश्चर्य है कि अनादिकाल से विषयों का सेवन करते हुए भी हम सर्वदा उनसे अतृप्त ही रहते हैं, किन्तु परमार्थ में तो दो-चार उल्टे-सुल्टे भगवन्नाम लेने से ही अपने को पूर्ण तृप्त मान लेते हैं। यदि भगवत्कृपा से किसी महात्मा का आश्रय मिल जाता है

तब तो हम और भी आलसी और निकम्मे हो जाते हैं। मैं तो भाई! शपथ खाकर कहता हूँ कि मेरे भरोसे रहकर तुम साधन से भ्रष्ट हो गये हो; अतः अब मुझे तुम्हारा साथ करने से प्रसन्नता नहीं होती। सो अब या तो कोई करतूत करके दिखलाओ, नहीं तो, सदा के लिये मुझसे अलग हो जाओ। तनिक अपनी अवस्था पर विचार करो कि आरम्भ में हमारे अन्दर कितना बल था? हम उछल-उछलकर डींगे मारते थे कि हम सारे विश्व को भगवत्प्रेम से भर देंगे। किन्तु आज तो हम स्वयं ही दीन, हीन कङ्गालों की तरह प्रेमशून्य जीवन धारण करके संसार को धोखे में ही डाल रहे हैं। अतः आज यदि श्रीभगवान् प्रकट न हों तो रोते-रोते प्राणत्याग कर दो। देवर्षि नारद ने तो सच्चे प्रेम के विषय में कहा है कि 'तद् विस्मरणे परमव्याकुलता' अर्थात् प्रेमी को अपने प्रेमास्पद की विस्मृति होने पर अत्यन्त व्याकुलता होती है। सो यदि हममें स्वभाव से ही ऐसा प्रेम नहीं है तो बनावटी ही सही। इसलिये आज खूब रोओ।'

आपके यह वाक्य सुनकर सभी भक्तजन व्याकुल हो गये और फूट-फूटकर रोने लगे। उनके साथ आपने भी रोना आरम्भ कर दिया। बस अब क्या था? मानो मयखाने में आग लग गयी। सभी रोते-रोते पृथ्वी पर लोटने और सिर पीटने लगे। किन्हीं-किन्हीं ने तो निश्चय कर लिया कि आज रोते-रोते ही मर जाना है। इस नीरस जीवन से तो श्रीभगवान् की याद में श्रीमहाराजजी के समीप मर जाना ही अच्छा है।

'इस मरने में क्या लज्जत है, जिस मुँह को चाट लगे इसकी।
वह थूके शाहनशाही पर, सब दौलत न्यामत हो फीकी॥'

यह रुदनलीला इतनी बढ़ी कि हा-हाकार मच गया। उस कुहराम को सुनकर इधर-उधर के खेतों पर से किसान लोग दौड़ आये। किन्तु आश्चर्य तो यह हुआ कि हम लोगों को चुप करने की चेष्टा करते-करते ये स्वयं भी रोने लगे। इस तरह यह रोने का भूत सभी पर सवार हो गया। इस स्थिति में दो-तीन घण्टे निकल गए। तब करुणागार सरकार का माखनतुल्य कोमल हृदय करुणा से पिघला और आप सचेत होकर अन्य सबको भी सावधान करने लगे। भक्तों के प्रति आपका वात्सल्य अनन्त माताओं से भी बढ़कर था। अतः आपके स्नेहपूर्ण वचन सुनकर भक्तजन और

भी जोर-जोर से रोने लगे। तब आप उतने ही जोर से हँसने और एक-एकका नाम लेकर पुकारने लगे। यही नहीं, आप पूर्ण अन्तर्यामी और सर्वज्ञ की तरह एक-एक के हृदय की बातें भी बताने लगे। इससे सबको बड़ी सान्त्वना मिली और ऐसा विश्वास हो गया कि हम तो आपकी आनन्दमयी चिन्मय गोद में ही हैं, फिर अपने को माया का दास समझकर क्यों दु:खी हो रहे हैं?

इस दिव्य भाव के आते ही सब लोग उठकर नृत्य करने लगे अब आपने कुछ कीर्तन आरम्भ कर दिया। फिर तो ऐसा रङ्ग जमा मानो आनन्द की एक बाढ़ ही आ गयी। आप ऊर्ध्वबाहु होकर नृत्य कर रहे थे और भक्तजन आपके चारों ओर मण्डल आकार होकर नाच रहे थे। प्राय: एक घण्टे में इस कीर्तन का विराम हुआ। तब आप बड़े प्रसन्न होकर एक-एक भक्त का नाम लेकर कहने लगे कि जिसे जो इच्छा हो वर माँगो। अभी थोड़ी देर पहले दीन, हीन, कङ्गाल की तरह अपने को पूर्ण निराश्रित अनुभव कर रहे थे वे ही अब वाञ्छाकल्पतरु हो गये, कर्त्तुं-अकर्त्तुं-अन्यथाकर्त्तुं समर्थ बन गया। इस प्रकार सब लोगों को वर देते हुए आपने घनश्यामसिंह से भी कहा कि वर माँग। तब इसने यही वर माँगा कि मैं निरन्तर आपकी सेवा में ही रहूँ। इस पर आपने 'तथास्तु' कहा और तभी से इसे अपनी निजी सेवा में रख लिया।

एक बार आप बाँध से वृन्दावन आ रहे थे। उस समय आप की इच्छा इसे बाँध पर ही छोड़ने की थी। किन्तु इसने साथ-साथ चलने का आग्रह किया, अत: विवश होकर वृन्दावन ले आये। किन्तु यहाँ पहुँचते ही इसके पैर सूज गये और ये चलने-फिरने से भी लाचार हो गया। तब इसे स्मरण हुआ कि मैंने यहाँ आने का दुराग्रह किया था, इसीसे मेरी यह दुर्दशा हुई है। अत: इसने श्रीचरणों में प्रार्थना की कि मेरा 'अपराध क्षमा किया जाय। इस पर आपने कहा, 'भाई! मेरे विचार से तो तुम अब भी बाँध पर चले जाओ। इसीमें तुम्हारा हित है।' इसने कहा, 'बहुत अच्छा' और फिर ज्यों ही दण्डवत् करके चला कि इसके पाँव अच्छे होने लगे और बाँध पर पहुँचकर तो बिलकुल ठीक हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसका हित किस प्रकार है तथा किसको किस समय कहाँ रहना चाहिये और क्या करना चाहिये—इस बात को ठीक-ठीक समर्थ सद्‌गुरु ही जानते हैं। हम तुच्छ जीव अपना वास्तविक हिताहित समझने में सर्वथा असमर्थ हैं। हमें तो अपनी माँ पर अवलम्बित रहने वाले बिल्ली के बच्चे की भाँति विश्वासपूर्वक सन्त-गुरुदेव के चरण कमलों का आश्रय लेकर निश्चिन्त हो जाना चाहिये। वे हमें जहाँ और जिस स्थिति में रखना चाहें उसी में प्रसन्न रहना चाहिये तथा यथा सम्भव उनकी आज्ञा का पालन करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। यही हमारा परम कर्तव्य है।

पाठकगण! मैं जहाँ तहाँ लिख चुका हूँ कि हमारे पतित पावन सरकार की शरण में तो अधिकतर अनपढ़ मूर्ख और दुःशील व्यक्ति ही आये हैं, जो अपनी योग्यता के कारण जीवन भर आप को दुःख ही देते रहे हैं। आप तो सर्वथा अदोषदर्शी हैं। इसीसे आपने ऐसे लोगों को अपना लिया है। किन्तु जब हमारी नीचताएँ बहुत असह्य हो जाती हैं तो आप घबराकर भाग जाते हैं। किन्तु करुणादेवी विवश करके आपको पुनः हमारे बीच में खींच लाती है। बस, आपकी करुणा और उदासीनता के साथ इसी प्रकार हमारी जीवन-नौका उछलती-डूबती चल रही है। देखिये परिणाम क्या होता है? हमें तो केवल शरणागतवत्सल श्रीराम की इस प्रतिज्ञा का ही भरोसा है—

'एकहिं बेर कहों सो कहिके पुनि और की और न भाखौं,
कीन्ह कृपा जेहि पै तेहि पै अपराध निहारि न रंचहु माखौं।
जाहि लियौ गहि कै अपनाय ताहि कबहुँ रसिकेश न नाखौं,
लावो कपीश विभीषन को कर देहुँ अभय शरणागत राखौं॥'

घनश्यामसिंह शरीर से बहुत दुबला-पतला अस्थि-पञ्जर मात्र है। यह अपने शरीर को सर्वदा वस्त्र से ढके रहता है। इसे यदि वस्त्रहीन अवस्था में देखा जाय तो सचमुच जीवित प्रेत-सा ही जान पड़ता है। इसके सिवा इसे कफ खाँसी का विकार भी सर्वदा बना रहता है। इसीसे यह चाय भी अधिक पीता है। परन्तु अपनी ड्यूटी का यह बहुत पक्का रहा। इसे जो भी काम सौंपा जाता है उसे बिलकुल ठीक

समय पर करता है। रास्ते में यह सर्वदा आपके आगे चलता है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई कागज की मूर्ति हवा में उड़ रही है। यह बात वह स्वयं कहा करता है कि यदि मैं महाराजजी के पीछे चलूँ तो चार कदम भी उनके साथ रहना कठिन हैं, किन्तु आपके आगे रहने पर तो एक ऐसी शक्ति-सी भर जाती है कि विवश होकर भागना पड़ता है। इस प्रकार का अनुभव कुछ और लोगों का भी है।

इसका स्वभाव बहुत चिड़चिड़ा और क्रोधी है। बोलने में भी कुछ कटुता रहती है। इसके अनर्गल भाषण के कारण आप कभी-कभी बिगड़ जाते हैं और इसे मौन रहने का दण्ड भी दे देते हैं तथा कभी अपनी सेवा से अलग कर देते हैं। आपका स्वभाव तो बड़ा सङ्कोची है। अतः आप कहा करते हैं कि भाई मुझे तो घनश्याम से डर लगता है, इसका शब्द साक्षात् वज्र की तरह है। यह मेरी हर एक बात को काट देता है। इसीसे आप इससे कह देते हैं कि तू हमारी किसी बात में बोला मत कर, मौन रहकर अपना काम किया कर। इस प्रकार महाराजजी इसे प्रायः डाँटते रहते हैं। किन्तु कभी-कभी इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। आपने कई बार कहा है कि घनश्याम ने मेरी उचित अनुचित सभी प्रकार की सेवा की है। यह अपनी ड्यूटी का बहुत पक्का है।

अस्तु! कुछ भी हो यह घनश्याम का बड़े से बड़ा सौभाग्य है कि महाराजजी उसे अपना मानते हैं। आपने कई बार कहा है कि सन्त-सद्गुरु की सन्निधि में रहकर उनकी शारीरिक सेवा करना ही कल्याण का सबसे बड़ा साधन है। यद्यपि गुरुदेव जिसको जैसा अधिकारी समझकर जो भी आज्ञा करें उसी का पालन करना उनकी सेवा है, तो भी शारीरिक सेवा का महत्त्व सबसे बढ़कर है। अतः जिन्हें वह प्राप्त हुई है वे धन्य है।

चौधरी खुशीराम

हमारे बाँध के रईस भक्तों में भीषमपुर के रईस चौधरी परमेश्वरीसिंह बड़े भोले-भाले, विश्वासी और पुरानी चाल के व्यक्ति थे। इनका हृदय बड़ा ही कोमल
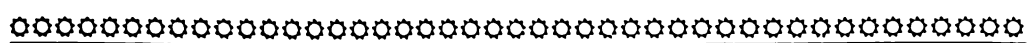
था। थोड़ा-सा दुःख पड़ने पर भी ये रो पड़ते थे। इसी तरह श्रीमहाराजजी को दण्डवत् करने मात्र से विह्वल हो जाते थे, और इनका वक्षःस्थल आँसुओं से भीग जाता था। ये बड़े ही साधु-सेवी, परोपकारी और उदार प्रकृति के वीर पुरुष थे। इनका शरीर बड़ा सुडौल और लम्बा-चौड़ा था। इन्हें घोड़े की सवारी बहुत पसन्द थी। जिस समय ये मोटी धोती, गाढ़े का अँगरखा, टोपी या खद्दर का साफा और खद्दर का फेंटा खींचकर घोड़ी पर सवार होते थे उस समय कोई प्राचीन काल के सरदार जान पड़ते थे।

इनका स्वभाव बड़ा मिलनसार था तथा अतिथि सत्कार में भी इनका बहुत प्रेम था। ऐसी ही सरल और उदार प्रकृति की इनकी धर्मपत्नी भी थीं। इनके मकान पर भोजन के समय कोई कैसा ही व्यक्ति आ जाय ये बिना भोजन किये नहीं जाने देते थे। घर में दूध, दही, अन्न, घृत आदि किसी भी पदार्थ की कमी नहीं थी। अतः भोजनादि की सारी व्यवस्था बहुत ठीक रहती थी। इनके अतिथिसत्कार के कारण बड़े-बड़े रईसों में इनकी ख्याति थी और सब लोग इन्हें 'दद्दा' कहा करते थे। दद्दा का व्यवसाय था थोड़ी-सी जमीदारी तीन-चार हलकी सीर और कुछ लेन-देन। इसीसे इनका यह भलमनसाहत का ठाट-बाट बना हुआ था। जिस समय हमारे श्रीमहाराजजी ने बाँध रचना की उसी समय इन्हें आपके दर्शन हुए थे और तभी अपने सारे परिवार सहित इन्होंने श्रीचरणों में आत्मसमर्पण कर दिया, उसी दिन से अपने एक गाँव की प्रायः सौ रुपया वार्षिक की आमदनी इन्होंने सदा के लिए श्रीचरणों की सेवा के लिए भेंट कर दी तथा यह सारा परिवार अनन्यभाव से आपकी और बाँध की सेवा में लग गया। ये बाँध के मुख्य सेवकों में गिने जाने लगे।

दद्दा के तीन पुत्र थे। उनके नाम क्रमशः खुशीराम, तिलोकसिंह और नौवतसिंह हैं। ये तीनों ही बड़े विलक्षण व्यक्ति हैं। इनमें बड़े चौधरी खुशीराम बड़े व्यवहार-कुशल, नीतिज्ञ और संयमी पुरुष हैं। भजन कीर्तन में भी इनकी अच्छी रुचि है। श्रीमहाराजजी में इनकी अनन्य निष्ठा है। उनके लिये ये प्राण तक दे सकते हैं, किन्तु उनके सिवा तो चतुर्भुज विष्णु को भी ये कुछ नहीं समझते। ये बड़े परिश्रमी और निर्भीक पुरुष हैं। यद्यपि लोक में इनके व्यवहार की कोई प्रशंसा नहीं है तथापि
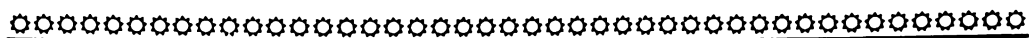
श्रीमहाराजजी के संकेत पर तो ये अपने प्राणों को भी निछावर करने के लिये तैयार रहते हैं।

इनका हृदय बड़ा भावुक है। इन्हें एक बार सङ्कीर्तन मन्दिर में श्रीमहाराजजी के प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। उस समय ये ऐसे विह्वल हो गये कि यह प्रेमोन्माद इन्हें कई दिनों तक बना रहा, इनके जाग्रत तथा स्वप्न के अनेकों अनुभव हैं। किन्तु विस्तारभय से यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जा सकता।

इनका स्वभाव कुछ मितव्ययता का है। स्वयं तो क्या, ये दूसरों को भी अधिक खर्च करते देखकर सन्तप्त हो जाते हैं। इसीसे अपने सम्पर्क वालों से इनकी प्रायः खटपट रहती है। तथा घर के लोगों से भी बहुत कम बनती है। किन्तु श्रीमहाराजजी को भिक्षा कराते समय ये बड़े उदार हो जाते हैं। यद्यपि हम लोगों को तो संयम में ही रखना चाहते हैं। इनकी ऐसी विषमताओं को देखकर कई बार श्रीमहाराजजी इन पर रुष्ट भी हो जाते हैं। किन्तु ये रोकर और सेवा करके उन्हें पुनः प्रसन्न कर लेते हैं। काम करने में ये बड़े पुरुषार्थी और नीति निपुण हैं। इन्हें जो भी काम सौंपा जाता है उसमें प्राणपण से लगकर किसी न किसी युक्ति से उसे पूरा कर ही लेते हैं।

इनके मँझले भाई तिलोकसिंह को हम लोग 'मुनीमजी' कहा करते हैं। इनका शरीर कुछ स्थूल है, किन्तु ये हैं बड़े पुरुषार्थी। हिसाब-किताब में तो एक ही हैं। खुशीरामजी की अपेक्षा इनमें यह विशेषता है कि जिस प्रकार ये प्राणपण से श्रीमहाराजजी की सेवा करते हैं उसी प्रकार हम लोगों के साथ भी इनका हृदय खुला हुआ है। ये सच्चाई के साथ हम लोगों की भलाई में लगे रहते हैं। तथा घर और बाहर के सभी लोग इनसे बहुत सन्तुष्ट रहते हैं। इनसे छोटा नौवतसिंह कुछ बालोचित स्वभाव का आदमी है। वह सदा प्रसन्न रहने वाला स्पष्टवक्ता और सरल प्रकृतिका व्यक्ति है। श्रीमहाराजजी इससे बहुत प्रसन्न रहते हैं।

इस प्रकार यह सारा ही परिवार श्रीचरणों का अनन्यभाव से आश्रित है। श्रीमहाराजजी के विषय में इन सभी के अनेकों चमत्कारपूर्ण अनुभव हैं। दद्दा की
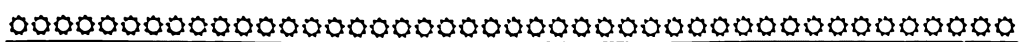
मृत्यु के पश्चात् ये तीनों भाई अलग-अलग रहने लगे हैं। इसलिए अब इनकी आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं है।

टोड़ीराम

ये भिरावटी के रहने वाले एक सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनकी शिक्षा बहुत सामान्य हुई है। पहले खेती का काम करके अपनी जीविका चलाते थे। सत्संगादि में भी इनकी विशेष रुचि नहीं थी। एकबार सम्भवतः सन् १९२८ में बाँध का चन्दा करने के लिये श्रीमहाराजजी भिरावटी गये थे। तब इनसे भी आपने कीर्तन करने के लिए कहा। किन्तु इन्होंने टालम-टूल कर दी। जब आपने दूसरी बार कहा तो ये कीर्तन में आये। इनके इष्टदेव भगवान् राम थे और ये श्रीरामचरितमानस का पाठ किया करते थे। उसी दिन कीर्तन करते-करते इन्हें श्रीमहाराजजी के स्वरूप में भगवान् श्रीराम के दर्शन हुए। देखते ही ये विह्वल हो गये और उन्मत्त होकर नृत्य करते-करते प्रायः मूर्छित हो गये। जब कई घण्टे बीतने पर सावधान हुए तो इन्होंने दृढ़ सङ्कल्प करके श्रीमहाराजजी के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। बस, तभी से ये प्रायः बाँध पर अथवा कहीं अन्यत्र जाकर सत्संग-भजन में ही रहने लगे। जब श्रीमहाराजजी भिरावटी से चलने लगे तो ये चरणों में पड़कर खूब रोये। आपने इन्हें आश्वासन देते हुए खूब समझाया। इससे इन्हें धैर्य बँधा और ये श्रीमहाराजजी की कृपा के भरोसे निश्चिन्त हो गये। किन्तु इन्हें इस प्रकार घर-गृहस्थी से उपराम और परलोक की चिन्ता से भी शून्य होकर कीर्तन-सत्संगादि में ही व्यस्त हुआ देख इनकी माता इन्हें डण्डों से पीटा करती थी तथापि पीछे भगवत्प्रार्थना करने से धीरे-धीरे माँ की बुद्धि शुद्ध हो गयी और श्रीमहाराजजी के प्रति उसका अनुराग हो गया।

एकबार रात्रि के कीर्तन के समय श्रीमहाराजजी ने कहा कि कल प्रात:काल चार बजे कमलवन देखने के लिये चलेंगे। मै घण्टा बजा दूँगा, सो तू आ जाना। उन दिनों ये मक्का के खेत में रहा करते थे, जो श्रीमहाराजजी की कुटी से थोड़ी ही दूर था। रात्रि के एक बजे इन्हें घण्टे की आवाजा सुनाई दी। ये दौड़कर कुटी पर पहुँचे। किन्तु श्रीमहाराजजी अभी सोये हुए थे। इनके पैरों की आहट से आप जाग गये और

पूछा कि कहाँ से आया है। इन्होंने कहा, 'मक्का पर से।' आप बोले, 'अभी तो एक बजा है। अच्छा, अब मक्का रखाना छोड़ दे, निश्चिन्त होकर यहीं सो जाया कर।' बस, ये मक्का रखाना छोड़कर कुटी पर ही रहने लगे। किन्तु उस वर्ष इनके खेत में प्रत्येक साल से अधिक मक्का हुई।

टोड़ीराम का चित्त इतना शुद्ध हो गया था कि वे जब कभी किसी लौकिक या पारलौकिक उद्देश्य से प्रार्थना करते थे तो वह तत्काल पूर्ण हो जाती थी। एक बार श्रीमहाराजजी वृन्दावन में थे। उस समय टोड़ीराम ने कृष्णदत्त और रामचन्द्र से उनके पास चलने को कहा। किन्तु चलते समय रात्रि को चार बजे ये दोनों मचल गये और बोले कि यदि तुम बड़े सिद्ध हो तो इसी समय कोई सवारी बुला लो। ये विवश होकर श्रीमहाराजजी की प्रार्थना करने लगे। बस, उसी समय एक अपरिचित आदमी बैलों का ताँगा लेकर आ गया और बोला, 'चलो।' यह देखकर सभी आश्चर्य में डूब गये। फिर कृष्णदत्त ने कहा, 'मुझे तो एक नौकर भी चाहिये। मैं तो तभी चलूँगा।' भगवदिच्छा से उसी समय वहाँ एक मजदूर आ गया। उससे टोड़ीराम ने पूछा, 'क्या तू नौकरी करेगा।' वह बोला, 'हाँ!' बस उसे घर का काम-काज सँभालकर ये तीनों वृन्दावन चले गये।

सचमुच टोड़ीराम श्रीमहाराजजी के बड़े विश्वासी सेवक हैं। इन्होंने बाँध और वृन्दावन दोनों ही जगह खूब सेवा की है और श्रीमहाराजजी की कृपा से ये इहलोक-परलोक दोनों की ही ओर से निर्भय हैं।

पण्डित केशवदेव

ये पण्डित हेतरामजी सारस्वत के पुत्र हैं। इनके पिताजी अच्छे सुबोध पण्डित थे तथा ये भी व्याकरण और साहित्य में शास्त्री हैं। भिरावटी में श्रीमहाराजजी के स्वाध्याय मण्डल के ये प्रमुख सदस्य हैं। भिरावटी से बाहर बाँध अथवा वृन्दावन आदि स्थानों में जब श्रीमहाराजजी का भागवत अथवा किसी अन्य संस्कृत ग्रंथ का स्वाध्याय चलता है तो ये बड़ी तत्परता से उसमें भाग लेते हैं। ये समय का भी बहुत
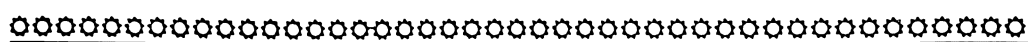
ध्यान रखते हैं, निश्चित समय से पाँच-सात मिनट पहले ही पहुँच जाते हैं। इस कारण श्रीमहाराजजी इनसे बहुत प्रसन्न रहते हैं। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से अच्छे सम्पन्न हैं, तो भी इन्होंने विवाह नहीं किया। इनका विचार आजन्म ब्रह्मचारी रहकर ही भजन करने का है। अत: कुछ लेन-देन और दूकानदारी से पर्याप्त जीविका उपार्जन करके ये सत्सङ्ग एवं स्वाध्याय आदि में लगे रहते हैं।

इनका स्वभाव बालक की तरह सरल है तथा इनमें सत्य, सदाचार सद्व्यवहार विनय, मितव्यय एवं मितभाषण आदि अनेकों दैवी गुण पाये जाते हैं। वास्तव में इनका जीवन बड़ा ही पवित्र है। श्रीमहाराजजी के चरणों में इनकी गम्भीर श्रद्धा है।

नरेन्द्रसिंह और राजेन्द्रसिंह

ये दोनों परस्पर ममेरे फुफेरे भाई हैं। इनका कीर्तन, सेवा तथा श्रीमहाराजजी के चरणों में बड़ा दृढ़ अनुराग है। अपने व्यावहारिक जीवन में जब इनके सामने कोई अड़चन आती है तो ये श्रीमहाराजजी की कृपा में विश्वास रखकर कीर्तन करते हैं। उसीसे इनके सब काम पूरे हो जाते हैं।

एक बार वहट वाले पण्डित सोहनालाल के बैल खो गये थे। वे ढूँढते हुए उन्हें भिरावटी आये और इनसे बैलों को ढुँढवाने में सहायता माँगी। तब इन्होंने बड़े विश्वास से कहा 'आओ, हम लोग इसी निमित्त से कीर्तन करें।' बस, पाँच-सात आदमी मिल कर अत्यन्त करुण स्वर से 'कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्। राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।' इस ध्वनि का कीर्तन करने लगे और उसके पीछे हनुमान-चालीसा का पाठ किया। इससे इनके हृदय को ऐसा आश्वासन मिला कि चौबीस घण्टे में इनके बैल घर पर पहुँच जायँगे। ठीक ऐसा ही हुआ भी। इससे भगवत्कृपा का स्मरण करके इनका हृदय गद्-गद् हो गया।

इनके जीवन में ऐसी अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएँ हुई हैं। किन्तु विस्तारभय से उनका उल्लेख नहीं किया जा सकता।
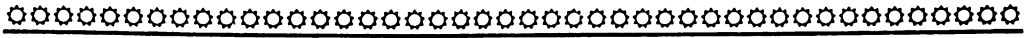
रामचन्द्र दीक्षित

ये भी भिरावटी के रहने वाले हैं। संस्कृत के सामान्य विद्वान् हैं तथा श्रीमहाराजजी के स्वाध्याय मण्डल के सदस्य भी हैं। अपनी ड्यूटी के बड़े पक्के हैं। गत सात वर्षों से ये भिरावटी तथा बाँध के उत्सवों में सजावट का काम करते रहे हैं। किन्तु इस बीच में श्रीमहाराजजी इनसे कभी नहीं बोले। एक बार श्री श्री माँ आनन्दमयी भिरावटी पधारने वाली थीं। उनके स्वागत के उपलक्ष्य में तैयारी और सजावट हो रही थी। ये उसमें लगे हुए थे कि श्रीमहाराजजी ने इनका हाथ पकड़कर इनसे किसी काम के लिए कहा। बस, आपका दिव्य स्पर्श पाते ही इनके हृदय में एक आनन्द की विद्युत सी समा गई। इनका शरीर रोमाञ्चित हो गया, नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी तथा एक अलौकिक नवीन भाव का उदय हो गया। तब से श्रीमहाराजजी के चरणों में इनकी श्रद्धा और भी बढ़ गई तथा ये और भी अधिक मनोयोग से सेवा एवं स्वाध्याय में भाग लेने लगे।

एक बार ये भिरावटी की रामलीला के लिये कुछ सामान लेने के उद्देश्य से मथुरा आये थे। इनके साथ रामलीला का एक प्रमुख पात्र वेदराम भी था। वृन्दावन में इन्होंने श्रीमहाराजजी के दर्शन किये और फिर मथुरा में प्रायः दो सौ रुपये का सामान खरीदा। उसे लॉरी पर रखकर ये बाजार में चले गए। किन्तु लौटकर आये तो देखा कि वह लॉरी, जिसमें सामान रखा था, चली गई है। अब ये बड़े असमञ्जस में पड़ गए। क्या करें लॉरी का नम्बर आदि कुछ देखा नहीं था। आखिर, किंकर्तव्य विमूढ़ होकर वेदराम को तो भेज दिया और स्वयं एकान्त में एक वृक्ष के नीचे बैठकर श्रीमहाराजजी का चिन्तन करने लगे। थोड़ी ही देर में देखा कि वह लॉरी राया में अपनी सवारियाँ दूसरी लॉरी को देकर लौट आई है। महाराजजी की ऐसी अपार करुणा देखकर ये मुग्ध हो गए और अपना सामान लेकर दूसरी लॉरी से चले गए। इनके जीवन में ऐसी अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाएँ हुई हैं।

गणेश

सन् १९२२ के पौष मास में बाँध का कार्य आरम्भ हुआ था और सम्भवतः
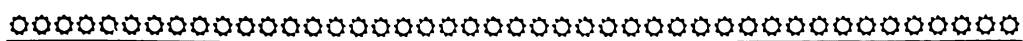
फाल्गुन मास से आप खादर प्रान्त में चन्दा करने के लिए गए थे। उसी समय आप गुन्नौर के चार कोश पूर्व में लहराझुकेरा नाम के गाँव में भी पधारे। यहाँ एक हट्टा-कट्टा अनपढ़ आदमी फौजी वर्दी पहने आया और आपके चरणों में प्रणाम करके बोला, 'महाराजजी! मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। आप मुझे कोई काम बता दीजिए।' आपने उसके घर बार का हाल पूछा तो वह बोला, 'मैं जाति का अहीर हूँ। कई वर्षों से फौज में सिपाही था। अब वहाँ से निकाल दिया गया हूँ। मेरे घर पर कोई नहीं है। अत: अब आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। मैं खूब काम करूँगा।' तब आपने उसे मेरे पास भेज दिया।

वह सीधा अपने गाँव से चलकर बाँध पर मेरे पास आया और मुझसे सब हाल कहा। मैंने उसे भोजन कराया और रहने के लिए एक स्थान बता दिया। वह अत्यन्त सीधा-सादा पक्का चालीस सेरा गँवार था। किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम का काम करने की भी उसमें कुशलता नहीं थी। अत: हमने उसे बाँध का सिपाही ही बना दिया। चलने फिरने में वह कुशल था, अत: बड़ी सावधानी और सच्चाई से सब प्रकार का दौड़-धूप का काम करने लगा। पीछे उसे एक घण्टा भी दे दिया गया। अत: वह घण्टा वाले गणेश के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

इस प्रकार कुछ दिन बाँध की सेवा करने पर उसे श्रीमहाराजजी की कुटी पर पहरेदार बना दिया गया। जब श्रीमहाराजजी कथा कीर्तनादि से अवकाश मिलने पर अपनकी कुटी में विश्राम अथवा स्वाध्याय करते थे तो यह अपना घण्टा लिए दरवाजे पर डटा रहता था। फिर तो ब्रह्मा की भी ऐसी शक्ति कहाँ है जो भीतर जा सके। इसके सिवा जब श्रीमहाराजजी सत्सङ्ग में जाते तो यह बड़ी मस्ती से घण्टा बजाता उनके आगे-आगे चलता था। और जब वे सत्सङ्ग में बैठ जाते थे तो यह बड़े जोर से आवाज लगाता था 'श्रीमहाराजजी आ गये हैं, सब लोग सत्सङ्ग में आ जाओ।' इसी प्रकार जब श्रीमहाराजजी कीर्तन करते तो यह मण्डल के चारों ओर घूमकर पहरा देता, किसी को भी बात-चीत नहीं करने देता और जोरों से कीर्तन होने पर स्वयं भी मण्डल के बाहर उछल-उछलकर कीर्तन करने लगता था। इस प्रकार यह दौड़-धूप और पहरे का काम बड़ी तत्पराता से करता था।

इस सरल सेवाभाव से इसकी बुद्धि बहुत स्वच्छ हो गयी थी। यहाँ तक कि कई बार हमारे कौतुकी सरकार भी कोई विशेष उलझन आने पर इससे सलाह किया करते थे। उस समय यह झट से जो मन में आता वही कह देता था और इसकी वह बात प्राय: सच हो जाती थी। कभी-कभी आप इससे व्याख्यान भी दिलाते थे। उस समय यह ठेठ गँवारू भाषा में न जाने क्या क्या बोल जाता था। किन्तु किसी समय तो इसके मुख से बड़े मर्म की बात निकल जाती थी। उसे सुनकर आप खूब हँसते थे। कभी यह मस्ती में आकर कुछ गाने लगता था। तब तो 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानमती ने कुनबा जोड़ा।' वाली कहावत ही चरितार्थ हो जाती थी। उस गाने को सुनकर श्रीमहाराजजी तथा और भी सब लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे।इस प्रकार यह भी श्रीमहाराजजी के दरबार का एक पार्षद ही था, किन्तु था, रुद्रगण की तरह कुछ ऊटपटाङ्ग ही।

किन्तु पीछे इसे सुल्फा और गाँजा पीने का व्यवसन हो गया। चाय की लत बुरी तहर इसके पीछे लग गई है। नशे में यह अनेक प्रकार की बेढङ्गी चेष्टाएँ भी करने लगा। अत: मैंने कई बार इसे समझाया है।

परिशिष्ट

पंजाब यात्रा

पूज्य उड़िया बाबाजी का स्वास्थ्य शिथिल पड़ गया था। उन्हें बहुमूत्र की व्याधि थी, दिन-रात्रि में बीस-पच्चीस बार लघुशङ्का जाना पड़ता था। अपनी शारीरिक निर्बलता के समय में बाबा ने श्रीमहाराजजी को लाने के लिये दो-तीन आदमी भेजे। परन्तु आप एक वर्ष प्रयाग में रहने का निश्चय कर चुके थे, इसलिये पहले तो नहीं गये, तथापि उनके प्रति आन्तरिक प्रेम-भाव होने से अधिक उपेक्षा भी नहीं कर सके। चातुर्मास्य समापत होने पर आप वृन्दावन चले आये तथा बाबा के स्वास्थ्य लाभ के उद्देश्य से दुर्गासप्तशती और हनुमान चालीसा के अनुष्ठान कराये। परन्तु इससे भी उनके स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं पड़ा। अन्त में आपने यह निश्चय किया कि पूज्य बाबा और माताजी सहित कांगड़ा की देवीजी की यात्रा की जाय। साथ ही उन्हें पंजाब प्रान्त के कुछ स्थानों की यात्रा भी करा दी जाय। बाबा और माताजी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इस यात्रा की सारी व्यवस्था अवधूत श्रीकृष्णानन्दजी को सौंपी गई। उन्होंने दिल्ली, कुरुक्षेत्र, अम्बाला और खन्ना के भक्तों को सूचना देकर इन स्थानों पर विश्राम, भोजन और सत्संग का प्रबन्ध कराया। श्री बाबा व श्री माँ के परिकर के साठ-सत्तर आदमी जाने वालों में थे। श्रीमहाराजजी के साथ कीर्तनकार एवं रासमण्डली थी। इसके अतिरिक्त बाबा रामदास और स्वामी अखण्डानन्दजी का परिकर था। सब मिलकर प्राय: सौ आदमी साथ थे।

माघ मास के शुक्लपक्ष में आरम्भ हुई इस यात्रा का पहला पड़ाव दिल्ली था, और यहाँ के मुख्य व्यवस्थापक थे सेठ गुलराज कानोडिया। अन्य सभी कुदसिया घाट पर ठहरे, श्री माँ परिकर सहित डा० जे. के. सेन की कोठी पर ठहरी थीं। एक दिन सेठ जुगलकिशोर बिड़ला के अनुरोध पर रात्रिका कार्यक्रम श्री लक्ष्मीनारायण

मन्दिर में हुआ। यहाँ एक दैवी चमत्कार यह हुआ कि श्रीयमुनाजी की एक धारा जो घाट से लगी हुई थी, वह ऊपर से रुक जाने के कारण बहुत दुर्गन्ध युक्त थी, जिसके कारण घाट पर ठहरना कठिन था। पूर्व में उस दुर्गन्ध की निवृत्ति के लिये सैकड़ों रुपये खर्च किये जा चुके थे। परन्तु सफलता न मिली थी। परम दयालु तो अपने प्रेममियों की व्यवस्था स्वयं ही कर देते हैं। यहाँ भी इस समय यही हुआ। एक दिन ऊपर की ओर इतनी अधिक वर्षा हुई कि उसकी बाढ़ से वहाँ की सारी गन्दगी बह गई। और विशेष आश्चर्य यह कि यह स्थिति केवल तीन दिन रही, मण्डली के प्रस्थान करने पर पुनः वही स्थिति हो गई।

यहाँ से इस मण्डली ने तीन बसों द्वारा कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में करनाल में सनातन धर्म सभा ने स्वागत सत्कार किया। यहाँ कुछ चाय आदि लेकर प्रायः ग्यारह बजे सब लोग कुरुक्षेत्र पहुँचे और गीता-भवन में ठहरे। पहले से कोई व्यवस्था न हो पाने के कारण भोजनादि में बहुत अधिक समय लग गया। अतः आज दिन में कोई प्रोग्राम नहीं हो सका। रात्रि में केवल संकीर्तन हुआ। इससे आपने बहुत खेद व्यक्त किया और जोर देकर कहा हम सभी को एक मन, एक प्राण होकर कार्यक्रमों को चलना चाहिए, तभी हमारी यात्रा सफल हो सकती है। यहाँ तक कह दिया कि मेरा मन तो ऐसा होता है कि बाबा के हाथों में झाँझ दे दूँ। आपके इस समय के हार्दिक उद्‌गारों पर सबसे अधिक ध्यान बाबा ने ही दिया। यों तो वह पहले भी आपके प्रत्येक कार्यक्रम में नियमित रूप से सम्मिलित होते थे। अब्र छविकृष्ण से झांझ भी ले ली, और सङ्कीर्तन के समय उन्हें बजाने लगे, किन्तु पूर्वाभ्यास न होने से सबके साथ उनका मेल नहीं बैठता, अतः फिर छोड़ दी।

इसके पश्चात् तीन दिन का कार्यक्रम अम्बाला छावनी में हुआ। यहाँ स्वागत-सत्कार की बड़ी तैयारी थी। रामलीला एवं सत्संग का अच्छा क्रम चला। आगे यह दल खन्ना पहुँचा। यहाँ त्रिवेणीपुरी नाम के सिद्ध सन्त विराजमान थे। अवधूतजी का उनमें गुरु भाव था। उनकी ब्रह्मनिष्ठा बड़ी ही बढ़ी चढ़ी थी। वे सत्संगियों से बात करते समय प्रत्येक शब्द का अर्थ ब्रह्मपरक करते थे। लोग उन्हें

साक्षात् नानकदेव का अवतार मानते थे। उनकी बालवत् निर्विकारिता और सरलता सभी को आकर्षित करती थी। उनकी सन्निधिमात्र से चित्त समाहित हो जाता था। उन्हीं के पास सबके विश्राम और सत्संगादि की व्यवस्था हुई। उनके दर्शन करके सभी को बड़ा आनन्द हुआ। इन महापुरुषों से मिलकर वे भी बड़े प्रसन्न हुए। यहाँ नौ दिन का प्रोग्राम हुआ। खूब भीड़-भाड़ रही। लोगों का उत्साह सराहनीय था।

अब इससे आगे होशियारपुर होकर कांगड़ा जाना था। वहाँ इतने लोगों को साथ ले जाना सम्भव नहीं था। अत: विचार हुआ कि प्रमुख कीर्तनकार, श्री बाबा एवं श्री माँ के निजी सेवकों को छोड़कर सबको यहीं से वापस कर दिया जाय। इस प्रकार केवल पच्चीस-तीस आदमी ही आगे जाने वाले थे। सायंकाल में श्री बाबा, श्री माँ और कुछ प्रमुख व्यक्तियों को लेकर श्रीमहाराजजी सरहिन्द में वह स्थान देखने गये जहाँ गुरुगोविन्दसिंह के दो पुत्रों को जीवित ही दीवार में चिनवा दिया गया था। श्रीबाबा का शरीर पहले से भी कमजोर था ही, इधर अब तक के यात्राश्रम का आपके स्वास्थ्य पर और अधिक प्रभाव पड़ा तथा ज्वर हो आया। तो भी वह धैर्य पूर्वक साथ देते रहे। उसी समय ब्रह्मचारी आञ्जनेय के संकेत से श्रीमाँ की दृष्टि श्री बाबाजी की ज्वरग्रस्त मुखाकृति पर पड़ी। और तभी फिर श्री माँ ने श्रीमहाराजजी को यह बात सुझाई कि बाबा की अधिक अस्वस्थता से अब आगे की यात्रा स्थगित कर देना ठीक है। ऐसा ही हुआ। रात्रि में ही परिकर को रेल द्वारा श्रीवृन्दावन के लिये विदा कर दिया गया। और दूसरे दिन सुबह सोलन के राजा साहब की मोटर से बाबा, माताजी, स्वामी अखण्डानन्दजी सहित तथा श्रीमहाराजजी निजी सेवकों के साथ एक दूसरी कार से वृन्दावन के लिये वापस हुये।

वृन्दावन पहुँचने पर बाबा को और अधिक तीव्र ज्वर हुआ। अनेकों उपचार हुये। तब धीरे-धीरे आप स्वस्थ हुये। होली समीप आ गई थी। पूजनीया श्री श्री माँ अभी वृन्दावन में ही थीं, अत: इस वर्ष सन् १९४८ का होली का उत्सव यहीं हुआ।

पूज्य उड़िया बाबा का महाप्रयाण

उत्सव सानन्द समाप्त हुआ। श्री माँ काशी चली गई और स्वामी अखण्डानन्द जी कुछ भक्तों के आग्रह से अमृतसर चले गये। श्रीमहाराजजी ने पहले एक वर्ष तक झूसी (प्रयाग) में रहने का निर्णय किया था। ब्रह्मचारी प्रभुदत्त जी इन दिनों में नवसंवत्सरोत्सव का आयोजन कर रहे थे, अतः उनके आग्रह से आप वहाँ चले गये। पूज्य बाबा का शरीर अभी दुर्बल था अतः वे श्री वृन्दावन में ही रह गये।

झूसी पहुँचने पर उत्सव आरम्भ हो गया। श्री माता जी आपके पहले ही वहाँ पहुँच चुकी थीं। इतने में ही मङ्गलवार अमास्वया को वृन्दावन से तार मिला कि बाबा का निर्वाण हो गया। सबको बड़ा आघात लगा और आश्चर्य भी हुआ। सहसा विश्वास भी नहीं होता था क्योंकि आप अभी परसों ही उन्हें सकुशल छोड़कर आये थे। अकस्मात् यह क्या हुआ। दूसरे दिन अमृतबाजर पत्रिका में पढ़ा गया कि उनके शिष्य ने ही उनकी हत्या कर दी। यह और भी विचित्र बात हुई। बाबा तो अजात शत्रु थे। उनके साथ ऐसा कैसे हुआ ? यथार्थ घटना का पता लगाने के लिये वैकुण्ठदास को भेजा गया। उन्होंने लौटकर सुनाया कि चतुर्दशी को सायंकाल कथा-मण्डप में सबकी उपस्थिति में ठाकुरदास ने पीछे से गंड़ासे से प्रहार करके उनकी हत्या की। यह सुनकर आप बड़े मर्माहत हुये। यह तो वर्षों से बाबा की सेवा में रहता था और इसके साथ कोई दुर्व्यवहार भी तो नहीं हुआ। उससे अपने ही द्वारा कैसे ऐसा कुकर्म हुआ। पर अब क्या हो। जो होना था वह हो ही गया था। कभी-कभी विधाता का विधान बड़ा क्रूर होता है।

इस घटना के कारण सभी के हृदय अत्यनत व्यथित हुये। आप तुरन्त वृन्दावन चले आये। वृन्दावन में सब लोग बड़ी ही आतुरता से आपके आगमन की प्रतीक्षा में थे। स्वामी अखण्डानन्दजी तथा बाबा के अनेकों भक्त पहले ही आ चुके थे। बाबा के निर्वाणोत्सव की रूप रेखा तथा आश्रमीय व्यवस्था आदि समस्यायें थीं। तृतीया को सायंकाल जिस समय श्रीमहाराजजी वृन्दावन पहुँचे, उस समय पूरा आश्रम

शोकागार बना हुआ था। जिस कथा मण्डप में अनेकों भगवल्लीलायें व कथा-कीर्त्तनादि हुये थे, उसी में ऐसी दुर्घटना हुई। सब लोग फूट-फूटकर रोने लगे। आपने सभी को सान्त्वना दी। और आगे के कार्यक्रम पर विचार किया। दो चार दिन में श्रीमाताजी भी आ गईं।

पूज्य उड़िया बाबा का इस प्रान्त में बड़ा भारी प्रभाव था। वे अनेकों के केवल गुरुदेव ही नहीं आराध्यदेव भी थे। अत: निर्वाणोत्सव भी उसी अनुरुपता से हुआ। पं० भीमसेन श्रीवृन्दावन के अच्छे कर्मकाण्डी विद्वान् थे। उनकी ही अध्यक्षता में श्री बाबा के यतिजनोचित और्ध्वदैहिक कार्य किये गये। स्वामी अखण्डानन्दजी ने श्रीमद्भागवत का साप्ताहिक प्रवचन किया। पूर्णिमा के दिन बृजमण्डल के महात्माओं को भण्डारा दिया गया। इस अवसर पर पधारे महापुरुषों में स्वामी करपात्रीजी, स्वामी शरणाननदजी और महर्षि कार्तिकेयजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उड़िया बाबा का निर्वाण चैत्र कृ० १४ सं० २००५ वि० को हुआ था। पूर्णिमा तक उनका निर्वाणोत्सव हुआ। उसके पश्चात् सब लोग जहाँ तहाँ चले गये। वैशाख शुक्लपक्ष में देहरादून में श्री माँ का जन्मोत्सव था। महाराजश्री कुछ स्थानों में होकर वहीं पहुँच गये। स्वामी अखण्डानन्दजी भी यहाँ से प्रथम तो कुछ सन्तों के साथ गोवर्धनादि गये, बाद में वे भी देहरादून पहुँचे और जन्मोत्सव में श्रीमद्भागवत का साप्ताहिक प्रवचन किया। गुरुपूर्णिमा पर श्रीस्वामीजी एवं श्रीमहाराजजी वृन्दावन पधारे।

पूज्य बाबा की अनुपस्थिति में यह पहली गुरुपूर्णिमा थी। भक्तों के हृदय अत्यन्त वियोग संतप्त थे। सबने भरे हृदय से उनके चित्र का पूजन किया। अब वह चित्रपट ही बाबा का प्रतीक था और तब से भक्तगण उसी में उनकी झांकी करते हैं।

इस वर्ष श्रीमहाराजजी एवं स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी अधिकतर यहीं रहे। स्वामीजी नियमित रूप से श्रीमद्भागवत कथा सुनाते रहे तथा रासलीला, सङ्कीर्तन आदि पूर्ववत् चलता रहा।

भिरावटी में एक वर्ष

पूज्य उड़िया बाबा के द्वितीय निर्वाणोत्सव एवं इस वर्ष के होली महोत्सव की समाप्ति पर श्रीमहाराजजी वृन्दावन से भिरावटी पधारे। और एक वर्ष तक यहीं रहने का निश्चय किया। यहाँ आप अन्य कार्यक्रमों के साथ मुख्यत: कई लोगों के साथ मिलकर श्रीमद्भागवत विचारा करते थे। उनमें प्रमुख थे। पं० केशवदेव, पं० भगवद्दत्त, पं० जयशंकर और पं० रामदत्त यह सब भागवत की विभिन्न टीकायें लेकर बैठते थे प्रत्येक श्लोक का तुलनात्मक विचार किया जाता था। इन दिनों यहाँ अन्य विशेष प्रवृत्ति न थी। सायंकाल में सबके साथ मिलकर कबड्डी जमाल शाही चील-झपट्टा आदि कई प्रकार के स्वास्थ्य वर्द्धक खेल खेलते थे। इसमें आप बालकों की तरह ही नि:सङ्कोच प्रसन्न आनन्दित रहते।

यहीं आपके पास ब्रह्मचारी रामस्वरूपजी जब से आये तब से आपकी सेवा में संलग्न हैं। ये जिला कानपुर के उट्टा नामक गाँव के रहने वाले हैं। पढ़े-लिखे कुछ थे नहीं, गायें चाराया करते थे। पूर्व संस्कारों से सरल प्रकृति के साथ कुछ भजन भाव भी था इनके एक साथी सन्यासी हो गये थे। अब ये दण्डी स्वामी रामाश्रमजी कहलाते थे। एक दिन ये उनके पास आकर रात्रि में भी वहीं रहे। यहाँ इनमें अश्रु, पुलक, स्वेद आदि कई सात्विक भावों का परिवर्त्तन उदय हुआ। अत: घर लौटकर अधिकतर भगवद्भजन करने लगे।

इनका गाँव नहर के किनारे था। एक दिन ये बड़ी मस्ती से नहर के किनारे जा रहे थे। उस समय इन्हें एक परम तेजस्वी सन्त के दर्शन हुए जिनका मुखमण्डल स्निग्ध, शीतल प्रकाश युक्त था। उनके दर्शन से इन्हें बड़ा आनन्द हुआ, किन्तु थोड़ी ही देर में वे अर्न्तधान हो गये। यह बात उन्होंने स्वामी रामाश्रम से जाकर कही। उन्होंने कहा 'यह तो बड़े सौभाग्य की बात है, तुम्हें सन्तरूप में श्रीभगवान् के दर्शन हुए हैं।' इन्होंने पूछा 'क्या फिर भी मुझे उनके दर्शन होंगे?' वे बाले 'होंगे तो अवश्य परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कब होगे।'

तब से ये उन सन्त भगवान् की खोज में रहने लगे। घर छोड़ कलकत्ता से हरिद्वार तक गङ्गा किनारे विचरते रहे। इस बीच अनेकों सन्तों का दर्शन हुआ किन्तु कहीं श्रद्धा न जमी। सन् १९५० के हरिद्वार के कुम्भ में इन्हें पुनः स्वामी रामाश्रमजी मिले। इनका विचार बद्रिकाश्रम की ओर जाने का था, परन्तु दण्डीस्वामी ने इन्हें गढ़ मुक्तेश्वर की ओर जाने को कहा। इधर चलकर यह उससे भी आगे भेरिया पहुँचे। वहाँ भृगुक्षेत्र के प्रबन्धक जवालासिंहजी ने इन्हें श्रीमहाराजजी के दर्शन करने की सलाह दी। उनके विशेष आग्रह से ही इस समय ये भिरावटी आए। यहाँ श्रीमहाराजजी के दर्शन करते ही इन्हें स्मरण हुआ कि ये तो वे ही सन्त हैं जिन्हें मैं इतने दिनों से खोज रहा था। किन्तु अपने इस निर्णय पर इन्हें पूरा विश्वास नहीं हुआ। तब इन्होंने विचार किया कि यदि वे स्वयं बुलाकर मुझे अपने साथ खेल में सम्मिलित कर लें तो मैं समझूँगा कि सचमुच ये मेरे गुरुदेव हैं। बस, थोड़ी ही देर में श्रीमहाराजजी ने इन्हें बुलाया और व्यासजी को अलग करके अपने साथ रख लिया। महाराजजी ने पहले इन्हें बाबा की सेवा में रखा और जब वे अपने स्थान मेहुआ को चले गये तो इनकी विशेष रुचि देखकर अपने पास रख लिया।

भिरावटी में ही आपने सन् १९५१ का होली का उत्सव किया। पूजनीया माताजी अपने परिकर सहित पधारीं और कुछ सेवकों के साथ स्वामी अखण्डानन्दजी भी पधारे। होली के पश्चात् पूज्य बाबा का निर्वाणोत्सव श्रीवृन्दावन में करना था, अतः श्रीमहाराजजी, श्री माँ एवं श्रीस्वामीजी सहित, वृन्दावन पधारे। यहाँ आने पर इस वर्ष भी पूज्य बाबा का निर्वाणोत्सव विशेष समारोह से हुआ।

पंजाब और हिमाचल प्रदेश में

पूज्य उड़िया बाबा का निर्वाणोत्सव सानन्द समाप्त हुआ, इसके पश्चात् आगामी कार्यक्रम पर विचार हुआ। ढाई वर्ष पूर्व श्रीबाबाजी की अस्वस्थता से पञ्जाब

की यात्रा अधूरी रह गई थी। इधर श्री माताजी को मण्डी और सुकेत के राजाओं का निमन्त्रण था और इन्हीं दिनों उनका जन्मोत्सव भी होना था। अतः यह निर्णय हुआ पहले सब लोग होशियारपुर जायें फिर अम्बाला में श्री माँ का जन्मोत्सव हो और पश्चात् मण्डी, सुकेत तथा कुल्लू आदि स्थानों की यात्रा की जाय।

इस निश्चय के अनुसार सब लोग होशियारपुर गये। अवधूत श्रीकृष्णानन्दजी ने यहाँ की व्यवस्था की। श्री माताजी का जन्मोत्सव वहीं आरम्भ हो गया, और अम्बाला आकर उसकी पूर्णाहुति हुई। खन्ना वाले स्वामी त्रिवेणीपुरीजी महाराज दोराहा से उसमें सम्मिलित हो गये थे। यहाँ से वे सोलन चले गये तथा और सब लोग हिमाचल प्रदेश की यात्रा के लिये चले। मण्डी और सुकेत के राजा तथा राज परिवारों ने इस सन्त मण्डली का खूब सत्कार किया वे स्वयं अपने हाथों से ही श्रीमहाराजजी व श्रीमाताजी की सेवा करते। यहाँ तक कि श्रीराजा साहब स्वयं मोटर चलाते तथा चँवर डुलाते थे। मण्डी और सुकेत के अतिरिक्त बैजनाथ, कुल्लू, मनाली, रिवाल्सर आदि कई स्थानों की यात्रा हुई। फिर आप सबको छोड़कर नगरोटा चले आये। यहाँ आपके गुरुदेव के साथी स्वामी श्रीअनन्तानन्दजी बिराजते थे। कुछ दिन उनके पास रहे। फिर होशियारपुर होकर गुरुपूर्णिमा पर श्रीवृन्दावन आ गये।

दक्षिण यात्रा

यहाँ एक वर्ष तक लगातार स्वामी अखण्डानन्दजी का श्रीमद्भागवत प्रवचन चला। उसमें श्रीमहाराजजी ने नियमित रूप से भाग लिया और इसके बाद कुछ भक्त परिकर सहित श्रीमाताजी के साथ दक्षिण की यात्रा की। आप पहले कभी इस ओर नहीं गये थे। जगन्नाथपुरी के श्रीराधाकान्त मठ में अवधूत श्रीकृष्णानन्दजी को विशेष भावावेश हुआ। श्रीमहाराजजी भी अत्यन्त आविष्ट चित्त होकर श्रीमहाप्रभुजी की लीलाओं का वर्णन करने लगे। उस समय आपकी दिव्यमंगल देह
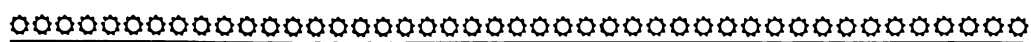
में स्वेद, अश्रु, कम्प और स्वरभंग आदि अनेक सात्विक विकार प्रकट हो गये। इस समय प्राय: एक सप्ताह तक आपकी ऐसी ही स्थिति रही। उन दिनों आप श्रीमहाप्रभु की भाँति विरह-वेदना से बहुत व्याकुल रहे थे।

इसी प्रकार मद्रास में श्रीरामलिंगम आश्रम में भी आपको भावोन्माद की स्थिति प्राप्त हो गई थी। वहाँ आप रामनाम की महिमा का वर्णन करते हुए बड़े गम्भीर स्वर से रामनाम उच्चारण करने लगे। उस नामघोष से सभी के हृदय आनन्दोलित हो उठे थे। और ऐसा जान पड़ने लगा मानो सारे ब्रह्माण्ड में वह नाम ध्वनि गूँज रही है। इसी प्रकार अन्य कई स्थानों पर भी विचित्र दैवी चमत्कार हुए।

श्रीमहाराजजी ने इस यात्रा में अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी रमण महर्षि आश्रम, अरुणाचल, आद्य शंकराचार्य की जन्मभूमि कन्याकुमारी, पण्ढरपुर में श्रीविठ्ठल भगवान्, आलन्दी में ज्ञानेश्वर समाधि तथा नासिक पंचवटी आदि अनेक तीर्थस्थानों का दर्शन किया। श्री माँ के साथ आपकी यह दक्षिण यात्रा बहुत ही आनन्द दायिनी रही।

पुनर्व्यवस्थित हरिधाम बाँध

पूर्व प्रसंगों में श्री महाराजजी की बाँध से उपरामता का वर्णन आ चुका है। सन् १९४७ की गुरुपूर्णिमा पर आप श्री प्रभुदत्तजी के आश्रम झूसी प्रयाग में रह रहे थे। उसी समय मोलनपुर गाँव सहित बाँध का संकीर्तन भव आदि काफी क्षतिग्रस्त हो चुका था। इसके बाद आप वर्षों इधर नहीं पधारे। 'सन्त हृदय नवनीत समाना।' रामचरितमानस की इस उक्ति के अनुसार श्रीमहाराजजी खादरवासी भोले-भक्तों पर पुन: करुणार्द्र हुए। इनके द्वारा त्रुटियों के लिये क्षमाप्रार्थी होकर अत्यन्त अनुनय-विनय करने पर लगभग १२ वर्ष के बाद फिर खादर में पधारे।

इस प्रसंग में प्रथम श्रीमहाराजजी परिकर सहित जिरौली पधारे। यहाँ आपके अनन्य भक्त कुँवर गुलाबसिंह तथा उनकी दोनों बहिनों ने एक सुन्दर आयोजन किया था। जिसमें प्रतिदिन श्रीरामस्वरूपजी की मण्डली द्वारा रासलीला, कथा एवं सामूहिक संकीर्तन प्रायः एक महीने तक लगातार चला। इस कार्यक्रम में खादरवासी भक्तों का ताँता लगा रहता था। अतः उन सभी की प्रार्थना पर यहाँ से भिरावटी जाते हुए आपने मध्याह्न में कुछ समय बाँध पर विश्राम किया। प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण होने के बावजूद बाँध की यह जीर्ण दशा आपसे देखी नहीं गई। परन्तु इस समय कार्यक्रम आगे जाने का निश्चित था।

बाँध पर भोजन, विश्राम के बाद कुछ समय के लिये मोलनपुर पधारे तथा वहाँ के एक भक्त हरिनाम के कुऐं का उद्घाटन किया। इस भक्त ने वर्षों पूर्व यह कुआ बनवाकर अब तक इसका जल इसी प्रतीक्षा में नहीं पिया था कि जब तक हमारे श्रीहरि भगवान यहाँ पधार कर कुऐं का जल नहीं पियेंगे तब तक कोई भी दूसरा इसका जल नहीं पियेगा। यहाँ तक कि उसके इसी निमित्त अपनी दाढ़ी-जटा रखा रखे थे, आज श्रीहरि भगवान के पदार्पण पर वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ।

श्रीमहाराजजी ने यहीं नहीं, ऐसे ही अनेक अवसरों पर अपने भक्तों की भावना को पूरा किया है। आज रात्रि गवाँ रुके और भक्त रामेश्वर के यहाँ रामार्चा की तथा अगले दिन यहाँ से भी आगे चलकर बेलबाबा ❋ पधारे। यहाँ के हरि भक्तों की प्रसन्नता का वर्णन कर ही कौन सकता। उन सभी ने मिलकर शीघ्र ही भण्डारा किया। इसके बाद आप पूर्व निर्धारित प्रोग्राम से भिरावटी पहुँचे। यहाँ पर तो सत्संग, कीर्तन, कथा व लीलाभिनय का कार्यक्रम महीनों चला। इस अवसर पर श्रीकृपाशंकर रामायणी फर्रूखाबाद वालों की मण्डली द्वारा रासलीला होती थी। जो बहुत भावपूर्ण थी। श्रीमहाराजजी इससे अत्यधिक प्रसन्न हुये। इस मण्डली की आपके प्रति सहज

❋ इस क्षेत्र का प्रारम्भिक संकीर्त्तन व लीलाभिनय स्थल जिसकी चर्चा पूर्व में नववृन्दावन नाम से दी जा चुकी है।

प्रीति बड़ी ही विलक्षण थी। आगे आप श्री श्री माँ के जन्मोत्सव में भाग लेने हेतु कलकत्ता पधारे।

अब जैसा कि श्रीमहाराजजी का सङ्कल्प बाँध सुधारने का बन चुका था, उसी आधार पर भक्तों में जागृति हुई। और उन सभी ने मिलकर नष्टप्राय सत्सङ्ग-भवन को, जो कि पूर्व में कच्चा फूस का था, शीघ्रातिशीघ्र नव निर्मित किया। हरि भक्तों ने बड़ी ही लगन व उत्साह से अपने आराध्यदेव के आगमन की तैयारी में बाँध की लिपाई-पुताई सफाई की। श्रीमहाराजजी के पधारने पर सभी भक्तों से निजी कुटियों को सामूहिक रूप से पुनः निर्मित किया। भोले-भक्तों के नव-अनुराग से आकर्षित होकर अब तो आप वर्ष में प्रायः दो बार बाँध पर पधारने लगे।

आपके निवास की पुरानी कुटी बाँध से नीचे होने के कारण उसमें अत्यधिक सीलन रहती थी। अतः भक्तों का विचार हुआ महाराजश्री की कुटी बाँध से ऊपर होनी चाहिये। अब जब श्रीमहाराजजी कार्तिक में बाँध पर पधारे तब कुटिया का निर्माण कार्य आरम्भ हो गया और आपके रहते-रहते बहुत सुन्दर कुटी जिसमें आजकल आप विराजते थे, उसको तैयार किया। धीरे-धीरे बाँध पर दो मन्दिरों का भी निर्माण हुआ। जिसमें बाँधेश्वर (शङ्कर भगवान्) व हनुमत बन्धावारे विराजमान हैं। इसमें श्रीशङ्कर भगवान् की प्रतिष्ठा वयोवृद्ध स्वामी शास्त्रानन्दजी महाराज के कर-कमलों से हुई।

होशियारपुर आश्रम में निर्माण कार्य

सन् १९५१ के पश्चात् प्रायः प्रति वर्ष श्रीमहाराजजी होशियारपुर आश्रम में जाने लगे। यहाँ के कुछ भक्तों प्रमुखतः चौधरी काशीराम व लाला फकीरचन्द आदि ने श्रीमहाराजजी से एक सत्सङ्ग-भवन निर्माण की प्रार्थना की। क्योंकि नियमित सत्संग के लिये सभी को इसकी अत्याधिक आवश्यकता प्रतीत हो रही थी।

श्रीमहाराजजी की स्वीकृति पाकर उसी समय उपस्थित भक्तों से दस बारह हजार रुपया भी एकत्रित हो गया। आगे उसी वर्ष राधाष्टमी के बाद जब श्रीमहाराजजी पुनः होशियारपुर पधारे, तब विजयादशमी से निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। इस निर्माण कार्य में पञ्जाब भवन-निर्माण विभाग के चीफ इञ्जिनियर पी० एल० वर्मा व दिल्ली के एक रिटायर्ड इञ्जिनियर रायबहादुर नारायणदास का प्रमुख परामर्श रहा।

निर्माण कार्य की देखभाल प्रधानतया श्री जोगेन्द्रदत्त को सौंपी गई थी ये श्रीमहाराजजी के एक प्रमुख प्रेमी भक्त श्री नाथूरामजी के पुत्र हैं। एक विशेष दुर्घटना के कारण इनके मेरुदण्ड की हड्डी टूट गई थी और अनेकों उपचार कराने पर भी अभी यह स्वस्थ नहीं हुये थे। घटना के छः वर्ष बीत जाने पर भी चलने फिरने में असमर्थ थे। यहाँ तक कि कुर्सी आदि के बिना भूमि पर स्वयं बैठ भी नहीं सकते थे। किन्तु श्रीमहाराजजी की कृपा से इस काम में लगने पर इनकी सभी व्याधियाँ निवृत्त हुई और पूर्णतया स्वस्थ हुये।

इसी प्रकार इस कार्य के हिसाब-किताब का काम आपने पं० राजाराम एडवोकेट को सौंपा था। श्रीमहाराजजी से प्रेरित होकर इन्होंने इस सेवा में बड़ी श्रद्धा व लगन का परिचय दिया। एक दिन कस्सी लेकर स्वयं जुट गये। पूर्वाभ्यास न होने से सायंकाल ज्वर हो आया। श्रमाधिक्य से ही ऐसा हुआ था,अतः श्रीमहाराजजी ने दालचीनी इलायची व पिप्पला भेजकर उसकी चाय पीने को कहलाया इससे ज्वर तो शान्त हो गया किन्तु थकान फिर भी रही। भक्तवत्सल श्रीमहाराजजी ने उन्हें एक मन्त्र बतलाकर कहा, ''इसे जपने से तुम्हारे सभी दुःख-द्वन्द्व दूर हो जायेंगे।'' और हुआ भी ठीक ऐसा ही।

इन्हें बचपन से ही हुक्का पीने की कुछ आदत पड़ी हुई थी कि शौच जाने से पूर्व प्रातः सायं दोनों समय एक-एक घण्टा इसी कार्य में लगाना पड़ता था। मंत्र जप से शारीरिक पीड़ा तो दूर हो ही गई, तथापि इन्होंने सोचा कि यह हुक्का भी दुःखदायी बन्धन है, इससे भी छुटकारा मिलना चाहिये। तदर्थ मंत्र जप से यह दुर्व्यसन भी सदा-सदा के लिये छूट गया।

इस सत्सङ्ग भवन निर्माण कार्य की पूर्त्ति फाल्गुन पूर्णिमा को श्रीमहाराजजी ने निश्चित कर दी थी। इतना ही नहीं, यह कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो, इस निमित्त प्रतिदिन श्रीव्यासजी द्वारा रामार्चा प्रारम्भ करा दी। आरम्भ में इसकी महत्त्व कथा आप स्वयं सुनाया करते थे। बाद में श्रीव्यासजी द्वारा यह रामार्चा कार्य की पूर्ति तक बराबर चलती रही।

आपकी अस्वस्थता—प्रवृत्ति कार्यों में प्राय: यह भी देखा गया है कि कुछ न कुछ विघ्न भी आ ही जाते हैं। परन्तु महापुरुष इसे प्रभु का मङ्गलमय सन्देश ही स्वीकार करते हैं। वस्तुत: प्रवृत्ति में ये दु:ख न होते तो कोई विरले ही भगवद् भजन में लगते। इस शुभ कार्य में सबसे बड़ा विघ्न भी श्रीमहाराजजी की अस्वस्थता उत्पन्न हुई। वृद्धावस्था तथा अधिक श्रम के कारण पौरुष ग्रन्थि (Prostategland) बढ़ गई। इससे मूत्र त्याग में कठिनता हुई। अत: स्थानीय डाक्टरों ने ऑपरेशन कराने की सलाह दी। अमृतसर मेडिकल-कालेज में आपके परिचित डा० हेतराम थे। अत: वहीं जाने का निर्णय हुआ। साथ में श्रीहरेकृष्णजी, श्रीराजारामजी व श्रीयोगेन्द्रदत्तजी गये, वहाँ सरकारी अस्पताल के एक विशेष बार्ड में रहे। यहाँ भी उपचार के बावजूद कष्ट बढ़ता ही गया। अत: आप वहाँ से उपराम हो गये, और राजारामजी से स्पष्ट कर दिया कि मुझे चण्डीगढ़ या होशियारपुर कहीं भी ले चलो, अब यहाँ नहीं रहना है।

इससे राजारामजी बड़े ही असमंजस में पड़े। अभी वह कुछ निर्णय न ले सके थे। कि इतनमें ही कमरे की किवाड़ें खुलीं और पूजनीया श्री माँ ने आकर प्रवेश किया। साथ में स्वामी परमानन्द व नारायणदास जी भी थे। बात यह थी कि राजारामजी ने आपकी अस्वस्थता के विषय में विन्ध्याचल के पते पर माताजी को लिख दिया था। स्वामी परमानन्दजी ने बताया कि हम लोग विन्ध्याचल पहुँचे ही थे, अभी बिस्तर भी नहीं खुल पाये थे कि आपका पत्र मिलते ही माँ तुरन्त वहाँ से चल दीं। श्रीमहाराजजी के प्रति श्री माँ का ऐसा सहज स्नेह देखकर सभी गद्‌गद् हो गये। राजारामजी के नेत्र अश्रुसिक्त थे, उन्होंने वस्तु स्थिति से माँ को परिचित कराया।

तब श्री माँ ने कहा कि यदि ऑपरेशन ही आवश्य होगा तो दिल्ली पहुँचने पर डा० सेन से करायेंगे। और उसी दिन ३० दिसम्बर सन् १९५५ को श्री माँ के साथ आप दिल्ली स्थिति डा० एस० के० सेन के यहाँ पहुँचे। पूर्ण परीक्षण के बाद डा० सेन ने भी ऑपरेशन जरूरी बताया। और इसके लिये अस्पताल में ही रखना उचित था। अत: डा० सेन के निजी अस्पताल के एक विशेष वार्ड में रखकर उपचार चला। ऑपरेशन बड़ा ही सफल रहा। श्रीमहाराजजी इस समय २१ दिन नर्सिंगहोम में रहे। उन दिनों आपकी सेवा में हरेकृष्ण जी थे। समय-समय पर देखभाल और आवश्यक व्यवस्था विपिनचन्द्र मिश्र एडवोकेट भी करते रहते थे। स्वस्थ होने पर कुछ दिनों श्रीमाताजी के आश्रम में रहे। श्रीमहाराजजी को नर्सिंगहोम छोड़कर आश्रम आते समय श्री माँ ने प्रसन्नता पूर्वक सभी कर्मचारियों को श्रीमद्भागवत ग्रन्थ की प्रतियाँ दीं। अपने प्रिय डा० तथा उनकी पत्नी को इसके स्वाध्याय की विशेष प्रेरणा दी।

इधर होली के उत्सव का समय निकट आ गया था और होशियारपुर के निर्माण कार्य होने की तब तक सम्भावना न थी, अत: दो सप्ताह पूर्व आप श्रीधाम-वृन्दावन पधारे। श्रीमहाप्रभु के जन्मोत्सव होने पर आपने होशियारपुर जाकर आश्रम के नवनिर्मित सत्संग भवन का उद्‌घाटन किया। यहाँ के उद्‌घाटन उत्सव की समाप्ति करके श्रीउड़िया बाबा के निर्वाणोत्सव पर पुन: वृन्दावन वापस हुए।

श्रीहरेकृष्णजी—ऊपर कहा गया है नर्सिंग होम में हरेकृष्णजी श्रीमहाराजजी की सेवा में रहते थे। अत: यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय आवश्यक है। इनका जन्म पूर्व बंगाल में हुआ था। बाल्यावस्था में इन्होंने भावुक भक्तों के मुख से सुना कि भगवान् श्रीवृन्दावन-धाम में नित्य-निवास करते हैं। प्रभु मिलन सम्बन्धी भक्ति भावना में अवस्था भेद नहीं, क्योंकि वह जन्म-जन्मान्तरों की संजोई सच्ची निधि है। इसी प्रकारके पूर्व संस्कारों से यह भी भगवद् दर्शन की लालसा से थोड़ा-सा खर्च लेकर वृन्दावन चले आये, यहाँ पहले अपने एकपूर्व सम्बन्धी के घर ठहर कर ये मन्दिरों में भगवद्दर्शन तथा आश्रमों में कथा-कीर्तन सुनकर आनन्द से रहने लगे।

यहीं स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज के श्रीमद्‌भागवत प्रवचन में आने पर शनैः-शनैः श्रीमहाराजजी के सत्संग का आकर्षण हुआ।

श्रीमहाराजजी बंगला ग्रन्थों की कथा करते समय कभी-कभी इनसे किसी शब्द का अर्थ पूछ लेते थे। इस प्रकार सम्पर्क बढ़ता ही गया आगे चलकर पूर्व पुण्यों से आपका निकटतम सेवा-सान्निध्य प्राप्त हुआ। स्वभाव से यह विनम्र, सुशील व सहिष्णु हैं ही; अल्प समय में ही परिकर में इन्होंने प्रमुख स्थान पाया। आप शिल्प कला, चित्रकला, मूर्ति निर्माण, पाक विद्या व परिष्कार में प्रख्यात हैं। महोत्सवों में यह बड़ी ही सुन्दर झाँकी सजाते। श्रीमहाराजजी की सेवा में आये उपहोरों की उचित व्यवस्था करते, निजी पत्रों के उत्तर देते और समागत सन्तों को स्वागत सत्कार द्वारा पूर्ण सन्तुष्ट रखते। श्रीमहाराजजी की छोटी-२ सेवाओं को भी बड़ी ही श्रद्धा व लगन से करते। आप भी इनकी सेवाओं से इतने अधिक प्रसन्न थे कि कभी-कभी उसे श्रीमुख से भक्तों के समक्ष प्रकट भी कर देते हैं।

दिल्ली का भगवद्‌गुणगान महोत्सव

सम्वत् २०१७ के कार्तिक मास में श्रीमहाराजजी बाँध पर रहे। इधर कुछ वर्षों से सुप्रसिद्ध उद्योगपति जयदयाल डालमिया की श्रीचरणों में गहरी श्रद्धा हो गई थी। इस समय उनकी धर्मपत्नी कृष्णादेवी अपने पारवारिक सदस्यों सहित बाँध पर आईं। उनके साथ प्रसिद्ध रामायणी रामभक्त कपीन्द्रजी भी थे। कृष्णादेवीजी ने प्रार्थना की कि इस वर्ष श्रीचैतन्य महाप्रभु जन्मोत्सव दिल्ली में ही किया जाय। माघ शुक्ल ५ श्रीविष्णुप्रियाजी की जन्मतिथि है। तभी उत्सव आरम्भ हो और फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा श्रीमहाप्रभुजी की जन्मतिथि पर उसकी पूर्णाहुति हो।

दिल्ली में इस उत्सव का प्रस्ताव पहले भी कई बार श्रीमहाराजजी के समक्ष आ चुका था। अतः इस बार आपने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। स्वीकृति मिलने पर उत्सव की तैयारी होने लगी। इसके लिए एक समिति बनाई गई। उसके अध्यक्ष हुए। श्रीविपिनचन्द्र एडवोकेट और मन्त्री स्वयं श्री कपीन्द्रजी। भोजनालय व्यवस्था ओंकारमल सर्राफ व आत्मारामजी को सौंपी गई थी। डालमिया परिवार का इसमें विशेष सहयोग रहा।

महोत्सव का आयोजन दरियागंज के बाहर फिरोजशाह कोटला के मैदान में किया गया। विशाल पण्डाल में दर्शकों के बैठने का पर्याप्त स्थान था। आगन्तुकों के ठहरने के लिये आस-पास में ही डेरे-रावटियां लगा दी गई थीं और भोजन भण्डार था।

श्रीमहाराजजी बसन्तपंचमी के एक दिन पूर्व बम्बई से पधारे। परिकर के अधिक लोग तो डालमिया जी की कोठी पर ठहरे तथा हरेकृष्णजी व पं० सुन्दरलाल* आपकी सेवा में १० श्रीराम रोड, लक्ष्मी देवी की कोठी में जहाँ आप ठहरे थे, रहे। उत्सव में आमन्त्रित सभी सन्त-विद्वान् इसी प्रकार विभिन्न स्थानों पर ठहरे। पूजनीया श्री माँ अपने दिल्ली स्थित आश्रम में ठहरीं। बाबा रामदासजी, आचार्य चक्रपाणिजी, ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी, स्वामी कृष्णानन्दजी बम्बई वाले, श्रीसूर्यनारायण की कोठी पर तथा रासमण्डली, स्वामी प्रेमानन्दजी, श्रीमहन्त स्वामी सीतारामशरणजी व भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार, डालमियाजी की कोठी पर ठहरे। स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी श्रीविपिनचन्द्र मिश्र के मकान पर, स्वामी शरणानन्दजी चीफ जस्टिक वी० पी०

*** श्रीमहाराजजी के परिकर में पं० सुन्दरलालजी का भी प्रमुख स्थान था, आप गृहस्थ जीवन में ज्वालापुर महाविद्यालय में अध्यापक थे। धर्मपत्नी का देहान्त होने पर आप विरक्त भाव से रहने लगे। प्रायः चालीस वर्ष आप पूज्य उड़िया बाबा एवं श्रीमहाराजजी के सम्पर्क में रहे। ये दोनों महापुरुष इनका बड़ा ध्यान रखते थे। यह स्वभाव से सरल तथा कुछ सुकुमार भी थे। बालवत् थोड़े में प्रसन्न हो जाना तथा थोड़े में ही अप्रसन्न भी हो जाना। किन्तु हृदय निर्मल था। श्रीमहाराजजी में इनका सख्य भाव होते हुए भी पूर्ण श्रद्धा-भक्ति थी। संग्रह परिग्रह भी कुछ नहीं था। सन् १९६८ के होली उत्सव के समय बाँध पर ही इनका देहावसान हुआ।**
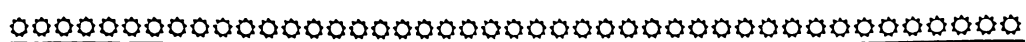
सिन्हा की कोठी पर तथा श्रीजयदयाल गोयन्दका मारवाड़ी धर्मशाला में ठहरे थे। श्रीबिन्दुशरण व श्रीशिवनारायण व्यास कपीन्द्रजी के साथ रहे।

महोत्सव में पधारे सन्तों में अन्य तो प्राय: बीच में ही चले गये, किन्तु पूजनीया माँ व श्रीमहाराजजी कार्यक्रम समापन तक रहे। उत्सव में आरम्भ से अन्त तक स्थानीय तीन विद्वानों के कथा प्रवचन चले। श्रीसीताराम शास्त्री ने श्रीमद्‌भागवत, श्रीविष्णुदत्तजी ने श्रीचैतन्य चरित और श्रीरामजी शास्त्री ने श्रीरामचरितमानस की कथा सुनाई। इसके साथ ही रामचरितमानस पर प्राय: नित्य-प्रति रामभक्त कपीन्द्रजी का भी प्रवचन होता था।

उत्सव कार्यक्रम प्रात: साढ़े चार बजे श्रीमहाराजजी के सामूहिक संकीर्त्तन से आरम्भ होता था। उसके बाद ७॥ से ९ बजे तक कपीन्द्रजी की अध्यक्षता में एक सौ आठ ब्राह्मणों द्वारा श्रीमानस का पारायण चलता। इसका उद्‌घाटन बसन्त पंचमी को ही भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार ने किया था। पाठ उत्सव की पूर्णाहुति के दिन पूर्ण हुये। इसके अनन्तर ९ से १२ बजे तक स्वामी हरिगोविन्दजी की मण्डली द्वारा श्रीचैतन्य लीलाओं का अभिनय होता था। इसे उत्सव का सबसे अधिक आकर्षण कार्यक्रम भी कह सकते हैं। इसमें गौर-जन्म से लेकर श्रीविष्णुप्रियाजी की पादुका दान तक की लीलाओं का अनुकरण हुआ। यह लीलानुकरण बहुत ही सजीव व मर्मस्पर्शी थे। इसमें दर्शकों को प्राय: अश्रु रोमांच आदि सात्विक भाव विकारों का स्फुरण होता रहा। तदनन्तर स्वामी चेतरामजी मण्डली द्वारा श्रीकृष्ण लीलाओं के अनुकरण होते थे। यह लीलाभिनय कार्यक्रम साढ़े बारह बजे से ढाई बजे तक चलता था। और आगे ढ़ाई से पाँच बजे तक उपर्युक्त भगवत्‌चरित तीनों कथावाचकों द्वारा क्रमश: चलते थे। साढ़े छ: से आठ बजे तक श्रीमहाराजजी का सामूहिक संकीर्तन व सत्संग होता था। और अन्त में रात्रि ८ से १० बजे तक तथा कभी-कभी ११ बजे तक आगन्तुक महापुरुषों के प्रवचन होते थे। इस प्रकार प्रात: साढ़े चार से रात्रि ११ बजे तक निरन्तर भगवद्‌गुणगान चलते रहने से इसे भगवद्‌गुणगान महोत्सव कहा गया।

समारोह के आरम्भ में ऋतु बड़ी ही सुहावनी थी। किन्तु एक सप्ताह बाद वर्षा व वायु का ऐसा अधिक प्रकोप हुआ कि जिससे सारे डेरे-तम्बू भीग गये। यहाँ ठहरे सन्तों-भक्तों के कष्ट व असुविधा को देखकर कृष्णादेवी ने सभी से आग्रह किया कि वे उनकी कोठी में जहाँ श्रीमहाराजजी भी थे आकर रहें। किन्तु ऐसा करने से प्रातः साढ़े चार बजे श्रीमहाराजजी के सामूहिक संकीर्त्तन में भाग लेना सम्भव न था। अतः सब लोग वहीं रहे। धर्म कार्यों में प्रायः कुछ न कुछ प्रतिकूलतायें सर्वत्र सामने आती ही हैं परन्तु उनमें जीव का वास्तविक कल्याण निहित होता है। इन दिनों यहाँ भी ऐसी ही आकस्मिक घटना हुई। श्रीमहाराजजी के परिकर के प्रधानरत्न कुँवर गुलाबसिंहजी का माघ शुक्ल १३ को हृदय गति रुक जाने से देहान्त हुआ। स्वर्गवासी कुँवरजी की सेवायें अविस्मरणीय हैं। वे श्रीमहाराजजी के मूक और सच्चे सेवक थे। सपरिवार तन-मन-धन सर्वस्व श्रीमहाराजजी को ही समर्पित किये हुए थे। उस समय वहाँ उनके पास परिवार का कोई निजी व्यक्ति नहीं तो क्या हुआ, उनके श्रीमहाराजजी तथा भक्त परिकर, जिसे उन्होंने सच्चा परिकर समझा, पास था ही। उस श्रद्धा, भक्ति, सन्त सेवा से ही तो उन्होंने योगि दुर्लभ भक्ति भावित वातावरण में देह त्यागकर परमगति प्राप्त की। उनके पार्थिव शरीर को परिवार ने यहाँ से ले जाकर अनूपशहर गङ्गा तट पर अन्त्येष्टि की।

फाल्गुन शुक्ल १४, श्रीमहाराजजी की जन्म तिथि पर सायंकाल सभी सन्त-भक्त समाज श्री माँ के चन्द्रलोकस्थ आश्रम पहुँचा; वहाँ श्रीमहाराजजी का सामूहिक संकीर्तन हुआ और तदनन्तर भक्त मण्डली में से कई लोगों ने पद गान किये। माताजी की ओर से सभी का स्वागत सत्कार हुआ। प्रमुख सन्तों को वस्त्र भेंट किये गये। प्रसाद वितरण के बाद श्रीमहाराजजी यहाँ से सीधे विपिनचन्द्र मिश्र के घर गये। वहाँ उनकी माताजी की शारीरिक स्थिति आज अत्यधिक चिन्ताजनक थी। वृद्ध माँ के सौभाग्य की क्या ही सराहना की जाय। इस समय उनके अनेकों जन्मों के पुण्य कर्मों का फल एक साथ ही मिला था, क्योंकि श्रीमहाराजजी उन्हें शान्त्वना देते हुए उनका सिर गोद में रखकर सुमधुर हरिनाम सुनाने लगे। इसी समय वह शरीर छोड़कर

परमधाम सिधारीं। शरीर तो एक दिन जाना ही था, परन्तु सन्त सान्निध्य में भगवत् स्मरण करते हुए स्वर्गवासी होना निःसन्देह बड़े ही पूर्व पुण्यों से प्राप्त हो पाता है।

अगले दिन पूर्णिमा को महोत्सव पण्डाल में सदा की भाँति श्रीमहाप्रभुजी का जन्मोत्सव मनाया गया। इस बार की यह विशेषता रही कि जैसा ग्रस्तोदय चन्द्रग्रहण श्रीमहाप्रभुजी के जन्मकाल में था, वही योग दण्डादि इस समय भी उपस्थित हुआ था। अतः आज के उनके जन्मोत्सव में सभी का सर्वाधिक उत्साह था। श्रीहरेकृष्ण जी ने श्रीमहाप्रभु की बड़ी ही सुन्दर झाँकी सजाई थी। श्रीमहाराजजी भी आज भावावेश में थे। वे स्वयं ही आरती की थाली लिए अनेक अंगभंगियों के साथ महाप्रभु की आरती कर रहे थे। ऐसा पहले बहुत कम देखा गया था।

इसके बाद दूसरे दिन प्रतिपदा को कार्यक्रम का समापन बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से हुआ। श्रीहरगोविन्द जी की मण्डली ने भगवान् श्रीकृष्ण का होली-लीलाभिनय किया। हरि भक्तों की भारी भीड़ स्टेज की ओर बढ़कर, श्रीठाकुरजी के कर कमलों से रंग की एक बूँद भी ऊपर आ पड़े, इस प्रतीक्षा में प्रसन्न थी। श्रीठाकुरजी की हरि-भक्तों के साथ होली खेलने की एक झाँकी का दर्शन करते हुए श्रीमहाराजी व श्रीमाँ भी परम प्रसन्न थे। इस प्रकार बड़े ही हर्षोल्लास के साथ यह महोत्सव समाप्त हुआ। और श्रीमाताजी व श्रीमहाराजजी दोनों होशियारपुर के लिये प्रस्थान कर गये।

मोदीनगर का उत्सव

सेठ श्रीगूजरमल मोदी ने मोदीनगर में एक विशाल मन्दिर बनवाया था। सन् १९६२ के चैत्रमास में उसका प्रतिष्ठा महोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। इस उत्सव में पूज्यपाद श्रीमहाराजजी, श्री श्रीमाँ आनन्दमयी, स्वामी विष्णु आश्रमजी, महामण्डलेश्वर स्वामी कृष्णानन्दजी, श्रीगोविन्दानन्दजी तथा श्रीकृष्णानन्द अवधूतजी

आदि कई महापुरुष थे। उत्सव की व्यवस्था प्रधानतया स्वामी कृष्णानन्द अवधूतजी की सम्मति से होती थी, किन्तु इसमें प्रमुख आकर्षण थे स्वामी कृष्णाश्रमजी गङ्गोत्तरी वाले। वे गङ्गोत्तरी जैसे शीत प्रधान स्थान में भी दिगम्बर वृत्ति से ही रहते थे। तथा उत्तरकाशी से नीचे प्राय: कभी नहीं आते थे। इससे पूर्व केवल एक बार महामान्य पं० मदनमोहन मालवीयजी के अनुरोध से हिन्दू विश्वविद्यालय में श्रीविश्वनाथ मन्दिर की आधार शिला स्थापित करने के लिये काशी पधारे थे। उत्सव बड़े ही विशाल रूप में हुआ। इसमें महापुरुषों के प्रवचनों के अतिरिक्त एक समय स्वामी श्रीहरिगोविन्दजी की मण्डली द्वारा श्रीगौरांग लीला और दूसरे समय स्वामी रामस्वरूपजी की मण्उली द्वारा रासलीलाभिनय होते थे।

श्रीहरि मन्दिर एवं कुछ नये निर्माण

श्रीहरिधाम के पुनर्व्यवस्थित प्रसङ्ग में यहाँ के नव निर्माण की चर्चा है ही। अब श्रीमहाराजजी भी वैशाख व कार्त्तिक दो महीनों में यहाँ विराजते थे। आपके बाँध पर विराजित होते ही भक्तों की भारी भीड़ एकत्रित हो जाती थी, जिसमें बाहर से सभी प्रकार के लोग आते थे। खादर वालों में प्राय: सभी की निजी निवास व्यवस्था थी ही। आने वालों के लिये टैण्ट आदि की व्यवस्था होती थी, अत: उनके अनुरोध पर श्रीमहाराजजी ने एक समुचित स्थान के निर्माण की अनुमति दे दी।

सन् १९६२ के कार्त्तिक मास में जब आप बाँध पधारे, उस समय यह निश्चय प्रकट किया कि ठाकुर मन्दिर के साथ-साथ कुछ कमरों का भी निर्माण शीघ्र ही होना है। अब क्या था। आज्ञा होते ही सभी भक्त परिकर तन-मन से जुट गया। इसमें सबसे बड़ा काम मिट्टी की भराई का था। अत्यन्त दुष्कर होते हुये भी भक्तों ने दिन-रात एक करके उसे ठीक समय से पूरा कर दिया। किन्तु उस समय की कड़ी सर्दी
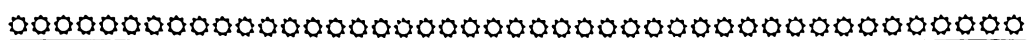
का कहना ही क्या ? उसमें भी अष्टग्रही का कुयोग ! इस प्रकार उस समय के वातावरण व परिस्थिति में प्राय: प्रकृति प्रकोप का प्राधान्य ही था। परन्तु इससे क्या ? श्रीमहाराजजी के सभी संकल्पित कार्यों में सदा से ही सम्पूर्ण भगवद् विश्वास ही सफलता का रहस्य रहा है। अस्तु आपके निश्चित समय पर ही मन्दिर के साथ-२ अच्छे से अट्ठाईस कमरों का निर्माण कार्य पूरा हुआ। उससे भक्तगण श्रीहरि भगवान् के और भी अधिक प्रीति भाजन बने।

अब मन्दिर के प्रतिष्ठा महोत्सव की तैयारी शुरू हो गई जब से यह बाँध बना, तभी से प्राय: प्रति वर्ष श्रीचैतन्य महाप्रभु जन्मोत्सव मनाया जाना श्रीमहाराजजी के जीवन का एक अङ्ग ही बन गया था। इस महोत्सव की भव्यता जो आपके सान्निध्य में देखने में आती, वह श्रीमहाप्रभु के समय में ही देखी गई। यह उनके जीवन चरित्र में यत्र-तत्र वर्णित है।

बाँध पर परमाराध्य श्रीगौराङ्गदेव के श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा होने जा रही है। श्रीमहाराजजी ने अपने सभी निजजनों को बुलाकर तत्सम्बन्धी व्यवस्था हेतु यथोचित निर्देश दिया। सन्त-महात्माओं को बुलाने के लिए स्थान-स्थान पर लोगों को भेजा गया। आपने प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्यों के लिए प्रमुख रूप से सेवा परायण डॉ० उदयवीरसिंहजी को नियुक्त किया। इसके लिये वह श्रीमहाराजजी के स्नेह भाजन मैनपुरी संस्कृत विद्यालय के तात्कालिक प्रधानाचार्य को लाये। इन्हीं के आचार्यत्व में अन्य शास्त्री आचार्यों ने पूर्ण वैदिक रीति से प्रतिष्ठा सम्बन्धी सभी कार्य सम्पादित किये। सन् १९६३ की फाल्गुन पूर्णिमा को सायं महाप्रभु-जन्म समय पूजनीया श्री श्रीमाँ आनन्दमयी के कर-कमलों द्वारा श्रीविग्रहों का अनावरण हुआ।

इस प्रतिष्ठा उत्सव में प्रमुखत: पूजनीया श्री श्री माँ, बाबा श्रीरामदासजी, स्वामी कृष्णानन्द बम्बई वाले, श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी आदि अनेक सन्त-महात्माओं एवं विद्वानों ने भाग लिया।

इसमें ठाकुर बाँधबिहारी (राधाकृष्ण) के पार्श्व भाग में गौर श्रीनिमाई-निताई अत्यन्त मनोहारी हैं। जिनके दर्शन करते ही भक्तगण 'निताई गौर हरि बोल'

का गगनभेदी जयघोष करके आनन्दित हो रहे थे। आरती के पश्चात् अनेक भक्तों ने आराध्यदेव का स्तवन किया तथा समागत सभी सन्त-महात्माओं का यथोचित पूजन व सत्कार किया।

श्री हरिबाबा स्कूल—

बाँध निर्माण एवं उसकी पुनर्व्यवस्था से श्रीमहाराजजी ने समस्त खादरवासियों की आर्थिक व पारमार्थिक उन्नति का कार्य तो किया ही, तथापि युगानुकूल शिक्षा विकास के मौलिक महत्वपूर्ण कार्य को भी आगे बढ़ाया।

गवाँ के ब्रजेन्द्रप्रसाद अग्रवाल व चन्द्रपालसिंह आदि कुछ भक्तों ने अनन्य भक्त रामेश्वर के माध्यम से श्रीमहाराजजी के समक्ष एक स्कूल की स्थापना का प्रश्न उठाया तो आपने बड़ी प्रसन्नता से कहा, 'अरे भैया! यह तो हमारी हार्दिक इच्छा ही है।' अत: महाराजजी की प्रेरणा से ही गवाँ में एक स्कूल खुला जिसका शिलान्यास श्रीमहाराजजी के कर-कमलों द्वारा ही हुआ।

इस पुनीत कार्य के लिये श्रीमहाराजजी की प्रेरणा से ठाकुर गुलाबसिंह ने काफी धनराशि प्रदान की। विद्यालय का नाम श्रीमहाराजजी के नाम पर ही हो, और इस स्कूल को हायर सेकेंण्ड्री मान्यता प्राप्त हो, इसके लिये महाराजजी के अनन्य भक्त साहू स्वर्गीय जानकीप्रसाद की धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवी ने समस्त धनराशि एवं आवश्यक अचल सम्पत्ति दान की जिससे विद्यालय का नाम श्रीहरि बाबा जनता हायर सेकेंण्ड्री स्कूल रखा गया।

बाँध पर ही एक प्रायमरी स्कूल का संचालन हुआ जो अब जूनियर हाईस्कूल के रूप में विकसित हो चुका है। यह दोनों शिक्षण संस्थायें एवं बाँघ धाम का दातव्य चिकित्सालय जो कि खादर क्षेत्र में परम आवश्यक थे, श्रीमहाराजजी की कृपा से जनता की सेवा कर रहे हैं।
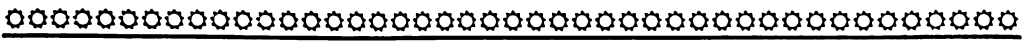
श्रीउड़ियाबाबा का प्रतिष्ठा महोत्सव

इधर कुछ दिनों से आश्रम के संस्थापक ब्रह्मलीन श्रीउड़िया बाबाजी के मन्दिर का निर्माण वृन्दावन श्रीकृष्ण आश्रम में ही हो रहा था और शिवरात्रि को उनके अर्चा विग्रहक की प्रतिष्ठा का निश्चय हो चुका था। बम्बई के सेठ मोतीलाल पोद्दार ने स्वामी अखण्डानन्दजी की श्रीमद्भागवत कथा का प्रोग्राम निश्चित कर लिया था, और इसी के साथ होली का महाप्रभु जन्मोत्सव भी यहीं होना था। अतः यह तीनों ही प्रोग्राम प्रतिष्ठा महोत्सव में श्रीमहाराजजी के तत्त्वावधान में आयोजित हुए।

अब यहाँ आश्रम में श्रीउड़िया बाबाजी का मन्दिर तैयार हो चुका था। उसी में हाथरस के सुप्रसिद्ध कर्मकाण्डी पण्डित चन्द्रशेखर के आचार्यत्व में सन् १९६४ की शिवरात्रि को श्रीउड़िया बाबाजी के श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा हुई। इस अवसर पर महोत्सव में आगन्तुक महापुरुषों एवं श्रीबाबा के विरक्त शिष्यों को वस्त्रादि भेंद देकर सम्मानित किया गया। अब तक श्रीबाबाजी का निर्वाणोत्सव चैत्र कृष्ण अमावस्या को मनाया जाता था, किन्तु आज अर्चा-विग्रहक रूप से आविर्भूत होने के कारण शिवरात्रि को उनका महोत्सव मनाया जाने लगा।

श्रीउड़िया बाबा से सम्बन्धित प्रायः सभी महापुरुष इस अवसर पर यहाँ पधारे। इनमें श्रीमहाराजजी, श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी के साथ शंकराचार्य स्वामी शान्तानन्द सरस्वती, माँ श्री आनन्दमयी, स्वामी शास्त्रानन्दजी, स्वामी निर्मलाननदजी व श्रीकिशोरीजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को विशाल भण्डारा हुआ। इसके बाद फाल्गुन १ से स्वामी अखण्डानन्दजी का श्रीमद्भागवत सप्ताह और उसके बाद अष्टमी से होली तक महाप्रभु जन्मोत्सव मनाया गया। इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण मास में उत्सवों की खूब चहल-पहल रही।

श्रीमहाराजजी का हीरक जयन्ती महोत्सव

पूज्यपाद श्रीहरि महाराजजी का आविर्भाव सम्वत् १९४१ की फाल्गुन शुक्ला १४ को हुआ। अब सं० २०२१ तदनुसार १९६५ की फाल्गुन शुक्ला १४ आ रही थी। इसलिए इस वर्ष भक्तों ने आपकी हीरक जयन्ती महोत्सव मनाने का निश्चय किया। उसी समय श्रीमहाप्रभु का जन्मोत्सव होता ही है। इस वर्ष यह उत्सव होशियारपुर में हुआ। इसके लिये सच्चिदानन्द आश्रम के बाहर एक विशाल पण्डाल बनाया गया। इसीमें सब कार्यक्रम चला।

प्रातःकाल श्रीगौराङ्ग लीलायें और सायंकाल रामलीलाभिनय होता था। शेष सारा कार्य सत्संग, कथा सङ्कीर्तन आदि पूर्व महोत्सवों जैसा बड़े ही सुन्दर ढंग से चला। जन्म-भूमि तथा गुरु स्थान के भक्तों के लिये, जिन्होंने आपको बचपन से ही दैवी प्रतिभायुक्त पाया है, यह अपूर्व अवसर था।

जोधपुर का उत्सव

सन् १९६५ में चैत्र शुक्ला रामनवमी को जोधपुर के सत्संग भवन व नवनिर्मित श्रीसीताराम मन्दिर के अर्चा-विग्रहों की प्रतिष्ठा का डत्सव था स्थानीय व्यवस्थापिका समिति के विशेष आग्रह से श्रीमहाराजजी श्रीहरिगोविन्दजी की मण्डली लेकर जोधपुर पधारे। दूसरे ही दिन श्री श्री माँ एवं स्वामी अखण्डानन्दजी भी पधारे। श्रीरामनवमी को आपके तत्वावधान में श्रीसीताराम व लक्ष्मणजी के श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा हुई। यह उत्सव भी बड़े ही समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। इस सत्संग भवन निर्माण में स्वामी आत्मानन्दजी एवं बहन मीराजी की सेवायें सराहनीय थीं; समागत सन्तों-भक्तों के स्वागत, आवास एवं भोजनादि की व्यवस्था बड़े ही सुन्दर ढंग से की गई थी।
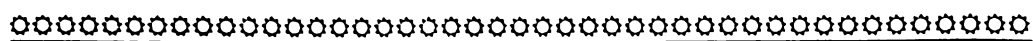
मन्दिर के श्रीविग्रह बड़े ही विशाल, भव्य और मनमोहक हैं। सन्तों के प्रवचन, कथा व लीलाभिनय का कार्यक्रम नागरिकों का प्रमुख आकर्षण रहा।

श्रीडोंगरेजी का भागवत सप्ताह

सन् १९६६ ई० के मार्गशीर्ष मास में स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज के प्रायः पाँच सौ गुजराती भक्त श्रीब्रजमण्डल की यात्रा करके आनन्द वृन्दावन में ही आकर ठहरे। इनमें से कुछ फोगला में भी ठहरे थे। इन सब ने साथ में आये सुप्रसिद्ध भागवतव्यास श्रीरामचन्द्र शास्त्री डोंगेरजी का भागवत सप्ताह कराया। यह कार्यक्रम आनन्द वृन्दावन में ही चला। भागवत प्रवचन के साथ ही ब्रजमण्डल के एक सौ आठ विद्वानों का वरण करके एक सौ आठ साप्ताहिक पाठ भी हुये। श्रीमहाराजजी के लिये यह स्वाभाविक ही प्रिय था। अतः आपने यहीं रहकर परम हरि भक्त श्रीडोंगरेजी द्वारा भागवत कथा सुनी।

श्रीडोंगरेजी महाराज एक कुशल कथावाचक तो थे ही साथ ही उच्च कोटि के भावुक भक्त भी हैं। उनका प्रवचन बड़ा ही हृदयग्राही होता था। उसके साथ आपका अश्रुप्रवाह चलता था, उससे श्रोता वर्ग पर बड़ा ही चमत्कारिक प्रभाव पड़ता था। श्रीवृन्दावन साक्षात् इसकी भूमि है। ऐसे ही आपकी कथा भी बड़ी ही रसमयी थी। आपका भागवत् प्रवचन यद्यपि गुजराती में ही होता था तो भी वह ऐसा अधिक हृदय ग्राही था जिससे गुजराती न जानने वाले भी उसे अच्छी तरह समझ लेते थे।

होशियारपुर में

इस कथा के पश्चात् आप दिल्ली होकर होशियारपुर चले गये। वहाँ पौष मास में आपको हृदय का दौरा पड़ा। यह रोग पहले कभी नहीं हुआ था। उन दिनों आप बड़ी भाव गम्भीर स्थिति में रहते थे। लोगों ने आपको भगवद् विरह में रुदन करते भी सुना था। पता नहीं, यह उसी की कोई प्रतिक्रिया हुई या क्या बात थी। अच्छे हृदय रोग-विशेषज्ञ से चिकित्सा कराई गई। और धीरे-धीरे आप स्वस्थ्य हो गये। परन्तु अभी विशेष परिश्रम या यात्रा करने की स्थिति में नहीं थे। इसलिये इस वर्ष होली का उत्सव भी यहीं हुआ। सब कार्यक्रम पूर्ववत् सुन्दर ढंग से चला।

उत्सव में एक असामयिक घटना हुई। श्रीमहाराजजी के प्रिय पार्षद, अतीव कृपा भाजन गवाँ के भक्त रामेश्वर को हृदय का दौरा पड़ा और वे स्वर्ग सिधारे। रामेश्वरजी की आपके चरणों में अनन्य निष्ठा थी। आपने उन्हें जीवनदान दिया था, इसका वर्णन पूर्व प्रसंगों में है ही। भगवान् की कृपालुता की बड़ी विचित्र लीला कि आपकी सन्निधि में ही उन्होंने देह त्याग किया शरीर तो सबका एक दिन जाना ही है, परन्तु ऐसा सौभाग्य तो पुण्यवान् को ही प्राप्त हो पाता है।

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी का पाक्षिक प्रवचन

श्री स्वामीजी के बाल्यकाल के एक साथी श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र' हैं आप आजन्म अविवाहित रहे हैं और सारा जीवन ही साधु-संत की सेवा एवं साधना में व्यतीत किया है। भगवान् श्री श्यामसुन्दर में आपका वात्सल्य प्रेम है। आप उन्हें कन्हैया भैया कहकर उनमें अनुज-भाव रखते हैं। उनकी इच्छा थी कि एक बार श्रीस्वामीजी उनके कन्हैया भैया को श्रीमद्भागवत का प्रवचन सुनावें। इस बार मार्गशीर्ष मास में स्वामीजी ने अपनी ओर से कन्हैया भैया के लिए एक पाक्षिक प्रवचन
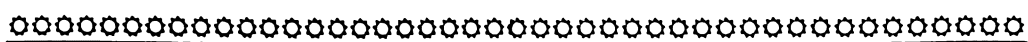
का आयोजन किया। श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' तो प्रवचन प्रारम्भ होने के दो दिन पूर्व ही वृन्दावन पहुँच पाये थे। स्थानीय तथा बाहर से आये भक्तों की भारी भीड़ रहती थी, तथापि मुख्य श्रोता श्री चक्रजी के अर्चा विग्रह श्री कन्हैया भैया ही थे। प्रतिनिधि स्वरूप पूजा-आरती श्री चक्रजी करते थे। स्वामीजी महाराज के सारगर्भित भागवत प्रवचन से भक्तों को बड़ा ही आनन्द हुआ। श्रीमहाराजजी ने भी पूरा प्रवचन सुना।

पंडित ललिताप्रसाद का देहावसान

श्रीवृन्दावन के इस भागवत समारोह की समाप्ति पर महाराजजी बम्बई पधारे और वहाँ से माघ मास में बाँध पधारे। इस वर्ष का श्रीमहाप्रभु जन्मोत्सव होली पर यहीं मनाया गया आगे ग्रीष्म-काल में कुछ समय तक श्रीमाँ के साथ रहे तथा कुछ समय होशियारपुर रहकर गुरुपूर्णिमा पर पुनः वृन्दावन पधारे। यहाँ आप आश्विन के अन्त तक रहे।

इस चातुर्मास्य में प्रस्तुत चरित ग्रन्थ के लेखक पं० ललिताप्रसादजी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। सभी को ऐसा लगने लगा कि शायद अब इनका शरीर नहीं रह पायेगा। अत्यन्त शिथिल देखकर उनकी अन्तिम इच्छा जानी गई। उन्होंने कहा, 'मैं सर्वथा सन्तुष्ट हूँ, श्रीमहाराजजी के समक्ष शरीर जावे, इससे बढ़कर सुअवसर कब मिलेगा। हाँ, मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि मैंने उनका जो चरित्र लिखा है, उसे पुनः प्रकाशित किया जाय।' श्रीमहाराजजी की असीम कृपा से आज यह सम्भव हो सका है। श्रीमहाराजजी ने सेवा की सुविधा की दृष्टि से इनको शिवपुरी भेज दिया। वहाँ से पारिवारिक जन उन्हें बरेली ले गये और वहीं आश्विन कृ० ४ सन् १९६८ में १० सितम्बर को उनका देहावसान हुआ। उसके बाद का श्रीमहाराजजी का चरित स्वामी श्रीसनातन देवजी द्वारा लिखा गया। आपने ही इसका पूर्व में सम्पादन किया था।

नैमिष पुराण-मन्दिर में श्रीमद्भागवत का पाक्षिक प्रवचन

भगवान् के दिव्य लीलाचरित्रों एवं परम पावन हरिनाम संकीर्त्तन द्वारा मानव प्राणियों का उद्धार ही तो श्रीमहाराजजी के आविर्भाव का प्रमुख हेतु रहा है। इस चरित ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर आपकी श्रीमद्भागवत कथा विषयक अगाध श्रद्धा का प्रचुर परिचय मिलता है।

पुराणों की रचना तथा ऋषियों की तपस्थली से नैमिषारण्य की ऐतिहासिकता प्रसिद्ध है ही। कुछ वर्षों पूर्व श्री श्रीमाँ ने यहाँ एक सुन्दर आश्रम निर्माण कराया है इसी आश्रम में पुराण मन्दिर की प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती द्वारा श्रीमद्भागवत का पाक्षिक प्रवचन हुआ। अपने परिकर सहित श्रीमहाराजजी भी इसमें पधारे। कथा के अतिरिक्त श्रीमहाराजजी का सामूहिक संकीर्त्तन तथा बाँध क्षेत्रीय भक्तों के शिक्षाप्रद लीलाभिनय प्रायः प्रतिदिन ठीक समय पर होते थे। इन भोले भक्तों की लीला से श्रीमाँ, स्वामीजी व श्रीमहाराजजी अत्यधिक प्रसन्न हुये। बाँध तथा अन्य महोत्सवों में कई एक साधु-सन्यासी तथा कुछ सम्भ्रान्त परिवारों के लोग इस प्रकार के लीलाभिनय, लोकलाज छोड़कर करते। यहाँ तक कि कभी-कभी तो वे शेर, भालू-बन्दर, शूकर, कूकर, गन्दर्भ अथवा माँ-बहन का रूप धारण कर ऐसा अभिनय करते जिससे श्रीमहाराजजी हँस पड़ते। बस फिर क्या था, इसीमें उन्हें अभिलषित लीलाभिनय का पुरस्कार मिल जाता और वे अपने कौतुकी सरकार की प्रसन्नता से कृत-कृत्य मानकर निहाल हो उठते।

इस बीच एक दिन श्रीमाँ के साथ-साथ आप अध्यात्म विद्यापीठ में भी पधारे जहाँ विरक्त, वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी संन्यासी एवं भक्त भारी संख्या में दर्शनों की प्रतीक्षा में एकत्रित थे। आपके एवं श्रीमाँ के पदार्पण पर सभी ने आपका भव्य स्वागत किया।

विद्यापीठ के संस्थापक स्वामी नारदानन्दजी से मिलकर व आश्रम के विकसित रूप को देखकर श्रीमहाराजजी बड़े ही प्रसन्न हुये, क्योंकि लगभग ३० वर्ष
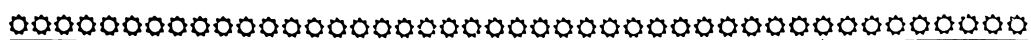
पूर्व यहीं आपका अज्ञातवास रहा था और उस समय आपका भजन, कथा-कीर्तन आदि सुचारु रूप से चला था।

बाँध का बधाई महोत्सव

सन् १९६९ की होली पर होने वाला श्रीमहाराजजी एवं श्रीमहाप्रभु का जन्मोत्सव आपकी सन्निधि में अन्तिम उत्सव था। श्रीहरिधाम बाँध का यह विशाल महोत्सव अत्यधिक अनुपम एवं रहस्यमय रहा।

इस उत्सव में श्रीगौराङ्ग लीलाभिनय, संकीर्तन, कथा, पदगान एवं आगन्तुक सन्त-महात्माओं, विद्वानों के प्रवचन आदि तो पूर्ववत् ही चले, किन्तु कार्यक्रम का सर्वाधिक आकर्षण बना अवध लक्ष्मण किलाधीश का श्रीमहाराजजी के जन्मोत्सव पर बधाई गान।

जिस समय अनेक सन्त-विद्वानों के मध्य व्यासमञ्च पर आसीन स्वामी सीतारामशरणजी ने भाव विभोर होकर बधाई गाई, उस समय उपस्थित हजारों भक्त पुरुषों एवं माँ-बहनों की भारी भीड़ श्रीमहाराजजी की न्यौछावर के लिये उमड़ पड़ी आज सबसे पहले पूजनीया श्रीमाँ जी हमेशा आपको बाबा या पिताजी सम्बोधन करतीं, अपने वात्सल्य भाव को न रोक सकीं। उन्होंने अति शीघ्र उठकर श्रीमहाराजजी की न्यौछावर की। श्रीमाँ की न्यौछावर में बधाई गायक श्रीस्वामीजी को माँ का जो हार्दिक आशीर्वाद एवं प्यार मिला, उससे उन्हें और भी अधिक प्रसन्नता हुई। बधाई गाते हुये वह भाव समाधिस्थ से हो गये। श्रीमाँ के साथ अन्य सन्तों ने भी आज खुले हृदय से न्यौछावर की। इसीसे इसे बधाई महोत्सव कहना उचित प्रतीत हुआ।

आज सभी सन्तों के इस भाव को देखकर आपने अन्य भक्तों की भी पूजा-आरती स्वीकार की। हरि भक्तों के लिये यह अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। किन्तु इसी
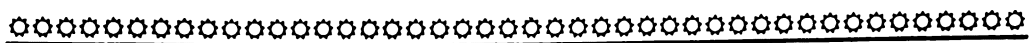
समय से श्रीमहाराजजी में एक अद्भुत परिवर्तन हुआ। इसीके परिणाम स्वरूप महोत्सव की एक विशेष घटना उल्लेखनीय है, जो पूजनीया श्रीमाँ के चरणों में आपकी अगाध श्रद्धा-भक्ति का रहस्योद्‌घाटन करती हैं।

अगले दिन श्रीमहाप्रभु का जन्मोत्सव मनाया गया। आज ठाकुर बाँध बिहारी (राधाकृष्ण) मन्दिर में उनके पार्श्व भाग में ही अवस्थित श्री गौर निमाई-निताई का दिव्य दर्शन बड़ा ही मनोहारी व चित्ताकर्षक था। श्रीमाँ महाराजजी श्री बाबा रामदास, आचार्य चक्रपाणि, स्वामी सीतारामशरण, स्वामी कृष्णानन्द आदि प्रमुख सन्त दर्शनार्थ उपस्थित हुये। श्रीमहाराजजी के साष्टाङ्ग प्रणाम करते ही आपके साथ भक्तों की भारी भीड़ ने भी महाप्रभु को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। श्रीमाँ ने बंग प्रदेशीय परम्परानुसार श्रीविग्रहों को करस्पर्श के साथ दिव्य झाँकी का दर्शन किया।

श्रीमहाराजजी के जन्मोत्सव जैसे यहाँ भी सभी शचिनन्दन गौर निमाई में समाहितचित्त थे। मन्दिर के पुनीत प्राङ्गण में 'निताई गौर हरि बोल' या 'जय शचिनन्दन गौर निमाई' की मधुर सङ्कीर्तन ध्वनि ही गुञ्जरित थीं। इसी समय श्रीमाँ व श्रीमहाराजजी के मिलन की झाँकी अपूर्व ही थी। ऐसा लगा मानो आप श्रीमाँ से विदाई ही ले रहे हों। जगज्जनी श्री माँ का हृदय भी अत्यधिक प्रेम से अधीर हो उठा। वे सहसा उच्चस्वर से नारायण-नारायण भगवन्नाम का स्मरण करने लगी।

इस कारुणिक दृश्य को देखकर उपस्थित जन समुदाय विशेष कर भक्त परिकर स्तम्भित सा रह गया। क्या यह श्रीमहाराजजी की अन्तिम लीला का संकेत ही था? क्योंकि आज से ही आपने निजजनों के साथ अभूत पूर्व प्रेमदान की लीला आरम्भ की। आपकी ऐसी लीलायें नव वृन्दावन में तो कुछ अधिकारी भक्तों के साथ ही हुई थीं।
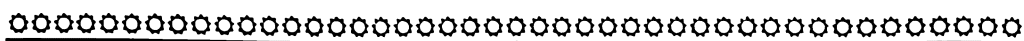
अन्तिम लीला

बाँध महोत्सव की समाप्ति पर श्रीमहाराजजी मुरादाबाद होकर होशियारपुर पधारे। यहाँ रामनवमी उत्सव मनाया गया। इसके बाद आप श्रीमाँ के जन्मोत्सव में बम्बई पधारे। यहाँ से माताजी के साथ ही पूना गये। जहाँ आप प्राय: दो महीने रहे। इसी बीच अकस्मात् श्रीमाताजी कुछ अस्वस्थ हो गयीं। पता पड़ने पर श्रीमहाराजजी ने उनके स्वास्थ्य लाभ हेतु अनुष्ठान किया तथा घनेन्द्रकुमार से रामार्चा कराई; इससे माताजी तो स्वस्थ हुईं। कुछ समय बाद आप स्वयं अस्वस्थ हुये। श्रीमाँ को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने एक अच्छे डाक्टर द्वारा वायोकेमिक औषधि सेवन कराई। विशेष लाभ तो नहीं हुआ परन्तु निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार आप बम्बई चले आये।

बम्बई में मरीनड्राइव कृष्णकुञ्ज स्थित श्रीकिशनदास गोविन्दरामजी के फ्लैट पर ठहरे। प्रमुख हृदय विशेषज्ञ डॉ० दाते द्वारा उपचार चला। इन्होंने कई औषधियाँ सेवन कराईं जो प्राय: विपरीत ही पड़ीं। इससे फिर एक दूसरे अनुभवी डाक्टर बंगाली को दिखाया गया। इन्होंने केवल एक दो औषधियाँ और वह भी अल्पमात्रा में सेवन कराई, इससे काफी लाभ हुआ। गुरुपूर्णिमा निकट आ चुकी थी; अत: आपने वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया।

मार्ग में आप इतने अधिक प्रसन्नचित्त दिखाई दिये, जैसे बीमार हुए ही न हों। यथेष्ट भोजन भी रुचि से लिया। दोपहर को थोड़ा आराम करके अपने डिब्बे में ही स्वयं सत्संग प्रारम्भ किया। आपकी इस अपूर्व प्रसन्न मुद्रा को देखकर सभी साथी आश्चर्य चकित थे। प्रसंगवश श्रीमहाराजजी ने विशनदास से कहा कि मैं बीमारी तो बम्बई में ही छोड़ आया। इस समय अपनी कई अलौकिक आत्मकथायें सुनायीं।

श्रीधाम वृन्दावन आकर आप आनन्दित रहने लगे। बम्बई में श्रीमहाराजजी की अस्वस्थता सुनकर भक्तों को बड़ी चिन्ता थी, अत: उन्हें आपके दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा थी। इससे इस बार गुरु पूर्णिमा पर काफी भक्त पहले से ही प्रतीक्षा कर रहे थे। यहाँ आकर आपने यह थोड़ा भी नहीं प्रकट होने दिया कि आप बीमार हुए

हों। सत्सङ्ग, कथा-कीर्तन, लीला आदि सभी प्रोग्रामों में आपने पूर्ववत् प्रसन्नता के साथ भाग लिया। गुरु-पूर्णिमा के बाद आश्रम में अध्योया के स्वामी सीतारामशरणजी द्वारा अध्यात्म रामायण का पारायण चला। उसमें आप नियमित रूप से शामिल हुए। इन्हीं दिनों स्वामी शरणानन्दजी के अस्वस्थ हो जाने से आप प्रतिदिन उन्हें एक घण्टा कथा सुनाने उनके आश्रम 'मानव सेवा संघ' में जाया करते थे। अत्यधिक श्रम के भय से एक दिन श्रीरामस्वरूप ब्रह्मचारी ने स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज से प्रार्थना की कि अब आप श्रीमहाराजजी से कह दीजिये वह रोज न आया करें, आवश्यकता पड़ने पर मैं प्रार्थना करके बुला लूँगा। इस पर स्वामीजी ने कहा कि मैं ऐसा क्यों कहूँ। बाबा के आने से मुझे लाभ ही लाभ है। परन्तु रामस्वरूपजी के आग्रह को उचित समझकर स्वामीजी ने बाबा से प्रार्थना की, जिसे आप मान गये।

इन्हीं दिनों श्रीमाँ को भोपाल से वृन्दावन आना था। जब महाराजजी को मालूम हुआ, तब आपने रामस्वरूप ब्रह्मचारीजी को नियुक्त किया कि वह माँ को अटल्ला चौकी से सीधे श्रीकृष्णाश्रम ले आवें। परन्तु जब वह वहाँ पहुँचे, तब तक श्रीमाँ सीधे अपने आश्रम पहुँच चुकी थीं। यह मालूम होने पर ब्रह्मचारीजी श्रीमाँ के आश्रम पहुँचे और प्रार्थना की, 'माताजी! मुझे महाराजजी ने आपको आश्रम ले जाने के लिये भेजा है।' माँ ने अस्वस्थता के कारण असमर्थता प्रकट की। रामस्वरूप ब्रह्मचारी से माँ की अस्वस्था का समाचार सुनकर श्रीमहाराजजी स्वतः श्रीमाँ के पास आये और उनके स्वास्थ्य लाभार्थ अनुष्ठान किया। इससे माँ शीघ्र स्वस्थ हो गईं तथा निर्धारित कार्यक्रम से बाहर गईं।

सत्सङ्ग कथा-कीर्तन लीला आदि का बड़ा ही अच्छा क्रम चल रहा था। इसी बीच बहुत अधिक परिश्रम करने से आप काफी कमजोर हो गये थे यहाँ तक कि अब कार्यक्रम में भाग लेना सम्भव नहीं रहा। इससे भक्त लोग सब अत्यन्त चिन्तित हुए। स्थानीय उपचारों का कोई विशेष प्रभाव न देखकर पूज्य अवधूतजी के आग्रह से श्रीमहाराजजी को देहली ले जाया गया।

देहली में श्रीमाताजी के आश्रम चन्द्रलोक में ठहरे। श्रीमाँ उस समय देहरादून थीं। स्वामी कृष्णानन्दजी अवधूत के आग्रह से श्रीमाँ दिल्ली आईं और श्रीमहाराजजी
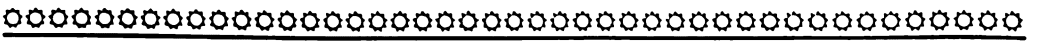
को अपने साथ ले जाकर बिलिंगडन अस्पताल में पृथक् से निवास एवं उपचार आदि की सुविधानुकूल व्यवस्था कराई। दूसरे दिन विशेष कार्यक्रम से माताजी काशी चली गईं तथा स्वामी कृष्णानन्द वृन्दावन वापस आ गये। श्रीमाँ के जाने के बाद आप भी वहाँ से चलने के लिये तैयार हुए क्योंकि श्रीमाताजी की प्रसन्नता के लिए ही अस्पताल आने को राजी हुए थे। इलाज कराना था ही नहीं। अतः कुल २४ घण्टे ही अस्पताल में रहे। चलते समय डाक्टर सेन ने बहुत कोशिश की कि आप न जायँ। परन्तु आपके न मानने पर डाक्टर स्वयं आपको माताजी के आश्रम छोड़ने आये तथा वहीं आपको सारा उपचार उपलब्ध कराने की इच्छा प्रकट की। किन्तु आपने उन्हें इतना अवसर ही नहीं दिया। शीघ्र ही दूसरे दिन कार से होशियारपुर के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में अम्बाला तथा चण्ड़ीगढ़ में स्वास्थ्य परीक्षण एवं विश्राम की दृष्टि से नारायणदासजी ने ठहरने का प्रबन्ध किया था, किन्तु कहीं भी भोजनादि लिये बिना ही सीधे होशियारपुर पहुँचे।

होशियारपुर में आपने ऐसी दिव्य लीला प्रारम्भ की जिससे अस्वस्थता नजर नहीं आई। भक्तगण इतने अधिक प्रभु प्रेम विभोर हुए कि उन्हें दिन-रात आपकी लीलाओं को छोड़कर अन्य कुछ चिन्तन का विषय ही न रह गया। सभी हर समय इस प्रतीक्षा में रहते कि श्रीमहाराजजी कब बाहर आवें और कब हम लोगों को उनकी नई-नई लीलाओं का दर्शन हों। इस समय आपने सभी भक्तों को श्रीमहाप्रभु जैसी ही प्रेमदान लीला की अपूर्व रीति का निदर्शन कराया जिसे कि अब तक आपने अपने हृदय में ही छुपा रखा था।

आपकी इस अद्भुत अलौकिक लीलाओं से कई भक्तों को यह भय-सा होने लगा कि कहीं आप हम लोगों से अन्तिम बिदाई तो नहीं ले रहे हैं। बाल-वृद्ध सभी को हृदय से लगाकर अपना प्यार व आशीर्वाद देकर आनन्दित कर रहे थे। इसमें भक्तों को अपनी-अपनी भावानुसार किसी को ब्रजलीला का दर्शन हो रहा था, तो किसी को श्रीमहाप्रभु के महासंकीर्तन नृत्य की मनोहर झाँकी का साक्षात् हो रहा था। जिस समय भक्तवृन्द मिलकर मण्डलाकार बाहुबद्ध होकर अनुक्रम से घूम-घूमकर

कीर्तन तथा नृत्य करते, उस समय श्रीमहाराजजी स्वयं ताली बजा-बजाकर उनका उत्साह वर्द्धन करते रहते थे।

इस समय यहाँ स्थानीय तथा बाहर से आये भक्तों की भारी भीड़ आपकी इन दिव्य लीलाओं का दर्शन कर आनन्दित थी। इनमें बाँध के भक्त भी थे, जो आपको बाँध ले जाना चाहते थे। उनकी प्रार्थना पर आप बाँध चलने के लिए तैयार भी हो गये थे। किन्तु प्रात: चलने से पूर्व रात्रि में एकाएक अस्वस्थ होने के कारण उस दिन का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। कुछ स्वस्थ होने पर आप दिल्ली आये।

दिल्ली में इस बार आप १० श्रीराम रोड, पर श्रीलक्ष्मीदेवी की कोठी में ठहरे, और भक्तों के आग्रह से आपने अपने स्वास्थ्य परीक्षण की अनुमति दे दी। डॉ० करौली व डॉ० सेन ने आपसे प्रार्थना की कि अगर आप कुछ दिन दिल्ली में ही निवास करें तो हमें भी सेवा का मौका मिले। श्रीमहाराजजी ने हँसकर उन्हें कहा, कि जब तक आप लोग नहीं कहेंगे, हम नहीं जायेंगे, और ऐसा ही हुआ।

यहाँ प्रतिदिन पण्डित कपीन्द्रजी आपको कथा सुनाने आते और अनेक प्रकार मनोरञ्जन करते। इसके अतिरिक्त भी कथा कीर्तन का निश्चित कार्यक्रम चलता ही रहता था। यहाँ के भक्तों ने अखण्ड रामायण पाठ प्रारम्भ किया। जो लगातार ढाई मास चला। इसके साथ-साथ अन्य कई अनुष्ठान चलते रहे। भक्तगण व्यक्तिगत रूप से भी आपके स्वासथ्य लाभार्थ जप-प्रार्थना-पाठ करते रहते थे। स्वर्गीय साहू जानकीप्रसाद की कनिष्ठा पुत्री मिथिलेशकुमारी ने पं० छविकृष्ण द्वारा श्रीहरिबाबा के पूर्ण स्वास्थ्य लाभ के लिये रामार्चा पूजा भी कराई।

इन दिनों एक चमत्कार देखने में आया कि आपका स्वास्थ्य प्राय: प्रत्येक शनिवार को विशेष खराब हो जाता और धीरे-धीरे मंगलवार तक ठीक हो जाता था अत: बाँघ तथा दिल्ली के भक्तगण शनिवार से मंगलवार तक उच्चस्वर से हनुमान चालीसा का अखण्ड पाठ चालू रखते थे। आपके एक अनन्य भक्त राजनारायण सक्सेना जो कि उन दिनों छाता में तहसीलदार थे, प्राय: शनिवार को आपकी सेवा
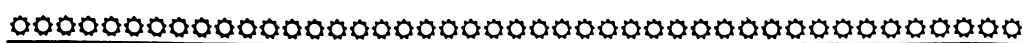
में आते और मंगलवार को अपनी राजकीय सेवा में पहुँच जाते। उन्हें ऐसा आभास होता था कि शनिवार आते ही श्रीमहाराजजी की सेवा में पहुँचने के लिये कोई विवश कर रहा हो। श्रीमहाराजजी की सेवा में जाकर रात्रि जागरण का विशेष भार प्रसन्नता पूर्वक अपने पर लेते थे। आपकी इस आन्तरिक श्रद्धा निष्ठा से आपके प्रति श्रीमहाराजजी का भी स्नेह बड़ा विलक्षण था।

श्रीमहाराजजी जब माँ का स्मरण करते तब कभी-कभी अधिक आग्रह देखकर तार या आदमी भेजकर श्रीमाँ को खबर की जाती थी। एक बार जब माताजी आयीं, तब श्रीमहाराजजी ने माँ से कहा, 'माँ, अब तो आपके पास ही रहने को जी करता है।' उस पर माँ बोली कि यह बच्ची तो सदा ही पिताजी के पास रहती है। माँ के वात्सल्य स्नेह से आप्लावित आपने गम्भीर वाणी में कहा, 'माँ! ऐसा वेदान्त तो हम बहुत जानते हैं। हृदय माने तब न।' इतना कहकर आप तो चुप हो गये किन्तु भक्तगण आपके मातृ स्नेहपूर्ण निश्छल वचन सुनकर श्रीमुख की ओर देखते ही रह गये। माताजी ने भी जब चलने लगी, तब बाहर आकर कहा, 'बाबा-बाबा ही हैं। बाबा हुआ न होगा।'

श्रीमाँ की प्रेरणा से डॉ० करौली व डॉ० सेन दोनों बड़ी ही श्रद्धा से उपचार कर रहे थे। उन्होंने श्रीमहाराजजी के परिकर को कह रखा था कि आवश्यकता पड़ने पर आप किसी भी समय निःसङ्कोच फोन करके बुला भी सकते हैं। इसमें हमको तनिक भी कष्ट नहीं। बल्कि यह हमारा सौभाग्य होगा। इन डाक्टरों को भी कभी-कभी निर्णय लेना कठिन हो जाता था कि आखिर श्रीमहाराजजी के स्वास्थ्य की है भी यह कैसी विचित्र स्थिति? कभी बहुत कमजोर तो कभी एकदम काफी स्वस्थ, प्रसन्न। एक बार डाक्टरों ने बड़े ही विनम्र शब्दों में प्रार्थना की कि 'महाराजजी! आपको स्वास्थ्य लाभ तो आप जब चाहें उसी क्षण हो जाना है। यह तो आपकी कोई लीला ही है।' उपचार के दौरान डाक्टरों ने बाबा के भोजन पान की पथ्यापथ्य दृष्टि से व्यस्था की थी और फलों के रस पीना मना कर दिया था। इसी बीच दिल्ली के सुप्रसिद्ध डॉ० एल० एम० घोषाल श्रीहरि बाबा के दर्शन करने आये। इस समय अन्य

डाक्टरों के साथ बाबा की चिकित्सा और पथ्य के विषय में क्या चर्चा हुई। इस प्रसंग में डॉ० घोषाल ने अन्य डाक्टरों से कहा कि क्या बाबा को इन भौतिक दवाओं से लाभ हो रहा है ऐसा सोचना भ्रम है। तथ्य यह है कि ये अपनी आध्यात्मिक शक्ति से जी रहे हैं और स्वस्थ होना चाहेंगे तो आप ही हो जायेंगे। इसलिए पथ्य का प्रतिबन्ध नहीं लगायें। और प्रतिबन्ध हटा दिया गया।

समय-समय पर आपसे मिलने के लिये शंकराचार्य स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्दजी, स्वामी अखण्डानन्दजी, दण्डिस्वामी विष्णुआश्रमजी आदि संत आयें। एक बार की बात है स्वामी कृष्णानन्द अवधूत श्रीमाँ के साथ आये। आप एक साधन निष्ठ अवधूत सन्त थे। अत: आपने श्रीमहाराजजी से पूछा कि क्या हाल है? उत्तर में श्रीमहाराजजी से बड़ी ही प्रसन्नता के साथ कहा यह शरीर मन का साथ नहीं दे रहा है। भावानुसार साधनोचित्त समाधान पाकर आप स्तम्भित से रह गये कि इस शारीरिक शिथिलता में भी यह साधनात्मक तत्परता की चरमावस्था बड़ी विलक्षण है।

श्रीविपिनचन्द्र मिश्र इन दिनों श्रीमहाराजजी की सेवा सुश्रुषा सम्बन्धी देख-रेख करने प्रतिदिन आते थे। श्रीमहाराजजी उन्हें बड़े ही स्नेह पूर्वक अपनी अलौकिक जीवन कथायें सुनाते थे। इनकी निष्ठा भक्ति के साथ वेदान्त विचार परम विशेष है। आप जब महाराजजी से पूछते कि तबियत कैसी है, उस समय श्रीमहाराजजी दोनों हाथ ऊपर उठाकर आनन्द-आनन्द-आनन्द कहकर बड़े ही प्रफुल्लित नजर आते थे। मानो आप उन्हें यही बता रहे हों कि शारीरिक परिस्थितियों के कारण स्वरूपस्थ आनन्द में कोई व्यवधान नहीं आता है। आपकी उस उर्ध्वबाहु, स्मित हँसी एवं प्रफुल्लित दिव्य तेजोमय मुखकान्ति का दर्शन करके भक्तगण मंत्रमुग्ध हो जाते थे।

श्रीमाताजी समय-समय पर आपको देखने आती रहती थीं। एक बार कई घण्टे तक श्रीमहाराजजी के पास बैठकर चली गयीं। उस समय श्रीमहाराजजी पूर्णत: भाव समाधिस्थ थे। बाद में जब बताया गया कि श्रीमाँ आपके पास कई घण्टे बैठकर चली गयीं, तब आपने शीघ्र ही माताजी के पास ले जाने की भावना प्रकट की। किन्तु

कमजोरी के कारण यह संभव न हुआ था। अत: श्रीरामस्वरूप ब्रह्मचारी ने नैमिषारण्य जाकर श्रीमाँ को आपका यह सन्देश दिया, ''माँ! मेरा अपराध क्षमा हो। आप जब यहाँ पधारी थीं, उस समय हरिबाबा यहाँ था ही नहीं।''

श्रीमहाराजजी प्रतिदिन कीर्त्तन, कथा व लीला के बाद भक्तों से कुछ न कुछ पद-भजन सुनते थे। इसमें छोटे-बड़े सभी को समान अवसर मिलता था। होशियारपुर के भक्त तो अपने-अपने बालक-बालिकाओं को कीर्त्तन नृत्य के साथ प्रार्थना पद कण्ठ कराकर आपके शुभागमन की प्रतीक्षा करते रहते थे। यहीं के निर्धन ब्राह्मण परिवार की एक बालिका जब भक्ति भावित हो कोई पद गान करती तो आप बहुत प्रसन्न होते। कभी-कभी अस्वस्थ दशा में यदि आप नीचे सत्सङ्गभवन में नहीं आ पाते, तो वह ऊपर पास जाकर सरल हृदय से भजन सुनाती। उसके पूर्व पुण्यों का क्या कहना। हमारे श्री सरकार को, जिनकी कृपा दृष्टि या एक बार मधुर स्मित मुस्कान के लिये बड़े-बड़े धनी मानी विद्वान् सर्वस्व न्यौछावर किये हुये थे, वहीं यह अपने भक्ति भाव से प्रसन्न कर सकीं।

बालिका अब बड़ी हो चुकी थी। उसकी माँ ने अभी इसी बार जब श्रीमहाराजजी होशियारपुर से दिल्ली आ रहे थे यह प्रार्थना की कि इसके विवाह में मुझे आपका ही सहारा है। आपने कहा भगवान् पर विश्वास रखो। समय आने पर सब काम वही पूरे करेंगे।

श्रीमाँ के आने पर जब आप भाव समाधिस्थ रहे थे, ठीक वही समय इस बालिका के विवाह का था। श्रीमहाराजजी ने वहाँ जाकर अत्यन्त सुन्दर ढंग से सेवा की। इसका पता तब पड़ा जब सौन्दर्य माधुर्य युक्त उस लड़के का कहीं पता न चला जिसकी कार्य कुशलता से सभी लोग आकृष्ट थे। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि किसी को उसका पता पूछने की भी जरूरत नहीं पड़ी। उस रूप में श्रीमहाराजजी की उपस्थिति से बालिका की माँ को पिता या भाई का अभाव भी प्रतीत नहीं हुआ। ऐसी थी आपकी भक्तवत्सलता। भावनाशील भक्तों को आपकी कृपा के ऐसे अद्भुत चमत्कार आज भी हो रहे हैं, होते रहेंगे।

बाँध के भक्तों ने मिलकर आपसे प्रार्थना की कि सरकार! अब आप बाँध पधारने की कृपा कीजिये। वहाँ जल्दी ही स्वास्थ्य अच्छा हो जायगा। आपने इन्हें कहा, 'भैया! अब तुम सब चलो। हम शीघ्र ही दस-बारह दिनों में बाँध पर आ रहे हैं।' आगे की लीलाओं में आपका यह रहस्य वाक्य पूर्णतः चरितार्थ हुआ।

इसके तीसरे चौथे दिन कुछ नाराज-सा होकर कहा, 'अरे हरेकृष्ण! अब मैं यहाँ अन्न, जल कुछ भी नहीं ग्रहण करूँगा, और माँ के पास जाने का आग्रह किया।' असमे श्रीमाँ के आश्रम 'चन्द्रलोक' ले जाये गये। वहाँ जाकर आप बहुत खुश हुए। वहाँ भी अखण्ड कीर्तन चलता ही रहा। इसी बीच श्रीमाँ भी आ गयी।

काशी जाने से दो दिन पहले से ही आप काफी गम्भीर रहने लगे; उत्तरोत्तर उपरामता ही बढ़ी। अब आपने बाहर बगीची में जाना, बैठना या घूमना सभी कुछ बन्द कर दिया। होशियारपुर के पण्डित प्यारेलाल के अधिक आग्रह करने पर आप कहने लगे कि भैया! यह शरीर ही न रहेगा तो इन दृश्यों को कौन देखेगा। इधर आपके काशी जाने की चर्चा चल ही रही थी। एक बार श्रीमाँ के अपने पास आने पर कहा कि माताजी हरेकृष्ण हमारी बात नहीं मानता है। श्रीमहाराजजी के यह शब्द सुनकर हरेकृष्ण रोने लगे। इस पर माताजी ने उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा कि क्या बात है? तब हरेकृष्ण ने कहा, 'माँ! अब हम सब श्रीमहाराजजी की इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ हैं।' माताजी ने कोई बात नहीं कहकर सभी को सान्त्वना दी।

अब तो सभी ने निश्चय कर लिया कि श्रीमहाराजजी माँ के साथ जहाँ जायें जाने दिया जाय क्योंकि यही आपकी इच्छा भी है। आपके दृढ़ संकल्प को बदलने की सामर्थ्य है ही किसमें? इसके बाद श्रीमाँ ने राजारामजी को बुलाकर अपना तथा श्रीमहाराजजी की सारी स्थिति स्पष्ट की। उसके अनुसार यही निश्चय हुआ कि अगले दिन माँ के साथ श्रीमहाराजजी के काशी जाने की तैयारी हो। आपकी ऐसी ही इच्छा देखकर डाक्टरों की अनुमति मिल गई और आप माँ के साथ १ जनवरी १९७० को काशी पधारे।
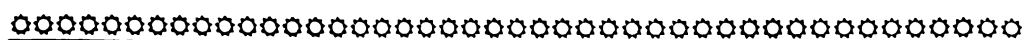
काशी जाकर आपने २४ घण्टे अनवरत ऐसे विश्राम किया, मानो निज-धाम पहुँचकर पूर्ण निश्चिन्त होकर शयन कर रहे हों। मार्ग श्रम था ही। अतः भक्तगण भी केवल आवश्यक भोजनादि के समय आपको जगाते। २ जनवरी को श्रीमहाराजजी प्रातःकाल जागे। आपको प्रसन्न देखकर सभी आनन्दित हुए। उस समय आपने सदैव की भाँति स्नान का आग्रह किया। बार-बार मना करने पर भी न माने। तब स्नान के बहाने बन्द कमरे में हवा आदि की रक्षा से केवल वस्त्र बदलकर स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहनाये गये, और आप कुर्सी पर बैठ गये।

इसके बाद आपने आग्रह पूर्वक बिस्तर के भी सभी वस्त्र बदलवाये और सभी को सावधान कर दिया कि कोई अनावश्यक बातचीत न करे। पं० शंकरलाल हनुमान चालीसा तथा घनेन्द्रकुमार भक्त चरित्र निरन्तर क्रम से सुनाते ही रहते थे। आज विशेष रूप से आपने हरेकृष्ण और सुरेन्द्र को हनुमान चालीसा पाठ सुनाने की आज्ञा दी। दोपहर को करीब ११ बजे आपने माँ को बुला लाने की आज्ञा दी खबर पाते ही माँ तुरन्त आयीं। तब आपने हरेकृष्ण से कहा कि माँ से माफी माँगो। हम से अपराध होते रहते हैं। निजी सेवकों ने आपसे पूछा कि कैसे प्रार्थना करें ? आपने कहा कि जैसे मन में आवे करो। सभी ने माताजी को साष्टांग प्रणाम किया। माँ ने सभी से बाबा को भी प्रणाम कराया।

इस घटना का क्या प्रयोजन था उस समय तो समझ में नहीं आया। आपके अन्तर्धान के बाद यही लगा कि यह सब लीला अन्तिम बिदाई की ही अपूर्व परिपाटी थी। आज दोपहर के बाद आप सोये नहीं। रामस्वरूप ब्रह्मचारी आपकी सेवा में थे। वह निरन्तर 'श्रीराम जय राम जय-जय राम' का संकीर्तन करते रहे। इस समय आप पूर्णतः अतन्द्रित थे। सायंकाल कुद खाँसी का प्रकोप हुआ जो उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। अचानक ऐसी स्थिति से सभी घबड़ा गये तथा माताजी को बुलाया गया। आपके साथ आये हरेकृष्ण, रामस्वरूप ब्रह्मचारी, स्वामी रामानन्द, सुरेन्द्र घनेन्द्रशंकर व नौबतसिंह आदि सभी निजी सेवक एवं भक्तगण एकत्र ही थे।

आपकी लीला संवरण की अन्तिम तैयारी देखकर श्रीमाताजी ने आश्रमीय संन्यासी व ब्रह्मचारियों को बुलाकर श्रीमहाराजजी के सान्निध्य में गीता-पाठ प्रारम्भ

कराया। तथा अन्य सभी लोगों को कमरे से बाहर जाने की आज्ञा दी। श्रीमहाराजजी के निजी सेवकगण आपके पास खड़े श्रीमुख की ओर ही निहार रहे थे।

माँ बार-बार बाबा-बाबा कहकर आपको बुला रही थीं। प्रत्युत्तर में आप भी उच्चस्वर से माँ-माँ के करुण स्वर से भक्त हृदयों को विदीर्ण कर रहे थे। इस समय आप पूर्ण प्रबुद्धावस्था में ही शनैः शनैः महाशान्ति की ओर अग्रसर हो रहे थे। बाबा माँ उत्तर प्रत्युत्तर चल ही रहा था। इसी बीच आप पलभर को निरुत्तर हुए और भक्तों के देखते-देखते 'निताई गौर हरि बोल' की गगन भेदी ध्वनि के साथ माँ की गोद में ही सदा-सदा के लिये स्वरूपस्थ हो गये। ३ जनवरी रात्रि के १ बजकर ४० मिनट का यह समय हरि भक्तों के लिये अविस्मरणीय बन गया।

भक्तगणों को अत्यधिक विकल देखकर माँ का हृदय भी अधीर हो उठा। कुछ क्षणों तक आप मूर्छित प्राय: ही रहीं। और फिर अपने आपको सम्हालते हुए शोकातुर भक्तों को सान्त्वना देते हुए कहा कि बाबा कही गये नहीं। अब तो सभी रूपों में वही स्वतः प्रकाश है। और इस प्रकार पूज्य श्रीमहाराजजी के विमलगुणों का भावाविष्ट होकर वर्णन करने लगीं।

अब तो तत्काल बाँध, होशियारपुर, दिल्ली, मुरादाबाद, वृन्दावन, बम्बई आदि स्थानों पर तथा प्रमुख सन्तों को तार द्वारा निर्वाण की सूचना दी गई, और स्वरूपस्थ श्रीमहाराजजी सहित परिकर के लोग दो टैक्सी से अनूपशहर पहुँचे, जहाँ प्राप्त सूचना के अनुसार स्थान-स्थान से शोकातुर भक्तगण एकत्रित हो चुके थे खादर वासियों के शोक का तो ठिकाना ही न था। वस्तुतः इनके इसी श्रद्धा, प्रेम के कारण ही तो आप काशी से यहाँ वापस आये थे। अनूपशहर से रात्रि में ही लगभग एक बजे बाँध के संकीर्तन-भवन में आ विराजे। दूर-दूर से आने वाले भक्तों को दर्शन की दृष्टि से लगभग २४ घण्टे तक यहीं रखा गया। यहाँ लगातार भगवन्नाम सङ्कीर्तन चलता रहा।

समाधि—

अब सभी के परामर्श से श्रीमहाप्रभु मन्दिर के समीप ही श्रीमहाराजजी की समाधि की आवश्यक तैयारी की गई। गंगाजल से स्नान कराकर सन्यासोचित वस्त्रादि

पहनाकर एक सुन्दर विमान पर श्रीमहाराजजी को कुटी से इस प्रकार मन्दिर का दर्शन कराते हुऐ समाधि स्थल पर लाया गया, जैसे कि बाँध पर रहते हुये प्राय: प्रतिदिन मन्दिर दर्शनार्थ आया करते थे। विमान पर सुशोभित श्रीमहाराजजी की इस अन्तिम झाँकि का दर्शन करते समय भक्तों को बड़े ही विलक्षण अनुभव हुये। कुछ को प्रत्यक्ष ऐसा लगा मानों महाप्रभु के श्रीविग्रहों के सामने आपने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। यह सब भक्त हृदयों की स्वाभाविकता से हुआ। 'जाकि रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।' हरि भगवान् के जय घोष से आकाश गुंजरित था।

समाधि-स्थल पर माँ के प्रतिनिधि स्वरूप एक दण्डिस्वामी तथा स्वामी परमानन्दजी उपस्थित थे। वैदिक विधि से श्रीमहाराजजी का षोडशोपचार पूजन हुआ। तदनन्तर समाधि में एक सुन्दर आसन पर आसीन कराके श्रीमद्‌भागवत तथा कमण्डलु साथ रखा गया। ६ जनवरी मंगलवार को प्रात: १० बजे जिस समय समाधि को बन्द किया गया, उस समय भक्तोंकें हृदय पर वज्रपात हुआ, बेसुध हुये, उन सभी का करूण रूदन विधाता को कँपाता सा लग रहा था। सभी के मुख से केवल 'हरि-हरि' शब्द ही मन्दस्वर में सुनाई पड़ रहा था।

इस प्रकार सदा-सदाके लिये आपकी दिव्य करूणमूर्ति भक्तों के नेत्रों से ओझल हो गई और अब तो ठनके आलम्बनके लिये रह गये केवल उनके यह आश्वासन वाक्य, 'अरे भैया ! बाँध हमारा प्रत्यक्ष शरीर है, यहाँ के कण-कण में, वृक्षों के पत्तों-पत्तों में हमारा नित्य-निवास है।' यहाँ समाधि लेकर वस्तुत: आपने अपने ही इस सुदृढ़ सकंल्प को पूर्णत: चरितार्थ किया।

निर्वाणोत्सव—

सभी भक्तगण शोक सागर में डूबे हुये थे। सम्पूर्ण बाँधके वातावरण में निराशाके बादल मंडरा रहे थे। किसी को कुछ भी कहने-सुनने की सुध-बुध तो रह ही नहीं गई थी। फिर भी लोकोपचार तो करना ही था। अस्तु आपके धर्मोचित-निर्वाणोत्सव की तैयारी की गई। जिसने धीरे धीरे विराट रूप धारण कर लिया। इस

अवसर पर अन्य उत्सवों की भाँति कथा-कीर्तन प्रवचन, श्रीगौरांगलीलाभिनय आदि तो चला ही, प्रमुखतः वैदिक विधि से श्रीविष्णु यज्ञ एवं श्री श्रीमद्भागवत पारायण हुआ। श्री श्रीमाँ की सन्निधि में महाप्रभु की परम्परानुसार चौसठ महन्तों का भोग लगाया गया, वस्त्र दक्षिणादि द्वारा सभी को यथोचित सम्मानित किया गया। सामूहिक भण्डारे का तो कहना ही क्या, बड़ी लम्बी पंक्ति में एक साथ बैठकर संतों, भक्तों, ब्राह्मणों ने प्रसाद पाया।

श्रीमहाराजजी के महान् व्यक्तित्व से परिचित एवं उनके सहज स्नेह के अनुभवी सन्तों का आना जाना समाधिस्थ समय से ही चलता रहा। उत्सव में पूजनीया श्रीमाँ, शंकराचार्य स्वामी शान्तानन्द सरस्वती, बाबा रामदास, स्वामी कृष्णानन्द अवधूत, आचार्य चक्रपाणि, स्वामी कृष्णानन्द बम्बई वाले व स्वामी प्रेमानन्द आदि पधारे और श्रीमहाराजजी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

यहाँ से वृन्दावन पहुँचकर होली के उत्सव पर श्रीमहाराजजी का बाँध पर जैसा ही विशाल भण्डारा किया गया। उसमें एक विशेषता यह रही कि वृन्दावन के सभी सम्प्रदायों के सन्तों-भक्तों ने बड़ी ही प्रसन्नता के साथ बैठकर प्रसाद पाया, जैसा कि प्रायः पहले कभी देखने में नहीं आया। इसका प्रमुख कारण था कि आप साम्प्रदायिक स्तर से ऊपर उठकर सर्वमान्य भक्ति साधन में रत रहे। श्रीमहाराजजी के महान् व्यक्तित्व का परिचायक था यह प्रसङ्ग।

नवकलेवर महोत्सव—

अब हरि भक्तों को अपने आराध्य देव श्रीमहाराजजी की उसी दिव्य झाँकी के दर्शनों की आतुरता थी जिसे उन्होंने आपके अनेकों लीलाचरित्रों से हृदय में बसा रखा था। इसी भावना से समाधि स्थल पर मन्दिर निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। और आपकी कृपा से यह कार्य केवल एक वर्ष में ही पूरा हुआ।

इसी नवनिर्मित मन्दिर में सन् १९७१ की फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी श्रीमहाराजजी के जन्मदिन पर पूजनीया श्रीमाँ के कर कमलों द्वारा आपके नकलेवर

का आविर्भाव हुआ, इससे भक्तों की हार्दिक वियोग व्यथा कुछ-कुछ शान्त हुई। प्रतिष्ठा के समय अनेकों सन्तों, विद्वानों एवं भक्तों ने श्रीमहाराजजी के पावन चरणों में भक्ति पूर्ण पुष्पाञ्जलि अर्पित की। इनमें वयोवृद्ध स्वामी शास्त्रानन्दजी, बाबा रामदासजी, आचार्य चक्रपाणिजी, स्वामी कृष्णाननद अवधूत व स्वामी कृष्णानन्द बम्बई वाले आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

गुरुस्थान व जन्मभूमि में विग्रह प्रतिष्ठा—

इसी प्रकार सन् १९७३ की फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को होशियारपुर गुरुस्थान एवं उसके पास आपकी जन्मभूमि गन्दोवाल गाँव में क्रमशः श्रीमहाराजजी के द्वितीय, तृतीय श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा वैदिक विधि-विधान से हुई। यहाँ भी सभी सन्त महात्मा, विद्वान् पधारे।

इन सभी मन्दिरों में विराजित श्रीहरि भगवान् सदा की भाँति अपने भक्तों को नित्य दर्शन देकर आह्लादित कर रहे हैं। और इसी प्रकार आगे सदैव हरि भक्ति देकर कल्याण करते रहेंगे। इसी आशा व विश्वास से उन हृदयाराध्य श्रीहरि भगवान् के पावन चरणों में शतशः प्रणाम।

दिल्ली में श्रीहरि बाबा की स्मृति

श्रीमहाराजजी का गोलोक गमन तो काशीधाम में हुआ। तब से दिल्ली में श्रीजसवन्त, श्रीशर्माजी, श्रीरघुवीर मिश्र, श्रीगिरिराज किशोर वर्मा आदि अनेक भक्तों की प्रेरणा एवं सहयोग से महाराजजी के अनन्य भक्त गवाँ निवासी साहू स्वर्गीय जानकीप्रसादजी की धर्मपत्नी कमला देवी के द्वारा प्रति रविवार उनके निवास स्थान पर हरि कीर्त्तन का आयोजन होता रहा है। कीर्त्तन का क्रम वही है जो श्रीमहाराजजी का था। इस प्रकार यह श्रीमहाराजजी को पुनीत स्मृति का साधन है। इसमें श्रीमहाराजजी के स्थानीय भक्तगण बड़े उत्साह के साथ भाग लेते हैं। अब यह सङ्कीर्तन श्रीरामायण विद्यापीठ के प्रांगण (१४ इन्सटीट्यूशनल एरिया, लोधी रोड, नई दिल्ली) में होता है। श्रीरामायण विद्यापीठ में सङ्कीर्त्तन हाल बनाने की योजना है जिसमें श्रीराम की विशाल मूर्ति एवं भगवान् श्रीराम के पार्षद के रूप श्रीमहाराजजी की मूर्ति की स्थापना भी की जायगी।

॥ श्रीहरि भगवान् की जय॥
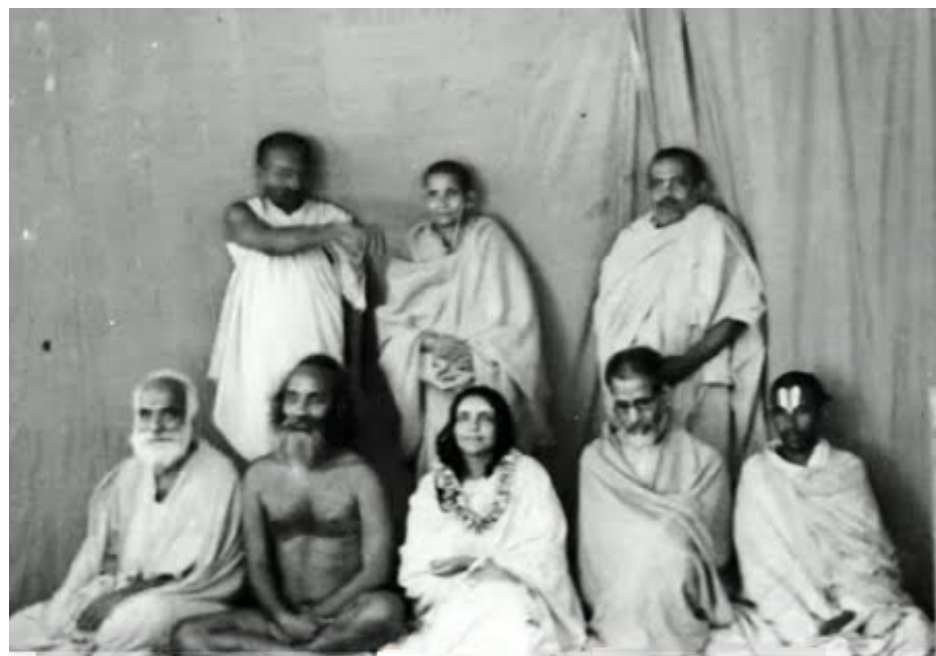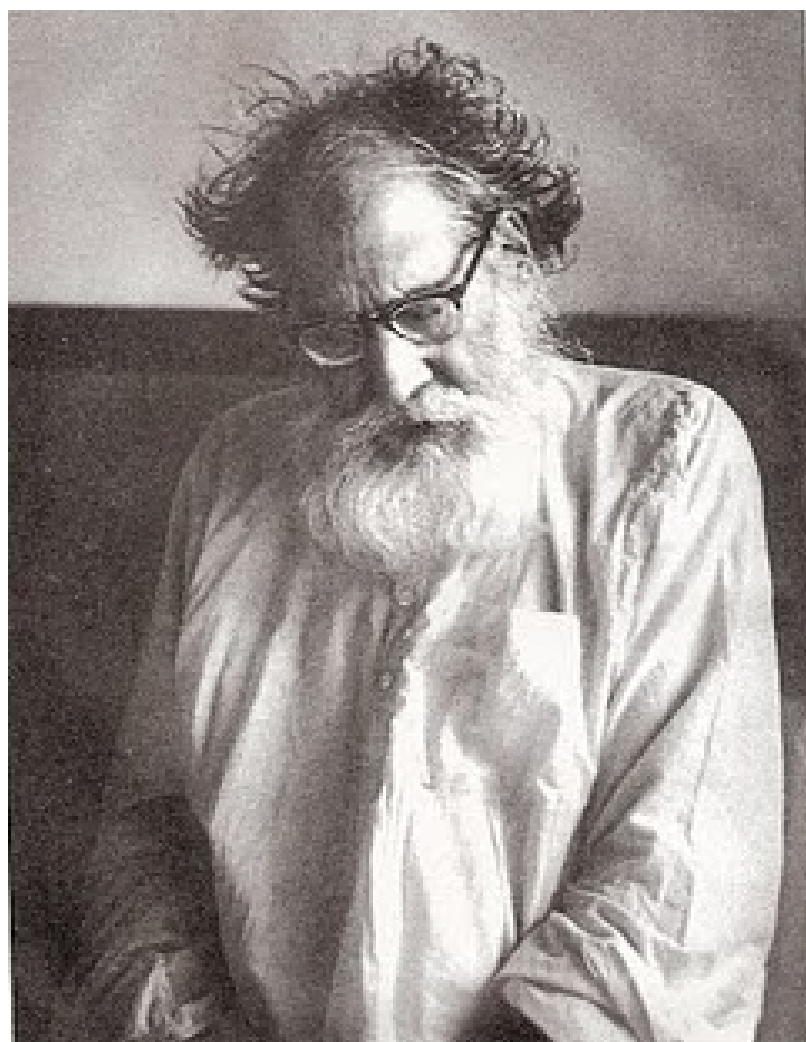
"बाबा बाबा ही
बाबा हुआ, न होगा"

– माँ आनन्दमयी

जाहार निकटे गेले पाप दूरे जाय।
एमन दयाल प्रभु केवा कोथा पाय।।
गंगार परश हैले पश्चाते पावन।
दर्शने पवित्र कर, ए तोमार गुण।।

"प्रणतः"